

१३ सतिगुर प्रसादि ॥

श्री



दसम गुरु ग्रंथ साहिब जी

(हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण)

चौथी सँजी

शरदा पुस्तकालय
(संजीवनी) का काँच
क्याँ...



प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

मौसम बाग (सीतापुर रोड), लखनऊ-२२६०२०

भारता पुस्तकालय

(संजीवना प्रान्त, काठमांडू)

क्रमांक . . . 36

शारदा पुस्तकालय

(संजीवनी शास्त्रा केन्द्र)

क्रमांक ...

६२

52

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

श्री

दसम गुरुग्रंथ साहिब जी

(चौथी सैंची)

[हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण]

अनुवाद—

डॉ० जोधसिंह

एम० ए०, पीएच्० डी०, साहित्य-रत्न

शारदा पुस्तकालय
(संजीवनी प्रकाशकेंद्र)

प्रकाशक

62

भुवन बाणी ट्रस्ट

मीसम बाग (सीतापुर रोड), लखनऊ-२२६०२०



‘प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी ।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥’

प्रथम संस्करण—१९८५-८६ ई०

आकार— १८ × २२ ÷ ८

पृष्ठसंख्या— ७५२

भट— ५०.०० रुपया

50

मुद्रक

वाणी प्रेस

‘प्रभाकर निलयम्’, ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-२२६००३

विश्वनागरी लिपि

॥ ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ॥

सब भारतीय लिपियाँ सम-वैज्ञानिक हैं !

All the Indian Scripts are equally scientific !

भारतीय लिपियों की विशेषता ।

‘ संसार की लिपियों में नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है ’, यह कथन बिलकुल ठीक है । परन्तु यह कहते समय हमें याद रखना चाहिए कि वह सर्वाधिक वैज्ञानिकता, केवल हिन्दी, मराठी, नेपाली लिखी जानेवाली

लिपि में नहीं, वरन् समस्त भारतीय लिपियों में मौजूद है। क, च, त, प आदि के रूपों में कोई वैज्ञानिकता नहीं है। वैज्ञानिकता है लिपि का ध्वन्यात्मक होना। स्वरों-व्यंजनों का पृथक् होना। अधिक से अधिक व्यंजनों का होना। सबको एक ‘अ’ के आधार पर उच्चरित करना। [‘अ’ अक्षर-स्वर, सकल अक्षरों का उस भाँति मूल आधार। सकल विश्व का जिस प्रकार ‘भगवान्’ आदि है जगदाधार।] एक अक्षर से केवल एक ध्वनि। एक ध्वनि के लिए केवल एक अक्षर। स्माल्, कैपिटल्, इटैलिक्स् के समान अनेकरूपा नहीं; वस एक ही

पंजाबी (गुरमुखी)-देवनागरी वर्णमाला

अ	आ	इ	ई	उ
ऊ	ऋ	ॠ	ऐ	ओ
औ	अं	अः		
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	स	ह		

रूप में लिखना, बोलना, छापना और प्रत्येक अक्षर का समान वजन पर

एकाक्षरी नाम । उच्चारण-संस्थान के अनुसार अक्षरों का कवर्ग, चवर्ग आदि में वर्गीकरण । फिर प्रत्येक वर्ग के अक्षरों का क्रम से एक ही संस्थान में थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठते हुए अनुनासिक तक पहुँचना, आदि-आदि ऐसे अनेक गुण हैं जो अमरातीय लिपियों में एकत्र, एकसाथ नहीं मिलते । किन्तु ये गुण समान रूप से सभी भारतीय लिपियों में मौजूद हैं, अतः वे सब नागरी के समान ही विश्व की अन्य लिपियों की अपेक्षा 'सर्वाधिक वैज्ञानिक' हैं । सब ब्राह्मी लिपि से उद्भूत हैं । ताड़पत्र और भोजपत्र की लिखाई तथा देश-काल-पात्र के अन्य प्रभावों के कारण विभिन्न भारतीय लिपियों के अक्षरों के रूप में यत्न-तत्न परिवर्तन, हिन्दी वाली 'नागरी लिपि' को कोई श्रेष्ठता प्रदान नहीं करता । भारत की मौलिक सब लिपियाँ 'नागरी लिपि' के समान ही श्रेष्ठ हैं ।

नागरी लिपि को 'भी' अपनाता श्रेयस्कर क्यों ?

"नागरी लिपि" की केवल एक विशेषता है कि वह कमोबेश सारे देश में प्रविष्ट है, जबकि अन्य भारतीय लिपियाँ निजी क्षेत्रों तक सीमित हैं । वहीं यह भी सत्य है कि नागरी लिपि में प्रस्तुत और विशेष रूप से खड़ी बोली का साहित्य, अन्य लिपियों में प्रस्तुत ज्ञानराशि की अपेक्षा कम और नवीनतर है । अतः समस्त भाषाओं की ज्ञानराशि को, सर्वाधिक फली लिपि "नागरी" में अधिक से अधिक लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से उठाकर सबको सारे राष्ट्र में, यहाँ तक कि विश्व में ले आना परम धर्म है । विश्व की सब भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान (सत्साहित्य) तो है आत्मा, और 'नागरी लिपि' होना चाहिए उसका पर्यटक शरीर ।

अन्य लिपियों को बनाये रखना भी कर्तव्य है ।

वस्तुतः यह परम धर्म है कि समस्त सदाचार साहित्य को नागरी में तत्परता से प्राचूर्य में लिप्यन्तरित करना । किन्तु साथ ही यह भी परम धर्म है कि देशी-विदेशी अन्य सभी लिपियों को उत्तरोत्तर उन्नति के साथ बरकरार रखना । यह इसलिए कि सबका सब कभी लिप्यन्तरित नहीं हो सकता । अतः अन्य लिपियों के नष्ट होने और नागरी लिपि मात्र के ही रह जाने से विश्व की समस्त अ-लिप्यन्तरित ज्ञानराशि उसी प्रकार लुप्त-सुप्त होकर रह जायगी जैसे पाली, प्राकृत और अपभ्रंश, सुरयानी आदि का वाङ्मय रह गया । जगत् तो दूर, राष्ट्र का ही प्राचीन आप्तज्ञान विलुप्त हो जायगा । नागरी लिपि वालों पर उत्तरदायित्व विशेष !

इन दोनों परम धर्मों की पूर्ति का सर्वाधिक भार नागरी लिपि वालों पर है, इसलिए कि उनको 'सम्पर्क लिपि' का श्रेष्ठ आसन प्रदत्त है । मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने अपने कर्तव्य का, जैसा चाहिए था, वैसा निर्वाह नहीं किया । परन्तु उसकी प्रतिक्रिया में अन्य लिपि वालों को भी "अपराध के जवाब में अपराध" नहीं करना चाहिए । 'कोयला' बिहार का है

अथवा सिंहभूमि का है, इसलिए हम उसको नहीं लेंगे, तो वह हमारे ही लिए घातक होगा। कोयले की क्षति नहीं होगी। अपनी लिपियों को समुन्नत रखिए, किन्तु नागरी लिपि को 'भी' अवश्य अपनाइए।

उपर्युक्त परिवेश में नागरी लिपि का पठन और समग्र श्रेष्ठ साहित्य का नागरी में लिप्यन्तरण तो आवश्यक है ही, किन्तु अन्य लिपियाँ भी अपनी लिपि में दूसरी भाषाओं के सत्साहित्य को लिप्यन्तरित तथा अनूदित कर सकती हैं। 'अधिकस्य अधिकं फलम्।' ज्ञान की सीमा नहीं निर्धारित है। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने भी अवधी के रामचरितमानस को ओड़िआ भाषा में गद्य एवं पद्य अनुवाद-सहित, ओड़िआ लिपि में लिप्यन्तरित किया है। परन्तु सम्पर्क और एकीकरण की दृष्टि से 'नागरी लिपि' अनिवार्य है। नागरी लिपि की वैज्ञानिकता मानव मात्र की सम्पत्ति है।

अब एक कदम आगे बढ़िए। भारतीय लिपियों की सर्वाधिक वैज्ञानिकता, युगों की मानव-शृंखला के मस्तिष्क की उपज है। क्या मालूम इस अनादि से चल रहे जगत् में कब, क्या, किसने उत्पन्न किया? भारत संयोग से इस समय इस विज्ञान का कस्टोडियन् है, स्रष्टा नहीं। भारत भी न जाने कब, कहाँ तक और कितना था? अतः हम भारतीयों को नागरी लिपि के स्वामित्व का गर्व नहीं होना चाहिए। वह आज के मानव के पूर्वजों की देन है, सबकी सम्पत्ति है, सकल विश्व उसका समान गौरव से उपयोग कर सकता है। हमारा 'अहम्' उस लिपि की उपयोगिता को रुद्ध कर देगा, जिसके हम सँजोये रखनेवाले मात्र हैं। किन्तु विदेशों में बसने वाले बन्धुओं को भी नागरी लिपि के गुणों को अपने ही पूर्वजों की उपज मान कर परखना चाहिए। ये गुण इस निबन्ध के प्रथम अनुबन्ध में अधिकांशतः वर्णित हैं। न परखने पर उनकी क्षति है, विश्व की क्षति है। अरब का पेट्रोल हम नहीं लेंगे, तो क्षति किसकी होगी? पेट्रोल की नहीं, अपनी ही।

फिर याद दिला देना जरूरी है कि क, प आदि रूपों में वैज्ञानिकता नहीं है। बे, काफ़, पे और के, पी, जैसे ही रूप रख सकते हैं, किन्तु लिपि में 'अनुबन्ध प्रथम' में ऊपर दिये हुए गुणों और क्रम को अवश्य ग्रहण करें। और यदि एक बनी-बनाई चीज़ को ग्रहण करके सार्वभौम सम्पर्क में समानता और सरलता के समर्थक हों, तो 'नागरी लिपि' के क्रम को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर, गौर न समझकर, मौजूदा रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। वह भारत की बपीती नहीं है। आज के मानव के पूर्वजों की वह सृष्टि है। इससे विश्व के मानव को परस्पर समझने का मार्ग प्रशस्त होगा।

नागरी लिपि में अनुपलब्ध विशिष्ट स्वर-व्यञ्जनों का समावेश।

हर शुभ काम में कजी निकालनेवाले एक दूर की कौड़ी यह भी लाते हैं कि "नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक होते हुए भी अपूर्ण है और अनेक स्वर-व्यञ्जनों को अपने में नहीं रखती। उनको लिपि में कहाँ तक और कैसे समाविष्ट

किया जाय ?" यह मात्र तिल का ताड़ है। मौजूदा कर्तव्य को टालना है।

अल्बत्ता अन्य भाषाओं में कुछ व्यंजन ऐसे हैं जो नागरी में नहीं हैं— किन्तु अधिक नहीं। भारतीय भाषा उर्दू की क ख ग ज फ़, ये पाँच ध्वनियाँ तो बहुत समय से नागरी लिपि में प्रयुक्त हो रही हैं। दुःख है कि आज़ादी के बाद से राष्ट्रभाषा के पक्षधर ही उनको गायब करने पर लगे हैं। इसी प्रकार मराठी छ है। इनके अतिरिक्त अरबी, इब्रानी आदि के कुछ व्यञ्जन हैं, किन्तु उनको नागरी की दैनिक लिपि में अनिवार्यतः रखना आवश्यक नहीं। विशिष्ट भाषाई कार्यों में, ज़रूरी मानकर, उन विशिष्ट भाषाई स्वर-व्यंजनों को चिह्न देकर दरसाया जा सकता है।

तदर्थ अरबी लिपि का आदर्श सम्मुख।

और यह कोई नयी बात नहीं। नितान्त अपरिवर्तनशील कहे जाने वालों की लिपि 'अरबी' में केवल २७-२८ अक्षर होते हैं। भाषा के मामले में वे भी अति उदार रहे। "अिल्म चीन (अर्थात् दूर से दूर) से भी लाओ"— यह पैगम्बर(स०) का कथन है। जब ईरान में, फ़ारसी की नई ध्वनियों च, प, ग, आदि से सामना पड़ा तो उन्होंने उनको अरबी-पोशाक— चे, पे, गाफ़ पहना दी। जब हिन्दोस्तान आये तो ट, ड, ङ आदि से सामना पड़ने पर अरबी ही जामे में टे, डाल, ड़ आदि तैयार कर लिये। यहाँ तक कि सिन्धी में नागरी के सब महाप्राण और अनुनासिक, तथा सिन्धी के विशिष्ट अन्तःस्फुट अक्षरों को भी अरबी का लिबास पहना दिया गया। फिर 'नागरी' वाले तो औदार्य का दावा करते हैं, उनको परेशानी क्या है? और नागरी में भी तो परिवर्तन होते रहे हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में प्रयुक्त छ को छोड़ चुके हैं, और ङ, ढ आदि को अवर्गीय दशा में जोड़ चुके हैं। नागरी लिपि में कुछ ही व्यंजनों का अभाव है। उनमें से कुछ को स्थायी तौर पर और कुछ को अस्थायी प्रयोग के लिए गढ़ सकते हैं। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने यह सेवा बड़ी सरलता, सफलता और सुन्दरता से की है।

नागरी और यूरोपीय स्वर-व्यञ्जन।

एक ओझल तत्त्व को प्रकाश में लाना है कि तीन चौथाई यूरोपीय भाषाओं की ध्वनियाँ प्राचीन वैदिक भाषा के तुल्य हैं। ईरान और अरब की ध्वनियाँ भी। वैदिक में, टवर्ग ऋग्वेद के बाद, कहीं से प्रविष्ट होकर संस्कृत में स्थायित्व पा गया। अल्बत्ता 'ण' का प्रयोग है, किन्तु यह टवर्ग से पृथक्, छ (ङ) का अनुनासिक है। 'ळ' (ङ) ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में मौजूद है, बाद को किसी समय लिपि से लुप्त हो गया। ध्वनि क्रायम रही जो कालान्तर में ङ के रूप में पुनः प्रविष्ट हुई। ओड़िया, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, तेलुगु, मलयाळम, कन्नड और तमिळ में छ अब भी मौजूद है।

स्वर और प्रयत्न (लहजा) का अन्तर ।

अब रहे स्वर । जान लीजिए कि प्रमुख स्वर तीन ही हैं— अ, इ, उ— उनसे दीर्घ, संयुक्त (डिप्थांग) आदि बनते हैं । अतिदीर्घ, प्लुत, लघु, अतिलघु आदि फिर अनेक हैं जो विश्व में अनेक रूपों में बोले जाते हैं । भारतीय वैदिक एवं संस्कृत व्याकरण में अनेक हैं । वे स्वतंत्र स्वर नहीं हैं, प्रयत्न हैं, लहजा हैं । वे सब न लिखे जा सकते हैं, न सब सर्वत्र बोले जा सकते हैं । डायक्रिटिकल मार्क्स कोशों में छाप-छापकर चमत्कार भले ही दिखा दिया जाय, प्रयोग में तो, “एक ही रूप में”, अपने निजी शब्द निजी देशों में भी नहीं बोले जाते । स्वर क्या, व्यंजन तक । एक शब्द “पहले” को लीजिए । सब जगह घूम आइए, देखिए उसका उच्चारण किन-किन प्रकार से होता है । एक बिहार प्रदेश को छोड़कर कहीं भी “पहले” का शुद्ध उच्चारण सुनने को नहीं मिलेगा । पंजाब, बंगाल, मद्रास के अंग्रेजी के उद्भट विद्वान् अंग्रेजी में भाषण देते हैं—उनके लहजे (प्रयत्न) बिलकुल भिन्न होते हैं । फिर भी न उनका उपहास होता है, न अंग्रेजी भाषा का ह्रास ।

शास्त्र पर व्यवहार की बरीयता (तर्जोह) ।

शास्त्र और विज्ञान से हमको विरोध नहीं । लिपि की रचना, शोध, परिमार्जन, देश-काल-पात्र के अनुसार करते रहिए, परन्तु व्यवहारिकता को अवरुद्ध मत कीजिए । खाद्यपदार्थ के तत्त्वों का गुण-दोष, परिमाण, संतुलन, न्यूनाधिक्य, और खानेवाले की शक्ति के साथ उनका समन्वय, यह सब स्तुत्य है, कीजिए । किन्तु ऐसा नहीं कि उस शोध-समीक्षा के पूर्ण होने तक कोई भूखा रहकर मर ही जाय । थाली रखी है, उसे भोजन करने दीजिए । आज सबसे जरूरी है राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का एक-दूसरे की ज्ञानराशि को समझने के लिए एक सम्पर्क लिपि की व्यापकता ।

‘भुवन वाणी ट्रस्ट’ ने स्थायी और मुकामी तौर पर अनेक स्वर-व्यंजनों की सृष्टि की है । दक्षिणी वर्णमालाओं में एकार तथा ओकार की ह्रस्व, दीर्घ—दोनों मात्राएँ हम बोलते हैं, किन्तु पृथक् लिखते नहीं । पढ़ने दीजिए, बढ़ने दीजिए । समस्त भाषाओं के ज्ञान-भण्डार को निजी क्षेत्रों से उठाकर घरातल पर नागरी लिपि के माध्यम से पहुँचाइए । नागरी लिपि मानव के पूर्वज की सृष्टि है, मानव मात्र की है । यहाँ से योरोप तक उसकी पहुँच है । यूरोपियों की लिपि-शैली नागरी थी । अक्षरों के रूप कुछ भी रहे हों । किन्हीं कारणों से सामीकुलों में भटककर अलफ़ा-बीटा के क्रम को थोड़े अन्तर के साथ अपना लिया । फिर पुराने संस्कारों से याद आया, तो स्वर-व्यंजन पृथक् कर दिये । किन्तु उनके क्रम-स्थान जैसे के तैसे मिले-जुले रहे । सामीकुल की भाषाओं ने भी प्रमुख स्वर तीन ही माने हैं, ज़बर-ज़ेर-पेश (अ इ उ) ।

और ी का उच्चारण अरबी, संस्कृत, अवधी और अपभ्रंश का एक जैसा है—(अई, अऊ)। किन्तु खड़ी बोली हिन्दी-उर्दू के ऐ, और औ, ऐनक, औरत जैसे। यह स्वरों की भिन्नता नहीं है, वरन् लहजा (प्रयत्न) की भिन्नता है।

पूर्ण वैज्ञानिक कोई वस्तु मनुष्य के पल्ले नहीं पड़ सकती। “पूर्ण विज्ञान” भगवान् का नाम है। सा-रे-ग-म-प-ध-नि, ये सात स्वर; उनमें मध्य, मन्द, तार; कुछ में तीव्र, कोमल—बस इतने में भारतीय संगीत बँधा है। उनमें भी कुछ तो अदा नहीं हो सकते, अनुभूति मात्र हैं। किन्तु क्या इतने ही स्वर हैं? संगीत के स्वरों का इनके ही बीच में अनंत विभाजन हो सकता है। जैसे अणु से परमाणु का, और उसमें भी आगे। किन्तु शास्त्र एक वस्तु है, व्यवहार दूसरी। व्यवहार में उपर्युक्त षडज से निषाद तक को पकड़ में लाकर संगीत कायम है, क्या उसको रोककर इनके मध्य के स्वरों को पहले तलाश कर लिया जाय? तब तक संगीत को रोका जाय, क्योंकि वह पूर्ण नहीं है? क्या कभी वह पूर्ण होगा? पूर्ण तो ‘ब्रह्म’ ही है। “बेस्ट इज द ग्रेटेस्ट ऐनिमी ऑफ़ गुड।” (Best is the greatest enemy of Good.) इसलिए शग्ल और शोब्दों की आड़ न ली जाय। नागरी लिपि पर्याप्त सक्षम है।

विश्व-व्यापकता के संदर्भ में नागरी लिपि के स्वरों का रूप।

लिखने के भेद—यदि नागरी को हिन्दी क्षेत्र की ही लिपि बनाये रखना है तो इ, उ, ए, ऐ, लिखने के अपने पुरानेपन के मोह में मुग्ध रहिए। और यदि उसे राष्ट्रलिपि अथवा विश्व तक में, यहाँ तक कि सामीकुल में भी आसानी से ग्राह्य बनाना चाहते हैं तो गुजराती लिपि की भाँति थि, अु, अे, अै लिखिए। किन्तु कोई मजबूर नहीं करता। विनोबा जी ने भी इसका आग्रह नहीं रखा। आकार और रूप का मोह व्यर्थ है। पुराने ब्राह्मी-शिलालेखों को देखिए। आपके मौजूदा रूप वहाँ जैसे के तैसे कहाँ हैं?

संस्कृत के तिरस्कार से भाषा-विघटन।

मेरा स्पष्ट मत है कि “संस्कृत” को राष्ट्रभाषा होना चाहिए था। वह होने पर, यह भाषा-विवाद ही न उठता। सबको ही (हिन्दी-भाषी को भी) समान श्रम से संस्कृत सीखने पर, स्पर्धा-कटुता का जन्म न होता, संस्कृत का अपार ज्ञान-भण्डार सबको प्रत्यक्ष होता, और हिन्दी की पैठ में भी प्रगति ही होती। उर्दू-हिन्दी की अपेक्षा, अन्य सभी भारतीय भाषाएँ, संस्कृत के अधिक समीप हैं। इसलिए कि प्रायः सभी भारतीय लिपियों में, संस्कृत भाषा उसी प्रकार अबाध गति से लिखी जाती है जिस प्रकार नागरी लिपि में। संस्कृत ही एक भाषा है जिसकी अनेक लिपियाँ अपनी हैं। वह देश-काल-पात्र के प्रभाव से मुक्त, अव्यय (कभी न बदलनेवाली),

सकल विश्व में एक मात्र सदावहार भाषा है । अन्य सब भाषाएँ देश-काल-पात्र के प्रभाव का शिकार होती रहती हैं ।

‘संस्कृत कठिन है’ — यह प्रसाध ।

‘संस्कृत कठिन है’, यह दूर से देखने पर रस्सी का साँप है । वह गणित के समान नियमबद्ध अति सरल भाषा है । कभी न बदलनेवाली, अपने में पूर्ण । कुछ गणित जैसे नियम जान लेने पर कोई चुक की गुंजाइश नहीं । इब्रानी (हिब्रू) जैसी भूली-विसरी भाषा जब इज्राईल देश में अनिवार्य भाषा का स्थान ले सकती है तब संस्कृत तो जीती-जागती आदिम देवभाषा है ।

धर्मतंत्र

संस्कृत का पुरातन वाङ्मय नाम-भेद से रहित ‘एक धर्मतंत्र’ शासन-व्यवस्था से युक्त है । वहाँ अधर्म की पैठ नहीं, पैठ है तो उसका विनाश निश्चित है । प्रजातंत्र, गणतंत्र, राजतंत्र, अधिनायक-तंत्र, ये सब उस धर्मतंत्र के सुधाभाण्ड से यत्र-तत्र गिरी बूंदें हैं । सब शुद्ध हैं, सब अशुद्ध हो जाते हैं । एक के अशुद्ध होने पर दूसरा आता है, और कालान्तर में वह भी अशुद्ध होकर दूसरे में बदल जाता है । ‘धर्मतंत्र’ किसी क्षेत्र का, व्यक्ति का, समुदाय का चेहरा नहीं देखता । उसकी दृष्टि में प्राणिमात्र, विना भेद-भाव के, एक समान है ।

यूनाइटेड नेशन्स फ़ेल क्यों ?

इसलिए कि ‘यूनाइटेड’ में विभाजन और अलगाव तो पहले से ही मौजूद है । वह कभी यूनाइटेड नहीं हो सकता । ‘रेलीजन’ शब्द लैटिन है । उसका अर्थ ‘जुड़ने’ से है । जुड़ो, सब जुड़ो, सकल सृष्टि से जुड़ो, सकल सृष्टि से जुड़ो कि मानो सर्वव्यापी परमात्मा से जुड़ गये । अलग नहीं होना । स्वर्ग चलेंगे तो सब साथ-साथ । अन्यथा सब साथ ही साथ नरक में विलास करेंगे । ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।’ ‘संस्कृत’ भारत की राष्ट्रभाषा होती तो उसके वाङ्मय से संसार चकित होता । और भारत से उदित धर्मतंत्र के धुरे पर धरातल पर धर्मतंत्र स्थापित होता । यह मानवमात्र ‘यूनाइटेड नेशन्स’ न होकर, मात्र ‘नेशन’ होता ।

अब तो प्रस्तुत राष्ट्रभाषा ही सर-माथे पर

अब “हिन्दी” ही राष्ट्रभाषा सबको मान्य होना चाहिए। यह इसलिए कि अन्य भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही एक भारतीय भाषा है जो देश के हर स्थल में कमोबेश प्रविष्ट है।

हिन्दी-भाषियों का अहम्।

‘हिन्दी’ (खड़ी बोली) कदाचित् थोड़े वोटों के नाम मात्र के बहुमत पर ही राष्ट्रभाषा चुनी गई थी। वह भी इस विशेषता पर कि उसकी पैठ कमोबेश हर भाषाई क्षेत्र में है। वह गर्व से अपने को माला का सुमेरु न समझकर, माला की मणियों (गुरियों) को परस्पर जोड़नेवाला धागा समझे। सारी भाषाओं को जोड़े, सारे देश में फैलाये। यह समझना अज्ञान है कि वह अपेक्षाकृत अतिश्रेष्ठ है। अन्य भाषाओं का साहित्य कहीं अधिक समृद्ध और प्राचीन है। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ। हिन्दीवालों ने विजय-दुन्दुभी बजाई। ‘अब झख मार कर सबको हिन्दी सीखना पड़ेगी’, ऐसा अहम् उनसे मुखरित हुआ। आज के भाषाई विवाद का यह एक बड़ा कारण है।

अन्य भारतीय भाषाभाषी भी भटक गये।

वे हिन्दी के विपक्ष में अपनी क्षेत्रीय भाषा की गोट न बिठाने की स्थिति में थे। वे सब स्वयं विभक्त हो जाते। अतः उन्होंने रोमन लिपि का जवाबी मुहरा बिठाया। फलस्वरूप वे विफल हुए, हिन्दी की विजय हुई। यदि उन्होंने डॉ० काटजू और श्री विश्वनाथ दास के संस्कृत वाले पक्ष का अनुमोदन किया होता तो उनकी विजय होती। भारत संस्कृतमय होता। विश्व को ‘यूनाइटेड नेशन्स’ के बजाय ‘धर्मतन्त्र’ का मार्गदर्शन मिलता। और हिन्दी-सहित सभी भारतीय भाषाओं की भी उत्तरोत्तर स्वतः उन्नति होती।

अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि।

अंग्रेजी भाषा का तो हम आदर करते हैं। अंग्रेजी साम्राज्यवाद में उन्होंने उदारता बरती और जगत का वाङ्मय अपने में समेटा। विश्व में वह पैठ गई। परन्तु रोमन जैसी नितान्त पंगु, नितान्त अपाहिज लिपि को भारत में अपनाने का क्या औचित्य है? जहाँ डब्लू में तीन अक्षर, चार मात्राओं में कहीं भी उसकी वास्तविक ध्वनि ‘व’ का संकेत तक नहीं!

उर्दू भाषा

उर्दू और हिन्दी एक ही भाषा हैं। केवल लिपि-भेद है। मुझको उस विवाद में कुछ नहीं कहना है। किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि उर्दू के पक्षधरों ने उर्दू को जितनी हानि पहुँचाई है, वह अपार है। उर्दू लिपि में विशाल साहित्य है। हजारों की संख्या में नाना काव्यग्रन्थ, बग़दाद के स्वर्णयुग में लिखा पूरा यूनानी चिकित्सा-शास्त्र, ज्योतिष, गणित, तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र (फ़िक्र: व मसला-मसाइल) नागरी लिपि में न आने से भारत में लुप्त हुए जा रहे हैं। पाण्डुलिपि के लिए प्रतियों का प्राप्त होना दूभर हो रहा है। इन बेशुमार ग्रन्थों को डूबने न दीजिए। यथासाध्य उर्दू में खूब लिखिए, छापिए और पढ़िए। लेकिन नागरी लिपि में उनको आने का रास्ता खोलिए—इसको 'उर्दू की उन्नति' का रास्ता तस्लीम कीजिए। नहीं तो ग़ज़ब हो जायगा। वह सब नायाब अ़िल्म फिर न नसीब होगा।

आज क्या करना है ?

सार यह कि हुज्जत कम, काम होना चाहिए। शास्त्र पर व्यवहार प्रबल है। समय बड़ा बलवान है, वह आवश्यकतानुसार ढलाई कर देता है। हिन्दी-क्षेत्र में ही घूम-घूमकर प्रतिमा-अनावरण, हिन्दी का महिमा-गान, अनुवादों की धूम, अमुक भाषा की हिन्दी को यह देन, अमुक भाषा में हिन्दी की यह छाप—यह सब दिशाविहीनता, क्लिबन्दी और अभियान त्यागकर, नागरी लिपि में विश्व का साहित्य लाइए। टूटी-फूटी ही सही, हिन्दी बोलना भी— ("ही" नहीं बल्कि "भी") बोलने का अभ्यास कीजिए। लिपि और भाषा की सार्थकता होगी। मानवमात्र का कल्याण होगा। हमारी एकराष्ट्रीयता और विश्वबन्धुत्व चरितार्थ होगा।

—नन्दकुमार अवस्थी (पद्मश्री)

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ।

“भाषासेतु संस्थान” — स्थापन विधि

भागीरथी प्रवहमान है, एक घाट आप भी स्थापित कीजिये ।

“भाषासेतु संस्थान” की रूपरेखा संलग्न पत्रक “विश्वभाषा सेतु संस्थान” में स्पष्ट है । अब स्थल-स्थल पर “भाषासेतु संस्थान” किस प्रकार संस्थापित हों, इसकी विधा इस प्रकार है :—

१ इस प्रकार एक ‘शिलापट्ट’ का आरोपण :—

भाषासेतु संस्थान

[स्थल का नाम व पता]

सम्पर्क-स्रोत — भुवन वाणी ट्रस्ट, मौसमबाग, सीतापुर रोड, लखनऊ-२०

२ उक्त संस्थान पर किसी साधु-सन्त, अवकाश-प्राप्त निश्चिन्त सद्गृहस्थ, अथवा समाजसेवी विद्वान् को ग्राम-स्थविर की भाँति प्रतिष्ठित करना चाहिए । वे ग्राम-स्थविर यदि स्वावलम्बी नहीं हैं, तो उस बस्ती के निवासी अथवा सम्पन्न जन उनके जीवन-निर्वाह की व्यवस्था करें ।

३ नागरी लिपि में अन्य भाषाओं का लिप्यन्तरित और राष्ट्रभाषा में अनूदित सत्साहित्य का यथासाध्य संग्रह करें ।

४ ग्राम-स्थविर दैनिक अथवा सामयिक अवसरों पर विभिन्न भाषाई सदाचार ग्रन्थों के पाठ-पारायण द्वारा वहाँ के जन-समुदाय में ज्ञानवर्धन करें; क्षेत्रीय भेद-भाव को दूर करें । नाना ग्रन्थों में वर्णित नये-नये आख्यानो को सुनकर जनता का ज्ञानवर्धन के साथ-साथ पवित्र मनोरञ्जन होगा ।

५ विभिन्न भाषाओं की मूल पदावलियों को उनके सही उच्चारण में नागरी लिपि के माध्यम से पाठ सुननेवालों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि केवल लिपि का परदा हटते ही वे भाषाएं एक-दूसरे के कितनी सन्निकट हैं ।

६ ज्ञात रहे कि ये “भाषासेतु-संस्थान” स्वैच्छिक, स्वतन्त्र और स्वावलम्बी होंगे । भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ उनका केवल प्रेरणास्रोत मात्र है ।

७ इस वाणीयज्ञ के पुण्यवान होताओं अथवा यजमानों को ‘भुवन वाणी ट्रस्ट’ द्वारा “मानद अलंकरण” से समलङ्कृत किया जायगा ।

एक-दो भाषासेतु संस्थान स्थापित करने पर ‘भाषासेतु रत्न’, क्षेत्रीय कार्य करने ‘भाषासेतु रत्नाकर’ और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करनेवाली विभूतियों को ‘भाषासेतु चक्रवर्तिन्’ उपाधि से समलङ्कृत कर भुवन वाणी ट्रस्ट अपने को गौरवान्वित समझेगा ।

नन्दकुमार अवस्थी (पद्मश्री)

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—२०

अनुवादकीय

प्रस्तुत चतुर्थ सँची में मूलग्रंथ के एक सौ अट्ठाईस चरित्रोपाख्यानों के बाद के सम्पूर्ण उपाख्यान और जफ़रनामा आदि रचनाओं का अनुवाद प्रस्तुत है। चरित्रोपाख्यानों में हम स्पष्टतः पाते हैं कि कवि की उत्कट इच्छा 'काम' और 'व्यवहार' में सामंजस्य दिखाने की है। इनके माध्यम से कामोन्माद एवं उससे प्रसूत अल्पदृष्टि, प्रवंचना और धूर्तताओं को प्रदर्शित करते हुए मानव मात्र को स्थान-स्थान पर चेतावनियाँ दी गई हैं। चरित्रोपाख्यान जीवन के विभिन्न आयामों को प्रतिबिम्बित करनेवाले दुःसाहसिक एवं दुष्कृति वाले चरित्रों और कामासक्ति के निर्बुद्धिपूर्ण क्षणों के प्रति सावधान करनेवाली कृति है, जिसे शुद्ध उपयोगितावाद को दृष्टि में रखकर लिखा गया है।

जफ़रनामा मूल रूप में फ़ारसी में लिखा गुरु गोबिंद सिंह का वह पत्र है जो उन्होंने आनन्दपुर छोड़ने के बाद सन् १७०६ में औरंगज़ेब को लिखा था। यह पत्र भाई दयासिंह और भाई धर्मसिंह के हाथों औरंगज़ेब को अहमदनगर (दक्षिण) में भिजवाया गया था, जिसे पढ़कर बादशाह अत्यन्त प्रभावित हुआ था। अत्यन्त विकट परिस्थितियों में लिखा गया यह पत्र स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि चारों पुत्रों, माता, हजारों सिक्ख सैनिकों के मारे जाने के बावजूद गुरु गोबिंदसिंह अपने उद्देश्य के प्रति तनिक भी हतोत्साहित नहीं हुए थे। जफ़रनामा के लेखक का स्वर एक विजेता का स्वर है, जिसमें किसी प्रकार के विषाद एवं कुंठा की झलक दिखाई नहीं पड़ती। अत्यन्त ओजस्वी भाषा में गुरु गोबिंद सिंह सम्राट् औरंगज़ेब की तमाम अच्छाइयों को दिखाते हुए भी डटकर लिखते हैं कि "तुम धर्म से कोसों दूर हो।" इसी पत्र में गुरु गोबिंद सिंह सम्राट् को और उसके फ़ौजदारों को उनकी खाई झूठी क्रसमों की याद दिलाते हैं और सम्राट् को स्वयं पंजाब आने का निमन्त्रण देते हैं ताकि उसे वस्तुस्थिति और स्पष्ट हो

सके । इस महान् ऐतिहासिक कृति में गुरु गोबिंद सिंह यह स्थापित करते हैं कि सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत व्यवहार में नैतिकता ही अच्छे और बुरे का मानदंड होनी चाहिए । लड़ाई की जीत-हार को भी नैतिक मूल्यों के आधार पर ही परखा जाना चाहिए । ज़फ़रनामा के बाद में दी गई हिकायतों का ज़फ़रनामा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता है और ये रचनाएं भी कृतित्व के दृष्टिकोण से विवादास्पद ही हैं ।

दशम ग्रंथ के अनुवाद की प्रस्तुत चौथी और अन्तिम सैंची की छपाई का कार्य इतनी शीघ्रता से पूर्ण करने के लिए पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी जी निश्चित रूप से साधुवाद के पात्र हैं । आपने सिक्खधर्म के दो महान् ग्रंथों श्री गुरुग्रंथ साहिब और दशम ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद पाठकों तक पहुँचाकर निस्संदेह जहाँ ट्रस्ट के कार्य को आगे बढ़ाया है, वहीं साथ ही साथ सिक्खधर्म और हिन्दी-जगत् के बीच एक संवाद की स्थिति लाने का गुरुतर कार्य भी किया है । मैं व्यक्तिगत रूप से आपका आभारी हूँ ।

सिक्ख विश्वकोष विभाग

पंजाबी यूनिवर्सिटी

पटियाला

जोध सिंह

एम. ए. (दर्शन, अंग्रेज़ी एवं हिन्दी), पीएच्. डी.,

साहित्यरत्न

प्रकाशकीय प्रस्तावना

विषय-प्रवेश ।

दशम गुरुग्रन्थ की चौथी सेंची भी भगवत्कृपा से प्रकाशित हो गई । एक अलौकिक ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ । ग्रन्थ के विषय में पिछली तीन सेंचियों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है । आर्ष ग्रन्थों पर अकिञ्चन-जैसे की अधिक लिखने की सामर्थ्य ही क्या ?

प्रस्तुत सेंची में एक प्रमुख अंश 'जफरनामा' है । यह फारसी-प्रधान भाषा में एक पत्र है, जो दशमेश श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने मुगल शाहंशाह औरंगजेब को लिखा था । इस पत्र में अन्यायी का अन्याय, अत्याचार पर अत्याचार, किन्तु उतने पर भी, सदैव धर्म की विजय और अधर्म का नाश ही होता रहा है —ऐसा वर्णन है । ऐसा प्रतीत होता है कि जफरनामा का एक-एक शब्द शर-स्वरूप होकर दशमेश के कोदण्ड से निकलकर सीधे शाह के वक्षस्थल पर लग रहा है ।

और हुआ भी वही । गुरु तो परमधाम को सिधारे, परन्तु शाह की सल्तनत भी अधिक चल न सकी । वह यमधाम के हवाले हुई ।

एक अनोखा वैचित्र्य ।

भुवन वाणी ट्रस्ट ने अनेक देशी-विदेशी भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रन्थ को नागरी लिपि में लिप्यन्तरित कर हिन्दी अनुवाद-सहित प्रकाशित किया— अब तक लगभग ५५ ग्रन्थ । किन्तु सानुवाद लिप्यन्तरण का उद्देश्य और उसका जीता-जागता प्रत्यक्ष सुबूत, जैसा दशम गुरुग्रन्थ के प्रकाशन में प्राप्त हुआ वैसा दुर्लभ है ।

वैचित्र्य यह है कि दशम गुरुग्रन्थ की लिपि तो पंजाबी (गुरमुखी) है, किन्तु उसकी भाषा ठेठ ब्रजभाषा हिन्दी है । परिणाम यह कि पंजाबी लिपि में ही अब तक प्रकाशित होने के कारण, पंजाबी पाठक, अपवादों को छोड़कर, इस ग्रन्थ को पढ़ते समय उसका आशय नहीं समझ पाता था; क्योंकि वह ब्रजभाषा से अनभिज्ञ रहा ।

उसी भाँति हिन्दी पाठक, जो ब्रजभाषा बखूबी समझ सकता है, पंजाबी लिपि न पढ़ पाने के फलस्वरूप, इस अनुपम ग्रन्थ से अनभिज्ञ रहा । हिन्दीभाषी और पंजाबीभाषी दोनों ही प्रायः इस रहस्य को समझ ही न पाये । केवल ग्रन्थ और दशमेश के प्रति श्रद्धावनत होकर ही संतोष पाते रहे । आज लिपि का आवरण हटते ही यह रहस्य खुल गया । सारा

राष्ट्र उत्सर्गमय समस्त जीवन बितानेवाले दशमेश की वाणी का साक्षात् कर सका ।

अनावश्यक संशय ।

दो पंक्तियाँ लिखना आवश्यक है । प्रायः लोग ग्रन्थ के किन्हीं अंशों के प्रक्षिप्त होने का सन्देह करते हैं । कोई-कोई दशमेश के दार्शनिक विचारों को स्थापित करने में लगते हैं । इनमें कई पक्ष हैं । मेरा उन सबसे नम्र निवेदन है कि परमपवित्र आत्मा को इस दलदल में न घसीटें । धार्मिक विवेचनों, उनकी छानबीन, मान्य-अमान्य का निर्णय — इसका उनको जीवन में अवसर हो कब मिला ? पिता शहीद हुए । चारों बच्चे शहीद हुए । सारा जीवन उनका उत्सर्ग, बलिदान और जूझने में बीता, और अन्ततः विलय को प्राप्त हो गये । उन्होंने एक मात्र भारतीय संस्कृति की रक्षा और आततायी के संहार में सारा समय लगाया । उनका ग्रन्थ 'नेति-नेति' से आरम्भ होता है, और सभी को बिना भेदभाव के घर्मोन्मुख करता है । धरातल की सभी जमातों में यह निर्विवाद वचन है कि क्षिप्र (ज्ञान) बिना गुरु के प्राप्त नहीं होता । अतः मैं अतीव श्रद्धा और समर्पित भाव से दशमेश के आगे नत होता हुआ इस ध्यान को दुहराता हूँ :—

‘गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुभ्ये नमः ॥’

कामना :—

हे भगवन् !

‘नत्वं कामये राज्यं, नस्वर्गं, नापुनर्भवम् ।

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥’

‘सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।’

आभार-प्रदर्शन ।

सर्वप्रथम हम सरदार डॉ० जोधसिंह जी के कृतज्ञ हैं, जिन्होंने निस्स्पृह भाव से ट्रस्ट के अनुरोध पर श्री दशमेश कृत पुण्यग्रन्थ के अनुवाद जैसे जटिल और गहन कार्य को राष्ट्रहित में अति श्रम एवं तत्परता से ग्रहण किया, वहन किया । सर्वाधिक श्रेय उन्हीं को है ।

सदाशय श्रीमानों और उत्तर प्रदेश शासन के प्रति भी हम आभारी हैं, जिनकी अनवरत सहायता से ‘भाषाई सेतुकरण’ के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन चलता रहता है ।

सोभाग्य की बात है कि भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) तथा शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी-सहित सभी भाषाओं की समृद्धि और व्यापकता के लिए एक जोड़लिपि 'नागरी' के प्रसार पर उपयुक्त बल दिया। उनकी उल्लेखनीय सहायता से हमको विशेष बल मिला है और उपर्युक्त सबके फलस्वरूप गुरुमुखी— श्री दसम गुरुग्रन्थ साहिब की चौथी सैची का प्रकाशन प्रस्तुत वर्ष में सम्पूर्ण हो सका। ग्रन्थ चार सैचियों में सम्पूर्ण हो गया।

विदित हो—

विदित हो कि पुत्र-जन्म पर उसका नाम लखपति साह रख देने से वह लखपती नहीं बन सकता, वह दस-बीस लाख का स्वामित्व पाकर ही लक्षाधीश चरितार्थ होगा। राष्ट्रभाषा की स्थापना तो हो गई परन्तु अभी वह इस रूप में चरितार्थ तो नहीं हुई। भारत में अधिक फैली होने की एक मात्र कारण से, प्रचलित हिन्दी (खड़ी बोली) को, राष्ट्रभाषा और परम वैज्ञानिक भारतीय लिपियों में से सर्वाधिक प्रसरित लिपि 'नागरी' को उनकी प्रतिनिधिस्वरूपा होकर राष्ट्र का एकात्मभाव सदैव की भाँति दृढ़ बनाये रखने के लिए, सेवा सौंपी गई। अतः प्रथम कर्तव्य है राष्ट्रलिपि और राष्ट्रभाषा को न केवल भारतीय वरन् विश्व के वाङ्मय के सानुवाद लिप्यन्तरण द्वारा भर दिया जाय, लखपति साह को वस्तुतः लक्षाधीश बना दिया जाय।

विश्ववाङ्मय से निःसृत अगणित भाषाई धारा।

पहन नागरी पट सबने अब भूतल-भ्रमण विचारा॥

असर भारती सलिला की 'गुरुमुखी' सुपावन धारा।

पहन नागरी पट, 'सुदेवि' ने भूतल-भ्रमण विचारा॥

दिनांक १५-१०-१९८५

—नन्दकुमार अवस्थी (पद्मश्री)

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-२०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
विश्वनागरी लिपि	३
भाषासेतु संस्थान एवं अलंकरण	१२
अनुवादकीय	१३
प्रकाशकीय प्रस्तावना	१५
एक सो नवासीवाँ भूपकला-चरित्र-कथन	२५
" " नब्बेवाँ चन्द्रप्रभा " "	२७
" " इक्यानबेवाँ रायप्रवीण " "	२८
" " वानबेवाँ गानकला " "	३०
" " तिरानबेवाँ तिरदसकला-चरित्र-कथन	३३
" " चोरानबेवाँ परदेसन " "	३४
" " पंचानबेवाँ मानमती " "	३५
" " छियानबेवाँ अप्रतिमकला " "	४०
" " सत्तानबेवाँ रणरंगमती " "	४३
" " अट्ठानबेवाँ शंखकुँवरि " "	४४
" " निन्नानबेवाँ पद्मिनी " "	४४
दो सोवाँ विश्वनाथप्रभा-चरित्र-कथन	४९
दो सो पहला जुलैखाँ " "	५४
" " दूसरा चपलकला " "	५८
" " तीसरा रानी " "	६१
" " चौथा कैलाशमती " "	६५
" " पाँचवाँ विजयकुँवरि " "	६९
" " छठवाँ इश्कमती " "	७२
" " सातवाँ मुश्कमती " "	७६
" " आठवाँ अटपलदेवी " "	७९
" " नौवाँ पिंगलदेवी " "	८१
" " दसवाँ चंचलकुँवरि " "	९४
" " ग्यारहवाँ तड़िता " "	९७
" " बारहवाँ हुस्तजहाँ " "	१०१
" " तेरहवाँ चक्षुमती " "	१०४
" " चौदहवाँ गुलजारमती " "	१०७

विषय	पृष्ठ
दो सो पन्द्रहवाँ तरुणकला चरित-कथन	११०
" " सोलहवाँ कटाक्षकुंवरी " "	११२
" " सत्रहवाँ रम्भा " "	१२०
" " अठारहवाँ चन्द्रकेतु की रानी का चरित्र-कथन	१२१
" " उन्नीसवाँ चपलांगमती-चरित्र-कथन	१२३
" " बीसवाँ रोशनआरा " "	१२४
" " इक्कीसवाँ राजमती " "	१२७
" " बाईसवाँ भोगमती " "	१२८
" " तेईसवाँ छत्रमती " "	१३१
" " चौबीसवाँ त्रिपुरारिकला " "	१३३
" " पचीसवाँ चक्षुचारुमती " "	१३६
" " छब्बीसवाँ रस्तमदेवी " "	१३८
" " सत्ताईसवाँ मणिमालमती " "	१४०
" " अट्ठाईसवाँ वीर्यमती " "	१४२
" " उन्तीसवाँ बुद्धिमती " "	१४५
" " तीसवाँ मदनमती " "	१४७
" " इकतीसवाँ मैन कला " "	१४८
" " बत्तीसवाँ बृहदाक्षमती " "	१५१
" " तैंतीसवाँ विलक्षणमती " "	१५२
" " चौंतीसवाँ नृपतिकला " "	१५४
" " पैंतीसवाँ अछलमती " "	१५७
" " छत्तीसवाँ नृपराजकला " "	१६०
" " सैंतीसवाँ भोगमती " "	१६२
" " अड़तीसवाँ छटछेलकुंवरी " "	१६४
" " उनतालीसवाँ वीरमती " "	१६६
" " चालीसवाँ रुचिराजकुंवरी " "	१६७
" " इकतालीसवाँ विरहमंजरी " "	१६९
" " बयालीसवाँ रूपमंजरी " "	१७४
" " तैंतालीसवाँ चित्रमंजरी " "	१७७
" " चौवालीसवाँ विक्रमकुंवरी " "	१८०
" " पैंतालीसवाँ मदनमंजरी " "	१८४
" " छियालीसवाँ भानुमंजरी चरित्र-कथन	१९२
" " सैंतालीसवाँ यशतिलकमंजरी-चरित्र-कथन	१९६
" " अड़तालीसवाँ शाह-पुत्री " "	१९९

विषय	पृष्ठ
दो सौ उनचासवाँ विचक्षणमंजरी-चरित-कथन	२०२
" " पचासवाँ भुजंगमंजरी " "	२०६
" " इक्यावनवाँ जलजाक्ष " "	२०७
" " बावनवाँ सुखमती " "	२१०
" " तिरपनवाँ जीओ " "	२१३
" " चौवनवाँ विशनमती " "	२१७
" " पचपनवाँ लाहौरमती " "	२१९
" " छप्पनवाँ चित्रमंजरी " "	२२१
" " सत्तावनवाँ अलिगुंजमती " "	२२६
" " अठ्ठावनवाँ हंसमती " "	२३१
" " उनसठवाँ मृगराजकला " "	२३६
" " साठवाँ कजराक्षमती " "	२४०
" " इकसठवाँ माशूकमती " "	२४१
" " बासठवाँ माशूकमती " "	२४४
" " तिरसठवाँ नागरमती " "	२४६
" " चौंसठवाँ विरहकुंवरि " "	२४८
" " पैंसठवाँ प्रकृतिमती " "	२६१
" " छाछठवाँ रणखंभकला " "	२६३
" " सड़सठवाँ मुस्लिम स्त्री का " "	२८४
" " अड़सठवाँ चम्पाकला-चरित्र-कथन " "	२८८
" " उनहत्तरवाँ झखकेतुमती " "	२८९
" " सत्तरवाँ पूर्वदेवी " "	२९२
" " इकहत्तरवाँ विलासदेवी " "	२९३
" " वहत्तरवाँ सुगंधमती " "	२९६
" " तिहत्तरवाँ सुकृतमंजरी " "	२९७
" " चौहत्तरवाँ दासी " "	२९९
" " पचहत्तरवाँ हबशमती " "	३०१
" " छिअत्तरवाँ रुद्रमती " "	३०३
" " सतहत्तरवाँ मुगल-स्त्री का " "	३०६
" " अठहत्तरवाँ रौशनराय-चरित्र-कथन " "	३०८
" " उन्नासीवाँ प्रेममंजरी " "	३०९
" " अस्सीवाँ जुगराजमंजरी " "	३११
" " इक्यासीवाँ विजयमती " "	३१३
" " त्रयासीवाँ अमरकला " "	३१५

विषय	पृष्ठ
दो सौ तिरासीवाँ किन्नरमती-चरित्र-कथन	३१६
„ „ चौरासीवाँ दक्षिणदेवी „ „	३१७
„ „ पचासीवाँ प्रजापालनी „ „	३१९
„ „ छियासीवाँ विषया „ „	३२१
„ „ सत्तासीवाँ मरियम बेगम „ „	३२४
„ „ अट्ठासीवाँ छैलदेवी „ „	३२५
„ „ नवासीवाँ दक्षिणदेवी „ „	३२९
„ „ नब्बेवाँ पूरवदेवी „ „	३३२
„ „ इक्यानबेवाँ पश्चिमदेवी „ „	३३७
„ „ बानबेवाँ उत्तममती „ „	३३९
„ „ तिरानबेवाँ राजदेवी „ „	३४२
„ „ चौरानबेवाँ आनन्दावती „ „	३४५
„ „ पंचानबेवाँ चंचलदेवी „ „	३४९
„ „ छानबेवाँ मंगलादेवी „ „	३५२
„ „ सत्तानबेवाँ सकुचमती „ „	३५४
„ „ अट्ठानबेवाँ झिलमिलदेवी „ „	३६८
„ „ निन्यानबेवाँ अछलदेवी „ „	३७१
तीन सौवाँ रानी-चरित्र-कथन	३७४
तीन सौ एकवाँ इष्टमती-चरित्र-कथन	३७५
„ „ दूसरा छत्रदेवी „ „	३७७
„ „ तीसरा अभरनदेवी „ „	३७९
„ „ चौथा विद्यामती „ „	३८२
„ „ पाँचवाँ त्रिपुरामती „ „	३८४
„ „ छठवाँ दुंदुभिदेवी-चरित्र-कथन	३८५
„ „ सातवाँ सुघनावती „ „	३८७
„ „ आठवाँ फुटबेसरी „ „	३८९
„ „ नौवाँ अपूर्वदेवी „ „	३९१
„ „ दसवाँ रसतिलक देवी „ „	३९३
„ „ ग्यारहवाँ धनी की पुत्री का चरित्र-कथन	३९५
„ „ बारहवाँ जाट की स्त्री का चरित्र-कथन	३९७
„ „ तेरहवाँ नाइन का „ „	३९९
„ „ चौदहवाँ सुकुमारदेवी-चरित्र-कथन	४०१
„ „ पन्द्रहवाँ पश्चिमदेवी „ „	४०३
„ „ सोलहवाँ बंगदेवी „ „	४०५

विषय	पृष्ठ
तीन सो सत्रहवां पुष्पप्रभा-चरित-कथन	४०७
" " अठारहवां मरगजदेवी " "	४०८
" " उन्नीसवां मुनिराजमती " "	४०९
" " बीसवां रुक्मिणी " "	४१०
" " इक्कीसवां देवयानी " "	४१४
" " बाईसवां मकराक्षमती " "	४१७
" " तेईसवां धनिक-पुत्री का, " "	४२०
" " चौबीसवां अप्सरमती-चरित-कथन	४२२
" " पचोसवां सुलतानकुंवरि " "	४२४
" " छब्बीसवां सुकचमती " "	४२९
" " सत्ताईसवां अचलदेवी " "	४३१
" " अट्ठाईसवां रानी " "	४३३
" " उन्तीसवां पनिहारिन " "	४३४
" " तीसवां इशकदेवी " "	४३५
" " इकतीसवां बलदेजदेवी " "	४३७
" " बत्तीसवां प्रीतिकला " "	४३९
" " तैंतीसवां धनिक-पुत्री का, " "	४४३
" " चौंतीसवां पिंगलदेवी-चरित-कथन	४४५
" " पैंतीसवां दिमागरोशन " "	४४६
" " छत्तीसवां रंगझड़देवी " "	४५३
" " सैंतीसवां परजमती " "	४५५
" " अड़तीसवां विभासमती " "	४५७
" " उनतालीसवां रत्नमती " "	४५९
" " चालीसवां मथुरा " "	४६१
" " इकतालीसवां अप्सरादेवी " "	४६२
" " बयालीसवां वारांगना देवी, " "	४६४
" " तैंतालीसवां सोरठदेवी " "	४६६
" " चौवालीसवां रसरंगमती " "	४६८
" " पैंतालीसवां अंगनादेवी " "	४७०
" " छियालीसवां गजगाहमती " "	४७२
" " सैंतालीसवां लक्ष्मिणी " "	४७६
" " अड़तालीसवां गोरीदेवी " "	४७७
" " उनचासवां उग्रदेवी " "	४७८
" " पचासवां नवयौवनदेवी " "	४८०

विषय	पृष्ठ
तीन सौ इक्यावनवाँ सुवस्त्रमती-चरित्र-कथन	४८२
" " बावनवाँ जेवतुलनिसा " "	४८३
" " तिरपनवाँ रणझूमकदेवी " "	४८५
" " चौवनवाँ सिधुलादेवी " "	४८७
" " पचपनवाँ विलासदेवी " "	४८९
" " छप्पनवाँ दलथंभनदेवी " "	४९२
" " सत्तावनवाँ खंजनदेवी " "	४९३
" " अट्ठावनवाँ सुन्दरदेवी " "	४९५
" " उनसठवाँ मनमोहनदेवी " "	४९७
" " साठवाँ झकझूमकदेवी " "	४९८
" " इकसठवाँ गजगामिनी " "	५००
" " बासठवाँ गुल्लो-चरित्र-कथन	५०२
" " तिरसठवाँ पंजाबदेवी-चरित्र-कथन	५०३
" " चौंसठवाँ महतावप्रभा " "	५०५
" " पैंसठवाँ चित्तचौपमती " "	५०६
" " छाछठवाँ नाभमती " "	५०९
" " सड़सठवाँ मूर्खमति " "	५१३
" " अड़सठवाँ चक्षुचारमती " "	५१५
" " उनहत्तरवाँ चंचलदेवी चरित्र-कथन	५१६
" " सत्तरवाँ अबदालमती " "	५१९
" " इकहत्तरवाँ कंचनदेवी " "	५२२
" " बहत्तरवाँ सुछविमती " "	५२४
" " तिहत्तरवाँ आफ़ताबदेवी " "	५२५
" " चौहत्तरवाँ महताबमती " "	५२९
" " पचहत्तरवाँ जगजोवनदेवी " "	५३२
" " छिअत्तरवाँ प्रवीणदेवी " "	५३४
" " सतहत्तरवाँ सुहासदेवी " "	५३५
" " अठहत्तरवाँ मृदहासमती " "	५३७
तीन सौ उन्नासीवाँ सुप्रभादेवी-चरित्र-कथन	५३८
तीन सौ अस्सीवाँ चरित्रमती-चरित्र-कथन	५४१
तीन सौ इक्यासीवाँ खादिमाबानो-चरित्र-कथन	५४३
तीन सौ बयासीवाँ मणिनीलमती-चरित्र-कथन	५४५
तीन सौ तिरासीवाँ कोकिलमती-चरित्र-कथन	५४६
तीन सौ चौरासीवाँ घनी की स्त्री का चरित्र-कथन	५४८

विषय	पृष्ठ
तीन सो पचासीवाँ राजकुमारी-चरित्र-कथन	५५०
तीन सो छियासीवाँ दिनदीपकदेवी-चरित्र-कथन	५५२
तीन सो सत्तासीवाँ जगमोहनदेवी-चरित्र-कथन	५५४
तीन सो अट्ठासीवाँ मदमोकलदेवी-चरित्र-कथन	५५६
तीन सो नवासीवाँ मकरध्वजदेवी-चरित्र-कथन	५५८
तीन सो नब्बेवाँ गोहरराय-चरित्र-कथन	५५९
तीन सो इक्यानवेवाँ खादिमाबानो-चरित्र-कथन	५६१
तीन सो बानवेवाँ संदलदेवी-चरित्र-कथन	५६३
तीन सो तिरानवेवाँ चंपादेवी-चरित्र-कथन	५६५
तीन सो चौरानवेवाँ अलिकेशमती-चरित्र-कथन	५६८
तीन सो पंचानवेवाँ जुलफदेवी-चरित्र-कथन	५७१
तीन सो छानवेवाँ चपलादेवी-चरित्र-कथन	५७३
तीन सो सत्तानवेवाँ सगरदेवी-चरित्र-कथन	५७५
तीन सो अट्ठानवेवाँ अलिकृतदेवी-चरित्र-कथन	५७७
तीन सो निन्नानवेवाँ भूषणदेवी-चरित्र-कथन	५७९
चार सोवाँ महाकुँवरि-चरित्र-कथन	५८१
चार सो एकवाँ बसंत-चरित्र-कथन	५८२
चार सो दूसरा सदाकुँवरि-चरित्र-कथन	५८४
चार सो तीसरा शिवामती-चरित्र-कथन	५८९
चार सो चौथा दुलहदेवीकुमारी-चरित्र-कथन	५९१
जफरनामः (विजयपत्र)	६५०
स्फोटक कवित्त-लेखन	७३४
संखी जंगल में खालसा का दर्शन के लिए	
आगमन और उच्चारण	७४९
सिक्खी नियम	७४९

१ ओं स्त्री वाहिगुरु जी की कृतह ॥

अथ

श्री दसम गुरुग्रंथ साहिब

(नागरी लिपि में)

हिन्दी व्याख्या सहित

अथ एक सौ उनानवों चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ भूपकला नामा रहै सुता शाह की एक ।
अधिक दरब ताके रहै दासी रहै अनेक ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ मिसरी को हीरा तिन लियो । डबिया बिखै डारि
करि दियो । शाहजहाँ जह सभा बनाई । बहल बैठि तिह
ओर सिधाई ॥ २ ॥ अरध बजार बिखै जब गई । सुंदर
नरि क बिलोकत भई । अधिक दरबु दै निकटि बुलायो ।
निज गाडी के साथ लगायो ॥ ३ ॥ चलित चलित रजनी परि
गई । सूरज छप्यो चंद्र दुति भई । बहल बिखै गहि बांह

एक सौ नवासीवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ शाह की भूपकला नामक एक पुत्री थी, जिसके पास
अत्यधिक द्रव्य और अनेकों दासियाँ रहती थीं ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने
मिश्री की डली को हीरे के तौर पर लिया और डिब्बी में बंद कर दिया ।
जहाँ शाहजहाँ सभा लगाकर बैठा था, उस ओर वह बैलगाड़ी लेकर चल
पड़ी ॥ २ ॥ जब वह बाजार के बीचोबीच गई तो एक सुन्दर पुरुष को
उसने देखा । उसे अत्यधिक धन देकर उसने पास बुलाया और अपनी गाड़ी
के साथ लगा लिया ॥ ३ ॥ चलते-चलते रात हो गई और सूर्यास्त होकर
चन्द्रमा की चाँदनी फैल गई । उसे उसने बांह पकड़कर गाड़ी में चढ़ा लिया

चढ़ायो । कामकेल तिह संग उपजायो ॥ ४ ॥ ज्यों ज्यों
 बहल हिलोरे खावें । उछरे बिना काज हवै जावें । लखें लोग
 गाडी कर मारें । भेद अभेद न कोऊ बिचारै ॥ ५ ॥ भाखि
 बैन ते बहल धवाई । काम रीति करि प्रीति उपजाई । भरि
 करि भोग बाम सौ कीनो । बीच बजार न किनहूँ चीनो ॥ ६ ॥
 ॥ दोहरा ॥ केल करत इह चंचला तहाँ पहुँची आइ ।
 शाहजहाँ बैठो जहाँ नीकी सभा बनाइ ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ मिसरी
 के हीरा कर लियो । लै हजरति के हाजर कियो । शाहजहाँ
 तिह कछू न चीनो । तीस हजार रुपैया दीनो ॥ ८ ॥ इल
 छल सौ शाहहि छलि गई । उठी सभा आवत सोऊ भई ।
 पंद्रह सहस्र आपु त्रिय लीनो । पंद्रह सहस्र मीत को दीनो ॥ ९ ॥
 ॥ दोहरा ॥ शाहजहाँ छलि मीत सौ काम कलोल कमाइ ।
 धाम आनि पहुँचत भई सक्यो न कोऊ पाइ ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे इक सौ उतावों चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ १८६ ॥ ३५८७ ॥ अफजू ॥

और कामक्रीड़ा को ॥ ४ ॥ जैसे-जैसे गाड़ी हिचकोले खाती थी तो उनका
 काम बिना उछले ही हो जाता था । जो भी देखता था उसे गाड़ीवान
 समझता था और रहस्य का विचार कोई भी नहीं करता था ॥ ५ ॥ बोल-
 बोलकर वह गाड़ी चला रही थी और कामरीति के अनुरूप उसने प्रेमक्रीड़ा
 की । उसने भी जी भरकर स्त्री से विलास किया और भरे बाज़ार में
 उन्हें कोई पहचान न सका ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ केलिक्रीड़ा करते हुए यह
 स्त्री वहाँ आ पहुँची जहाँ शाहजहाँ सुन्दर सभा बनाकर बैठा था ॥ ७ ॥
 ॥ चौपाई ॥ अब उसने मिश्री की डली को हीरे के रूप में लिया और
 बादशाह के सम्मुख हाज़िर कर दिया । शाहजहाँ ने भी कुछ नहीं पहचाना
 और उसे तीस हज़ार रुपया दे दिया ॥ ८ ॥ इस प्रपंच से उसने बादशाह
 को भी छल लिया और सभा से उठकर चली आई । पंद्रह सहस्र उस स्त्री
 ने लिया और पंद्रह सहस्र अपने मित्र को दिया ॥ ९ ॥ ॥ दोहा ॥ शाहजहाँ
 को छलकर मित्र के साथ कामक्रीड़ा कर वह अपने घर पर आ पहुँची और
 कोई भी उसके रहस्य को न समझ सका ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में एक सौ मवासीवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ १८६ ॥ ३५८७ ॥ अफजू ॥

अथ इक सौ नबवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ इक दिन बाग चंचला गई । हसि हसि बचन बखानत भई । स्त्री निसिराज प्रभा त्रिय तहाँ । ऐसी भाँति उचार्यो उहाँ ॥ १ ॥ जौ राजा ते बारि भिराऊँ । अपनी झाँटै सभै मुँडाऊँ । तब त्रिय होड सकल तुम हारहु । निजु नैनन इह चरित निहारहु ॥ २ ॥ यौ कहिकै सुभ भेस बनायो । देव अदेवन को बिरमायो । चरित्र सिंघ राजा जब आयो । सुनि इह बचन चंचला पायो ॥ ३ ॥ बैठ झरोखा दर्ई दिखाई । राजा रहे रूप उरझाई । एक बार इह कौ जौ पाऊँ । जनम (सू०ग्रं० १०८१) सहस्र लगे बलि जाऊँ ॥ ४ ॥ पठै सहचरी लई बुलाई । प्रीति सहित रस रीतुपजाई । अबला तब मुरछित हवै गई । पानि पानि उचरत मुख भई ॥ ५ ॥ उठ करि आपु राव तब गयो । ताकह पानि पयावत भयो । पानि पिए बहुरो सुधि भई । राजै फिरि चुंबन तिह लई ॥ ६ ॥ जब सुधि मै अबला कछु आई ।

एक सौ नब्बेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ एक दिन बाग में स्त्रियाँ गई और हँस-हँसकर आपस में वार्तालाप करने लगीं । चन्द्रप्रभा नामक एक स्त्री ने वहाँ कहा ॥ १ ॥ यदि राजा से पानी भरवा दूँ और उसी से अधोभाग की रोमावलि मुँडवा लूँ तब तुम सब मुझसे शर्त हार जाओगी । हे स्त्रियो ! तुम अपनी आँखों से इस चरित्र को देखो ॥ २ ॥ यह कहकर उसने सुन्दर वेश बनाया और देव-अदेव सबको भ्रम में डाल दिया । चरित्रसिंह राजा जब आया तो इन स्त्रियों को पता लग गया ॥ ३ ॥ वह झरोखे में बैठ गई और राजा भी रूप में उलझ गया । वह सोचने लगा कि यदि एक बार इसको पा जाऊँ तो हज़ारों जन्म न्योछावर कर दूँ ॥ ४ ॥ उसने दासी भेजकर बुला लिया और प्रेमपूर्वक रस-रीति का निर्वाह किया । तब वह स्त्री मूर्च्छित हो गई और पानी-पानी पुकारने लगी ॥ ५ ॥ राजा तब स्वयं उठकर गया और उसे पानी पिलाने लगा । पानी पीकर जब फिर होश में आई तो राजा ने फिर उसका चुंबन लिया ॥ ६ ॥ जब वह स्त्री जरा होश में आई तो फिर काम-क्रीड़ा की धूम मचाई । दोनों ही जवान थे कोई भी नहीं हार रहा था और

बहुरि काम की केल मचाई । दोऊ तरन न कोऊ हारै ।
 यौ राजा तिह साथ बिहारै ॥ ७ ॥ बहुरि बाल इह भाँति
 उचारी । सुनो राव तुम बात हमारी । त्रिय की झाँटि न
 मूँडी जाई । बेद-पुरानन मै सुनि पाई ॥ ८ ॥ हसि करि
 राव बचन यौ ठान्यो । मैं अपुने जिय साच न जान्यो । तैं
 त्रिय हम सो झूठ उचारी । हम मूँडेंगे झाँटि तिहारी ॥ ९ ॥
 तेज असतुरा एक मँगायो । निज कर गहिकै राव चलायो । ताँ
 की मूँडि झाँटि सभ डारी । दैकै हसी चंचला तारी ॥ १० ॥
 ॥ दोहरा ॥ पानि भरायो राव ते निजु कर झाँटि मुँडाइ ।
 होड जीत लेती भई तिन अबलान दिखाइ ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे इक सौ नववों चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ १६० ॥ ३५६८ ॥ अफजू ॥

अथ इक सौ इकयानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ एक लहौर छत्रिजा रहै । राइ प्रबीन
 ताँहि जग कहै । अप्रमान तिह प्रभा बिराजै । देव जननि को

इस प्रकार वह राजा इसके साथ रमण कर रहा था ॥ ७ ॥ पुनः वह स्त्री
 बोली कि हे राजन् ! तुम मेरी बात सुनो । मैंने वेद-पुराणों में सुना है
 कि स्त्री की अधोभाग-रोमावलि मूँडी नहीं जाती है ॥ ८ ॥ हँसकर राजा
 ने यह कहा कि मैं इसे सत्य नहीं मानता । हे स्त्री ! तूने मुझे झूठ कहा
 है । लाओ यह कार्य मैं करूँगा ॥ ९ ॥ राजा ने तेज उस्तरा मँगाया
 और अपने हाथ से पकड़कर चलाने लगा । उसकी समस्त रोमावलि
 मूँड दी और इसी के साथ वह स्त्री ताली बजाकर हँस पड़ी ॥ १० ॥
 ॥ दोहरा ॥ राजा से पानी भरवाया और बाल मुँडवाए । इस प्रकार उन
 स्त्रियों से बाज़ी जीत ली ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में एक सौ नव्वेवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ १६० ॥ ३५६८ ॥ अफजू ॥

एक सौ इकयानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ लाहौर में एक क्षत्रिय स्त्री रहती थी, जिसे संसार
 रायप्रवीण कहता था । उस पर अप्रमाण प्रभा थी जिसे देखकर अप्सराएँ
 भी लज्जित होती थीं ॥ १ ॥ एक मुगल उस नहाती को देखकर रीझ उठा

लखि मनु लाजै ॥ १ ॥ एक मुगल तिह न्हात कै रीझ्यो अंग
निहारि । गिर्यो मूरछना हवै धरनि बिरहा तन ग्यो
मारि ॥ २ ॥ ॥ चौपाई ॥ धाम आन इक सखी बुलाई ।
बात सभै तिह तीर जताई । जौ मोकौ तूँ ताहि मिलावै ।
अपुने मुख माँगै सो पावै ॥ ३ ॥ तब सो सखी धाम तिह
गई । ऐसो बचन बखानत भई । माता तोरि बुलावत तो
कौ । ताते पठै दयो ह्याँ सोको ॥ ४ ॥ यौ जब बचन ताहि
तिह कहियो । मिलब सुता माता सौ चहियो । डोरी बिखें
ताँहि बैठार्यो । दर परदन द्विड़ ऐँचि सवार्यो ॥ ५ ॥
ताकौ द्रिशटि कछू नहि आवै । कुटनी चहै जहाँ लै जावै ।
मात नाम लै ताहि सिधायै । लैकै धाम मुगल के आई ॥ ६ ॥
परदा तहीं उघारा जाई । तासबेग जह सेज सुहाई ।
बहिया (म०प्र० १०८२) आनि मुगल तब गही । चित मै चकित
चंचला रही ॥ ७ ॥ मेरो धरम लोप अब भयो । तुरक अंग
सौ अंग भिटयो । ताँ ते कछू चरित्र बनाऊँ । जाते छूटि
मुगल ते जाऊँ ॥ ८ ॥ अब आइसु तुमरौ जौ पाऊँ । सभ
सुंदर शिंगार बनाऊँ । बहुरि आइ तुम साथ बिहारों । तुमरे
चित को शोक निवारों ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ हार शिंगार

और विरह से मारा हुआ धरती पर गिर पड़ा ॥ २ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने
अपने घर एक सखी को बुलाया और उसे सारी बात बताई । यदि तुम
मुझे उससे मिला दो तो मुँह माँगा इनाम पाओगी ॥ ३ ॥ तब वह सखी
उसके घर गई और उससे कहने लगी कि तुम्हारी माँ तुम्हें बुला रही है,
इसीलिए उसने मुझे भेजा है ॥ ४ ॥ यह बात जब उसने उससे कही तो
पुत्री ने भी माँ से मिलना चाहा । उसे डोली में बैठाया और परदों से
दरवाजे बन्द कर दिए ॥ ५ ॥ उसे कुछ नज़र नहीं आ रहा था, ताकि कुटनी
जहाँ चाहे ले जा सके । माँ का नाम लेकर चली और उसे मुगल के घर ले
आई ॥ ६ ॥ उसने परदा वहीं खोला जहाँ तासबेग शय्या पर शोभायमान
था । तब मुगल ने आकर बाँह पकड़ ली और वह स्त्री मन में चकित रह
गई ॥ ७ ॥ मेरा तो अब धर्म लुप्त हो गया और तुर्क से मेरा अंग छू गया ।
इसलिए अब कुछ प्रपंच करना चाहिए, जिससे मैं इस मुगल से छूट जाऊँ ॥ ८ ॥
उसने कहा कि यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो सुन्दर शृंगार करूँ । फिर तुम्हारे
साथ श्रमण करूँ और तुम्हारे चित्त का शोक दूर करूँ ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ हार-

बनाइकं केल करौ तव संग । बहुरि तिहारे ग्रहि बसौ हवै तुम
त्रिय अरधंग ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ यौ कहि बचन तहाँ ते
गई । ग्रहि कौ आगि लगावत भई । कुटनी सहित मुगल कौ
जार्यो । बाल आपनो धरम उबार्यो ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे इक सौ इकयानवों चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ १६१ ॥ ३६०६ ॥ अफजू ॥

अथ इक सौ बानवों चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ तेज सिंघ राजा बडो अप्रमान जिह
रूप । गानकला ताकी सखी रति के रहै सरूप ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ राजा को तासौ हित भारो । दासी ते रानी करि
डारो । जैसे करै रसाइन कोई । ताँबे सौ सोना सो
होई ॥ २ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ रैन दिन तिह धाम रावजू
आवई । कामकेल निस दिन तिस संग कमावई । दास एक
पर सो दासी अटकति भई । हो पति की प्रीति बिसारि तबै
चित तें दई ॥ ३ ॥ तिल चुगना पर गानकला अटकत भई ।
त्रिप की प्रीति बिसारि तुरत चित ते दई । जो दासी सौ प्रेम

शृंगार करके तुम्हारे साथ केलिक्रीड़ा करूँगी और फिर तुम्हारे घर ही
तुम्हारी अर्धांगिनी बनकर बस जाऊँगी ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ यह कहकर
वह वहाँ से चली गई और उसने घर को आग लगा दी । उस कुटनी-सहित
मुगल को जलाकर उस बालिका ने अपना धर्म बचाया ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में एक सौ इकयानवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ १६१ ॥ ३६०६ ॥ अफजू ।

एक सौ बानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ तेजसिंह अपरिमित रूपवान राजा था । जिसकी दासी
गानकला रति के समान सुन्दर थी ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा को उससे
अनन्य प्रेम था और उसने उसे दासी से रानी वैसे ही बना दिया और कोई
रसायन (अचानक) ताँबे को सोना बना देता है ॥ २ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ रात-
दिन राजा उसके घर आता और उसके साथ कामक्रीड़ा करता । वह दासी
एक सेवक से उलझ गई और उसने पति की प्रीति चित्त से तुरन्त भुला
दी ॥ ३ ॥ तिलचुगना नामक दास पर गानकला रीझ गई और उसने उसके

पुरखु कोऊ ठानई । हो ध्रिग ध्रिग ताकौ सभ ही लोग
बखानई ॥ ४ ॥ संग दासी कै दास रह्यो मुसकाइकै । संग
हमारे चलो प्रीति उपजाइकै । कामकेल करि जीहैं कछू न
लीजियै । हो गानकला जू बचन हमारो कीजियै ॥ ५ ॥
उठ दासी संग चली प्रीति उपजाइकै । त्रिप की ओर निहारि
न रही लजाइकै । जो दासी सौ प्रेम पुरख उपजावई । हो
अंत स्वान की त्रितु मरै पछुतावई ॥ ६ ॥ चारि पहर मै
चारि कोस मारग चलयो । जौ कंद्रप को द्रप हुतो सभही
दलयो । चहूँ ओर भ्रमि भ्रमि ते ही पुर आवही । हो
गानकला तिल चुगन न पैडो पावही ॥ ७ ॥ अधिक स्रमित
ते भए हारि गिरिकै परै । जनुक घाव बिनु कीए आप ही ते
मरै । अधिक छुधा जब लगी दुहुनि (सू० प्र० १०८३) कौ आइकै ।
हो तब दासी सौ दास कह्यो दुख पाइकै ॥ ८ ॥ गानकला
तुम परो सु बुरि अपुनी करो । खरि को टुकरा हाथ हमारे
पै धरो । दास जबे खैबै कौ कछू न पाइयो । हो अधिक कोप
तब चित के बिखै बढाइयो ॥ ९ ॥ मार कूटि दासी को दयो
बहाइकै । आप लग्यो फल चुगन महांबल जाइकै । बेर

लिए राजा की प्रीति तुरन्त भुला दी । जो कोई भी दासी से प्रेम ठान लेता
है उसे सब लोग धिक्कारते हैं ॥ ४ ॥ उस दासी को उस दास ने मुस्कुरा
कर कहा कि मेरे साथ प्रेमपूर्वक चल निकलो । हमें कुछ नहीं चाहिए केवल
कामक्रीड़ा में ही मस्त रहेंगे । अतः हे गानकला ! तुम मेरी बात मान
लो ॥ ५ ॥ वह दासी प्रेमवश साथ चल पड़ी और लज्जावश उसने राजा की
तरफ़ देखा भी नहीं । जो व्यक्ति नौकरानी से प्रेम-क्रीड़ा करता है, वह अन्त
में कुत्ते की मौत मरता है ॥ ६ ॥ चार प्रहर में वे चार कोस मार्ग तय कर गए
और उनका काम-गर्व सभी चूर हो गया । चारों ओर भ्रमण करने पर वे
नगर में आए और गानकला तथा तिलचुगना को रास्ता नहीं मिल रहा
था ॥ ७ ॥ अत्यधिक थककर वे हारकर गिर पड़े । मानों वे बिना घाव
के स्वयं ही मर गए हों । जब दोनों को अत्यधिक भूख लगी तो दास ने दासी
से दुखपूर्वक कहा ॥ ८ ॥ गानकला तुम अपनी झोली इधर करो और खाने
का टुकड़ा मुझे दो । परन्तु दास को जब खाने को कुछ न मिला तो उसने
मन में अत्यधिक गुस्सा किया ॥ ९ ॥ उसने मार-पीटकर दासी को नदी में
बहा दिया और आप घोर वन में फल आदि के लिए जा घुसा । उसे बेर

भखत ताकौ हरि जच्छ निहारियो । हो तिल चुगना को पकर
 भच्छ करि डारियो ॥ १० ॥ बहत बहत दासी सरिता महि
 तहि गई । जहाँ आइ स्वारी त्रिप की निकसत भई । निरखि
 प्रिया राजा तिह लियो निकारिकै । हो भेद अभेद न मूरख
 सक्यो बिचारिकै ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ दासी काढ नदी ते
 लियो । बँठ तीर ऐसे बच कियो । किह निमित्त कै ह्याँ तै
 आई । सो कहियै मुहि प्रगट जताई ॥ १२ ॥ जब तुम
 अखेटकहि सिधाए । बहु चिर भयो ग्रहि कौ नहि आए । तुम
 बिनु मै अतिहि अकुलाई । ताते बन गहिरे मो आई ॥ १३ ॥
 जब मैं अधिक त्रिखातुर भई । पानि पिवन सरिता ढिग गई ।
 फिसल्यो पाव नदी मो परी । अधिक क्रिपा कर तुमहि
 निकरी ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ नीच संग कीजै नही सुनहो
 मोत कुमार । भेड पूछि भादौ नदी को गहि उतर्यो
 पार ॥ १५ ॥ पानी उदर ताँकौ भर्यो दास नदी ग्यो डारि ।
 बिनु प्रानन अबला भई सक्यो न त्रिप बीचारि ॥ १६ ॥ फल
 भच्छत जच्छन गह्यो दास दास को कीन । दासनि कै संग
 दोसती मति करियहु मति हीन ॥ १७ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे इक सौ बानवों चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ १६२ ॥ ३६२६ ॥ अफजूं ॥

खाते शेर ने देखा और उसे खा डाला ॥ १० ॥ बहती-बहती वह दासी वहाँ
 चली गई जहाँ राजा की सवारी आ निकली थी । राजा ने प्रिया को देखकर
 निकाल लिया और वह मूर्ख भी भेद-अभेद को न पहचान सका ॥ ११ ॥
 ॥ चौपाई ॥ दासी को उसने नदी से निकाल लिया और किनारे पर बैठकर
 उससे वार्तालाप किया । तुम यहाँ कैसे आयी यह तुम मुझे बताओ ॥ १२ ॥
 जब तुम आखेट को गए और बहुत समय तक नहीं आए । तुम्हारे बिना मैं
 अत्यन्त व्याकुल हो उठी, इसलिए गहरे वन में चली आयी ॥ १३ ॥ जब मुझे
 अत्यधिक प्यास लगी तो मैं नदी पर पानी पीने आई । मेरा पाँव फिसल गया
 जिससे मैं नदी में फिसल गई । आपने कृपा की जो मुझे निकाल लिया ॥ १४ ॥
 ॥ दोहा ॥ हे कुमार मित्र ! नीच व्यक्ति का कभी भी संग नहीं करना
 चाहिए, क्योंकि भेड़ की पूँछ पकड़कर भी भला कोई भादों की उफनती नदी
 को पार कर सकता है ॥ १५ ॥ दास के नदी में गिराने से पानी उसके पेट
 में भर गया था । अब वह स्त्री निष्प्राण हो गई थी परन्तु राजा भी भेद
 न जान सका ॥ १६ ॥ फल खाते हुए उस दास को शेर ने पकड़कर

मार डाला । इसलिए हे मतिहीन ! दासों के साथ कभी दोस्ती मत करना ॥ १७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में एक सौ बानबेवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ १६२ ॥ ३६२६ ॥ अफजू ॥

अथ इक सौ तिरानवों चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ तिरदसि कला एक बर नारी । चोरन की अति ही हितकारी । जहाँ किसू का दरबु तकावै । हींग लगाइ तहाँ उठि आवै ॥ १ ॥ हींग बास तसकर जह पावै । तिसी ठौर कह साँधि लगावै । तिह ठाँ रहै शाहु इक भारी । त्रिदसिकला ताहू सो बिहारो ॥ २ ॥ हींग लगाइ त्रिय चोर लगाए । करते केल शाहु चित आए । तासौ तुरत खबरि त्रिय करी । मोत तिहारी मात्रा हरी ॥ ३ ॥ चोर चोर तब शाहु पुकार्यो । अरध आपनो दरबु उचार्यो । दुहू (सू०ग्रं० १०८४) अन ताहि हितू करि मान्यो । मूरख भेद न काहू जान्यो ॥ ४ ॥ अरध बाँटि चोरन तिह दीनो । आधो दरबु शाहु ते लीनो । दुहूअन ताहि लख्यो हितकारी । मूरख किनू न बात बिचारी ॥ ५ ॥ चोर लाइ पाहरू जगाए ।

एक सौ तिरानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ तिरदसकला नामक एक सुन्दर नारी चोरों की अत्यन्त हितकारिणी थी । वह जहाँ भी किसी का द्रव्य देखती थी हींग लगाकर वहाँ से चली आती थी ॥ १ ॥ हींग की गंध चोर जहाँ देखते उसी स्थान पर सेंध लगा देते थे । उस स्थान पर एक भारी शाह रहता था और तिरदस-कला उसके साथ भी रमण करती थी ॥ २ ॥ हींग लगाकर स्त्री ने चोर लगा दिये जो प्रसन्न मन से शाह के पास आ पहुँचे । इधर शाह को स्त्री ने तुरन्त खबर कर दी कि हे मित्र ! तुम्हारे यहाँ चोरी हो रही है ॥ ३ ॥ शाह तब चोर-चोर पुकार उठा और अपने आधे द्रव्य के बारे में भी बता गया । दोनों ने इस स्त्री को मित्र माना और दोनों में से कोई भी मूर्ख भेद न जान सका ॥ ४ ॥ शाह से लूटा आधा माल चोरों ने उसे दे दिया और इस प्रकार दोनों ने उसे अपना हितैषी माना और किसी भी मूर्ख ने बात पर

इह चरित्र ते दोऊ भुलाए । तसकर कहैं हमारी नारी ।
शाहु लख्यो मोरी हितकारी ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ चंचलान
के चरित कौ सकत न कोऊ पाइ । वह चरित्र ताकौ लखै
जाके स्याम सहाइ ॥ ७ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे इक सौ तिरानवों चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ १६३ ॥ ३६३३ ॥ अफजू ॥

अथ इक सौ चुरानवों चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ देवरान हंडूर को राजा एक रहै । नारा
को होछा घनो सभ जग ताँहि कहै ॥ १ ॥ एक दिसारिन सौ
रहै ताकी प्रीति अपार । तिन न बुलायो धाम को आपु गयो
बिसंभार ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब आयो त्रिप धाम दिसारिनि
जानियो । निजु पति सौ सभही तिन भेद बखानियो । खात
बिखै राजा को गहि तिन डारियो । हो पकरि पान्हही हाथ
बहुत बिधि मारियो ॥ ३ ॥ प्रथम केल करि त्रिप कौ धाम
बुलाइयो । बनी न तासौ पति सो भेद जताइयो । पन्हिन
विचार नहीं किया ॥ ५ ॥ “चोर को लगाया और पहरेदार को जगाया”
के प्रपंच से दोनों को भ्रम में डाल दिया । चोर सोचते थे यह स्त्री हमारी
है और शाह सोचता था कि मेरी हितैषिणी है ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्त्रियों
के चरित्रों को कोई भी नहीं जान सकता है । इन्हें तो वही जानें जिसकी
भगवान सहायता करें ॥ ७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में एक सौ तिरानवों
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ १६३ ॥ ३६३३ ॥ अफजू ॥

एक सौ चौरानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहरा ॥ हंडूर का राजा देवराज था, जिसे सभी लोग जानते थे कि
यह लँगोट का ढीला था अर्थात् कामी था ॥ १ ॥ उसकी एक परदेसन
से घनी प्रीति थी । उसने उसे तो घर बुलाया नहीं अपितु स्वयं उसके पास
गया ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब विदेशी स्त्री ने राजा को घर में आ चुके
देखा तो उसने अपने पति से सारा रहस्य कह दिया । उसने राजा को
पकड़कर खड्गे में डाल दिया और जूता पकड़कर उसे बहुत मारा ॥ ३ ॥
पहले तो क्रीड़ा कर राजा को घर पर बुलाया । जब उससे ठीक नहीं बनी

मारि खत डार उपर काँटा दए । हो चित मौ त्रास बिचारि
पुरखु त्रिय भजि गए ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ प्रात सभै खोजन
त्रिप लागे । रानिन सहित शोक अनुरागे । खतिया परे
रावजू पाए । तह ते काढि धाम लै आए ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे इक सौ चुरानवों चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ १६४ ॥ ३६३८ ॥ अफजू ॥

अथ इक सौ पचानवों चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ नौकोटी मरवार को जसवंतसिंघ नरेस ।
जाकी मानत आनि सभ रघुवंसीस्वर देस ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ मानमती तिह की बर नारी । जनुक चीर चंद्रमा
निकारी । बितन प्रभा दूजी तिह रानी । जा सम लखी न
किनूँ बखानी ॥ २ ॥ काबल दरो बंद जब भयो । लिखि
ऐसे खाँ मीर पठयो । अवरंग बोलि जसवंतहि लीनो ।
तवनै ठौर भेजिकै दीनो ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ छोरि जहानाबाद
तहाँ जसवंत गयो । जो कोऊ याकी भयो सँघारत तिह भयो ।

तो पति को भेद बता दिया । जब उसे जूतों से मारकर खड्डे में डालकर
ऊपर से काँटे डाल दिए और फिर डरते हुए वह स्त्री भाग गई ॥ ४ ॥
॥ चौपाई ॥ प्रातः सभी राजा को ढूँढ़ने लगे और रानियों-सहित शोकपीड़ित
हो उठे । उन्होंने खड्डे में पड़े राजा को देखा और उसे निकालकर घर
ले आए ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में एक सौ चौरानवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ १६४ ॥ ३६३८ ॥ अफजू ॥

एक सौ पंचानवेवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ नौकोटी मारवाड़ का राजा जसवंतसिंह था, जिसे सारा
देश रघुवंशी मानकर उसकी अधीनता स्वीकार करता था ॥ १ ॥
॥ चौपाई ॥ उसकी सुन्दर नारी मानमती थी जो मानों चन्द्रमा को चीरकर
निकाली गई थी । बितनप्रभा उसकी दूसरी रानी थी, जिसके समान कोई
अन्य स्त्री देखी-सुनी नहीं गई थी ॥ २ ॥ काबुल का दर्रा जब बन्द हो गया
तो मीर खाँ ने लिख भेजा । तब औरंगजेब ने जसवंतसिंह को बुलाया और
उस स्थान की ओर भेज दिया ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब जहानाबाद छोड़

आइ मिल्यो (सू० प्र० १०८५) ता कौ सो लियो उबारिकै । हो
 डंडिया बंगसतान पठान सँधारिकै ॥ ४ ॥ जीव अनमनो
 कितक दिनन ता को भयो । ताते जसवंतसिंघ त्रिपति सुर
 पुर गयो । द्रुमति दहन अधिकतमप्रभा तह आइकै । हो
 तरुनि इत्यादिक त्रिय सभ जरी बनाइकै ॥ ५ ॥ डीक अगनि
 की उठी रानियन यौ कियो । नमशकार करि सपत प्रदच्छिन
 कौ दियो । कूदि कूदि करि परी नरेर नचाइकै । हो जनुक
 गंग के माँझ अपछरा आइकै ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिपनकला
 दुति मान मति चली जरन के काज । दुरगदास सुनि गति
 तिसै राख्यो कोटि इलाज ॥ ७ ॥ मेड़तेस थारे उदर सुनि
 रानी मम बैन । मैनि मिलौ हजरति तनै जासाँ अपने
 ऐन ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ तब हाड़ी पति सौ नहि जरी ।
 लरिकन की आसा जिय धरी । छोरि पिशौर दिल्ली कौ
 आए । शहिर लहौर पूत दो जाए ॥ ९ ॥ जब रानी दिल्ली
 मौ गई । हजरति कौ ऐसी सुधि भई । सोऊअन कह्यो इनै
 मुहि दीजै । तुम मनसब जसवंत को लीजै ॥ १० ॥ रनियन
 कौ सऊअन नहि दयो । हजरति सैन पठावत भयो । रन

कश जसवंतसिंह वहाँ गया और जो सामने अड़ा उसे मारता गया । जो
 उससे आ मिला उसे उसने बचा लिया और डंडिया, बंगस्तान के पठानों का
 संहार किया ॥ ४ ॥ कई दिनों बाद जसवंतसिंह का मन अनमना हो गया
 और वह स्वर्गपुरी सिधार गया । द्रुमतिदहन और अधिकतमप्रभा वहाँ
 आकर अन्य तरुण स्त्रियों-समेत सब जल मरीं ॥ ५ ॥ आग की लपटें उठीं;
 रानियों ने प्रणाम कर सात फेरे लगाए और नाखिल नचाती हुई वे इस
 प्रकार अग्नि में कूद पड़ीं मानों गंगा में अप्सराएँ कूद गई हों ॥ ६ ॥
 ॥ दोहा ॥ बिपनकला और मानमती भी जलने के लिए चलीं, परन्तु दुर्गादास
 ने सैकड़ों उपाय कर उन्हें रोका ॥ ७ ॥ उसने कहा कि तुम्हारे गर्भ में मेड़ता
 का (भावी) नरेश है, पर वह कहने लगी कि मैं बादशाह से नहीं मिलूंगी
 और अपने घर जाऊँगी ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब हाड़ी रानी पति के साथ
 नहीं जली और मन में पुत्रों की आशा लगायी । वे पेशावर छोड़कर दिल्ली
 की तरफ आए और लाहौर शहर में दो पुत्रों को जन्म दिया ॥ ९ ॥ जब
 रानी दिल्ली पहुँची तो बादशाह को पता लगा । शाह ने कहा कि इनको
 मेरे हवाले कर दो और जसवंतसिंह का मनसब तुम ले लो ॥ १० ॥ उस
 (दुर्गादास) ने रानियाँ शाह को नहीं दीं और शाह ने सेना चढ़ा दी । तब

छोरै इह भाँति उचारो । नर को भेस सभै तुम धारो ॥ ११ ॥
 खान पुलाद जबै चड़ि आए । तब रनियन यौ बचन
 सुनाए । हमै नगज सेना मौ दीजै । हिंदू धरम राखि करि
 लीजै ॥ १२ ॥ नावन कौ सुभ वारो दियो । बालन सहित देस
 मगु लियो । रजपूतन रूमाल फिराए । हम मिलने हजरति
 कौ आए ॥ १३ ॥ तिनकौ किनी न चोटि चलाई । इह
 रानी हजरति पह आई । तुपक तले तैं जबै उबरे । तबही
 काढि क्लिपानै परे ॥ १४ ॥ जौनै सूर सरोही बहैं । जेबो
 टिकै न बखतर रहैं । एकै तीर एक असवारा । एकै घाड़
 एक गज भारा ॥ १५ ॥ जा पर परैं खड़ग की धारा ।
 जनुक बहे बिरछ पर आरा । कटि कटि सुभट धरनि पर
 परहीं । चट पट आनि अपच्छरा बरहीं ॥ १६ ॥
 ॥ दोहरा ॥ रन छोरैं रघुनार्थसिंघ कीनो कोप अपार । शाह
 झरोखा के तरे बाहत भे हथियार ॥ १७ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ कहूँ
 धोप बाँकै कहूँ बान छूटैं । कहूँ बीर बानीन के (सू० प्र० १०८६)
 बकल टूटैं । कहूँ बाज मारे गजाराज जूझे । कटे कोटि

रणछोड़ ने यह कहा कि तुम सब पुरुष-वेश धारण करो ॥ ११ ॥ फौलादी
 खान वीर जब चढ़ आए तो रानियों ने कहा कि हमें श्रेष्ठ सेना के साथ रखो
 और हिन्दू-धर्म की रक्षा करो ॥ १२ ॥ नाउन (नाई-स्त्री) को खूब धन देकर
 और बालकों-सहित अपने देश का रास्ता पकड़ा दिया । तब राजपूतों ने
 रूमाल हिलाए कि हम बादशाह से भेंट करने आए हैं ॥ १३ ॥ उन पर
 किसी ने वार नहीं किया और इस तरह ये रानियाँ बादशाह के पास आ
 पहुँचीं । जब वीर बंदूक से बचता है तभी हाथ से कृपाण निकाल पाता
 है ॥ १४ ॥ अब शूरवीरों की तलवारें चलने लगीं, जिसमें न तो वीर
 और न उसका जिरह-बखतर टिकता था । एक तीर एक सवार के लिए और
 एक वार एक हाथी के लिए काफी था ॥ १५ ॥ जिस पर खड़ग की धार
 पड़ती थी ऐसा लगता था मानों वृक्ष पर आरा चला हो । वीर कट-कटकर
 धरती पर गिरते थे और शीघ्र ही अप्सराएँ उनका वरण कर लेती थीं ॥ १६ ॥
 ॥ दोहरा ॥ रघुनार्थसिंह क्रुद्ध हो मुद्ध छोड़ रहा था । शाह झरोखे में बैठा
 था और बाहर शस्त्र चल रहे थे ॥ १७ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ कहीं बंदूक, कहीं
 बाण छूट रहे थे और बाण-चालकों के मुँह फूट रहे थे । कहीं अश्व मारे
 गए और कहीं हाथी जूझ गए । अनेकों ही योद्धा कट गए, उनकी गिनती

जोधा नहीं जात बूझे ॥ १८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ खाइ टाँक
 आफूऐ राज सभ रिसि भरे । पोसत भाँग शराब पान करि
 अति लरे । शाह झरोखा तरै चरित्र दिखाइकै । हो रन
 छोरा मुरलोक गए सुख पाइकै ॥ १९ ॥ रन छोरहि रघुनाथ
 निरखि करि रिसि भर्यो । ताते तुरै धवाइ जाइ दल मै
 पर्यो । जाकौ बहै सरोही रहै न बाज पर । हो गिरै
 मूरछना खाइ तुरत सो भूमि पर ॥ २० ॥ धनि धनि औरंग
 शाह तिनै भाखत भयो । घेरहु इनकौ जाइ दलहि आइस
 दयो । जो ऐसे दो चार और भट धावही । हो बंक लंकगढ़
 जीति छिनिक मो ल्यावही ॥ २१ ॥ हाँकि हाँकि करि महाबीर
 सूरमा धए । ठिला ठिली बरछिन सौ करत तहाँ भए । कड़ा
 कड़ी मैदान मचायो आइ कर । हो भाँति भाँति बादिल अनेक
 बजाइ कर ॥ २२ ॥ तुमल जुद्ध मच्चत तह भयो । लै
 रघुनाथ सैन समुहयो । भाँति भाँति सो बजे नगारे । खेति
 मंडि सूरमा हकारे ॥ २३ ॥ गहि गहि शस्त्र सूरमा धाए ।
 देव अदेव बिलोकन आए । जा पर दोइ करंधर धरै । एक
 सुभट ते दो दो करै ॥ २४ ॥ जाकै अंग सरोही बही ।

नहीं हो सकती थी ॥ १८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ सब राजा अफीम का सेवन कर
 क्रुद्ध हो उठे । वे पोस्त, भाँग, शराब आदि का पान कर खूब लड़े । शाह को
 झरोखे के नीचे अपना चरित्र दिखाते हुए रणछोड़ सुखपूर्वक मुरलोक पहुँच
 गए ॥ १९ ॥ रणछोड़ को (मृत) देखकर रघुनाथ क्रुद्ध हो उठा और घोड़ा
 दौड़ाकर दल में जा घुसा । जिसे सिरोंही नामक तलवार लग जाती थी वह
 घोड़े पर नहीं रहता था और मूर्च्छित हो तुरन्त भूमि पर गिर पड़ता
 था ॥ २० ॥ औरंगजेब भी उन्हें धन्य-धन्य कहता था और अपनी सेना को
 आदेश देता था कि इनको तुरन्त घेरो । यदि दो-चार ऐसे अन्य वीर हों तो
 क्षण भर में लंका जीतकर आ जायें ॥ २१ ॥ शूरवीर ललकार-ललकारकर
 आगे बढ़ रहे थे और वर्छियों से ठेल-ठाल कर रहे थे । वहाँ अनेकों प्रकार
 के वाद्य बजाकर उन्होंने कड़कड़ाहट के साथ युद्ध शुरू कर दिया ॥ २२ ॥
 वहाँ भीषण युद्ध हुआ और रघुनाथ सेना लेकर सामने आ डटा । वहाँ भाँति-
 भाँति के नगारे वज्र उठे और युद्धस्थल में घेरा डालकर शूरवीर ललकारने
 लगे ॥ २३ ॥ शस्त्र पकड़-पकड़कर शूरवीर दौड़े और देव-अदेव सब उन्हें
 देखने आए । जिस पर दो हाथ पड़ते थे वह वीर एक से दो टुकड़ों में बँट
 जाता था ॥ २४ ॥ जिसके अंग पर सिरोंही कृपाण गिर जाती थी उसकी

ता की ग्रीव संग नहि रही । जाके लग्यो कुह कतो बाना ।
 पलक एक मै तजे पराना ॥ २५ ॥ जाके घाइ गुरज को
 लाग्यो । ता को प्रान देह तजि भाग्यो । हाहाकार पखरिया
 करही । राठौरन के पाले परही ॥ २६ ॥ ॥ सवैया ॥ आनि
 परे रिसि ठानि रठौर चहूँदिसि ते कर आयुध लीने । बीर
 करोरिन के सिर तोरि सु हाथन को हलकाहनि दीने । रुंड
 परे कहूँ तुंड त्रिपान के झुंड हयान के जात न चीने । कंबर
 के बहु टंबर अंबर अंबर छीनि दिगंबर कीने ॥ २७ ॥
 ॥ चौपाई ॥ ऐसी भाँति सुभट बहु मारे । रघुनाथो सुरलोक
 सिधारे । स्वामि काज के प्रनहि निबाह्यो । हडियहि पुरे
 जोध पहुचायो ॥ २८ ॥ ॥ दोहरा ॥ अति बरि कै भारी
 जुझ्यो तनक न मोर्यो अंग । सु कबि काल पूरन भयो तब
 ही कथा प्रसंग ॥ २९ ॥ १ ॥ (सू० प्र० १०८७)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे इक सौ पंचानवों चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ १९५ ॥ ३६६७ ॥ अफजू ॥

गर्दन साथ नहीं रहती थी । जिसको साँय-साँय करता एक बाण लग जाता
 था वह एक ही पल में प्राण छोड़ देता था ॥ २५ ॥ जिसको गदा का
 वार लगा उसके प्राण भी देह छोड़कर भाग जाते थे । सब घुड़सवार
 हाहाकार कर रहे थे, क्योंकि उनका पाला राठौरों से पड़ गया था ॥ २६ ॥
 ॥ सवैया ॥ राठौर चारों दिशाओं से क्रुद्ध हो शस्त्र हाथ में लेकर आ टूट
 पड़े । उन्होंने अनेकों वीरों के सिर तोड़ दिए और अनेकों को हाथों से काट
 दिया । कहीं राजाओं के सिर पड़े थे और घोड़ों के झुंड के झुंड पड़े पहचाने
 नहीं जा रहे थे । कंबलों के समान मोटे वस्त्र छीन-छीनकर फौजी वस्त्र-
 विहीन किये जा रहे थे ॥ २७ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार अनेक वीरों को
 मारकर रघुनाथ भी सुरलोक सिधार गए । स्वामी के कार्य के लिए उसने
 प्रण निभाया और हाडी रानी को जोधपुर पहुँचाया ॥ २८ ॥ ॥ दोहरा ॥ वह
 अत्यन्त बल से जूझा और उसने तनिक भी अंग नहीं मोड़ा । इस प्रकार कवि
 के कथनानुसार यह प्रसंग पूर्ण हुआ ॥ २९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में एक सौ पंचानवों
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ १९५ ॥ ३६६७ ॥ अफजू ॥

अथ इक सौ छिआनवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ चंद्रपुरी नगरी इक सुनी । अप्रतिमकला
रानी बहु गुनी । अंजनराइ बिलोक्यो जबही । हरअरि
सर मार्यो तिह तबही ॥ १ ॥ ता कौ धाम बोलि करि
लियो । कामकेल तासौ द्रिड़ कियो । बहुरि जार इह
भाँति उचारो । जिनि मति लखि पति हनै तुमारो ॥ २ ॥
॥ त्रियो वाच ॥ तुम चित्त मै नहि त्रास बढावो । हम सौ
द्रिड़ करि केल कमावो । मैं तुहि एक चरित्र दिखैहौ ।
ताते तुमरो शोक मिटैहौ ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ पति देखत
तो सौ रमौ ग्रहि को दरबु लुटाइ । त्रिप को सीस झुकाइहौ
पगन तिहारे लाइ ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ तुम सभ जोग भेस
कौ करो । मोरी कही कान मै धरो । मूक मंत्र कछु याहि
सिखावहु । जाते याको गुरु कहावहु ॥ ५ ॥ तब तिन काम
जार सोऊ कियो । मूक मंत्र राजा को दियो । आपन
ता कौ गुरु कहायो । भेद अभेद राव नहि पायो ॥ ६ ॥
जब राजा अंतहपुर आए । तब रानी यौ बचन सुनाए ।

एक सौ छिआनबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ चन्द्रपुरी नामक नगरी में अप्रतिमकला गुणज्ञ रानी
थी । उसने जब अंजनराय को देखा तो कामदेव ने तुरन्त उसे बाण मार
दिया ॥ १ ॥ उसे उसने घर बुला लिया और उससे कामक्रीड़ा की । फिर
उस यार ने कहा कि कहीं तुम्हारा पति देखकर मुझे मार न डाले ॥ २ ॥
॥ त्रिया उवाच ॥ तुम मन में डरो मत और हमसे दृढ़तापूर्वक केलिक्रीड़ा
करो । मैं तुम्हें एक प्रपंच दिखाऊँगी और तुम्हारा शोक दूर करूँगी ॥ ३ ॥
॥ दोहा ॥ मैं पति के देखते-देखते द्रव्य लुटाकर तुमसे रमण करूँगी और
राजा का सिर झुकाकर तुम्हारे चरणों पर रखूँगी ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम
मेरी बात सुनो और योगी का वेश धारण करो । कुछ गुप्त मंत्र सिखा दो
और फिर इसके गुरु कहलाओ ॥ ५ ॥ तब उस यार ने वही काम किया
और राजा को एक गुप्त मंत्र दिया । वह स्वयं उसका गुरु कहलाने लगा
और राजा इस भेद-अभेद को नहीं समझ सका ॥ ६ ॥ जब राजा अन्तःपुर
में आया तो रानी ने कहा कि गुरु यदि भ्रम में भी डाले तो भ्रम नहीं करना

गुर जु भ्रमावै राइ न भ्रमियै । भली बुरी गुर करै सु
छमियै ॥ ७ ॥ जो गुर ग्रहि को दरब चुरावै । सौक त्रिया
तन केल कमावै । जौ कुपि करै खड़ग को वारा । जो सिख
भ्रमत लहै सो मारा ॥ ८ ॥ जिन नै मंत्र कछू जिह दयो ।
तिन गुर मोल सिक्ख कौ लयो । भगनि सात जौ रमत
निहरीयै । सीस झुकाइ रोस नहि करियै ॥ ९ ॥
॥ दोहरा ॥ सभा परब भीतर सुनी जम की कथा रसाल ।
ब्यासासिन सुक बकत्त ते सो तुहि कहौ उताल ॥ १० ॥
॥ दोहरा ॥ जम राजा रिखि एक को घर मै कियो पयान ।
मात भगनि रिखि बाल सौ रति मानी रुचि मान ॥ ११ ॥
॥ चौपई ॥ जब रिखि चलि अपुने ग्रहि आयो । त्रिय सौ
रमत पुरख लखि पायो । धरम बिचार न तिह कछु कहियो ।
तिह पग साथ छुआवन चाहियो ॥ १२ ॥ सिर मौ चरन छुअत
धर रहियो । धन्य धन्य ता कौ जम कहियो । मैहौ काल
जगत जिह घायो । तेरो धरम बिलोकन आयो ॥ १३ ॥
सुनुत हुतौ तैसो तुहि देखयो । धरम सकल तुमरौ अवरेख्यो ।

चाहिए और यदि कुछ बुरा-भला भी करे तो उसे नज़रअंदाज़ करना
चाहिए ॥ ७ ॥ जो गुरु घर का द्रव्य भी चुरा ले, स्त्री के साथ केलिक्रीड़ा
भी कर ले, खड़ग से वार भी कर दे और शिष्य भ्रम में पड़ जाय तो समझो
मारा गया ॥ ८ ॥ जिसने किसी को कोई मंत्र दे दिया है तो उस गुरु ने तो
मान लो शिष्य को मोल ले लिया है । उसे यदि माँ-बहन के साथ श्रमण
करते भी देख लिया जाय तो सिर झुका लेना चाहिए और रुष्ट नहीं होना
चाहिए ॥ ९ ॥ ॥ दोहा ॥ सभापर्व में यम की मनोहर कथा है, जिसे व्यास
गद्दी पर बैठनेवाले कथावाचक से सुना है, उसे मैं तुमसे कहती हूँ ॥ १० ॥
॥ दोहा ॥ यमराज एक ऋषि के घर गया और वहाँ माता, बहन और
बालिका से रुचिपूर्वक रतिक्रीड़ा की ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब ऋषि अपने
घर आया तो उसने पत्नी से श्रमण करते एक पुरुष को देखा । उसने धर्म
का ध्यान कर उसे कुछ नहीं कहा और उसके चरण माथे से लगाने
चाहे ॥ १२ ॥ चरणों को सिर में लगाकर वह बैठा रहा । यम ने भी उसे
धन्य-धन्य कहा और बताया कि मैं काल हूँ जिसने जगत् को नष्ट कर डाला
है । मैं तेरा धर्म देखने आया था ॥ १३ ॥ मैंने जैसा तुम्हें सुना था वैसा
ही पाया और तुम्हारे धर्म का अवलोकन किया है । तेरे मन में कोई कपट

तोरे बिखै कपट कछु नाही । यौ मैं लह्यो साचु मन
 माही ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ निरख सत्तता बिप्र की मन मै
 मोद बढाइ । जियन मुक्ति ता कौ दियो काल दान बर
 दाइ ॥ १५ ॥ (सू० प्र० १०८८) त्रिप कौ प्रथम प्रबोध करि जारहि
 लयो बुलाइ । प्रगट खाट उसवाइकै भोग कियो सुख
 पाइ ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब लौ आप राव जू आयो ।
 त्रिय सौ रमत जार लखि पायो । कथा सँभारि वहै चुप
 रहियो । तिनकौ कोप बचन नहि कहियो ॥ १७ ॥ चरन
 छुअन ता के चित चहियो । वैसहि जार भजत त्रिय रहियो ।
 तब यौ जारि काढि करि दियो । मूरख सीस न्याइ करि
 गयो ॥ १८ ॥ जढ़ जान्यो मुहि गुरू भ्रमायो । भेद अभेद
 कछु नहि पायो । इह चरित्त अबला छलि गई । रति करि
 माथ टिकावत भई ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ पति देखत रति
 मानकै त्रिप को माथ टिकाइ । धन दीनो सभ प्रीतमहि ऐसो
 चरित दिखाइ ॥ २० ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्त पख्याने त्रिया चरित्ते मंत्री भूप संवादे इक सौ छियानवों चरित्त
 समापतम सतु शुभम सतु ॥ १९६ ॥ ३६८७ ॥ अफजू ॥

नहीं है, यह मैंने सत्य रूप में मान लिया है ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ विप्र की
 सत्यता देखकर मन में प्रसन्न होकर काल ने उसे जीवन-मुक्त का वरदान
 दिया ॥ १५ ॥ इस प्रकार राजा को पहले समझाकर फिर उसने प्रेमी मित्र
 को बुला लिया और सबके सामने पलंग बिछवाकर सुखपूर्वक उससे संभोग
 किया ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब तक राजा स्वयं आ गया और उसने पत्नी
 के साथ उसके प्रेमी को रमण करते देखा । वह कथा को स्मरण कर चुप
 लगा गया और उसे कोई भी क्रुद्ध वचन नहीं कहा ॥ १७ ॥ वह भी मन में
 उसके चरण छूने की इच्छा करने लगा और वह यार वैसे ही स्त्री के साथ
 रमण करता रहा । तब उस प्रेमी ने उसे बाहर निकाल दिया और मूर्ख
 (राजा) सिर झुकाकर चला गया ॥ १८ ॥ उस मूर्ख ने समझा कि मुझे गुरु
 ने भ्रम में डाला है (और मेशी परीक्षा की है) । वह भेद-अभेद कुछ नहीं
 समझ सका । इस प्रपंच से अबला छल गई और रतिक्रीड़ा कर शीश झुकवा
 दिया ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ पति के देखते-देखते रतिक्रीड़ा की, राजा का
 सिर झुकवाया और प्रपंच बनाकर अपने प्रियतम को धन दे दिया ॥ २० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्तोपाख्यान के त्रिया-चरित्त के मंत्री-भूप-संवाद में एक सौ छियानववें चरित्त
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ १९६ ॥ ३६८७ ॥ अफजू ॥

अथ इक सौ सतानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ त्रिय रनरंगमती इक रहियै । ता सम
अवर न रानी लहियै । अप्रमान तिह प्रभा बिराजै । जाको
निरख चंद्रमा लाजै ॥ १ ॥ एक दुरग तिन बडौ तकायो ।
यहै रानियहि मंतुपजायो । डोरा पाँच सहंस्त्र सवारे । ता
मै पुरख पाँच सै डारे ॥ २ ॥ कछू आपकौ लास जतायो ।
एक दूत द्रुगशाहि पठायो । ठउर कबीलन कौ ह्याँ पाऊँ ।
मैं तुरकन सौं खड़ग बजाऊँ ॥ ३ ॥ ते सुनि बैन भूलि ए गए ।
गढ़ मै पैठन डोरा दए । कोट द्वार के जबै उतरे । तबही
काढि क्रिपानै परे ॥ ४ ॥ समुह भयो तिनसै सो मार्यो ।
भाजि चल्थो सो खेदि निकार्यो । इह चरित्र दुरगति द्रुग
लियो । तिह ठाँ हुकम सु अपनो कियो ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे इक सौ सतानवों चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ १६७ ॥ ३६६२ ॥ अफजू ॥

एक सौ सत्तानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ रणरंगमती नामक एक स्त्री थी जिसके समान अन्य
कोई रानी नहीं थी । उसकी अपरिमित रूप से विराजमान शोभा को देखकर
चन्द्रमा भी लज्जित होता था ॥ १ ॥ उसने एक बड़ा सा किला देखा और
मन में (उसे लेने का) विचार किया । उसने पाँच हजार डोलियाँ सजायीं
और उनमें पाँच सौ पुरुष बैठा दिए ॥ २ ॥ कुछ अपनी मुसीबत की बात
कह उसने एक दूत दुर्गापति के पास भेजा और कहलवाया कि अपने कबीले
के लिए यदि यहाँ जगह पा जाऊँ तो मैं मुगलों से लोहा लेने में सक्षम हूँ ॥ ३ ॥
वे यह बातें सुनकर भ्रम में आ गए और किले में डोलियाँ बैठाने की आज्ञा
दे दी । जब ये मुख्य द्वार से अंदर उतरे तो इन सबने कृपाणें निकाल
लीं ॥ ४ ॥ जो सामने आया उसे मार डाला और जो भागा उसे खदेड़
निकाला । इस प्रपंच से दुर्गति ने दुर्ग ले लिया और उस स्थान पर अपना
आदेश चलाया ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में एक सौ सत्तानबेवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ १६७ ॥ ३६६२ ॥ अफजू ॥

अथ इक सौ अठानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ संख कुअर सुंदरिक भनिज्जै । एक राव के साथ रहिज्जै । एक बोलि तब सखी पठाई । सोत नाथ सो जात जगाई ॥ १ ॥ ताहि जगता नाथ तिह जाग्यो । पूछन तवन दूतियहि लाग्यो । याहि जात लै कहाँ जगाई । तब तिन यौ तिह साथ जताई ॥ २ ॥ मोरे नाथ जनाने गए । चौकी हितहि बुलावत भए । ताते मै लैने इह आई । (सू० प्र० १०८६) सो तुम सौ मै भाखि सुनाई ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ सोत जगायो नाथ तिह भुज ताकी गहि लीन । आनि मिलायो त्रिपति सौ सक्थो न जड़ कछु चीन ॥ ४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे इक सौ अठानवों चरित्र समापतम सत् सुभम सत् ॥ १६८ ॥ ३६६६ ॥ अफजू ॥

अथ इक सौ निनानवों चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ रतनसेन राना रहै गड़ि चितौर के साँहि । रूप सील सुचि ब्रतन मै जा सम कह जग नाहि ॥ १ ॥

एक सौ अठानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ शंखकुँवरि नामक एक सुन्दरी थी जो एक राजा के साथ रहती थी । एक सखी ने उसे बुलाया और पति के साथ सोती हुई को जा जगाया ॥ १ ॥ उसे जगाते ही पति भी जग गया और उस दूती से पूछने लगा कि इसे जगाकर कहाँ ले जा रही हो ? तब उसने उत्तर दिया ॥ २ ॥ मेरे स्वामी (राजा) जनानखाने में गए हैं और इसेः पहर के लिए बुलवाया है । इसीलिए मैं लेने आई हूँ और तुम्हें मैंने बता दिया है ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ उसकी भुजा पकड़कर (वह ले गई) और पति को भी सोते से जगा दिया । उसे आकर राजा से मिला दिया और वह मुखे कुछ न समझ सका ॥ ४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में एक सौ अठानबेवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ १६८ ॥ ३६६६ ॥ अफजू ॥

एक सौ निनानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ राजा रतनसेन चित्तौड़ में रहता था और रूप, शील, ब्रत,

॥ चौपई ॥ अधिक सुआ तिन एक पड़ायो । ताहि सिंगला दीप पठायो । तह ते एक पदमिनी आनी । जाकी प्रभा न जात बखानी ॥ २ ॥ जब वह सुंदरि पान चबावै । देखी पीक कंठ मै जावै । ऊपर भवर भ्रमहि मतवारे । नैन जान दोऊ बने कटारे ॥ ३ ॥ ता पर राव असकति अति भयो । राज काज सभही तजि दयो । ताकी निरखि प्रभा कौ जीवै । बिनु हेरे तिह पान न पीवै ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ राघौ चेतनि दो हुते मंत्री ताहि अपार । निरखि राव तिह बसि भयो ऐसो कियो बिचार ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ ता की प्रतिमा प्रथम बनाई । जा सम देव अदेव न जाई । जंघहु ते तिल तिह लिखि डर्यो । अतिभुत करम मंत्रियन कर्यो ॥ ६ ॥ जब बचित्र त्रिप चित्र निहारै । बैठि सभा कछु काज सवारै । ता के तिलहि बिलोक्यो जबही । भरम बढ़्यो राजा कै तबही ॥ ७ ॥ तब त्रिप तिन मंत्तिन गहि मार्यो । इन रानी सौ काज बिगार्यो । दिव्य द्रिशटि इन के कत होई । केल करे बिनु लखै न कोई ॥ ८ ॥ जब मंत्री दोऊ त्रिप

पूजा में उसके समान अन्य कोई नहीं था ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने एक तोते को अत्यधिक सिखाया और सिंहलद्वीप भेजा । वहाँ से एक पद्मिनी (स्त्री) लाया जिसकी प्रभा का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ २ ॥ जब वह सुन्दरी पान चबाती थी तो पीक उसके गले में दिखाई पड़ती थी । उस पर भौरे मतवाले होकर मँड़राते रहते थे और उसकी आँखें मानों कटाखियाँ थीं ॥ ३ ॥ राजा उस पर अत्यन्त आसक्त हो गया और उसने राज-काज सभी त्याग दिया । वह उसी के रूप को देखकर जीवित रहता और बिना उसे देखे पानी न पीता ॥ ४ ॥ ॥ दोहा ॥ राघव और चेतन दो उसके मंत्री थे । उन्होंने राजा को उसके वशीभूत देखकर यह विचार किया ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ पहले उसकी प्रतिमा बनाई जो देव-अदेव सबसे सुन्दर थी । उन्होंने उसकी जंघाओं पर एक तिल भी बना डाला । मंत्रियों ने यह अद्भुत कार्य किया ॥ ६ ॥ राजा ने जब वह विचित्र चित्र देखा तो उस समय राजा दरबार में राजकाज कर रहा था । उसने जब तिल देखा तो उसका संदेह बढ़ गया ॥ ७ ॥ तब राजा ने उन मंत्रियों को यह सोचकर मार डाला कि इनका रानी के साथ कोई गलत संबंध है । इनको दिव्य-दृष्टि कहाँ से हो सकती है । केलिक्रीड़ा किये बिना भला यह तिल कोई कैसे देख सकता है ॥ ८ ॥ जब मंत्री ने दोनों मंत्रियों को मार डाला तो

मार्यो । शाह तनै तिन पूत पुकार्यो । एक चित्त उर
 पदुमिनि नारी । जा सम कान सुनी न निहारी ॥ ६ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ तनिक भनक पदुमिनि जब शह कानन परी ।
 अमित सैन लै संग चढ़त तित कौ करी । गड़हि गिरद करि
 जुद्ध बहुत भातिन कर्यो । हो जैन लावदी तबै चित्त मै रिसि
 भर्यो ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ निजु करि लाइ आँब तिन खाए ।
 गढ़ चितौर हाथ नहि आए । तब तिन शाह दगा यौ कियो ।
 लिखिकै लिखो पठै इक दियो ॥ ११ ॥ सुनु राजा जी मैं
 अति हारो । अब छोडत हौं दुरग तिहारो । एक स्वार सौ
 मैं ह्याँ आऊँ । गड़हि निहारि घरहि (सू० पं० १०६०) उठि
 जाऊँ ॥ १२ ॥ राना बात तबै यह मानी । भेद अभेद की
 रीति न जानी । एक स्वार संग लै तह गयो । ता कौ संग
 अपने करि लयो ॥ १३ ॥ जो जो द्वार उतरत गढ़ आवै ।
 तही तही सिरपाउ बधावै । सपत द्वार उतरत जब भयो ।
 तबही पकरि नराधिप लयो ॥ १४ ॥ ऐसी भाँति शाहि छल
 कीनो । मूरख भेद अभेद न चीनो । जब लंघि सभ द्रुग

उनके पुत्र बादशाह के पास पुकार लगाने लगे कि पद्मिनी चित्तौड़ में रहने
 वाली इतनी सुन्दर नारी है कि जिसके समान न कान से सुना गया होगा और
 न आँख से देखा गया होगा ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब पद्मिनी की थोड़ी सी
 भनक भी शाह के कानों में पड़ी तो उसने अपरिमित सेना लेकर उस ओर
 चढ़ाई कर दी । गढ़ के आस-पास उसने भीषण युद्ध किया और मन में
 अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ अपने हाथों के रोपे पौधों से
 उसने आम खाने शुरू कर दिये अर्थात् कितना ही समय बीत गया परन्तु
 चित्तौड़ उसके हाथ नहीं लगा । तब उस शाह ने एक छल किया और एक
 पत्र लिखकर भेजा ॥ ११ ॥ हे राणा ! सुनो, मैं हार गया हूँ और अब
 तुम्हारा किला छोड़ रहा हूँ । मैं एक सवार के साथ आऊँगा और किला
 देखकर वापस चला जाऊँगा ॥ १२ ॥ राणा ने यह बात मान ली और भेद-
 अभेद की बात नहीं समझी । वह एक सवार को लेकर वहाँ गया और उसे
 अपने साथ रखा ॥ १३ ॥ अब जब वह वापस किले के द्वारों से उतरता, जिस-
 जिस द्वार से जाता उसका सम्मान होता । जब वह (राजा-सहित) सातवें
 दरवाजे से उतरा तो उसने राजा को पकड़ लिया ॥ १४ ॥ इस प्रकार
 शाह ने छल किया और इस मूर्ख ने रहस्य को नहीं जाना । जब वह सब दुर्ग-
 द्वारों को पार कर गया तो साथ-साथ राजा को भी बाँधकर ले गया ॥ १५ ॥

द्वारन आयो । तबही बाधि तवन कौ ल्यायो ॥ १५ ॥
 ॥ दोहरा ॥ जब राना छल सौ गह्यो कह्यो हनत है तोहि ।
 नातर अपनी पदुमिनी आनि दीजिये मोहि ॥ १६ ॥
 ॥ चौपई ॥ तब पदुमिनि इह चरित बनायो । गौरा बादिल
 निकट बुलायो । तिन प्रति कह्यो कह्यो मुरि कीजै ।
 हजरति साथ ज्वाब यौ दीजै ॥ १७ ॥ अशट सहस पालकी
 सवारो । अशट अशट ता मै भट डारो । गढ़ लगि लिआइ
 सभन तिन धरो । तुम हजरति सौ ऐस उचरो ॥ १८ ॥
 एक बस्त्र हमरो तुम लीजै । प्रथम पालकी मै धरि दीजै ।
 ताँ पर भवर गुंजारत जैहैं । भेद अभेद लोक नहि पैहैं ॥ १९ ॥
 तब गोरे बादिल सोई कियो । जिह बिधि मंत्र पदुमिनी
 दियो । गढ़ के लहत डोरिका धरी । पदुमिनि अग्र पालकी
 करी ॥ २० ॥ ॥ दोहरा ॥ पदमिनि के पट पर घने भवर
 करें गुंजार लोग सभै पदुमिनि लखे बस्त्र न सकै
 बिचारि ॥ २१ ॥ ॥ चौपई ॥ ता मै डारि लुहारिक लयौ ।
 ता को बस्त्र तवन पर दयो । छैनी और हथौरा लए । वा
 बढई के कर मो दए ॥ २२ ॥ दूत दिलीसहि बचन उचारे ।

॥ दोहा ॥ जब राजा को छल से पकड़ लिया तो कहा कि मैं तुम्हें अभी मार
 डालूंगा अन्यथा अपनी पद्मिनी मुझे दे दो ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब पद्मिनी
 ने भी प्रपंच किया और गोरा-बादल नामक वीरों को पास बुलाया । उनसे
 कहा कि मेरा कहना मानो और बादशाह को यह उत्तर दो ॥ १७ ॥ आठ
 सहस्र पालकी सँवारो और प्रत्येक में आठ-आठ शूरवीर डाल दो । किले के
 पास लाकर सबको रख दो और तुम शाह से ऐसे कहो ॥ १८ ॥ तुम मेरा
 एक वस्त्र ले लेना और पहली पालकी में रख देना । उन वस्त्रों पर भौरें
 गुंजार करेंगे और लोग रहस्य को नहीं समझ पाएँगे ॥ १९ ॥ तब गोरा-
 बादल ने वही किया जैसे पद्मिनी ने कहा था । किले के साथ ही पालकियाँ
 रख दीं और पद्मिनी की पालकी सबके आगे रख दी ॥ २० ॥ ॥ दोहा ॥ पद्मिनी
 के वस्त्रों पर भौरें गुंजार कर रहे थे । लोग सभी वहाँ पद्मिनी समझ रहे
 थे और वस्त्रों को नहीं समझ पा रहे थे ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ उस पालकी
 में एक लोहार को डाल दिया था और अपने वस्त्र उसी पर डाल दिए
 थे । उस लोहार (बढ़ई) के हाथ में छैनी और हथौड़ा था ॥ २२ ॥
 दूत ने दिल्लीश्वर [(अलाउद्दीन खिल्जी) को कहा कि पद्मिनी तुम्हारे

ग्रहि आवत पदुमिनि तिहारे । राना साथ प्रथम मिलि आऊ ।
 बहुरि तिहारी सेज सुहाऊ ॥ २३ ॥ यौ कहि बढी तहा चलि
 गयो । ता की कटत बेरियै भयो । तिह पालकी प्रथम
 बैठायो । इह ते ओहि डोरी पहुचायो ॥ २४ ॥ इक ते
 निकरि अवर सो गयो । अनत तहाँ ते निकसत भयो । इह
 छल तहाँ पहुँच्यो जाई । तब दुरग मै बजी बधाई ॥ २५ ॥
 गढ़ पर जबे बधाई भई । सऊन काढि क्रिपाने लई ।
 जा पर पहुचि खड़ग कह झार्यो । एकै घाइ मारही
 डार्यो ॥ २६ ॥ धुकि धुकि परे धरनि भट भारे । जनुक
 करवत्तन (मू०पं० १०६१) बिरछ बिदारे । जुझि जुझि मरे
 अधिक रिसि भरे । बहुरि न दिखयत ताजियन चरे ॥ २७ ॥
 ॥ दोहरा ॥ जैन्हलावदी शाह कौ तब ही दयो भजाइ ।
 रतनसेन राना गए गढ़ इह चरित दिखाइ ॥ २८ ॥ गौरा
 बादिल कौ दियो अति धन छोरि भंडार । ता दिन तै पदुमिनि
 भए बाढी प्रीति अपार ॥ २९ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे इक सौ निनानवों चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ १६६ ॥ ३७२५ ॥ अफजू ॥

घर आ रही है । उसने कहा है कि पहले मैं राणा से मिल आऊँ, फिर
 तुम्हारी शय्या की शोभा बढ़ाती हूँ ॥ २३ ॥ यह कहकर वह लोहार (लोहा
 काटनेवाला) वहाँ चला गया और राजा की बेड़ियाँ काटने लगा । फिर
 उसे पहली पालकी में बैठाया और पहुँचा दिया ॥ २४ ॥ वह एक से
 दूसरी डोली में होता हुआ वहाँ से अन्यत्र निकल गया और छलपूर्वक वहाँ
 (अपने किले में) आ पहुँचा । उसी क्षण दुर्ग में बधाई के वाद्य बज उठे ॥ २५ ॥
 गढ़ पर जब बधाई बजी तो सैनिकों ने तुरन्त कृपाणें निकाल लीं और जिस
 पर खड़ग से वार किया उसे एक ही वार में मार डाला ॥ २६ ॥ धरती
 पर बड़े-बड़े वीर गिरने लगे मानों आशा से वृक्ष काटे गए हों । वे अत्यन्त
 क्रुद्ध एक-दूसरे से जूझ-जूझकर मारे गए और फिर घोड़ों पर चढ़े दिखाई
 नहीं पड़े ॥ २७ ॥ ॥ दोहरा ॥ जैनुलाबादी शाह को उन्होंने भगा दिया और
 यह छल दिखाकर राणा रतनसेन अपने किले में वापस चले गए ॥ २८ ॥
 उन्होंने गोरा-बादल को विपुल धन-सम्पत्ति दी और उस दिन से पद्मिनी में
 उसकी प्रीति और बढ़ गई ॥ २९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में एक सौ निन्यानबेवें चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ १६६ ॥ ३७२५ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ त्रिगति देस एस्वर बडो द्रुगतिंसिघ
 इक भूप । देग तेग पुरो पुरख सुंदर काम सरूप ॥ १ ॥
 ॥ तोटक छंद ॥ उडगिंद्रप्रभा इक ता की त्रिया । दिन रैन
 भजै मुख जामु पिया । बिसुनाथप्रभा त्रिय और रहै । अति
 सुंदर ताकह जगत कहै ॥ २ ॥ बिसुनाथप्रभा तन प्रीति रहै ।
 उडगिंद्रप्रभा इक बैन चहै । दिन रैन बितीत करै इहके ।
 कबहूँ ग्रहि जात नही तिहके ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ ता पर
 शत्रु तवन को धायो । द्रुगतिंसिघ दलु लै समुहायो । मच्यो
 जुद्ध अति बजे नगारे । देव अदेव बिलोकत सारे ॥ ४ ॥
 उमडे सूर सिंघ जिमि गाजहि । दोऊ दिसन जुझउआ बाजहि ।
 गोमुख संख निशान अपारा । ढोल म्रिदंग मुचंग नगारा ॥ ५ ॥
 तुरही नाद नफीरी बाजहि । मंदल तूर उतंग बिराजहि ।
 मुरली झाँझ भेर रन भारी । सुनत नाद धुनि हठे हकारी ॥ ६ ॥
 जुगनि दैत अधिक हरखाने । गोध सिवा फिकरहि अभिमाने ।
 भूत प्रेत नाचहि अरु गावहि । कहूँ रुद्र डमरू डमकावहि ॥ ७ ॥

दो सौवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ त्रिगति नामक ऐश्वर्यवान देश में द्रुगतिंसिंह एक राजा
 था, जो देग और तेग में पूर्ण था तथा कामदेव के सदृश सुन्दर था ॥ १ ॥
 ॥ तोटक छंद ॥ उडगिंद्रप्रभा उसकी पत्नी थी जिसे प्रियतम दिन-रात स्मरण
 किया करता था । उसकी एक अन्य स्त्री विश्वनाथप्रभा थी जिसे संसार
 अत्यन्त सुन्दर मानता था ॥ २ ॥ राजा की विश्वनाथप्रभा के साथ प्रीति
 थी और उडगिंद्रप्रभा तो एक बोल ही चाहती थी । राजा दिन-रात उसके
 साथ व्यतीत करता था, परन्तु इसके घर भी नहीं जाता था ॥ ३ ॥
 ॥ चौपाई ॥ राजा पर उसके शत्रु ने आक्रमण कर दिया और द्रुगतिंसिंह
 भी दल लेकर सम्मुख आ गया । युद्ध छिड़ गया और देव-अदेव सभी देखने
 लगे ॥ ४ ॥ वीर सिंह की तरह उमड़कर गरजने लगे और दोनों ओर रण-
 वाद्य बजने लगे । वहाँ गोमुख, शंख, नगाड़े, ढोल, मृदंग, मुचंग आदि बज
 रहे थे ॥ ५ ॥ तुरही, नाद, नफीरी, मंदल, तूर, उतंग, मुरली, झाँझ, भेरी
 आदि की ध्वनि सुनकर हठी वीर और क्रोधित हो उठे ॥ ६ ॥ योगिनियाँ,
 दैत्य प्रसन्न हो उठे और गिद्ध गर्वपूर्ण होकर लाशों में विचरण करने लगे ।

अचि अचि रुधर डाकनी डहकहि । भखि भखि अमिख
 काक कहूँ कहकहि । जंबुक गीध मासु ले जाहीं । कछु कछु
 शबद बिताल सुनाहीं ॥ ८ ॥ झमकें कहूँ असिन की धारा ।
 भभकहि रुंड मुंड बिकरारा । धुकि धुकि परे धरनि भट
 भारे । झुकि झुकि बड़े पखरिया मारे ॥ ९ ॥ ठिला ठिली
 बरछिन सौ माची । कढा कढी करवारिन राची । कटा
 कटी कहूँ भई कटारी । धरनी अरुन भेस भई सारी ॥ १० ॥
 काढे दैत दाँत कहूँ फिरें । बरि बरि कहूँ बरंगन बरें ।
 भीखन भए नाद (म० प्र० १०६२) कहूँ भारे । भैरवादि छबि
 लखन सिधारे ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ भकभकाहि घायल कहूँ
 कहकें अमित मसान । बिकटि सुभट चटपट कटे तन जिन
 बहे क्रिपान ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ भैरव कहूँ अधिक भवकारें ।
 कहूँ मसान किलकटी मारें । भाँ भाँ बजे भेर कहूँ भीखन ।
 तनि धनु तजहि सुभट सर तीखन ॥ १३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ चाबि
 चाबि करि ओसठ दुबहिया धावहीं । बज्र बान बिछुअन के

भूत-प्रेत नाचने-गाने लगे और कहीं रुद्र डमरू डमकाने लगे ॥ ७ ॥ चल्लू
 भर-भरकर डाकिनियाँ रुधिर पीने लगीं और कौवे मांस खा-खाकर काँव-
 काँव करने लगे । गीदड़-गिद्ध मांस ले जा रहे थे और बैतालों की आवाजें
 भी सुनाई पड़ रही थीं ॥ ८ ॥ तलवारों की धाराएँ कहीं चमक रही थीं
 और रुंड-मुंड विकराल रूप से भभक रहे थे । धरती पर बड़े-बड़े वीर धकेले
 जा रहे थे और झुक-झुककर बड़े अश्वारोहियों को मारा जा रहा था ॥ ९ ॥
 बछियों की ठेल-ठाल मची हुई थी और तलवारों की "निकाल-मार" चल
 रही थी । कटारों से कटा-कटी इतनी भीषण हुई कि सारी धरती लाल हो
 गई ॥ १० ॥ कहीं दैत्य दाँत निकालकर घूम रहे थे और कहीं अप्सराएँ
 वरुण कर रही थीं । कहीं भीषण घनघोर नाद हो रहे थे और भैरवादि
 छवि देखने के लिए आ पहुँचे ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ अनेकों प्रेत भभक रहे
 और कहकहे लगा रहे थे । अनेकों सुभट शीघ्र ही कट मरे और शरीरों पर
 कृपाणों के घाव लग रहे थे ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ कहीं भैरव अत्यधिक
 गरज रहे थे और कहीं प्रेत किलकारियाँ मार रहे थे । कहीं भाँय-भाँय
 स्वर में भेरी बज रही थी और तीक्ष्ण बाणों की मार से शूरवीर प्राण त्याग
 रहे थे ॥ १३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ ओंठ चबा-चबाकर वीर टूट पड़ रहे थे और
 वज्र-बाण बिच्छुओं के घाव लगा रहे थे । वे खंड-खंड होकर गिर रहे थे,

बिनन लगावहीं । टूक टूक हवै गिरै न मोरै नैक मन ।
 हो तनिक तनिक लगि गए असिन की धार तन ॥ १४ ॥ मोरि
 बाग बाजन की नैक न भाजही । खरे खेत के साँझ सिंघ ज्यों
 गाजही । खंड खंड हवै गिरे खंडिसन खंड करि । हो खंडे
 खड़ग की धार गए भवसिंध तरि ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ भकभकाहि
 घायल कहूँ रुंड मुंड बिकरार । तरफराहि लागे कहूँ छत्ती
 छत्तन धारि ॥ १६ ॥ ॥ चौपई ॥ हाँकि हाँकि भट तुरै
 धवावहि । गहि गहि असनि अरिन ब्रिण लावहि । चटपट
 सुभट बिकट कटि मरे । चुनि चुनि ऐन अपच्छरा बरे ॥ १७ ॥
 ॥ अडिल्ल ॥ द्रुगतिंसिंघ के सूर सकल भाजत भए । त्रिपजूझे
 रन माहि सँदेसा अस दए । सुनि बिसुनाथप्रभा चित भीतरि
 चकि गई । हो स्त्री उडगिंद्रप्रभा जरबे कह उदित भई ॥ १८ ॥
 जो धनु ता को हुतो सु दियो लुटाइकै । चली जरन के हेत
 म्रिदंग बजाइकै । प्राननाथ जित गए तही मै जाइहौ । हो
 जियत न आवत धाम मरे ते पाइहौ ॥ १९ ॥ स्त्री बिसुनाथ-
 प्रभा जरिबे ते डरि गई । मर्यो त्रिपति सुनि कान अधिक

पर मन को युद्ध से हटा नहीं रहे थे और वीरों के शरीर टुकड़े-टुकड़े
 होकर कृपाणों से लग गए ॥ १४ ॥ घोड़ों की लगाम मोड़कर वे तनिक भी
 भाग नहीं रहे थे और युद्ध में खड़े होकर शेर की तरह गरज रहे थे । खड़गों
 की मार से वीर टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़े थे और खड़ग-धार पर भवसिंधु
 पार गए ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ कहीं शरीर रुंड-मुंड एवं घायल हो भभक
 रहे थे । कहीं क्षत्रिय एवं छत्रधारी तड़फड़ा रहे थे ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ वीर
 हाँक-हाँककर घोड़े दौड़ा रहे थे और तलवारें हाथ में पकड़-पकड़कर घाव
 लगा रहे थे । वीर शीघ्र ही कट-मर रहे थे और अप्सराएँ तुरन्त उनका
 वरण कर रही थीं ॥ १७ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ द्रुगतिंसिंह के समस्त शूरवीर
 भागने लगे और आकर उन्होंने संदेश दिया कि राजा युद्ध में जूझ गया ।
 विश्वनाथप्रभा यह सुनकर चकित रह गई और उडगिंद्रप्रभा तो जलने के
 लिए तैयार हुई ॥ १८ ॥ जो धन उसके पास था वह उसने लुटा दिया
 और मृदंग बजाकर जल मरने के लिए चल पड़ी । जहाँ प्राणनाथ गए मैं
 भी वहाँ जाऊँगी । मेरे जीवित रहते तो वे मेरे घर नहीं आते थे, अब मैं
 मरकर उन्हें प्राप्त करूँगी ॥ १९ ॥ विश्वनाथप्रभा जलने से डर गई । उसने
 जब राजा की मृत्यु का समाचार कान से सुना तो अत्यधिक (सिर) पीटने

पीटत भई । तब लौ अरिन बिदारि गयो त्रिप आइकै । हो
हेरि सती की मीचि रह्यो बिसमाइकै ॥ २० ॥ जब
उडगिंद्रप्रभा की सुधि कानन परी । बिरह तिहारे बाल
अगनि मो जरि मरी । तब प्रिय तबहीं तहा पहुच्यो
आइकै । हो तरल तुरंगन माँझ तुरंग धवाइकै ॥ २१ ॥
॥ दोहरा ॥ त्रिप आवत लौ मूरखन दीनी चिता जराइ ।
जियत मरे पति की कछू सुधि नहि लई बनाइ ॥ २२ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ त्रिय को लै लै नामु त्रिपति पीटत भयो ।
मुहि कारन इह बाल अगनि महि जिय दयो । बरत (सू० प्र० १०६३)
बाल कौ अब ही ऐंचि निकारिहौ । हो नातर जरि याही संग
स्वरग सिधारिहौ ॥ २३ ॥ ॥ चौपई ॥ अब ही तुरंग अगनि
मै डारौ । जरत प्रिया कहू ऐंचि निकारौ । कै हमहूँ याही
चित जरिहैं । सुरपुर दोऊ पयानो करिहैं ॥ २४ ॥
॥ दोहरा ॥ खड़ग काढ कर मै लयो मोहि न पकर्यो कोइ ।
कै काढो इह कै जरै करता करै सु होइ ॥ २५ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ खड़ग काढि कर माझ धवावत है भयो । जरत
जहाँ त्रिय हुती चिता मै पति गयो । पकर भुजा ते ऐंचि

लगी । तब तक शत्रु को मारकर राजा आ गया और सती के मृत्यु के
बारे में सुनकर चकित रह गया ॥ २० ॥ जब उसने उडगिंद्रप्रभा की बात कान
से सुनी कि वह मेरे बिरह में जल मरी है, तब प्रिय (राजा) तेज घोड़ों को
दौड़ाकर वहाँ तुरन्त पहुँच गया ॥ २१ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा के आते तक
मुखों ने उसकी चिता को जला दिया और उसे पति के जीवित होने या मरने
की कुछ भी खबर नहीं ली ॥ २२ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उस स्त्री का नाम लेकर
राजा (सिर) पीटने लगा कि मेरे कारण ही इस स्त्री ने अग्नि में प्राण दे
दिये । मैं अभी जलती स्त्री को खींच निकालूँगा अथवा इसी के साथ जलकर
स्वर्ग चला जाऊँगा ॥ २३ ॥ ॥ चौपाई ॥ अभी घोड़ा अग्नि में डालता हूँ
और जलती हुई प्रियतमा को खींच निकालूँगा । अथवा मैं भी इसी चिता
में जलकर दोनों ही स्वर्ग के लिए प्रस्थान करेंगे ॥ २४ ॥ ॥ दोहरा ॥ खड़ग
निकाल हाथ में पकड़कर उसने कहा कि मुझे कोई न पकड़े अथवा इसे
जलती हुई को निकालो; जो ईश्वर को मंजूर होगा वही होगा ॥ २५ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ खड़ग हाथ में लेकर राजा अग्नि में घुस पड़ा । जहाँ चिता में
स्त्री जल रही थी वहाँ पति भी पहुँचा । बाँह से पकड़कर तरुण राजा ने

तरुन तरुनी लियो । हो राजसिंघासन पाव बहुरि अपनो
दियो ॥ २६ ॥ ॥ दोहरा ॥ निरख राव तन कहि उठे धन्य
धन्य सभ सूर । मरे स्वरग बासा तिनैं जीवत बाचा
पूर ॥ २७ ॥ ॥ चौपई ॥ सभ रानिन ऐसे सुनि पायो ।
ताँहि जरत त्रिप आपु बचायो । मरत हुती जीवत सो भई ।
जीवत हुती अतक ह्वै गई ॥ २८ ॥ अब हम कौ त्रिप
चित न ल्यैहै । वाही के ह्वैकै बसि जैहै । अब कछु ऐस
उपाइ बनाऊँ । या सौ पति की प्रीति मिटाऊँ ॥ २९ ॥
देखहु इह रावहि क्या कहियै । मन मै समुझि मौनि ह्वै
रहियै । जो लै सूरति जार की जरी । ताके हेत इती इन
करी ॥ ३० ॥ यह लै सूरति जार की जरी । ह्वैहै
अरध जरी हूँ परी । जौ ताकौ इह राव निहारै । अबही
याकौ जिय ते मारै ॥ ३१ ॥ यौ जब बैन राव सुनि पायो ।
हेरन तवन चिता कह आयो । अरधजरी प्रतिना लहि लीनी ।
प्रीति जु बढी हुती तजि दीनी ॥ ३२ ॥ तब बानी नभ तें इह
होई । उडगप्रभा सहि दोसु न कोई । बिमुसिप्रभा यहि

तरुणी को निकाल लिया और फिर राजसिंहासन पर आ बैठा ॥ २६ ॥
॥ दोहरा ॥ राजा को देखकर सभी वीर धन्य-धन्य कह उठे । ऐसे वीर मरने
पर स्वर्ग पाते हैं और जीवित बचने पर पूर्ण मनुष्य के रूप में आदर्श बनते
हैं ॥ २७ ॥ ॥ चौपाई ॥ रानी ने सुना कि उस जलती हुई को राजा
ने स्वयं बचाया है । अब जो मर रही थी वह जीवित हो उठी और जो
जीवित थी वह मर गई ॥ २८ ॥ अब राजा मुझ पर ध्यान नहीं देगा और
उसी का होकर रह जायगा । अब कुछ ऐसा उपाय किया जाय जिससे पति
की प्रीति इस पर समाप्त हो जाय ॥ २९ ॥ (उसने कहना शुरू कर दिया
कि) राजा को क्या कहा जाय, मन में समझकर चुप रहना ही ठीक है ।
जो यार की मूर्ति के साथ जल मरी उसके लिए राजा ने इतना किया (यह
ठीक नहीं किया) ॥ ३० ॥ यह यार की जो मूर्ति साथ ले जली थी वह भी
अभी आधी जली पड़ी होगी । यदि राजा देख ले तो अभी इसे मार
डाले ॥ ३१ ॥ जब राजा ने यह सुना तो वह ढूँढ़ने के लिए चिता पर गया ।
उसने अधजली प्रतिमा वहाँ से पाली और जितना प्यार उसके लिए बढ़ा
था वह सब त्याग दिया ॥ ३२ ॥ तब आकाशवाणी हुई कि उडगप्रभा में
कोई दोष नहीं है । यह प्रपंच विश्वनाथप्रभा ने किया है और तुम्हारे चित्त को

चरित बनायो । ताते चित तुमरो डहकायो ॥ ३३ ॥ जिह
 त्रिय तुम तन जर्यो न गयो । तवनि बाल असि चरित
 बनयो । जिनि त्रिप की यासौ रुचि बाढे । जीयत हमै छोरि
 करि छाडै ॥ ३४ ॥ तब राजै ऐसे सुनि पाई । साची ही
 साची ठहराई । उडगप्रभा तन अति हित कीनो । वासो
 त्यागि नेह सभ दीनो ॥ ३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्त्री उडगिद्र
 प्रभा भए राज कर्यो सुख मान । बिमुसि प्रभा संग दोसती
 दीनी त्याग निदान ॥ ३६ ॥ १ ॥ (मू० ग्रं० १०६४)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ २०० ॥ ३७६१ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ इक चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ रूम शहिर के शाह की सुता जलौखाँ
 नाम । किधौ काम की कामनी किधौ आप ही काम ॥ १ ॥
 अति जोबन ताँकै दिपै सभ अंगन के साथ । दिन आशिक दिन-
 पति रहै निमु आशिक निसनाथ ॥ २ ॥ सहसानन सोभा भनै
 लिखत सहस भुज जाहि । तदिप जलौखाँ की प्रभा बरनि न

भ्रम में डाला है ॥ ३३ ॥ जिस स्त्री से तुम्हारा व्यवहार सहन नहीं हुआ
 उसी ने यह चरित बनाया है ताकि राजा की इससे प्रीति न बढ़ जाय और
 हमें जीवित ही भुला न दे ॥ ३४ ॥ तब राजा ने यह सुनकर सच्ची को ही
 सच्ची ठहराया । तब उसने उडगप्रभा से अत्यन्त स्नेह किया और उससे
 एकदम प्रेम त्याग दिया ॥ ३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ उडगिद्रप्रभा के साथ उस राजा
 ने सुखपूर्वक राज किया और विश्वनाथप्रभा से मैत्री का त्याग कर
 दिया ॥ ३६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २०० ॥ ३७६१ ॥ अफजू ॥

दो सौ पहला चरित्र-कथन

॥ दोहरा ॥ रूम शहर के शाह की पुत्री का नाम जुलैखाँ था । वह
 मानों काम की स्त्री रति थी अथवा स्वयं ही कामदेव थी ॥ १ ॥ उसके सारे
 अंगों में यौवन दमकता था और दिन में सूर्य उसका आशिक रहता था तथा
 रात में चन्द्रमा उसका प्रेमी था ॥ २ ॥ सहस्रों मुख से कही जाय और

आवत ताहि ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ मिसर शाह को पूत
 भणिज्जै । यूसफ खाँ तिह नाम कहिज्जै । जो अबला तिह
 नैकु निहारै । चट दै लाज बस्त्र कौ फारै ॥ ४ ॥
 ॥ दोहरा ॥ ताँके तन मै अति प्रभा आपि करी करतार ।
 पैगंबर अंबर तिसै कहत सु बुद्धि बिचारि ॥ ५ ॥
 ॥ चौपई ॥ ताँके भ्रात सकल रिसि धारै । हम क्योंहूँ यूसफ
 कौ मारै । हमरो रूप कर्यो घट करता । याको रूप दुखन
 को हरता ॥ ६ ॥ ताँको लै अखेट करि गए । बहु बिधि
 म्रिगन सँघारत भए । अधिक प्यास जब ताहि सतायो ।
 एक रूप भ्रातान तकायो ॥ ७ ॥ तह हम जाइ पानि सभ
 पीयै । शोक निवारि सुखी हवै जीयै । यूसफ बात न पावत
 भयो । जह वह कूप हुतो तह गयो ॥ ८ ॥ चलि बन मै
 जब कूप निहार्यो । गहि भइयन ता मै तिह डार्यो । घर
 यौ आनि संदेसो दयो । यूसफ आजु सिंघ भखि लयो ॥ ९ ॥
 खोजि सकल यूसफ को हारे । असुख भए सुख सभै बिसारे ।
 तहा एक सौदागर आयो । कूप बिखै ते ताकह पायो ॥ १० ॥

सहस्रों भुजाओं से लिखी जाय तो भी जुलैखाँ के सौंदर्य का वर्णन नहीं हो
 सकता ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ मिस्र देश के शाह का पुत्र यूसुफ खाँ कहा जाता
 था । जो स्त्री उसे देख लेती थी, तुरन्त लज्जा छोड़, निर्वस्त्र हो जाती
 थी ॥ ४ ॥ ॥ दोहा ॥ स्वयं उसके तन की अनुपम शोभा खुदा ने बनाई थी,
 जिसका वर्णन सदैव पैगम्बरों ने किया करते हैं ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसके
 भाई उससे ईर्ष्या करते थे कि हम कैसे भी यूसुफ को मार दें । हमारा रूप
 परमात्मा ने कम बनाया है और इसका रूप-सौंदर्य दुखों का नाश करनेवाला
 है ॥ ६ ॥ उसको लेकर वे शिकार खेलने गए और वहाँ उन्होंने अनेकों मृगों
 को अनेकों प्रकार से मारा । जब उसे अत्यधिक प्यास लगी तो भाइयों ने
 उसे एक कुआँ दिखाया ॥ ७ ॥ वहाँ हम सब चलकर पानी पीते हैं और
 शोक का निवारण कर सुखी होते हैं । यूसुफ बात को समझा नहीं और जहाँ
 वह कूप था वहाँ चला गया ॥ ८ ॥ जब वन में कुआँ देखा तो भाइयों ने
 उसे पकड़कर उसमें डाल दिया । घर में आकर बता दिया कि यूसुफ को
 शेर खा गया है ॥ ९ ॥ सभी यूसुफ को खोजकर हार गए और सुखों से
 विहीन हो दुखी हो उठे । वहाँ एक सौदागर आया और उसने कुएँ में उसे
 देखा ॥ १० ॥ उसे उसने साथ ले लिया और रूम के शाह के पास बेचने

ताकह संग अपुने करि लयो । बेचन शाह रुम के गयो ।
 अधिक मोल कोऊ नहि लेवै । ग्रहि को काढि सकल धनु
 देवै ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ जबै जलीखाँ यूसफहि रूप
 बिलोक्यो जाइ । बसु असु दै ताको तुरत लियो सु मोल
 बनाइ ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ मुख माँग्यो ताको भनु दियो ।
 यूसफ मोल अमोलक लियो । भाँति भाँति सेती तिह पार्यो ।
 बडो भयो इह भाँति उचार्यो ॥ १३ ॥ चित्रसाल ताको लै
 गई । नाना चित्र दिखावत भई । अधिक यूसफहि जबै
 रिझायो । तब तासो यौ बचन सुनायो ॥ १४ ॥ हम तुम
 आजु करै रति दोऊ । हैं न इहाँ ठाढो जन कोऊ । कवन
 लखै कासो कोऊ कहिहै । हयाँ को आनि रमत हम
 गहिहै ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ मै तरुनी तुमहूँ तरुन दुहूँअन
 रूप अपार । (मू०पं०१०६५) शंक त्यागि रति कीजियै कत जकि
 रहे कुमार ॥ १६ ॥ तै जु कहत नहि कोऊ निहारै । आँधर
 ज्यों तै बचन उचारै । साखी सात संग के लहिहैं । अब
 ही जाइ धरम तन करिहैं ॥ १७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ धरमराइ
 की सभा जबै दोऊ जाइहैं । कहा बदन लै तासै उल दियाइहैं ।

के लिए चल पड़ा । उसकी अधिक क्रीमत तो कोई नहीं लगाता था, बस
 घर का सारा धन निकालकर दे देता था ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब जुलैखाँ
 ने यूसुफ का रूप जाकर देखा तो फिर किसी न किसी प्रकार इसने उसका
 मोल-भाव बना लिया ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ मुँह माँगा उसको धन दिया
 और यूसुफ को अमूल्य मानकर ले लिया । भाँति-भाँति से उसका भरण-
 पोष किया और उसे बड़ा व्यक्ति बना दिया ॥ १३ ॥ उसे चित्रशाला में
 ले गई और उसे अनेकों चित्र दिखाए । जब उसने यूसुफ को अत्यधिक प्रसन्न
 कर लिया तो उससे कहा ॥ १४ ॥ आओ आज हम-तुम दोनों रतिक्रीड़ा
 करें, यहाँ कोई भी नहीं है । कौन यहाँ देखेगा, किससे कोई कहेगा और
 कौन रमण कर रहे हम लोगों को पकड़ लेगा ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ मैं तरुणी
 हूँ, तुम तरुण हो और दोनों का रूप अपार है । इसलिए हे कुमार ! क्यों
 आश्चर्य में पड़े हो; निःशंक होकर रतिक्रीड़ा करो ॥ १६ ॥ तुम जो कह
 रही हो कि कोई नहीं देखता, यह तुमने अंधों की तरह कहा है । जो सात
 साक्षी साथ हैं उन्हें कौन हटा देगा और वे अभी धर्मराज से जाकर
 कहेंगे ॥ १७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब हम दोनों धर्मराज की सभा में जायेंगे

इन बातन कौ तैं त्रिय कहा बिचारई । हो महाँ नरक के बीच न मोकौ डारई ॥ १८ ॥ सालग्राम परमेश्वर इही गति ते भए । दस रावन के सीस इही बातन गए । सहस्र भगन बासव याही ते पाइयो । हो इन बातन ते मदन अनंग कहाइयो ॥ १९ ॥ इन बातन ते चंद्र कलंकित तन भए । सुंभ असुंभ असुरिंद्र सदन जम के गए । इही काज क्रीचक क्रीचकन खपाइयो । हो धरमराट दासी सुत बिदुर कहाइयो ॥ २० ॥ सुनि सुंदरि तव संग भोग मो ते नहि होई । शिव सनकादिक कोटि कहैं मिलिकै सभ कोई । यौ कहिके भजि चलयो बाल ठाढी लह्यो । हो गहिकै करि सो ऐंचि ताहि दामन गह्यो ॥ २१ ॥ ॥ दोहरा ॥ कर दामन पकर्यो रह्यो गयो सु यूसफ भाजि । कामकेल तासौ न भयो रही चंचला लाजि ॥ २२ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अवर कथा जो भई कहा लौ भाखियै । बात बढन की करि चित ही मै राखियै । तरुन भयो यूसफ अबला ब्रिधित भई । हो ताको चित ते रीति प्रीति की नहि गई ॥ २३ ॥ मारि म्रिगन यूसफ तह इक दिन

तो क्या मुँह लेकर जायेंगे और क्या मुँह लेकर उसे उत्तर देंगे । इन बातों को हे स्त्री ! तुम कहाँ विचार कर रही हो और कहाँ मुझे महानरक में डाल रही हो ॥ १८ ॥ परमेश्वर इसी कारण पत्थर के शालिग्राम बने, रावन के दस सिर इसी कारण गए, इन्द्र को सहस्र भग (छिद्र) इसी कारण प्राप्त हुए और कामदेव को इसी कारण जलना पड़ा ॥ १९ ॥ चन्द्रमा भी इन्हीं बातों के कारण कलंकित हुआ । शुंभ, निशुंभ एवं महिषासुर इसी बात के कारण यमलोक जा पहुँचे । इसी कारण कीचक अनेकों कीचकों-सहित नष्ट हुआ और राजा को दासी-सुत विदुर कहलाना पड़ा ॥ २० ॥ हे सुन्दरी ! यदि शिव-सनकादि अनेकों भो मुझसे कहें तो मुझसे तुम्हारे साथ रतिक्रीड़ा नहीं होगी । यह कहकर वह स्त्री को खड़ी देखकर भाग चला तो उसने हाथ से खींचकर उसका दामन पकड़ा ॥ २१ ॥ ॥ दोहरा ॥ हाथ से दामन पकड़ा रह गया और यूसुफ भाग गया । स्त्री की रतिक्रीड़ा उससे न हो सकी और वह लज्जित हो रह गई ॥ २२ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अब और क्या हुआ क्या बताएँ । बात बढने को समझकर अब उसे मन में ही रखा जाय । यूसुफ जवान हो गया और वह स्त्री वृद्ध हो गई, पर फिर भी उसकी प्रीति उसके मन से नहीं गई ॥ २३ ॥ एक दिन मृग (जानवर) मारकर यूसुफ वहाँ

आइयो । पूछन के मिसु ताको हाथ लगाइयो । बाज ताज सुत बस्त्र बिरह बाला जरियो । हो सो अंतर बसि रह्यो जु याते उबरियो ॥ २४ ॥ हेरि बाल को रूप चकित यूसफ भयो । जो तिह मनोरथ हुतो वहे ताको दयो । बसत बाज को जारि गलीखाँ तिह छर्यो । हो मित्र पुत्र ज्यों पाइ तबै ताको बर्यो ॥ २५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जिह पाछे बाला परै बचन न ताको कोइ । सभ छल सों ताको छलै शिव सुरपति कोऊ होइ ॥ २६ ॥ १ ॥ (मू०प्र० १०६६)

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ इक चरित्र समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २०१ ॥ ३७८७ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ दो चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ उग्र सिंघ राजा बडो कासिकार को नाथ । अमित दरबु ताको सदन अधिक चढ़त दल साथ ॥ १ ॥ चपलकला ताकी सुता सभ सुंदर तिह अंग । कै अनंग की आतमजा कै आपै आनंग ॥ २ ॥ सुंदर ऐंठी सिंघ लखि तबही लयो बुलाइ । कामकेल चिर लौ कियो ह्मिदै हरख

आया और पूछने के बहाने उसने उसे छू दिया । उसका घोड़ा, ताज, वस्त्र आदि उसके विश्वाग्नि में जल उठा । यह तो जिसमें जाग पड़ा वह उसी के वश में हो गया ॥ २४ ॥ उस स्त्री का रूप देख यूसुफ चकित हो गया और अब उसने वही किया जो उसका मनोरथ था । जुलखाँ ने उसे छल लिया और पुत्र के समान मित्र को पाकर उसका वरण किया ॥ २५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जिसके पीछे औरत पड़ जाय फिर उसका बचाव नहीं हो सकता । चाहे कोई शिव हो अथवा इन्द्र, यह सबको छल से छल लेती है ॥ २६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ पहले चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २०१ ॥ ३७८७ ॥ अफजू ॥

दो सौ दूसरा चरित्र-कथन

॥ दोहरा ॥ काशिका का राजा उग्रसिंह था, जिसके पास अपरिमित द्रव्य और सेना थी ॥ १ ॥ उसकी सुन्दर अंगों वाली कन्या चपलकला थी । वह लगती थी मानों कामदेव की पुत्री हो अथवा स्वयं ही काम हो ॥ २ ॥ उसने सुन्दर ऐंठीसिंह को देखकर उसे तुरन्त बुला लिया और हृदय में

उपजाइ ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ नितप्रति तासो केल कमावै ।
 छैलिहि छैल न छोर्यो भावै । एकै सदन माँझ तिह राख्यो ।
 काहू साथ भेद नहि भाख्यो ॥ ४ ॥ केतिक दिनन व्याहि
 तिह भयो । ताको नाथ लैन तिह अयो । कामकेल तासो
 उपजायो । सोइ रह्यो अति ही सुख पायो ॥ ५ ॥ त्रिय
 कौ त्रिपति न ताँते भई । छोरि सँदूक जार पै गई ।
 अधिक मित्र तब ताहि रिझायो । कामकेल चिर लगे
 कमायो ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ कहा भयो बलवंत भ्यो भोग न
 चिर लौ कीन । आप न कछु सुख पाइयो कछु न तरुन सुख
 दीन ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ सो तरुनी को पुरख रिझावै ।
 बहुत चिर लगे भोग कमावै । ताको ऐँचि आपु सुख लेवै ।
 अपनो सुख अबला को देवै ॥ ८ ॥ ऐसे बली कैस कोऊ
 होई । ता पर त्रिया न रीझत कोई । जो चिर चिमटि
 कलोल कमावै । वहै तरुनि को चित चुरावै ॥ ९ ॥
 ॥ दोहरा ॥ चिमटि चिमटि तिह मीत सौ गरे गई लपटाइ ।
 स्रवन चटाको नाथ सुनि जाग्यो नींद गवाइ ॥ १० ॥ लपटि
 लपटि अति रति करी जैसी करै न कोइ । स्रमित भए तरुनी

प्रसन्न हो उससे केलिक्रीड़ा की ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ नित्य वह उससे केलि-
 क्रीड़ा करती थी और इस प्रकार उस छैल सुन्दरी से छैला को छोड़े नहीं
 बनता था । उसे एक मकान में रखा और किसी को भी यह रहस्य नहीं
 बताया ॥ ४ ॥ उसके विवाह को काफ़ी दिन हो गए थे और उसका पति
 उसे लेने के लिए आ पहुँचा । उससे उसने कामक्रीड़ा की और सुखपूर्वक सो
 रहा ॥ ५ ॥ स्त्री की तृप्ति उससे नहीं हुई और वह अपने मित्र के पास
 गई । मित्र ने उसे अत्यधिक रिझाया और काफ़ी देर तक कामक्रीड़ा करता
 रहा ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ बलवान होने से भी क्या होता है, यदि रमण देर
 तक नहीं किया; न खुद सुख पाया और न स्त्री को सुख दिया ॥ ७ ॥
 ॥ चौपाई ॥ तरुणी को वही पुरुष पसंद आता है जो उससे अत्यधिक समय
 तक भोग करे । उसको खींचकर आप सुख ले और अपना सुख उस स्त्री को
 दे ॥ ८ ॥ वैसे कोई कितना ही बली हो उस पर स्त्री रीझती नहीं । जो
 देर तक चिमट-चिमटकर आमोद-प्रमोद करे वही तरुणी का चित्त चुराता
 है ॥ ९ ॥ ॥ दोहा ॥ वह चिमट-चिमटकर मित्र के गले से लिपट गई और
 इधर पति भी चटखारे की आवाज़ सुनकर जग गया ॥ १० ॥ लिपट-

तरुन रहे तहा ही सोइ ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ जब त्रिय जार
 सहित स्वै गई । परे परे तिह नाथ तकई । पकरे
 केस छुटे लहलहे । जानुक सरप गाररू गहे ॥ १२ ॥
 ॥ दोहरा ॥ अंगरेजी गहिकै छुरी ताकी ग्रीव तकाइ । तनिक
 दबाई इह दिसा उहि दिसि निकसी जाइ ॥ १३ ॥
 ॥ चौपई ॥ छुरकी भए जार कौ घायो । निजु नारी तन कछु
 न जतायो । ताको तपत रुधिर जब लाग्यो । तब ही कोपि
 नारि को जाग्यो ॥ १४ ॥ छुरकी वहै हाथ मै लई । पति के
 पकरि कंठ मो दई । अज ज्यों ताहि जिबै करि डार्यो ।
 बार दुहन इह भाँति पुकार्यो ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ मोरे
 नाथ बिरक्त हवै बन को कियो (मू०प्र०१०६७) पयान । बारि
 सकल घर उठि गए शंका छाडि निदान ॥ १६ ॥
 ॥ चौपई ॥ ताँ ते कछू उपाइ बनैयै । खोजि नाथ बन ते ग्रहि
 ल्यैयै । ता को हेरि पानि मै पीवौ । बिनु देखै नैना दोऊ
 सीवौ ॥ १७ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ खोजि खोजि बन लोग सभै
 आवत भए । कहै त्रिया तव नाथ न हाथ कहूँ अए । आइ

लिपटकर उन्होंने अभूतपूर्व रतिक्रिया की और वे तरुण-तरुणी दोनों पसीना-
 पसीना हो गए ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब स्त्री मित्र के साथ सो गई तो
 उस पड़ी को उसके स्वामी (राजा) ने देखा । उसके केशों को (हल्के से)
 पकड़ा । वे ऐसे लग रहे थे मानों गर्वीले सर्प हों ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ तेज
 छुरी लेकर उस (मित्र) की गर्दन को निशाना बनाकर इधर से दबा दिया जो
 दूसरी ओर जा निकली ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ छुरी से यार को मार दिया
 और अपनी स्त्री को कुछ भी पता न चलने दिया । जब उसका गर्म खून
 (देह को) लगा तो नारी का क्रोध भड़क उठा ॥ १४ ॥ उसने वही छुरी
 पकड़कर पति के गले पर चला दी । उसे बकरे की तरह कत्तल कर डाला ।
 बाद में वह इस तरह चिल्लाने लगी ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ मेरे स्वामी संन्यास
 धारण कर बन को चले गए हैं । इस प्रकार सभी लोग जाग गए ॥ १६ ॥
 ॥ चौपाई ॥ इससे कुछ उपाय करना चाहिए और स्वामी को वन से खोजकर
 घर लाना चाहिए । मैं उन्हें ढूँढ़कर ही पानी पीऊँगी और उन्हें देखे बिना तो
 मैं अपने नयन सी लूँगी ॥ १७ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ सभी लोग वन से खोज-
 खोजकर आ गए और कहने लगे कि तुम्हारा स्वामी कहीं नहीं मिला । सब

निकटि ताकौ सभ ही समुझावही । हो भूले लोक अजान मरम
नहि पावही ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ दो चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २०२ ॥ ३८०५ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ तिन चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ नरकासुर राजा बडो गुआहटी को राइ ।
जीति जीति राजान की दुहिता लेत छिनाइ ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ तिन इक बिबत जग्य को कीनो । एक लच्छ राजा
गहि लीनो । जौ इक और बंद त्रिप परै । तिन त्रिपमेध जग्य
करि बरै ॥ २ ॥ प्रथम कोट लोहा को राजै । दुतिय ताँत्र
के दुरग बिराजै । तीजो अशट धात गढ़ सोहै । चौथ सिका को
किलो करोहै ॥ ३ ॥ बहुरि फटक को कोट बनायो । जिह
लख रुद्राचल सिर न्यायो । खशटम दुरग रुकम के सोहै ।
जाके तीर ब्रह्मपुर को है ॥ ४ ॥ सपतम गड़ सोनाँ को
राजै । जा कौ लंक बंक लख लाजै । ता के मध्य आपु
त्रिप रहै । आनि न मानै जो तिह गहै ॥ ५ ॥ जौ त्रिप

उसे आकर समझाने लगे और भूले हुए मूर्ख लोग रहस्य को नहीं समझ पा
रहे थे ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ दूसरे
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २०२ ॥ ३८०५ ॥ अफजू ।

दो सौ तीसरा चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ नरकासुर गौहाटी का बड़ा राजा था जो राजाओं की
पुत्रियाँ जीत-जीतकर छीन लेता था ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने एक यज्ञ का
आयोजन किया और एक लाख को पकड़ लिया । इसके बाद एक अन्य
राजा को पकड़ा क्योंकि उसे नृपमेध यज्ञ करना था ॥ २ ॥ उसका पहला
क्विला लोहे का था, दूसरा ताँबे का, तीसरा अष्टधातु का और चौथा सिक्के
का था ॥ ३ ॥ फिर स्फटिक का क्विला बनवाया जिसे देखकर रुद्राचल पर्वत
भी सिर झुकाता था । छठवाँ क्विला चाँदी का शोभायमान था जिसके समक्ष
ब्रह्मपुरी भी कुछ नहीं थी ॥ ४ ॥ सातवाँ क्विला सोने का था जिसे देखकर
लंका भी लज्जित होती थी । उसमें राजा स्वयं रहता था और जो उसकी

और हाथ तिह आवैं । तब बहु सभ राजा कह धावैं । सोरह सहस रानियन बरैं । नरामेध त्रिप पूरन करैं ॥ ६ ॥ इक रानी यौ बचन उचारा । द्वारावति उग्रसुजिआरा । जौ तूं ताहि जीति कै ल्यावैं । तब यह होम जग्य त्रिप पावैं ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ यौ कहिकै राजा भए पतिया लिखी बनाइ । जहाँ क्रिशन बैठे हुते दीनी तहा पठाइ ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ बैठे कहा क्रिशन बडभागी । तुम सौ डोठि हमारी लागी । इह त्रिप घाइ त्रिपान छुरैयै । हम सभहिनि बरि घर लै जैयै ॥ ९ ॥ जौ जब बैन क्रिशन सुनि पायो । गरुड़ चड़े गरुड़ाध्वज आयो । प्रथम कोट लोहा को तोर्यो । समुहि भए ताको सिर फोर्यो ॥ १० ॥ बहुरौ दुरग तांब्र को लीनो । अशट धात पुनि गढ़ बसि कीनो । बहुरि शिवा को कोट छिनायो । (मू०पं० १०६८) बहुरि फटक को किलो गिरायो ॥ ११ ॥ जब ही रुकम कोट कौ लाग्यो । तब त्रिप सकल शस्त्र गहि जाग्यो । सकल सैन लीने संग आयो । महा कोप करि नादि बजायो ॥ १२ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ काढि काढि करि खड़ग पखरिया धावही । महाँ खेत मै खत्री खिंग

सर्वोपरिता को नहीं मानता था उसको पकड़ लेता था ॥ ५ ॥ अब यदि उसके हाथ राजा लगता तो वह सब राजाओं को मार डालता । तब वह सोलह सहस रानियों का वरण करता और नरमेध यज्ञ पूरा करता ॥ ६ ॥ एक रानी ने कहा कि द्वारिका में उग्रसेन राजा है । यदि तुम उसे जीतकर ले आओ तो यह होमयज्ञ पूरा हो ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ यह कहकर राजाओं ने पत्र लिखा और जहाँ कृष्ण बैठे थे वहाँ पहुँचा दिया ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ हे बडभागी कृष्ण ! तुम कहाँ बैठे हो ? हम सबकी दृष्टि तुम्हारी ओर ही लगी हुई है । इस राजा को मारकर राजाओं को छुड़ाओ और हमारा वरण कर हमें घर ले जाओ ॥ ९ ॥ जब यह बात कृष्ण ने सुनी तो गरुड़ पर सवार होकर गरुड़ध्वज आ पहुँचा । पहले लोहे का किला तोड़ा और जो सामने आया उसका सिर फोड़ा ॥ १० ॥ फिर ताँबे का दुर्ग विजय किया और अष्टधातु के दुर्ग को वश में किया । फिर शिवजी के किले को छीना और बाद में स्फटिक का दुर्ग गिरा दिया ॥ ११ ॥ जब चाँदी के दुर्ग पर (चोटें) लगीं तो राजा शस्त्र पकड़कर जग उठा । वह समस्त सेना साथ लेकर महानुद्ध हो वाद्य बजाने लगा ॥ १२ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ खड़ग निकाल-निकालकर

नचावई । खंड खंड हवै गिरे खगिस के सर लगे । हो चले
 खेत को छाडि क्रोध अति ही जगे ॥ १३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ मंडे
 आनि मानी महां कोप हवै कै । किते बाढ वारीन कौ
 बांधि कै कै । किते पानि मांगै किते मारि कूकै । किते
 चारि ओरान ते आन ठूकै ॥ १४ ॥ किते शस्त्र अस्त्रान लै कै
 पधारै । किते बाढ वारी किते बान मारै । किते हाक कूकै
 किते रूह छोरै । किते छिप्र छत्रीन के छत्र तोरै ॥ १५ ॥
 भए नाद भारे महां कोप कै कै । किते बाढवारीन को बाढ दै
 कै । हन्यो क्रिशन क्रोधी भटं ब्रिणत घायो । भजै सूरमा
 रुक्म कोटं गिरायो ॥ १६ ॥ ॥ दोहरा ॥ रुक्म कोट कौ
 जीति कै तहाँ पहुँच्यो जाइ । जहाँ दुरग कलधोत कौ राख्यो
 द्रुगत बनाइ ॥ १७ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ तही जाइ लागो
 मच्यो लोह गाढो । महां छत्रधारीन कौ छोभ बाढो ।
 किते फाँस फाँसे किते मारि छोरे । फिरै मत्त दंती
 कहूँ छूछ गोरे ॥ १८ ॥ ॥ चौपई ॥ जुझि जुझि सुभट
 सामुहे सरै । चुनि चुनि किते बरंगनिन बरै । बरत

घुड़सवार दौड़ने लगे और महायुद्ध में क्षत्रिय खड़ग नचाने लगे । खगेश
 (श्रीकृष्ण-विष्णु) के बाण लगने से वीर खंड-खंड हो गिर पड़े और अत्यन्त
 क्रुद्ध हो युद्धस्थल को छोड़ चले ॥ १३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ मानी राजा ने
 अत्यन्त क्रुद्ध हो युद्धमंडित कर दिया और तलवारों का मानों बाँध खड़ा
 कर दिया । कितने पानी माँग रहे थे और कितने मार-मार चिल्ला रहे थे ।
 कितने ही चारों ओर से उमड़ पड़े थे ॥ १४ ॥ कितने ही लोग अस्त्र-शस्त्र
 लेकर पहुँचे और कितने कृपाणें तथा बाण मार रहे थे । कितने ललकार
 रहे थे और कितने प्राण त्याग रहे थे । अनेकों ही क्षत्रियों के छत्रों को
 शीघ्रता से तोड़ रहे थे ॥ १५ ॥ कहीं महाक्रुद्ध हो भारी नाद हो रहे थे
 और कहीं कृपाणों से कटाई हो रही थी । क्रुद्ध कृष्ण ने वीरों को घायल
 कर मार दिया और चाँदी के दुर्ग के गिरते वीर भाग खड़े हुए ॥ १६ ॥
 ॥ दोहरा ॥ चाँदी के किले को जीतकर (कृष्ण) वहाँ जा पहुँचा जहाँ सोने का
 दृढ़ किला बना रखा था ॥ १७ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ वह वहाँ जा भिड़ा
 और भीषण युद्ध शुरू हो गया । महाछत्रधारियों का क्षोभ बढ़ गया । कहीं
 पाशों से मार डाले, कहीं मारकर गिरा दिये और कहीं मदमस्त हाथी छूँछ
 हो झूल रहे थे ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ वीर जूझ-जूझकर सम्मुख हो मर रहे

बरंगनिन जु नर निहारैं । लरि लरि मरैं न सदन
 सिधारैं ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन जीति सभ सूरमा
 राजा दए छुराइ । नरकासुर कौ घाइयो अबला लई
 छिनाइ ॥ २० ॥ इह चरित तन चंचला राजा दए छुराइ ।
 क्रिशन नाथ सभहूँ करे नरकासुरहि हनाइ ॥ २१ ॥
 ॥ चौपई ॥ सोरह सपत क्रिशन तिय बरी । भाँति भाँति के
 भोगन भरी । कंचन को सभ कोट गिरायो । आनि द्वारिका
 दुरग बनायो ॥ २२ ॥ ॥ सवैया ॥ ग्रहि काहू के चौपरि
 मंडत है त्रिय काहू सों फाग मचावत हैं । कहूँ गावत गीत
 बजावत ताल सु बाल कहूँ दुलरावत हैं । गनिकान के खयाल
 सुनै कतहूँ कहूँ बस्त्र अनूप बनावत हैं । सुभ चित्रन चित्त
 सुबित्त हरे (मू० ग्रं० १०६६) कोऊ ताकौ चरित न पावत
 हैं ॥ २३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित पद्याने त्रिया चरिते मंत्री भूप संवादे दो सौ तिन चरित
 समापतम सत् सुभम सत् ॥ २०३ ॥ ३८२८ ॥ अफजू ॥

थे और कितने ही चुन-चुनकर अप्सराओं द्वारा वरण किये जा रहे थे ।
 अप्सराओं द्वारा वरण किये जा रहे (वीरों) को जो व्यक्ति देखता था वह घर
 नहीं जाता था और लड़ मरता था ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ कृष्ण ने जीतकर
 शूरवीर राजाओं को छुड़ा दिया और नरकासुर को मारकर स्त्रियों को
 छोन लिया ॥ २० ॥ स्त्रियों ने यह चरित बनाकर राजाओं को छुड़ा दिया
 और नरकासुर को मारकर सबने कृष्ण का वरण कर लिया ॥ २१ ॥
 ॥ चौपाई ॥ कृष्ण ने सोलह सौ स्त्रियों का वरण किया और भाँति-भाँति से
 रतिक्रीड़ा की । सोने के किले को गिराकर द्वारिका में आकर अन्य दुर्ग
 तैयार किया ॥ २२ ॥ ॥ सवैया ॥ किसी के घर में चौपड़ का खेल बना है,
 कहीं स्त्रियाँ होली खेल रही हैं । कहीं गीत गाकर ताल बजा रही हैं और
 कहीं बच्चों को दुलार रही हैं । कहीं गणिकाओं के गीत सुन रहे हैं और
 कहीं अनुपम वस्त्र बजाए जा रहे हैं । शुभ चित्र बने हैं और उनके मर्म को
 समझा नहीं जा रहा है ॥ २३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ तीसरे
 चरित की शुभ सत् समाप्ति ॥ २०३ ॥ ३८२८ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ चार चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ इक कैलाश मती रहै रानी रूप अपार ।
जाते जगत नरेश बिधि सीखी जुद्ध मझार ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ सिंघ सु बीर नाथ इक ताको । रूप बेस भाखत
जग दाको । अप्रमान तिह प्रभा बिराजै । निसिसि दिनिसि
निरखत मनु लाजै ॥ २ ॥ ॥ चौपई ॥ रैन दिवस बैरियन
बिदारै । शाह के रोज परगने मारै । एक जहाज जान नहि
देवै । लूटि लूटि सभहिन को लेवै ॥ ३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ लूटि
फिरंगी लए सकल इकठे भए । शाहजहाँ जू जहाँ तही सभ
ही गए । सभै लगे दीवानि पुकारे आइकै । हो हमरो न्याइ
करो इह हनौ रिसाइकै ॥ ४ ॥ ॥ शाह बाच ॥ कहो लूटि किन
लए तिसी को मारियै । ताही कौ इह ठौर सु नाइ उचारियै ।
ता पै अब ही अपनी फौज पठाइहैं । हो ताते तुमरो सभ ही
माल दिलाइ हैं ॥ ५ ॥ ॥ फिरंगी बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ जहाँ
कमछया को भवन तिसी ठौर के राइ । अधिक फिरंगी मारिकै
लीनो माल छिनाइ ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ ऐसे जब हजरति

दो सौ चौथा चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ कैलाशमती एक अपार रूपवाली रानी थी, जिससे राजा
जगत्नरेश ने युद्धकला युद्धक्षेत्र में सीखी ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसका
स्वामी वीरसिंह था, जिसके रूप-वेश की चर्चा जग करता था । उसकी प्रभा
अप्रमाण थी जिसे देखकर चाँद-सूर्य लज्जित होते थे ॥ २ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह
रात-दिन शत्रुओं को मारता था और शाह के परगनों को हथियाता था ।
वह एक भी जहाज जाने नहीं देता था और सबको लूट लेता था ॥ ३ ॥
॥ अडिल्ल ॥ सभी लुटे हुए फिरंगी एकत्र हुए और सभी शाहजहाँ के पास
गए । सभी दरबार में आकर पुकारने लगे कि हमारा न्याय कीजिए और
इसे मार डालिए ॥ ४ ॥ ॥ शाह उवाच ॥ बताओ किसने लूटा है ? उसे मार
डालूँ । मुझे इसी स्थान पर उसका नाम बताओ । मैं तुरन्त उस पर अपनी
फौज चढ़ा दूँगा और तुम लोगों का लूटा हुआ माल वापस दिला दूँगा ॥ ५ ॥
॥ फिरंगी उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ जहाँ कामाख्या का मंदिर है, उसी स्थान के
राजा ने अनेकों फिरंगियों को मारकर माल छिनवा लिया है ॥ ६ ॥

सुनि पाई । फौजें अति ही तहाँ पठाई । उमड़ि अनी चलि आवें
 तहाँ । राजत भवन कमख्या जहाँ ॥ ७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तब
 लौ सिंघ सु बीर लोक दिव के गयो । रानी दयो जराइ न
 लोगन भाखियो । कह्यो अनमनो राव कछुक दिन द्वै रह्यो ।
 हो राज साज लै हाथ आपु असि कौ गह्यो ॥ ८ ॥ जब लगि
 राजा नाइ तब लगे जाइ हौ । इन बैरिन के सिर पर खड़ग
 मचाइहौ । सकल बैरियन घाइ पलटि घर आइकै । हो
 करिहो जाइ प्रनाम पतिहि मुसकाइकै ॥ ९ ॥ सुनि ऐसे बच
 सूर सभै हरखत भए । भाँति भाँति के शस्त्र सभन हाथन
 लए । कछु भट दलहि दिखाइ ल्याए लाइकै । हो बडी फौज
 महि आनि दए सभ घाइकै ॥ १० ॥ दस सहस्र निसि कौ
 लिय बैल मँगाइकै । द्वै द्वै सींगन बधी मसाल जराइकै । इह
 दिसि दलहि दिखाइ आइ ओहि दिसि परी । (५०००११००)
 हो बडे बडे त्रिप घाइ मार क्रीचक करी ॥ ११ ॥ जब हो
 दूजो दिवस पहुँच्यो आइकै । भरि गोनै पन्हियन की दर्ई
 चलाइकै । लोग खजानौ जानि टूटि तापै परे । हो उहि दिसि

॥ चोपाई ॥ जब बादशाह ने यह सुना तो असंख्य सेना वहाँ भेज दी ।
 फौज वहाँ उमड़कर चली आ रही थी जहाँ कामाख्या-मंदिर था ॥ ७ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ उधर वीरसिंह क्रीड़ा हेतु गया हुआ था परन्तु रानी ने मन में
 इस बात को छुपाये रखा और किसी से कुछ न कहा । यह कह दिया कि
 राजा की तबियत कुछ दिनों से खराब है । यह कहकर उसने कृपाण हाथ
 में पकड़ ली और राजकाज का काम करने लगी ॥ ८ ॥ जब तक राजा
 नहीं आता मैं जाऊँगी और इन शत्रुओं के सिर पर तलवार चलाऊँगी ।
 समस्त शत्रुओं को मारकर एवं वापस आकर मैं मुस्कुराती हुई पति को प्रणाम
 करूँगी ॥ ९ ॥ यह वचन सुनकर सभी शूरवीर प्रसन्न हो उठे और भाँति-
 भाँति के शस्त्र उन्होंने हाथों में ले लिये । कुछ वीर उसे सेना दिखाकर
 लाये । वह फौज को मारती फौज में घुस पड़ी ॥ १० ॥ उसने रात को
 दस सहस्र बल मँगाये और उनकी सींगों पर दो-दो मशालें जलाकर बाँध दी ।
 उन्हें एक दिशा में चला दिया और आप दूसरी दिशा में टूट पड़ी और बड़े-
 बड़े राजाओं को मारकर मिट्टी में मिला दिया ॥ ११ ॥ जब दूसरा दिन
 आया तो इसने बोरों में जूते भरकर चला दिए । लोग खजाना समझकर
 उस पर लूटने के लिए टूट पड़े । उसी दिन उस स्त्री ने राजाओं के धन का

तैं उन बाल त्रिपति धन जुत हरे ॥ १२ ॥ दिन दूजो गयो
 दिवस तीसरो आइयो । तब रानी दुंदभि इक ठौर बजाइयो ।
 लोग दिरबु लै भजे जु तिह मगु आइयो । हो लूटिधनी सभ
 लिए न जानिक पाइयो ॥ १३ ॥ दिवस चतुथे दोनी आगि
 लगाइकैं । आपु एकठाँ थिर भई दलहि दुराइकैं । सभ राजन
 के लोग बुझावन लागए । हो जो पाए त्रिप रहे मारि अबला
 दए ॥ १४ ॥ दिवस पाँचवें अपनी अनी सुधारिकैं । मद्धि
 सैन के परी मसाले जारिकैं । मारि कूटि त्रिप सैन निकसि
 आपुन गई । हो पिता पूत सिर तेग पूत पितु के दर्ई ॥ १५ ॥
 ॥ दोहरा ॥ रैन समैं तिन ही बिखैं माच्यो लोह अपार । भट
 जूझे पितु पूत हनि पूत पिता को मार ॥ १६ ॥ रैन समै
 तवनै कटक लोह पर्यो बिकरार । ऊच नीच राजा प्रजा
 घायल भए सुमार ॥ १७ ॥ ॥ चौपई ॥ पितु लै खड़गु पूत
 को मार्यो । पूत पिता के सिर पर झार्यो । ऐसो लोह
 पर्यो बिकरारा । सभ घायल भे भूप समारा ॥ १८ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ दिवस खशटमौ जबै पहुँच्यो आइकैं । दो दो
 सरद लौ खाई गई खुदाइकैं । गडि सूरी जल ऊपर दए बहाइकैं ।

हरण किया ॥ १२ ॥ दूसरा दिन बीता और तीसरा दिन आया । तब
 रानी ने एक स्थान पर दुंदुभि बजायी तो लोग अपना धन-दौलत लेकर भागे
 और यह उसी रास्ते पर आ खड़ी हुई । उसने सब धनिकों को लूट
 लिया ॥ १३ ॥ चौथे दिन उसने आग लगा दी और सेना लेकर एक स्थान
 पर छुप गई । राज्य के सभी लोग आग बुझाने लगे और इधर रानी ने जिन
 राजाओं को पाया मार दिया ॥ १४ ॥ पाँचवें दिन अपनी सेना को सुधार
 कर वह मशाल जलाकर वह (शत्रु) सेना में कूद पड़ी । राजा की सेना को
 मारती-काटती स्वयं निकल गई । पिता ने पुत्र और पुत्र ने पिता के सिर
 पर तलवार चला दी ॥ १५ ॥ ॥ दोहा ॥ रात के समय उनमें भीषण युद्ध
 हुआ; पिताओं को पुत्र और पुत्रों को पिता मारकर वीर वहाँ जूझ गए ॥ १६ ॥
 रात्रि के समय उनका भीषण युद्ध हुआ और ऊँच-नीच, राजा-प्रजा अनेकों
 घायल हो गए ॥ १७ ॥ ॥ चौपाई ॥ पिता ने खड़ग लेकर पुत्र को मारा और
 पुत्र ने पिता के सिर पर खड़ग से वार कर दिये । ऐसा भीषण युद्ध हुआ कि
 सभी राजा घायल हो गए ॥ १८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब छठवाँ दिन आ पहुँचा
 तो उसने दो-दो आदमी की ऊँचाई की गहरी खाई खुदवायी । उसमें नीचे शूल

हो बद्दो खलन सो जुद्ध खिंग खुनसाइकै ॥ १९ ॥ पराबंधि
करि फौज दोऊ ठाढी भई । तीर तुपक तरवारि मारि चिर
लौ दई । भाजि चली त्रिय पाछे कटक लगाइकै । हो पछे
पखरिया परै तुरंग नचाइकै ॥ २० ॥ ॥ दोहरा ॥ एक बार
सोरह सहस स्वार जुझे बरबीर । बहुरि आनि अबलापुरी
हने तुपक कै तीर ॥ २१ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब सपतवौ दिवस
पहूच्यो आइ करि । सभ पकवानन मौ दई जहर डराइ करि ।
खलन खंड कछु चिर लौ लोह बजाइकै । हो और ठौर चलि
गई निशानु दिवाइकै ॥ २२ ॥ मारि परनि ते रही सिपाहिन
यौ कियौ । सरकि सरकि कर शक्ति निकर तिह को
लियो । झूमि परे चहुँ ओर दुरग के दुआर पर । हो लई
मिठाई (मू०प०११०१) छोनि गठरियै बाँधि करि ॥ २३ ॥
॥ दोहरा ॥ बैठि बैठि सो सो पुरख जो जु मिठाई खाँहि ।
मद बिखु के तिन तन चरै तुरतु तरफि मरि जाँहि ॥ २४ ॥
चारि पाँच घटिका बिते बाल परी असि धार । जो बिखु ते
घूमत हुते सभ ही दए सँघारि ॥ २५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ बहुरि
मिलन त्रिय बद्दो सु दूत पठाइकै । चली आपनी आछी अनी

गाड़कर ऊपर पानी भर दिया और शत्रु को क्रुद्ध हो युद्ध के लिए ललकार
दिया ॥ १९ ॥ एक-दूसरे को बाँधकर फौजें खड़ी हो गईं और देर तक तीर,
बंदूक, तलवारों की मार चलती रही । स्त्री भी सेना को पीछे लेकर टूट
पड़ी और घोड़ों को नचाते हुए उसने अश्वारोहियों को घायल कर दिया ॥ २० ॥
॥ दोहा ॥ एक ही बार में सोलह सहस्र वीर जूझ उठे । पुनः उस स्त्री ने
बंदूक, तीरों से सेना को मार गिराया ॥ २१ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब सातवाँ
दिन आ पहुँचा तो उसने सब पकवानों में जहर डलवा दिया । उस शत्रु-
नाशिनी ने कुछ देर युद्ध करके झंडा गड़वाकर अन्य स्थान को प्रस्थान
किया ॥ २२ ॥ सिपाही मार से बचते हुए सरक-सरककर शक्तिपूर्वक बढ़े
और झूमकर दुर्ग के द्वार पर जा टूटे । वहाँ उन्होंने सब मिठाइयों की
गठरियाँ छीन ली ॥ २३ ॥ ॥ दोहा ॥ वहाँ बैठकर जो-जो पुरुष मिठाई खाते
थे, उन्हें जहर चढ़ जा रहा था और वे तड़फ-तड़फकर मर रहे थे ॥ २४ ॥
चार-पाँच घड़ियाँ बीतने पर वह स्त्री कृपाण लेकर टूट पड़ी और जो विष
के प्रभाव से बेहोश-से पड़े थे उन सबको मार डाला ॥ २५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ रानी
ने दूत भेजा और फिर भिड़ने की योजना बनाई और अपनी अच्छी सेना

बनाइकै । तुपक चोट कौ जबै सैन लाँघत भई । हो परी
तुरंग धवाइ क्रिपाने कहि लई ॥ २६ ॥ ॥ दोहरा ॥ सभ
राजन कौ मारिकै सैना दई खपाइ । जीति जुद्ध ग्रहि को गई
जै दुंदभी बजाइ ॥ २७ ॥ ताही ते जगतेश त्रिप सीखे चरित
अनेक । शाहिजहाँ के बीर सभ चुनि चुनि मारे
एक ॥ २८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ चार चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २०४ ॥ ३८५६ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ पाँच चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ भूप बडी गुजरात बखनियत । बिजै
कुअरि ताकी त्रिय जनियत । छत्री एक तहाँ बडभागी ।
ताँ तन त्रिशटि कुअरि की लागी ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ रैन
परी ताको त्रिय लयो बुलाइकै । रति मानो चिर लौ अति
रुच उपजाइकै । लपटि लपटि उर जाइ न छोर्यो भावई ।
हो भाँति भाँति के आसन करत सुहावई ॥ २ ॥
॥ दोहरा ॥ रानी मीतहि संग लै बागहि गई लवाइ । काम
भोग तासौ कर्यो ह्रिदै हरख उपजाइ ॥ ३ ॥ जहाँ बाग मों

लेकर चल पड़ी । तोपों की मार को जब सेना पार कर गई तो यह भी
घोड़े दौड़ाकर कृपाणें निकालकर टूट पड़ी ॥ २६ ॥ ॥ दोहरा ॥ सब राजाओं
को मारकर सेना को नष्ट कर दिया और दुंदुभियाँ बजाती युद्ध को जीतकर
वापस अपने घर को गई ॥ २७ ॥ उसी से जगतेश राजा ने अनेकों चरित्र
सीखे और शाहजहाँ के अनेकों वीरों को चुन-चुनकर मार दिया ॥ २८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ चौथे
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २०४ ॥ ३८५६ ॥ अफजू ॥

दो सौ पाँचवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बृहद् गुजरात में एक राजा था जिसकी स्त्री विजयकुँवरि
जानी जाती थी । वहाँ एक भाग्यशाली क्षत्रिय था जिससे कुँवरि की नज़र
लड़ गई ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ रात में स्त्री ने उसे बुला लिया और रुचि-
पूर्वक उससे रतिक्रीड़ा की । लिपट-लिपटकर उसे सीने से लगाया और भाँति-
भाँति के सुखदायक आसनों को लगाया ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ रानी मित्र को

जार सौ रानी रमत बनाइ । ताको त्रिप कौतुक नमिति तह
 ही निकस्यो आइ ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ लखि राजा रानी
 डरपानी । मित्र भए तिह भाँति बखानी । मेरी कही
 चित्त मै धरियहु । मूढ राव ते नैकु न डरियहि ॥ ५ ॥
 ॥ अडिल्ल ॥ इक गडहा मे दयो जार को डारिकै । तखता
 पर बाघंबर डारि सुधारिकै । आपु जोग को भेस बहिठी तहाँ
 धर । हो राव चलयो दिय जान न आन्यो द्रिशटि तर ॥ ६ ॥
 राइ निरखि तिह रूप चक्रित चित्त मै भयो । कवन देस को
 एस भयो जोगी कह्यो । याके दोनो पाइन परियै जाइकै ।
 हो आइसु कौ लइयै चित्त बिरमाइकै ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ जब
 राजा ताँके ढिग आयो । जोगी उठ्यो न बैन सुनाइयो । इह
 दिसि ते उहि (सू० प्र० ११०२) दिसि प्रभ गयो । तब राजै सु
 जोर कर लयो ॥ ८ ॥ नमशकार जब तिह त्रिप कियो ।
 तब जोगी मुख फेरि सु लियो । जिह जिह दिसि राजा चलि
 आवै । तह तह ते लिय आँखि चुरावै ॥ ९ ॥ यह गति देखि
 त्रिपति चकि रह्यो । धनि धनि मन मै तिह कह्यो । यह
 मोरी परवाहि न राखै । ताते मोहि न मुख ते भाखै ॥ १० ॥

साथ ले बाग में आई और वहाँ प्रसन्न हो उससे कामक्रीड़ा की ॥ ३ ॥ जहाँ
 बाग में रानी मित्र के साथ रमण कर रही थी वहाँ राजा कौतूहलवश आ
 निकला ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा को देखकर रानी डर गई और मित्र
 से कहा कि मेश कहा करना और मूर्ख राजा से तनिक न डरना ॥ ५ ॥
 ॥ अडिल्ल ॥ अपने मित्र को एक खड्गे में डाल दिया और ऊपर तख्ते पर
 बाँधकर (योगियों का कपड़ा) डाल दिया । स्वयं योगी का वेश धारण कर
 वहाँ बैठ गई और ऐसा किया कि मानों राजा को देखा ही न हो ॥ ६ ॥ राजा
 उसका रूप देखकर चकित हो गया और सोचने लगा कि यह कौन देश का
 योगी है । इसके तो चरणों में पड़ जाना चाहिए और इसका मन प्रसन्न कर
 इससे आशीर्वाद लेना चाहिए ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब राजा उसके पास
 आया तो योगी न तो उठा और न ही बोला । राजा इस दिशा से उस दिशा
 में गया और फिर उसने हाथ जोड़ लिये ॥ ८ ॥ राजा ने जब प्रणाम किया
 तो योगी ने मुँह फेर लिया । जिस ओर राजा जाता था, स्त्री उधर से आँख
 चुरा लेती थी ॥ ९ ॥ यह देखकर राजा चकित रह गया और मन में धन्य-
 धन्य कहने लगा । वह सोचने लगा कि इसे मेरी परवाह नहीं है, इसीलिए

अनिक जतन राजा करि हार्यो । क्योहूँ नहि रानीयहि
निहार्यो । करत करत इक बचन बखानो । मूरख राव न
बोलि पछानो ॥ ११ ॥ बातें सौ त्रिप सों कोऊ करै । जो
इच्छा धन की मन धरै । राव रंक हम कछू न जानै । एकै
हरि को नास पछानै ॥ १२ ॥ बातें करत निसा परि गई ।
त्रिप सभ सैन बिदा कर दई । हवै एकल रह्यो तह सोई ।
चिंता करत अरध निसि खोई ॥ १३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ सोइ
त्रिपति लहि गयो त्रिय मीतहि उचरियो । कर भे टूँबि जगाइ
भोग बहु बिधि करियो । जात तहाँ ते भए यहै लिखि खात
पर । हो स्वरग देखि भूअ देखि सु गए पतार तर ॥ १४ ॥
॥ चौपई ॥ भई प्रात राजा सुधि लयो । तिनै न तहाँ
बिलोकत भयो । गडहा पर को लिख्यो निहार्यो । मंतिन
जुति इह भाँति बिचार्यो ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ या
जोगीस्वर लोक लखि बहुरि लख्यो यह लोक । अब पतार
देखन गयो हवैकै ह्रिदै निशोक ॥ १६ ॥ ॥ चौपई ॥ सिद्ध
सिद्ध सभ ताहि उचारै । भेद अभेद न मूड़ बिचारै । इह

मुख से नहीं बोल रहा है ॥ १० ॥ राजा अनेक यत्न कर हार गया और
किसी ने भी रानी को नहीं पहचाना । यही करते-करते उसने मुँह से एक
वचन कहा तब भी मूर्ख राजा उसकी आवाज़ नहीं पहचान सका ॥ ११ ॥
उसने कहा कि राजा से बातें तो वह करे जिसे मन में धन आदि की इच्छा
हो । हम तो राजा-रंक को कुछ नहीं जानते और केवल एक परमात्मा के
नाम को ही पहचानते हैं ॥ १२ ॥ बातें करते-करते रात हो गई और राजा
ने सभी सेना को विदा कर दिया । वहाँ वह अकेला रह गया और चिंतन
करते-करते आधी रात बीत गई ॥ १३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजा सो गया और
स्त्री ने मित्र को पुकारा और हाथ से चिकौटी भरकर उसे जगाकर उससे
विभिन्न प्रकार से रतिक्रीड़ा की । वे वहाँ खड्डे पर यह लिखकर चलते
बने कि स्वर्ग एवं धरती देखने के बाद अब हम पाताल देखने जा रहे हैं ॥ १४ ॥
॥ चौपाई ॥ सुबह जब राजा जगा तो उन्हें वहाँ नहीं पाया । खड्डे पर
लिखे को पढ़कर उसने मंत्रियों से विचार किया ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ यह
योगीश्वर उस लोक और इस लोक को देखने के बाद अब शोकरहित हो
पाताललोक देखने के लिए गया है ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसे सब "सिद्ध-
सिद्ध" कहने लगे और कोई भी मूर्ख भेद-अभेद को न विचार सका । इस

चरित्र त्रिय जार बचायो । राजा तें गडहा पूजायो ॥ १७ ॥
गडहा की पूजा त्रिप करै । ताकी बात न चित्त मै धरै ।
स्वरग छोरि जो पयार सिधारो । नमशकार है ताहि
हमारो ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ पाँच चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २०५ ॥ ३८७४ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ छठवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुघरावती नगर इक सुना । सिंघ बिशेस्वर
राव बहु गुना । इशकमती ताकी बर नारी । खोजि लोक
चौदहूँ निकारी ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ अप्रमान ताकी प्रभा जल
थल रही समाइ । सुरी आसुरी किन्नरी हेरि रहत सिर
न्याइ ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ नौ जोवन (म०पं० ११०३) राइक
सुत शाहु निहारियो । रमौ तवन के संगि इह भाँति बिचारियो ।
पठै अली इक लीनो भवन बुलाइकै । हो रीति प्रीति की करी
हरख उपजाइकै ॥ ३ ॥ भाँति भाँति मितवा को गरे लगाइयो ।

प्रपंच से स्त्री ने अपने मित्र को बचा लिया और राजा से खड्डे की पूजा
करवा दी ॥ १७ ॥ राजा खड्डे को पूजा करने लगा और उसकी बातों को
नहीं विचार रहा था । जो स्वर्ग छोड़कर पाताल में गया है, उसे मेरा
प्रणाम है ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ पाँचवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २०५ ॥ ३८७४ ॥ अफजू ॥

दो सौ छठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सुघरावती नगर में विशेश्वरसिंह एक गुणवान राजा
था । उसकी सुन्दर स्त्री इशकमती थी जिसे मानों चौदह लोकों में से
(सुन्दरतम) ढूँढ़ निकाला गया हो ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ जल, स्थल सर्वत्र उसकी
प्रभा अप्रतिम थी और सुर-स्त्रियाँ, असुर-स्त्रियाँ एवं किन्नरनियाँ भी उसके
रूप-सौंदर्य के सामने सिर झुका लेती थीं ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उसने शाह का
पुत्र नवयौवनराय को देखा और विचारा कि उसके साथ रमण किया जाय ।
उसे एक सखी भेजकर महल में बुलवा लिया और प्रसन्नतापूर्वक प्रीतिक्रीड़ा
की ॥ ३ ॥ विभिन्न प्रकार से मित्र को गले लगाया और लिपट-लिपटकर

लपटि लपटि करि काम केल उपजाइयो । आसन चुंबन बहु
 बिधि करे बनाइकै । हो निजु प्रीतम के चित को लयो
 लुभाइकै ॥ ४ ॥ हाव भाव बहु भाँति दिखाए मोत को ।
 छिन भीतरि बसि कियो तवन के चीत को । लपटि लपटि
 ललता उर गई बनाइकै । हो स्त्री नवजोबन राइ लयो
 ललचाइकै ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रावत जोबनि रैन दिन
 इशकमती के संग । रति मानत रुचि मानिकै हवै प्रमुदित
 सरबंग ॥ ६ ॥ ॥ सवैया ॥ पौढि लिया के प्रजंक लला को
 लै सुंदरि गीत सुहावत गावैं । चुंबन और अलिगन आसन भाँति
 अनेक रसै लपटावैं । जो त्रिय जोबनवंत जुबा दोऊ काम की
 रीति सो प्रीतुपजावैं । छाडिकै शोक त्रिलोकी के लोक बिलोकि
 प्रभा सभही बलि जावैं ॥ ७ ॥ कोक की रीति सो प्रीति करै
 सुभ काम कलोल अमोल कमावैं । बारहि बार रसै रुचि सो
 दोऊ हेरि प्रभा तन की बलि जावैं । बीरी चबाइ शिंगार
 बनाइ सु नैन नचाइ मिलैं मुसकावैं । मानहु बीर जुटे
 रन मै सित तानि कमानन बान चलावैं ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ ऐसी

कामक्रीड़ा की । विभिन्न प्रकार के आसन-चुंबनादि किये और इस प्रकार
 प्रियतम को प्रसन्न किया ॥ ४ ॥ मित्र को अनेकों हाव-भाव दिखाए
 और क्षण भर में उसका मन मोह लिया । वह लिपट-लिपटकर उसके
 गले में लिपटी और इस प्रकार नवयौवनराय को ललचा लिया ॥ ५ ॥
 ॥ दोहा ॥ यौवनराय रात-दिन इशकमती के संग रहने लगा और परमप्रमुदित
 होकर उससे रतिक्रीड़ा करने लगा ॥ ६ ॥ ॥ सवैया ॥ स्त्री, प्रिय को
 पलंग पर लेकर सुन्दर सुहावने गीत गाती थी । आसन, अलिगन,
 चुंबनादि के माध्यम से लिपटती और रमण करती थी । स्त्री भी युवती
 और वह भी युवा था, दोनों ही काम की रीति से प्रीतिपूर्वक सुखवृद्धि करते
 थे । उनकी प्रभा को त्रिलोकी के लोग शोक-विहीन होकर देखते थे और
 उन पर न्यौछावर जाते थे ॥ ७ ॥ कोकशास्त्र की रीति से प्रीति करते
 थे और काम की रीति से क्रीड़ा कर दोनों बार-बार रमण करते थे और उनके
 तनों की प्रभा पर लोग न्यौछावर होते थे । वे (पान का) बीड़ा चबाते,
 शृंगार करके नैन नचाते हुए मिलकर मुस्कुराते थे । वे ऐसे लगते थे मानों
 दो वीर युद्धस्थल में भिड़े हों और तान-तानकर बाण चला रहे हों ॥ ८ ॥
 ॥ चौपाई ॥ उन दोनों में ऐसा प्रेम हुआ कि उन्हें लोक-लाज भी विस्मृत

प्रीति दुहुन मै भई । बिसरि लोक की लज्जा गई । नोखो
 नेह निगोडो लागो । जाते नींद भूखि दोऊ भागो ॥ ९ ॥
 एक दिवस त्रिय सीत बुलायो । सोत संगि सवतनिन तकायो ।
 भेव रच्छ पालक को दीनो । तिनको कोप आतमा
 कीनो ॥ १० ॥ रच्छपाल क्रुद्धित अति भए । रानी हुती तही
 ते गए । जार सहित ताको लहि लीनो । बिबत हनन दुहँअन
 कौ कीनो ॥ ११ ॥ तब रानी इह भाँति उचारो । सुनो
 रच्छ को बात हमारी । सीत मरे त्रिप त्रिय मरि जैहै ।
 त्रिया मरै राजा को छैहै ॥ १२ ॥ दो कुक्कट कुक्कटी
 मँगवाई । सखियहि बोल तिनै बिखु खवाई । निकट आपनै
 दुहुअन आनो । मूढ़ रच्छकन चरित न जानो ॥ १३ ॥
 प्रथम मारि कुक्कट को दयो । कुक्कटी को बिनु बध बध भयो ।
 बहुरि नास कुक्कटी को भयो । तलक बिखं कुक्कटो मरि
 गयो ॥ १४ ॥ (मू०प्र०११०४) ॥ रानी बाच ॥ सुनहु लोग मै तुमै
 सुनाऊँ । मित्र मरे मै प्राण गवाऊँ । मोहि मरे राजा मरि
 जैहै । तुमरे कहो हाथ का ऐहै ॥ १५ ॥ हो राजा जौ जियत
 बरिहैं । तुमरी सदा पालना करिहैं । जौ त्रिप त्रिय जुत

हो गई । ऐसी अनोखी निगोड़ी प्रीति लगी कि नींद-भूख दोनों उड़
 गए ॥ ९ ॥ एक दिन स्त्री ने मित्र को बुलाया, जिस सोते हुए को सौतनों
 ने देख लिया । उन्होंने रक्षक को बतला दिया जिससे वह क्रुद्ध हो उठा ॥ १० ॥
 रक्षक अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और जहाँ रानी थी वहाँ जा पहुँचे । उसे मित्र-
 समेत पकड़ लिया और दोनों को मारने की योजना बनाई ॥ ११ ॥ तब
 रानी ने कहा कि हे रक्षको ! मेरी बात सुनो । मित्र के मरने से राजा की
 स्त्री भी मर जायगी और राजा की स्त्री के मरने से राजा का भी क्षय हो
 जायगा अर्थात् वह भी नहीं रहेगा ॥ १२ ॥ उसने दो मुर्गा-मुर्गी मँगवाए
 और सखियों को कहकर उन्हें ज़हर खिला दिया । तब उन दोनों को पास में
 रखा परन्तु मूर्ख रक्षक इस रहस्य को न समझ सके ॥ १३ ॥ पहले उसने
 मुर्गे को मारा तो मुर्गी बिना मारे ही मर गई । मुर्गी मर गई और पल
 भर में मुर्गा भी मर गया ॥ १४ ॥ ॥ रानी उवाच ॥ हे लोगो ! सुनो; मित्र
 के मरने पर मैं भी प्राण गँवा दूंगी और मेरे मरने पर राजा भी मर जायगा ।
 बताओ तुम लोगों के हाथ क्या लगेगा ॥ १५ ॥ राजा यदि जीवित रहेगा
 तो तुम लोगों का पालन करेगा । यदि राजा स्त्री-समेत मर जायगा तो

स्वरग सिधैहैं । तुम धन ते वै जियते जैहैं ॥ १६ ॥ ताँते क्यों न दरबु अति लोजै । तिहूँ जियन की रच्छा कीजै । जड़न कुकट को चरित निहार्यो । जार सहित रानियहि न मार्यो ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इशकमती इह छल भए कुकट कुकटियहि घाइ । प्रान उबार्यो प्रिय सहित त्रिप डर जड़न दिखाइ ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ तिन इह भाँति बिचार बिचारे । रानी सरत मीत के मारे । रानी सरत राजा मरि जैहै । हमरे कहा हाथ धनु ऐहै ॥ १९ ॥ अति ही लोभ रच्छकन कियो । राजा संग भेद नहिं दियो । सहित जार रानियहि न मार्यो । धन के लोभ बात को टार्यो ॥ २० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ छठवों चरित्र समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २०६ ॥ ३८६४ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ सात चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ राजा कौच बिहार को वीरदत्त तिह नाम । अभित दरबु ताके रहै बसतु इन्द्रपुर ग्राम ॥ १ ॥

तुम लोग भी धन के बिना रह जाओगे ॥ १६ ॥ इससे क्यों न तुम अत्यधिक धन लो और तीनों जीवों की रक्षा करो । मूर्खों ने मुर्गों वाला प्रपंच देखा और मित्र-समेत रानी को नहीं मारा ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रकार मुर्गा-मुर्गी को मारकर इशकमती ने प्रपंच दिखाया और राजा का भय दिखाकर प्रियतम-समेत अपने प्राण बचाए ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ उन्होंने यह सोचा कि प्रेमी के मारने से रानी मर जायगी, रानी के मरने से राजा मर जायगा । फिर धन हम लोगों के हाथ कैसे लगेगा ॥ १९ ॥ रक्षकों ने लोभ किया और राजा को रहस्य नहीं बताया । मित्र-समेत रानी को नहीं मारा और धन के लोभ में बात को टाल दिया ॥ २० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ छठवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २०६ ॥ ३८६४ ॥ अफजू ॥

दो सौ सातवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहरा ॥ कच बिहार का राजा वीरदत्त था जो अपरिमित द्रव्य के साथ इन्द्रपुर गाँव में रहता था ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसकी सुन्दर स्त्री

॥ चौपई ॥ मुशकमती ताकी बर नारी । जनु रति पति के
 भई कुमारी । कामकला दुहिता तिह सोहै । देव अदेवन को
 मन मोहै ॥ २ ॥ जो पुर चहै तिसी कौ मारै । अकबर की
 कछु कानि न धारै । देसतलट्टी बसन नहिं देवाहि । लूटि
 कूटि सौदाग्रन लेवाहि ॥ ३ ॥ अकबर शाहि कोप अति
 आयो । तिन पै बैरिन ओघ पठायो । जोरि सैन सूर सभ
 धाए । पहिरि कौच दुंदभी बजाए ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब
 ही कौच बिहार के निकट पहुँचे आइ । लिखि पतिया ऐसे पठी
 रणदुंदभी बजाइ ॥ ५ ॥ कै हम कौ मिलु आइकै पतीआ
 लिखी सुधारि । कै पगु परु कै अनत टरु कै लरु शस्त्र
 सँभारि ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ जब त्रिप के खवनन यौ परियो ।
 भाजि चलत भयो धीर न धरियो । मुशकमती जब ही बुनि
 पाई । बाँधि त्रिपहि दुंदभी बजाई ॥ ७ ॥ भाँति भाँति ते
 सैन सँभारी । मारे (सू० पं० ११०५) सूरवीर हंकारी । राजा किते
 बाँधि करि लीने । जाइ भवानी के बलि दीने ॥ ८ ॥
 ॥ दोहरा ॥ दलदल एक तकाइकै दयो दसामो जाइ ।
 सुनत नाद सूर सभ तहीं परे अरराइ ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ जौ

मुशकमती थी जो ऐसी लगती थी मानों कामदेव की पुत्री हो । उसकी
 कन्या कामकला थी जो देव-अदेव सबका मन मोहनेवाली थी ॥ २ ॥ वह
 नगर में जिसे चाहती थी मार देती थी और अकबर की भी परवाह नहीं
 करती थी । देश की तलहटी में किसी को बसने नहीं देती थी और सौदागरों
 को लूट लेती थी ॥ ३ ॥ अकबर अत्यन्त क्रुपित हुआ और उसने उन पर
 शत्रुओं के झुंड को चढ़ा भेजा । शूरवीर सेना लेकर और कवच पहन दुंदुभि
 बजाते चल पड़े ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब वे कूच बिहार के पास आ पहुँचे तो उन्होंने
 रणदुंदुभि बजाते हुए यह पत्र लिखा ॥ ५ ॥ पत्र में लिखा कि या तो हमसे
 आकर मिलो और हमारे चरण पकड़ो या भाग जाओ या फिर शस्त्र सँभालो
 और लड़ो ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब राजा ने यह सुना तो उसने धैर्य खो
 दिया और भाग खड़ा हुआ । मुशकमती ने जब यह सुना तो राजा को
 बाँधकर उसने दुंदुभि बजा दी ॥ ७ ॥ उसने विभिन्न प्रकार से सेना को
 सँभाला और अहंकारी शूरवीरों को मार डाला । उसने कितने ही राजाओं
 को बाँध लिया और भवानी के सामने बलि चढ़ा दी ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ उसने
 एक दलदल देखकर वहाँ नगाड़ा बजा दिया और नाद को सुनकर वीर

धाए फसि फसि ते गए । गहि गहि तरुनि तुरत ते लए ।
 सकल कालिका की बलि दीने । बाज ताज सभहिन के
 छीने ॥ १० ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक भित तिह भीतर पठ्यो
 बनाइकै । तासौ चित की बात कही समुझाइकै । महाँ
 गहिर बन भीतर तिन तुम ल्याइयो । हो धसैं निरखि परबत
 मो मोहि जताइयो ॥ ११ ॥ सुनत मनुख इह बात तहाँ ते तह
 गयो । तुमै बतावत राह भाखि ल्यावत भयो । सकल सूर
 चित माँझ अधिक हरखत भए । हो भेद अभेद न लह्यो सकल
 बन मै गए ॥ १२ ॥ धस्यो कटक बन माँझ दूत लखि पाइकै ।
 भेद दयो रानी कह तब तिन आइकै । बंद द्वार परबत के
 करि दोऊ लए । हो काटि काटि कै नाक जान ग्रहि कौ
 दए ॥ १३ ॥ बिमन भए बहु बीर भाजि रन तें चले । सैयद
 मुगल पठान सेख सूरा भले । डारि डारि हथियार भेख त्रिय
 धारही । हो लीजें प्राण उबारि इह भाँति उचारही ॥ १४ ॥
 भले बीर तह ते इकठाँ उतरत भए । मुशकमती रानियहि
 निरखि सभ ही लए । काटि नदी तिह ऊपर दई चलाइकै ।

बिलबिलाकर वहाँ जा पहुँचे ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ जो वहाँ गए तुरन्त फंस
 गए और इस तरुणी ने तुरन्त उन्हें पकड़ लिया । सबको कालिका के सामने
 बलि दे दिया और घोड़े तथा मुकुट सबके छीन लिये ॥ १० ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक
 सेवक को (शत्रु-) सेना में भेजा और उसे रहस्य समझा दिया कि तुम इन्हें
 गहन वन के भीतर ले आओ । इन्हें पर्वत आदि दिखाकर वन में धँसा
 लाओ और फिर मुझे बताओ ॥ ११ ॥ वह व्यक्ति यह बात सुनकर वहाँ से
 गया और यह कहकर कि मैं तुम लोगों को रास्ता दिखाता हूँ, उन्हें ले आया ।
 सभी वीर मन में प्रसन्न हो उठे और बिना किसी भेद-अभेद को समझे वन
 में घुस पड़े ॥ १२ ॥ वन में घुसी सेना को जब दूत ने देखा तो उसने रानी
 को आकर बता दिया । उन्होंने पर्वत के दोनों रास्ते बंद कर दिये और
 सबकी नाक काटकर उन्हें वापस घर जाने दिया ॥ १३ ॥ बहुत से वीर
 हताश हो युद्ध से भाग गए । इन सबमें सैयद, मुगल, पठान और शेख
 शूरवीर भी थे । हथियार डालकर स्त्री-वेश बनाकर वे कहने लगे कि किसी
 भी तरह प्राण बचा लो ॥ १४ ॥ वहाँ से भागकर वीरों ने एक स्थान पर
 पड़ाव डाला । रानी मुशकमती ने उन्हें देख लिया । उसने नदी को काटकर
 उन पर छोड़ दिया और घोड़ों, मुकुटों-समेत राजाओं को बहा दिया ॥ १५ ॥

हो बाज ताज राजन जुत दए बहाइकै ॥ १५ ॥ मारि फौज
 इक दीनो दूत पठाइकै । जान खान जू बरो सु ताको आइकै ।
 हम हजरति के संग न रन कीनो बनै । हो सभ मंत्रिन अर
 मोर रुचित यौही मनै ॥ १६ ॥ जैनखान मूरख सुनि ए बच
 फूल गयो । मूरबीर लै संग भले तित जात भयो । ताकी
 दुहिता ब्याहि अबे घर आइहौ । हो इनै बाँह अपनी हजरतहि
 मिलाइहौ ॥ १७ ॥ ॥ चौपई ॥ तब रानी दारू बहु लियो ।
 तरें बिछाई भूमि के दियो । ऊपर तनिक दारूअहि डार्यो ।
 सो जरि जात न नैकु निहार्यो ॥ १८ ॥ एक लौंडिया बोलि
 पठाई । खारन पर कहि सुता बिठाई । पठ्यो मनुख खान
 अब आवैं । याहि ब्याहि धाम लै जावैं ॥ १९ ॥ सैन सहित
 मूरख तह गयो । भेद अभेद न पावत भयो । (मृ०ग्रं० ११०६)
 जब रानी जान्यो जड़ आयो । दारूअहि तुरतु पलीता
 द्यायो ॥ २० ॥ ॥ दोहरा ॥ लगे पलीता मूर सभ भ्रमे
 गगन के माँहि । उडि उडि परे समुंद्र मै बच्यो एकऊ
 नाहि ॥ २१ ॥ इह चरित इन चंचला लीनो देस बचाइ ।
 जैनखान मूरन सहित इह बिधि दयो उडाइ ॥ २२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित पख्याने त्रिया चरित मंत्री भूप संवादे दोइ सौ सात चरित
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २०७ ॥ ३९१६ ॥ अफजू ॥

फौज को मारकर उसने एक दूत भेज दिया कि हे जानखान ! तुम आकर मेरी
 पुत्री का वरण कर लो । मैंने और मेरे सब मंत्रियों ने यही मन में विचार
 किया है कि बादशाह के साथ हमें युद्ध नहीं करना चाहिए ॥ १६ ॥ जैनखान
 यह बात सुनकर फूल गया और शूरवीरों को साथ लेकर उस ओर चल पड़ा ।
 उसने सोचा कि राजा की पुत्री व्याहकर अभी घर ले आऊँगा और इन्हें
 अपना दोस्त बनाकर बादशाह से मिलवा दूँगा ॥ १७ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब
 रानी ने बहुत-सा दारूद लिया और उसे भूमि पर बिछा दिया । ऊपर
 उसने हल्का-सा बालू डाल दिया जो ज्वलनशील था और जिसे उसने नहीं
 देखा ॥ १८ ॥ एक दासी को बुलाया और मंडप में पुत्री को बिठाया । तब
 एक व्यक्ति को भेजा कि खान को कहो कि आये और व्याह कर इसे घर ले
 जाय ॥ १९ ॥ वह मूर्ख भेद-अभेद को समझे बिना सेना-सहित वहाँ चला
 गया । जब रानी ने देखा कि मूर्ख आ गया है तो उसने तुरन्त दारूद को
 पलीता लगा दिया ॥ २० ॥ ॥ दोहा ॥ पलीते को आग लगते ही शूरवीर
 आसमान में घूमने लगे और समुद्र में छिटक-छिटककर जा पड़े । कोई भी

नहीं बचा ॥ २१ ॥ इस प्रपंच से स्त्री ने देश को बचा लिया और जनखान
को वीरों-सहित उड़ा मारा ॥ २२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ सातवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ २०७ ॥ ३६१६ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ आठवों चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ एक राव की पुत्रिका अटपल देवी नाम ।
ब्याही एक नरेश कौ जाते पूत न धाम ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ राजा जतन करत बहु भयो । पूत न धाम बिधातै
दयो । तरुन अवसथहि सकल बितायो । बिरधापनो अंत
गति आयो ॥ २ ॥ तब तरुनी रानी सो भई । जब ज्वानी
राजा की गई । तासौ भोग राव नहि करई । याते अति
अबला जिय जरई ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ एक पुरख सौ दोसती
रानी करी बनाइ । कामभोग तासौ करै नितिप्रति धाम
बुलाइ ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ ताकौ धरम भ्रात ठहरायो ।
सभ जग सहि इह भाँति उडायो । भाइ भाइ कहि रोज
बुलावै । कामकेल रुचि मान कमावै ॥ ५ ॥ जौ याते
मोकौ सुत होई । त्रिप को पूत लखै सभ कोई । देस बसे
सभ लोग रहैं सुख । हमरो मिटे चित्त को सभ दुख ॥ ६ ॥

दो सौ आठवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ एक राजा की पुत्री का नाम अटपलदेवी था । वह एक
राजा को ब्याही थी परन्तु उनके घर पुत्र नहीं था ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा
ने बहुत प्रयत्न किया पर विधाता ने उन्हें पुत्र न दिया । इस प्रकार तरुणई
बीती और वृद्धावस्था आ गई ॥ २ ॥ जब राजा की ज्वानी बीत गई तो
रानी भरपूर जवान हो गई । अब राजा उससे कामक्रीड़ा नहीं करता था,
जिससे रानी मन ही मन कुढ़ती थी ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ रानी ने एक पुरुष
से दोस्ती बना ली और उसे रोज घर पर बुलाकर उससे कामभोग कमाने
लगी ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसे धर्मभाई कहकर सारे जग में यही बात उड़ा
दी । उसे भाई-भाई कहकर रोज बुलाती थी और रुचिपूर्वक उससे केलिक्रीड़ा
करती थी ॥ ५ ॥ वह सोचती थी जो पुत्र इससे होगा वह राजा का पुत्र
कहलाएगा । देश बसे, लोग सुखी रहें और हमारे भी चित्त का शोक दूर

॥ अड़िल्ल ॥ भाँति भाँति के भोग करत तासो भई । त्रिप
की बात बिसारि सभ चित्त तें दर्ई । लपटि लपटि गई नैनन
नैन मिलाइकै । हो फसत हिरन ज्यों हिरिन बिलोकि
बनाइकै ॥ ७ ॥ इतक दिनन राजा जू दिव के लोक गे ।
नशट राज लखि लोग अति आकुल होत भे । तब रानी
मितवा कौ लयो बुलाइकै । हो दयो राज को साज जु छत्र
फिराइकै ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ पूत न धाम हमारे भए ।
राजा देवलोक कौ गए । राज इह भ्रात हमारो करे ।
याके सीस छत्र सुभ ढरे ॥ ९ ॥ मेरो भ्रात राज इह करो ।
अत्र पत्र याके सिर ढरो । सूरबीर आग्या सभ कहै । जहाँ
पठैयै तह ते जैहै ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ रानी ऐसो बचन कहि
दयो जार कौ राज । मितवा कौ राजा किया फेरि
छत्र दै साज ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ सूरबीर सभ पाइ
लगाए । (मृ०पं० ११०७) गाँउ गाँउ चौधरी बुलाए । दै सिर
पाउ बिदा करि दीने । आपन भोग जार सौ कीने ॥ १२ ॥
मेरो राज सुफल सभ भयो । सभ धन राज मित्र कौ दयो ।
मित्र अरु मो भै भेद न होई । बाल ब्रिध जानत सभ

हो ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ वह उससे भाँति-भाँति के भोग करने लगी और
राजा को उसने लगभग मन से भुला दिया । वह नयनों से नयन मिलाकर
ऐसे लिपटती थी जैसे हिरण हिरणी को देखकर उसी में अटक जाता है ॥ ७ ॥
इतने समय में ही राजा भी स्वर्गवासी हो गया और लोग राज्य को नष्ट
होता देख अत्यन्त व्याकुल हो गए । तब रानी ने मित्र को बुला लिया और
उसे छत्र धारण करा राज्य दे दिया ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ हमारे घर में पुत्र
नहीं है और राजा देवलोक को चले गए हैं । अब मेरा भाई राज्य करेगा
और इसके सिर पर छत्र झूलेगा ॥ ९ ॥ मेरे भाई ! तुम यह राज्य करो और
छत्र-चँवर तुम्हारे ऊपर झूलेगा । तुम शूरवीरों को आज्ञा करोगे और ये जहाँ
कहोगे वहीं जायँगे ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ यह कहकर रानी ने मित्र को
राज्य दिला दिया । मित्र को छत्र-साज देकर राजा बना दिया ॥ ११ ॥
॥ चौपाई ॥ सब शूरवीरों को पाँव में गिराया और गाँव-गाँव से चौधरियों
को बुलाया । उन्हें सम्मान देकर विदा कर दिया और स्वयं अपने मित्र से
रमण किया ॥ १२ ॥ मेरा राज्य सफल हो गया है । उसने सब धन और
राज्य मित्र को दे दिया । मुझमें और इस (मित्र) में कोई अन्तर नहीं; इसे
बालक, बद्ध सभी जान लो ॥ १३ ॥ सारी प्रजा यह आपस में कह-सुन रही

कोई ॥ १३ ॥ सकल प्रजा इह भाँति उचारें । बैठि सदन
 मै मंत्र बिचारें । नशट राज रानी लखि लयो । ताते राज
 भ्रात को दयो ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ केल करत रीझी अधिक
 हेरि तरनि तरुनंग । राज साज ताते दयो इह चरित्र के
 संग ॥ १५ ॥ नशट होत त्रिय राजि लखि कियो भ्रात को
 दान । लोग मूढ़ ऐसे कहैं सकैं न भेद पछान ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्यानने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ आठवों चरित्र
 समापतम सतु शुभम सतु ॥ २०८ ॥ ३६३२ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ नौ चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ धारा नगरी को रहै भरथरि राव
 सुजान । दो द्वादस बिद्या निपुन सूरवीर बलवान ॥ १ ॥
 ॥ चौपई ॥ भानमती ताके बर नारी । पिंगुल देइ प्राननि ते
 प्यारी । अप्रमान भा रानी सोहै । देव अदेव सुता ढिग
 कोहै ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ भानमती की अधिक छबि जल थल
 रही समाइ । देव दिवाने लखि भए दानव गए बिकाइ ॥ ३ ॥

थी कि रानी ने राज्य को नष्ट होने से बचा लिया और भाई को राज्य दे
 दिया ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ तरुणी तरुण का अंग-संग पाकर अत्यधिक मोहित
 हो उठी । उसने इस प्रपंच के साथ राज्य उसे दे दिया ॥ १५ ॥ राज्य को
 नष्ट होता देखकर स्त्री ने उसे भाई को दान कर दिया । सभी मूर्ख यह कह
 रहे थे और कोई भी रहस्य को पहचान नहीं सका ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ आठवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २०८ ॥ ३६३२ ॥ अफजू ॥

दो सौ नौवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ धारा नगरी का सुजान राजा भरथरी (भर्तृहरि)
 था । वह चौदह विद्याओं में निपुण और शूरवीर बलवान था ॥ १ ॥
 ॥ चौपाई ॥ उसकी एक श्रेष्ठ रानी भानुमती थी और पिंगलदेवी भी
 उसकी प्राणप्रिया थी । रानियों की शोभा अपरिमित थी और इनके सामने
 देव-अदेव भला क्या थे ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ भानुमती की सौंदर्य-चर्चा जल-
 थल में थी । उस पर देवगण दीवाने थे और अदेव तो मानो बिके हुए
 थे ॥ ३ ॥ पिंगलमती की शोभा भी अनुपम थी । विधि (ब्रह्मा) उसे

और पिंगुलामती की सोभा लखी अपार । गढ़ि चतुरानन तवन
 सम और न सक्यो सुधार ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ एक दिवस
 चिप गयो शिकारा । चित भीतर इह भाँति बिचारा ।
 बस्त्र बोरि खोनतहि पठाए । कहियो सिंघ भरथर हरि
 घाए ॥ ५ ॥ बस्त्र भित लै सदन सिधार्यो । उचर्यो
 आजु सिंघ चिप मार्यो । रानी उदित जरन कौ भई । हाइ
 उचरि पिंगुल मरि गई ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ त्रिया न तवन
 सराहियहि करत अगनि मै प्यान । धन्य धन्य अबला तेई बधत
 बिरह के बान ॥ ७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ खेलि अखेटक जब
 भरथरि घरि आइयो । हाइ करत पिंगुला मरी सुनि पाइयो ।
 डारि डारि सिर धूरि हाइ राजा कहै । हो पठै बस्त्र जिह
 समै समो सौ ता लहै ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ कै मैं आजु कटारी
 मारौ । ह्वै जोगी सभ ही घर जारौ । ध्रिग मेरो जियबो
 जग माही । जाके नारि (सू० पं० ११०८) पिंगुला नाही ॥ ९ ॥
 ॥ दोहरा ॥ जो भूखन बहु मोल के अंगन अधिक सुहाँहि ।
 ते अब नागिन से भए काटि काटि तन खाँहि ॥ १० ॥

बनाकर पुनः अपनी कृति में और कोई सुधार नहीं कर सका ॥ ४ ॥
 ॥ चौपाई ॥ एक दिन राजा शिकार को गया और उसने मन में कुछ विचार
 किया । उसने वस्त्र रक्त में भिगोकर भेज दिये और कहलवा दिया कि
 भरथरी को शेर खा गया ॥ ५ ॥ सेवक वस्त्र लेकर महल में गया और
 बोला कि आज शेर ने राजा को मार डाला है । रानी जल मरने के लिए
 तैयार हुई और पिंगला ने तो मात्र हाय कहकर प्राण त्याग दिये ॥ ६ ॥
 ॥ दोहा ॥ उस स्त्री की प्रशंसा नहीं की जानी चाहिए जो जलने को तैयार
 होती है । वह स्त्री धन्य है जो विरह-बाण से ही मर जाती है ॥ ७ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ शिकार खेलकर जब राजा घर आया तो पिंगला को मरी
 सुनकर 'हाय-हाय' पुकार उठा । सिर में मिट्टी डाल-डालकर राजा हाय-
 हाय करने लगा कि वह समय मेरे हाथ नहीं आता, जब मैंने वस्त्र रक्त में
 भिगोकर भेजे थे ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ या मैं आज कटारी मारकर मर जाऊँगा
 अथवा योगी बनकर घर जला दूँगा । मेरा जीना इस संसार में धिक्कार है,
 जिसके पास आज उसकी रानी पिंगला नहीं है ॥ ९ ॥ ॥ दोहा ॥ जो अमूल्य
 आभूषण अंगों पर अत्यन्त शोभा पाते थे वे अब नागिन बन गए थे और काट-
 काटकर अंगों को खा रहे थे ॥ १० ॥ ॥ सवैया ॥ बीन बाँक के समान,

॥ सवैया ॥ बाँक सी बीन शिंगार अँगार से ताल म्रिदंग
 क्लिपान कटारे । ज्वाल सी जौनि जुडाई सी जेब सखी घनसार
 किसार के आरे । रोग सो राग बिराग सो बोल बवारिब
 बूँदन बान बिसारे । बान से बैन भाला जैसे भूखन हारन
 होहि भुजंगन कारे ॥ ११ ॥ बाँक से बैन बिलाप से बारन
 ब्याध सी बाँस बियार बहीरी । काक सी कोकिल कूक कराल
 म्रिनाल कि ब्याल घरी किछु रीरी । भार सी भौन भयानक
 भूखन जौन की ज्वाल सौ जात जरीरी । बान सी बीन बिना
 उहि बाल बसंत को अंतकि अंत सखीरी ॥ १२ ॥ बैरी
 सी ब्यार बिलाप सौ बोल बवान सी बीन बजंत बिथारे । जंग
 से जंग मुचंग दुखंग अनंग कि अंकसु आँक किआरे । चाँदनी
 चंद चिता चहूँ ओर सु कोकिला कूक की हूक सी भारे । भार
 से भौन भयानक भूखन फूले न फूल फनी फनियारे ॥ १३ ॥
 ॥ चौपई ॥ हो हठि हाथ सिधौरा धरिहौ । पिगुल हेत अग्नि
 महि जरिहौ । जो इह आज चबला जीयै । तब भरथरी

शृंगार अंगारों समान और ताल-मृदंग कृपाण-कटारी के समान थे ।
 चाँदनी ज्वाला के समान शीतलता और शोभा बढ़ानेवाला कंपूर मानों केशों
 पर आरे चलाता था । राग रोग के समान, बोल वैराग्य के समान और
 वर्षा की बूँदें बाण के समान लगती थीं । बातें तीरों के समान, आभूषण
 भालों के समान और गले के हाथ मानों काले सर्पों के समान थे ॥ ११ ॥
 तलवार जैसी बातें हैं, जल मानों रोग के समान और वायु बाँस के समान
 चुभनेवाली है । कोयल की बोली कौए के समान और कमलनाल मानों
 सर्प के समान हो । साश संसार मानों गहनों के रूप में बोझ बन गया
 हो और चाँदनी की ज्वाला में जला जा रहा है । बीन बाण के समान
 लगती है और उस स्त्री के बिना तो मानों वसंत ऋतु का अंत आ गया
 हो ॥ १२ ॥ हवा भी शत्रु हो गई, बोलना मानों विलाप-सदृश और वीणा
 मानों ऐसे लग रही है जैसे मृतक के लिए शोकमय संगीत हो । मुचंग आदि
 लग रहा है जैसे रणवाद्य हों और अंग-अंग काम के अंश से और आशों से
 चीरा जा रहा है । चाँद की चाँदनी की चिता चारों ओर दिखाई दे रही
 है और कोकिला की कूक मन में हूक-सी मार रही है । आभूषण बोझ बन
 गए हैं और फूल नहीं फूले हैं मानों सर्पों ने फन फैला दिए हों ॥ १३ ॥
 ॥ चौपाई ॥ मैं तो हाथ में सिधौरा लेकर पिगला के लिए हठपूर्वक अग्नि में

पानि कौ पीयै ॥ १४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तब तह गोरखनाथ
 पहुँच्यो आइकै । त्रिप प्रति कह्यो अदेसु सु नाद बजाइकै ।
 रानी दई जिवाइ सरूप अनेक धरि । हो सुनहो भरथरि राव
 लेहु गहि एक कर ॥ १५ ॥ ॥ भरथरि बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ काँह
 गहौ कौनै तजौ चित मै करै बिबेक । सभै पिंगुला की प्रभा
 रानी भई अनेक ॥ १६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ यौ कहि गोरखनाथ
 तहाँ ते जात भयो । भानमती को चित चंडार इक हर लियो ।
 ता दिन ते राजा कौ दियो भुलाइकै । हो रानी नीच के रूप
 रही उरझाइकै ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ दूतमती दासी हुती
 तब ही लई बुलाइ । पठे देत भी नीच सौ परम प्रीति
 उपजाइ ॥ १८ ॥ ॥ चौपई ॥ जब दूती तह ते फिरि आई ।
 यो पूछो रानी तिह जाई । कहु अलि सीत कबै ह्याँ ऐहै ।
 हमरे चित को ताप मिटैहै ॥ १९ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ कहु न
 सहचरी साचु सजनु कब आइहै । जोर नैन सो नैन कबै
 मुसकाइहै । (मू०पं० ११०६) लपटि लपटि करि जाउ लला सौ
 तौन छिन । हो कहो सखी मुहि सीत कबै है कवन
 दिन ॥ २० ॥ बार बार गज मुतियन गुहौ बनाइकै । अपने

जल मरूंगा । अब यदि वह स्त्री जीवित हो उठे तभी भरथरी पानी
 पीएगा ॥ १४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तब वहाँ गोरखनाथ आ पहुँचा और उसने
 अपना नाद बजाकर राजा से कहा । उसने रानी को अनेकों स्वरूपों में
 जीवित कर दिया और राजा से कहा कि इनमें से कोई एक ले लो ॥ १५ ॥
 ॥ भरथरी उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ किसे पकड़ूँ और किसे छोड़ूँ मैं यही सोच
 रहा हूँ । क्योंकि पिंगला के रूपवाली तो ये अनेकों रानियाँ हो गई हैं ॥ १६ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ यह कहकर गोरखनाथ वहाँ से चल पड़ा और इधर एक चांडाल
 ने भानुमती का चित्त चरा लिया । उसने उस दिन से राजा को भुला दिया
 और उस नीच के रूपजाल में उलझकर रह गयी ॥ १७ ॥ ॥ दोहा ॥ तब
 उसने दूतमती दासी को बुलाया और उस नीच को उसके साथ भेज
 दिया ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब दूती वापस आयी तो रानी ने उसे जाकर
 पूछा कि हे सखी ! बताओ मेरा मित्र फिर यहाँ कब आएगा और मेरा तन-
 ताप मिटाएगा ? ॥ १९ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ हे सखी ! सच बताओ कि मेरा सजन
 कब आएगा और कब मुझसे आँखें मिलाकर मुस्कुराएगा ? उसी क्षण मैं प्रिय से
 लिपट-लिपटकर जाऊँगी । कहो सखी ! मित्र किस दिन आएगा ? ॥ २० ॥
 मैं बार-बार मोतियों की माला बना रही हूँ और अपने प्रिय को क्षण भर में

लला को छिन मै लेउ रिझाइकै । टूक टूक तन होइ न मोरो
नैक मन । हो कासी करवत लियो प्रिया की प्रीत
तन ॥ २१ ॥ बिहसि बिहसि कब गरे हमारे लागिहैं । तब
ही सभ ही शोक हमारे भागिहैं । चटक चटक दै बातें मटक
बताइहै । हो ता दिन सखी सहित हम बलि बलि
जाइहै ॥ २२ ॥ जौ ऐसे झरि मिलै सजन सखि आइकै । मो
मन कौ लै तब ही जाइ चुराइकै । भाँति भाँति रति करौ न
छोरो एक छिन । हो बीतै मास पचासन जानौ एक
दिन ॥ २३ ॥ मचकि मचकि कब कहिहैं बचन बनाइकै ।
लचकि लचकि उर साथ चिमटिहै आइकै । लपटि लपटि मै
जाउ प्रिया के अंग तन । हो मेल मेल करि राखौ भीतर ताहि
मन ॥ २४ ॥ ॥ सवैया ॥ खंजनहूँ न बद्यो कछु कै करि
कंजु कुरंग कहाँ करि डारे । चारु चकोर न आने ह्रिदै पर झुंड
झखीनहु को झझकारे । मै न रह्यो मुरछाइ प्रभा लखि सार
सभै सभ दास बिचारे । अंतक सोचन धीरज मोचन लालची
लोचन लाल तिहारे ॥ २५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ सुनत सहचरी
बचन तहाँ ते तह गई । चातुरता बहु भाँति सिखावत तिह

रिझा लूंगी । मेरा तन टुकड़े-टुकड़े हो रहा है और मन मेरे वश में नहीं
रहा है । मैंने तो प्रिय से प्रीति लगाकर मानों काशी में करवत (आरे) को
अपने ऊपर चलवा लिया है ॥ २१ ॥ कब हँस-हँसकर मेरे गले लगेगा ?
तभी मेरा सारा शोक दूर होगा । वह चटक-मटककर बातें करेगा । उसी
दिन सखी ! मैं तो न्योछावर हो जाऊँगी ॥ २२ ॥ हे सखी ! यदि मेरा सजन ऐसे
मिल जाय तो मेरे मन को तत्क्षण चुरा लेगा । मैं भाँति-भाँति से उससे
रतिक्रीड़ा करूँगी और एक क्षण भी उसे नहीं छोड़ूँगी और पचासों महीने
बीतने पर भी एक दिन मानूँगी ॥ २३ ॥ कब वह मुझे मचक-मचककर बातें
सुनाएगा और लचक-लचककर मेरे सीने के साथ आ चिपकेगा । मैं भी
लिपट-लिपटकर प्रिय के शरीर से लगूँगी और अन्दर ही अन्दर अपना मन
उससे मिला लूँगी ॥ २४ ॥ ॥ सवैया ॥ मैं तो अब खंजन, कमल, हिरण
आदि को भी कुछ नहीं समझ रही हूँ । चकोर और मछलियों के झुंड भी
अब मेरे हृदय पर कोई प्रभाव नहीं डालते । तन की प्रभा देखकर तो
कामदेव मूर्च्छित होकर गिर पड़ा है और सभी मेरे दास हो गए हैं । हे
प्रिय ! तुम्हारे नेत्र चिताओं को समाप्त करनेवाले और धैर्य को छुड़ा देनेवाले
हैं ॥ २५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ दासी बात सुनकर वहाँ से उसके (मित्र के) पास

भई । बस्त्र मलीन उतारि भले पहिराइकै । हो तह ल्यावत
 तिह भई सु भेस बनाइकै ॥ २६ ॥ मन भावत जब मीत तरुनि
 तिन पाइयो । भाँति भाँति ताकौ गहि गरे लगाइयो ।
 आसन चुंबन करे हरख उपजाइकै । हो तवन सखी को दारिद
 सकल मिटाइकै ॥ २७ ॥ निजिक द्रुगा की पूजा करी
 रिझाइयो । ताके कर ते एक अमर फल पाइयो । तिन लै
 कै भरथरि राजा जूको दियो । हो जब लौ प्रिथी अकाश
 त्रिपत तब लै जियो ॥ २८ ॥ दुरग दत्त फल अमर जब त्रिप
 कर पर्यो । भानमती को देउ इहै चित्त मै कर्यो । त्रिय
 किय मनहि बिचार कि मित्रहि दीजियै । हो सदा तरुन सो
 रहै केल अति कीजियै ॥ २९ ॥ मन भावंता मीत जदिन सखि
 पाइयै । तन मन धन सभ वारि बहुर बलि जाइयै । मो मन
 लयो चुराइ प्रीतमहि आजु सभ । हो रहै तरुन चिर
 जियै (सू०पं० १११०) दियो फल ताँहि लभ ॥ ३० ॥
 ॥ चौपई ॥ त्रिप को चित रानी हर लयो । अबला मनु ताके
 कर दयो । वहु अटकत बेस्वा पर भयो । फल लै कै
 ताके कर दयो ॥ ३१ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ रही तरुनि सो

चली गई और उसे बहुत कुछ चतुरता सिखा दी, उसके मैले वस्त्र उतरवाकर
 उसे सुन्दर वस्त्र धारण करवाए और उसे सुन्दर वेश में वहाँ ले आई ॥ २६ ॥
 जब मनभावन मित्र उस युवा स्त्री ने प्राप्त किया तो उसे भाँति-भाँति से गले
 लगाया । आसन-चुंबनादि हर्षपूर्वक दिये और उस दासी की भी सारी
 दरिद्रता दूर कर दी ॥ २७ ॥ पास ही में दुर्गा मंदिर में देवी की पूजा की
 और उससे एक अमरफल प्राप्त किया । वह लेकर उसने राजा भरथरी
 को दे दिया ताकि राजा पृथ्वी-आकाश जितनी आयु प्राप्त कर सके ॥ २८ ॥
 दुर्गा द्वारा फल जब राजा के हाथ लगा तो उसने सोचा कि इसे भानुमती को
 दे दिया जाय । स्त्री ने सोचा कि मित्र को दे दिया जाय जिससे वह सबैव
 तरुण बना रहे और उससे केलिक्रीड़ा की जा सके ॥ २९ ॥ जब मनपसंद
 मित्र मिल जाय तो हे सखी ! तन-मन-धन सब न्योछावर कर देना चाहिए ।
 मेश मन तो इस प्रियतम ने चुरा लिया है । वह सदैव तरुण बना रहे ।
 यह सोच उसने वह फल उसे दे दिया ॥ ३० ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा का चित्त
 तो रानी ने चुराया था और रानी ने अपना मन उस (चांडाल) के हाथों में
 दे दिया था । वह आगे एक वेश्या में उलझा हुआ था । उसने वह फल

रीझि अंग त्रिप के निरखि । चारु किए चख रहैं'सरूप
अमोल लखि । फल सोई लै हाथ रुचित रुचि सौ दियो । हो
जब लौ प्रिथी अकाश त्रिपति तब लौ जियो ॥ ३२ ॥ लै
बेस्वा फल दियो त्रिपति कौ आनिकै । रूप हेरि बसि भई
प्रीति अति ठानिकै । लै राजै तिह हाथ चित चित मै कियो ।
हो यह सोई द्रुम जाहि जु मै त्रिय कौ दियो ॥ ३३ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ भाँति भाँति तिह लीनो सोध बनाइकै । तिह
बेस्वा को पूछ्यो निकटि बुलाइकै । साच कहो मुहि यह फल
तैं कह ते लह्यो । हो हाथ जोरि तिन बचन त्रिपति सौ यौ
कह्यो ॥ ३४ ॥ तुम अपने चित जिह रानी के कर दियो ।
ताकौ एक चंडार मोहि करि मनु लियो । तवन नीच मुहि
ऊपर रह्यो बिकाइकै । तब त्रिय तिह दिय तिन मुहि दयो
बनाइकै ॥ ३५ ॥ मै लखि तुमरौ रूप रही उरझाइकै ।
हरअरि सर तन बधी सु गई बिकाइकै । सदा तरनि ताको फलु
हम ते लीजियै । हो कामकेल मुहि साथ हरख सो
कीजियै ॥ ३६ ॥ तुम तिह त्रिय जु दयो फल अति रुचि
मानिकै । तिन लै दियो चंडारहि अति हितु ठानिकै । उन

उसे ले जाकर दे दिया ॥ ३१ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ वह वेश्या राजा के अंगों
पर मोहित थी, उसके सुन्दर नेत्र सदैव उसकी प्रभा को देखा करते थे ।
उसने वह फल लेकर राजा को दे दिया और कहा कि जब तक धरती-आकाश
है, राजन् ! तुम जियो ॥ ३२ ॥ वेश्या ने राजा को आकर फल दे दिया,
क्योंकि वह भी उसका रूप देखकर उसके वश में हो चली थी । राजा ने
उसे हाथ में लेकर सोचा कि यह तो वही फल है जिसे मैंने पत्नी को दिया
था ॥ ३३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तब उसने विभिन्न प्रकार से पता किया और उस
वेश्या को पास बुलाकर पूछा कि मुझे सच बताओ यह फल तुमने किससे लिया
है ? उसने हाथ जोड़कर राजा से कहा ॥ ३४ ॥ तुमने अपने मन से जिस
रानी के हाथ दिया था उसका मन एक चांडाल ने मोह लिया है । वह नीच
मेरे पर बिका हुआ है । तुम्हारी स्त्री ने उसे दिया और उसने मुझे दिया
है ॥ ३५ ॥ मैं तुम्हारे रूपजाल में उलझी हुई हूँ और कामासक्त हो तुम
पर बिकी हुई हूँ । सदा यौवनवाला यह फल मुझसे लो और प्रसन्नतापूर्वक
मेरे साथ कामक्रीड़ा करो ॥ ३६ ॥ तुमने जो अत्यन्त रुचिपूर्वक यह फल
उसे दिया, किन्तु उसने प्रेमपूर्वक वह चांडाल को दे दिया । उसने मुझे और

मुहि मै तुहि दियो सु बिरहा की दही । हो निरखि तिहारी
 प्रभा दिवानी ह्वै रही ॥ ३७ ॥ है तव प्रभा बिलोकि रही
 उरझाइकै । ग्रहि सिंगरे की संग्या दई भुलाइकै । अमर
 अजर फल तुमकौ दीनौ आनि करि । हो ताते मदन संताप
 त्रिपति हमरो प्रहरि ॥ ३८ ॥ धन्य धन्य ताकौ तब त्रिपति
 उचारियो । भाँति भाँति सौ ताके संग बिहारियो । लपटि
 लपटि बेस्वा हूँ गई बनाइकै । हो अप्रमान दुति हेरि रही
 उरझाइकै ॥ ३९ ॥ मन भावंतो मीत जवन दिन पाइयै ।
 तवन घरी के पल पल बलि बलि जाइयै । लपटि लपटि करि
 तासौ अधिक बिहारियै । हो ततखिन द्रप कंद्रप को सकल
 निवारियै ॥ ४० ॥ ॥ सर्वैया ॥ बाल को रूप बिलोक कै
 लाल कछू हसिकै अस बैन उचारे । तैं अटकी सुनि सुंदरि मो
 पर ऐसे न सुंदर अंग हमारे । (म०प्र० ११११) जीबो धनो सिंगरो
 जग चाहत सो न रुच्यो चित माँझि तिहारो । आनि जरारि
 दयो हम कौ फलु दास भए हम आजु तिहारे ॥ ४१ ॥
 ॥ बेस्वा वाच ॥ नैन लगे जब ते तुम सौ तव ते तव हेरि प्रभा
 बलि जाऊँ । भौन भंडार सुहात न मोकह सोवत हूँ बिझ के
 बरराऊँ । जेतिक आपनी आरबला सभ मीत के ऊपर वारि

मैंने विरहाकुल हो तुम्हें दे दिया है । मैं तो तुम्हारा सौंदर्य देखकर दीवानी
 हो गई हूँ ॥ ३७ ॥ मैं तुम्हारी प्रभा देखकर उलझी पड़ी हूँ और मैंने घर का
 भी होश भुला दिया है । अमर-अजर फल मैंने तुमको दिया है, इसलिए हे
 राजन् ! मेरा कामसंताप दूर करो ॥ ३८ ॥ राजा ने उसे धन्य-धन्य कहा
 और विभिन्न प्रकार से उससे कामक्रीड़ा की । वह वेश्या भी उससे लिपट-
 लिपट गई और उसकी अपार रूपशोभा में उलझ गई ॥ ३९ ॥ जब मनभावन
 मित्र मिल जाय उसी पल न्यौछावर हो जाना चाहिए । उससे लिपट-लिपट
 कर रमण करना चाहिए और उसी क्षण कामदेव का गर्व चूर कर देना
 चाहिए ॥ ४० ॥ ॥ सर्वैया ॥ उस स्त्री का रूप देखकर प्रिय ने हँसकर कहा
 कि हे सुन्दरी ! सुनो । तुम मुझ पर मोहित हो, ऐसे तो मेरे अंग सुन्दर
 नहीं हैं । सारा संसार अत्यधिक जीना चाहता है, पर तुम्हें वह भी अच्छा नहीं
 लगा और तुमने यह जटा का शत्रु फल मुझे दे दिया है । मैं तुम्हारा दास हो
 गया हूँ ॥ ४१ ॥ ॥ वेश्या उवाच ॥ जबसे तुमसे आँख लगी है तभी से
 तुम्हारा सौंदर्य देखकर मैं न्यौछावर हूँ । भवन, भंडारादि मुझे अच्छे नहीं
 लगते और मैं सोती हुई बड़बड़ाती हूँ । मेरी जितनी आयु है वह मैं तो

बहाऊँ । केतिक बात जरारि सुनो फल प्राण दे मोल पिया
 कह ल्याऊँ ॥ ४२ ॥ तै जु दियो तिय को फल थो दिज तें
 करि कोटि कुपाइ लियो । सोऊ लेकर जार कौ देत भई तिन
 रीझि कै मो पर मोहि दियो । त्रिप हौ अटकी तव हेरि प्रभा
 तन को तनिकै नहि ताप कियो । तिह खाहु हमै सुख देह
 दियो त्रिप राज करो जुग चार जियो ॥ ४३ ॥ भरथरि बाच ॥
 ॥ अडिल्ल ॥ ध्रिग मुहि कौ मै जु फलु त्रियहि दे डारियौ ।
 ध्रिग तिह दियो चंडार जु ध्रम न बिचारियो । ध्रिग
 ताको तिन त्रिय रानी सी पाइकै । हो दयो बेस्वहि परम प्रीति
 उपजाइकै ॥ ४४ ॥ ॥ सवैया ॥ आधिक आपु भख्यो त्रिप लै
 फल आधिक रूपमती कह दीनो । यार कै टूक हजार करे गहि
 नारि भिट्यार तिनै बधि कीनो । भौन भंडार बिसार सभे
 कछु राम को नामु ह्निदै द्रिड़ चीनो । जाइ बस्यो तब ही बन
 मै त्रिप भेस को त्याग जुगेस को लीनो ॥ ४५ ॥ ॥ दोहरा ॥ बन
 भीतर भेटा भई गोरख संग सुधार । राज त्याग अंम्रित
 लयो भरथरि राजकुमार ॥ ४६ ॥ ॥ सवैया ॥ रोवत है सु

प्रिय पर ही न्योछावर कर दूँ । यह अमरफल क्या है, मैं तो प्राण देकर भी
 प्रिय को प्राप्त करूँगी ॥ ४२ ॥ तूने जो फल स्त्री को दिया था वह अनेकों
 उपाय करके प्राप्त किया गया था । उसने वही अपने मित्र को दे दिया,
 जिसने रीझकर मुझे दिया है । हे राजन् ! मैं तो तुम्हारी प्रभा देखकर अटक
 गई हूँ और मुझे कोई संताप नहीं है । तुम उसे खाओ और हमें सुख दो
 तथा हे राजन् ! चारों युगों तक जीवित रहो ॥ ४३ ॥ ॥ भरथरी उवाच ॥
 ॥ अडिल्ल ॥ मुझे धिक्कार है जो मैंने उस स्त्री को फल दिया । उसको
 धिक्कार है जिसने धर्म नहीं विचारा और चांडाल को दे दिया । उसको
 धिक्कार है जिसने रानी जैसी स्त्री पाकर भी उसे वेश्या को दे दिया । मुझे
 उस वेश्या ने प्रेमपूर्वक दे दिया है ॥ ४४ ॥ ॥ सवैया ॥ राजा ने आधा
 फल स्वयं खाया और आधा रूपमती को दे दिया । उस यार के हजारों
 टुकड़े कर दिए और उस कुलटा स्त्री को भी पकड़कर मार डाला । उसने
 भवन-भंडार आदि सबका त्याग किया और मन में राम-नाम दृढ़ कर लिया ।
 वह वन में बस गया और उसने राजा का वेश त्यागकर योगी का वेश धारण
 कर लिया ॥ ४५ ॥ ॥ दोहा ॥ वन में उसकी भेंट गोरखनाथ से हुई और
 उस भरथरी ने राज को त्यागकर उससे दीक्षा ली ॥ ४६ ॥ ॥ सवैया ॥ नगर

कहूँ पुर के जन बौरे से डोलत ज्यों मतवारे । फारत चीर सु
 बीर गिरे कहूँ जूझे हैं खेत मनो जुझियारे । रोवत नार अपार
 कहूँ बिसंभारि भई करि नैनन तारे । त्याग कै राज समाज
 सभै महाराज सखी बिन आजु पधारे ॥ ४७ ॥ निजु नारि
 निहारि कै भरथकुमारि बिसारि सँभारि छकी मन मै । कहूँ
 हार गिरे कहूँ बार लसै कछु नैकु प्रभा न रही तन मै । झख
 केतक बानन पीड़त भी मन जाइ रह्यो मन मोहन मै । मनो
 दीपक भेद सुनो सुरनाद झिगी गन जानु बिधी मन मै ॥ ४८ ॥
 ॥ दोहरा ॥ अनिक जतन करि करि त्रिया हारत भई अनेक ।
 बन ही कौ त्रिप जात भ्यो मानियो बचन न एक ॥ ४९ ॥ जब
 राजा बन मै गए गोरख गुरु बुलाइ । (म०पं० १११२) बहुरि
 भाति सिछ्या दई ताहि सिख्य ठहराइ ॥ ५० ॥ ॥ भरथरी
 बाच ॥ कवन मरै मारै कवन कहत सुनत कह कोइ । को रोवै
 कवनै हसै कवन जरा जित होइ ॥ ५१ ॥ ॥ चौपाई ॥ हसि
 गोरख इमि बचन उचारे । सुनहु भरथहरि राज हमारे ।
 सत्ति झूठ मूओ हंकारा । कबहु मरत न बोलनहारा ॥ ५२ ॥

के लोग रोते हैं और बौशकर मतवाले हो दौड़ रहे हैं । कपड़ों को फाड़ते
 हुए वे गिरे हुए ऐसे लग रहे हैं-मानों वीर युद्ध में जूझ रहे हों । अनेकों
 स्त्रियाँ रो रही हैं और उनकी आँखें फटी-सी रह गई हैं क्योंकि आज राज-
 समाज को छोड़कर राजा वन को प्रस्थान कर गए हैं ॥ ४७ ॥ भरथरी
 की स्त्रियाँ देखकर होश भूल गई । कहीं उनके हार गिरे हुए थे, कहीं केश
 फँसे हुए थे और उनके शरीर में तो तनिक भी प्राण न रहे । कई तो
 कामासक्त थीं और उनका मन अपने प्रिय मनमोहन में लगा हुआ था । वे
 ऐसी लग रही थीं मानों मृगियाँ नाद सुनकर उसमें बिंध गई हों ॥ ४८ ॥
 ॥ दोहा ॥ स्त्रियाँ अनेकों यत्न करके हार गई परन्तु राजा वन को चला ही
 गया और उसने एक भी नहीं मानी ॥ ४९ ॥ जब राजा वन में गया तो
 गुरु गोरखनाथ ने बुलाकर उसे बहुत रात तक शिक्षा-दीक्षा दी ॥ ५० ॥
 ॥ भरथरी उवाच ॥ कौन मरता है कौन मारता है ! कहता और सुनता
 कौन है ! कौन रोता है, कौन हँसता है और वृद्धावस्था को जीतनेवाला
 कौन है ! ॥ ५१ ॥ ॥ चौपाई ॥ गोरख ने हँसकर ऐसे कहा कि हे मेरे भरथरी !
 सुनो । सत्य झूठ में से अहंकार मरता है और बोलनेवाला, (आत्मा) कभी
 नहीं मरता ॥ ५२ ॥ ॥ दोहा ॥ काल मरता है, काया मरती है और काल ही

॥ दोहरा ॥ काल मरै कायाँ मरै कालै करत उचार । जीभै
गुन बख्यानहीं सवनन सुनत सुधार ॥ ५३ ॥ ॥ चौपई ॥ काल
नैन हवै सभन निहरई । काल बकल हवै बाक उचरई । काल
मरत काल ही मारै । भूला लोग भ्रम बीचारै ॥ ५४ ॥
॥ दोहरा ॥ काल हसत कालै रोवत करत जरा जित होइ । काल
पाइ उपजत सभै काल पाइ बध होइ ॥ ५५ ॥ ॥ चौपई ॥ कालै
मरत काल ही मारै । भ्रमि भ्रमि पिंड अवारा पारै । काम
क्रोध मूओ हंकारा । एक न मर्यो सु बोलणहारा ॥ ५६ ॥
आसा करत सकल जग मरई । कौन पुरखु आसा परहरई ।
जो नर कोऊ आस कौ त्यागै । सो हरि के पाइन सौ
लागै ॥ ५७ ॥ ॥ दोहरा ॥ आसा की आसा पुरखु जो कोऊ
तजत बनाइ । पाप पुन्य सर तरि तुरतु परम पुरी कह
जाइ ॥ ५८ ॥ ज्यों समुंदहि गंगा मिलत सहंस धार के साज ।
त्यों गोरख रिराज सियों आजु मिल्यो त्रिपराज ॥ ५९ ॥
॥ चौपई ॥ याते मैं बिसथार न करौ । ग्रंथ बढन ते अति चित डरौ ।
ताते कथा न अधिक बढाई । भूल परी तह लेहु बनाई ॥ ६० ॥

बोलता है । जिह्वा तो मात्र गुणों का बखान करती है और कान मात्र सुनते
हैं ॥ ५३ ॥ ॥ चौपाई ॥ काल ही नयन बनकर सबको देखता है और काल
ही मुँह बनकर बात करता है । काल ही मरता है और काल ही मारता
है, भूले हुए लोग भ्रम में अनेकों प्रकार से विचार करते हैं ॥ ५४ ॥
॥ दोहरा ॥ काल ही हंसता है, काल ही रोता है और काल ही जरा को
जीतनेवाला है । काल के प्रभाव से लोग पैदा होते हैं और काल के अनुसार ही
मरते हैं ॥ ५५ ॥ ॥ चौपाई ॥ काल में ही मरता है और काल ही मारता है
और शरीर भ्रम में पड़कर भटकता है । काम, क्रोध और अहंकार तो मर जाता
है केवल एक वही (आत्मा) नहीं मरता जो सदैव बोलने की शक्ति है ॥ ५६ ॥
आशाएँ करता समस्त संसार मर जाता है । कोई ऐसा पुरुष है जो आशाओं
का त्याग करे । जो व्यक्ति आशाओं को त्याग देता है, वही परमात्मा के
चरणों में विराजमान होता है ॥ ५७ ॥ ॥ दोहरा ॥ आशा की आशा का
जो कोई व्यक्ति त्याग कर देता है, वह पाप-पुण्य के सागर को तैरकर परमधाम
को तुरन्त चला जाता है ॥ ५८ ॥ जैसे गंगा समुद्र को सहस्र धाराओं के
साथ मिलती है वैसे ही ऋषिराज गोरखनाथ को आज राजा मिल गया
है ॥ ५९ ॥ ॥ चौपाई ॥ अब मैं और विस्तार नहीं करूँगा, क्योंकि मैं ग्रंथ के
बढ़ जाने से डरता हूँ । इसलिए मैंने कथा को ज्यादा नहीं बढ़ाया है । जहाँ

गोरख सो गोशटि जब भई । राजा की दुरमति सभ गई ।
 सीखत ग्यान भली बिधि भयो । जल हवै ज्यों जल मैं मिलि
 गयो ॥ ६१ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक मूँड भरथरि घित चुअत
 निहारियो । हसि हसि तासो बचन इह भाँति उचारियो ।
 जिनको लगे कटाछ राज ते खोवही । हो तुहि कर लागे तै क्यों
 मूढ न रोवही ॥ ६२ ॥ ॥ चौपई ॥ बीतत बरख बहुत जब
 भए । भरथरि देस आपने गए । चीनत एक चंचला भई ।
 निकट रानियन के चलि गई ॥ ६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनि
 रनियन ऐसो बचन राजा लियो बुलाइ । भाँति भाँति रोदन
 करत रही चरन लपटाइ ॥ ६४ ॥ ॥ सोरठा ॥ मासा रह्यो
 न (मू०पं० १११३) मास रक्त रंच तन ना रह्यो । स्वास न उड्यो
 उसास आस तिहारै मिलन की ॥ ६५ ॥ ॥ चौपई ॥ जोग कियो
 पूरन भयो त्रिप बर । अब तुम राज करो सुख सौ घर । जौ
 सभहिन हम प्रथम सँघारो ता पाछे बन ओर सिधारो ॥ ६६ ॥
 ॥ भरथरि बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ जे रानी जोबन भरी अधिक
 तबै गरबाहि । ते अब रूप रहित भई रह्यो गरब कछु

भूल हो गई हो वहाँ स्वयं सुधार बना लेना ॥ ६० ॥ जब गोरख से गोष्ठी
 हुई तो राजा की सारी दुरमति नष्ट हो गई । उसने भलीभाँति ज्ञान सीखा
 और गोरख से ऐसे मिल गया जैसे जल जल से मिल जाता है ॥ ६१ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ भरथरी ने एक खोपड़ी में से घी को रिसते (चूते) देखा और
 हँस-हँसकर उससे कहा कि जिनको ज़रा सा कटाक्ष भी लग जाता है वे राज
 खो देते हैं, फिर हे मूर्ख ! तुम भला ऐसा करके क्यों नहीं रोते हो ॥ ६२ ॥
 ॥ चौपाई ॥ जब बहुत वर्ष बीत गए तो भरथरी अपने देश को गया । उसे
 एक स्त्री ने पहचान लिया और वह रानियों के पास चली गई ॥ ६३ ॥
 ॥ दोहा ॥ रानियों ने यह सुनकर राजा को बुलाया और विभिन्न प्रकार से
 विलाप करती हुई उसके चरणों से लिपट गई ॥ ६४ ॥ ॥ सोरठा ॥ तनिक
 भी मांस नहीं रहा और रक्त भी शेष नहीं बचा । तुम्हारे मिलने की आशा
 में साँस भी समाप्त नहीं हुई ॥ ६५ ॥ ॥ चौपाई ॥ हे राजा ! तुमने योग
 पूरा कर लिया है और अब तुम सुखपूर्वक राज करो । अब तो तुम पहले
 यदि हम सबको मार दो तो बाद में वन को प्रस्थान करो ॥ ६६ ॥
 ॥ भरथरी उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ जब रानियाँ यौवनपूर्ण थीं तभी उनमें
 गर्व था, अब वे रूपविहीन थीं और उनमें गर्व समाप्त हो चुका था ॥ ६७ ॥

नाहि ॥ ६७ ॥ ॥ चौपई ॥ अबला हुती तरुनि ते भई ।
तरुनि जु हुती बिद्ध हवै गई । बिरधनि ते कोऊ लही न जावै ।
चित्त कौ इहै असचरच आवै ॥ ६८ ॥ जे रानी जोबन
की भरी । ते अब भई जरा की धरी । जे अबला सुंदर
गरबाही । तिन को रह्यो गरब कछु नाही ॥ ६९ ॥
॥ दोहरा ॥ जो मन मै गरबत तबै अधिक चंचला नारि । ते
अब जीति जरा लई सकत न देह सँभारि ॥ ७० ॥ ॥ चौपई ॥ जे
जे ब्रिया तबै गरबाही । तिन को रह्यो गरब कछु नाही ।
तरुनी हुती बिरध ते भई । ठौरै ठौर और हवै गई ॥ ७१ ॥
केसन प्रभा जात नहि कही । जानुक जटन जानुवी बही ।
कैधो सकल दुग्ध सौ धोए । ताते सेत बरन कच होए ॥ ७२ ॥
॥ दोहरा ॥ मुकतन हीरन के बहुत इन पर किए शिगार ।
ताँते तिन की छबि भए तरुनि तिहारे बार ॥ ७३ ॥ जो तब
अति सोभित हुते तरुनि तिहारे केस । नील मनी की छबि हुते
भए रुकम के भेस ॥ ७४ ॥ ॥ चौपई ॥ कैधो सकल पुहप
गुहि डारे । ताते कच सित भए तिहारे । ससि की जौनि

॥ चौपाई ॥ जो छोटी थीं वे जवान हो गयीं; जो जवान थीं वे वृद्ध हो गयीं ।
वृद्धाओं में अब कोई नजर नहीं आ रही थी और यही मन को आश्चर्य है ॥ ६८ ॥
जो शानियाँ यौवन से पूर्ण थीं वे अब वृद्धावस्था में पड़ी हुई थीं । जो
स्त्रियाँ सुन्दरता का गर्व करनेवाली थीं अब उनका गर्व समाप्त हो चुका
था ॥ ६९ ॥ ॥ दोहरा ॥ जो स्त्रियाँ अधिक गर्व किया करती थीं उन्हें अब
वृद्धावस्था ने जीत लिया था और अपना तन भी नहीं सँभाल पा रही
थीं ॥ ७० ॥ ॥ चौपाई ॥ उस समय गर्व करनेवाली स्त्रियों का कुछ भी
गर्व नहीं रह गया था । जो युवती थीं वे वृद्धा हो गईं और देखते-देखते
और की और हो गई थीं ॥ ७१ ॥ अब उनके केशों की छवि बयान नहीं की
जा सकती । ऐसा लग रहा था मानों जटाओं में से श्वेत गंगा बह रही हो ।
ऐसा लगता था मानों दूध से धोए हो इसलिए बाल सफ़ेद हो गए थे ॥ ७२ ॥
॥ दोहरा ॥ इन पर मोती-हीरों के बहुत शृंगार किए हुए थे, इसीलिए हे
तरुणी ! तुम्हारे केश इसी छटा के हो गए हैं ॥ ७३ ॥ हे तरुणी ! जो तुम्हारे
केश नीलमणि के समान थे अब चाँदी के रंग के वेश के हो गए हैं ॥ ७४ ॥
॥ चौपाई ॥ ऐसा लग रहा था मानों सारे पुष्प गूँथ दिए हों इसी से काले
बाल सफ़ेद हो गए हैं । लगता है चन्द्रमा की चाँदनी अधिक पड़ गई है जिससे

अधिकपौ परी । ताते सकल स्यामता हरी ॥ ७५ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ इक रानी तब कह्यो त्रिपहि समझाइकै । मुहि
 गोरख कहि गए सुपन मै आइकै । जब लौ त्रिय ए जियत राज
 तब लौ करौ । हो जब ए सभ मरि जैहै तब पग मग
 धरो ॥ ७६ ॥ सुनि रनियन के बचन त्रिपहि करुणा भई ।
 तिनकै भीतर बुद्ध कछुक अपुनी दर्ई । जो कछु पिंगुल कह्यो
 मान सोई लियो । हो राज जोग घर बैठ दोऊ अपने
 कियो ॥ ७७ ॥ ॥ दोहरा ॥ मानि रानियन को बचन राज
 कर्यो सुख मानि । (म०पं० १११४) बहुरि पिंगुल के, मरे बन कौ
 कियो पयान ॥ ७८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मन्त्री भूप संवादे दोइ सौ मीनों चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २०६ ॥ ४०१० ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ दस चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ मगध देस को राव इक सरस सिंघ बड-
 भाग । जाके त्रासै सूर सभ रहैं चरन सौ लागि ॥ १ ॥
 ॥ चौपई ॥ चंचलकुअरि तवन की नारी । आप हाथ जगदीस

इनका कालापन हर लिया गया है ॥ ७५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तब एक रानी ने
 राजा से समझाकर कहा कि मुझे गोरखनाथ सपने में आकर कह गए हैं कि जब
 तक ये स्त्रियाँ जीवित हैं तब तक तुम राज करो । जब ये सब मर जाएँ तो
 तुम इस (योग) मार्ग पर पाँव रखो ॥ ७६ ॥ रानियों की बातें सुनकर राजा
 को दया आई । उसने अपना थोड़ा सा ज्ञान उनको दिया । जो पिंगला ने
 कहा वही मान लिया और घर बैठकर ही राजयोग की साधना की ॥ ७७ ॥
 ॥ दोहा ॥ रानियों की बात मानकर सुखपूर्वक राज किया और पिंगला के
 मरने पर पुनः वन को प्रस्थान किया ॥ ७८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ नीवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २०६ ॥ ४०१० ॥ अफजू ।

दो सौ दसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ मगध देश का राजा सरससिंह था, जिससे सभी वीर डरते
 थे और उसके चरणों में लगे रहते थे ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसकी रानी
 चंचलकुंवरी थी जिसे परमात्मा ने स्वयं बनाया था । उसका सौंदर्य अपरिमित

सवारी । अप्रमान तिह प्रभा बिराजै । जनु रति पति की प्रिया
सुराजै ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक राव को भित अधिक सुंदर
हुतो । इक दिन ताँहि बिलोक गई रानी सुतो । ता दिन ते
सुकुमार रही उरझाइकै । हो क्रोरि जतन करि ताकौ लियो
बुलाइकै ॥ ३ ॥ जबै कुअरि तिन लख्यो सजन घर आइयो ।
चंचलकुअरि बचन इह भाँति सुनाइयो । काम भोग मुहि साथ
करो तुम आइ करि । हो चित को सभ ही दीजै शोक मिटाइ
करि ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ तवन पुरख इह भाँति बिचारी ।
रम्यो चहत मोसो छिप नारी । काम भोग यासौ मैं करिहौ ।
कुंभी नरक बीच तब परिहौ ॥ ५ ॥ नाहि नाहि तिन पुरख
बखानी । तोसो रमत मैं नही रानी । ऐसे ख्याल बाल नहि
परियै । बेगि बिदा ह्याँ ते मुहि करियै ॥ ६ ॥ नहीं नहीं
पियरवा ज्यों करै । त्यों त्यों चरन चंचला परै । मैं तुमरी
लखि प्रभा बिकानी । मदन ताप ते भई दिवानी ॥ ७ ॥
॥ दोहरा ॥ मैं रानी तुहि रंक के चरन रही लपटाइ । कामकेल
मोसो तरुन क्यों नहि करत बनाइ ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अधिक
मोल को रतनु जु क्योंहूँ पाइयै । अनिक जतन भे राखि न

था । वह मानों कामदेव की पत्नी रति हो ऐसी लगती थी ॥ २ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ राजा का एक नौकर बहुत सुन्दर था । एक दिन रानी ने
उसको देखा और उसी दिन से उस नवयुवक में उलझकर रह गई । उसे
अनेकों प्रयत्न करके उसने बुला लिया ॥ ३ ॥ जब चंचलकुंवरि ने देखा कि
प्रिय घर आ गया है तो उसने यह सुनकर कहा : तुम मेरे साथ कामक्रीड़ा
करो और चित्त का सभी शोक मिटाकर करो ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ उस
व्यक्ति ने यह सोचा कि राजा की पत्नी मुझसे रमण करना चाहती है । यदि
मैं इससे कामक्रीड़ा करूँगा तो कुंभीपाक नरक में पड़ूँगा ॥ ५ ॥ उस पुरुष
ने "नहीं-नहीं" कहा और बता दिया कि हे रानी ! मैं तुमसे रमण नहीं
करूँगा । ऐसा विचार हमें नहीं करना चाहिए और तुम मुझे तुरन्त विदा
करो ॥ ६ ॥ जैसे-जैसे प्रिय नहीं-नहीं करता था वैसे-वैसे वह स्त्री उसके
चरणों में गिरने लगी । मैं तो तुम्हारी सुन्दरता पर बिक गई हूँ और काम-
ताप से दग्ध हूँ ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ मैं रानी होकर तुम्हारे रंक के चरणों
में लिपट रही हूँ । हे युवक ! तुम मुझसे कामक्रीड़ा क्यों नहीं करते हो ॥ ८ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ यदि कहीं से बहुमूल्य रत्न मिल जाय तो उसे यत्नपूर्वक सँभाल

ब्रिथा गवाइयें । ताँहि गरे सो लाइ भली बिधि लीजियें ।
 हो ग्रहि आवत निध नवौ किवार न दीजियें ॥ ६ ॥ तुमरी
 प्रभा बिलोक दिवानी मैं भई । तब ते सकल बिसारि सदन की
 सुधि दर्ई । जोरि हाथ सिर न्याइ रही तब पाइ पर । हो
 कामकेल मुहि साथ करो लपटाइ करि ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ मूरख
 कछू बात नहि जानी । पाइन सों रानी लपटानी । मान हेत
 बच मानि न लयो । अधिक कोप अबला को भयो ॥ ११ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ सुनु मूरख मै तोको प्रथम सँधारहो । (मृ० पं० १११५)
 ता पाछे निज पेट कटारी मारिहो । यहै कूप तब काल जानि
 जिय लीजियें । हो नातर हम सौ आनि अबै रति कीजियें ॥ १२ ॥
 ॥ चौपई ॥ ताकी कही न मूरख मानी । तब रानी अति ह्रिदै
 रिसानी । फाँस डारि ताको बध कियो । बहुरो डारि कूप महि
 दियो ॥ १३ ॥ हाइ हाइ करि राव बुलायो । पर्यो कूप तिह
 ताँहि दिखायो । तबै त्रिपति अस बचन उचारे । सो मैं कहत
 हौ सुनहु पयारे ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ याकी इतनो आरबला

कर रखना चाहिए और व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए । उसे भली प्रकार गले
 से लगा लेना चाहिए । घर में नौ निधियाँ आ रही हों तो दरवाजा बन्द
 नहीं करना चाहिए ॥ ६ ॥ तुम्हारी सुन्दरता देखकर मैं दीवानी हो गई हूँ
 और तभी से मैंने घर की सारी सुधि विस्मृत कर दी है । मैं हाथ जोड़कर
 तुम्हारे पाँव पड़ रही हूँ कि मुझसे लिपटकर कामकेल करो ॥ १० ॥
 ॥ चौपाई ॥ मूर्ख ने कुछ नहीं समझा कि रानी पैरों से लिपटी पड़ी है ।
 उसका मान रखने के लिए उसने कहना मान नहीं लिया । स्त्री अत्यधिक
 क्रुद्ध हो उठी ॥ ११ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ (उसने कहा) हे मूर्ख ! सुनो, मैं पहले
 तुम्हें मार डालूंगी और फिर अपने पेट में कटारी मार लूंगी । इस कुएँ को
 अपना काल समझो अन्यथा मुझसे आकर अभी रतिक्रीड़ा करो ॥ १२ ॥
 ॥ चौपाई ॥ मूर्ख ने उसकी नहीं मानी और रानी हृदय में अत्यधिक रुष्ट हो
 गई और पाश गले में डालकर उसका वध कर दिया तथा उसे कुएँ में डाल
 दिया ॥ १३ ॥ हाय-हाय करके उसने राजा को बुलाया और उसे कुएँ में
 पड़े हुए को दिखाया । तब राजा ने कहा कि मेरी बात सुनो । हे प्रिय !
 जो मैं कहता हूँ उसे ध्यान से सुनो ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ विधाता ने इसकी

बिधना लिखी बनाइ । ताते परि कूए मर्यो क्या कोऊ करे
उपाइ ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पण्ड्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सो दस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २१० ॥ ४०२५ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ गिआरह चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ नैपाली के देस मै रुद्रसिंघ त्रिप राज ।
सूरबीर जा के घने सदन भरे सभ साज ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ तिह
अरिकुतुम प्रभा त्रिय रहै । अति सुंदरि ताकौ जग कहै ।
स्त्री तड़िताकित प्रभ दुहिता तिह । जीति लई ससि अंस
सकल जिह ॥ २ ॥ लरिकापन ताको जब गयो । अंग अंग
जोबन झमकयो । आनि मै न तिह जब संतावै । सीत मिलन
को समो न पावै ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ कंजमती इक सहचरि लई
बुलाइकै । ता सौ चित की बात कही समुझाइकै । छैलकुअरि
कौ तै मुहि आन मिलाइदै । हो जवन बात तुहि रुचै सु मोहौ
आइलै ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ कंजमती तिह कुअरि के अति

इतनी ही आयु लिखी थी । इसीलिए यह कुएं में गिरकर मर गया । अब
भला कोई क्या उपाय करे ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ दसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २१० ॥ ४०२५ ॥ अफजू ॥

दो सौ ग्यारहवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ नेपाल देश में रुद्रसिंह राजाधिराज था । उसके पास
अनेकों शूरवीर थे और उसके घर में भंडार भरे हुए थे ॥ १ ॥
॥ चौपाई ॥ उसकी स्त्री अत्यन्त लाल रंग की थी और सारा संसार उसे
अत्यन्त सुन्दर कहता था । ईश्वर की बनाई श्री तड़िता नामक उसकी एक
पुत्री थी जिसने मानों चन्द्र-किरणों को भी जीत लिया हो ॥ २ ॥ जब उसका
बचपन बीत गया तो उसके अंग-अंग में जोबन झलकने लगा । जब उसे
काम सताता था तो किसी भी मित्र से उसका मिलन नहीं हो पाता था ॥ ३ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ उसने कंजमती नामक एक सहचरी को बुलाया और उसे मन
की बात समझाई । तुम मुझे छैलकुंवर से मिलवा दो और जो मन चाहे
मुझसे माँग लो ॥ ४ ॥ ॥ दोहा ॥ कंजमती उस राजकुमारी के विरहाकुल

आतुर सुनि बैन । छैलकुअर के ग्रहि गई त्याग तुरतु निज
 ऐन ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ छैलकुअर कौ दियो तुरतु तिह
 आनिकै । रसी कुअरि तिह साथ अधिक रुचि मानिकै । छैल
 छैलनी छके न छोरहि एक छिन । हो जनुक नवौ निधि राँक
 सु पाई आजु इन ॥ ६ ॥ गहि गहि ताके गरे गई लपटाइकै ।
 आसन चुंबन बहु ब्रिधि किए बनाइकै । टूटि खाट बहु गई न
 छोर्यो सीत कौ । हो तिह कर दियो उठाइ सु अपने चीत
 कौ ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ केल करत तरुनी अति रसी । जनु
 करि प्रेम फाँस ज्यों फसी । 'मन मै कह्यो इसी के बरिहौ ।
 नातर सारि कटारी मरिहौ ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अधिक
 भोग प्रीतम कर दियो उठाइकै । (सू० प्र० १११६) आपु सोइ आँगन
 रही खाट डसाइकै । चमकि ठाढ़ि उठ भी पितु आयो जानि
 करि । हो अधिक रोइ गिरि परी तौनही खाट तरि ॥ ९ ॥
 ॥ राजा बाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ताहि तबै पूछ्यो त्रिप आई । क्यों
 रोवत दुहिता सुखदाई । जो आग्या मुहि देहु सु करिहो ।
 तै कोपी जिह पर तिह हरिहो ॥ १० ॥ ॥ सुता बाच ॥ सोवत
 हुती सुपन मुहि भयो । जानक राव राँक कौ दयो । हौ नहि

वचनों को सुनकर तुरन्त अपना घर छोड़कर छैलकुंवर के पास पहुँची ॥ ५ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ वह तुरन्त छैलकुंवर को ले आई और राजकुमारी रुचिपूर्वक
 उसके साथ रमण करने लगी । उस छैल को वह छैलनी एक क्षण के लिए
 भी नहीं छोड़ रही थी । उसे ऐसा लग रहा था मानों किसी निर्धन को नौ
 निधियाँ मिल गई हों ॥ ६ ॥ उसके गले लग-लग उससे लिपट-लिपटकर
 रह गई । और उससे विभिन्न प्रकार के आसन-चुंबनादि किये । पलंग टूट
 गया पर उसने मित्र को नहीं छोड़ा और प्रसन्नतापूर्वक उसे हाथों में उठा
 लिया ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ केलिक्रीड़ा में स्त्री इतनी रम गई कि मानों वह
 प्रेम के पाश में फँस गई हो । मन में उसने सोच लिया कि मैं इसी का वरण
 कहूँगी नहीं तो कटारी मारकर मर जाऊँगी ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अत्यधिक
 भोग-विलास के बाद उसने प्रियतम को उठा दिया और स्वयं आँगन में पलंग
 पर सो रही । पिता को आता जान हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई और अधिक
 रोककर खाट पर गिर पड़ी ॥ ९ ॥ ॥ राजा उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ तब
 राजा ने आकर पूछा कि पुत्री ! तुम क्यों रो रही हो ? तुम मुझे जो कहो मैं
 कहूँगा । तुम्हारा क्रोध जिस पर हो मैं उसे मार डालूँगा ॥ १० ॥
 ॥ सुता उवाच ॥ मुझे सोती हुई को सपना आया कि राजा ने मुझे किसी

जोग्य हुती पितु ताके । तैं ग्रहि दयो सुपन मै जाके ॥ ११ ॥
 ॥ दोहरा ॥ जानुक आगि जराइकै लई भावरैं सात । बाँह
 पकरि पितु तिहु दई सुता दान करि मात ॥ १२ ॥
 ॥ सोरठा ॥ मैं तिह हुती न जोग जाकौ मुहि राजै दियो ।
 ताँते भई सु सोग रोवत हौ भरि जल चखन ॥ १३ ॥
 ॥ चौपाई ॥ अब मोरे परमेसर ओहू । भला बुरा भाखौ जन
 कोऊ । प्रानन लगत तवन कौ बरिहौ । नातरि मारि कटारी
 मरिहौ ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुपन बिखै माता पिता जिह
 मुहि दियो सुधारि । मन बच क्रम करकै भई मैं ताही को
 नारि ॥ १५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ कै मरिहौ बिख खाइ कि बाही
 कौ बरौ । बिनु देखे मुख नाथ कटारी हनि मरौ । कै मोकउ
 वह दीजै अब बुलाइकै । हो नातर हमरी आसा तजहु
 बनाइकै ॥ १६ ॥ कहि कहि ऐसे वचन मूरछना हवै गिरी ।
 जनु प्रहार जमधर के किए बिना मरी । आनि पिता तिह
 लियो गरे सौ लाइकै । हो कुअरि कुअरि कहि धाइ पई दुख
 पाइकै ॥ १७ ॥ जो सुपने तैं बर्यो सु हमै बताइयै । करियै
 वहै उपाइ मनै सुखु पाइयै । बहु चिर द्विगन पसारि पिता को

निर्धन को सौंप दिया है । हे पिता ! क्या मैं तुम्हारे (घर के) योग्य नहीं हूँ
 जो तुमने मुझे सपने में (इस प्रकार) दे दिया है ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ आग
 जलाकर सात फेरे लिये और माता-पिता ने बाँह पकड़कर मुझे दान कर दिया
 है ॥ १२ ॥ ॥ सोरठा ॥ मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ, इसीलिए हे राजन् ! मुझे
 तुमने दे दिया । इसी से मैं दुखी हूँ और आँखों में पानी भरे रो रही
 हूँ ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ अब मेश तो वही परमेश्वर है, मुझे कोई भला-
 बुरा न कहे । अब तो प्राणों के रहते उसी का वरण करूंगी अथवा कटारी
 मारकर मर जाऊँगी ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ सपने में माता-पिता ने जिसे
 मुझे सोच-समझकर दे दिया है, मैं तो अब मन-वचन एवं कर्म से उसी की स्त्री
 हो गई हूँ ॥ १५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ मैं विष खाकर मर जाऊँगी अथवा उसी
 का वरण करूंगी । नाथ को देखे बिना मैं कटारी मारकर मर जाऊँगी ।
 मुझे तो तुरन्त उसे बुलाकर दो अथवा मेरी आशा छोड़ दो ॥ १६ ॥ वह
 यह कहती-कहती मूर्च्छित होकर गिर पड़ी । ऐसा लगा मानों तलवार का
 वार किये बिना ही वह मर गई हो । पिता ने आकर उसे गले से लगा लिया
 और माता भी कुँवरि-कुँवरि कहकर दुखपूर्वक गिर पड़ी ॥ १७ ॥ जो
 तुमने सपने में वरण किया है वह मुझे बताओ । हम उसी का उपाय करेंगे

ओहि चहि । कछु कहवे कौ भई गई ना ताहि कहि ॥ १८ ॥
 करत करत बहु चिर लौ बचन सुनाइयो । छैलु कुअरि को
 सभहिन नाम सुनाइयो । सुपन बिखें पितु मात सु मुहि जाकौ
 दियो । हो वहै आपनो नाथ मानिकै मैं लियो ॥ १९ ॥
 ॥ चौपाई ॥ धन्य धन्य तब राव उचार्यो । इह पतिव्रता सुता
 बीचार्यो । जो इह चहै वहै इह दीजै । तिह करि राव रांक
 ते लीजै ॥ २० ॥ त्रिपबर बोल तवन कह लियो । छोरि
 भंडार अमित धन दियो । रंक हुतो राजा हवै गयो । लेत
 सुता राजा की भयो ॥ २१ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ छैल (म० ग्रं० १११७)
 कुअरि कौ त्रिपबर लियो बुलाइकै । बेद बिधन सौ दुहिता दई
 बनाइकै । छैल छैलनी इह छल छल्यो सुधारि करि । हो भेद
 न किनहूँ मूरख समझ्यो चित्त धरि ॥ २२ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह
 छल सौ तिह छैलनी छैल बर्यो सुख पाइ । मुख बाँए सभ को
 रह्यो लह्यो न भेद बनाइ ॥ २३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ गियारह चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २११ ॥ ४०४८ ॥ अफजू ॥

और सुख प्राप्त करेंगे । काफ़ी देर तक आँखें फैलाकर वह पिता की ओर
 देखती रही और कुछ कहना चाहकर भी न कह सकी ॥ १८ ॥ धीरे-धीरे
 उसने बातचीत शुरू की और छैलकुंवर का नाम सबको सुना दिया । सपने
 में जिसे मुझे मेरे माता-पिता ने दे दिया है उसे ही मैंने अपना नाथ मान लिया
 है ॥ १९ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा ने उसे धन्य-धन्य कहा और अपनी उस
 पुत्री को पतिव्रता माना । उसने सोचा कि जो इसे चाहिए वही दिया जाना
 चाहिए । आओ राजा से वह निर्धन ले लो ॥ २० ॥ राजा ने उसे बुलाया
 और भंडार खोलकर उसे अपरिमित धन दिया । रंक था राजा हो गया
 और उसने राजा की पुत्री ग्रहण कर ली ॥ २१ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ छैलकुंवर
 को राजा ने बुलाया और वैदिक विधि से पुत्री का विवाह उससे कर दिया ।
 छैल और छैलनी ने इस प्रकार सबको ठगा और कोई भी मूर्ख इस भेद को
 समझ नहीं सका ॥ २२ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रकार छल से उस छैलनी ने छैल
 का वरण कर लिया । सभी मुँह बाये खड़े रहे कोई भी भेद न समझ
 सका ॥ २३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ ग्यारहवें चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ २११ ॥ ४०४८ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ बारह चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ शहिर बुखारा मै रहै एक राव मुचकंद ।
 सूरत के भीतर गड़्यो जनु दूजो बिधि चंद ॥ १ ॥ हुसनजहाँ
 ताकी त्रिया जाको रूप अपार । स्त्री सुकुमारमती रहै दुहिता
 तिह सुभ कार ॥ २ ॥ एक पूत ताते भयो स्त्री सुभ करन
 सुजानु । सूरबीर सुंदर सरस जानत सकल जहान ॥ ३ ॥
 चलन चातुरी के बिखे चंचल चार प्रबीन । जनुक चित्र की
 पुत्रका गढ़ि बिधि और न कीन ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ तरुन
 भाग्य भगनी भे दोऊ । राज करत त्रिप मरि गयो सोऊ ।
 हुसनजहाँ बिधवा रहि गई । पति बिनु अधिक दुखातुर
 भई ॥ ५ ॥ मिलि साऊन इह भाँति उचारो । राज करो
 सुत तरुन तिहारो । मन को शोक निवारन कीजै । हेरि हेरि
 सुत की छवि जीजै ॥ ६ ॥ केतिक दिवस बीति जब गए ।
 राज करत सुख सौ ते भए । सुत सुंदर माता लखि पायो ।
 राजा को चित ते बिसरायो ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ नरी गंधर्वी
 नागनी प्रभा बिलोकत आइ । सुरी आसुरी किन्नरी हेरि रहत

दो सौ बारहवां चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ बुखारा शहर में मुचकंदराव नामक व्यक्ति रहता था,
 जिसे विधाता ने मानों दूसरा चन्द्रमा बनाया था ॥ १ ॥ उसकी स्त्री हुसनजहाँ
 थी जो अपार रूपवती थी और उसकी पुत्री सुकुमारमती थी ॥ २ ॥ उसका
 एक पुत्र था जिसका नाम शुभकर्ण था जिसे सारा संसार सुन्दर और रसिक
 के रूप में जानता था ॥ ३ ॥ वह चतुर, चंचल और प्रवीण था और ऐसा
 लगता था मानों सुन्दर चित्र हो और उसे बनाने के बाद विधाता ने किसी
 अन्य को न बनाया हो ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ दोनों भाई-बहन जवान हुए
 और राज करता-करता राजा मर गया । हुसनजहाँ विधवा होकर पति के
 बिना अत्यन्त दुखी हुई ॥ ५ ॥ मंत्रियों ने कहा कि अब तुम्हारा जवान पुत्र
 राज करेगा । मन का शोक दूर करो और पुत्र की छवि देखकर जीवन व्यतीत
 करो ॥ ६ ॥ जब राज करते कितने ही वर्ष बीत गए तब माता ने सुन्दर
 पुत्र को देखा और राजा को मन से भूला दिया ॥ ७ ॥ ॥ दोहा ॥ नारियाँ,
 गंधर्व-नाग-स्त्रियाँ, सुर, असुर एवं किन्नर-स्त्रियाँ उसकी प्रभा को देखकर
 उसी में उलझ रही थीं ॥ ८ ॥ कुंवर की सुन्दरता देखकर सभी धन्य-धन्य कहती

उरझाड़ ॥ ८ ॥ हेरि कुअर की छवि सभै धनि धनि कहै
 पुकारि । मनि मोती कुंडल कनक देत तवन पर वारि ॥ ९ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ ऐसो कुअर एक दिन जौ सखि पाइयै । जनम
 जनम इह ऊपर बलि बलि जाइयै । उर भए लेहि लगाइ न
 न्यारो कीजियै । हो निरखि निरखि छवि अमित सजन की
 जीजियै ॥ १० ॥ जिको तरुनि पुरि नारि कुअरि की छवि
 लहै । उड लपटों इह संग यहै चित्त मै कहै । एक बार इह
 छैल चिकनियहि पाइयै । हो जनम जनम जुग क्रोरि सु बलि
 बलि जाइयै ॥ ११ ॥ अधिक कुअर की प्रभा बिलोकहि आइकै ।
 जोरि जोरि द्विग रहै कछू (सू० प्र० १११८) मुसकाइकै । परम
 प्रीति तन बिधी दिवानी ते भई । हो लोक लाज की बात
 बिसरि चित तें गई ॥ १२ ॥ नरी सुरी किन माँहि आचुरी
 गंधर्वी । कहाँ किन्नरी कूर जच्छनी नागनी । लछमि आदि
 दुति हेरि रहै उरझाड़कै । हो बिनु दामन कै दिए सु जात
 बिकाइकै ॥ १३ ॥ रही चंचला रीझ्यति प्रभा निहारिकै ।
 प्रानन लौ धन धाम देत सभ वारिकै । हसि हसि कहै कुअर
 जौ इक दिन पाइयै । हो बहुर न न्यारो करिये हिये

थीं और मोती, मणि, कनक-कुंडल सब उस पर न्यौछावर कर दे रही
 थीं ॥ ९ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ हे सखी ! ऐसा कुँवर यदि कभी मिल जाय तो
 जन्म-जन्म तक इस पर बलिहार जाया जाय । उसे सीने से लगा लें और
 कभी अलग न करें और ऐसे प्रिय की छवि देख-देखकर ही जीवित रहें ॥ १० ॥
 नगर की जो भी तरुणी उस कुँवर की छवि देखती उससे उड़कर लिपटने
 की चाह मन में रखती । वह सोचती कि ऐसा चिकना छैला यदि एक बार
 पा जाय तो करोड़ों जन्मों तक उस पर बलिहार जाय ॥ ११ ॥ अनेकों उस
 कुँवर की शोभा आकर देखती थी और नेत्र उसी पर गड़ाकर मुस्कुराती थीं ।
 उसकी परमप्रीति में वे दीवानी हो गयी और सभी लोक-लाज भी उनके
 मन से भूल गई ॥ १२ ॥ नारी, सुर-स्त्री, असुर-गंधर्व-स्त्री, किन्नरनी, यक्षिणी
 एवं नाग-स्त्रियाँ आदि सभी उसकी छवि देखकर उलझ गई थीं और बिना
 दाम के ही उसके हाथों बिक गई थीं ॥ १३ ॥ स्त्रियाँ उसकी प्रभा देखकर
 रीझ रही थीं और धन-प्राण आदि न्यौछावर कर रही थीं । सभी हंस-हंस
 कर कहती थीं कि यदि एक दिन कुँवर को पा जाय तो फिर उसे
 अपने से अलग नहीं करेंगी और उसे हृदय से लगाकर रखेंगी ॥ १४ ॥

लगाइये ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्त्री सुकुमारमती बहनि ताकी
 राजकुमारि । अप्रमान छवि भ्रात की रीझत भई निहारि ॥ १५ ॥
 ॥ चौपई ॥ निसु दिन यौ मन माहि बिचारै । किह बिधि
 मौसौ कुअर बिहारै । भ्रात लाज मन महि जब धरै । लोक
 लाज की चिंता करै ॥ १६ ॥ लाज करै अह चित्त चलावै ।
 क्योहूँ कुअर हाथ नहि आवै । इक चरित्र तब बचित बिचार्यो ।
 जाते धरम कुअर को टार्यो ॥ १७ ॥ बेस्वा रूप औपनो
 करियो । बार बार गजमोतिन जरियो । हार शिंगार चारु
 तन धारे । जन ससि तीर बिराजत तारे ॥ १८ ॥ पान
 चवात सभा मै आई । सभ लोगन कौ लयो लुभाई । त्रिप
 कह अधिक कटाछ दिखाए । जानुक बिना साइकन घाए ॥ १९ ॥
 हेरत त्रिपत रीझि छवि गयो । घाइल बिना साइकन भयो ।
 आजु निसा इह बोल पठैहो । कामभोग रुकि मानि
 कमैहो ॥ २० ॥ बीत्यो दिवस निसा जब भई । निकटि
 बुलाइ कुअर बहु लई । कामभोग तिह साथ कमायो । भेद
 अभेद कछू नहि पायो ॥ २१ ॥ ॥ दोहरा ॥ लपटि लपटि

॥ दोहा ॥ उसकी बहिन राजकुमारो सुकुमारमती थी जो भाई की अपरिमित
 छवि देखकर रीझ गई थी ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह दिन-रात यही सोचती
 थी कि कैसे भी कुँवर मुझसे रमण करे । भाई मन में लज्जित होता था
 और वह भी लोक-लाज की चिंता करती थी ॥ १६ ॥ लाज लगती थी पर
 चित्त भी चंचल था । किसी भी प्रकार कुँवर हाथ नहीं लग रहा था ।
 तब उसने एक प्रपंच किया जिससे कुँवर का धर्म भ्रष्ट कर दिया ॥ १७ ॥
 उसने अपना वेश्या-रूप बनाया और हीरे-मोती के जड़ाऊ वस्त्र धारण किये ।
 उसने तन पर सुन्दर हार-शृंगार धारण किया और ऐसी लग रही थी मानों
 तारों में चन्द्रमा हो ॥ १८ ॥ पान चवाती वह सभा में आयी और सब लोगों
 को उसने लुभा लिया । राजा को अधिक कटाक्ष दिखाए और मानों उसे
 बिना बाणों के ही घायल कर दिया ॥ १९ ॥ राजा छवि देखकर मुग्ध हो
 गया और मानों बिना बाणों के ही घायल हो गया । उसने सोचा कि आज
 रात को इसे बुलाऊँगा और कामक्रीड़ा रुचिपूर्वक करूँगा ॥ २० ॥ दिन
 बीतने पर जब रात हुई तो उसने उस कुँवर को पास बुलाया । उसके साथ
 उसने रतिक्रीड़ा की और भेद-अभेद कुछ भी नहीं जाना ॥ २१ ॥
 ॥ दोहा ॥ कुँवर ने उससे लिपट-लिपटकर रमण किया और इस प्रकार

तासो कुअरि रति मानी रुचि मानि । भ्रात भगनि के भेद को
सकत न भयो पछान ॥ २२ ॥ ॥ सोरठा ॥ रमत भयो रुचि
मानि भेद अभेद पायो न कछु । छैली छल्यो निदान छल
चिकनिया राव को ॥ २३ ॥ ॥ चौपई ॥ बेस्वा के भूखन जब
धरै । निस दिन कुअर कलोलै करै । जब भगनी के भूखन
धरई । लहै न को राजा को करई ॥ २४ ॥ १ ॥ (म०पं० १११६)

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ बारह चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २१२ ॥ ४०७२ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ तेरवाँ चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ राजा खंड बुदेल कौ रुद्रकेत तिह नाम ।
सेव रुद्र की रैन दिन करते आठहूँ जाम ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ स्त्री
क्रितु क्रितमती त्रिय ताकी । और न बाल रूप सम बाकी ।
तासो नेह त्रिपति कौ भारो । निजु मन कर ताके दे
डारो ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्त्री म्रिग नेत्र सरूप अति दुहिता
ताकी एक । लहि न गई राजा बडे चहि चहि रहे अनेक ॥ ३ ॥

भाई बहिन के रहस्य को न जान सका ॥ २२ ॥ ॥ सोरठा ॥ रुचिपूर्वक
रमण किया और भेद-अभेद कुछ नहीं जाना । इस प्रकार उस छैली ने
सुन्दर राजा को छल लिया ॥ २३ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब वह वेश्या के आभूषण
धारण कर लेती थी तो रात-दिन रतिक्रीड़ा करती थी और जब बहिन के
वस्त्र-आभूषण पहनती थी तो उसकी तरफ कोई भी नहीं देखता था और
किसी को पता भी नहीं लगता था ॥ २४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ बारहवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २१२ ॥ ४०७२ ॥ अफजू ॥

दो सौ तेरहवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ बुंदेलखंड का राजा रुद्रकेतु था जो आठों प्रहर रुद्र की
पूजा किया करता था ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ कृतकृत्यमती उसकी रानी थी
जिसके समान अन्य कोई रानी नहीं थी । राजा का उससे अपार प्रेम था
और उसने अपना मन उसे दे रखा था ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ मृग की आँखों
वाली उसकी एक पुत्री थी जिसे बड़े-बड़े राजा भी चाहने पर नहीं
पा सके ॥ ३ ॥ उस चक्षुमती ने इन्द्रकेतु नामक एक क्षत्रिय देखा और

इंद्रकेतु छत्ती हुतो चच्छुमती लहि लीन । अपनो तुरत निकांरि
 मनु बेचि तवन कर दीन ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ रैन दिवस
 तिह रूप निहारै । चित्त मै इहै बिचारु बिचारै । ऐसो छैल
 कैसहूँ पैयै । कामभोग करि गरे लगैयै ॥ ५ ॥ एक सखी
 कह निकट बुलायो । मन भावन के सदन पठायो । सहचरि
 ताहि तुरतु लै आई । आनि कुअर कह दयो मिलाई ॥ ६ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ मन भावंत मीत कुअर जब पाइयो । द्रिढ़ गहि
 गहि करि ताकौ गरे लगाइयो । अधरन को करि पान सु आसन
 बहु किए । हो जनम जनम के शोक बिसारि सभै दिए ॥ ७ ॥
 शिव मंदिर में जाइ भोग तासौ करै । सहारुद्र की कानि न
 कछु चित्त मै धरै । ज्यों ज्यों जरकै खाट सु घंट बजावहीं ।
 हो पूरि तवन धुनि रहै न जड़ कछु पावही ॥ ८ ॥ एक दिवस
 पूजत शिव त्रिप ग्यो आइकै । सुता सहचरी पितु प्रति दई
 उठाइकै । जाइ राव के तीर सखी तुम यौ कहौ । हो हम
 पूजा ह्याँ करत घरी द्वै तुम रहौ ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्त्री
 शिव की पूजा करत हमरी सुता बनाइ । घरी द्वैकु हम बैठि
 ह्याँ बहुरि पूज है जाइ ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ उतै मीत तिन

अपना मन तुरन्त उसके सामने बेच दिया ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ रात-दिन
 वह उसकी छटा देखती और मन में विचार करती कि, कैसे ऐसा छैला पा
 जाऊँ और कामभोग कर उसे कैसे गले लगाऊँ ॥ ५ ॥ उसने एक सखी को
 पास बुलाया और अपने मनभावन के घर भेजा । सखी उसे तुरन्त ले आई
 और उसने उसे कुंवरी से मिला दिया ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब मनभावन
 कुंवरा उसे मिल गया तो उसने उसे दृढ़तापूर्वक पकड़-पकड़कर गले लगाया ।
 अधरपान और बहुत से आसन किए तथा जन्म-जन्म के शोकों को मन से दूर
 कर दिया ॥ ७ ॥ वह शिव-मंदिर में जाकर रोज उससे कामक्रीड़ा करती
 और शिव की भी कुछ परवाह न करती । जैसे-जैसे पलंग चीखता तो वह
 घंटा बजाती और सभी मूर्ख उस आवाज को सुनकर कुछ भी भेद न समझ
 पाते थे ॥ ८ ॥ एक दिन राजा पूजा के लिए आ गया तो पुत्री ने अपनी
 दासी को उसके पास भेजा कि हे सखी ! तुम जाकर राजा से कह दो कि मैं
 यहाँ पूजा कर रही हूँ, इसलिए तुम दो घड़ी रुक जाओ ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा
 ने सोचा कि मेरी पुत्री पूजा कर रही है, इसलिए मैं दो घड़ी रुककर फिर
 पूजा कर लूँगा ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ इधर उसने मित्र को बुला लिया और

लियो बुलाई । कामरीति करि प्रीतुपजाई । करि करि
 कुवति सेज चरकावै । एक हाथ तन घंट बजावै ॥ ११ ॥
 भाँति भाँति ताकौ रति कीनी । त्रिप जड़ धुनि घंटा की
 चीनी । भेद अभेद कछू नहि पायो । इह दुहिता कस करम
 कमायो ॥ १२ ॥ तासौ भोग बहुत बिधि कीनो । लपटि
 लपटि आसन कह दीनो । चुंबन आलिंगन कीने तिन । भेद न
 लह्यो मूढ़ राजै इन ॥ १३ ॥ कामकेल तासौ बहु कियो ।
 बहुरो छोर द्वार कह दियो । पठै सहचरी पिता बुलायो ।
 मन मै अधिक जार दुख पायो ॥ १४ ॥ (सू०पं० ११२०) याको
 पिता मोहि गहि लैहै । बहुरि हमै जमपुरी पठैहै । चितानुर
 थरहरि कंपावै । ज्यों कदली कह बात डुलावै ॥ १५ ॥
 ॥चौपई॥ ॥ जार बाच ॥ मोरो प्रान राखि अब लोजै । नाहक
 मुहि न अजाएँ कीजै । मोरो मूँडि काट त्रिप दैहै । कापरदी
 के कंठ चढ़ैहै ॥ १६ ॥ ॥ सुता बाच ॥ ॥चौपई॥ तिन कहियो
 तरुन न चिता करो । धीरज चित्त आपने धरो । तेरो अब
 मै प्रान उबरिहौ । पित हेरत तोकौ पति करिहौ ॥ १७ ॥
 आप पिता तन जाइ उचरी । मो पर क्रिपा अधिक शिव करी ।

उसके साथ प्रेमपूर्वक कामक्रीड़ा की । अब इधर शय्या कड़कड़ाने लगी
 और वह एक हाथ से घंटा बजाने लगी ॥ ११ ॥ भाँति-भाँति से उसने रति-
 क्रिया की और राजा घंटे की ध्वनि ही समझता रहा । इस पुत्री ने कैसा
 कर्म किया है, इस रहस्य को वह नहीं समझ सका ॥ १२ ॥ उससे उसने
 अनेक विधियों से भोग किया और लिपट-लिपटकर आसन लगाए । उधर
 उसने चुंबन-आलिंगन किए और इधर इस मूर्ख राजा ने कोई भेद नहीं
 जाना ॥ १३ ॥ उससे अत्यधिक रतिक्रीड़ा कर उसे द्वार पर छोड़ दिया ।
 अब उसने दासी को भेजकर पिता को बुलाया जिससे उस मित्र को मन में
 अत्यन्त दुख हुआ ॥ १४ ॥ इसका पिता मुझे पकड़ लेगा और मारकर यम-
 लोक पहुँचा देगा । वह चितानुर होकर ऐसे काँपने लगा मानों कदली को
 हवा हिला रही हो ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥ मित्र उवाच ॥ अब मेरे प्राण
 बचाओ और नाहक ही मेरी जान मत गँवाओ । राजा मेरा सिर काट लेगा
 और शिव के गले में डाल देगा ॥ १६ ॥ ॥ सुता उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने
 कहा कि हे तरुण ! चिता मत करो और अपने चित्त में धैर्य रखो । मैं अभी
 तुम्हारे प्राण बचाऊँगी और पिता के देखते-देखते तुम्हें पति के रूप में वरण
 करूँगी ॥ १७ ॥ स्वयं पिता के पास जाकर कहने लगी कि मेरे पर शिव ने

निजु कर पकरि मोहि पति दीनो । हम पर अधिक अनुग्रह
कीनो ॥ १८ ॥ चलहु पिता तह ताँहि दिखाऊँ । तासौ
बहुरि सु ब्याह कराऊँ । बाँहि पकरि राजा कौ ल्याई । आनि जार
सौ दियो दिखाई ॥ १९ ॥ धन्य धन्य ताकौ पितु कहियो ।
कर सौ करि दुहिता कौ गहियो । कृपा कटाछ अधिक शिव
कीनो । ताते बर उत्तम तुहि दीनो ॥ २० ॥ तुम पर कृपा जु
शिवजू कीनी । हमहूँ आजु ताहि तुहि दीनी । बोलि दिजन
कह ब्याह करायो । भेद अभेद मूढ़ नहि पायो ॥ २१ ॥
॥ दोहरा ॥ इह चरित्र तह चंचला ब्याह जार सौ कीन ।
पितु हूँ लै ताको दई सक्यो न छल जड़ चीन ॥ २२ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ तेरवाँ चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २१३ ॥ ४०६४ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ चौदस चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ चाँदा शहिर बसत जह भारो । धरनीतल
महि अति उजियारो । बिसुनकेत राजा तह रहई । करम

अत्यन्त कृपा की है । उसने स्वयं अपने हाथों से मुझे पति दिया है और मुझ
पर अत्यन्त कृपा की है ॥ १८ ॥ हे पिता ! चलो मैं तुम्हें दिखाती हूँ और
उसी से ब्याह रचाती हूँ । वह बाँह पकड़कर राजा को ले आयी और आकर
उसने अपना मित्र दिखा दिया ॥ १९ ॥ पिता ने धन्य-धन्य कहा और पुत्री
का हाथ पकड़ा । शिव ने अत्यधिक कृपा की है और तुम्हें उत्तम वरदान
दिया है ॥ २० ॥ तुम पर शिव ने कृपा की है, इसलिए मैं तो तुम्हें शिव को
ही दान करता हूँ । ब्राह्मणों को बुलाकर विवाह किया और मूर्ख ने भेद-अभेद
कुछ नहीं जाना ॥ २१ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रपंच से उस स्त्री ने अपने मित्र
से विवाह किया । पिता भी मूर्ख समझ न सका और स्वयं उसने उसे दे
दिया ॥ २२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ तेरहवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २१३ ॥ ४०६४ ॥ अफजू ॥

दो सौ चौदहवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ चाँदा शहर एक भारी बस्ती थी जो धरती पर अत्यन्त
प्रकाशमान स्थान था । विष्णुकेतु वहाँ का राजा था जो कर्म, धर्म, शौच, व्रत

धरम सुचि ब्रत खग कहई ॥१॥ स्त्री बुंदेलमती ताकी ब्रिय ।
जा महि बसत सदा त्रिप को जिय । स्त्री गुलजारमती दुहिता
तिह । कहूँ न तरुनि जगत मै सम जिह ॥२॥ ॥ दोहरा ॥ तिन
इक तरुन बिलोक्यो अमित रूप की खानि । लीनो सदन
बुलाइकै रमत भई रुचि मानि ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ तासौ
लपटि करत रस भई । ग्रहि की सुधि सभहूँ तजि दई । निस
दिन तासौ भोग कमावै । लपटि लपटि ताके उर जावै ॥ ४ ॥
॥ दोहरा ॥ तरुन पुरख तरुनी तरुन बाढी प्रीति अपार ।
लपटि लपटि आसन करै हेरि हेरि मुख यार ॥ ५ ॥
॥ चौपाई ॥ रैन दिवस तासौ रति करै (मू० प्र० ११२९) मात
पिता तें चित मै डरै । पिय मुहि कह्यो संगि कर लीजै ।
अवरै देस पयानो कीजै ॥ ६ ॥ द्वै बाजन आरुद्धित हवैहैं ।
पितु को सकल खजानो लैहैं । मनभावत तोसौ रति करिहौ ।
सकल द्रप कंद्रप को हरिहौ ॥ ७ ॥ भली भली तब ताँहि
बखान्यो । ताँको बचन सत्य करि मान्यो । पितु को लेत
खजाना भई । चाँदा छोरि दच्छिनहि गई ॥ ८ ॥ लेखत
इहै भवन मै भई । हौ तीरथ न्हैबे को गई । मिलिहो तुमै

एवं खड्ग का धनी था ॥१॥ बुंदेलमती उसकी स्त्री थी जिसमें राजा का मन
हमेशा निवास करता था । उसकी पुत्री गुलजारमती थी जिसके समान
अन्य कोई स्त्री नहीं थी ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ उसने अपरिमित रूप-सौंदर्यवाला
एक युवक देखा । उसे उसने घर बुलवाया और रुचिपूर्वक रमण किया ॥३॥
॥ चौपाई ॥ उससे लिपटकर रसरूप हो गई और घर की सुधि उसे भूल
गई । रात-दिन उससे रतिक्रीड़ा करती थी और लिपट-लिपटकर उसके गले
लगती थी ॥ ४ ॥ ॥ दोहा ॥ पुरुष भी तरुण और स्त्री भी तरुण थी, दोनों
में अपार प्रीति बढ़ी । वह लिपट-लिपट और मित्र का मुख देख-देखकर
उससे आसन करती थी ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ रात-दिन उससे रतिक्रीड़ा तो
करती थी पर चित्त में माता-पिता से डरती थी । प्रियतम से उसने कहा
कि मुझे साथ लेकर किसी अन्य देश को प्रस्थान कर जाओ ॥ ६ ॥ दो घोड़ों
पर सवार होंगे और पिता का समस्त खजाना ले लेंगे । तुमसे मनचाही
रतिक्रिया करूँगी और कामदेव का समस्त दर्प चूर कर दूँगी ॥ ७ ॥ उसने
भले प्रकार से (अपने आगामी जीवन का) बखान किया और उस युवक ने
भी उसकी बात को सत्य मान लिया । वह पिता का खजाना लेकर चाँदा
नगर छोड़कर दक्षिण में चली गई ॥ ८ ॥ घर में सबको यही कहा कि तीर्थ-

जियत जौ आई । जौ मरि गई त राम सहाई ॥ ६ ॥ ग्रहि
को सकल दरबु संग लैकै । उधरि चली तासौ हित कैकै ।
लपटि लपटि तासौ रति करै । द्रप कंद्रप को सभ ही हरै ॥ १० ॥
बीतत बरख बहुत जब भए । सभ ही खाइ खजानो गए । भूखी
मरन तरुनि जब लागी । तब ही छोरि प्रीतमहि भागी ॥ ११ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ बहुरि शहिर चाँदा मै पहुँची आइकै । मात
पिता के पगन रही लपटाइकै । मैं जु तीरथन धरम कर्यो सो
लीजियै । हो अरध पुंन्य दै मोहि असीसा दीजियै ॥ १२ ॥
सुनि सुनि ऐसे बचन रीझि राजा रह्यो । धन्य धन्य दुहिता को
नारि सहित कह्यो । तीरथ सकल अन्हाइ मिली मुहि आइकै ।
हो जनम जनम के पापन दयो मिटाइकै ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ भोग
प्रथम करि जार तजि तही पहुँची आइ । भेद मूढ़ त्रिप ना
लह्यो लई गरे सौ लाइ ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ चौदस चरित्र
समापतम सतु सुमम सतु ॥ २१४ ॥ ४१०८ ॥ अफजू ॥

स्नान करने चली है । यदि जीवित रही तो तुम लोगों से मिलूंगी और मर
गई तो राम भला करें ॥ ६ ॥ घर का समस्त द्रव्य साथ लेकर वह उससे
हित करके भाग चली । अब वह उससे लिपट-लिपटकर रतिक्रीड़ा कर
रही थी और कामदेव के दर्प को चूर कर रही थी ॥ १० ॥ जब बहुत वर्ष
बीत गए और वे सारा खजाना खा गए; तरुणी भूखों मरने लगी तो वह
प्रियतम को छोड़कर भाग खड़ी हुई ॥ ११ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ पुनः वह चाँदा
नगर में आ पहुँची और माता-पिता के चरणों से लिपट गई । मैंने जो तीर्थों
पर पुण्य किया है उसे आप भी लीजिए और आधा भाग लेकर मुझे आशीर्वाद
दीजिए ॥ १२ ॥ राजा भी सब बातें सुनकर रीझ गया और पत्नी-समेत
अपनी पुत्री को धन्य-धन्य कहा । यह समस्त तीर्थों का स्नान कर मुझसे
मिली है और इसने मेरे जन्म-जन्म के पापों को मिटा दिया है ॥ १३ ॥
॥ दोहा ॥ पहले भोग-विलास किया, फिर यार को छोड़ा और घर आ
पहुँची । मूर्ख राजा ने रहस्य को नहीं समझा और उसे गले से लगा
लिया ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ चौदहवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २१४ ॥ ४१०८ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ पंदरह चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ दक्षिण को राजा बडो संभा नाम सु बीर ।

औरंग शाह जासों सदा लहत रहत रनधीर ॥ १ ॥
 ॥ चौपई ॥ संभापुर सु नगर इक तहाँ । राज करत संभा
 जू जहाँ । इक कवि कलस रहत ग्रहि वाके । परी समान
 सुता ग्रहि ताके ॥ २ ॥ जब संभा तिह रूप निहार्यो । इहै
 आपने चित्त बिचार्यो । याकौ भलीभाँति गहि तोरो ।
 ब्राह्मनी हम ना कछु छोरो ॥ ३ ॥ एक सहचरी तहाँ पठाई ।
 तरुनि कुअरि तन बात जताई । आजु त्रिपति के सदन सिधारो ।
 लपटि लपटि तिह संग बिहारो ॥ ४ ॥ तरुनि कुअरि मन मै
 यौ कही । हमरी बात धरम की रही । (सू० प्र० ११२२) हाँ
 भाखौ तौ धरम गवाऊँ । नाहि करे बाँधी घर जाऊँ ॥ ५ ॥
 ताँते जतन ऐस कछु करिये । धरम राखि मूरख कह मरिये ।
 नाहि नामु पापी सुनि लैहै । खाटि उठाइ मँगाइ पठैहै ॥ ६ ॥
 तब तिन कह्यो बचन सहचरि सुनि । पूजन कालि जाऊँगी

दो सौ पंद्रहवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ सम्भा नामक वीर दक्षिण का राजा था जिससे औरंगजेब
 सदैव योद्धा आदि लिया करता था ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ वहाँ पर सम्भापुर
 ही एक नगर था जहाँ सम्भा जी राज करता था । उसके घर में कलस
 नामक एक कवि रहता था जिसके घर में परी के समान एक पुत्री थी ॥ २ ॥
 जब सम्भा ने उसका रूप-सौंदर्य देखा तो अपने चित्त में विचार किया । इसे
 भली प्रकार पकड़कर चूर करूँगा और ब्राह्मणी होने पर भी इसे नहीं
 छोड़ूँगा ॥ ३ ॥ उसने एक दासी को वहाँ भेजा जिसने उस तरुण कुँवरि को
 राजा के मन की बात जताई । आज तुम राजा के महल में चलो और लिपट-
 लिपटकर उससे रमण करो ॥ ४ ॥ तरुणकुँवरि ने मन में सोचा कि मेरी
 धर्म की बात कैसे रहेगी । यदि हाँ कहती हूँ तो धर्म गँवाती हूँ और नहीं
 कहती हूँ तो बाँधकर घर ले जाई जाऊँगी ॥ ५ ॥ तब तो कुछ ऐसा यत्न करना
 चाहिए कि धर्म को बचाकर मूर्ख को मार डालना चाहिए । यह पापी यदि
 नहीं सुन लेगा तो पलंग-समेत उठवा मँगाएगा ॥ ६ ॥ तब उसने दासी से
 कहा कि सुनो मैं कल पूजन करने के लिए जाऊँगी । वहीं राजा आएँ और

मै मुनि । तह ही आप त्रिपति तुम ऐयहु । कामभोग मुहि
साथ कमैयहु ॥ ७ ॥ भोर भयो पूजन शिव गई । त्रिपहूँ
तहाँ बुलावत भई । उतै दुशमनन दूत पठायो । संभहि त्रिनु
स्वान की घायो ॥ ८ ॥ जब ही फौज शत्रु की धई । अबला
सहित त्रिपति गहि लई । निरखि रूप ताको ललचायो ।
भोग करन तासौ चित भायो ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ तरुनकला
तरुनी तबै अधिक कटाछ दिखाइ । मूढ़ मुगल कौ आतमा छिन
मै लयो चुराइ ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ अधिक कैफ तब ताहि
पिवाई । बहु बिधि ताँहि गरे लपटाई । दोऊ एक खाट पर
सोए । मन के मुगल सगल दुख खोए ॥ ११ ॥
॥ दोहरा ॥ निरखि मुगल सोयो पर्यो काढि लई करवारि ।
काटि कंठ ताको गई अपनो धरम उबारि ॥ १२ ॥ चंचलान
के चरित्र को चीनि सकत नहि कोइ । ब्रह्म बिशन रुद्रादि सभ
सुर सुरपति कोऊ होइ ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ पंदरह चरित्र
समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २१५ ॥ ४१२१ ॥ अफजू ॥

मेरे साथ कामक्रीड़ा करें ॥ ७ ॥ प्रातः वह शिव-पूजा के लिए गई और राजा
को उसने वहाँ बुला लिया । उधर शत्रुओं को दूत भेजकर बुला लिया और
सम्भा को कुत्ते की मौत मार दिया ॥ ८ ॥ जब शत्रु की फौज आई तो उसने
सम्भा-समेत स्त्री को पकड़ लिया । (मुगल) शत्रु भी उसके रूप को देखकर
ललचा गया और उससे भोग की इच्छा करने लगा ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ तब
तरुणी तरुणकला ने अत्यधिक कटाक्ष दिखाकर उस मूढ़ मुगल का मन क्षण
में जीत लिया ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ उसे अत्यधिक शराब पिलाई और
विभिन्न प्रकार से उसके गले लिपट गई । दोनों एक ही पलंग पर सोये और
मुगल ने भी अपने मन के समस्त दुख खो दिए ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ मुगल
को सोया देखकर उसने तलवार निकाल ली और उसका गला काटकर अपने
धर्म का बचाव करती हुई निकल गई ॥ १२ ॥ स्त्रियों के चरित्र को कोई
नहीं पहचान सका है, चाहे कोई ब्रह्मा हो, विष्णु हो, रुद्र हो, देव हो अथवा
देवराज इन्द्र हो ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ पंद्रहवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २१५ ॥ ४१२१ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ सोलहवाँ चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ जोगी इक गहबर बन रहई । चेटकनाथ
ताहि जग कहई । एक पुरख पुर ते निति खावै । ताँते त्रास
सभन चित आवै ॥ १ ॥ तहाँ कटाछि कुअरि इक रानी ।
जाकी प्रभा न जात बखानी । सुंदरि सकल जगत ते रहई ।
वेद शासत्र सिन्नित सभ कहई ॥ २ ॥ ताको नाथ अधिक डर
पावै । एक पुरख तिह नित खवावै । चित के बिखै त्रास
अति धरै । मोरे भच्छ जुगिस मति करै ॥ ३ ॥ तब रानी
हसि बचन उचारे । सुनु राजा प्रानन ते प्यारे । ऐसो जतन
क्यों नहीं करियै । प्रजा उबारि जोगियहि मरियै ॥ ४ ॥
राजा तन इह भाँति उचार्यो । अभरन सकल अंग मै धार्यो ।
बलि की बहुत समग्री लई । अरध रात्रि जोगी पहि गई ॥ ५ ॥
भच्छ भोज तिह प्रथम खवायो । (मू०पं०११२३) अधिक मद्य लै
बहुरि पिवायो । बहुरि आपु हसि बचन उचारे । हौ आई
हित भजन तिहारे ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ जिह बिधि तुम
भच्छत पुरख सो मुहि प्रथम बताइ । बहुरि अधिक रुच मानि

दो सौ सोलहवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ घने जंगल में एक जोगी रहता था, जिसे संसार चेटकनाथ
के नाम से जानता था । वह एक व्यक्ति रोज़ नगर में खाता था इससे
लोग बुरी तरह भयभीत थे ॥ १ ॥ वहाँ कटाक्षकुँवरि नामक एक रानी थी
जिसकी प्रभा वर्णनातीत थी । वह सारे संसार में सुन्दरतम थी और वेद-
शास्त्र एवं स्मृतियों की ज्ञाता थी ॥ २ ॥ उसका स्वामी अत्यधिक डरता
था और रोज़ एक आदमी (योगी को) खिला देता था । वह मन में अत्यधिक
डरता था कि कहीं योगी मेरा भक्षण न कर जाय ॥ ३ ॥ तब रानी ने हँस
कर कहा कि हे राजा ! तुम मेरी बात सुनो । क्यों न ऐसा प्रयत्न किया
जाय कि योगी को मारकर प्रजा का उद्धार करें ॥ ४ ॥ राजा को यह कहकर
उसने अंगों में आभूषण धारण किये । बलि की उसने सामग्री ली और आधी
रात को योगी के पास गई ॥ ५ ॥ उसे पहले भोज खिलाया और अधिक
शराब लेकर उसे पिलाई । फिर हँसकर उसने उच्चारण किया कि आज मैं
तुमसे रमण करने आयी हूँ ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ तुम लोगों को कैसे खाते हो
पहले मुझे यह बताओ और फिर रुचिपूर्वक मुझसे भोग-विलास करो ॥ ७ ॥

करि भोग करो लपटाइ ॥ ७ ॥ जब जोगी ऐसे सुनियो फूल
 गयो मन माहि । आज बराबर सुख कहूँ प्रियवीतल मै
 नाहि ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ भरभराइ ठाढा उठ भयो ।
 रानियहि संग आपुने लयो । गहि बहियाँ मन मै हरखायो ।
 भेद अभेद कछू नहि पायो ॥ ९ ॥ बडों कराह बिलोकत भयो ।
 सात भाँवरनि ताँ पर लयो । रानी पकरि ताँहि तह डार्यो
 जीवत हुतो भूजि करि मार्यो ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ अपनो
 आपु बचाइकै भूनि जोगियहि दीन । लीनी प्रजा उबारिकै
 चरित्त चंचला कीन ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित् पद्याने त्रिया चरित्ते मंत्री भूप संवादे दो सौ सोहलवाँ चरित्
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ २१६ ॥ ४१३२ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ सत्तरह चरित्त-कथन ॥

॥ दोहरा ॥ फैलकूस पतिशाह के सूर सिकंदर पूत ।
 संबरारि लाजत निरखि सीरति सूरति सपूत ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ राज
 साज जब ही तिन धरियो । प्रथम जंग जंगिर सौ करियो ।

योगी यह सुनकर मन में फूल उठा और सोचने लगा कि आज के बराबर
 सारी धरती पर कहीं सुख नहीं है ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह भड़भड़ाकर
 उठ खड़ा हुआ और उसने रानी को साथ लिया । उसकी बाँह पकड़कर
 मन में प्रसन्न हो उठा और मूर्ख भेद-अभेद कुछ भी नहीं समझ सका ॥ ९ ॥
 बड़ा कड़ाहा जो दिखाई दे रहा था उसकी उसने सात भाँवरें लीं । रानी ने
 उसे पकड़कर उसमें डाल दिया और जीवित को भूनकर मार दिया ॥ १० ॥
 ॥ दोहरा ॥ उसने अपना आप बचाकर योगी को भून दिया और इस प्रकार
 स्त्री ने अपने प्रपंच से सारी प्रजा का उद्धार कर दिया ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्तोपाख्यान के त्रिया-चरित् के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ सोलहवें
 चरित्त की शुभ सत् समाप्ति ॥ २१६ ॥ ४१३२ ॥ अफजू ॥

दो सौ सत्तरहवाँ चरित्त-कथन

॥ दोहरा ॥ फैलकूस बादशाह का शूरवीर सिकन्दर नामक पुत्र था,
 जिसकी सूरत और सीरत को देखकर कामदेव भी लजाता था ॥ १ ॥
 ॥ चौपाई ॥ जब उसने राजकाज संभाला तो पहले उसने जंगिर से युद्ध

ताको देस छीनि करि लीनो । नामु सिकंदर शाह को
 कीनो ॥२॥ बहुरि शाह दारा कौ मार्यो । हिंदुसतां कौ बहुरि
 पधार्यो । कनक बजा एस्वर कौ जिनियो । सामुहि भयो
 तांहि तिह झिनियो ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ प्रथम सुता रूमीन
 की कीयो ब्याह बनाइ । बहुरि कनौजिस की सुता बरी अिदंग
 बजाइ ॥ ४ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ बहुरि देस नैपाल पयानो तिन
 कियो । कस्तूरी के अिंगन बहुत बिधि गहि लियो । बहुरि
 बंगाला की दिसि आपु पधारियो । हो आनि मिल्यो सो बच्यो
 अर्यो तिह मारियो ॥ ५ ॥ जीत बंगला छाज करन पर
 धाइयो । तिनो जीति नागर पर अधिक रिसाइयो । एक
 पाद बहु हनै सूरसावत बने । हो जीति पूरबहि कियो पयानो
 दुच्छिने ॥ ६ ॥ ॥ छपै छंद ॥ झार खंडियन झारि चमकि
 चांदियन सँवार्यो । बिदभ देसियन बारि खंडि बुंदेल
 दिबार्यो । खड़ग पान गहि खेत खुनिस खंडिसन बिहंड्यो ।
 पुनि माराशट्र तिलंग द्रोड़ तिल तिल (सू०पं० ११२४) करि
 खंड्यो । त्रिप सूरबीर सुंदर सरस मही दई महि इसन गहि ।
 दच्छनहि जीति पट्टन उपटिसु किय पयान पुनि

किया । उसका देश छीन लिया और अपना नाम सिकन्दर शाह रख
 लिया ॥२॥ फिर उसने दाराशाह को मारा और फिर वह हिन्दुस्तान आया ।
 उसने कान्यकुब्ज (कन्नौज) के ऐश्वर्य को जीता और जो सामने आया उसे
 मार डाला ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ पहले उसने रूमी की कन्या का वरण किया
 और फिर ढोल बजाकर कन्नौज-नरेश की कन्या से विवाह किया ॥ ४ ॥
 ॥ अडिल्ल ॥ फिर उसने नेपाल देश को प्रस्थान किया और बहुत से कस्तूरी
 मृगों को पकड़ा । फिर वह बंगाल की ओर बढ़ा और जो उससे आ मिला
 वह बच गया तथा जो अड़ गया उसे मार डाला ॥ ५ ॥ बंगाल जीतकर
 उसने छाजकर्ण प्रदेश को जीता और जीतनागर पर क्रुद्ध हो उठा । उसने
 अनेकों सारस्वत वीरों को मार डाला और पूर्व को जीतकर दक्षिण दिशा में
 प्रस्थान किया ॥ ६ ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ झारखंड के निवासियों को झाड़
 फेंका और चांदनगर वालों का भी संहार कर दिया । विदर्भ और बुंदेलखंड
 को भी दबा लिया । हाथ में खड़ग पकड़कर क्रुद्ध हो खड़गधारियों को
 मार डाला और फिर महाराष्ट्र, तैलंगाना, द्रविड़ आदि को खंड-खंड कर
 दिया । शूरवीर राजाओं ने उसे अपनी धरती दे दी और इस प्रकार दक्षिण

पसचमहि ॥ ७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ बरबरीन कौ जीति बाहु
 सालीन बिहंड्यो । गरब अरब को दाहि सरब दरबिन को
 दंड्यो । अरब खरब रिपु चरबि जरबि छिन इक मै मारे ।
 हो हिंगुलाज हबशी हरेव हलबी हनि डारे ॥ ८ ॥ मगरबीन
 को जीति सरब गरबिन को मार्यो । सरब चरबियन चरबि
 गरबि गजनी को मार्यो । मालनेर मुलतान मालवा बसि
 कियो । हो दुंदभि जीत प्रतीची दिसि जै को दियो ॥ ९ ॥
 ॥ दोहरा ॥ तीन दिशा को जीति कै उत्तर कियो पयान ।
 सार देसी राजान लै दैकै जीत निशान ॥ १० ॥ देस देस के
 एस सभ अपनी अपनी सैन । जोरि सिकंदरि से चढ़े सूर सरस
 लभ ऐन ॥ ११ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ चड़े उत्तरा पंथ के बीर
 भारे । बजे घोर बादिल भेरी नगारे । प्रिथी चाल कीनो
 दसौ नाग भागे । भयो शोर भारो महाँ रुद्र जागे ॥ १२ ॥
 ॥ चौपई ॥ प्रथमहि जाइ बलख कौ मार्यो । शहिर बुखारा
 बहुरि उजार्यो । तिबित जाइ तलब कौ दीनो । जीति देस
 अपने बसि कीनो ॥ १३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ काशमीर कसि कार
 कबुज काबल कौ कीनो । कशटवार कुलू कलूर कैठल कह

को जीतकर पाटन का समूल नाश कर वह पश्चिम की ओर चल पड़ा ॥ ७ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ बर्बरो को जीतकर उसने शालिवाहनो को नष्ट किया और अरबों
 के गर्व को चूर कर सभी को दंडित किया । अनेको शत्रुओं को क्षण भर में
 चबा डाला । उसने हिंगलाजी, हबशी, हरेबी, हलबी सभी को मार
 डाला ॥ ८ ॥ समस्त पश्चिम निवासियों को जीतकर गर्व करनेवालों को
 मार डाला । सभी चर्बिली वीरों को चबा डाला और गजनी के गर्व को गर्क
 कर डाला । मालनेर, मुलतान, मालवा सभी वश में कर लिये और दुंदुभियाँ
 बजाकर पश्चिम दिशा को जीत लिया ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ तीन दिशाओं
 को जीतकर उसने उत्तर दिशा को प्रस्थान किया जहाँ सभी देशी राजाओं ने
 उसे विजयचिह्न प्रस्तुत किए ॥ १० ॥ देश-देशान्तरों के राजागण सेना
 जोड़कर शूरवीर सिकन्दर (सूर) पर चढ़ पड़े ॥ ११ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ उत्तर
 दिशा के भारी राजा चढ़ आए और भारी रणवाद्य नगाड़े आदि बजने लगे ।
 पृथ्वी और दसों नाग भाग खड़े हुए और भारी शोर से महारुद्र भी जाग
 उठे ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ पहले तो बलख शहर को मार लिया और फिर
 बुखारा को उजाड़ दिया । तिब्बत पहुँचकर वेतन बाँटे और देश को जीत
 कर अपने वश में कर लिया ॥ १३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ कश्मीर, कंबोज, काबुल

लीनो । कांबोज किलमाक कठिन पल मै कटि डारे । हो
कोटि चीन के कटक हने करि कोष करारे ॥ १४ ॥
॥ दोहरा ॥ बहुरि चीन माचीन की दिसि कौ कियो पयान ।
ले लौंडी राजा मिल्यो शाह सिकंदरहि आनि ॥ १५ ॥ जीति
चीन माचीन कौ बसि कीनी दिसि चारि । बहुरि समुंद सापन
निमित्त मन मै कियो बिचारि ॥ १६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ बुलं
देजियन जीति अंगरेजियन कौ मार्यौ । मछलीबंदर मारि
बहुरि हुगलियहि उजार्यो । कोकबंदर कौ जीति गुआ-
बंदर हूँ लीनो । हो हिजलीबंदर जाइ बिजै दुंदभि कह
दीनो ॥ १७ ॥ सात समुंदन सापि प्रियो तल कौ गयो ।
जीति रसातल सात स्वरग को मग लियो । इंद्र साथ हूँ लर्यो
अधिक रिसि ठानिकै । हो बहुरि प्रियोतल साझ प्रगटियो
आनि कै ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ लोक चौदहूँ बसि किए जीति
प्रियो सभ लीन । (सू० प्र० ११२५) बहुरि रूस के देस की ओर
पयानो कीन ॥ १९ ॥ ॥ चौपई ॥ बीरज सैन रूस को
राजा । जाते महाँ रुद्र सो भाजा । जब तिन सुन्यो सिकंदर

को कस लिया और किष्टवाड़, कुल्लू, कहलूर, कैथल आदि इलाकों को ले
लिया । दुर्गम प्रदेश कंबोज, किलमाक आदि को पलों में काट डाला और
चीन की अनेकों सेनाओं को क्रुद्ध हो नष्ट कर दिया ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ फिर
चीनमाचीन की दिशा में गया जहाँ का राजा दासियाँ लेकर सिकन्दर शाह
से आ मिला ॥ १५ ॥ चीनमाचीन को जीकर चारों दिशाएँ जीतकर
वश में कर लीं और फिर समुद्र लाँघने का विचार बनाया ॥ १६ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ डचों को जीतकर अंग्रेजों को मार डाला गया । फिर मछली-
बंदर को फतह कर हुगलीबंदर को उजाड़ दिया गया । कोकबंदर जीत
गोआ को ले लिया तथा हिजलीबंदर पर भी विजय-दुंदुभि बजा दी ॥ १७ ॥
सातों समुद्रों को लाँघकर वह पृथ्वीतल में गया और सातों रसातलों को
जीतकर स्वर्ग का मार्ग लिया । वहाँ अत्यन्त क्रुद्ध होकर वह इंद्र के साथ
लड़ा तथा पुनः पृथ्वी तल पर प्रकट हुआ ॥ १८ ॥ ॥ दोहा ॥ उसने चौदह
लोकों को वश में किया तथा समस्त पृथ्वी को जीत लिया । पुनः उसने
रूस देश की ओर प्रस्थान किया ॥ १९ ॥ ॥ चौपाई ॥ वीर्यसेन रूस का
राजा था जिसके सम्मुख महारुद्र भी भाग खड़ा हुआ था । जब उसने सुना
कि सिकन्दर शूर आया है तो उसने आगे पहुँचकर भीषण युद्ध मचा

आयो । आनि अगमनै जुध मचायो ॥ २० ॥ तहाँ जुध गाड़ो
अति माच्यो । बिनु ब्रिण एक सुभट नहि बाच्यो । हारि परे
इक जतन बनायो । दैत हुतो इक ताँहि बुलायो ॥ २१ ॥
॥ दोहरा ॥ कुहन पोसती तन धरे आवत भयो बजंग । जनुक
लहरि दरियाव ते निकस्यो बडो निहंग ॥ २२ ॥ ॥ चौपई ॥ जो
कबहूँ कर को बल करै । हाथ भए हीरा मलि डरै । जहाँ
कूदि करि कोप दिखावै । तौनै ठौर कूप तरि जावै ॥ २३ ॥
॥ दोहरा ॥ एक गदा कर मै धरै औरन फाँसी प्रास । पाँच
सहस्र स्वार ते मारत ताकौ लासु ॥ २४ ॥ ॥ चौपई ॥ जाकौ
ऐँच गदा की मारै ॥ ताको मूँड फोर ही डारै । रिस भरि
पवन बेगि ज्यों धावै । पत्तन ज्यों छत्रियन भजावै ॥ २५ ॥
भाँति भाँति तिन बीर खपाए । सो पहि ते नहि जात गनाए ।
जौ तिनके नाभन ह्याँ धरियै । एक ग्रंथ इनही को
भरियै ॥ २६ ॥ सत करी ताके पर डार्यो । सो तिन ऐँचि
गदा सो मार्यो । जो कोऊ सुभट तवन पर धावै । एक चोट
जमलोक पठावै ॥ २७ ॥ रन ते एक पैग नहि भाजै ।
ठाढो बीर छेत मै गाजै । अधिक राव राजन कौ मार्यो ।

दिया ॥ २० ॥ वहाँ भीषण युद्ध हुआ और एक भी योद्धा बिना घावों
के न बचा । हारकर एक काम किया गया और एक दैत्य को बुलाया
गया ॥ २१ ॥ ॥ दोहा ॥ झूमता हुआ एक वज्र के समान अंगोंवाला (दैत्य)
आया । ऐसा लग रहा था मानों दरिया की लहरों से कोई महान् शूरवीर
निकला हो ॥ २२ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह यदि हाथ का बल दिखाता तो हाथों
से हीरे को भी मल देता था । वह क्रोध से जहाँ कूदता था वहीं कुआँ
बन जाता था ॥ २३ ॥ ॥ दोहा ॥ एक हाथ में गदा और एक में फाँसी-
पाश लिये उसका डर पाँच हजार सवारों को मार डालता था ॥ २४ ॥
॥ चौपाई ॥ जिसको तानकर गदा मारता था उसका तो सिर ही फोड़
डालता था । क्रुद्ध हो वह पवन वेग से दौड़ता था और क्षत्रियों को पत्तों की
तरह उड़ा रहा था ॥ २५ ॥ उसने अनेकों वीर नष्ट कर दिये जिन्हें गिनना
मेरे लिए असंभव है । यदि उनके नाम यहाँ रखे जायँ तो एक ग्रंथ ही भर
जायगा ॥ २६ ॥ उस पर एक मस्त हाथी छोड़ा गया जिसे उसने गदा
मारकर मार डाला । जो वीर उस पर टूट पड़ता उसे वह एक ही चोट
से यमलोक पहुँचा देता ॥ २७ ॥ वह रणक्षेत्र से एक क्रदम नहीं भाग
रहा था और युद्ध में खड़ा गरज रहा था । उसने अनेकों राजाओं

कांपि सिकंदर मंत्र बिचार्यो ॥ २८ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्त्री दिन
 नाथ मती तरुनि शाह चीन के दीन । सो ता पर धावत भई
 भेस पुरख को कीन ॥ २९ ॥ ॥ चौपई ॥ पहिले तीर तवन
 कौ मारै । बरछा बहुरि कोष तन झारै । तमकि तेग को
 घाड़ प्रहार्यो । गिर्यो भूमि जानु हनि डार्यो ॥ ३० ॥
 भू पर गिर्यो ठाढ़ि उठि भयो । ताकौ पकरि कंठ ते लयो ।
 सुंदर बदन अधिक तिह चीनो । मारि न दई राखि तिह
 लीनो ॥ ३१ ॥ ताकह पकरि रूसियन दयो । आपु उदित
 रन को पुनि भयो । भाँति भाँति अरि अमित सँघारै । जनु
 द्रुम पवन प्रचंड उखारै ॥ ३२ ॥ ॥ सवैया ॥ काती क्लिपान
 कसे कटि मै भट भारी भुजान कौ भार भरे हैं । भूत भविष्य
 भवान सदा कबहूँ रनमंडल ते न टरे है । भीर परे नहि भीर भे
 भूपति लै लै भला भली भाँति अरे हैं । ते इन (प्र० प्र० ११२६) बीर
 महाँ रनधीर सु हाँकि हजार अनेक हरे हैं ॥ ३३ ॥ ॥ चौपई ॥ तब
 ही शाह सकंदर डरियो । बोलि अरस्तू मंत्र बिचरियो ।
 बली नास को बोलि पठायो । चित्त मै अधिक त्रास

को मार डाला । तब कांपकर सिकंदर ने विचार किया ॥ २८ ॥
 ॥ दोहरा ॥ दिननाथमती नामक तरुणी, जो चीन के शाह के अधीन थी, पुरुष-
 वेश धारण कर उस पर टूट पड़ी ॥ २९ ॥ ॥ चौपाई ॥ पहले उसने तीर
 मारा, फिर कुपित हो बरछ से प्रहार किया । पुनः तमककर कृपाण से
 प्रहार किया, जिससे वह ऐसा भूमि पर गिर पड़ा मानों मार ही डाला गया
 हो ॥ ३० ॥ वह भूमि पर गिरा हुआ उठ खड़ा हुआ और उसने (उस
 पुरुष-वेश में स्त्री को) गले से पकड़ लिया । उसका अत्यधिक सुन्दर बदन
 देखकर उसे मारा नहीं और छोड़ दिया ॥ ३१ ॥ उसे पकड़कर दासियों को
 दे दिया तथा स्वयं पुनः युद्ध के लिए उद्यत हुआ । विभिन्न प्रकार से अनेकों
 शत्रुओं को ऐसे मार डाला मानों तीव्र पवन ने पौधों को उखाड़ फेंका
 हो ॥ ३२ ॥ ॥ सवैया ॥ कटारी, कृपाण कमर में कसे वीरों की भुजाओं में
 भारी बल भरा हुआ है । वे भूत-भविष्य और वर्तमान में कभी भी रणस्थल
 से नहीं हटे हैं । संकट में भी कभी वे वीर भयभीत नहीं हुए हैं और भली-
 भाँति अड़े रहे हैं । ऐसे हजारों वीरों को हाँक-हाँककर इस महाबली ने
 मार डाला है ॥ ३३ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब सिकंदर शाह ने डरकर अरस्तू को
 बुलाकर विचार किया । चित्त में अत्यधिक डरकर उसने बलीनाश को बुला

उपजायो ॥ ३४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जो तुम हमको कहो तो हयौं
तैं भाजियै । रूस शहिर के भीतरि जाइ बिराजियै । गोल-
ब्याबानी सभ ही कौ मारिहैं । हो काटि काटि मूँडन के कोट
उसारिहैं ॥ ३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ बलीनास जोतक बिखैं अधिक
हुतो परबीन । धीरज दिया सकंदरहि बिजै आपनी चीन ॥ ३६ ॥
॥ चौपई ॥ बलीनास हजरतिहि उचारो । तुमहूँ आपु कमंदहि
डारो । तुमरे बिना जीति नहि होई । अमिति सुभट धावाहि
मिलि कोई ॥ ३७ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनत सिकंदर ए बचन
कर्यो तैसोई काम । कमंद डारि ताको गरे बाँध लिआइयो
धाम ॥ ३८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ भोजन शाहि भली बिधि ताहि
खवाइयो । बंधन ताके काटि भले बैठाइयो । छूटत बंधन
भज्यो तहाँ ही को गयो । हो आनि लौंडियहि बहुरि सिकंदर
कौ दयो ॥ ३९ ॥ ॥ दोहरा ॥ ताको रूप बिलोकिकै हजरति
रह्यो लुभाइ । लै अपुनी इसत्री करी ढोल म्रिदंग बजाइ ॥ ४० ॥
बहुरि जहाँ अंम्रित सुन्यो गयो तवन को ओर । करि इसत्री चेरी
लई और बेगमन छोरि ॥ ४१ ॥ ॥ चौपई ॥ जु त्रिय रैन
कौ सेज सुहावै । दिवस बैरियन खड़ग बजावै । ऐसी तरुनि

भेजा ॥ ३४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ यदि तुम कहो तो मैं यहाँ से भाग जाऊँ और
रूस शहर के भीतर जा बैठूँ । यह गोलब्याबानी (दैत्य) सबको मार डालेगा
और सिर काट-काटकर सबका किला बना लेगा ॥ ३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ बलीनाश
ज्योतिष-विद्या में अत्यधिक प्रवीण था उसने अपनी विजय का अनुमान कर
सिकंदर को धैर्य बँधाया ॥ ३६ ॥ ॥ चौपाई ॥ बलीनाश ने बादशाह को
कहा कि तुम अपना कबंध फेंको । चाहे अनेकों वीर चल पड़े पर तुम्हारे
बिना जीत नहीं होगी ॥ ३७ ॥ ॥ दोहरा ॥ सिकन्दर ने सुनकर वैसे ही किया
और उसके गले में कबंध डालकर उसे पकड़कर अपने घर ले आया ॥ ३८ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ शाह ने उसे भली प्रकार भोजन खिलाया और उसके बंधन
काटकर उसे भली प्रकार बैठाया । बंधन-मुक्त हो वह भागा और उसने
बहुत सी दासियाँ लाकर सिकन्दर को दीं ॥ ३९ ॥ ॥ दोहरा ॥ उसका
रूप देखकर सिकन्दर मोहित हो गया और उसने ढोल-मृदंग बजाकर उनसे
विवाह कर लिया ॥ ४० ॥ फिर उसने जहाँ अमृत होने के बारे में सुना उस
ओर गया । उसने अन्य बेगमों को छोड़कर दास-स्त्री को साथ लिया ॥ ४१ ॥
॥ चौपाई ॥ जो स्त्री रात को शय्या की शोभा बढ़ाती है और दिन में

करन जौ परई । तिह तजि और कवन चित करई ॥ ४२ ॥
 भाँति भाँति तासो रति ठानी । चेरी ते बेगम करि जानी ।
 ताकौ संग आपुने लयो । आबहयात सुन्यो तह गयो ॥ ४३ ॥
 ॥ दोहरा ॥ जह ता कौ चशमा हुतो तही पहुँचो जाइ । मकर
 कुंट जह डारिये मछली होइ बनाइ ॥ ४४ ॥ ॥ चौपई ॥ इंद्र
 देव तब मंत्र बतायो । अंम्रित शाह सिकंदर पायो । अजर
 अमर मनुष्य जो हवैहै । जीति सु लोक चौदहूँ लैहै ॥ ४५ ॥
 ॥ दोहरा ॥ ताते याको कीजियै कछु उपचार बनाइ । जित्यो
 जरा तन जड़ रहै अंम्रित पियौ न जाइ ॥ ४६ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ रंभा नाम अपच्छरा दई पठाइकै । बिरध रूप
 खग को धरि बैठी आइकै । एक पंख तन रह्यो (सू० प्र० ११२७)
 न ताकौ जानियै । हो जात न लह्यो न जाइ छिना जिय
 ठानियै ॥ ४७ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब सिकंदर अंम्रित को पीवन
 लग्यो बनाइ । गलत अंग पंछी तबै निरखि उठ्यो मुसकाइ ॥ ४८ ॥
 ॥ चौपई ॥ पूछ्यो ताहि पंछियहि जाई । क्यों तै हस्यो
 हेरि मुहि भाई । सकल ब्रिथा बहु मोहि बतैयै । हमरे चित

शत्रुओं से लड़ती है, ऐसी स्त्री जब हाथ लग जाय तो भला उसे छोड़कर अन्य
 स्त्री को क्यों कोई चाहेगा ॥ ४२ ॥ उस स्त्री से भाँति-भाँति प्रकार से रति-
 क्रिया की और दासी से उसे बेगम बना लिया । उसे अपने साथ लिया और
 जहाँ आबहयात (अमृत) था वहाँ गया ॥ ४३ ॥ ॥ दोहरा ॥ वहाँ आ पहुँचा
 जहाँ इनका चशमा था और मगरमच्छ एवं मछलियाँ तैर रही थीं ॥ ४४ ॥
 ॥ चौपाई ॥ देवगणों ने इंद्र को बताया कि शाह सिकंदर ने अमृत प्राप्त
 कर लिया है । जो व्यक्ति अजर-अमर हो गया वह तो चौदह लोकों को जीत
 लेगा ॥ ४५ ॥ ॥ दोहरा ॥ इससे इसका कुछ उपचार किया जाय जिससे इस
 जड़ का तन वृद्ध हो जाय और अमृत इससे पिया न जा सके ॥ ४६ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ उसने रंभा नामक अप्सरा को भेजा जो बूढ़े पक्षी का रूप
 धारण कर बैठ गई । उसके तन पर एक भी पंख बाकी नहीं था और मारे
 घृणा के उसकी ओर देखा भी नहीं जा पा रहा था ॥ ४७ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब
 सिकंदर अमृत पीने लगा तब बायीं ओर बैठा पक्षी उसे देखकर मुस्करा
 उठा ॥ ४८ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब उसने पक्षी से पूछा कि भाई ! तुम मुझे देखकर
 क्यों हँसे हो ? तुम मुझे अपने दिल का हाल बताओ और मेरे मन का कष्ट
 दूर करो ॥ ४९ ॥ ॥ पक्षी उवाच ॥ ॥ दोहरा ॥ मेरे शरीर पर एक भी

को ताप मिटैयै ॥ ४६ ॥ ॥ पंछी बाच ॥ दोहरा ॥ पछ एक
तन ना रह्यो रक्त न रह्यो सरीर । तरन न छूटत दुख सौ
जियत जब ते पियो कुनोर ॥ ५० ॥ ॥ चौपई ॥ भला भयो
अन्नित यह पीहैं । हमरी भाँति बहुत दिन जीहैं । सुनि ए
बचन सिकंदर डरियो । पियत हुतो मधु पान न करियो ॥ ५१ ॥
॥ दोहरा ॥ अछल छैल छैली छल्यौ इह चरित के संग । सु
कबि काल तब ही भयो पूरन कथा प्रसंग ॥ ५२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ सत्तरह चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २१७ ॥ ४१८४ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ अठारहवाँ चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ मसहद को राजा बडो चंद्रकेत रणधीर ।
द्वार परे जाके रहैं देस देस के बीर ॥ १ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ ससि
धुज अरु रविकेतु पूत ताके भए । जिन सम सुंदर सूर न लोक
तिहैं ठए । रही प्रभा तिन अधिक जगत मै छाड़कै । हो हवै
ताके ससि सूर रहे मिडराइकै ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्त्री दिन के

पंख नहीं बचा और न ही शरीर में रक्त बचा है । जबसे मैंने यह बुरा जल
पिया है, मेरा शरीर नहीं छूटता और दुखपूर्वक मैं जीवित हूँ ॥ ५० ॥
॥ चौपाई ॥ अच्छी बात है यदि तुम यह अमृत पी लो तो मेरे समान बहुत
दिन तक जीवित रहोगे । यह वचन सुनकर सिकंदर डर गया और जिस
जल को पीने जा रहा था उसे उसने नहीं पिया ॥ ५१ ॥ ॥ दोहा ॥ उस
अछल को इस छलना ने प्रपंच से जीत लिया । इस प्रकार कवि के
कथनानुसार यह कथा-प्रसंग पूर्ण होता है ॥ ५२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ सत्तरहवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २१७ ॥ ४१८४ ॥ अफजू ॥

दो सौ अठारहवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ मसहद का बड़ा रणधीर राजा चन्द्रकेतु था, जिसके दरवाजे
पर देश-देशान्तरों के वीर पड़े रहते थे ॥ १ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ शशिध्वज और
रविकेतु उसके पुत्र थे जिनके समान तीनों लोकों में सुन्दर वीर नहीं था ।
उनकी प्रभा सारे संसार में अत्यधिक फैली हुई थी तथा सूर्य-चन्द्र भी उन
के मँडराते रहते थे ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ राजा श्रीकेतुदिन को स्त्री अत्यन्त

तुम तीर है त्रिप की बाल अपार । अधिक तेज ताके रहै कोऊ
न सकति निहारि ॥ ३ ॥ स्त्री रसरंग मती हुती ताकी और
कुमारि । बसि राजा ताके भयो निजु त्रिय दई बिसारि ॥ ४ ॥
॥ चौपई ॥ अधिक रोख रानी तब भई । जरि बरि आठ टूक
हवै गई । इह त्रिप को छल सो गहि लीजै । राज्य पूत अपने
को दीजै ॥ ५ ॥ सोवत निरखि राव गहि लयो । गहि करि
एक धाम मै दयो । स्त्री रसरंग मती जिय मारी । सभहि न
लहत राव कहि जारी ॥ ६ ॥ भयो सूर राजाजू मरियो ।
हम को नाथ नाथ बिनु करियो । याको प्रथम दाह दै लीजै ।
चंद्रकेत को राजा कीजै ॥ ७ ॥ राजा मर्यो प्रजा सभ जान्यो ।
भेद अभेद किनू न पछान्यो । भलो बुरो कबहूँ न बिचार्यो ।
आतपल ससिधुज परठार्यो ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ इह चरित्र
अबला पिय गहियो । दूजे कान भेद नहि लहियो । (सू० प्र० ११२८)
राजा कहि कर सवति जराई । निजु सुत को दीनी
ठकुराई ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ अठारहवाँ चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २१८ ॥ ४१९३ ॥ अफजू ॥

सुन्दर थी और उसके अत्यधिक तेज को कोई भी नहीं सँभाल सकता था ॥ ३ ॥
रसरंगमती उसकी पुत्री थी । राजा (चन्द्रकेतु) उसके वश में हो गया और
उसने अपनी स्त्री को भी भुला दिया ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब रानी
अत्यधिक रुष्ट हो गई और जल-भुनकर आठ टुकड़े हो गई । उसने सोचा
कि राजा को प्रपंच से जीता जाय और राज्य अपने पुत्र को दिया जाय ॥ ५ ॥
उसने राजा को सोते जानकर पकड़कर एक घर में बंद कर दिया ।
रसरंगमती को मार डाला और सबके देखते राज्य के आदेशानुसार उसे जला
दिया ॥ ६ ॥ उसने यह भी कह दिया कि दर्द उठने से राजा भी मर गया
और परमात्मा ने मुझे अनाथ कर दिया । पहले इसे जला दिया जाय और
फिर चन्द्रकेतु को राजा बनाया जाय ॥ ७ ॥ सबने-सोचा कि राजा मर
गया है और भेद-अभेद को किसी ने नहीं पहचाना । किसी ने भला-बुरा नहीं
विचारा और छत्र-चँवर शशिध्वज पर लहरा दिया ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस
प्रपंच से रानी ने अपने राजा को पकड़ा जिसका कानोंकान किसी को पता
नहीं चला । राजाज्ञा से सौतन को भी जला दिया और अपने पुत्र को
राजगद्दी दे दी ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ अठारहवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २१८ ॥ ४१९३ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ उनीसवाँ चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ पीर एक मुलतान मै शरफदीन तिह नाउँ ।
 खूँटा गड़ के तट बसै बादर ही महि गाउँ ॥ १ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ एक सिख्य की दुहिता पीर मँगाइकै । आनी
 अपने धाम अधिक सुख पाइकै । स्त्री चपलांगमती जिह जगत
 बखानई । हो ताहि रूप की रासि सभै पहिचानई ॥ २ ॥
 ॥ दोहरा ॥ कितक दिनन भीतर तवन त्यागे पीर परान ।
 स्त्री चपलांगमती बची पाछै जियत जवान ॥ ३ ॥ राइ खुशाल
 भए करी तिन लिय प्रीति बनाइ । भाँति भाँति तासौ रमी
 ह्रिदै हरख उपजाइ ॥ ४ ॥ निति प्रति राइ खुशाल तिह निजु
 ग्रहि लेत बुलाइ । लपटि लपटि ताँसौ रमै भाँग अफीम
 चढ़ाइ ॥ ५ ॥ रमत रमत लिय तवन कौ रहि गयो उदर
 अधान । लोगन सभहन सुनत ही ऐसे कह्यो सुजान ॥ ६ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ रैनि सभै ग्रहि पीर हमारे आवई । रीति प्रीति
 की मोसौ अधिकुपजावई । एक पूत मै माँगि तबै ताँते लियो ।
 हो नाथ क्रिपा करि मो पर सुत सोकौ दियो ॥ ७ ॥ केतिक

दो सौ उनीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ मुलतान के एक पीर का नाम शरफदीन था जो खूँटागढ़
 के पास बंदरगाँव में रहता था ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक शिष्य की पुत्री
 को पीर ने मँगवाकर सुखपूर्वक अपने घर रखा । उसे संसार चपलांगमती
 के नाम से जानता था और रूप की खान के तौर पर पहचानता था ॥ २ ॥
 ॥ दोहा ॥ कई दिनों बाद उस पीर ने प्राण त्याग दिये और चपलांगमती
 जवान पीछे बच रही ॥ ३ ॥ उस स्त्री ने खुशहालराय से प्रेम कर लिया
 और सुखपूर्वक उससे विभिन्न प्रकार से रमण करने लगी ॥ ४ ॥ वह रोज
 खुशहालराय को घर में बुला लेती थी और भाँग-अफीम चढ़ाकर उससे
 लिपट-लिपटकर रतिक्रीड़ा करती थी ॥ ५ ॥ उससे रमण करते-करते उस
 स्त्री को गर्भ रह गया । तब उसने लोगों को यह सुनाकर कहा ॥ ६ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ रात में पीर मेरे घर में आता है और अत्यन्त प्रेमपूर्वक मुझसे
 प्रेम किया करता है । मैंने प्रार्थना करके उससे एक पुत्र माँग लिया है और
 उस कृपालु ने कृपापूर्वक वह मुझे दे दिया है ॥ ७ ॥ कई दिनों के बाद उसके

दिनन प्रसूत पूत ताके भयो । सत्ति पीर को बचन मानि सभहूँ लयो । धन्य धन्य अबलाहि खादिमनुचारियो । हो भेद अभेद न किनहूँ मूरख बिचारियो ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ उनीसवाँ चरित्र समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २१६ ॥ ४२०१ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ बीस चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ आसफ़ खाँ उमराव के रहत आठ सँ त्रीय । नितिप्रति रुचि मानों घने अधिक मान सुख जीय ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ रोशन जहाँ तबन की नारी । आपु हाथ जनु कीस सवारी । आसफ़ खाँ तासौ हित करै । वहु त्रिय रस ताके नहि ढरै ॥ २ ॥ मोती लाल शाहु को इकु सुत । ताको रूप दियो बिधना अति । इह त्रिय ताँहि बिलोक्यो जबही । लागी लगन नेह की तबही ॥ ३ ॥ सखी एक तिन तीर बुलाई । जानि हेत की कै समुझाई । मेरी कही सीत सौ कहियहु । हमरी (मू०पं० ११२६) ओर निहारत रहियहु ॥ ४ ॥ ॥सवैया॥ शीशे

यहाँ पुत्र हुआ जिसे पीर के वचन के कारण सबने सत्य माना । नौकरों ने भी उस स्त्री के लिए धन्य-धन्य कहा और किसी भी मूर्ख ने रहस्य को नहीं जाना ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ उनीसवें चरित्र की शुभ संतु समाप्ति ॥ २१६ ॥ ४२०१ ॥ अफजू ॥

दो सौ बीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहरा ॥ आसफ़ खाँ उमराव के पास आठ सौ स्त्रियाँ रहती थीं । वह अत्यन्त सुख मानकर उससे नित्य रुचिपूर्वक क्रीड़ा किया करता था ॥ १ ॥
॥ चौपाई ॥ रोशनआरा उसकी पत्नी थी जिसे मानों भगवान ने अपने हाथों से बनाया हो । आसफ़ खाँ उससे प्रेम करता था परन्तु वह स्त्री इस पर मेहरबान नहीं होती थी ॥ २ ॥ राजा का एक लड़का मोतीलाल था जिसे विधाता ने रूप-सौंदर्य दिया था । इस स्त्री ने जब उसे देखा तभी उसकी नेह-लगन उससे लग गई ॥ ३ ॥ उसने एक सखी को बुलाया और अपनी हितैषिणी मान उसे कहा कि मेरा संदेश मित्र को दे दो कि कृपापूर्वक मेरी तरफ़ देखते रहो ॥ ४ ॥ ॥ सवैया ॥ शीशे में शराब है कि गुलाब का फूल

शराब कि फूल गुलाब कि मत्त कियौ मदरा कि से प्यारे ।
 बानन से अंग बारन से तरवारन से कि बिखी बिखियारे ।
 नारिन को कजरानन के दुख टारन हैं किधौ नीद निदारे । नेह
 जगे कि रंगे रंग काहू के मीत के नैन सखी रसियारे ॥ ५ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ चंद चाँदनी राति सजन जौ पाइयै । गहि गहि
 ताके अंग गरे लपटाइयै । पल पल बलि बलि जाऊँ न छोरो
 एक छिन । हो बीतहि बरस पचास न जानो एक दिन ॥ ६ ॥
 पल पल बलि बलि जाऊँ पिया को पाइकै । निरखि निरखि
 दोऊ नैन रहों उरझाइकै । करि अधरन को पान अजर हवै जग
 रहों । हो अपने चित की बात न काहू सौ कहो ॥ ७ ॥
 मरि कै होइ चुरैल लला को लागिहों । टूक कोटि तन होइ न
 तिह तजि भागिहैं । बिरह सजन के बधी दिवानी हवै मरों ।
 हो पिय पिय परी कबर के बीच सदा करों ॥ ८ ॥ काजी
 जहाँ अलह हवै न्याइ चुकाइहै । सभ रूहन को अपुनै निकट
 बुलाइहै । तहाँ ठाढी हवै जवाब निडर हवै सै करों । हो
 इशक तिहारे पगी न कानि कछू धरों ॥ ९ ॥ निरखि लला
 को रूप दिवाने हम भए । बिन दामन के दए सखी बिकि कै

है अथवा मदोन्मत्त हैं; ये बाणों के समान हैं कि मृग के बच्चे के समान हैं
 अथवा तलवारों या बाणों के समान हैं । कजरारी स्त्रियों की नींद और
 दुखों को नष्ट करनेवाले, स्नेहपूर्ण हे सखी ! मेरे मित्र के नयन हैं ॥ ५ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ चाँदनी रात में यदि सजन से मुलाकात हो जाय तो उसे पकड़
 कर उसके गले से लिपट जाया जाय । हर क्षण उस पर न्यौछावर जाऊँ
 और उसे एक पल भी नहीं छोड़ूँ । पचास वर्ष ऐसे ही बीत जायँ पर मैं
 उन्हें मात्र एक दिन ही मानूँ ॥ ६ ॥ प्रिय को पाकर उस पर हर पल
 न्यौछावर होऊँ । उसके दोनों नयनों को देखकर उसमें ही उलझी रहूँ ।
 उसके अधरों को पान करके मैं संसार में सदैव जवान बनी रहूँ और अपने
 मन की बात किसी से भी न कहूँ ॥ ७ ॥ मरकर भी चुड़ैल बनकर प्रियतम
 को लग जाऊँ । तन के करोड़ों टुकड़े हो जायँ फिर भी उसे न छोड़ूँ ।
 सजन के बिरह में दीवानी होकर मैं मर जाऊँगी और कब्र में पड़ी-पड़ी भी
 सदैव प्रिय-प्रिय किया करूँगी ॥ ८ ॥ काजी जहाँ अल्लाह के सम्मुख हिसाब
 चकाएगा और सब रूहों को अपने पास बुलाएगा; मैं वहाँ भी खड़ी होकर
 निडर जवाब दूँगी और बिना परवाह किये कहूँगी कि मैं तुम्हारे प्रेम में डूबी
 हुई हूँ ॥ ९ ॥ प्रियतम का रूप देखकर हम तो दीवाने हो गए हैं और बिना

गए । करियो वहै उपाइ जु मिलियै जाइकै । हो सभ सखि तेरो दारिद देउँ बहाइकै ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ लखि आतुरता को सखी चली तहाँ ते धाइ । मन भावंता माननी दीनो सीत मिलाइ ॥ ११ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ मन भावंता सीत कुअर जब पाइयो । सकल चित्त को सुंदरि शोक मिटाइयो । ताके भोगन भरी तरुनि ताकी भई । हो आसफ खान बिसारि ह्रिदै ते भेद ही ॥ १२ ॥ किय बिकार कित किह बिधि पिय कउ पाइयै । आसफ खाँ के घर ते किह बिधि जाइयै । भाखि भेद ताको ग्रहि दयो पठाइकै । हो सूर सूर करि भूमि गिरी मुरछाइकै ॥ १३ ॥ सूर सूर करि गिरी जनुक सरि के गई । डारि संदूकिक माँझ गाडि भुअ सै दई । काडि सजन लै गयो तहाँ ते आनिकै । हो लै अपुनो त्रिय करी अधिक रुचि मानिकै ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ भेद अभेद न मूड़ कछ ताको सक्यो (सू० गं० ११३०) पछानि । जान्यो प्रानन छाडि कै कियो सु भिसत पयान ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मन्त्री भूप संवादे दो सी बीस चरित्र समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ २२० ॥ ४२१६ ॥ अफजू ॥

दाम के ही हे सखी ! बिक गए हैं । हे सखी ! कुछ उपाय करो जिससे उससे मिलन हो । मैं तेरी सारी निर्धनता दूर कर दूँगी ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ उसकी आतुरता को देखकर वह सखी वहाँ से दोड़ चली और उसने वह मनभावन उसे मिला दिया ॥ ११ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब वह मनभावन कुँवर उसे मिल गया तो उसके चित्त का समस्त दुख दूर हो गया । उसके भोग में लिप्त वह सुन्दरी उसी की हो गई और आसफ खाँ को उसने मन से भुला दिया ॥ १२ ॥ उसने तब यह विचार किया कि कैसे प्रियतम को (पूर्णरूप से) प्राप्त किया जाय और आसफ खाँ के घर से कैसे कूच किया जाय । उसे समझाकर उसने घर भेज दिया और "दर्द-दर्द" चिल्लाती हुई वह भूमि पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी ॥ १३ ॥ "दर्द-दर्द" कहती वह ऐसे गिरी मानों मर गई हो । उसे संदूक में बन्द कर भूमि में गाड़ दिया गया । वहाँ से वह सजन उसे निकालकर ले गया और उसे रुचिपूर्वक अपनी स्त्री बना लिया ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ वह मूर्ख (आसफ खाँ) उसके रहस्य को तनिक भी नहीं जान सका और मानने लगा कि वह प्राण त्याग जन्मत में चली गई है ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सी बीसवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २२० ॥ ४२१६ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ इकीस चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ ईसफजैयन मौर है संमन खान पठान ।
तुमन पठानन के तिसै सीस झुकावत आनि ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ स्त्री अगिराजमती ताकी त्रिय । बसी रहै राजा
के निति जिय । परम रूप तन ताहि बिराजै । पसुपति रिपु
निरखत दुति लाजै ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ शादी खान तहाँ हुतो
इक पठान को पुत । अधिक प्रभा ताकी दिपै निरखि रहित
पुरहत ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तिह रानी ताको ग्रहि लियो
बुलाइकै । लपटि लपटि तिह साथ रमी सुख पाइकै । तब
ही लोकहि कहियो त्रिपति सौ जाइ करि । हो खड़ग हाथ
गहि राव पहुच्यो आइ करि ॥ ४ ॥ त्रिप करि खड़ग बिलोक
अधिक अबला डरी । चित अपनै के बीच इहै चिता करी ।
गहि क्रिपान ततकाल मोत को मारिकै । हो टूक टूक करि
दियौ देग में डारिकै ॥ ५ ॥ डारि देग तर आग दई
औटाइकै । बहुरि सगल तिह भखि गई मासु बनाइकै ।
सगरो सदन निहारि चक्रित राजा रहियो । हो भेददाइकह

दो सौ इक्कीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ यूसुफजई पठानों में सम्मन खान पठान सिरमौर था जिसे
पठानों के झुंड सिर झुकाते थे ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसकी स्त्री राजमती
थी जो राजा के हृदय में बसी रहती थी । उसके परम रूप-सौंदर्य को देख
कर कामदेव भी लज्जित होता था ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ वहाँ एक पठान
का पुत्र शादी खाँ था । उसकी देदीप्यमान प्रभा को इन्द्र भी निहारा
करता था ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उस रानी ने उसे घर बुला लिया और
लिपट-लिपटकर उसके साथ रमण करने लगी । उसी समय लोगों ने राजा
से जा कहा और वह हाथ में खड़ग लेकर वहाँ आ पहुँचा ॥ ४ ॥ राजा के
हाथ में खड़ग देखकर रानी अत्यधिक डर गई और उसने मन में कुछ सोचा
और निश्चय किया । उसने हाथ में कृपाण पकड़कर मित्र को मारकर
टुकड़े-टुकड़े करके उसे देग में डाल दिया ॥ ५ ॥ देग में डालकर उसने
नीचे आग देकर उसे खौला दिया और उसके मांस का भक्षण कर गई ।
राजा सारा महल देखकर चकित रह गया और उसने झूठ बोलने के अपराध

हन्यो झूठ इन मुहि कहियो ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ प्रथम भोग
करि भखि गई भेददाइ कह घाइ । राजा तें साची रही इह
छल छिद्र बनाइ ॥ ७ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ इकीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २२१ ॥ ४२२३ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ बाईस चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ काबल मै अकबर गए एक बिलोक्यो
बाग । हरी भई आँखें निरखि रोशन भयो दिमाग ॥ १ ॥
भोगमती इक भासनी अकबर के ग्रहि भाहि । ताकी सम तिहूँ
लोक मै रूपवती कहूँ नाहि ॥ २ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ एक शाह
को पुत गुलमिहर भाखीयै । ताकी प्रभा समान कहो किह
राखिए । अप्रमान तिह प्रभा जगत मै जानियै । हो आसुरेस
दिन नाथ कि ससि करि मानियै ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ भोग
मती निरखत तिह भई । मन बच क्रम करि बसि हवै गई ।
चित के बिखै (मू० पं० ११३१) बिचारि बिचार्यो । एकहि
दूतन प्रमट उचार्यो ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनह सखी गुलमिहर
में भेड़िये को मार डाला ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ पहले भोग किया, फिर मारकर
खा गई और पुनः भेड़िये को मरवा डाला । वह स्त्री राजा से यह प्रपंच
बनाकर सच्ची बनी रही ॥ ७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ इक्कीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २२१ ॥ ४२२३ ॥ अफजू ॥

दो सौ बाईसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ काबुल में जाने पर अकबर ने एक बाग देखा, जिसे देखकर
उसकी आँखें ठंडी हो गई और दिमाग रौशन हो गया ॥ १ ॥ अकबर के
महल में भोगमती नामक एक स्त्री थी, जिसके समान रूपवती तीनों लोकों
में कोई नहीं थी ॥ २ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ गुलमुहर एक शाह का पुत्र था ।
उसके समान प्रभायुक्त भला अन्य कौन था । उसे भला असुरराज, सूर्य
अथवा चन्द्र कहा जाय (कुछ समझ में नहीं आता) ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ भोगमती
ने उसे देखा और मन, वचन एवं कर्म से उसके वश में हो गई । उसने मन
में विचार किया और एक दूत को बुलाया और प्रकट में उससे कहा ॥ ४ ॥

कौ दीजें मोहि मिलाइ । जनम जनम दारिद्र तव दैहो
 सकल मिटाइ ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ ऐसे बचन सुनत सखी
 भई । ततछिन दौरि तहाँ ही गई । भाँति भाँति ताकौ
 समुझायो । आन हितू कह मीत मिलायो ॥ ६ ॥
 ॥ दोहरा ॥ मन भावंता मीत सुभ तरुनि तरुन कौ पाइ । रस
 ताके रसती भई अकबर दयो भुलाइ ॥ ७ ॥ त्रिय चिंता चित
 मै करी रहौ मीत के साथ । अकबर घर ते निकसिये कछु
 चरित्र के साथ ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ कह्यो मीत सौ नारि
 तवनि समझाइ करि । प्रगट रह्यो पिय साथ चरित्र दिखाइ
 करि । आपुन में स्वै इक द्रुम माँझ गडाइहों । हो तह
 ते निकसि सजन तुमरे ग्रहि आइहों ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ मीत
 बिहसि यौ बचन उचारे । तुम ऐहो किह भाँति हमारे ।
 तनिक भनक अकबर सुनि लैहै । मुहि तुहि को जमलोक
 पठैहै ॥ १० ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अकबर बपुरो कहा छलहि छलि
 डारिहों । भेद पाइ निकसौगी तुमैं बिहारिहों । या मूरख के
 सीस जूतियन झारिकै । हो मिलिहौ तुहि पिय आइ चरित्र
 दिखारिकै ॥ ११ ॥ जानिक बडे चिनार तरे सोवत भई ।

॥ दोहा ॥ हे सखी ! मुझे गुलमोहर से मिला दो मैं तुम्हारे जन्म-जन्मांतरों
 का दारिद्र्य मिटा दूंगी ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ सखी ने यह सुना और तत्क्षण
 दौड़कर वहाँ गई । उसे भाँति-भाँति से समझाया और आकर मित्र को
 मिलवा दिया ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ तरुणी ने मनभाता तरुण मित्र पाकर
 उसके रस में लीन हो अकबर को भुला दिया ॥ ७ ॥ अब स्त्री ने सोचना
 शुरू किया कि मित्र के साथ रहा जाय और अकबर के घर से कुछ प्रपंच-
 पूर्वक निकल जाना चाहिए ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उसने मित्र को समझाया
 और प्रकट में प्रपंचपूर्ण होकर कहा कि मैं अपने को एक पेड़ के नीचे
 गड़वाऊँगी और वहीं से निकलकर तुम्हारे घर आ जाऊँगी ॥ ९ ॥
 ॥ चौपाई ॥ मित्र ने हंसकर कहा कि तुम मेरे पास कैसे आओगी ! यदि
 अकबर को तनिक भी भनक लग गई तो वह तुम्हें और मुझे दोनों को
 यमलोक भेज देगा ॥ १० ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अकबर बेवारा क्या है मैं तो
 साक्षात् छल को भी भ्रम में डाल दूंगी और अवसर पाकर निकल कर
 आऊँगी और तुम्हारे साथ विहार करूँगी । इस मूर्ख के सिर पर जूता मार
 कर मैं प्रपंच दिखाकर तुमसे आ मिलूँगी ॥ ११ ॥ वह जान-बूझकर चिनार

लखि अकबर सौ जागि न टरि आगे गई । या द्रुम की मुहि
छाहि अधिक नीकी लगी । हो पौढि रही सुख पाइ न तजि
निद्रा जगी ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ आपे अकबर बाँह गहि
जो मुहि आइ जगाइ । हौ इह ही सोई रहौ पन्हहिन्न ताहि
लगाइ ॥ १३ ॥ ॥ चौपई ॥ ऐसी बात शाह सुनि पाई । लै
पनही तिह ओर चलाई । जूती वहै हाथ तिन लई । बीसक
झारि अकबरहि गई ॥ १४ ॥ हजरति कोप अधिक तब
भरियो । वहै बिछ महि गडहा करियो । ता मै ऐंचि
तरुनि वह डारी । मूरख बात न कछू बिचारी ॥ १५ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ ताँहि बिछ महि डारि आपु दिल्ली गयो । आनि
उकरि द्रुम भीत काढ ताकौ लयो । मिली तरुन पिय साथ
चरित बनाइ (सू० पं० ११३२) बरि । हो अकबर के सिर साझ
जूतियन झारि करि ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित पद्याने त्रिया चरिते मंत्री भूप संवादे दोइ सौ बाईस चरित्र
समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २२२ ॥ ४२२६ ॥ अफजू ॥

के एक बड़े वृक्ष के नीचे सो गई और अकबर को देखकर भी नहीं
जागी और पड़ी रही । मुझे इस पेड़ की छाया अच्छी लगी है, इसी से मैं
नींद त्यागकर नहीं जगी और पड़ी हूँ ॥ १२ ॥ ॥ दोहा ॥ यदि अकबर
स्वयं भी मुझे बाँह पकड़कर जगाए तो मैं उसे जूती मारकर फिर यहीं सोती
रहूँ ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ शाह ने जब यह सुना तो जूता खींचकर उसे दे
मारा । उसने भी वही जूता हाथ में लिया और लगभग बीस जूते अकबर
को झाड़ दिये ॥ १४ ॥ बादशाह अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा और उसने उसी
वृक्ष के नीचे गड़हा खुदवाया । उस स्त्री को खींचकर उसमें धकेल दिया
और मूर्ख ने मन में तनिक भी विचार नहीं किया ॥ १५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उसे
उसी वृक्ष के नीचे डाल आप दिल्ली चला गया और मित्त आकर पेड़ के नीचे
से खोदकर उसे निकाल लिया । वह स्त्री अकबर के सिर में जूते झाड़कर
प्रपंच दिखाती हुई उस तरुण से आ मिली ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ बाईसवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ २२२ ॥ ४२२६ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ तेईस चरित्र कथन ॥

॥ चौपाई ॥ राधावती नगर इक भारो । आपु हाथ
जनु ईस सवारो । क्रूरकेत राजा तह रहई । छत्रपती रानी
जग कहई ॥ १ ॥ ताको अधिक रूप उजियारो । आपु ब्रह्म
जनु करन सवारो । ता सम तीन भवन त्रिय नाही । देव
अदेव कहै मन माही ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ हीरामनि इक शाह
को पुत हुतो तिह ठौर । तीन भवन भीतर बिखे ता सम हुतो
न और ॥ ३ ॥ छत्रमती तिह लखि छकी छैल छरहरो
जवान । रूप बिखै सम तवन की तीन भवन नहि आन ॥ ४ ॥
॥ सोरठा ॥ ताको लियो बुलाइ रानी सखी पठाइकै । कह्यो
सीत मुसकाइ शंक त्यागि मोको भजहु ॥ ५ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ जो
रानी तिह कह्यो न तिन बच मानियो । पाइ रही पर मूढ़ न
किछु करि जानियो । हाइ भाइ बहु भाँति रही दिखराइ
करि । हो रम्यो न तासो मूरख हरखुपजाइ करि ॥ ६ ॥
करम काल जो लाख मुहर कहूँ पाइयै । लीजै हाथ उचाइ
त्यागि नह जाइयै । जो रानी सो नेह भयो लहि लीजियै ।

दो सौ तेईसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ राधावती नामक एक बड़ा नगर था जिसे मानों ईश्वर
ने स्वयं बनाया था । क्रूरकेतु वहाँ का राजा था जिसकी स्त्री छत्रमती
थी ॥ १ ॥ उसका उजाले के समान स्वरूप मानों ब्रह्मा ने अपने हाथों से
बनाया था । देव-अदेव सभी मन में कहते थे कि उसके समान अन्य किसी
का सौंदर्य नहीं था ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ एक शाह का हीरामन नामक एक
पुत्र था जिसके समान तीनों लोकों में अन्य कोई नहीं था ॥ ३ ॥ छत्रमती
उस छरहरे जवान को देखकर तृप्त हो गई, क्योंकि रूप में उसके समान तीनों
भुवनों में दूसरा कोई नहीं था ॥ ४ ॥ ॥ सोरठा ॥ रानी ने सखी को भेज
कर उसे बुला लिया और मित्र को मुस्कुराकर कहा कि शंका को त्यागकर
मुझसे रमण करो ॥ ५ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ रानी ने जो कहा वह उसने नहीं
किया । वह उसके पाँव भी पड़ी पर मूर्ख नहीं माना । वह उसे अनेकों
हाव-भाव दिखाने लगी पर उस मूर्ख ने प्रसन्न होकर उससे रमण नहीं
किया ॥ ६ ॥ भाग्य से यदि कभी लाख मुहरें मिल जायें तो उन्हें ले लेना
चाहिए और त्यागना नहीं चाहिए । रानी से स्नेहपूर्वक जो मिले ले लेना
चाहिए और जो वह कहे निस्संकोच करना चाहिए ॥ ७ ॥ रानी ने उससे

हो जो बहु कहै सु करियै शंक न कीजियै ॥ ७ ॥ भजु रानी
 तिह कह्यो न तिह ताकौ भज्यो । कामकेल हित मान न
 तिह तासो सज्यो । नाँहि नाँहि सो करत नासित की तह
 भयो । हो तब अबला कै कोप अधिक चित मै छयो ॥ ८ ॥
 ॥ चौपई ॥ तरुनी तबै अधिक रिसि भरी । कठिन क्रिपान
 हाथ मै धरी । ताको तमकि तेग सौ मार्यो । काटि मुँड
 छित ऊपर डार्यो ॥ ९ ॥ टूक अनेक तवन कौ कीनो ।
 डारि देग के भीतर दीनो । निजु पति बोलि धाम मै लयो ।
 भच्छ भाखि आगे धरि दयो ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ मदरा
 माँझ चुआइ तिह मद करि प्यायो पीय । लहि बारुनि मूरखि
 पियो भेद न समझ्यो जीय ॥ ११ ॥ हाडी तुचा गिलोल कै
 दीनी डारि चलाइ । रहत मासु दाना भए अस्वन दयो
 खवाइ ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ तासों रति जिन जानि न करी ।
 ता पर अधिक कोप त्रिय भरी । है त्रिप को तिह
 मास खवायो । (मू०ग्रं० ११३३) मूरख नाहि नाहि कछु
 पायो ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मन्त्री भूप संवादे दोइ सौ तेईस चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २२३ ॥ ४२४५ ॥ अफजूं ॥

केलिक्रीड़ा माँगी जो उसने नहीं मानी और कामकेल के लिए तैयार नहीं
 हुआ । जब वह नाँह-नाँह ही करता रहा तो स्त्री के मन में अत्यधिक क्रोध
 भर उठा ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब तरुणी ने क्रुद्ध हो विकराल कृपाण को
 हाथ में पकड़ा । भड़ककर उसे कृपाण से मार डाला और उसका सिर
 काटकर धरती पर गिरा दिया ॥ ९ ॥ फिर उसके अनेकों टुकड़े किए और
 देग में डाल दिया । फिर उसने अपने पति को महल में बुला लिया और
 भोजन के रूप में उसके आगे रख दिया ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ उसे मदिरा
 का पेय बनाकर मदपूर्वक पिलाया और वह मूर्ख भी उसे वारुणि समझकर
 पी गया ॥ ११ ॥ हड्डी और त्वचा को हिलाकर बाहर डाल दिया और जो
 मांस बचा उसे घोड़ों को खिला दिया ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ जिसने उसके
 साथ रतिक्रीड़ा नहीं की वह स्त्री उस पर अत्यधिक क्रुद्ध हो गई । क्रुद्ध हो
 उसने राजा को मांस खिला दिया और इस मूर्ख पति को भी रहस्य का पता
 न चल सका ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ तेईसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २२३ ॥ ४२४५ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ चौबीस चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ बिशनकेत राजा बडो जूनागढ़ को ईस ।
इंद्र चंद्र सौ राज धौ अलकि सकै जगदीस ॥१॥ ॥चौपई॥ स्त्री
त्रिपुरारि कला ताकी त्रिय । मन क्रम बसि राख्यो जिन करि
पिय । अधिक तरुनि को रूप बिराजै । स्त्री त्रिपुरारि निरखि
दुति लाजै ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ नवल कुअर इक शाहु को पूत
रहै सु कुमार । रीझ रही त्रिपुरारि कल ताको रूप निहारि ॥३॥
॥ अड़िल्ल ॥ नवल कुअरहि बिलोकि हियो ललचाइयो । पठै
सहचरी निजु ग्रहि बोल पठाइयो । अधिक मानि रुचि रमी हरख
उपजाइकै । हो कामरीति जुत प्रीतम अधिक मचाइकै ॥ ४ ॥
छैल छैलनी छकै अधिक सुख पावहीं । जोर जोर चखु चार दोऊ
मुसकावहीं । लपट लपट करि जाँहि न छिन इक छोरही ।
हो करि अधरन को पान कुचान मरोरही ॥ ५ ॥ चौरासियन
आसनन करत बनाइकै । काम कलोल मचाइ अधिक सुख
पाइकै । कोकसार के भेद उचरैं बनाइ कर । हो निरखि प्रभा
बलि जाहि दोऊ मुसकाइ करि ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ एक दिवस

दो सौ चौबीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ जूनागढ़ का महान राजा विष्णुकेतु था जो इंद्र और कुबेर
के समान अथवा स्वयं परमेश्वर (-सदृश) था ॥ १ ॥ ॥चौपाई॥ त्रिपुरारि-
कला उसकी स्त्री थी जिसने मन, वचन एवं कर्म से अपने प्रिय को अपने वश
में कर रखा था । उस तरुणी का अत्यधिक शोभायमान रूप-सौंदर्य देखकर
कामदेव भी लज्जित होता था ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ नवलकुंवर एक राजा का
सुकुमार पुत्र था । त्रिपुरारिकला उसके रूप को देखकर रीझ उठी ॥ ३ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ नवलकुंवर को देख उसका मन ललचा उठा । उसने सखी
को भेज उसे अपने घर बुला भेजा । उससे प्रसन्नतापूर्वक अत्यधिक रुचि
मानकर उसने रमण किया । उसने उसके साथ कामकलाओं की धूम मचा
दी ॥ ४ ॥ छैला और छैलिनी सुख को छककर भोग रहे थे और सुन्दर नयनों
को देखते हुए मुस्कुराते थे । वे एक-दूसरे से लिपट-लिपट जा रहे थे और
एक क्षण भी एक-दूसरे को नहीं छोड़ते थे । वे अधरपान और कुचमर्दन
करते थे ॥ ५ ॥ चौशासी आसन बनाकर वे काम-किल्लोल हर्षपूर्वक किया
करते थे । कोकशास्त्र के भेदों का उच्चारण किया करते थे और दोनों
(एक-दूसरे की) प्रभा देखकर न्यूँछावर हो मुस्कुराते थे ॥६॥ ॥चौपाई॥ एक

इमि जार उचारो । सुनु रानी तै कह्यो हमारो । जिनि तव
 नाथ बिलोकै आई । दुहुँअन हने कोप उपजाई ॥ ७ ॥
 ॥ त्रियो बाच ॥ प्रथम राव तन भेद जताऊँ । बहुरि ढढोरो
 नगर दिवाऊँ । दै दुंदभि पुनि तोहि बुलँहौ । काम भोग रुचि
 मानि मचैहौ ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अधिक भोग करि सीतहि
 दयो उठाइकै । आपु त्रिपति सौ कही बात समुझाइकै । शिव
 मोकौ इह भाँति कह्यो हौ आइ । करि हो सौहउ तुमरे तीर
 कहौ अब आइ घरि ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ जब दिन एक सभागा
 हवैहै । महादेव मेरे ग्रहि ऐहै । निजु हाथन दुंदभी बजावै ।
 कूकि अधिक सभ पुरहि सुनावै ॥ १० ॥ जब तुम ऐस
 शबद सुनि लैयहु । तब उठ धाम हमारे ऐयहु । भेद
 किसू औरहि नहि कहियहु । भोग समौ त्रिय को भयो
 लहियहु ॥ ११ ॥ (सू०ग्रं० ११३४) ॥ दोहरा ॥ तुरतु आनि मोको
 भजहु सुनु राजा सुखधाम । पल्यो परोसो होइ सुत मोहन
 रखियहु नाम ॥ १२ ॥ यौ कहिकै त्रिप सों बचन ग्रहि ते दियो
 उठाइ । पठै सहचरी जार कौ लीनो निकट बुलाइ ॥ १३ ॥
 ॥ चौपई ॥ काम भोग प्रीतम सो कियो । झिड़ करि बहुत
 दमामो दियो । कूकि कूकि पर सकल सुनाइसि । भोग समै

दिन मित्र ने यह कहा कि हे रानी ! तुम मेरी बात सुनो : कहीं तुम्हारा
 पति हम-दोनों को देख न ले और मार न डाले ॥ ७ ॥ ॥ त्रिया उवाच ॥ पहले
 राजा को बताऊँगी, फिर नगर में ढिढोरा पिटाऊँगी, फिर दुंदुभि
 बजाकर तुम्हें बुलाऊँगी और पुनः रुचिपूर्वक भोग-विलास करेंगे ॥ ८ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ अत्यधिक भोग करके उसने मित्र को उठा दिया और स्वयं
 राजा को समझाकर कहा कि शिव जी ने मुझसे कहा है कि मैं अब तुम्हारे
 सामने एक दिन तुम्हारे घर आऊँगा ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब कोई भाग्य-
 शाली दिन आएगा तो महादेव मेरे घर आयेंगे । अपने हाथों से दुंदुभि
 बजाएंगे, जिसकी आवाज़ सारे नगर में सुनाई पड़ेगी ॥ १० ॥ जब तुम यह
 ध्वनि सुनो तो मेरे महल में चले आना । किसी अन्य से न कहना और स्त्री
 के भोग समय में आ जाना ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ फिर तुरन्त हे सुखधाम
 राजन् ! तुम मेरे साथ रमण करना । तब पला-पलाया एक पुत्र मिलेगा
 जिसका नाम मोहन रखना ॥ १२ ॥ यह कहकर उसने राजा को महल से
 उठा दिया और सखी भेजकर अपने मित्र को बुला लिया ॥ १३ ॥
 ॥ चौपाई ॥ उसने कामभोग प्रियतम से किया और जोर से नगाड़ा बजाया

रानी को आइसि ॥ १४ ॥ बचन सुनत राजा उठि धयो ।
भोग समो रानी को भयो । जो शिव बचन कह्यो सो हवै है ।
पर्यो परोसो सुत ग्रहि दै है ॥ १५ ॥ आवत त्रिपति जार
डरपानो । रानी सों यो बचन बखानो । निराप्राध मोकौ तैं
मार्यो । मै त्रिय कछु न तोरि बिगार्यो ॥ १६ ॥ शिव बच
सिमरि तहाँ त्रिप गयो । भोग करत निजु त्रिय सो भयो ।
पीठ फेरि ग्रहि को जब धायो । तब त्रिय अपनो जार
बुलायो ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ कहा जात राजा कह्यो शिवसुत
दीनो धाम । पलो पलोसो लीजिय मोहनि रखिय नाम ॥ १८ ॥
॥ चौपई ॥ प्रथम जार को बोलि पठायो । दै दुंदभि पुनि राव
बुलायो । बहुरि कूकि कै पुरहि सुनाइसि । अितवा को सुत
कै ठहराइसि ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ निसु दिन राखत जार
को सुत सुत कहि कहि धाम । शिव बच लहि त्रिप चुप रह्यो
इह छल छल्यो सु बास ॥ २० ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ चौबीस चरित्र
समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २२४ ॥ ४२७२ ॥ अफजू ॥

जिसकी आवाज सबको सुनाई पड़ गयी । (कथनानुसार) रानी का केलि-
क्रीड़ा का समय आ पहुँचा ॥ १४ ॥ आवाज सुनकर राजा उठ दौड़ा कि
रानी का रमण-समय आ गया है । अब शिव के कथनानुसार होगा और
पला-पलाया पुत्र प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ राजा को आते देख यार डर गया
और रानी से कहने लगा कि तुमने मुझे निरपराध ही मरवा दिया । मैंने
भला तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ॥ १६ ॥ शिव-वचन का स्मरण कर राजा
वहाँ गया और अपनी स्त्री से रमण करने लगा । जब पीठ फेरकर वह
वापस घर गया तो रानी ने तुरन्त अपने यार को बुला लिया ॥ १७ ॥
॥ दोहा ॥ राजन् ! कहाँ जा रहे हो ? शिव ने घर में पुत्र दिया है । पला
हुआ लो और इसका नाम मोहन रखो ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ पहले यार
को बुलाया, फिर दुंदभि बजाकर राजा को बुलाया, पुनः ध्वनि सारे नगर में
सुनाई और फिर मित्र को पुत्र बना लिया ॥ १९ ॥ ॥ दोहा ॥ अब वह
रात-दिन पुत्र कहकर यार को अपने घर में रख रही थी । शिव के वचनों
को स्मरण कर राजा चुप लगा गया और इस प्रकार प्रपंच से स्त्री ने उस
राजा को छल लिया ॥ २० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ चौबीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २२४ ॥ ४२७२ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ पच्चीसवाँ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बाराणसी नगरिक बिराजै । जाके लखे पाप सभ भाजै । बिमलसेन राजा तह रहई । सभ दुरजन के दल को दहई ॥ १ ॥ सुनत कुअर त्रिप को इक सुत बर । अमित दरबु ताके भीतर घर । जो अबला तिह रूप निहारै । सभ ही दरबु आपनो वारै ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्त्री चखुचारुमती रहै त्रिप की सुता अपार । कै रति पति की पुत्रका कै रति को अवतार ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब चखुचारुमती तिह रूप निहारियो । यहै आपने चित के बिखै बिचारियो । क्योंहैं ऐसो छैल जु इक छिन पाइयै । हो करो न न्यार । नैक सदा बलि जाइयै ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ सहचरि एक बुलाइकै ता के दई पठाइ । (सू०पं० ११३५) सोकौ मीत मिलाइयै करिकै कोटि उपाइ ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ दीजै सखी मिलाइ सजन मुहि चाहियै । जाके बिरह बिसेख भए हिय दाहियै । जिह आवत उडि मिलै शंकि को छोरिकै । हो लोक लाज कुल कानि करोरिक ओरकै ॥ ६ ॥ स्यानी सखी बिसेख भेद तिह पाइकै ।

दो सौ पचीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बाराणसी एक नगर है जिसके दर्शन से सभी पाप नष्ट होते (माने गए) हैं । विमलसेन वहाँ का राजा था जो सभी दुर्जनों के समूह को नष्ट करनेवाला था ॥ १ ॥ राजा का एक सुन्दर पुत्र था जिसके पास अपरिमित द्रव्य था । जो भी स्त्री उसका रूप देखती अपना समस्त द्रव्य न्यौछावर कर देती ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ चक्षुचारुमती राजा की पुत्री थी । वह कामकेल की पुत्री अथवा रति का अवतार ही लगती थी ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब चक्षुचारुमती ने उसका रूप देखा तो अपने चित्त में यही विचार किया कि कैसे भी ऐसा छैला यदि एक दिन मिल जाय तो उसे कभी भी अलग न कहूँ और सदैव उस पर न्यौछावर जाऊँ ॥ ४ ॥ ॥ दोहा ॥ एक दासी को बुलाकर उसे भेजा और कहा कि कोई भी उपाय कर मुझे मेरा मित्र मिला दो ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ हे सखी ! मुझे सजन चाहिए, मुझे उसे मिला दो जिसके विरह-विशेष में हृदय जल रहा है; जिसको आते हुए को देखकर लोक-लाज को छोड़ निस्संकोच उड़कर मिलने को मन चाहता है ॥ ६ ॥ स्यानी सखी ने उसके भेद को समझकर उस प्रिया को प्रियतम मिला दिया ।

आनि प्रिया कह प्रीतम दयो मिलाइकै । निरखि कुअरि तिह
 अंग दिवानी सो भई । हो बिरह समुंद के माँझ मगन ह्वैकै
 गई ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ प्रीतम स्यों यौ प्रिया सुनायो । तँ
 मेरो मन आजु चुरायो । हो हूँ ऐस जतन कछु करिहौ ।
 सभहिन छोरि तोहि कौ बरिहौ ॥ ८ ॥ जो तुहि कहौ मित्र
 सो करियहु । मोर पिता ते नैक न डरियहु । सूरज नाम
 आपनो धरियहु । मोहि ब्याहि लै धाम सिधरियहु ॥ ९ ॥
 तब अबला निजु पिता बुलायो । पकरि बाँह ते मित्र दिखायो ।
 सुनु राजा सूरज इह आही । चाहत है तव सुता बियाही ॥ १० ॥
 ॥ दोहरा ॥ प्रथम प्रतग्या लीजियै या की अबै बनाइ । पुनि
 मोको इह दीजियै सुनु राजन के राइ ॥ ११ ॥ जब लौ इह
 इह घर रहै चढ़ै न सूरज अकास । जब इह जाइ तहाँ चढ़ै
 जग मै होइ प्रकास ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ सत्य बात राजै इह
 जानी । भेद न लख्यो कछू अग्यानी । राजकुमारि मंत्र इक
 पढ़ियो । द्वै दिन लगे सूरज नहि चढ़ियो ॥ १३ ॥
 ॥ दोहरा ॥ मंत्रन सो अभिमंत्र करि बरिया दई उडाइ ।
 निमु नाइक सो जानियै गगन रह्यो थहराइ ॥ १४ ॥

कुँवरि उसको देखकर मानों दीवानी हो गई और ऐसा लगता था मानों विरह-
 समुद्र में मगन हो गई हो ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ प्रियतम से प्रिया ने कहा कि
 तुमने तो आज मेरा मन चुरा लिया है । मैं कुछ ऐसा यत्न करूँगी कि सबको
 छोड़कर तुम्हारा वरण करूँगी ॥ ८ ॥ मेरे मित्र ! जो मैं तुमसे कहूँ तुम वही
 करना और मेरे पिता से तनिक नहीं डरना । अपना नाम सूर्य रख लो और
 मुझे ब्याहकर अपने घर की ओर चल दो ॥ ९ ॥ तब उस स्त्री ने अपने पिता
 को बुलाया और मित्र की बाँह पकड़कर उसे दिखा दिया । हे राजा !
 सुनो, यही सूर्य है जो तुम्हारी पुत्री से विवाह करना चाहता है ॥ १० ॥
 ॥ दोहरा ॥ पहले इससे अभी प्रण ले लो और फिर हे सम्राट् ! मुझे इसके
 हवाले करो ॥ ११ ॥ जब तक यह घर में रहता है, सूर्य आकाश में नहीं
 चढ़ता । यह जब बाहर जहाँ भी जाता है तो जगत् में प्रकाश हो जाता
 है ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा ने उसे सत्य माना और वह अज्ञानी कुछ
 भी भेद न समझ सका । राजकुमारी ने एक मंत्र पढ़ा और दो दिन तक सूर्य
 न निकला ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ मंत्रों से अभिमंत्रित कर उसने वाटिका को
 उड़ा दिया और ऐसा लगा कि चन्द्रमा की रात में आसमान मानों थरथरा रहा

॥ चौपई ॥ जब राजे इह भाँति निहार्यो । सत्य सूरज करि
ताँहि बिचार्यो । तुरतु ब्याहि दुहिता तिह दीनी । भेद
अभेद की बात न चीनी ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ पच्चीसवां चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २२५ ॥ ४२८७ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ छब्बीसवों चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ मालनेर के देस मै मालकौसपुर गाउँ ।
मानशाह इक चौधरी बसत सु तवनै ठाउँ ॥ १ ॥ रसतम देई
तवन की रहत सुंदरी नारि । रूप सोल सुचि क्रिया सुभ पति
की अति हितकार ॥ २ ॥ ता को पति उमराव की करत
चाकरी निति । (मू०पं० ११३६) शाहजहाँ के धाम को राखै दरबु
अमिति ॥ ३ ॥ भाँग पियत बहु चौधरी और अफीम चढ़ाइ ।
आठ पहर घूमत रहै लोग हसै बहु आइ ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ लोक
सकल मिलि ताँहि बखानै । मूरख शाह कछू नहि जानै ।
जो नर भाँग अफीम चढ़ावै । ता कह सुधि कहो कब
आवै ॥ ५ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ शाह करी चित्त माँझ सु चित

हो ॥ १४ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब राजा ने देखा और उसे सत्यरूप से माना ।
तुरन्त उससे पुत्री का विवाह कर दिया और भेद-अभेद को कुछ नहीं
जाना ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ पचीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २२५ ॥ ४२८७ ॥ अफजू ॥

दो सौ छब्बीसवां चरित्र-कथन

॥ दोहरा ॥ मालनेर देश में मालकौसपुर नामक गाँव था, जहाँ मानशाह
नामक एक चौधरी रहता था ॥ १ ॥ रसतमदेवी उसकी सुन्दर नारी थी जो
रूप और शील में पति की अत्यन्त हितकारिणी थी ॥ २ ॥ उसका पति
उमराव की नौकरी करता था और शाहजहाँ के अपरिमित द्रव्य की रक्षा
करता था ॥ ३ ॥ चौधरी भाँग पीकर और अफीम चढ़ाकर आठों प्रहर हँसता
रहता था और लोग उस पर हँसते रहते थे ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ सभी लोग
उसी की बातें करते थे पर उस मूर्ख शाह को कुछ पता नहीं चलता था ।
जो व्यक्ति भाँग-अफीम का सेवन करता है उसको भला होश कहाँ रहेगी ॥ ५ ॥

बिचारिकै । सभ धन इन को हरौ चरित दिखारिकै ।
हजरति हूँ को दरबु सदन हरि ल्याइहौ । हो सभ सोफिन को
मूँड मूँड कै खाइहौ ॥ ६ ॥ हजरति जू को प्रथम खजाना
सभ लयो । पुनि सोफिन को दरबु धरो हरि धरत भयो ।
बहुरि अतिथ को भेस त्रियहि पहिराइकै । हो बनी कचहिरी
भीतर दर्ई पठाइकै ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ हजरति को लोगन
सहित लीनो दरबु चुराइ । भरि थैली ठिकरी धरी मुहरें करी
बनाइ ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ मानि शाह बहु भाँग अफीम
चढ़ाइकै । घूमत घूमत तहाँ पहुँचयो जाइकै । तब लौ कहियो
अतिथ इक ठिकरी दीजियै । हो काजु हमारो आजु चौधरी
कीजियै ॥ ९ ॥ दयो एक घट फोरि बहुत ठिकरी भई ।
तिन ते एक उठाइ अतिथ कै कर दर्ई । लैकै जब अतीत
निरख ता को लयो । हो एक कचहिरी माँझ छाप तरुनी
दयो ॥ १० ॥ ठीकन ही को दरबु सकल हवै जाइहै । हजरति
लोगन सहित न कछु धन पाइहै । काजि क्रोरि कुटुवार
खजानो तब लह्यो । हो सति छाप भयो कह्यो अतिथ
जैसो दयो ॥ ११ ॥ सभ सोफिन को मूँडि मूँडि अमली गयो ।

॥ अड़िल्ल ॥ मानशाह ने मन में विचार किया कि इन लोगों का प्रपंच द्वारा
धन चुरा लेना चाहिए । (पहले तो) बादशाह का द्रव्य घर से चोरी करूँगा
और फिर इन न पीनेवालों को मूँड-मूँडकर खाऊँगा ॥ ६ ॥ पहले तो उसने
बादशाह का खजाना ले लिया और फिर न पीनेवालों का भी धन-धरोहर
रख लिया । फिर स्त्री को साधु-वेश पहनाकर उसे भरी कचहरी में भेज
दिया ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ उसने बादशाह-समेत लोगों का द्रव्य चुरा लिया
और मोहरों के तौर पर उनके घड़ों में ठीकरियाँ भर दीं ॥ ८ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ फिर मानशाह बहुत-सी भाँग और अफीम चढ़ाकर घूमता-
घूमता वहाँ आ पहुँचा । तब तक फ़कीर ने कहा कि हे चौधरी ! मेरा एक
काम करो और मुझे एक ठीकरी दो ॥ ९ ॥ उसने एक घड़ा तोड़ा और
बहुत-सी ठीकरियों में से एक ठीकरी उठाकर उस फ़कीर को दे दी । जब
उस फ़कीर ने ठीकरी को देखा तो कचहरी में एक शाप दिया ॥ १० ॥
यह सारा धन ठीकरी हो जायगा और लोगों-समेत बादशाह को भी कुछ प्राप्त
नहीं होगा । जब अनेकों कार्यवश कोतवाल ने खजाना देखा तो उसने देखा
कि फ़कीर का कहा हुआ शाप सत्य हो गया है ॥ ११ ॥ वह नशेड़ी सब न

मुहरें लई निकारि ठीकरी दै भयो । आजु लगे ओहि देस
अतिथ को मानियै । हो मसला इह मशहूर जगत मै
जानियै ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ वाके खाना नै लिख्यो हजरति
जू को बनाइ । स्नाप दयो इक अतिथ नै सभ धन गयो
गवाइ ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ छब्बीसवों चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ २२६ ॥ ४३०० ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ सत्ताईसवों चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ देस मालवा के बिखै मदनसेन इक राइ ।
गढ़ तासौ राजा बिधिहि और न सक्यो बनाइ ॥ १ ॥ नाम
रहै तिह तरुनि को (सू०पं० ११३७) स्त्रीमनि माल मसीय ।
मनसा बाचा करमना बसि करि राख्यो पीय ॥ २ ॥ पूत
तहाँ इक शाहु को नाम राइ महबूब । रूप सील सुचि ब्रतन
में गड़्यो बिधातें खूब ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ अमित तरुनि को
रूप बिराजै । जिह मुख निरख चंद्रमा लाजै । सुंदर सम

पीनेवालों को लूट-लूटकर ले गया । उसने मुहरें निकाल लीं और ठीकरियाँ
भर दीं । आज तक उस देश में उस साधु को माना जाता है और यह बात
सारे जगत् में प्रसिद्ध हो गई है ॥ १२ ॥ ॥ दोहा ॥ उसके अधिकारी ने
बादशाह को बनाकर लिखा कि एक फ़कीर के शाप से सब धन गँवाया जा
चुका है ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ छब्बीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २२६ ॥ ४३०० ॥ अफजू ॥

दो सौ सत्ताईसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ मालवा देश में मदनसेन नामक एक राजा था, जिसे
बनाकर फिर विधाता वैसा अन्य कोई नहीं बना सका ॥ १ ॥ उसकी
स्त्री का नाम मणिमालमती था, जिसने मन-वचन एवं कर्म से प्रिय को
वश में कर रखा था ॥ २ ॥ वहाँ एक शाह का पुत्र था जिसका नाम
महबूबराय था । उसे शील, शुचिता और व्रत में विधाता ने खूब बनाया
था ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ उस युवक का रूप अपरिमित था और उसका मुख
देखकर चन्द्रमा भी लज्जित होता था । उसके समान कोई भी सुन्दर नहीं

ताँकी कोऊ नाही । रूपवंत प्रगट्यो जग माही ॥ ४ ॥ जब
रानी वह कुअरि निहार्यो । इहै आपने ह्रिदै बिचार्यो ।
कै इह आजु बोलि रति करियै । कै उर मारि कटारी
सरियै ॥ ५ ॥ लहि सहचरि इक हितु बुलाई । चित की
बिथा ताँहि समझाई । मेरी कही सीत सौ कहियहु । जो
मुरि आस जियन की चाहियहु ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ मुनि
आतुर बच कुअरि के सखी गई तह धाड़ । ताँहि भले
समुझाइकै इह उहि दयो मिलाइ ॥ ७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ मन
भावन्ता सीतु कुअरि जब पाइयो । लखि छवि लोल अमोल
गरे सों लाइयो । लपटि लपटि दोऊ जाँहि तरुन मुसकाइकै ।
हो कामकेल की रीति प्रीति उपजाइकै ॥ ८ ॥ तब लौ राजा
ग्रहि रानी के आइयो । आदर अधिक कुअरि करि मदरा
प्याइयो । गिरयौ मत ह्वै त्रिपति खाट पर जाइकै । हो
तबही तुरतहि लिय त्रिय जार बुलाईकै ॥ ९ ॥ त्रिप की
छतिया ऊपर अपनी पीठ धरि । कामकेल द्रिड़ किय निजु
सीतु बुलाइ करि । मदरा के मद छके न कछु राजै लह्यो ।
हो लेत पस्वारे भयो न कछु मुख तें कह्यो ॥ १० ॥ कामभोग

था । वही विश्व में प्रकट रूपवान था ॥ ४ ॥ रानी ने जब उस कुँवर को
देखा तो अपने चित्त में विचार किया कि या तो इसे बुलाकर रतिक्रिया की
जाय अथवा मैं कटार भोंककर मर जाऊँ ॥ ५ ॥ उसने अपनी हितैषिणी एक
सखी बुलाई और उसे अपनी व्यथा कह सुनाई । यदि तुम मुझसे जीवित
रहने की आशा करती हो तो मेरा संदेशा प्रिय से जा कहो ॥ ६ ॥
॥ दोहरा ॥ कुँवरि के आतुरतापूर्ण वचन सुनकर सखी दौड़कर वहाँ गई और
उसे भली प्रकार समझाकर इसको उससे मिला दिया ॥ ७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब
कुँवरि ने मनभावन मित्र पाया तो उसकी लालिमापूर्ण छवि को देखकर उसे
गले से लगाया । दोनों तरुण कामकेलि की रीति को निभाते हुए लिपट-
लिपटकर मुस्कुरा रहे थे ॥ ८ ॥ तब तक राजा रानी के महल में आया ।
कुँवरि ने उसे आदरपूर्वक मदिरा-पान करवाया । राजा मस्त हो पलंग
पर गिर पड़ा और उसी समय स्त्री ने तुरन्त अपने प्रेमी को बुला लिया ॥ ९ ॥
राजा की छाती पर अपनी पीठ टिकाकर अपने मित्र को बुलाकर उसने
दृढ़तापूर्वक केलिक्रीड़ा की । राजा ने मदिरा पिये होने के नाते कुछ भी
नहीं कहा, प्रत्युत करवटें बदलता रहा ॥ १० ॥ स्त्री ने कामभोग कर प्रिय
को उठा लिया । मूर्ख राजा कुछ भी भेद नहीं जान सका । इस प्रकार

करि त्रिय पिय दयो उठाइकै । सूड़ राव कछु भेद न सकियो
पाइकै । इह छल छैली छैल सु छलि पति को गई । हो सु
कवि स्याम इह कथा तबै पूरन भई ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ सताईसवों चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २२७ ॥ ४३११ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ अठाईसवों चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ उत्तर देस त्रिपति इक रहई । बीरजसेन
जाको जग कहई । बीरजमती तवन बर नारी । जानक
रामचंद्र की प्यारी ॥ १ ॥ अधिक कुअर को रूप बिराजै ।
रति पति की रति की छबि लाजै । जो अबला ता को लखि
जाई । लाज साज तजि रहत बिकाई ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ एक
शाह की पुतिका जाको रूप अपार । निरखि (मू० प्र० ११३८)
मदन जाको रहै न्याइ चलत सिर झारि ॥ ३ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ एक दिवस वहु राइ अखेट सिधाइयो । ऊच
धौलहर ठाढ़ि कुअरि लखि पाइयो । तरुनि शाहु की सुता रही
उरझाइकै । हो हेरि त्रिपति की प्रभा सु गई बिकाइकै ॥ ४ ॥

वह छलना स्त्री पति को छल गई और श्याम कवि के कथनानुसार यह कथा
पूर्ण हुई ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ सत्ताईसवों
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २२७ ॥ ४३११ ॥ अफजू ॥

दो सौ अठ्ठाईसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ उत्तर देश में वीर्यसेन नामक एक राजा रहता था, उसकी
स्त्री वीर्यमती मानों सीता के समान थी ॥ १ ॥ उस कुँवर का रूप अत्यधिक
सुन्दर था और उसके सामने कामदेव की रति का रूप भी लज्जित होता
था । जो स्त्री उसको देख लेती थी वह सब लज्जा आदि छोड़कर उसी पर
बिक जाती थी ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ एक शाह की पुत्री थी जिसके रूप-
सौंदर्य को देखकर कामदेव भी सिर झुकाकर चलता-बनता था ॥ ३ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ एक दिन वह राजा आखेट खेलने गया और उस शाह की पुत्री
ने उसे ऊँचे महल पर चढ़कर देखा । शाह की पुत्री उसे देखकर उलझ गई
और राजा की प्रभा देखकर उस पर बिक गई ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ वहीं

॥ चौपई ॥ तही ठाँहि इक चरित बनाइसि । डोरि बडी की
गुडी चड़ाइसि । ता मै इहै संदेश पठावा । भेत चित्त को
त्रिपहि जतावा ॥ ५ ॥ ॥ कवित्त ॥ ताजी कूँ तुराइ कै असाड़ी
ओड़ि राह पौणा जालिम जवाल दुहाँ नैनाँ नूँ नचावणा ।
अंजन दिवाइ बाड़ बिसिख चड़ाइकै खुसाली नूँ बड़ाइ नाले
कैफाँ नूँ चड़ावणा । बदन दिखाणा सानूँ छाती नालि लाणा
अते नैणाँनालि नैण जोड़ि वेहा नेहु लावणा । बाचे पत आणा
मै ही मिले व्याँ न जाना साईँ यारो जी असाडे पास आवणा
ही आवणा ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ गुडीया बिखै संदेश लिखि
दीनो कुअरि पठाइ । तनिक बार लागी नही त्रिपहि पहुँची
जाइ ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ पतिया छोरि लखी प्रिय कहाँ ।
इह पठ्यो तरुनी लिखि उहाँ । या गुडिया पर बैठहु धाई ।
चित्त न करहु चित्त मै राई ॥ ८ ॥ कै गुडिया उपर चड़ि
आवहु । ना तर टाँस तरे करि जावहु । जो तुहि गिरन
धरत पर देखँ । स्वरग साच्च करि बास न लेऊँ ॥ ९ ॥
॥ दोहरा ॥ सात पच्छ सत सपत पितु परै नरक कुल सोइ ।
जौ गुडिया ते भूमि परि पतन तिहारो होइ ॥ १० ॥
॥ चौपई ॥ तुम याकौ पिय डोरि न जानहु । सगूआ कै याकौ

खडी हो उसने एक चरित्र बनाया और एक लंबी डोरीवाली पतंग उड़ा दी ।
उसके साथ संदेश भेज दिया और राजा को मन का रहस्य बता दिया ॥ ५ ॥
॥ कवित्त ॥ घोड़ा दौड़ाकर हमारी ओर आओ और अपनी जालिम आँखों
को नचाना । अंजन डालकर बाण रूपी आँखों को चढ़ाकर मेरी प्रसन्नता
बढ़ाना और खूब मद्य-पान करना । मुख दिखाना, हमें छाती से लगाना
और नयनों से नयन जोड़कर हमें स्नेहपूर्वक छाती से लगाना । पत्र पढ़कर
आना और हमसे मिले बिना न जाना । हे प्रिय ! मेरे पास तो अवश्य
आना ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ कुँवरि ने पतंग में संदेश लिखकर भेज दिया जो
जरा-सी हवा लगते ही राजा के पास जा पहुँची ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ तरुणी
ने पत्र में यह लिखकर वहाँ भेजा कि हे राजा ! मन में चिन्ता न करो और
इस पतंग पर बैठ जाओ ॥ ८ ॥ या तो तुम गुडिया पर सवार हो जाओ अथवा
इसे टाँगों में दबा लो । यदि मैं तुम्हें धरती पर गिरने दूँ तो मैं नर्क में
जाऊँ ॥ ९ ॥ ॥ दोहा ॥ यदि तुम पतंग से गिर पड़ो तो मेरे माता-पिता
के सात वंश नर्क में चले जायँ ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रिय ! तुम इसे मात

पहिचानहु । तुमरो बाल बिघन नहि हवैहै । या मै देखि
 पाव धरि लैहै ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ मंत्र सकति ते मै किया
 सगुआ याहि बनाइ । शंक त्यागि करि आइयै सुनु राजन के
 राइ ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ जब राजै ऐसी सुनि पाई । चित
 की शंक सगल बिसराई । हय ते उतरि डोरि पर चढियो ।
 आनंद अधिक चित्त मै बढियो ॥ १३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ कुअरि
 कुअरि के तीर पहुँच्यो आइकै । काम भोग को कियो हरख
 उपजाइकै । शाह तब लगे द्वार पहुँच्यो आइ करि । हो तब
 तरुनि सौ बात कही प्रिय नैन भरि ॥ १४ ॥ अब त्रिय तुमरो
 शाह मैं गहि मारिहै । इही धौलहर ऊपर ले (प्र० प्र० ११३६)
 मुहि डारिहै । टूक टूक हवै सभै पसुरियाँ जाइहै । हो तुहि
 भेटे हम आजु इहै फल पाइहै ॥ १५ ॥ त्रिप चिंता चित
 भीतर कछू न कीजियै । निरखि हमारो चरित अबै ही
 लीजियै । बार तिहारो एक न बाँकन पाइहै । हो हम सो
 भोग कमाइ हसत ग्रहि जाइहै ॥ १६ ॥ मंत्र सकति हुंडी
 आतिह कियो बनाइकै । पकरि कान ले पति को दियो
 दिखाइकै । बहुरि मेख भे बाँध्यो त्रिपहि बनाइ कहि । हो
 बहुरि तवन को कियो सुदेस उठाइ करि ॥ १७ ॥ शाह निरख

डोरी मत समझो बल्कि इसे झूला समझो । तुम इस पर पाँव रखकर देखो
 तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं होगा ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ मैंने मंत्र-शक्ति से
 यह झूला बनाया है, इसलिए हे राजन् ! तुम शंका को त्यागकर चले
 आओ ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब राजा ने यह पाया तो चित्त की समस्त
 शंकाओं का त्याग कर दिया । वह घोड़े से उतरकर डोरी पर सवार हो
 गया और उसके मन में आनन्द बढ़ गया ॥ १३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ वह कुँवर
 उस कुँवरि के पास आ पहुँचा और उन्होंने हर्षपूर्वक कामक्रीड़ा का उपभोग
 किया । तब शाह भी दरवाजे पर आ पहुँचा, यह देखकर तरुणी से आँखों
 में जल भरकर प्रिय ने कहा ॥ १४ ॥ हे प्रिये ! तुम्हारा शाह अब मुझे पकड़
 कर मार डालेगा और इसी महल से नीचे फेंक देगा । मेरी सभी पसलियाँ
 टूट जायेंगी और तुम्हारे साथ रमण करने का यही फल मुझे आज
 मिलेगा ॥ १५ ॥ राजन् ! तुम चिन्ता मत करो और मेरा प्रपंच अभी देख
 लेना । तुम्हारा एक भी बाल बाँका नहीं होगा और तुम हमसे भोग कमा
 कर अभी हँसते हुए घर जाओगे ॥ १६ ॥ मंत्र की शक्ति से उसे मेंढा बना
 दिया और कान से पकड़कर पति को दिखा दिया । फिर राजा को खूँटे से

ते गुडिया दई चड़ाइकै । करिकै संग स्वार दयो त्रिपु डाइकै ।
 पियहि निरखि ते मीत दयो पहुँचाइ घर । हो भेद अभेद न
 कछु जड़ सक्यो बिचार करि ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ शाहु
 सुता निरखिति पतिहि गुडिया दई चड़ाइ । ताँ पर बधे
 बजंत थे बाजत भए बनाइ ॥ १९ ॥ बिहसि नारि निज नाथ
 सो कह्यो पियहि पहुँचाइ । मित्र हमारो शाह इह दए
 दसामो जाइ ॥ २० ॥ ॥ चौपई ॥ इह छल मीत सदन
 पहुँचायो । ता को बार न बाँकन पायो । निजु पति भेद
 अभेद न चीनो । कबि प्रसंग पूरन तब कीनो ॥ २१ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ अठाईसवों चरित्र
 समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ २२८ ॥ ४३३२ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ उन्तीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ पलवल देस छत्तिनी रहै । बुद्धिमती
 जाको जग कहै । जब तन ताँहि बिरधता आइस । तब तिन
 एक चरित्र बनाइस ॥ १ ॥ द्वै संदूक जूतियन भरे । मुहरन

बाँध दिया और फिर उसे अपने देश में भेज दिया ॥ १७ ॥ शाह के देखते-
 देखते उसने पतंग उड़ा दी और उस पर राजा को सवार कर दिया । अपने
 पति के देखते-देखते मित्र को पहुँचा दिया और वह जड़ (पति) कुछ भी भेद-
 अभेद न जान सका ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ पति के देखते-देखते शाह की पुत्री
 ने पतंग उड़ा दी । उस पर जो वाद्य बँधे थे वे बजने लगे ॥ १९ ॥ प्रियतम
 को पहुँचाकर स्त्री ने अपने पति से हँसते हुए कहा कि हमारा तो राजा मित्र
 है जो नगाड़े बजा रहा है ॥ २० ॥ ॥ चौपाई ॥ इस छल से मित्र को घर
 पहुँचा दिया और उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ । उसके अपने पति ने
 तनिक भी भेद-अभेद को नहीं पहचाना और इस प्रकार कवि ने यह प्रसंग
 पूर्ण किया ॥ २१ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ अठाईसवों
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २२८ ॥ ४३३२ ॥ अफजू ॥

दो सौ उन्तीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पलवल नगर में बुद्धिमती नामक एक क्षत्राणी रहती थी ।
 जब उसका तन वृद्ध हो गया तो उसने एक चरित्र दिखाया ॥ १ ॥ दो संदूक

के कुल सुनत उचरे । पुत्र पउत ता दिन ते ताके । उदित
 भए सेवा कह वाके ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ जु कछु कहै प्रिय
 मानही सेवा करहि बनाइ । आइसु मै सभही चलै दरबु हेत
 ललचाइ ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ जो आग्या त्रिय करें सु मानै ।
 जूतिन को मुहरें पहिचानै । आजु कालि बुढिया सरि जैहै ।
 सभ ही दरबु हमारो ह्वैहै ॥ ४ ॥ ॥ जब तिह निकटि कुटुंब
 सभावै । तह बुढिया यौ बचन सुनावै । जियत लगे इह
 दरबु हमारो । बहुरि लीजियहु पूत तिहारो ॥ ५ ॥ ॥ जब वह
 त्रिया रोगनी भई । काजी कुटवारहि कहि गई । करम धरम
 जो प्रथम करैहै । सो सुत बहुरि खजानो लैहै ॥ ६ ॥ (मू० प्र० ११४०)
 ॥ दोहरा ॥ करम धरम सुत जब लगे करै न प्रथम बनाइ ।
 तब लौ सुनत न दीजियहु हमरो दरबु बुलाइ ॥ ७ ॥
 ॥ चौपई ॥ कितिक दिनन बुढिया सरि गई । तिनके ह्निदन
 खुशाली भई । करम धरम जो प्रथम करैहै । पुनि इह बाँटि
 खजानो लैहै ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ करम धरम ताके करे अति
 धनु सुनत लगाइ । बहुरि संदूक पन्हीन के छोरत भे मिलि
 आइ ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ इह चरित त्रिय सेव कराई ।

जूतियों के भरकर कहा कि ये सब मुहरों से भरे हैं । उस दिन से उसके
 पुत्र-पौत्र सेवा में हाजिर रहने लगे ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ वह जो कहती थी
 उसे प्रिय मानते थे और खूब उसकी सेवा करते थे । पैसे के लालच में सभी
 उसकी आज्ञा मानने के लिए उठ चलते थे ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह स्त्री जो
 आदेश करती थी उसे सब मानते थे और जूतियों को मुहरें मानते थे । वे
 सोचते थे कि बुढ़िया तो आज-कल में मर जायगी और तब यह सारा द्रव्य
 हमारा हो जायगा ॥ ४ ॥ ॥ जब सारा कुटुंब उसके पास एकत्र होता था तो
 वह बुढ़िया ऐसे कहा करती थी । मैं जब तक जीवित हूँ तो यह द्रव्य मेरा
 है और पुत्रो ! मरने के बाद यह सब तुम्हारा हो जायगा ॥ ५ ॥ ॥ जब वह स्त्री
 बीमार हुई तो वह काजी-कोतवाल के पास गई और कहने लगी कि जो पुत्र
 मेरा धर्म-कर्म करेगा उसी को खजाना मिलेगा ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ जब तक
 मेरा धर्म-कर्म अच्छी तरह से न कर लें तब तक किसी पुत्र को बुलाकर मेरा
 द्रव्य मत देना ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ कुछ दिनों बाद बुढ़िया मर गई और वे
 (पुत्र-पौत्र) सब खुश हो गए कि जो धर्म-कर्म पहले करेगा वही खजाने का
 हकदार हो जायगा ॥ ८ ॥ ॥ दोहा ॥ पुत्रों ने काफ़ी धन लगाकर धर्म
 किया और फिर आकर जूतों का संदूक खोला ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस

मुनत दरबु कौ लोभ दिखाई । तिन के अंत न कछु कर आयो । छल बल अपनो मूँड मुँडायो ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ उनतीस चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ २२६ ॥ ४३४२ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ तीसवों चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ मालनेर के देस मै मरगजपुर एक गाँउ । शाह एक तिह ठाँ बसत भदनशाह तिन नाँउ ॥ १ ॥ मदनमती ताकी त्रिया जाको रूप अपार । आपु मदन ठठके रहै तिह रति रूप बिचार ॥ २ ॥ चेलाराम तहाँ हुतो एक शाह को पुत । सगल गुनन भीतर चतुर सुंदर मदन सरूप ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ चेलाराम जब त्रिय लहियो । ता को तबै मदन तन गहियो । तरुनि तरिन ते रहत लुभाई । निरखि सजन छबि रही बिकाई ॥ ४ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ दूती पठै ताहि ग्रहि बोलि पठाइयो । कामभोग तासौ बहु भाँति कमाइयो । सोइ शाह जब जाइ त ताँहि बुलावई । हो ताँहि

प्रपंच से सब पुत्रों को धन का लालच दिखाकर उसने खूब सेवा कराई । उनके हाथ अंत में कुछ नहीं लगा और छल-बल से उन्होंने स्वयं धोखा खाया ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ उनतीसवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २२६ ॥ ४३४२ ॥ अफजू ॥

दो सौ तीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहरा ॥ मालनेर देश में मरगजपुर नामक एक गाँव था, वहाँ मदनशाह नामक एक साहूकार रहता था ॥ १ ॥ अपार स्वरूपवाली उसकी स्त्री मदनमती थी, -जिसके रूप को देखकर कामदेव भी उसे रति मानकर ठिठक जाता था ॥ २ ॥ एक अन्य साहूकार का पुत्र चेलाराम वहाँ था जो स्वयं सब गुणों में पूर्ण और कामदेव के समान रूपवाला था ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ चेलाराम ने जब स्त्री को देखा तो तभी वह कामासक्त हो उठा । तरुणी भी उस युवक पर लुब्ध थी और सजन की छवि देख उस पर बिकी हुई थी ॥ ४ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ एक दूती भेजकर उसे घर बुलाया और विभिन्न प्रकार से उससे कामक्रीड़ा की । जब शाह सो जाता तो वह उसे बुलाता

भए रस रीति प्रीति उपजावई ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ तरुनी
उठत शाह हू जाग्यो । पूछन ताहि आपु यौ लाग्यो । जात
हुंती कह तरुनि बतावहु । हमरे चित्त कौ भरमु मिटावहु ॥ ६ ॥
सुनहु शाह मै बचन उचारो । तुमरे चित को भरम उतारो ।
मोहू टूटि कैफ जब गई । लेत तबै पसवारन भई ॥ ७ ॥
॥ दोहरा ॥ ऐस निसा करि शाह की दीनो बहुरि सवाइ ।
तुरतु मीत पै चली गई यार भजी लपटाइ ॥ ८ ॥ १ ॥ (सू० प्र० ११४९)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ तीसवों चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २३० ॥ ४३५० ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ इकतीस चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ देस बावनी के रहै मालव नाम गवार ।
मैनकला ताकी तरुनि जाको रूप अपार ॥ १ ॥ दीरघ देह
ता को रहै पुशट अंग सभ ठौर । दिरघ पुशट ता सम तरुनि
दुतिय न जग मै और ॥ २ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ फौजदार इक
गाँउ तवन के आइयो । प्यास घाम तें अधिक तवन दुख

था और रसपूर्वक उससे रमण किया करता था ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ तरुणी के
उठते ही शाह भी जग गया और उससे पूछने लगा कि तुम कहाँ जा रही हो ?
मुझे बताओ और मेरा भ्रम निवारण करो ॥ ६ ॥ हे शाह ! सुनो ताकि
तुम्हारे चित्त का भ्रम निवारण हो । मेरा अफीम का नशा जब समाप्त हो
गया है तो मैं उसे लेने पंसारी के पास जा रही हूँ ॥ ७ ॥ ॥ दोहा ॥ इस
प्रकार शाह को निरुत्तर कर सुला दिया और स्वयं तुरन्त मित्र के पास
जाकर उससे लिपटकर रमण करने लगी ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ तीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २३० ॥ ४३५० ॥ अफजू ॥

दो सौ इकतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ बावनी देश में मालव नामक एक ग्रामीण रहता था,
जिसकी स्त्री मैनकला अपार रूप वाली थी ॥ १ ॥ उसका शरीर बड़ा था
और अंग पुष्ट थे । उसके समान मुडौल और पुष्ट स्त्री संसार में अन्य कोई
नहीं थी ॥ २ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ उनके गाँव में एक फौजदार आया जो प्यास
और गर्मी से अत्यन्त व्याकुल था । उस ग्रामीण ने चाय-पानी उसे दिया

पाइयो । पानि चहियो जटिया तिन दयो उठाइकै । हो
निरख तवनि को रूप रह्यो उरझाइकै ॥ ३ ॥ चित मै किया
बिचार जु याको पाइयै । एक पुत्र याते भजिकै उपजाइयै ।
अधिक बली सो हवैहै सभ जग जानियै । हो ताके डील
समान न और बखानियै ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ फौजदार इक
सहचरी ताके दर्ई पठाइ । निशा करी धनु दै धनो भेद सकल
समुझाइ ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ सुनत सहचरी बचन तहाँ कौ
जात भी । भाँति भाँति सों ताहि तरुनि समुझात भी ।
पलटि पियहि इह भाँत कह्यो समुझाइकै । हो मिलिहै तुम
सौ आजु सु राती आइकै ॥ ६ ॥ फौजदार पर नारि वहै
अटकत भई । अरध रात्रि तिह तीर मिलन के हित गई ।
फूल पान मद पान सेज सुभ कौ रच्यो । हो भजी सिगर निसु
त्रिया सु रति ऐसी मच्यो ॥ ७ ॥ निसु सिगरी को केल
तरुनि द्रिड़ पाइकै । बिनु दामन के दए रही उरझाइकै ।
कह्यो बिहसि पिय मैं इक चरित दिखाइहौ । हो निजु नाइक
कौ मारि तिहारे आइहौ ॥ ८ ॥ दुहँ हाथ द्रिड़ बदन धरत
भी जाइकै । बाइ भई मुर गयो दर्ई उडाइकै । मूँदि मूँदि

और वह उस स्त्री का रूप देखकर उसी में उलझकर रह गया ॥ ३ ॥ उसने
चित्त में विचार किया कि इससे रमण कर एक पुत्र पैदा किया जाय ।
वह बली सारे संसार में जाना जायगा और उसके डील-डौल के समान अन्य
कोई नहीं होगा ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ फौजदार ने उसके पास एक सखी को
भेजा और उसको अपार धन देकर समझाया और प्रसन्न किया ॥ ५ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ सखी वचन सुनकर उस ओर चल पड़ी और उसने भाँति-भाँति
प्रकार से तरुणी को समझाया । वापस पलटकर उसने प्रिय से कहा कि
वह आज रात को तुमसे मिलेगी ॥ ६ ॥ फौजदार पर वह नारी आसक्त
हो गई और आधी रात को उससे मिलने के लिये आई । फूल, पान, शराब
आदि से शुभ शय्या को संवाशा गया और ऐसी रतिक्रिया की धूम मची कि
सारी रात रतिक्रीड़ा चलती रही ॥ ७ ॥ सारी रात क्रीड़ा के लिए दूढ़
प्रिय को पाकर तरुणी तो बिना दामों के बिक कर उलझी रही । उसने
हँसकर कहा कि हे प्रिय ! मैं एक प्रपंच दिखाऊँगी और अपने पति को मार
कर तुम्हारे साथ रहूँगी ॥ ८ ॥ दोनों हाथों को उसने (पति के) मुँह पर
रख दिया और चिल्लाने लगी कि मेरे स्वामी के पेट में हवा भर गयी है ।

मुख रखित कहाँ करत हैं । हो देखहु लोग सभाइ पिया
 मुर मरत हैं ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ ज्यों उह चहत कि हाइ
 पुकारै । मोरि आनि कोऊ प्राण उबारै । त्यों त्रिय मूँदि
 मूँदि मुख लेई । निकस न स्वासन बाहर देई ॥ १० ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ स्वासाकुल हवै भूमि मूरछन हवै गिर्यो ।
 ग्राम बासियन आनि धर्यो आंखिन हिर्यो । जियत कछु
 त्रिय जानि गई लपटाइकै । हो मलि दल चूत्तन सौ पिय दयौ
 खपाइकै ॥ ११ ॥ अरध दुपहरी जिन कर पियहि सँघारियो ।
 ग्राम बासियन ठाढे चरित निहारियो । मूँदि मूँदि मुख नाक
 हहा करि कै रही । हो बात रोग पति सरे न बैद मिल्यो
 दई ॥ १२ ॥ (मू० प्र० ११४२) ॥ चौपई ॥ सभहिन देखत पति
 को मार्यो । ग्राम बासियन कछु न बिचार्यो । पति के
 ब्योग सदन तजि गई । ताके रहत जाइ ग्रहि भई ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मन्त्री भूप संवादे दोइ सौ इकतीस चरित्र
 समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ २३१ ॥ ४३६३ ॥ अफजू ॥

वे अपना मुँह बन्द किये रखे हैं । लोगो ! देखो मेरा पति मर रहा है ॥ ९ ॥
 ॥ चौपाई ॥ जैसे-जैसे वह हाय-हाय पुकारता था कि कोई आकर मेरे प्राण
 बचाए वैसे-वैसे वह उसका मुँह बंद कर रही थी और उसकी साँसों को बाहर
 नहीं निकलने दे रही थी ॥ १० ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ स्वासाकुल हो वह मूर्च्छित
 हो भूमि पर गिर पड़ा जिसे ग्रामवासियों ने भी अपनी आँखों से आ देखा ।
 स्त्री उसे कुछ जीवित मानकर उससे आ लिपटी और उसे अपने नितम्बों से
 दबाकर पूरी तरह मार डाला ॥ ११ ॥ आधी दुपहर में उसने प्रिय को मार
 डाला और ग्रामवासियों ने भी इस चरित्र को देखा । वह उसका नाक-मुँह
 मूँदकर हाय-हाय करने लगी कि वायुरोग से मेरा पति मर गया है और मुझे
 कोई वैद्य नहीं मिल पाया ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ सबके देखते-देखते पति
 को मार डाला और ग्रामवासियों को तनिक भी पता न लग पाया । अब
 पति के वियोग में वह घर छोड़कर चली गई और उस (फौजदार) के घर में
 रहने लगी ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ इकतीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २३१ ॥ ४३६३ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ बत्तीस चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ इक राजा मुलतान को बिप्रछल तिह नाम । बिरध देह ता को रहै जानत सिंगरो ग्राम ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ ताके धाम पुत्र नहि भयो । राजा अधिक बिरध ह्वै गयो । एक नारि तब और बयाही । अधिक रूप जाके तन आही ॥ २ ॥ स्त्री बड ड्याछमती जग कहै । जिह लखि मदन थकित ह्वै रहै । सो रानी तरुनी जब भई । मदन कुमार निरखि कर गई ॥ ३ ॥ ता दिन ते हरि अरि बस भई । ग्रहि की भूलि सकल सुधि गई । पठै सहचरी तांहि बुलायो । कामभोग रुचि भानि कमायो ॥ ४ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ तरुन पुरख कौ तरुनि जदिन त्रिय पावई । तनिक न छोर्यो चहत गरे लपटावई । निरखि मगन ह्वै रहत सजन के रूप मै । हो जुनु धनु चलयो हराइ जुआरी जूप मै ॥ ५ ॥ बिदधछल तब लगै पहुच्यो आनि करि । रानी लयो दुराइ मित्त हित भानि करि । तरे खाट के बांधि ताहि द्रिड़ राखियो । हो टरि आगे निजु पति को इह बिधि

दो सौ बत्तीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ मुलतान का वृहदक्षत्र नामक एक राजा था । उसका शरीर वृद्ध हो गया था इसे सारा गाँव जानता था ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा अत्यधिक वृद्ध हो गया पर उसके घर कोई पुत्र पैदा नहीं हुआ । तब उसने एक अन्य स्त्री से विवाह किया । जिसके तन का सौंदर्य अत्यधिक था ॥ २ ॥ संसार उसे श्रीवृहदाक्षमती के नाम से जानता था और कामदेव भी उसे देखकर लजाता था । जब वह रानी और जवान हुई तो उसे मदनकुमार ने देख लिया ॥ ३ ॥ उसी दिन से वह कामासक्त हो गई और उसे घर की सारी होश भूल गई । उसे उसने सखी भेजकर बुलाया और रुचिपूर्वक काम-क्रीड़ा की ॥ ४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तरुण स्त्री को जिस दिन तरुण पुरुष मिल जाता है तो वह उसे तनिक भी नहीं छोड़ पाती और उसके गले लिपट जाती है । वह सजन के रूप में ऐसी मगन हो जाती है मानो जुआड़ी जुआखाने में धन हारकर चिंतामग्न चला जा रहा हो ॥ ५ ॥ तब तक राजा वृहदक्षत्र आ पहुँचा । रानी ने अपने मित्त को छुपा लिया । उसे पलंग के नीचे बाँध स्वयं आगे बढ़कर पति से यह कहा ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजन् ! लगता

भाखियो ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ जनियत राव बिरध तुम भए ।
खिलत अखेट हुते रहि गए । तुम कौ आन जरा गहि लीनो ।
तांते तुम सभ कछु तजि दीनो ॥ ७ ॥ सुनि त्रिय मैं न बिरध
ह्वै गयो । जरा न आनि बियापक भयो । कहैं तु अबही
जाउँ शिकारा । मारौ रोड़ रीछ झंखारा ॥ ८ ॥ यौ कहि
बचन अखेटक गयो । रानी टार जार कौ दयो । निसु भे
खेलि अखेटक आयो । भेद अभेद जड़ कछू न पायो ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ बत्तीस चरित्र
समापतम सत् सुभम सत् ॥ २३२ ॥ ४३७२ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ तेतीस चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ शहिर बिचच्छनपुर बिखै सिंघ बिचच्छन
राइ । मती बिचच्छन भारजा जाँहि बिचच्छन काइ ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ सरवर (म०प्र० ११४३) कूप जहाँ फुलवारी । बाइ
बिलास भली हितकारी । सरिता निकटि नरबदा बहै । लखि
छबि इंद्र थकित ह्वै रहै ॥ २ ॥ ॥ सवैया ॥ बाल हुती

है, तुम वृद्ध हो गए हो जिससे अब तुम शिकार खेलने से भी रह गए हो ।
अब तुम्हें वृद्धावस्था ने ग्रस लिया है, इसी से तुमने सब कुछ त्याग दिया
है ॥ ७ ॥ हे स्त्री ! सुनो, न तो मैं बूढ़ा हुआ हूँ और न मुझे बुढ़ापे ने दबा
रखा है । यदि तुम कहो तो मैं अभी शिकार को जाता हूँ और रीछ आदि
मारता हूँ ॥ ८ ॥ यह कहकर वह आखेट खेलने गया और रानी ने अपने
मित्र को भेज दिया । राजा रात भर शिकार खेलकर वापस पलटा और
इस प्रकार वह जड़ मूर्ख कोई भी रहस्य न जान पाया ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ बत्तीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २३२ ॥ ४३७२ ॥ अफजू ॥

दो सौ तेतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहरा ॥ विलक्षणपुर शहर में विलक्षणसिंह नामक एक राजा
था । उसकी पत्नी विलक्षणमती थी जिसकी काया विलक्षण थी ॥ १ ॥
॥ चौपाई ॥ जहाँ सरोवर, कुआँ और उद्यान था, वहाँ सुन्दर विलासपूर्ण हवा
चल रही थी । पास में नर्मदा नदी बहती थी । इन्द्र भी छवि देखकर
थक-थक जाता था ॥ २ ॥ ॥ सवैया ॥ वृषभानुकला एक सुन्दरी थी जिसका

ब्रिखभान कला इक रूप लसै जिह को जग भारी । खेर
 अखेटक आवत हूँ इन राइ कहै वहु नारि निहारी । ऐंचि
 बर्यो गहिकै बहियाँ तिन बात सुनी इन राजदुलारी । कोप
 भरी बिनु आगि जरी मुख न्याइ रही न उचावत नारी ॥ ३ ॥
 ॥ चौपई ॥ तासौ ब्याहु त्रिपति जब कियो । भाँति भाँति
 ता को रसु लीयो । रैन दिवस त्रिय धाम बिहारै । और
 रानियन को न निहारै ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ तब रानी बिचछनमती
 कोप भरी मन साहि । पीत बरन तन को भयो पान चबावत
 नाहि ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ राजा सहित आजु हनि डरिहो ।
 नाथ जानि जिय नैक न टरिहो । इन दुहूँ मारि पूत त्रिप
 कहौ । पानी पान तबै मुख दैहौ ॥ ६ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ दाबि
 खाट तर गई गुडान बनाइकै । निजु नाथहि भोजन मै मकरी
 खाइकै । रीझि रीझि वह मर्यो तब त्रिय यौ कियो ।
 हो जारि बारि करि नाथ सवत कह गहि लियो ॥ ७ ॥ इन
 राजा के गुडियन कीया बनाइकै । ताते मुर पति मर्यो
 अधिक दुख पाइकै । या कुतीया की अवही क्रिआ उधारियौ ।

संसार में स्वरूप अत्यन्त छविमान था । शिकार खेलने आए इस राजा ने
 उस स्त्री को देखा । उसने बाँह पकड़कर इसको अंग से लगा लिया और
 वह राजकुमारी उसकी बातों को सुनती रही । वह क्रुद्ध हो बिना आग के
 ही जल उठी और बिना कुछ बोले मुँह नीचे किये खड़ी रही ॥ ३ ॥
 ॥ चौपाई ॥ राजा ने जब उससे विवाह किया तो विभिन्न प्रकार से
 ससास्वादन किया । वह रात-दिन उसी स्त्री के घर में विहार करता था
 तथा अन्य शानियों की तरफ़ देखता भी नहीं था ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ तब
 रानी विलक्षणमती मन में क्रुद्ध हो उठी । उसका रंग पीला पड़ गया और
 उसने पान चबाना भी छोड़ दिया ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ आज राजा-समेत
 इसे मार डालूंगी और पति मानकर तनिक भी नहीं डरूंगी । इन दोनों
 को मारकर पुत्र को राजा बना दूंगी और तभी पानी और पान मुँह से
 लगाऊंगी ॥ ६ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ जब उसने गड़हा पलंग के नीचे खोदकर
 राजा का बुत दबा दिया और राजा को भोजन में मकड़ी खिला दी (और
 मार डाला) । जब वह तड़फ़-तड़फ़कर मरा तो रानी ने सौतन को पकड़
 लिया ॥ ७ ॥ इसने राजा का गुड्डा बनाकर (तन्त्रविद्या से राजा को मारने
 के लिए) दबाया है । इसी से मेरा पति अत्यधिक दुख पाकर मरा है ।
 मैं इस कुतिया की कश्तूत अभी सबके सामने रखूंगी और इसका सिर मूँडकर

हो प्रथम मूँडिके मूँड बहुरि इह मारिहौ ॥ ८ ॥ लए प्रजा
सभ संग तही आवत भई । जहाँ खाट तट गाडि दोऊ गुडियन
गई । सभन लहित खन भूमि लए ते काढिके । हो मूँडि
सवति को मूँड नाक पुनि बाढिके ॥ ९ ॥ मूँडि मूँडि कटि
नाक बहुरि तिह मारियो । उहि बिधि पति हनि इह छल
याँकह टारियो । चंचलान के भेद नाहि किनहूँ लह्यो ।
हो शास्त्र सिञ्चितर बेद पुरान न मै कह्यो ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ तेतीस चरित्र
समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २३३ ॥ ४०१० ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ चौतीस चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ शहिर टंकटोडा बिखै त्रिपतिकला इक
बाल । कटि जाकी म्रिगराज सी म्रिग सै नैन बिसाल ॥ १ ॥
॥ चौपाई ॥ त्रिपवर सैन तहाँ को त्रिपवर । अधिक दरबु
सुनियत जाके घर । भाँति (म०पं० ११४४) भाँति के भोग
कमावै । निरखि प्रभा देवेस लजावै ॥ २ ॥ ऐंडोराइ भाट
को सुत तह । ताकै रूप न सम कोऊ महि मह । अधिक

इसे मारूँगी ॥ ८ ॥ वह सब प्रजा को साथ ले वहाँ आ गई जहाँ पलंग के
नीचे गड़हे में बुत दबाया हुआ था । सबने भूमि को खोदकर उसे निकाला
और उस सौतन का सिर मूँडकर उसकी नाक काट लिया ॥ ९ ॥ उसकी
नाक काट-काटकर उसे मारा । उसने विधि से पति को मारकर इसको
भी दूर कर दिया । शास्त्रों, स्मृतियों, वेद, पुराणों में यह कहा गया है कि
स्त्रियों के रहस्य को कोई नहीं समझ सकता है ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ तेतीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २३३ ॥ ४०१० ॥ अफजू ॥

दो सौ चौतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ शहर टंकटोड़ा में नृपतिकला नामक एक बालिका थी,
जिसकी कमर शेर के समान पतली और नयन मृग के समान विशाल थे ॥ १ ॥
॥ चौपाई ॥ नृपवरसेन वहाँ का श्रेष्ठ राजा था, जिसके पास अत्यन्त द्रव्य
था । वह भाँति-भाँति के आमोद-प्रमोद किया करता था और उसकी प्रभा
को देखकर इन्द्र भी लज्जित होता था ॥ २ ॥ ऐंडोराय वहाँ एक भाट का

तरुन कौ रूप सुहावै । निरखि काँइ कंचन सिर न्यावै ॥ ३ ॥
जब त्रिय तिन तरुनी नर लहा । मन क्रम बच मन मै यौ
कहा । पठै सहचरी याहि बुलाऊँ । कामभोग तिह साथ
कमाऊँ ॥ ४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ परम पाट की झूलनि एक
सवारिकै । ता पर झूलति भई बिचार बिचारिकै । याही
चढ़ि पीढ़ी पर पियहि बुलाइहौ । हो अरध रात्रि गे घर कौ
ताहि बहाइहौ ॥ ५ ॥ या पीढ़ी कह देंहौ तरे बहाइकै ।
रेशम की द्रिड़ डोरें चार लगाइकै । सो जाको त्रिपहूँ कबहूँ
लहि जाइहै । हो जानि पींथ चुपि रहिहै कहा रिसाइहै ॥ ६ ॥
अरध रात्रि पीढ़ी ग्रहि तरे बहाइकै । डोरहि खैंचि प्रीतमहि
लेत चढ़ाइकै । रानी संग तिह आनि मिलावा देत करि ।
हो जानि केल की समैं सखी सभ जाँहि टरि ॥ ७ ॥ तवन
भाट कौ नित प्रति लेत बुलाइकै । एक दिवस ग्रहि रहन न
देहि बहाइकै । ऐंचि ऐंचि तिह लेत न छोरत एक छिन ।
हो आनि त्रिया के धाम सोयो त्रिप एक दिन ॥ ८ ॥ राव न
लहियो चेरियन भाट बुलाइयो । बिन रानी के कहे सु जार

पुत्र था जिसके समान रूप-सौंदर्य में अन्य कोई नहीं था । उस तरुण का रूप
अत्यधिक शोभायमान था और सोना भी उसके सामने सिर झुकाता था ॥ ३ ॥
जब उस स्त्री ने उस तरुण को देखा तो मन-वचन-कर्म से निर्णय किया कि
दासी भेजकर इसको बुलाती हूँ और इसके साथ केलिक्रीड़ा करती हूँ ॥ ४ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ एक सुन्दर कपड़े का झूला उसने सँवारा और उस पर मस्ती से
झूलने लगी । इसी झूले पर प्रिय को बुलाऊँगी और आधी रात गए उसे
वापस घर भेजूँगी ॥ ५ ॥ इस पीढ़ा को मैं रेशम की मजबूत रस्सी के साथ
नीचे बाँध दूँगी । यदि कभी राजा देख भी लेगा तो झूला समझकर चुप
रहेगा और क्रुद्ध नहीं होगा ॥ ६ ॥ अब वह आधी रात को वह पीढ़ा घर
के नीचे डालती और डोरी से प्रिय को ऊपर खींच लेती थी । रानी के साथ
उसका मिलन हो जाता और केलिक्रीड़ा का समय समझकर सभी सखियाँ
भी वहाँ से टल जाती थीं ॥ ७ ॥ उस भाट को वह नित्य बुला लेती थी और
उसे एक भी दिन घर में नहीं रहने देती थी । उसे खींच-खींचकर रखती
थी और एक भी क्षण के लिए नहीं छोड़ती थी । एक दिन राजा उस स्त्री के
घर में आ सोया ॥ ८ ॥ राजा को नहीं देखा और दासियों ने भाट को बुला
लिया और रानी के बिना कहे ही यात्र को मँगवा दिया । राजा कोई चोर

मँगाइयो । निरखि राइ तिह कहि तसकर जागत भयो ।
 हो याहि न देहौ जानि काढि असि कर लयो ॥ ९ ॥ त्रिप
 जागत सभ जगे पकरि ताके लयो । आनि राव के तीर बाँधि
 ठाढो कयो । सुनत शोर त्रिय उठी नीद ते जागिकै । हो
 राजा ते डरपाइ मित्र हिल त्यागकै ॥ १० ॥ ॥ रानी बाच ॥
 ॥ दोहरा ॥ सुनु राजा आयो हुतो तोहि हनन इह चोर ।
 अब ही याकौ मारिये होन न दीजै भोर ॥ ११ ॥
 ॥ चौपई ॥ त्रिय को बचन चोर सुन पायो । त्रिपति भए
 कहि साच सुनायो । यह रानी मोरे संग रहई । अब मोको
 तसकर करि कहई ॥ १२ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जार चोर को
 बचन न साचु पछानियै । प्रान लोभ ते बकत सभन पर
 जानियै । इनके कहे न कोप किसू पर कीजियै । हो राव
 बचन यह साचु जानि जिय लीजियै ॥ १३ ॥ साचु साचु सुनि
 राव बचन भाखत भयो । प्रान लोभ ते नाम त्रिया को इन
 लयो । ता ते या तसकर कह अबही (सू० पं० ११४५) मारियै ।
 हो इही भोहरा भीतर गरिकै डारियै ॥ १४ ॥ प्रथमहि त्रिया
 सु तासौ भोग कमाइयो । भूल जबै वहु धाम त्रिपति के

समझकर जग गया और यह सोचकर कि इसे जाने नहीं दूँगा उसने कृपाण
 निकाल ली ॥ ९ ॥ राजा के जगते ही सब जग गए और उसे पकड़ लिया
 और उसे बाँधकर राजा के पास ला खड़ा किया । शोर सुनकर वह स्त्री
 भी जग गई और मित्र का मोह त्यागकर राजा से डर गई ॥ १० ॥
 ॥ रानी उवाच ॥ ॥ दोहरा ॥ हे राजन् ! सुनो, तुम्हें मारने के लिए ही
 यह चोर आया है । इसे अभी मारो और सुबह मत होने दो ॥ ११ ॥
 ॥ चौपाई ॥ स्त्री की बातों को चोर ने सुना तो उसने राजा से सच कह
 सुनाया । यह रानी मेरे साथ रमण किया करती थी और अब मुझ चोर कह
 रहो है ॥ १२ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ इस चोर के वचनों को सत्य मत मानों यह
 प्राणों के लोभ से इस तरह बक रहा है । इसके कहने से किसी पर क्रुद्ध
 मत होइए और हे राजन् ! मेरी बातों को सत्य करके मान लीजिए ॥ १३ ॥
 “ठीक है, ठीक है” राजा कहने लगा । इसने प्राणों के मोह से ही इस स्त्री
 का नाम लिया है । इसलिए इस चोर को तुरन्त मार दिया जाय और इसी
 तहखाने में डाल दिया जाय ॥ १४ ॥ पहले स्त्री ने उससे भोग किया, फिर

आइयो । जिय लज्जा के त्रास चोर तिह भाखियो । हो
प्रीत पछानी चित न मारि तिह राखियो ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ चौतीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २३४ ॥ ४३६७ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ पैतीस चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ करमसिंघ राजा हुतो कसटवार कै देस ।
अछलमती ताकी तरुनि सुंदरि जाके केस ॥ १ ॥ बज्रकेतु
इक शाहु को पूत हुतो सु कुमार । नवौ व्याकरन शास्त्र खट
जिन द्विड़ पड़े सुधार ॥ २ ॥ एक दिवस सुत तवन को
निरख्यो अछलकुमारि । अब ही रति यासौ करौ यौ कहि भई
सुमार ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक सखी तह चतुरि पहुँची
आइकै । अछलमती को लयो गरे सों लाइकै । सींचि सींचि कै
बारि जगावत जब भई । हो सकल चित्त की बात कुअरि की
लहि गई ॥ ४ ॥ कुअर चित्त की बात सकल मुहि भाखियै ।
पीर पिया की गूड़ न मन मै राखियै । जो तुमरे जिय रुचै
सु मोहि कहीजियै । हो बिरह बिकल हवै प्रान हितु जनि

जब वह भूलकर राजा के महल में आ गया तो लज्जा के भय से उसे चोर
बना दिया । प्रेम को नहीं पहचाना और उसे मार डाला ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ चौतीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २३४ ॥ ४३६७ ॥ अफजू ॥

दो सौ पैतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ कष्टवार देश में करमसिंह नामक एक राजा था, जिसकी
पत्नी अछलमती थी और उसके सुन्दर केश थे ॥ १ ॥ बज्रकेतु एक शाह
का सुकुमार पुत्र था जिसने नौ व्याकरण, छः शास्त्र सुधारकर दृढ़तापूर्वक
पढ़े थे ॥ २ ॥ एक दिन उसने अछलमती को देखा और निर्णय किया कि
इससे अभी रतिक्रीड़ा की जाय ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक चतुर सखी वहाँ
पहुँची और उसने अछलमती को गले से लगा लिया । जब अछलमती ने
सखी को बार-बार कहा तो उसने कुँवरि के मन की बात समझ ली ॥ ४ ॥
उसने कहा कि कुँवर की बात जो तुम्हारे दिल में है मुझे पूरी तरह कहो और
प्रिय की पीड़ा को मन में छुपा कर मत रखो । जो तुम्हारे मन को अच्छा

दीजिये ॥ ५ ॥ कहा कहो सखि तोहि कहन नहि आवई ।
हेरि मीत को रूप हिया ललचावई । वै वाको अबही
मुहि आनि मिलाइये । हो नातर मोर जियन की आस
चुकाइये ॥ ६ ॥ जो कछु कहो सखि सोहि वहै कारज करो ।
प्राण लेत तब हेत न हिय मे मैं डरो । जो तुमरे चित
चुभै सु हमै बताइये । हो रोइ रोइ करि नीर न बिथा
गवाइये ॥ ७ ॥ सुनहु भित्नी आजु जुगनि मैं होइ हौ । हेत
सजन के प्राण आपने खोइ हौ । प्रिय दरशन की भीख
मांगि करि ल्याइहौ । हो निरखि ताल को रूप सखी बलि
जाइहौ ॥ ८ ॥ बस्त्र भगौहे आजु सुभंगन मैं करौ । आंखिन
की चिपीया अपने कर मैं धरौ । बिरह मुद्रिका कानन दुहैं
सुहाइहो । हो प्रिय दरशन की भिच्छ्या मांग अघाइहो ॥ ९ ॥
सुनत सहचरी वचन चक्रित मन मैं भई । अधिक कुअरि की
नेह जानि करिकै गई । चलत तहाँ ते भई तवन पहि आइकै ।
हो कह्यो कुअरि सो ताहि कह्यो समझाइकै ॥ १० ॥
॥ दोहरा ॥ ताहि भेद समझाइकै ले गई तहाँ (सु० प्र० ११४६)
लवाइ । जहाँ कुअरि ठाढी हुती भूखन बस्त्र बनाइ ॥ ११ ॥

लगे वह मुझसे कहो । हे मेरी हितैषिणी ! व्याकुल होकर अपने प्राण मत
दो ॥ ५ ॥ हे सखी ! तुमसे क्या कहूँ कहा नहीं जाता । प्रिय का रूप देख
कर मन ललचा गया है । उसे अब मुझे लाकर मिला दो अन्यथा मेरे जीवित
रहने की आशा छोड़ दो ॥ ६ ॥ हे सखी ! जो तुम कहोगी मैं वही करूँगी
और तुम्हारे हित में अपने प्राण लेने से भी संकोच नहीं करूँगी । जो तुम्हारे
मन में खटक रहा है, वह मुझे बताओ और रो-रोकर अपना नयन-जल व्यर्थ
मत गँवाओ ॥ ७ ॥ हे सखी ! सुनो, आज मैं तो जोगन बन जाऊँगी और
अपने सजन के लिए प्राण गँवा दूँगी । प्रिय-दर्शन की भीख माँगकर ले
आओ । हे सखी ! मैं तो प्रिय का रूप देखकर बलिहार जाऊँगी ॥ ८ ॥
मैं आज भगवे वस्त्र अंगों में धारण कर लूँगी और आँखों को खप्पर बनाकर
रख लूँगी । बिरह के कुंडल दोनों कानों में शोभायमान करूँगी और प्रिय
दर्शन की भिक्षा माँगकर प्रसन्न हो रहूँगी ॥ ९ ॥ सखी वचन सुनकर मन
में चकित रह गई और कुँवरि को अत्यधिक स्नेह देकर वहाँ से चली गई ।
वहाँ से चलकर वह उसके पास पहुँची और कुँवर से समझाकर कहने
लगी ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ उसे सब भेद समझाकर वहाँ लिवा ले गई जहाँ

॥ अड़िल्ल ॥ छैलकुअर कौ जबै कुअरि पावत भई । जनुक
नवौ निधि महाँ निधन के घर गई । निरख तरुनि को रही
तरुनि उरझाइकै । हो भाँति भाँति तिह साथ रसी
लपटाइकै ॥ १२ ॥ एक कुअरि तब जाइ त्रिपति सौ यौ कही ।
लपटि तिहारी नारि एक नर सो रही । करमसिंघ करि
कोप तहाँ चलि आइयो । हो अछलमती यह भेद सकल सुनि
पाइयो ॥ १३ ॥ पकरि त्रिपति की पगिया दई चलाइकै ।
कह्यो सखी बवरी भई गई बहु धाइकै । लरिकन की सी
खेल करत तिह ठाँ भई । हो दुतिय सखी लै पाग चलाइ
बहुरो दई ॥ १४ ॥ जब वहि दिसि त्रिप जाइ तौ वहि दिसि
डारही । लरिकन को गिंदुआ जिमि पाग उछारही । धूरि
आपने सीसनाथ के डारिकै । हो लहि हाइल तिन मित्रहि
दयो निकारिकै ॥ १५ ॥ जब लगि पगिया लेन राइ चलि
आइयो । तब लगि रानी मित्र सदन पहुचाइयो । मतवारी
उन भाखि अधिक मारत भई । त्रिप की चिता टारि सकल
चित की दई ॥ १६ ॥ तब राजै गहिकै त्रिय को कर राखियो ।
आपु बचन ताको ऐसी बिधि भाखियो । मतवारे मूरख सिसि

वह कुँवरि आभूषण-वस्त्र पहनकर खड़ी थी ॥ ११ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ छैल-
कुँवर को जब उस कुँवरि ने प्राप्त किया तो उसे ऐसा लगा मानों नवों निधियाँ
उसके घर आ गई हों । उस तरुण को देखकर तरुणी उसी में उलझकर रह
गई और लिपट करके उससे रमण करने लगी ॥ १२ ॥ एक तरुणी ने जब
राजा से जाकर यह कह दिया कि तुम्हारी स्त्री एक व्यक्ति से लिपटी हुई
है तो कश्मसिंह क्रुद्ध हो उस ओर आ गया । अछलमती ने इस समस्त भेद
को सुन लिया ॥ १३ ॥ उसने राजा की पगड़ी पकड़कर फेंक मारी । सखियाँ
कहने लगीं कि यह बावली हो गई है । वह भी दौड़कर उस ओर चली
गई । बच्चों की तरह वे सब खेल खेलने लगीं और दूसरी सखी ने पगड़ी
पकड़कर फिर फेंक मारी ॥ १४ ॥ राजा जिस दिशा में जाता तो वह उस
दिशा में डाल देती और लड़कों के गेंद की तरह पगड़ी को उछालने लगी ।
अपने स्वामी के सिर में धूल डालकर उस स्त्री ने अपने मित्र को निकाल
दिया ॥ १५ ॥ जब तक राजा पगड़ी ले तब तक रानी ने मित्र को घर पहुँचा
दिया । वह मतवाली-सी होकर उसे मारने लगी और यह सब देख राजा
की समस्त चिता जाती रही ॥ १६ ॥ तब राजा ने स्त्री को अपने हाथ से पकड़ा
और कहा कि मूर्ख शिशु को मारना नहीं चाहिए । जो होना था सो हुआ,

को नहि मारिये । हो होनहार मुहि भी इन कछु न
उचारिये ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ त्रिप की पाग उतारिकै
दीनी प्रथम चलाइ । जार उबार्यो जड़ छल्यो चेरी लई
बचाइ ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ पैंतीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २३५ ॥ ४४१५ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ छत्तीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ तिब्बत को इक राइ सुलच्छन । कबित
काबि के बिखे बिचच्छन । स्त्री त्रिपराज कला तिह नारी ।
जानुक स्त्री बिशन की प्यारी ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ मती
बिचच्छन पात तह तवन शहिर के माँहि । रूप बिखे ता सी
तरुनि तीनि लोक मै नाहि ॥ २ ॥ ॥ चौपई ॥ मुजरा कौ
बेस्वा जब आवे । हेरि रूप त्रिप को ललचावे । मन मै
अधिक मसत हवै झूले । निजु तन की ताकौ सुधि भूलै ॥ ३ ॥
चित्त मै चित्त रैन (मृ० पं० ११४७) दिन करै । त्रिप की आस सदा
मन धरै । किह बिधि मो संग भोग कमावै । सो दिन मोहि

अब इसे कुछ मत कहना ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ पहले तो राजा की पगड़ी
उतारी, फिर अपने यार को बचाया तथा पुनः दासी को भी बचा
लिया ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ पैंतीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २३५ ॥ ४४१५ ॥ अफजू ॥

दो सौ छत्तीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ तिब्बत का एक राजा सुलक्षण था, जो कि कवित्त एवं
काव्य में विलक्षण था । नृपराजकला उसकी स्त्री थी जो मानो साक्षात्
लक्ष्मी थी ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ विलक्षणमती एक वेश्या उस शहर में थी,
जिसके समान रूपवती तरुणी तीनों लोकों में कोई नहीं थी ॥ २ ॥
॥ चौपाई ॥ वह वेश्या जब मुजरा करने आती थी तो राजा का रूप देखकर
ललचा उठती थी । वह अत्यधिक मस्त हो झूमती थी और उसे अपने तन
की सुधि भूल जाती थी ॥ ३ ॥ चित्त में रात-दिन वह सोचती थी और राजा
की आशा मन में लगाए रहती थी । कैसे भी यह मेरे साथ रतिक्रीड़ा करे ।

कहो कब आवैं ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ राव न ता को हेरई त्रिय
 मन मै ललचाइ । जतन का करौ जो मुझ त्रिप मन भजै
 बनाइ ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ जब राजा दीवान लगावै । तवन
 समै तरुनी सुनि पावै । हाथ जोरि ठाढी हवै रहई । प्रेम
 आशकी ज्यों निरबहई ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ त्रिप जान्यो
 आशिक भई सो पर तरुनि बनाइ । कवन प्रभा याकौ लगी
 चित्त बिचार्यो राइ ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ कहा भयो आशिक
 त्रिय भई । मुहि लखि बिरह बिकल हवै गई । मै याकौ
 कबहूँ न बिहारो । लोकन औ परलोक बिचारो ॥ ८ ॥
 अधिक जतन तरुनी करि हारी । राजा सो क्योंहूँ न बिहारी ।
 और जतन तबही इक कियो । सात गुलन देही पर दियो ॥ ९ ॥
 सात गुलन दे मास चलायो । अधिक कुगंध त्रिपहि जब
 आयो । हाइ हाइ करि गहि तिह लियो । जो भाख्यो सोई
 तिन कियो ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ जु तुम कहौ सो मैं करों
 निजु तन गुलन न खाहु । भाँति भाँति के भामिनी मोसौ भोग
 कमाहु ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ गुल खाए राजा दुरि आयो ।
 भाँति भाँति तिह लियहि बजायो । लपटि लपटि तासो रति

पता नहीं ऐसा दिन कब आएगा ॥ ४ ॥ ॥ दोहा ॥ राजा उसे देखता भी
 नहीं था और स्त्री मन में ललचाती थी कि क्या करूँ जिससे यह राजा मेरे साथ
 रमण करे ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब राजा दरबार लगाता तो तरुणी को पता
 लग जाता । वह हाथ जोड़कर खड़ी रहती और प्रेम का निर्वाह करती ॥ ६ ॥
 ॥ दोहा ॥ राजा भी जान गया कि यह तरुणी मुझ पर आशिक हो गई है ।
 राजा ने सोचा, भला इसे क्या अच्छा लगा है ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ क्या हुआ
 जो यह स्त्री मुझ पर आशिक हो गई है और मुझे देखकर विरहाकुल हो गई
 है । परन्तु मैं लोक-परलोक का विचार कर इससे कभी रतिक्रीड़ा नहीं
 करूँगा ॥ ८ ॥ तरुणी भी अत्यधिक यत्न करके हार गई पर राजा के साथ
 कभी भी रतिक्रीड़ा न कर पाई । उसने एक यत्न और किया और देही पर
 लोहे से सात बार दाग दिया ॥ ९ ॥ सात बार उसने जब अपना मांस जलाया
 तो राजा को भी दुर्गंध आयी । उसने हाय-हाय कहकर उसे पकड़ लिया
 और उसने जो कहा वही किया ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ तुम अपने तन को मत
 दागो, तुम जो कहोगी मैं वही करूँगा । हे स्त्री ! तुम मुझसे भाँति-भाँति से
 रमण करो और भोग कमाओ ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ दाग लगने से राजा
 पिघल गया और उसने विभिन्न प्रकार से उस स्त्री को काम-तृप्त किया ।

कीनी । बेस्वा की सुधि बुधि हरि लीनी ॥ १२ ॥ बेस्वा हूँ
 राजा बसि कीनी । भाँति भाँति के आसन दीनी । राइ
 सकल रानियै बिसारी । ताही को राख्यो करि नारी ॥ १३ ॥
 ॥ दोहरा ॥ सभ रनियन को राइ के चित तें दयो बिसारि ।
 गुल खाए राजा बर्यो ऐसौ चरित सुधारि ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ छत्तीस चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २३६ ॥ ४४३६ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ सैंतीस चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ प्रगट कमाऊँ के बिखै राजबहादुर राइ ।
 सूरन की सेवा करै शत्रुन देत खपाइ ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ बाज
 बहादुर जू यौ ह्रिदै सँभारियो । बोलि बडे सुभटन को प्रगट
 उचारियो । करिये कवन उपाइ नगर स्त्री मारियै । हो ताते
 सभही बैठि बिचार बिचारियै ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ प्रात तहाँ
 नाचत हुती भोगमती छबि भान । प्रथम राइ सौ रति
 करी (मू० पं० ११४८) बहुरि कही यौ आनि ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जो

लिपट-लिपटकर उससे रतिक्रिया की और वेश्या का होश भुला दिया ॥ १२ ॥
 वेश्या ने भी राजा को वश में कर लिया और भाँति-भाँति के आसन लगाए ।
 राजा ने भी सब स्त्रियों को विस्मृत कर दिया और उसे ही पत्नी बनाकर
 रखा ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा ने सब रानियों को मन से भुला दिया
 और इस प्रकार उस स्त्री ने दाग खाकर प्रपंच से राजा का वरण कर
 लिया ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ छत्तीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २३६ ॥ ४४३६ ॥ अफजू ॥

दो सौ सैंतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहरा ॥ कुमायूँ में राजबहादुर राजा था जो शूरवीरों का सेवक
 और शत्रुओं का संहारक था ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजबहादुर ने मन में निर्णय
 लिया और प्रकट में बड़े-बड़े वीरों को कहा कि कोई उपाय किया जाय जिससे
 श्रीनगर को जीता जाय । सभी बैठकर विचार करें ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ वहाँ
 भोगमती नामक एक वेश्या नाचा करती थी । उसने पहले तो राजा से
 विहार किया और आकर उससे कहा ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ यदि तुम मुझसे

तुम कहो मुहि जाइ ताहि बिरमाइहों । सिरी नगर ते ऐंचि
 दौन भो ल्याइहों । जोरि कठिन तुम कटक तहाँ चढ़ि
 आइयो । हो लूटि कूटि कै शहिर सकल लै जाइयो ॥ ४ ॥
 यौ कहि बेस्वा बचन त्रिपहि तह को गई । सिरी नगर के
 शहिर बिखै आवत भई । हाव भाव बहु भाँति दिखाए
 आनिकै । हो भज्यो मेदनी शाह अधिक रुचि मानिकै ॥ ५ ॥
 त्रिपति मेदनी शाह आपने बसि कियो । ता को लै करि साथ
 दौन को मगु लियो । बाज बहादुर जोरि कटक आवत भयो ।
 हो लूटि कूटि करि नगर सिरी को लै गयो ॥ ६ ॥ सत्त
 पर्यो त्रिप रह्यो न कछु जानत भयो । सिरी नगर कौ लूटि
 कूटि कै कौ गयो । उतरि गयो मद जब कछु सुधि आवत
 भई । हो पीस दाँत चुप रह्यो बात कर ते गई ॥ ७ ॥
 ॥ दोहरा ॥ इह छल से राजा छल्यो करी मित्र की जीत ।
 देव अदेव न लहि सकति यह इसलियन की रीत ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ सैंतीस चरित्र
 समापतम सतु शुभम सतु ॥ २३७ ॥ ४४३७ ॥ अफजू ॥

कहो तो मैं (वहाँ के राजा को) वहाँ जाकर मोहित करूँ और उसे श्रीनगर
 से खींचकर दून में ले आऊँ । फिर तुम बड़ी सेना लेकर वहाँ चढ़ाई कर दो
 और सारे शहर को लूट-पाटकर ले आओ ॥ ४ ॥ वेश्या राजा को यह
 वचन कहकर श्रीनगर में आ गई । उसने वहाँ मेदनी शाह से रुचिपूर्वक
 रमण किया ॥ ५ ॥ राजा मेदनी शाह को उसने अपने वश में कर लिया और
 उसे अपने साथ लेकर दून का रास्ता पकड़ लिया । (बाज) राजबहादुर सेना
 एकत्र करके आ गया और श्रीनगर को लूट ले गया ॥ ६ ॥ राजा इधर
 मदमस्त पड़ा था और उसे कुछ भी पता नहीं था कि श्रीनगर को कौन
 लूटकर ले गया है । जब नशा उतरा और कुछ होश आया तो दाँत पीसकर
 रह गया क्योंकि बात हाथ से निकल चुकी थी ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ छल से
 राजा को छला और मित्र को जिता दिया । देव और अदेव भी इन स्त्रियों
 की चालों को नहीं समझ सकते ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ सैंतीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २३७ ॥ ४४३७ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ अठतीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बीरजकेत राजा इक नागर । सगल जगत के बिखै उजागर । स्त्री छटछैलकुअरि ताकी त्रिय । मन बच क्रम बसि करि राख्यो पिय ॥ १ ॥ एक दिवस त्रिप चड्यो अखिट बर । संग लई सहचरी अमित करि । जब बन गहिर बिखैं प्रभ आयो । स्वानन ते बहु भ्रिगन गहायो ॥ २ ॥ कहियो कि जिह आगै भ्रिग आवै । वहै आपनो तुरै धवावै । पहुचि सु तन तिह के भ्रिग करही । गिरन परन ते कछू न डरही ॥ ३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ त्रिप त्रिय आगे भ्रिगिक निकसियो आइकै । रानी पाछे परी तुरंग धवाइकै । भजत भजत हरिनी पति बहु कोसन गयो । हो एक त्रिपति सुत लहि ताकौ धावत भयो ॥ ४ ॥ ताजिहि ताजन मारि पहुँच्या जाइकै । एक बिसिख ही मार्यो भ्रिगहि बनाइकै । निरखि तरुनि इह चरित रही उरझाइ करि । हो बिरह बान तन बिधो गिरत भई भूमि पर ॥ ५ ॥ बहुरि सुभट जिमि चेति तरुनि उठ ठाढ़ि भई । घूमत घाइल न्याइ

दो सौ अठतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ वीर्यकेतु एक सभ्य राजा था जिसे सारा संसार जानता था । छटछैलकुंवरी उसकी प्रिय थी जिसने मनसा, वाचा, कर्मणा प्रिय को वश में कर रखा था ॥ १ ॥ एक दिन अनेकों दासियों को साथ लेकर वह श्रेष्ठ राजा आखेट के लिए गया । जब राजा गहरे वन में आया तो उसने कुत्तों से मृगों को हँकाया ॥ २ ॥ उसने कहा कि जिसके सामने मृग आए वही अपना घोड़ा दौड़ाए । वही आगे बढ़कर उसे घायल करे और गिरने-पड़ने से तनिक न डरे ॥ ३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ राजा की पत्नी के सामने एक मृग आ निकला और रानी ने उसके पीछे घोड़ा दौड़ा लिया । भागता-भागता वह मृग अनेकों कोस निकल गया जहाँ एक राजा का लड़का भी उसे देखकर दौड़ पड़ा ॥ ४ ॥ घोड़े को पीटता-दौड़ाता वह (मृग के पास) पहुँच गया और उसने मृग को एक बाण निशाना साधकर मारा । यह खेल देखकर तरुणी उलझकर रह गई और विश्व-बाण से बिधकर भूमि पर गिर पड़ी ॥ ५ ॥ फिर वीर की तरह (शीघ्र) होश में आकर वह खड़ी हो गई और घायल की तरह तड़फती सजन के पास चली आई । घोड़ों से उतर

सजन तट चलि (सू० प्र० ११४६) गई । उत्तरि हयन ते तहु दोऊ रमे
बनाइकै । हो तब लौ तिह ठाँ सिंघ निकसियो आइकै ॥ ६ ॥
निरखि सिंघ कौ रूप तरुनि त्रासित भई । लपटि लला के
कंठ भएँ अबला गई । ठीठ कुअर धनु तन्यो न तनिक आसन
डिग्यो । हो हन्यो सिंघ तिह ठौर बिसिख बाँको लग्यो ॥ ७ ॥
मारि सिंघ राख्यो तिह भज्यो बनाइकै । आसन चुंबन करे
लियहि लपटाइकै । भाँति भाँति तिह रम्यो तरुनि सुख पाइ
कर । हो बिनु दामन अबलाहूँ रही बिकाइ करि ॥ ८ ॥
चित चिता लिय कही इसी संग जाइहौ । निजु नाइक कौ
दरसु न बहुर दिखाइहौ । ताते कछु चरित सो ऐसे कीजियै ।
हो जाते जसऊँ रहै अपजस न सुनीजियै ॥ ९ ॥ एक सखी
प्रति कह्यो भेद समझाइकै । हरिन हेतु लिय डूबी कहियहु
जाइकै । बैन सुनत सहचरी जाति तिह कौ भई । हो जु
कछु कुअरि तिह कह्यो खबरि सो त्रिप दई ॥ १० ॥ आपु
कुअरि के साथ गई सुख पाइकै । त्रिप सुनि डूबी नारि रह्यो
सिरु न्याइकै । चंचलान को चरित न नर कोऊ लहै । हो
शास्त्र सिंघ्रिति अरु बेद भेद ऐसे कहै ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ ताकौ

कर दोनों ने भलीभाँति रमण किया । तभी उधर से शेर आ निकला ॥ ६ ॥
शेर का विकराल रूप देखकर तरुणी भयभीत हो उठी और लिपटकर प्रिय
के गले से लग गई । कुँवर ने दृढ़तापूर्वक धनुष ताना और तनिक भी
आसन से हिला नहीं । बाँके बाण से शेर को मार डाला ॥ ७ ॥ सिंह को
मारकर रुचिपूर्वक कामक्रीड़ा की और स्त्री से लिपटकर आसन-चुंबनादि किए ।
वह उस तरुणी से विभिन्न प्रकार से रमा और वह स्त्री भी मानों बिना
दामों के ही विक गई हो ॥ ८ ॥ स्त्री ने मन में विचारा कि मैं इसी के साथ
जाऊँगी और अपने पति को फिर दिखाई भी नहीं दूँगी । इसलिए कुछ
ऐसा प्रपंच किया जाय जिससे यश भी बना रहे और बदनामी भी न हो ॥ ९ ॥
उसने एक सखी को समझाकर कह दिया कि तुम जाकर कह दो कि रानी
हिरण के कारण ही डूब मरी है । दासी यह सुनकर वहाँ गई और जो रानी
ने कहा था उसे राजा को कह सुनाया ॥ १० ॥ स्वयं तो वह कुँवर के साथ
सुखपूर्वक चली गई और राजा रानी के डूब जाने का समाचार सुनकर सिर
झुकाकर (दुःखी हो) बैठ गया । स्त्रियों के प्रपंचों को कोई व्यक्ति नहीं जान
सकता, यही तथ्य शास्त्र, स्मृतियाँ और वेद भी बतलाते हैं ॥ ११ ॥
॥ चौपाई ॥ उसे वह नवयुवक साथ ले गया और भाँति-भाँति प्रकार से उससे

तहन संग लै गयो । भाँति भाँति कै भोगत भयो । इन जड़
कछु न बात लहि लई । जानी डूबि चंचला गई ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ अठतीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २३८ ॥ ४४४६ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ उनतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ शहिर सिरौज बिखैं हुतो राजा सुभ्र
सरूप । कामकेल मै अति चतुर नरसिंघ रूप अनूप ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ ताके चारि पुत्र सुभ कारी । सूरवीर बाँको
हंकारी । रानी और व्याहि जो आनी । सोऊ गरभवती
हवै व्यानी ॥ २ ॥ एक पुत्र ताहू को भयो । रानी बीरमती
तिह जयो । व्याघ्रकेतु तिह नाम भरत भे । दिजन दरिद्र
खोइ कै कै भे ॥ ३ ॥ चारौ पुत्र राज अधिकारी । इहै शोक
अबला के भारी । जो कोऊ उन चारों को घावै । तब सुत
राज पाँचवौ पावै ॥ ४ ॥ जेसट पुत्र तन मनुख पढायो ।
यौ कहियहु तुहि राइ बुलायो । राजकुअर आवत जब भयो ।
तब ही मारि कोठरी दयो ॥ ५ ॥ इही भाँति ते दुतिय बुलायो ।

भोग-विलास करने लगा । इस मूर्ख ने कुछ भी नहीं समझा और मान लिया
कि स्त्री डूब गई है ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ अठतीसवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ २३८ ॥ ४४४६ ॥ अफजू ॥

दो सौ उनतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ सिरौज शहर में शुभ्रस्वरूप राजा था, जो कामक्रीड़ा में
चतुर और शेर के समान बहादुर था ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसके चार सुन्दर
पुत्र थे जो शूरवीर, बाँके एवं स्वाभिमानी थे । वह एक अन्य स्त्री विवाह
कर ले आया और वह भी गर्भवती होकर शिशुवती हुई ॥ २ ॥ उस रानी
बीरमती के भी एक पुत्र हुआ । उसका नाम व्याघ्रकेतु रखा और ब्राह्मणों
के दुख-दरिद्र दूर किये ॥ ३ ॥ उस स्त्री को यही चिन्ता सताती थी कि ये
चारों पुत्र ही राज के अधिकारी होंगे । यदि ये चारों पुत्र मार डाले जायें
तभी मेरे पुत्र को राज्य मिल सकता है ॥ ४ ॥ उसने बड़े लड़के के पास
एक व्यक्ति को भेजा और कहलाया कि तुम्हें राजा ने बुलाया है । राजकुमार

वही खड़ग ते ता कह घायो । (सू० प्र० ११५०) इही भाँति तिन
 दुहँ बुलैकै । डारत भई भोहरे घै कै ॥६॥ ॥ दोहरा ॥ चारि
 पुत्र प्रथमैं हने पुनि पति लयो बुलाइ । इह बिधि सौ बिनती
 करी नैनन नीरु बहाइ ॥ ७ ॥ सुन राजा तब पुत्र दो लरे
 राज के हेतु । जूझि मरै छित पर परे तब सैं भई अचेतु ॥८॥
 असिन भए अति जुध करि जब जूझे दोऊ बीर । बस्त्र फारि
 द्वै पुत्र तब तबही भए फकीर ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब त्रिप
 पूत पूत कहि रोयो । सुधि सभ छाडि भूमि पर सोयो ।
 पाचै कहु टीका करि परियो । भेद अभेद जड़ कछु न
 बिचरियो ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ उनतालीस चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ २३६ ॥ ४५४६ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ चालीस चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ देस कलिंजर के निकट सैन बिचच्छन
 राइ । स्त्री रुचि राजकुअरि तरुन जाकी अति सुभ काइ ॥१॥

जब आ रहा था तो उसे मास्कर कोठरी में डाल दिया ॥ ५ ॥ इसी प्रकार
 दूसरे को बुलाया और उसे भी खड़ग से मार डाला । इसी प्रकार उन दोनों
 को भी बुलाकर मास्कर तहखाने में डाल दिया ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ चारों
 पुत्रों को पहले मास्कर फिर उसने पति को बुलाया और शोती हुई प्रार्थना
 करने लगी ॥ ७ ॥ हे राजा ! तुम्हारे दो पुत्र राज्य के लिए आपस में लड़
 मरे हैं । जब वे धरती पर गिरे तो मैं बेहोश हो गई ॥ ८ ॥ जब तलवारें
 हाथ में पकड़कर दोनों वीर जूझ गए तो बाक़ी दोनों वस्त्र फाड़कर तत्क्षण
 साधु हो निकल गए ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब राजा पुत्र-पुत्र कहकर रो
 पड़ा और होश गँवाकर धरती पर गिर पड़ा । पाँचवें को तिलक दे दिया
 और उस मूर्ख ने भेद-अभेद कुछ भी नहीं जाना ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ उनतालीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २३६ ॥ ४५४६ ॥ अफजू ॥

दो सौ चालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहरा ॥ कलिंजर के निकट विलक्षणसेन नामक राजा था, जिसकी
 सुन्दर देहवाली रुचिराजकुँवरि स्त्री थी ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ सात अन्य

॥ चौपई ॥ सपत और रानी तिह रहई । तिनहूँ सौ हित
 त्रिप निरबहई । बारी बारी तिनै बुलावै । लपटि लपटि करि
 भोग कमावै ॥ २ ॥ स्त्री रुचिराजकुअरि जो रानी । सो मन
 भीतर अधिक रिसानी । मन महि कह्यो जतन किया करियै ।
 जाते इन रनियन कौ सरियै ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ प्रथम
 रानियन सौ अति नेह बढाइयो । ऐसी करी परीति जु पति
 सुनि पाइयो । धन्य धन्य रुचि राजकुअरि कह भाखियो ।
 हो जिन कलि मै सवतिन सौ अति हित राखियो ॥ ४ ॥
 नदी तीर इक रच्यो तिनालै जाइकै । आप कह्यो सवतिन
 सौ बचन बनाइकै । सुनहु सखी हम तहाँ सकल मिल जाइहै ।
 हो हम तुम मन भावत तह भोग कमाइहै ॥ ५ ॥ लै सवतिन
 कौ संग तिनालै मौ गई । राजा पै इक पठै सहचरी देत भी ।
 नाथ क्रिपा करि अधिक तहीं तुम आइयो । हो मन भावत
 रानिन सो भोग कमाइयो ॥ ६ ॥ सवति सखिन के सहित
 तहाँ सभ ल्याइकै । रोकि द्वारि पावक कौ दयौ लगाइकै ।
 किमू काज के हेत गई त्रिय आपु टरि । हो इह छल सभ
 रानिन कौ दिया जराइ करि ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ दौरत आपु
 त्रिपति पह आई । रोइ रोइ बहु त्रिथा जताई । बैठो कहा

रानियाँ थीं जिनसे राजा अत्यंत प्रेम करता था । उन्हें बारी-बारी से बुलाता
 था और लिपट-लिपटकर भोग-विलास करता था ॥ २ ॥ रुचिराजकुंवरि
 जो रानी थी वह मन में अत्यंत क्रुद्ध हुई । उसने सोचा कि क्या किया जाय
 जिससे इन रानियों को मार डाला जाय ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ पहले तो
 उसने रानियों से अत्यन्त प्रेम बढ़ाया । उनसे इतनी प्रीति बढ़ाई कि राजा
 भी जान गया । वह रुचिराजकुंवरि को धन्य-धन्य कहता था जिसने कि
 इस कलियुग में भी सौतों से प्रेम बनाकर रखा था ॥ ४ ॥ उसने नदी के
 किनारे एक हरम बनवाया और सभी सौतनों को कहा कि हे सखियो ! हम
 सब वहाँ चले और मनचाहा भोग करें ॥ ५ ॥ सौतनों के साथ वह उस
 हरम में गई और राजा के पास एक दासी भेज दी । राजा से कहलवाया
 कि हे नाथ ! कृपा कर आ जाइए और रानियों के साथ मनचाहा विहार
 करें ॥ ६ ॥ सौतनों को सखियों-सहित वहाँ लाकर दरवाजे बंद कर आग
 लगा दी और स्वयं वहाना बनाकर वह स्त्री पीछे रह गई । इस छल से
 उसने सब रानियों को जला दिया ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ स्वयं वह दौड़ती

देव के हरे । तोरे हरम आजु सभ जरे ॥ ८ ॥ (सु० प्र० ११५१)
 तुम अब तहाँ आपु पगु धारहु । जरत अगनि ते त्रियन
 उबारहु । बैठन सौ कछु हेतु न कीजै । मोरी कही कान
 धरि लीजै ॥ ९ ॥ वै उत जरत तिहारी नारी । तुम हो
 बैठ गरब करि भारी । राइ उठहु तिन ऐंच निकारहु । साख
 झूठ मुर बचन बिचारहु ॥ १० ॥ बैन सुनत मूरख उठि धयो ।
 भेद अभेद न पावत भयो । तजि बिलंब अबिलंब सिधार्यो ।
 भसम रानियन जाइ निहार्यो ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ सखिन
 सहित सवतैं जरी जियत न उबरी काइ । याकौ भेद अभेद जो
 त्रिपति जतावै जाइ ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मन्त्री भूप संवादे दोइ सौ चालीस चरित्र
 समाप्तम् सतु सुभम् सतु ॥ २४० ॥ ४४७६ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ इकतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ किलमाखन इक देस त्रिपति बर ।
 बिरहमंजरी नारि तवन घर । अधिक तरुनि को रूप

हुई राजा के पास आयी और रोककर सब व्यथा सुनाई । भाग्य के मारे हुए
 राजा तुम यहाँ क्या बैठे हो ? तुम्हारे तो सभी जल गए हैं ॥ ८ ॥ तुम अब
 स्वयं वहाँ चलो और जलती हुई स्त्रियों को स्वयं बचाओ । बंठने से कुछ
 नहीं सँवरेंगा । तुम मेरा कहना सुनो और मान लो ॥ ९ ॥ उधर तुम्हारी
 स्त्रियाँ जल रही हैं और इधर तुम मान किए बैठे हो । राजन् ! उठो और
 उन्हें खींचकर निकाल लो और मेरे इस सच्चे-झूठे कथन पर विचार
 करो ॥ १० ॥ बात सुनते ही मूर्ख उठकर दौड़ा और रहस्य को न समझ
 सका । वह अविलम्ब दौड़ पड़ा और भस्म हो चुकी रानियों को देखा ॥ ११ ॥
 ॥ दोहा ॥ सखियों-सहित सौतनें जल मरी और एक भी जीवित न बची ।
 इस भेद-अभेद को भला राजा को कौन समझाए ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ चालीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २४० ॥ ४४७६ ॥ अफजू ॥

दो सौ इकतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ किलमाखन एक देश का राजा था, जिसकी सुन्दर स्त्री
 बिरहमंजरी थी । वह स्त्री अत्यधिक सुन्दर थी और मुर-अमुर स्त्रियाँ भी

विराजें । सुरी आसुरिन को मन लाजें ॥ १ ॥ सुभटकेत
 इक सुभट बिचच्छन । जाके बने बती सौ लच्छन । रूप
 तवन को लगत अपारा । रविन लयो जनु कोटि उज्यारा ॥ २ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ विरहमंजरी जब वह पुरख निहारियो । विरह
 बान कसि अंग तवन के मारियो । विरह बिकल हवै बाल
 गिरत भी भूमि पर । हो जनुक सुभट रन माहि प्रहार्यो
 बान करि ॥ ३ ॥ पाँचिक बीती घरी बहुरि जाग्रत भई ।
 नैनन सैन बुलाइ सहचरी ढिग लई । ता कह चित की
 बात कही समझाइकै । हो त्यागहु हमरी आस कि पीत
 मिलाइदै ॥ ४ ॥ जु कछु कुअरि तिह कह्यो सकल सखि
 जानियो । तिह ते किया पयान तहाँ पगु ठानियो । बैठ्यो
 जहाँ पियरवा सेज डसाइकै । हो इशकमंजरी तही पहुँची
 जाइकै ॥ ५ ॥ बैठ्यो कहा कुअर सु अब पगु धारियै । लूटि
 तरुनि मन लीनो कहा निहारियै । काम तपत ताकी चलि
 सकल मिटाइयै । हो कहियो मानि जिनि जोवन बिथा
 बिताइयै ॥ ६ ॥ बेगि चलो उठि तहाँ न रहो लजाइकै ।
 विरह तपत ताकी कह देहु बुझाइकै । रूप भयो तौ कहा ऐँठ

उसके सामने लज्जित होती थीं ॥ १ ॥ सुभटकेतु एक विलक्षण वीर था
 जिसमें बत्तीसों शुभ लक्षण मौजूद थे । उसका रूप अपार था और ऐसा
 लगता था मानों सूर्य ने भी उजाला लिया हो ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ विरह-
 मंजरी ने जब उस पुरुष को देखा तो विरह ने मानों कसकर उसे बाण मार
 दिया हो । विरह में व्याकुल हो वह स्त्री ऐसे भूमि पर गिर पड़ी मानों
 युद्ध में बाण लगने से वीर गिर पड़ा हो ॥ ३ ॥ लगभग पाँच घड़ी के बाद
 वह होश में आयी तो उसने नयनों के इशारों से दासी को पास बुलाया ।
 उसे मन की बात समझाई और कहा कि या तो मित्र मिला दो अथवा मेरे
 जीवित रहने की आशा छोड़ दो ॥ ४ ॥ सखी ने कुँवरि की कही बात को
 समझ लिया और इशकमंजरी वहाँ से चलकर वहाँ (मित्र के पास) आ पहुँची
 जहाँ प्रिय पलंग बिछवाकर बैठा था ॥ ५ ॥ हे कुँवर ! यहाँ क्या बैठे हो ?
 अभी चलो तुमने तरुणी का मन लूट लिया है । अब क्या देख रहे हो ?
 उसके काम-कष्ट का चलकर निवारण करो । मेरा कहा मानो और यौवन
 को वृथा न जाने दो ॥ ६ ॥ वहाँ शीघ्र चलो और लजाओ मत । चलो
 और उसकी विरहाग्नि को शान्त करो । रूप-सौंदर्य होने से अकड़ना नहीं

न प्रमानियै । हो धन जोवन दिन चारि पाहुनो जानियै ॥७॥
 या जोवन (मू० प्र० ११५२) कौ पाइ अधिक अबलन कौ भजियै ।
 या जोवन कौ पाइ जगत के सुखनन तजियै । जब पिय ह्वै
 हौ बिरध कहा तुम लेहुगे । हो बिरह उपासन साथ सजन
 जिय देहुगे ॥ ८ ॥ या जोवन कौ पाइ जगत सुख मानियै ।
 या जोवन कह पाइ परम रस ठानियै । या जोवन कह पाइ
 नेह जग कीजियै । हो नाहक जग के माँझ न जियरा
 दीजियै ॥ ९ ॥ नेह बिना बिप हवैहै गए बखानियै । खड़ग
 दान बिन किए न जग मै जानियै । नेह क्रिशन जू कियो
 आजु लौ गाइयै । हो निरखि जगत के नाथ नारि
 निहुराइयै ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ मधुरी मूरति मित्त की बसी
 चित्त मै चीन । बहुरि निकासे जाहि नहि नैना भए
 रंगीन ॥ ११ ॥ मन भावन के नैन दोऊ चुभे चित्त के माँहि ।
 सेलन ज्यों सर के परे नाहि निकारे जाँहि ॥ १२ ॥ नैन पिया
 के पारधी मन मै किया निवास । काढि करेजा लेहि जनु
 याते अधिक बिस्वास ॥ १३ ॥ नैन पिया के पालने करि
 राखे करतार । जिन सहि जनु झूलहि धने हम से बैठि
 हजार ॥ १४ ॥ नैन रसीले रस भरे झलक रसन की देहि ।

चाहिए, क्योंकि धन-यौवन चार दिन का ही मेहमान होता है ॥ ७ ॥ जवानी
 पाकर अत्यधिक स्त्रियों से रमण करो और यौवन को पाकर संसार के किसी
 भी सुख को न त्यागना । हे प्रिय ! जब तुम वृद्ध हो जाओगे तो क्या पाओगे;
 उलटे बिरह की साँसें गिनते अपने प्राण दे दोगे ॥ ८ ॥ जवानी पाकर जगत
 के सुखों को भोगो और परम रस प्राप्त करो । जोवन को पाकर संसार
 से प्रेम करो और संसार में व्यर्थ ही जान मत दो ॥ ९ ॥ प्रेम के बिना
 अनेकों राजा हो गुजरे हैं । संसार में खड़ग दान दिए बिना कोई भी नहीं जाना
 जाता । श्रीकृष्ण ने प्यार किया और वह आज तक जाना जाता है । जगत्
 के नाथ ने भी स्त्री को देखा और गर्दन नीची कर ली ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ मित्त
 की मधुर मूर्ति चित्त में बसी पहचानकर थे रंगीन नयन मन से निकाले नहीं
 निकलते ॥ ११ ॥ मनभावन के दोनों नयन चित्त में गड़ गए हैं । वे झूल
 के समान धँस गए हैं और निकालने से भी नहीं निकलते हैं ॥ १२ ॥ प्रिय के
 नयन शिकारी हैं, जिन्होंने मन में आवास बना लिया है । मुझे अत्यधिक
 विश्वास है कि मेरा कलेजा निकालकर ले जायेंगे ॥ १३ ॥ प्रिय के नयन
 झूले के समान हैं जिसमें हमारे जैसे हजारों लोग बैठकर झूलते हैं ॥ १४ ॥

चंचलान के चित्त कौ चमकि चुराए लेहि ॥ १५ ॥
 ॥ सोरठा ॥ भयो सकल तन पीर रही सँभारि न चीर की ।
 बहियो रक्त हवै नीर प्रेम पिया की पीर तें ॥ १६ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ परदेसिन सौ प्रीति कही काहूँ नहि करनी ।
 परदेसिन के साथ कही नहि बात उचरनी । परदेसिन ब्रिय
 साथ कहो क्या नेह लगैयै । हो टूटि तरक दै जात बहुरि
 आपन पछुतैयै ॥ १७ ॥ परदेसी सौ प्रीति करी एकै पल
 नीकी । परदेसी सौ बैन भली भाखी हसि ही की । परदेसी
 के साथ भयो पिय नेह लगायो । हो परम प्रीति उपजाइ
 ब्रिथा जोवन न बितायो ॥ १८ ॥ हम शाहुन के पूत देस
 परदेस बिहारैं । ऊच नीच कोऊ होइ सकल अखियनन
 निहारैं । कहो कुअरि हम साथ नेह करिकै कस करिहौ ।
 हो हम जैहैं उठि कही बिरह बाँधी तुम जरिहौ ॥ १९ ॥
 ॥ रानी बाच ॥ हम न तजैं पिय तुमै कोटि जतनन जौ
 करिहौ । हसि हसि बात अनेक कछू की कछू उचरिहौ ।
 हम राची तव रूप रीझि मन में रही । हो इशक तिहारे
 जरी जुगनि हवैहैं कही ॥ २० ॥ (सू० प्र० ११५३) कसि करि

रसीले नयन सब रसों की झलक देते हैं और चमककर चंचलाओं के चित्त को
 चुरा लेते हैं ॥ १५ ॥ ॥ सोरठा ॥ सारे तन में पीड़ा होने लगी है और
 वस्त्रों की सँभाल भी नहीं रही है । प्रिय के प्रेम की पीड़ा में रक्त
 आँसू बनकर बह रहा है ॥ १६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ परदेसियों से किसी को
 प्रीति नहीं करनी चाहिए । परदेसियों से बातें भी नहीं करनी चाहिए ।
 परदेसी स्त्री के साथ भला क्या नेह लगाया जाय जो तड़ाक से टूट जायगा
 और फिर स्वयं पछताना पड़े ॥ १७ ॥ परदेसी से तो एक ही पल का प्यार
 काफी है और उसमें तो बस थोड़ी हँसी ही पर्याप्त है । हे प्रिय ! परदेसी के
 साथ स्नेह करो और प्रेम लगाओ । व्यर्थ ही यौवन को नष्ट न करो ॥ १८ ॥
 हम साहूकारों के पुत्र हैं जो देश-विदेशों में जाते हैं और समस्त ऊँच-नीच
 को अपनी आँखों से देखते हैं । बताओ कुँवरि ! हमारे साथ प्रेम करके क्या
 पाओगी ? हम लोग तो चल देंगे और तुम व्यर्थ ही बिरह में जलती
 रहोगी ॥ १९ ॥ ॥ रानी उवाच ॥ हे प्रिय ! हम तुम्हें नहीं छोड़ेंगी चाहे
 तुम अनेकों यत्न कर लो और हँस-हँसकर भला कोई की कोई बात बना लो ।
 हम तुम्हारे रूप पर मोहित हैं और तुम्हारे इशक में जल गई हैं । अन्यथा
 हम जोगिन हो जायँगी ॥ २० ॥ क्यों गर्व कर रहे हो ? उठकर जल्दी

रहे गुमान बेगि उठकै चलो । हार शिंगार बनाइ भेख सजि हैं भलो । जानत है सखी आजु जु पियहि न पाइ है । हो बीस बिस्वे बहु तरुनि तरफि मरि जाइ है ॥ २१ ॥ सुनत तरुनि को बचन कुअर मोहित भयो । सखी जितै लै गई चलयो तित कौ गयो । बिरहमंजरी जह थी साज सुधारकै । हो निजु हाथन सेजिया फूलन कह डारकै ॥ २२ ॥ लए गुरज कह हाथ कुअरि आवत भयो । भाँति भाँति रानी सौ भोग कमात भयो । चौरासी आसन द्रिड़ करे बनाइ करि । हो कामकला की रीत सु प्रीत रचाइ कर ॥ २३ ॥ तब लग ता कौ त्रिपत निकस्यो आइ करि । कर्यो गदा को घाइ सु कुअर रिसाइ करि । एक चोट भैं मारि जबै राजा लियो । हो तब अबला तिन चरित कहौ जिह बिध कियो ॥ २४ ॥ गिरे महल के तरैं त्रिपत कह डारकै । उठी ऊच सुर भए कूक कह मारकै । कर कर रोदन अधिक धरन गिर गिर परी । हो मर्यो हमारो राज दैवगति का करी ॥ २५ ॥ मर्यो त्रिपति सुनि लोग पहुँच्यो आइकै । खोदि महल ते देखै कहा उचाइकै । टूट टाटि सिर गयो न इक असतु

चलो । हम शृंगारादि कश्के सुन्दर वेश धारण करेंगी । यदि हमारी सखी आज प्रिय को प्राप्त नहीं कर पाएगी तो यह पूर्ण सत्य है कि वह तरुणी तड़फ-तड़फकर मर जाएगी ॥ २१ ॥ युवती के वचन सुनकर कुँवर मोहित हो गया और वह दासी जहाँ ले गई वहाँ चला गया, जहाँ बिरहमंजरी अपने हाथों से शय्या पर फूल बिछाकर शृंगार किए खड़ी थी ॥ २२ ॥ गदा हाथ में लेकर कुँवर आया और उसने भाँति-भाँति से रानी से रमण किया । उसने कामकला की रीति को प्रीतिपूर्वक अपनाकर चौरासी आसनों का प्रयोग किया ॥ २३ ॥ तब तक उसका राजा उधर आ निकला । कुँवर ने क्रुद्ध होकर गदा से वार कर उसे मार दिया । एक ही चोट से राजा को मारकर बाद में उस स्त्री ने क्या प्रपंच किया सो कहता हूँ ॥ २४ ॥ एक टूटे महल के नीचे राजा को फेंककर वह ऊँचे स्वर में चीखने-पुकारने लगी । अत्यधिक रुदन कर वह धरती पर गिर पड़ने लगी और कहने लगी कि दैव ने यह क्या किया, मेरे राजा को मार डाला ॥ २५ ॥ राजा की मृत्यु के बारे में सुनकर लोग आ पहुँचे और महल खोदकर देखने लगे । उसका सिर टूट-फट गया था और एक भी हड्डी नहीं बची थी । देखो स्त्री के प्रपंच

उबरियो । देखहु नारि चरित्र कहा इह ठा करियो ॥ २६ ॥
 धाम तरे दबि मर्यो सभन त्रिप जानियो । भेद अभेद न
 किनहुँ मूढ़ पछानियो । परजा पटुकन बाँधि सिरन पर आइकै ।
 हो रानी नितप्रति भज्यो मित सुख पाइकै ॥ २७ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ इकतालीस चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ २४१ ॥ ४४८६ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ ब्यालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुभटावतो नगर इक दच्छिन । छत्रकेतु
 त्रिपराज बिचच्छन । रूपमंजरी ताकी रानी । सुंदरि सकल
 भवन मै जानी ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अधिक त्रिपति कौ रूप
 जगत मै जानियै । इंद्र चंद्र सूरज कै मदन पछानियै । जो
 तरुनी ताकह भरि नैन निहारई । हो लोग लाज भुल कानि
 सु सकल बिसारई ॥ २ ॥ इक छबि मानमंजरी दुहिता शाहु
 की । जानुक जग के माँझ प्रगटि छबि माह की । छत्रकेतु
 राजा जब तवनि निहारियो । हो जानुक तानि (पृ० पं० ११५४)

ने इस स्थान पर क्या कर दिया ॥ २६ ॥ सबने समझा कि राजा महल के
 नीचे दबकर मर गया है और किसी भी मूर्ख ने रहस्य को न समझा । लोगों
 ने आकर सिरों पर पट्टियाँ बाँधी और इधर रानी अब नित्यप्रति अपने
 मित्र के साथ सुखपूर्वक रमण करने लगी ॥ २७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ इकतालीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २४१ ॥ ४४८६ ॥ अफजू ॥

दो सौ बयालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ दक्षिण में सुभटावती नामक एक नगर था जहाँ का
 विलक्षण राजा छत्रकेतु था । उसकी रानी रूपमंजरी थी जो सारे भुवनों में
 सुन्दर मानी जाती थी ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजा भी संसार में अत्यधिक
 रूपवान समझा जाता था । वह इंद्र, चन्द्र, सूर्य अथवा कामदेव माना
 जाता था । जो स्त्री उसकी तरफ नजर भरकर देख लेती थी वह समस्त
 लोक-लाज को विस्मृत कर देती थी ॥ २ ॥ छविमानमंजरी शाह की एक
 पुत्री थी । जो मानों संसार में साक्षात् सौंदर्य की प्रतिमा प्रकट थी ।
 छत्रकेतु राजा को जब उसने देखा तो ऐसा लगा मानो कामदेव ने धनुष

कमान मदन सर मारियो ॥ ३ ॥ निरखि त्रिपति को रूप
मदन के बसि भई । लोक लाज कुल कानि बिसरि सभ ही
गई । बधी बिरह के बान रही बिससाइकै । हो जनुक फल
पर भवर रह्यो उरझाइकै ॥ ४ ॥ प्रथम त्रिपति को हेरि
पान बहुरो करै । रहै चखन करि चारि न इत उत कौ टरै ।
आशिक की ज्यों ठाढ़ि बहुत हवै चिर रहै । हो मोहि भजै
त्रिपराज चित्त मै यौ कहै ॥ ५ ॥ एक दिवस त्रिपराज तवनि
तिय को लह्यो । मुहि ऊपर अटकी तिय यौ चित्त मै कह्यो ।
जो इच्छा इह करै सु पूरन कीजियै । हो जौ माँगै रति दान
तौ सोई दीजियै ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ इह सभ बात त्रिपति
पहिचानी । वा तिय सौ नहि प्रगट बखानी । भूपति बिनु
अबला अकुलाई । एक सहचरी तहाँ पठाई ॥ ७ ॥ हम बेधे
तव बिरह त्रिपति बर । मोरि बिनत सुनि लेहु खवनि धरि ।
लपटि लपटि मोसौ रति करियै । काम तपति पिय मोर
निवरियै ॥ ८ ॥ जब इह भाँति त्रिपति सुनि पाई । पत्नी
तिय प्रति बहुरि पठाई । जौ तूँ प्रथम नाथ कह मारै ।
तिह पाछे मुहि साथ बिहारै ॥ ९ ॥ जु कछु कह्यो तिह त्रिप

खींचकर उसे कामबाण मार दिया हो ॥ ३ ॥ राजा का स्वरूप देखकर
वह कामवश हो गई और लोक-लाज, कुल-मर्यादा उसने भुला दी । विरह-
बाण से बिधी वह आश्चर्यचकित हो उठी । ऐसा लग रहा था मानो फल
पर भौरा उलझकर रह गया हो ॥ ४ ॥ पहले वह राजा को देखती थी
और फिर कुछ खाती थी और उससे नज़र मिलाकर वह इधर-उधर नहीं
हिलती थी । वह सच्चे आशिक की तरह अत्यधिक समय तक खड़ी रहती
थी और सोचती थी कि राजा मेरे साथ रमण करे ॥ ५ ॥ एक दिन राजा
ने उस स्त्री को देखा और मन में सोचा कि यह स्त्री तो मेरे पर ही अटक
गई है । यह जो इच्छा करे इसे दिया जाना चाहिए और यदि रतिदान भी
माँगे तो इसे मिलना चाहिए ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा ने यह समझ लिया
परन्तु उस स्त्री से नहीं कहा । राजा के बिना अब वह स्त्री व्याकुल हो
उठी और उसने एक दासी को वहाँ भेजा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! मैं तो तुम्हारे
विरह में बिधी हूँ, मेरी प्रार्थना सुनो । मुझसे लिपट-लिपटकर रतिक्रीड़ा
करो और मेरी कामाग्नि को शान्त करो ॥ ८ ॥ जब राजा ने यह सुना
तो पत्र उसको भेजा कि यदि तुम पहले अपने पति को मार डालो तब मेरे
साथ विहास करो ॥ ९ ॥ राजा ने उसको जो समझाया वही उस सखी ने

समझाई । सु कछु कुअरि सौ सखी जताई । जौ तूं प्रथम
 शाहु कह मारै । तौ राजा के साथ बिहारै ॥ १० ॥
 ॥ दोहरा ॥ यौ त्रिप बर मोसो कह्यो प्रथम नाथ कौ घाइ ।
 बहुरि हमारी नारि हवै धाम बसहु तुम आइ ॥ ११ ॥
 ॥ चौपई ॥ जब इह भाँति तरुनि सुनि पाई । चित के बिखै
 इहै ठहराई । मैं इह प्रथम शाह के मारौ । त्रिप त्रिय हवै त्रिप
 साथ बिहारौ ॥ १२ ॥ वा राजा कौ धाम बुलाइसि । अधिक
 भानि हित भोग कमाइसि । गहि ब्रिडि दुहँ जाँघ महि धरै ।
 लपटि लपटि तासौ रति करै ॥ १३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ रमत
 त्रिपति को देखि शाहु क्रुद्धित भयो । गहि करि पान कृपान
 समुहि धावत भयो । नागरि कुअर अधिक अन कोप
 बिचारियो । हो गहिर नदी के साँहि पकरि तिह
 डारियो ॥ १४ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि नारि शाहु कह
 मार्यो । आपु रोइ सुर ऊच पुकार्यो । दै दै मूँड भूम
 पर मार्यो । लोगन सौं यौ प्रगट उचार्यो ॥ १५ ॥
 फिसल्यो (सू० पं० ११५५) पाव नदी पति परे । हा हा दैव न
 किनहूँ धरे । तरिया हुते न मरते बूडि करि । कह गति

आकर कुंवरी को बता दिया । यदि तुम पहले शाह को मार दो तो फिर
 राजा के साथ रमण कर सकती हो ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा ने कहा है
 कि पहले तुम अपने पति को मार डालो, फिर मेरे घर में मेरी पत्नी के रूप
 में आकर रहो ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ तरुणी ने जब यह सुना तो मन में यह
 निर्णय किया कि पहले मैं अपने पति को मारूँगी और फिर राजा की पत्नी
 बनकर उसके साथ रमण करूँगी ॥ १२ ॥ उसने राजा को घर में बुलाया
 और अत्यधिक स्नेहपूर्वक उससे संभोग किया । दोनों जंघाओं को दृढ़ता से
 पकड़कर लिपट-लिपटकर उसने रतिक्रीड़ा की ॥ १३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ राजा
 को भोग-संलग्न देखकर शाह क्रुद्ध हो उठा और कृपाण हाथ में पकड़कर
 सामने की तरफ लपका । उस कुंवरी ने मन में अत्यधिक क्रुद्ध हो उसे
 (मारकर) पकड़कर गहरी नदी में फेंक दिया ॥ १४ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस
 प्रकार उस स्त्री ने शाह को मार डाला और शोक से ऊँचे स्वर में पुकारना
 शुरू किया । वह धरती पर सिर पटकने लगी और लोगों से कहने
 लगी ॥ १५ ॥ पाँव फिसलने से मेरा पति नदी में गिर पड़ा है । हाय !
 दैव किसी को भी नहीं छोड़ता है । यदि तैराक होते तो डूबकर न मरते ।

कीन बिलोकहु मुर हरि ॥ १६ ॥ हौ किसहूँ फिरि मुख न
दिखैहौ । बैठि इकांत तपस्या कैहौ । यौ कहि जात सदन
इक भई । रैन परे त्रिप के ग्रहि गई ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह
बिधि त्रिप के घर गई भवन किवार चढ़ाइ । लोग लहैं उपमा
करै सदन न बदन दिखाइ ॥ १८ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ निज
नाइक कह मारि त्रिप के घर गई । लोग लखैं ग्रहि मांझ
तरुनि इसथित भई । किसू नाथ के शोक न बदन दिखावई ।
हो बैठी ग्रहि के मांझ गुबिंद गुन गावई ॥ १९ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ ब्यालीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २४२ ॥ ४५१७ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ तेतालीस चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ सुघरावती नगर इक सोहै । सुघरसेन
राजा तह को है । चित्रमंजरी ताकी रानी । जानुक छोर
सिंध मथि आनी ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ चारि सवति ताकी
रहै ससि की सोभ समान । इंद्रकेत तिन को तनुज रवि के

परमात्मा ने देखो मेरी क्या गति बना दी है ॥ १६ ॥ मैं अब किसी को
मुंह नहीं दिखाऊँगी और एकान्त में बैठकर तपस्या करूँगी । यह कहकर
एक घर में चली गई और रात होने पर वहाँ से राजा के महल में आ
गई ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रकार घर बंद करके वह राजा के पास आ
गई और लोग समझने लगे कि वह किसी के सामने नहीं आ रही है और
तपस्या कर रही है ॥ १८ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ अपने पति को मारकर राजा
के घर चली गई । लोग समझने लगे कि तरुणी घर में बैठी है और पति
के शोक में संतप्त किसी को मुंह नहीं दिखा रही है तथा घर में बंद
गोविंद का गुणगान कर रही है ॥ १९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ ब्यालीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २४२ ॥ ४५१७ ॥ अफजू ॥

दो सौ तेतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सुघरावती नामक एक नगर था, जिसका राजा सुघरसेन
था । उसकी रानी चित्रमंजरी मानों क्षीरसागर में से मंथन के पश्चात्
निकाली गई थी ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ उसकी चार सौतनें चन्द्र-किरणों के समान

रूप प्रमान ॥ २ ॥ चित्रमंजरी बास के पुत्र एक ग्रहि नाहि ।
 ताँहि चितै चौगुन चपै सोचि पचै मन माहि ॥ ३ ॥ सोतनीन
 कौ सुत सहित अति प्रताप लखि नैन । बुडी सोच सर मै रहै
 प्रगट न भाखै बैन ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ जासौ प्रीति त्रिपति
 की जानी । पुत्र रहत सोऊ पहिचानी । तासौ अधिक प्रीति
 उपजाई । हितू जानि करि करी बडाई ॥ ५ ॥ जब बहु
 राज कुअरि ग्रिहि आवै । बिखि भोजन लै ताँहि खवावै ।
 जिय तँ खोइ तवन कौ डार्यो । आपु त्रिपति सौ जाइ
 उचार्यो ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ गाढ़ो अमली ना हुतो गाढ़
 रहै हठवान । सोफी थो ब्रिय कहत लौ पल मै तजै परान ॥ ७ ॥
 ॥ चौपाई ॥ ब्रिय चित अधिक शोक करि भारो । उठत
 गिरत पति भए उचारो । थर थर करत कहै नहि आवै ।
 तऊ बचन तुतरात सुनावै ॥ ८ ॥ कहो तु त्रिप इक सैन
 सुनाऊँ । राज नशट ते अधिक डराऊँ । भानछटा तव सुत
 बिखि छाई । ताँते मै धावत हयाँ आई ॥ ९ ॥ मेरो नामु
 न तिह कहि दीजै । निजु सुत की रच्छाऊ कीजै । जौ सुनि
 भानछटा इह जावै । चित (सू०पं० ११५६) कौ हित हम सौ

थी और उनका पुत्र इन्द्रकेतु सूर्य के समान रूपवान था ॥ २ ॥ चित्रमंजरी
 के घर में एक भी पुत्र नहीं था जिससे वह सोच-सोचकर चिंतातुर बनी
 रहती थी ॥ ३ ॥ सौतनों के पुत्र-सहित ऐश्वर्ययुक्त देखकर चिन्ता के सरोवर
 में वह डूबी रहती थी और चुन लगाए रहती थी ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा
 की प्रीति जिसके साथ अत्यधिक थी पुत्र-विहीना ने उसे पहचान लिया ।
 उसने उससे अत्यधिक प्रीति पैदा कर ली और उसकी प्रशंसा की ॥ ५ ॥
 जब वह राजकुमार घर आता था तो उसे भोजन में विष खिला देती थी ।
 उसे जान से मार डाला और स्वयं राजा से जा कहा ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ वह
 अधिक नशे को पचाने में असमर्थ था, इसलिए उस नौसिखिए ने तुश्नत
 प्राण त्याग दिये ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ स्त्री ने अधिक शोकाकुल हो गिरते-
 पड़ते जाकर पति से कहा । थरथर काँपते कहते नहीं बनता था, इससे
 हकलाते हुए उसने कहा ॥ ८ ॥ राजन् ! कहो तो एक इशारा तुम्हें करूँ,
 क्योंकि मैं राज्य के नष्ट होने से बहुत घबराती हूँ । भानुछटा ने तुम्हारे
 पुत्र को जहर दे दिया है, इसी से मैं डरते हुए यहाँ आई हूँ ॥ ९ ॥ मेशा
 नाम उससे मत कहना और अपने पुत्र की रक्षा करो । यदि भानुछटा को पता

बिसरावै ॥ १० ॥ सुनत बचन उठि त्रिपति सिधारा ।
 अतक पूत छित पर्यो निहारा । रोवै लाग अधिक दुख
 पाइसि । दै दै पाग धरनि पटकाइसि ॥ ११ ॥
 ॥ दोहरा ॥ सूरन थो कैफीन थो जियत रहैं ऐंठाइ । भखत
 सूम सोफी मर्यो बिखहि न सक्यो पचाइ ॥ १२ ॥ तब राजा
 गहि केस ते रानी लई मँगाइ । साचु झूठ समझ्यो न कछु
 जमपुर दई पठाइ ॥ १३ ॥ सुत मार्यो सबतिह सहित त्रिप
 सौ किया पयार । ब्रह्म बिशन लहि ना सकै त्रिया चरित्र
 अपार ॥ १४ ॥ ॥ रानी बाच ॥ राज नशट ते मैं डरी सुनु
 मेरे पुरहूत । कहा भयो जौ सबति को तरु तिहारो
 पूत ॥ १५ ॥ ॥ चौपई ॥ जब इह भाँति राव सुनि पावा ।
 ताकौ सतिवन्ती ठहिरावा । तासौ अधिक प्रीति उपजाइसि ।
 और त्रियहि सभ कौ बिसराइसि ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मन्त्री भूप संवादे दो सौ तेतालीस चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २४३ ॥ ४५३३ ॥ अफजू ॥

लग गया तो उसका स्नेह मुझसे समाप्त हो जायगा ॥ १० ॥ बात सुनते
 ही राजा चल पड़ा और उसने मृतक पुत्र को धरती पर पड़े देखा । अधिक
 दुःख पाकर वह रोने लगा और धरती पर सिर पटकने लगा ॥ ११ ॥
 ॥ दोहरा ॥ जो नशे के शूरवीर हैं वे ऐंठकर भी जीवित बने रहते हैं । परन्तु
 न पीनेवाला पीकर मर गया और विष को न पचा सका ॥ १२ ॥ तब
 राजा ने केशों से पकड़कर रानी को मँगा लिया । उसने सत्य-झूठ तो कुछ
 समझा नहीं और उसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥ १३ ॥ सौतन-सहित
 पुत्र को मार दिया और राजा से प्यार किया । ब्रह्मा, विष्णु भी स्त्री के
 अपार चरित्र को नहीं समझ सकते हैं ॥ १४ ॥ ॥ रानी उवाच ॥ हे मेरे
 इन्द्रदेव ! मैं तो राज्य नष्ट होने की संभावना से डर गई थी । क्या हुआ
 जो सौतन का था फिर भी तुम्हारा पुत्र तो था ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब
 राजा ने यह सुना तो उसे सत्यवती माना । उससे अधिक प्यार किया तथा
 अन्य सब स्त्रियों को भुला दिया ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ तेतालीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २४३ ॥ ४५३३ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ चौआलीस चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ पदमसिंघ राजा इक सुभमति । दुरजनांत
दुख हरन बिकट अति । बिक्रम कुअरि तवन की नारी ।
बिधि सुनार साँचे जनु ढारी ॥ १ ॥ सुंभकरन ताँकौ सुत अति
बल । अरि अनेक जीते जिह दलि मलि । अप्रमान तिह
रूप कहत जग । निरखि नारि हवै रहत थकित मग ॥ २ ॥
जात जितै रितु पति जिमि भयो । हवै उजारि पाछे बन
गयो । पुरजन चलहि संगि उठि सबही । जानुक बसे नाहि
पुर कबही ॥ ३ ॥ जित जित जात कुअरि मग भयो ।
जानुक बरखि क्लिपाबुंद गयो । लोगन नैन लगे तिह बाटैं ।
जानुक बिखित अंम्रित कहि चाटैं ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ जिह
जिह मारग के बिखै जात कुअर चलि सोइ । नैन रंगीलो
सभन के भूम छबीली होइ ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ ब्रिखधुज
नगर शाह इक ताके । नागरि कुअरि नारि ग्रहि जाके ।
नागरिमती सुता तिह सोहै । नगरनि के नगरक कह मोहै ॥ ६ ॥

दो सौ चौवालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ शुभमति का स्वामी राजा पदमसिंह दुर्जनों का नाश
करनेवाला तथा दुःखों को समाप्त करनेवाला था । उसकी स्त्री विक्रमकुंवरि
थी जो मानों विधि सुनार ने साँचे में ढालकर बनाई हो ॥ १ ॥ उसका
बलवान पुत्र शुंभकरण था, जिसने अनेकों शत्रुओं को मारकर जीता था ।
वह अपरिमित रूप से सौंदर्यशाली था । स्त्रियाँ उसकी राह देख-देखकर
थक जाती थीं ॥ २ ॥ वह वसंतऋतु की तरह जहाँ भी जाता था उसके
पीछे प्रकाश भी चलता था । सभी नगरनिवासी भी उसके साथ ऐसे चल
पड़ते थे मानों कभी नगर में रहे ही न हों ॥ ३ ॥ वह राजकुंवर जिस-जिस
ओर चला जाता था मानों उसी ओर कृपादृष्टि हो जाती थी । लोगों की
नज़रें उसी ओर लगी रहती थीं, जैसे विष अमृत की प्रतीक्षा किया करता
है ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ वह कुंवर जिस-जिस मार्ग पर निकल जाता था वहाँ
सबके नेत्र रंगीले और वहाँ की सब धरती छबीली हो जाती थी ॥ ५ ॥
॥ चौपाई ॥ उस नगर में वृक्षध्वज नामक एक शाह रहता था जिसकी स्त्री
नागरकुंवरि थी । उसकी पुत्री नागरमती थी जो नगर के सभी लोगों के
मन को मोहनैवाली थी ॥ ६ ॥ उसने उस कुंवर को देख लिया और लज्जा

तिन बहु कुअरि द्विगन लहि पावा । छोरि लाज कहु नेहु
 लगावा । मन मै अधिक मत स्वै झूली । मात पिता की
 सभ सुधि भूली ॥ ७ ॥ जवन (मू० प्र० ११५७) सारग त्रिप सुत
 चलि आवै । तही कुअरि सखियन जुत गावै । चारु चारु
 करि नैन निहारै । नैन सैन दै हसै हकारै ॥ ८ ॥
 ॥ दोहरा ॥ इशक मुशक खाँसी खुरक छिपत छपाए नाहि ।
 अंत प्रगट हवै जग रहहि त्रिशटि सकल के माहि ॥ ९ ॥
 ॥ चौपई ॥ प्रचुर बात इह भई नगर मै । चलत चलत सु
 गई तिह घर मै । तह ते हटकि सात पितु राखी । कटु कटु
 बात बदन तें भाखी ॥ १० ॥ राखहि हटकि जानि नहि देही ।
 भाँति भाँति सौ रच्छ करेही । ताते तरुनि अधिक दुख पावै ।
 रोवतहीं दिन रैन गवावै ॥ ११ ॥ ॥ सोरठा ॥ अरी बरी
 यह प्रीति निसु दिन होत खरी खरी । जल सफरी की रीति
 पीय पानि बिछुरे मरत ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ जे बनिता
 बिरहिन भई पंथ बिरह को लेहि । पलक बिखै प्रिय के
 निमित्त प्रान चटक दै देहि ॥ १३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ लिखी
 प्रेम पत्नी सखी बोलि आछी । लगी प्रीति लाला भए राम

का त्याग कर उससे नेह लगा लिया । वह मन में मस्त हो उठी और उसे
 माता-पिता की भी सुधि भूल गई ॥ ७ ॥ जिस रास्ते पर राजा जा रहा था
 वहीं वह कुँवरि सखियों-समेत गीत गाने लगी । वह सुन्दर-सुन्दर नयनों से
 देखने लगी और आँखों के संकेतों से हँसने लगी ॥ ८ ॥ ॥ दोहा ॥ प्यार,
 गंध, खाँसी और खुजली छिपाए नहीं छिपतीं और अंत में सारे जग में जाहिर
 हो जाती हैं ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ सारे नगर में बात फैल गई और चलते-
 चलते वह उसके घर तक भी पहुँच गई । माता-पिता ने उसे मना करके रखा
 और उसे कड़वे वचन भी कहे ॥ १० ॥ वे उसे जाने नहीं देते थे और विभिन्न
 प्रकार से उसकी रखवाली करने लगे । इससे तरुणी अत्यधिक दुखी थी
 और रोते-रोते ही दिन-रात बिताती थी ॥ ११ ॥ ॥ सोरठा ॥ यह प्रेम की
 रीति ही ऐसी है कि यह रात-दिन बढ़ती ही जाती है । यह तो जल और
 मछली की रीति है कि प्रियतम पानी से बिछुड़ने पर मछली मर ही जाती
 है ॥ १२ ॥ ॥ दोहा ॥ यदि स्त्री विरह में विरहिणी का रास्ता अपना
 ले तो प्रिय के विरह में पलक झपकते ही प्राण भी दे देती है ॥ १३ ॥
 ॥ भुजंग छंद ॥ उसने सखी को बुलाया और प्रेम-पत्र लिखा कि हे प्रिय !
 राम साक्षी है, मुझे तुमसे प्रेम हो गया है । यदि मैं आज तुम्हें नहीं देखूँगी

साछी । कह्यो आजु जो मैं न तोकौ निहारौ । घरी एक मै
 वारि प्रानानि डारौ ॥ १४ ॥ करो बाल बेलंब ना आजु ऐयै ।
 इहाँ ते मुझे काढि लै संग जैयै । कबै मानु मानी कहा मान
 कीजै । महाराज प्रानान को दान दीजै ॥ १५ ॥ रची बाल
 लाला सभै रूप तेरे । मिलौ आजु मोकौ सुनो प्रान मेरे ।
 कहा मान माते फिरौ ऐंठ ऐंठे । लयो चोरि मेरो कहा
 चित्त बैठे ॥ १६ ॥ करो हार शिंगार बागौ बनावौ । किए
 चित्त मै चौपि बोरी चबावौ । उठो बेगि बैठे कहाँ प्रान मेरे ।
 चलो कुंज मेरे लगै नैन तेरे ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ बचन
 बिकाने कुअरि के कहै कुअरि के संग । एक न मानी मंदमति
 रस के उमगि तरंग ॥ १८ ॥ ॥ चौपई ॥ नाहि नाहि मति
 मंद उचारो । भली बुरी जड़ कछु न बिचारो । बचन मानि
 ग्रहि ताहि न गयो । शाहु सुता कह भजत न भयो ॥ १९ ॥
 ॥ कबियो बाच ॥ ॥ अडिल्ल ॥ कामातुर हवै जु त्रिय पुरख
 प्रति आवई । घोर नरक सहि परै जु ताँहि न रावई ।
 जो पर त्रिय पर सेज भजत है जाइ करि । हो पाप कुंड के
 माहि परत सो धाइ करि ॥ २० ॥ नाहि नाहि पुनि कुअर

तो घड़ी घर में प्राण न्योछावर कर दूंगी ॥ १४ ॥ हे प्रिय ! अविलम्ब यहाँ
 आओ और मुझे यहाँ से निकालकर ले जाओ । तुम महामानी हो, पर मान
 मत करो और मुझे प्राणों की भिक्षा दो ॥ १५ ॥ सभी स्त्रियाँ तुम्हारे रूप
 में लीन हैं । मेरे प्राणप्रिय मुझे आज आकर मिलो । हे मदमाते प्रिय !
 क्यों अकड़कर बैठे हो ? तुमने तो बैठे-बैठे मेरा चित्त चुरा लिया है ॥ १६ ॥
 हार-शृंगार कर वस्त्र पहनकर और मन में प्रसन्न होकर पान का बीड़ा
 चबाओ । शीघ्र उठो हे मेरे प्रिय ! मेरे घर में चले आओ । तुम्हारी ओर
 मेरी आँखें लगी हुई हैं ॥ १७ ॥ ॥ दोहा ॥ कुँवरि के ये वचन कुँवर से कहे
 गए, परन्तु उस मंदमति ने रस-तरंग से उछले वे वचन नहीं माने ॥ १८ ॥
 ॥ चौपाई ॥ उस मंदमति ने “नांह-नांह” ही कहा और भले-बुरे का कुछ
 विचार नहीं किया । बात मानकर उसके घर नहीं गया और शाह की पुत्री
 से रमण नहीं किया ॥ १९ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ अडिल्ल ॥ जो स्त्री
 कामातुर हो पुरुष के पास आए और वह उसके साथ केलिक्रीड़ा न करे तो
 ऐसा पुरुष घोर नरक में जाता है, परन्तु जो पर-स्त्री को परशय्या पर जाकर
 भोगता है वह भी दौड़कर पापकुंड में जा पड़ता है ॥ २० ॥ पुनः वह कुँवर
 “नांह-नांह” कहने लगा, परन्तु सज-धजकर उस तरुणी के घर चला गया ।

ऐस उचरत भयो । बनि तनि सजिन शिंशार तरुनि के ग्रहि
गयो । बाल अधिक रिस भरी चरित बिचार्यो । (मू० पं० ११५८)
हो मात पिता के सहित मित हनि डारियो ॥ २१ ॥
॥ कबियो बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ कामातुर हवै जो तरुनि मुहि
भजि कहै बनाइ । ताहि भजै जो नाहि जन नरक परै पुनि
जाइ ॥ २२ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ कुअरि कटारी काढि सु कर
भीतर लई । पितु के उर हनि काढि मात के उर दई ।
खंड खंड निज पान पिता के कोटि करि । हौ भीति कुअरि
के तीर जात भी गाड करि ॥ २३ ॥ पहिर भगौहे बस्त्र
जात त्रिप पै भई । सुत की इह बिधि भाख बात तिह तितु
दई । रावि पूत तव सोरि निरखि छवि लुभधियो । हो ताते
मेरो तात बाधि करि बढि कियो ॥ २४ ॥ खंड खंड करि
गाडि भीति तर राखियो । बचन अचानक इह बिधि त्रिप सौ
भाखियो । राइ न्याइ करि चलिकै आपि निहारियै । हो
निकसे हनिये याहि न मोहि सँघारियै ॥ २५ ॥
॥ दोहरा ॥ पति मारे की जब सुनी सोरि मात धुनि कान ।
मारि मरी जमधर तबै सुरपुर किअसि पयान ॥ २६ ॥
सुनि राजा ऐसो बचन व्याकुल उठ्यो रिसाइ । भीत तरें ते

स्त्री ने अत्यधिक क्रुद्ध हो प्रपंच किया और माता-पिता-समेत उस मित को
मार डाला ॥ २१ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ जो कामातुर स्त्री कहे
कि मेरे साथ रमण करो और फिर भी उसके साथ कामक्रीड़ा न की जाय
तो ऐसा व्यक्ति नरक में जाता है ॥ २२ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ कुँवरि ने कटार
निकालकर हाथ में पकड़ी और पिता की छाती में मारकर निकालकर माँ
के पेट में दे मारी । अपने पिता के अनेकों टुकड़े कर उन्हें धरती में गाड़कर
वह डरे हुए कुँवर के पास गई ॥ २३ ॥ अब वह भगवे वस्त्र धारण कर
राजा के पास चली गई और उसके पुत्र के वारे में उससे इस प्रकार कहने
लगी । राजन् ! तुम्हारा पुत्र मेरी छवि देखकर मोहित हो उठा और इसी
लिए उसने मेरे पिता को बाँधकर मार डाला है ॥ २४ ॥ इसने उसके टुकड़े-
टुकड़े करके उसको दीवार के नीचे दबा दिया है । इस प्रकार उसने राजा
को बताया । हे राजन् ! स्वयं चलकर देखो, यदि वह निकल आए तो इसे
अन्यथा मुझे ही मार दीजिए ॥ २५ ॥ ॥ दोहा ॥ पति के मरने की बात
जब मेरी माँ ने सुनी तो वह भी कटार मारकर तुरन्त मरकर स्वर्ग
सिंघार गई ॥ २६ ॥ राजा यह वचन सुनकर व्याकुल हो उठा और दीवार

शाहु को म्रितक निकास्यो जाइ ॥ २७ ॥ ॥ चौपई ॥ टूक
बिलोकि चकित हवै रह्यो । साचु भयो जो मुहि इन चह्यो ।
भेद अभेद न कछू बिचार्यो । सुत को पकरि काटि सिर
डार्यो ॥ २८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ प्रथम मात पितु मारि बहुरि
निजु मोत सँघार्यो । छल्यो भूढ़ मति राइ जवन नहि न्याइ
बिचार्यो । सुनी न ऐसी कान कहूँ आगे नहि होई । हो
त्रिय चरित्र की बात जगत जानत नहि कोई ॥ २९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ चौआलीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २४४ ॥ ४५६२ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ पैंतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ प्राची दिसा प्रगट इक नगरी । खंभावति
सभ जगत उजगरी । रूपसेन राजा तह केरा । जाके दुशट
न बाचा नेरा ॥ १ ॥ मदनमंजरी नारि तवन की । ससि की
सी छवि लगति जवन की । म्रिग के नैन दोऊ हरि लीने ।
मुक नासा कोकिल बच कीने ॥ २ ॥ राजा पियत अमल सभ

के नीचे से मृतक शाह को जा निकलवाया ॥ २७ ॥ ॥ चौपाई ॥ टुकड़े
देखकर वह चकित रह गया और सोचने लगा कि जो इसने कहा है वह
निश्चित रूप से सत्य है । उसने भेदाभेद को कुछ नहीं समझा और पुत्र को
पकड़कर उसका सिर काट दिया ॥ २८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ पहले माता-पिता
को मारा, फिर मित्र को मारा और फिर मूर्ख राजा को भी छल लिया, क्योंकि
उसने भी न्यायपूर्वक विचार नहीं किया । किसी ने तो ऐसा सुना था
और न ही आगे ऐसा होगा । स्त्री के प्रपंच को संसार में कोई नहीं जान
सकता ॥ २९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ चवालीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २४४ ॥ ४५६२ ॥ अफजू ॥

दो सौ पैंतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पूर्व दिशा में, जगतविख्यात खंभावती नगर था, जिसका
राजा रूपसेन था और उसके पास कोई भी दुष्ट बच नहीं सकता था ॥ १ ॥
उसकी स्त्री मदनमंजरी चन्द्रमा की-सी छविवाली थी । उसने तो मानों मृग
के दोनों नयनों को चुरा लिया था, उसकी नासिका तोते के समान थी और

भारी । भाँति भाँति सौ भोगत नारी । पोसत भाँग अफीम
 चढ़ावै । प्याले पी पचासइक जावै ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ भाँति
 भाँति रनयनि सौ भोग कमावई । (मू० ग्रं० ११५६) आसन
 चुंबन करत न गनना आवई । चारि पहर रति करै
 अधिक सुख पाइकै । हो जो रानी तिह रमै रहै
 उरझाइकै ॥ ४ ॥ लो रस तिलकमंजरी त्रियिक बखानिये ।
 अधिक जगत के भाँझ धनवती जानिये । जावित्री जाइफरन
 शाहु चबावई । हो सोफी सूम न भूलि भाँग कौ
 खावई ॥ ५ ॥ शाहु आपु कौ स्थानो अधिक कहावई । भूलि
 भाँग सुपनेहूँ न घोटि चढ़ावई । पिये जु रानी भाँग अधिक
 तासौ लरै । हो कौड़ी कर ते दान न शोकातर करै ॥ ६ ॥
 ॥ चौपाई ॥ पियत भाँग काहू जो हेरै । ठाढो होत न ताके
 नेरै । भयो सदन तिह कहै उजारा । जाकै कूँडा बजै
 दुआरा ॥ ७ ॥ ताको होत उजारि कहै घर । भाँग अफीम
 भखत है जो नर । सोफी सकल बुधि बल रहै । अमलिन को
 कछू कै नहि कहै ॥ ८ ॥ यह रस तिलकमंजरी सुनी । गई

वाणी कोयल के समान थी ॥ २ ॥ राजा भारी नशा कर विभिन्न प्रकार से
 स्त्रियों से रमण किया करता था । पोस्त, भाँग और अफीम के लगभग
 पचास प्याले पी जाता था ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ रानियों से भाँति-भाँति
 प्रकार से संभोग करता था और अगणित आसन, चुंबनादि किया करता था ।
 चार प्रहर तक सुखपूर्वक रतिक्रिया किया करता था और जिस रानी से भी
 रमण करता था उसे उलझाकर रख लेता था ॥ ४ ॥ रसतिलकमंजरी
 नामक एक स्त्री थी जो अत्यधिक धनवान् जानी जाती थी । शाह जावित्री,
 जायफल आदि खाता था और वह कंजूस भूलकर भी भाँग नहीं खाता
 था ॥ ५ ॥ शाह अपने आपको अत्यधिक चतुर कहलाता था और भूलकर
 सपने में भी भाँग घोटकर नहीं चढ़ाता था । रानी जब भाँग पीती थी तो
 उससे लड़ता था और वह सदैव शोकाकुल रहनेवाला कभी एक कौड़ी भी
 दान नहीं करता था ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह किसी को भाँग पीते यदि
 देख लेता था तो उसके पास खड़ा नहीं होता था । जिसके यहाँ भाँग
 घोटने का सिल-लोढ़ा बजता वह कहता कि इसका घर बर्बाद हो जाएगा ॥ ७ ॥
 जो व्यक्ति भाँग, अफीम खाता वह उसके लिए कहता कि इसका घर उजड़
 जायगा । न पीनेवाले बुद्धि-बल के स्वामी होते हैं और भंगेड़ियों के पास
 यह सब कुछ नहीं होता ॥ ८ ॥ रसतिलकमंजरी ने यह सुना तो सिर

पास हसि मूँडी धुनी । कहाँ बकत है पर्यो मंद मति ।
 बाहन सोफि सीतला की गति ॥ ९ ॥ ॥ छंद ॥ अमल पियहि
 त्रिपराज अधिक इसलीयन बिहारै । अमल सूरसा पियहि दुजन
 सिर खड़ग प्रहारै । अमल भखहि जोगीस ध्यान जडुपति को
 धरही । चाखि तवन को स्वाद सूम सोफी क्या करही ॥ १० ॥
 ॥ शाहु बाच ॥ अमल पियत जे पुरख परे दिन रैन उधावत ।
 अमल जु घरी न पियहि ताप तिन कह चड़ि आवत । अमल
 पुरखु जो पीयै किसु कारज के नाही । अमल खाइ गढ़ रहै
 म्रितक ह्वै कै घर माही ॥ ११ ॥ ॥ त्रियो बाच ॥ स्थाने सोचित
 रहै राज कैफियै कमावै । सूम संचि धन रहै सूर दिन एक
 लुटावै । अमल पिए जसु होइ दान खाँडे नहि हीनो । अंत
 गुदा के पैड सूम सोफी जिय दीनो ॥ १२ ॥ भाँग पुरख वै
 पियहि भगत हरि की जे करही । भाँग भखत बै पुरख किसू
 की आस न धरही । अमल पियत ते बीर बरत जिन तिन
 मसतक पर । ते क्या पीवहि भाँग रहै जिनके तकरी
 कर ॥ १३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ सदा सरोही ऊपर कर जिनको
 रहै । सिर मो खाइ क्रिपान जु तिह कटु बच कहै । निबूआ

झटकती और हँसती हुई वह उसके पास गई । वह बोली, तुम क्या गधे की
 तरह बक-बक कर रहे हो ? ॥ ९ ॥ ॥ छंद ॥ राजाओं को नशा प्यारा
 होता है, क्योंकि इसी से वे अधिक स्त्रियों के साथ रमण करते हैं । शूरवीरों
 को भी यह प्रिय है । इसी से वे दुर्जनों पर खड़ग से प्रहार करते हैं । योगी
 भी यही नशा खाकर भगवान का ध्यान करते हैं । परन्तु न पीनेवाले कंजूस
 उसके बारे में क्या कहेंगे ? ॥ १० ॥ ॥ शाह उवाच ॥ नशा पीनेवाले
 दिन-रात ऊँघते हैं और नशा घड़ी भर न मिलने से उन्हें ज्वर-सा हो जाता
 है । नशेवाला व्यक्ति किसी काम का नहीं होता, क्योंकि वह नशा पीकर
 मृतक के समान घर में ही पड़ा रहता है ॥ ११ ॥ ॥ त्रिया उवाच ॥ चतुष
 जानते हैं कि राजा नशा ही करता है । कंजूस एकल करते रहते हैं और
 शूरवीर एक दिन में ही लुटा देते हैं । नशा पीने से यश होता है और दान
 खंडित नहीं होता है । न पीनेवालों के प्राण अस्त में गुदा के रास्ते से
 निकलते हैं ॥ १२ ॥ भाँग वे पीते हैं जो प्रभु की भक्ति करते हैं । भाँग वे पीते
 हैं जो किसी से कोई आशा नहीं करते । नशा वे पीते हैं जिन्होंने कोई व्रत ले
 रखा होता है । वे भला क्या भाँग पिएंगे जो तशजू हाथ में पकड़े रहते
 हैं ॥ १३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ जिनका हाथ सदा तलवार पर रहता है और सिर

इक कहि रहै मूँछि ऐसे कीए । हो ते नर पीवहि भाँग कहाँ
पसु तैं पीए ॥ १४ ॥ अगं जान (मू० प्र० ११६०) जो गंजत सदा
अगंज नर । तसत ताप तुटि जाइ निरखि जिह खड़ग कर ।
ते पीवत हैं भाँग अधिक जिन जस लए । हो दान खाँड कै प्रथम
बहुरि जग ते गए ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ ते नर कैफन को पियत
तैं क्या पियाहि अजान । कर तकरी पकरत रह्यो कसी न
कसर क्रिपान ॥ १६ ॥ ॥ चौपई ॥ यौ सुनि बैन शाहु रिसि
भरियो । निजु त्रिय कह कटु बचन उचरियो । लात मुसट
भें किए प्रहारा । तैं क्यों ऐसी भाँति उचारा ॥ १७ ॥
॥ त्रियो बाच ॥ कहो शाहु तौ साच उचरऊँ । तुम ते तऊ
अधिक जिय डरऊँ । जो कुल रीति बडन चलि आई । सो
मैं तुहि प्रति कहत सुनाई ॥ १८ ॥ ॥ छपै छंद ॥ दिजन दान
दीबो द्रुजन सिर खड़ग बजैबो । महाँ दुशट कह दंडि दारिद
दीनान गवैबो । निजु नारिन के साथ केल चिर लौ मचि
मंडब । खंड खंड सन खेत खडन खंडन सो खंडब । अमल न
पी एती करैं क्यों आयो महिलोक सहि । सुर असुर जच्छ

पर कृपाण का वार खाते हैं परन्तु फिर भी क्रोध छोड़ते नहीं; मूँछे ऐसी बनाते हैं कि उन पर निबू टिक जाए, ऐसे व्यक्ति ही भाँग पीते हैं । तुम्हारे जैसे पशु क्या पिँएंगे ॥ १४ ॥ जो न मरनेवाले व्यक्ति सदैव आगे की ओर ही जाते हैं । जिनके हाथों में खड़ग देखकर सभी ताप नष्ट हो जाते हैं, वे अत्यधिक यश वाले व्यक्ति ही भाँग पीते हैं और खड़ग दान कर संसार से जाते हैं ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ वे व्यक्ति नशा पीते हैं । हे अनजान ! तुम क्या पिओगे ? तुमने तो हमेशा हाथ में तराजू पकड़ रखी और कभी तलवार नहीं पकड़ी ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ यह सुनकर शाह क्रुद्ध हो उठा और उसने अपनी स्त्री को कटु बचन कहे । उसे लातों-मुक्कों से मारा और कहा कि तुमने ऐसा क्यों कहा ॥ १७ ॥ ॥ स्त्री उवाच ॥ हे शाह ! कहो तो सच बताऊँ । तुमसे मुझे अधिक डर लगता है । यह तो कुल की रीति चली आई है, मैं वही तुमसे कहती हूँ ॥ १८ ॥ ॥ छप्पय छन्द ॥ ब्राह्मणों को दान दोगे, दुर्जनो के सिर पर खड़ग चलाओगे, दुष्टों को दंडित करोगे और दीनों की दरिद्रता दूर करोगे । अपनी स्त्रियों के साथ अधिक समय तक रति-क्रीडा करोगे और खलों को युद्धक्षेत्र में खंड-खंड कर दोगे । सुर, असुर, यक्ष, गंधर्व, नर, सभी उस व्यक्ति से हँस-हँस कर कहते हैं कि यदि तुम्हें नशा नहीं पीना था तो इस धरती लोक पर आये

गंधर्व सभैं तिह नर कौ हसि हसि कहहि ॥ १९ ॥ ॥ छंद ॥ सो
 नर पिथत न भांग रहै कौडी महि जिह चित । सो नर
 अमल न पियै दान भैं नहि जाको हित । स्यानो अधिक कहाइ
 काक की उपमा पावहि । अंत स्वान ज्यों सरै दीन दुनिया
 पछुतावहि ॥ २० ॥ ॥ दोहरा ॥ अंत काक की अति सरैं मन
 भीतर पछुताहि । खंडा गह्यो न जस लियो कछू जगत के
 मांहि ॥ २१ ॥ ॥ शाह बाच ॥ ॥ चौपई ॥ सुन शाहुनि तैं कछू
 न जानत । सोफिन सौ अमलिन कह ठानत । सोफी रंक
 दरबु उपजावै । अमली त्रिपहूँ धाम लुटावै ॥ २२ ॥
 ॥ त्रियो बाच ॥ ॥ छंद ॥ जे अमलन कह खाइ खता कबहूँ
 नहि खावैं । मूँडि अवर नहि जाहि आपु कबहूँ न मुँडावैं ।
 चंचलान को चित्त चोर छिन इक मांहि लेहीं । भाँति भाँति
 भासिननि भोग भावत मन देहीं ॥ २३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ भजहि
 बास कैफियै केल जुग जाम सचावहि । हरिणा जिमि उछलहि
 नारि नागरिन रिझावहि । सौफी चड़तहि काँपि धरनि ऊपर
 परैं । हो बीरज खलत हवै जाहि कहाँ जड़ रति करें ॥ २४ ॥
 बीरज भूमि गिरि परै तकै मुख बाइकै । निरखि नारि की ओर

ही क्यों ॥ १९ ॥ ॥ छंद ॥ जो व्यक्ति भांग नहीं पीता और जिसका मन
 सदैव पैसे में ही लगा रहता है; जो नशा नहीं पीता और दान नहीं करता वह
 व्यक्ति कौए के समान सयाना तो कहलवाता है, पर अंत में कुत्ते की मौत मरता
 है और दीन-दुनिया में पछताता है ॥ २० ॥ ॥ दोहरा ॥ अंत में कौवे की
 मौत मरकर वह पछताता है कि न तो मैंने खड़ग पकड़ा और न ही यश अर्जित
 किया ॥ २१ ॥ ॥ शाह उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ सुन स्त्री, तुम कुछ नहीं जानती
 हो और सूफियों (न पीनेवालों) से नशे की बात करती हो । सूफी निर्धन
 भी धन पैदा करता है और नशेड़ी राजा भी घर लुटा देता है ॥ २२ ॥ ॥ स्त्री
 उवाच ॥ ॥ छंद ॥ जो नशा पीता, खाता है वह कभी धोखा नहीं खाता ।
 वह दूसरों को तो मूढ़ लेता है पर खुद कभी नहीं मूढ़ा जाता । स्त्रियों का चित्त
 वह एक क्षण भर में चुरा लेता है और भ्रामिनियों को भाँति-भाँति के भोग-
 क्रियाएँ देता है ॥ २३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ नशा पीनेवाले स्त्रियों के साथ रमण
 करते दो प्रहर तक केलिक्रीड़ा करते रहते हैं और हिरणके समान उछल-उछल
 कर नारियों को रिझाते हैं । सूफी तो प्रारम्भ करते ही काँप कर धरती पर
 आ गिरते हैं । वे स्खलित हो जाते हैं । वे मूर्ख भला रतिक्रिया क्या
 करेंगे ॥ २४ ॥ वीर्यपात होने पर वे मँह फैलाकर देखते रहते हैं और स्त्री

रहै सिर न्याइकै । शरमनाक (मू०ग्रं० ११६१) हवै ह्रिदै बचन
हसि हसि कहै । हो कामकेल की समैं न पशु कौडी
लहै ॥ २५ ॥ तमकि साँग संग्रहहि तुरै पर बलहि नचावै ।
टूक टूक हवै गिरहि तऊ सामुहि हथि धावै । असि धारन लग
जाहि न चितहि डुलावहीं । हो ते नर बरत बरंगनि सुरपुर
पावहीं ॥ २६ ॥ सुकित सुघर जिन आइ जगत मै जम कौ
पायो । बहुरि खलन कह खंडि खेत जै शबद कहायो । अमल
पान सुभ अंग धनख सर जिन लयो । हो सो नर जीवत मुकति
जगत भीतर भयो ॥ २७ ॥ कबहूँ न खाए पान अमल कबहूँ
नहि पीयो । कबहूँ न खेल अखेटन सुख सुरधन कह दीयो ।
कबहूँ न सौँधा लाइ राग मन भाइयो । हो कर्यो न भामिन
भोग जगत क्यों आइयो ॥ २८ ॥ नाद गंध सुभ इसत्तिन जिन
नर रस लिए । अमल पान आखेट द्रुजन दुखित किए । साधु
सेवि सुभ संग भजत हरि जू भए । हो ते दे जस दुंदभी जगत
याते गए ॥ २९ ॥ चतुरि नारि बहु भाँति रही समुझाइ
करि । सूरख नाह न समुझ्यो उठ्यो रिसाइ करि । गहिकै

को निहार सिर नीचा किए रहते हैं । मन में शर्म खाकर परन्तु ऊपर से
हँस-हँसकर बातें करते हैं और वे पशु कामकेल की रीति को तनिक
भी नहीं जानते ॥ २५ ॥ वे तमककर भाला पकड़ते हैं और घोड़े को पराई
फ़ौज पर नचाते हैं । टुकड़े-टुकड़े होकर भी गिर जायें तो भी सामने की
तरफ़ ही दौड़ते जाते हैं । तलवार धारण करते समय ज़रा भी चित्त को नहीं
डुलाते । वे ही व्यक्ति अप्सराओं का वरण कर स्वर्ग जाते हैं ॥ २६ ॥
जिसकी अच्छे काम करनेवाले सुघड़ व्यक्ति ने संसार में यश प्राप्त किया और
अनेकों दुष्टों को मारकर जय-जयकार करवाया । उसने ही नशे का सेवन
कर धनुष-बाण पकड़ा है और वही व्यक्ति संसार में जीवन-मुक्त हो गुज़रा
है ॥ २७ ॥ जिसने कभी पान नहीं खाया, कभी नशा नहीं किया, कभी आखेट
खेल कर देवगणों को प्रसन्न नहीं किया, कभी राग में रस नहीं लिया और स्त्री
से शमन वह भला इस जगत में क्यों आया ॥ २८ ॥ नाद में, गंध में और
अच्छी स्त्रियों में जिसने रस लिया, नशा किया, आखेट किया और दुर्जनों को
दुःखी किया; जिसने साधु-सेवा की और शुभ संगत की, हरि का स्मरण किया
वे इस संसार में यश की दुंदुभि बजाकर ही गए हैं ॥ २९ ॥ वह चतुर स्त्री
अनेकों प्रकार से समझाती रही पर मूर्ख पति समझा नहीं और क्रुद्ध हो उठा ।

तरुनि तुरंत तरलता जन मर्यो । हो तब त्रिय ठाढ़ चरित
 तही इह बिधि कर्यो ॥ ३० ॥ छित पर खाइ पछार परी
 मुरछाइ करि । हाइ हाइ कहि शाहु लई उर लाइ करि ।
 लाख लहे तुम बचे कहो क्या कीजियै । हो कह्यो त्रिप सहित
 भोजन सभ कह दीजियै ॥ ३१ ॥ ॥ दोहरा ॥ शाहु तब
 भोजन करा नाना बिधन बनाइ । ऊच नीच राजा प्रजा सभही
 लए बुलाइ ॥ ३२ ॥ ॥ चौपई ॥ पाँति पाँति लोगन बैठायो ।
 भाँति भाँति भोजनहि खवायो । इतै त्रिपति सौ नेह
 लगाइसि । बातन सौ ताकौ उरझाइसि ॥ ३३ ॥
 ॥ दोहरा ॥ भोजन तिनै खवाइयो भाँग भोज मै पाइ । राजा
 को पति के सहित छल सौ गई सुवाइ ॥ ३४ ॥ भाँगि खाइ
 राजा जग्यो सोफी भयो अचेत । मित्र भए तिह नारि को तब
 ही बन्यो संकेत ॥ ३५ ॥ ॥ चौपई ॥ लोग जिवाइ बचन इसि
 भाखा । सिगरो दिवस राइ हस राखा । साँझ परे राजा घर
 ऐहै । तुमहूँ तब बुलाइ पठैहै ॥ ३६ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ मिल्यो
 जान प्यारा लगे नैन ऐसे । मनो फाँध फाँधै झिगी राट
 जैसे । लयो मोहि राजा मनो मोल (सू० प्र० ११६२) लीनो ।

उसने लोहे की छड़ से उसे पीटा और उस स्त्री ने भी तत्क्षण एक प्रपंच
 किया ॥ ३० ॥ वह मूर्च्छित होकर धरती पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी । शाह
 ने "हाय-हाय" कहकर उसे उठा सीने से लगा लिया । तुम बच जाओ और
 बताओ मैं क्या करूँ ? तो उसने कहा कि राजा-समेत सबको भोजन
 खिलाओ ॥ ३१ ॥ ॥ दोहरा ॥ शाह ने तब नाना प्रकार का भोजन बनवाया
 और ऊँच-नीच, राजा-प्रजा सबको बुला लिया ॥ ३२ ॥ ॥ चौपाई ॥ पंक्तियों
 में सबको बैठाया और भाँति-भाँति का भोजन खिलाया । यही उसने राजा
 से नेह लगा लिया और उसे बातों में उलझा लिया ॥ ३३ ॥ ॥ दोहरा ॥ भोज
 में भाँग डालकर उन्हें भोजन खिलाया और इस प्रकार राजा को पति-समेत
 छल से सुला दिया ॥ ३४ ॥ भाँग खाकर राजा तो जागता रहा पर वह शाह
 (सूफी) अचेत हो गया । तब उस मित्र बनी नारी से इशारा हुआ ॥ ३५ ॥
 ॥ चौपाई ॥ लोगों को खिलाकर यह कहा कि आज सारा दिन राजा को यहीं
 रखा जायगा । राजा संध्या को घर आयगा, तब तुम लोगों को फिर बुला
 लिया जायगा ॥ ३६ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ वह प्राण-प्यारा मिला और उससे
 ऐसी अँखियाँ लगीं मानों मृगों का राजा हिरण फाँस में फँस गया हो । राजा
 को ऐसे मोह लिया मानों उसे मोल ले लिया हो और तब उसने स्त्री से

तही भावतो भामनी भोग कीनो ॥ ३७ ॥ रह्यो शाहु डार्यो
 कछू न बिचार्यो । मनो लात के साथ शैतान मार्यो ।
 पसूहा न भाखै उठै ना उधावै । इत नारि कौ राज बाँको
 बजावै ॥ ३८ ॥ ॥ दोहरा ॥ शाहु पालकी के तरे बाँधि
 डारि करदीन । जु कछु धाम सहि धन हुतो घालि तिसीमहि
 लीन ॥ ३९ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ आपु दौरि ताँही पर चढ़ी
 बनाइकै । रसी त्रिपति के साथ अधिक सुख पाइकै । लै
 नारी कह राइ आपने घर गयो । हो सूम सोफियहि बाँधि
 पालकी तर लयो ॥ ४० ॥ जब पहुँचे दोऊ जाइ सुखी ग्रहि
 नारि नर । कह्यो कि देहु पठाइ पालकी शाहु घर । बधे
 शाहु तिह तरे तहीं आवत भए । हो जह राजा धन सहित
 बाल हरि लै गए ॥ ४१ ॥ ॥ चौपई ॥ बीती रैनि भयो
 उजिआरा । तबै शाहु दुहूँ त्रिगन उधारा । सोहि पालकी
 तर किह राखा । बचन लजाइ ऐस बिधि भाखा ॥ ४२ ॥
 मैं जु कुबोल नारि कह कहे । ते बच बसि बाँके जिय चहे ।
 लछमी सकल नारि जुत हरी । सोरी बिधि ऐसी गति
 करी ॥ ४३ ॥ ॥ कबियो बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ फलत भाग ही

मनचाहा रमण किया ॥ ३७ ॥ शाह तो गिरा रहा और कुछ भी न विचार
 सका । वह ऐसे पड़ा था मानों शैतान को लातें मारकर गिरा फेंका हो ।
 वह पशु न तो बोल रहा था और न ही ऊँघ रहा था और इधर स्त्री को बाँका
 राजा भोग रहा था ॥ ३८ ॥ ॥ दोहा ॥ शाह को पालकी के नीचे बाँध लिया
 और जो कुछ घर में धन-दौलत थी, उसे उसी में डाल लिया ॥ ३९ ॥
 ॥ अडिल्ल ॥ आप दौड़कर उसी पर जा चढ़ी और अत्यधिक सुखपूर्वक राजा
 के साथ रमण किया । स्त्री को लेकर राजा अपने घर ले गया और उस कंजूस
 सूफ़ी (न पीनेवाले) को पालकी के नीचे बाँध दिया ॥ ४० ॥ जब दोनों स्त्री-
 पुरुष सुखपूर्वक अपने घर पहुँच गए तो उन्होंने कहा कि पालकी को शाह के
 घर वापस भेज दो । शाह उसी के नीचे बंधा वहीं आ गया जहाँ से राजा
 धन-समेत स्त्री का हरण करके ले गया था ॥ ४१ ॥ ॥ चौपाई ॥ रात बीती
 और जब उजाला हुआ तो शाह ने दोनों आँखें खोली । वह लज्जित हो कहने
 लगा कि मुझे पालकी के नीचे किसने रखा है ? ॥ ४२ ॥ मैंने जो दुर्वचन स्त्री
 से कहे वे ही उसके हृदय में लग गये । स्त्री-समेत मेरी सम्पदा का हरण हो
 गया; विधाता ने मेरी ऐसी गति बना दी ॥ ४३ ॥ ॥ कवि उवाच ॥
 ॥ दोहा ॥ कोई कुछ कर ले पर हमेशा भाग्य ही फलित होता है ।

सरबदा करो कैसिये कोइ । जो बिधना मसतक लिखा अंत
तैसिये होइ ॥ ४४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ सुधि पाई जब शाहु न्याइ
मसतक रह्यो । दूजे मनुखन पास भेद मुख तै कह्यो । भेद
अभेद की बात चीनि पसु ना लई । हो लख्यो दरबु लै न्हान
तीरथन कौ गई ॥ ४५ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ पैतालीस चरित्र
समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २४५ ॥ ४६०७ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ छियालीस चरित्र कथन ॥

॥ चौपाई ॥ पूरब दिसि इक तिलक त्रिपत बर । भान-
मंजरी नारि तवन घर । चित्तवरन इक सुत ग्रहि वाके ।
इंद्र चंद्र छवि तुल्ल न ताके ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जे तहनो
त्रिप सुत की प्रभा निहारई । लोक लाज तजि तन मन धन
कह वारई । बिरह बान तन बिधो मगध हवै झूजहीं । हो
मात पिता पति सुत की सभ सुध झूलहीं ॥ २ ॥
॥ दोहरा ॥ छेम करन इक शाहु को सुना रहै सुकुमारि ।
उरझि रही मन मै घनी निरखत राज दूलारि ॥ ३ ॥

विधाता ने जो माथे पर लिख दिया वही अंत में होता है ॥ ४४ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ शाह को जब पूरा पता लग गया तो वह सिर झुकाकर रह गया
और उसने दूसरे किसी व्यक्ति को भी भेद नहीं कहा । वह पशु भेद-अभेद के
रहस्य को न समझ सका और उसने मान लिया कि वह द्रव्य लेकर तीर्थ नहाने
गई है ॥ ४५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ पैतालीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २४५ ॥ ४६०७ ॥ अफजू ॥

दो सौ छियालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पूर्व दिशा में तिलक नामक एक श्रेष्ठ राजा था जिसकी स्त्री
भानुमंजरी थी । उसके घर चित्तवरण एक पुत्र था जिसकी छवि के तुल्य इन्द्र
भी नहीं था ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जो स्त्री राजा के पुत्र का रूप देखती वह
लोक-लाज को त्याग उस पर तन-मन-धन न्योछावर कर देती थी । वह विरह-
बाण से विधकर मुग्ध हो झूम उठती थी और माता-पिता-पति आदि सबकी
होश खो देती थी ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ एक शाह की पुत्री क्षेमकरण नामक

॥ अड़िल्ल ॥ स्वरनिमंजरी (मू० प्र० ११६३) अटकी कुअर निहारि करि । रुक्ममंजरी सहचरि लई हकारि करि । निजु मन को तिह भेद सकल समझाइकै । हो चित्रवर त्रिप सुत पहि दई पठाइकै ॥ ४ ॥ निज नारी मुहि कर्यो कुअरि करु आइ करि । भाँति भाँति सौ भजे परम सुख पाइ करि । भूप तिलक की रानि न चित सहि कीजियै । हो मनसा पूरन मोरि सजन करि दीजियै ॥ ५ ॥ ॥ कुअर बाच ॥ ॥ चौपाई ॥ इक ठाँ सुने अनूपम हस हैं । शेरशाहि लीने द्वै है हैं । राहु सुराहु नाम हैं तिनके । अंग सुरंग बने हैं जिनके ॥ ६ ॥ जौ ताँते द्वै है हरि ल्यावै । बहुरि आइ मुरि नारि कहावै । तब हम शंक त्याग तुहि बरही । भूप तिलक की कानि न करही ॥ ७ ॥ शाहु सुता जब यौ सुनि पावा । चंडारिनि को भेस बनावा । कर मो धरत बुहारी भई । शेरशाहि के महलन गई ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ हजरति के घर मो धसी ऐसो भेस बनाइ । राहु सुराहु जहाँ हुते तही पहुँची जाइ ॥ ९ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ बँधे हुते जह द्वै है झरोखा के तरै । जहाँ न चीटी पहुँच पवन न संचरै । तही तरुनि इह भेस पहुँची जाइ करि । हो अरध

थी । वह राजकुमार को देखकर मन ही मन उससे उलझ गई ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ स्वर्णमंजरी राजकुमार को देखकर उसी में अटक गयी और उसने रुक्ममंजरी नामक सहचरी को पुकारकर बुलाया । उसे मन का सारा भेद समझाकर राजा के पुत्र चित्रवर के पास भेज दिया ॥ ४ ॥ मुझे आकर अपनी स्त्री बनाओ और विभिन्न प्रकार से मेरे साथ रमण करो । राजा तिलक की परवाह मत करो और हे सजन ! मेरी इच्छा पूरी कर दो ॥ ५ ॥ ॥ कुँवर उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हमने एक जगह सुना है कि शेरशाह के पास दो अनुपम घोड़े हैं । उनका नाम राहु और सुराहु है और उनके अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सुन्दर बने हैं ॥ ६ ॥ यदि तुम वहाँ से दोनों घोड़ों को चुरा लाओ, तब आकर मेरी स्त्री कहलाओ । तब मैं निस्संकोच तुम्हारा वरण कलंगा और राजा तिलक की परवाह नहीं कलंगा ॥ ७ ॥ शाह की पुत्री ने जब यह सुना तो चांडालिन की पुत्री का वेश बनाया । हाथ में झाड़ लिया और शेरशाह के महलों में जा पहुँची ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ बादशाह के महल में यह वेश बनाकर घुस गई और वहाँ आ पहुँची जहाँ राहु-सुराहु बँधे थे ॥ ९ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ वे वहाँ झरोखे के नीचे बँधे थे जहाँ न तो चीटी पहुँच सकती थी और न हवा ही जा सकती थी । वहीं यह तरुणी वेश बदलकर जा पहुँची और आधी रात के समय घोड़ा खोल

रात्रि भे छोरा बाज बनाइ करि ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ छोरि
 अगारि पछारि उतारी । आनन बिखै लगामी डारी । हवै
 असवार चाबुकिक मारिसि । शाहु झरोखा भए
 निकारिसि ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ शाह झरोखा के भए परी
 तुरंग कुदाइ । शंका करी न जान की परी नदी मो
 जाइ ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ झरना महि ते बाज निकारिसि ।
 गहिरी नदी बिखै लै डारिसि । जिय अपने का लोभ न करा ।
 इह छल राहु अस्व कह हरा ॥ १३ ॥ जब बाजी हजरति को
 गयो । सभहिन को बिसमै जिय भयो । जहाँ न सकत प्रवेस
 पवन करि । तह ते लयो तुरंगम किन हरि ॥ १४ ॥ प्रात
 बचन हजरति इस कियो । अभै दान चोरहि मै दियो । जो
 वह सोकह बदन दिखावै । बीस सहस्र अशरफी पावै ॥ १५ ॥
 अभै दान ताकौ मै द्यायो । खाई सपत कुरान उचायो । तब
 त्रिय भेस पुरख को धरा । शेरशाह कह सिजदा करा ॥ १६ ॥
 ॥ दोहरा ॥ पुरख भेख कह पहिर त्रिय भूखन सजे सुरंग ।
 शेरशाह सौ इमि कहा मै तब हरा तुरंग ॥ १७ ॥ (सू० प्र० ११६४)
 ॥ चौपई ॥ जब हजरति ताकौ लखि लयो । हरखत भयो

दिया ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ इसने आगे की तरफ को छोड़कर उसे पीछे की
 ओर उतारा और मुँह में लगाम डाल दी । सवार होकर उसे चाबुक मारी
 और शाह के झरोखे से उसे निकाल लिया ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ शाह के झरोखे
 से उसने घोड़ा कुदाया और जान की परवाह न करते हुए, नदी में आ
 पड़ी ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ झरने में से घोड़ा निकालकर उसने गहरी नदी
 में डाल दिया । अपने प्राणों का लालच नहीं किया और इस प्रकार राहु
 नामक अश्व को चुरा लिया ॥ १३ ॥ जब बादशाह का घोड़ा चला गया तो
 सबकी आश्चर्य हुआ । जहाँ हवा भी नहीं प्रवेश कर सकती है, वहाँ कौन
 भाकर घोड़ा ले गया ॥ १४ ॥ प्रातः राजा ने कहा कि मैं चोर को अभय
 दान देता हूँ । यदि वह मुझे आकर अपना मुँह दिखाए तो मैं उसे बीस हजार
 अशरफी दूँगा ॥ १५ ॥ उसने अभयदान और कुरान उठाकर क्रमशः खाई ।
 तब उस स्त्री ने पुरुष-वेश धारण किया और शेरशाह को प्रणाम
 किया ॥ १६ ॥ ॥ दोहा ॥ अंगों पर गहने और पुरुष-वेश धारण कर उस
 स्त्री ने शेरशाह से कहा कि मैंने तुम्हारा घोड़ा चुराया है ॥ १७ ॥
 ॥ चौपाई ॥ जब बादशाह ने उसे देखा तो क्रोध मिटाकर प्रसन्न हो उठा ।

कोप मिटि गयो । निरखि प्रभा उपमा बहु कीनी । बीस
सहस्र अशरफी दीनी ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ हसि हजरति ऐसे
कहा सुनु तसकर सुदंग । सो बिधि कहो बनाइ मुहि किह
बिधि हरा तुरंग ॥ १९ ॥ ॥ चौपई ॥ जब अबला आइसु
इमि पावा । मुहर राखि मेखन लै आवा । सरिता सो
त्रिण गूल बहाइसि । रच्छपाल ता पर डहक्काइसि ॥ २० ॥
॥ दोहरा ॥ बहुरि नदी भीतर परी जात भई तरि पारि ।
शाहि झरोखा के तरे लागत भई सुधारि ॥ २१ ॥
॥ चौपई ॥ जब घरियारी घरी बजावै । तब वह मेखिक तहाँ
लगावै । बीता दिवस रजनि बडि गई । तब त्रिय तहाँ
पहुचत भई ॥ २२ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ तैसहि छोरि तुरंग
झरोखा बीच करि । जल सो परी कुदाइ जात भी पार तरि ।
सभ लोकन कौ कौतक अधिक दिखाइकै । हो शेरशाह सौ
बचन कहे मुसकाइकै ॥ २३ ॥ इही भाँति सो प्रथम बाज मुरि
कर पर्यो । दुतिय अस्व तव निरखत इह छल सौ हर्यो ।
शेरशाहि तब कह्यो कहा बुधि को भयो । हो राहा थो जहा
तही सु राहा हूँ गयो ॥ २४ ॥ शाह सहित सभ लोग चरित्त
बिलोकि बर । दाँत दाँत सो काटि कहै है दयो कर । कहैं

उसकी शोभा को देख कर उसकी प्रशंसा की और उसे बीस हजार अशफियाँ
प्रदान कीं ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ तब बादशाह ने हँसकर कहा कि हे सुदृढ़ अंगों
वाले चोर ! मुझे बताओ कि तुमने यह घोड़ा कैसे चुराया ? ॥ १९ ॥
॥ चौपाई ॥ जब स्त्री ने यह आज्ञा सुनी तो मुहरों को रखकर वह कील ले
आई । नदी में सरकंडे बाँधकर वहाँ दिये और उन पर रक्षक तैनात कर
दिया ॥ २० ॥ ॥ दोहरा ॥ फिर नदी में कूदकर पार चली गई और बादशाह
के झरोखे के नीचे जा लगी ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब घड़ियाल घंटा बजाता
था तो उसी क्षण यह कील ठोंकती थी । दिन बीत गया और रात हो गई तब
यह स्त्री वहाँ पहुँच गई ॥ २२ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ तब वैसे ही घोड़ा छोड़कर
झरोखे में से कूदकर वह तैरकर नदी पार पहुँच गई । सब लोगों को कौतूहल
में भर कर उसने शेरशाह से मुस्कुराकर कह सुनाया ॥ २३ ॥ इसी
तरह से पहला घोड़ा मेरे हाथ लगा था और दूसरा घोड़ा तुम्हारे देखते-
देखते मैंने छल से हथ लिया है । शेरशाह ने तब कहा कि मेरी बुद्धि को भला
क्या हो गया । जहाँ राहु गया था, सुराहु भी वहीं चला गया ॥ २४ ॥
बादशाह समेत सभी इस चरित को देखकर दाँतों से अपने हाथ काटकर रह

हमारी मतिहि कवन कारन भयो । हो राहा तसकर हरयो
 सुराहा हम दयो ॥ २५ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्वरनमंजरी बाज
 हरि मित्रहि दए बनाइ । चित्र बरन सुत त्रिप बरा
 ह्रिदै हरख उपजाइ ॥ २६ ॥ भाँति भाँति ताँको भजै ह्रिदै
 हरख उपजाइ । शेरशाहि दिलीस कह त्रिया चरित्र
 दिखाइ ॥ २७ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ छियालीस चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २४६ ॥ ४६३४ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ सैंतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बीरतिलक इक त्रिपति बिचच्छन । पुहप-
 मंजरी नारि सुलच्छन । तिनकी हम ते कहि न परत छवि ।
 रति तिह रहत निरखि रति पति दबि ॥ १ ॥ स्त्री सुरतान
 सिंघ तिह पूता । जनु बिधि गढ़ा दुतिय पुरहूता । जब बहु
 तरुन भयो लखि पायो । तब पित ताको व्याह रचायो ॥ २ ॥
 काशमीर इक त्रिपति रहत बल । रूप (सू० ग्रं० ११६५) मान
 धनमान रणाचल । ताके धाम सुता इक सुनी । सकल

गए । यह हमारी बुद्धि को क्या हो गया कि राहु तो चोर ने चुराया और
 सुराहु हमने खुद उसे दे दिया ॥ २५ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्वर्णमंजरी ने घोड़े चुरा
 कर मित्र को दिए और चित्रवरण ने भी उसका हर्ष-सहित वरण किया ॥ २६ ॥
 शेरशाह दिल्लीश्वर को स्त्री ने प्रपंच दिखाकर चित्रवरण के साथ विभिन्न
 प्रकार से सुखपूर्वक श्रमण किया ॥ २७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ छियालीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २४६ ॥ ४६३४ ॥ अफजू ॥

दो सौ सैंतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बीरतिलक एक विलक्षण राजा था, जिसकी सुलक्षणा रानी
 पुष्पमंजरी थी । उसकी छवि का वर्णन मैं नहीं कर पा रहा हूँ, रति उसे
 कामदेव के रूप में देखा करती थी ॥ १ ॥ सुल्तान सिंह उसका ऐसा पुत्र था
 जिसे मानों विधि ने दूसरा इन्द्र बनाया हो । जब पिता ने उसे जवान होते
 देखा तो उसका व्याह रचाया ॥ २ ॥ काशमीर में एक बलशाली राजा था
 जो रूप, मान, धन में और युद्ध करने में अडिग एवं महान् था । उसके घर

गुनन के भीतर गुनी ॥ ३ ॥ बोलि दिजंबरन घरी सुधाई ।
 बिप सुत के संग करी सगाई । अधिक सु दरबु पठै दिय ताकौ ।
 ब्याह बिचारि बुलायो वाकौ ॥ ४ ॥ सुता को ब्याह जब तिन
 दियाइसि । हाट पाट बस्त्रन सभ छाडिसि । घर घर गीत
 चंचला गावत । भाँति भाँति बादित बजावत ॥ ५ ॥ सकल
 ब्याह की रीति करहि ते । अधिक दिजन कह दान करहि वे ।
 जाचक सभ भूप हवै गए । जाचत बहुरि न काह भए ॥ ६ ॥
 ॥ दोहरा ॥ सकल रीति करि ब्याह की चढ़े जनेत बनाइ ।
 भाँति भाँति सो कुअर बलि प्रभा न बरनी जाइ ॥ ७ ॥
 ॥ चौपई ॥ काशमीर भीतर पहुँचे जब । बाजन लगे बदित
 अभित तब । नाचत पाल अपार अनूपा । कंचनि हरकुनि
 रूप सरूपा ॥ ८ ॥ हाट पाट सभ बस्त्रन छाए । अगर चंदन
 भे मगु छिरकाए । सभ घर बाँधी बंधन वारै । गावत गीत
 सुहावत नारै ॥ ९ ॥ अगुआ लेन अगाऊ आए । आदर सौ
 कुअरहि ग्रहि ल्याए । भाँति भाँति ते करें बडाई । जानुक
 राँकनि धनि निधि पाई ॥ १० ॥ ॥ अडिल्ल ॥ तब जस

में एक पुत्री सुनी जाती थी जो समस्त गुणों से युक्त थी ॥ ३ ॥ ब्राह्मणों
 को बुलाकर मुहूर्त निकलवाया और राजा के पुत्र के साथ उसकी सगाई कर
 दी । उसे अत्यधिक द्रव्य दिया और विवाह के लिए आमंत्रित किया ॥ ४ ॥
 जिस दिन उसने पुत्री का विवाह निश्चित किया उस दिन सारे घर, बाजार
 आदि सजा दिए । घर-घर में स्त्रियाँ गीत गाने लगीं और भाँति-भाँति के
 वाद्य बजाने लगीं ॥ ५ ॥ उन्होंने विवाह की समस्त रीतियों को निभाया
 और द्विजों को अत्यधिक दान दिया । सभी भिखारी (दान पाकर) राजा
 बन गए और द्विजों को दान देने लगे ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ विवाह की समस्त
 रस्में पूरी करके वारात बनाकर चल पड़े । कुँवरों ने भाँति-भाँति से अपने-
 आपको सजाया । शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ७ ॥
 ॥ चौपाई ॥ जब वे काश्मीर में पहुँचे तो अनेकों वाद्य वजने लगे । स्वर्णमयी
 सुन्दर स्वरूपों वाली वेश्याएँ नाचने लगीं ॥ ८ ॥ गली-बाजारों को वस्त्रों से
 सजाया गया और मार्ग पर इत्र-चन्दन की सुगन्धियाँ छिड़की गईं । सभी
 घरों पर बंदनवार बाँधे गए और सुन्दर स्त्रियाँ सुन्दर गीत गाने लगीं ॥ ९ ॥
 अगवानी करनेवाले आगे आये और आदरपूर्वक कुँवर को घर ले गये । वे
 भाँति-भाँति से बड़ाई करने लगे । ऐसे लग रहे थे मानों निर्धनों को कोई
 निधि हाथ लग गई हो ॥ १० ॥ ॥ अडिल्ल ॥ तब यशतिलकमंजरी को

तिलकमंजरी लई बुलाइकै । ब्याह दई त्रिप सुत के साथ
 बनाइकै । दाज अमित धन दियो बिदा करिकै दए ।
 हो बिरजवती नगरी प्रति ते आवत भए ॥ ११ ॥
 ॥ चौपई ॥ एक शाह के सदन उतारे । ग्रहि जैहैं लखिहै जब
 तारे । कुअरि शाह को पूत निहारा । तिह तन तानि भदन
 सर मारा ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ निरखित रही लुभाइ छवि
 मन मै किया बिचार । त्रिप सुत संग न जाइ हौ इहै हमारो
 यार ॥ १३ ॥ ॥ चौपई ॥ बोलि लिया ताको अपुने घर ।
 रति सानी तासौ हसि हसि करि । आलिंगन चुंबन बहु लए ।
 बिबिध बिधन सौ आसन दए ॥ १४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ बिहसि
 बिहसि दोऊ कुअर कलोलन कौ करै । बिबिध बिधन कोकन
 के मत कौ उचरै । भाँति भाँति के आसन करहि बनाइकै ।
 हो लपटि लपटि दोऊ जाँहि परम सुख पाइकै ॥ १५ ॥ केल
 करत स्वै जाँहि बहुरि उठि रति करै । भाँति भाँति चातुरता
 मुख ते उचरै । तरुन तरुनि जब मिलै न कोऊ (सू० प्र० ११६६)
 हारही । हो वेद शास्त्र सिंघ्रिति इह भाँति उचारही ॥ १६ ॥
 ॥ त्रिया बाच ॥ ॥ चौपई ॥ मै न त्रिप सुत के संग जैहौ । बिनु

बुलाया गया और राजपुत्र के साथ उसका भली प्रकार विवाह कर दिया गया ।
 दहेज और अपरिमित धन देखकर उन्हें विदा किया और वे वीर्यवती नगरी से
 चल पड़े ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ उन्हें एक शाह के घर में ठहराया गया ताकि
 वे जब तारा दिखाई दे तो शुभ मुहूर्त में घर जा सकें । कुँवरि ने शाह के पुत्र
 को देखा और काम-बाण से कामासक्त हो गई ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ उसकी
 छवि को देखकर वह लुब्ध हो उठी और उसने विचार किया कि यही मेरा मित्र
 है, मैं राजा के पुत्र के साथ नहीं जाऊँगी ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसे अपने
 घर बुलाया और हँस-हँसकर उसके साथ रतिक्रिया की । बहुत से आलिंगन-
 चुंबन लिये और विविध प्रकार से उसे आसन दिये ॥ १४ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ दोनों तरुण हँस-हँसकर किल्लोल करने लगे और कोक के मत
 पर विचार-विमर्श करने लगे । भाँति-भाँति के आसन करने लगे और सुख-
 पूर्वक लिपट-लिपटकर एक-दूसरे से मिलने लगे ॥ १५ ॥ केलिक्रीड़ा करते सो
 पूर्ण वचन मुख से बोलते थे । तरुण को जब तरुण मिलता है तो कोई भी नहीं
 हारता है, यह वेद-शास्त्र और स्मृतियों का भी मत है ॥ १६ ॥ ॥ त्रिया उवाच ॥
 ॥ चौपाई ॥ मैं राजा के पुत्र के साथ नहीं जाऊँगी और बिना दामों के ही

दामन इह हाथ बिकैहौ । धाइ सुता तब कुअर हकारी ।
तवन पालकी भीतर डारी ॥ १७ ॥ दिवसराज असताचल
गयो । प्राची दिसि ते ससि प्रगटयो । त्रिप सुत भेद पछान्यो
नाहो । तारन की समझी परछाही ॥ १८ ॥ अनत त्रिया
कौ लै ग्रहि गयो । भेद न पसु पावत कछु भयो । धाइ भेद
सुनिअति हरखानी । भोरी सुता करी बिधि रानी ॥ १९ ॥
॥ दोहरा ॥ राजकुअरि सुत शाह के सदन रही सुख पाइ ।
घाल पालकी धाइ की दुहिता दर्ई पठाइ ॥ २० ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ सैंतालीस चरित्र
समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २४७ ॥ ४६५४ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ अठतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ नदी नरबदा को रहै त्रिपति चित्ररथ नाम ।
देस देस के एस जिह जपत आठहूँ जाम ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ चित्र-
मंजरी ताकी त्रिय बर । जानुक प्रभा त्रिपति किरणाधर ।
चारि पुत ताके सुंदर अति । सूरवीर बलवान

इन (तुम्हारे) हाथों बिक जाऊँगी । तब कुँवरि ने अपनी धाय की पुत्री को
बुलाया और उस पालकी में उसे डाल दिया ॥ १७ ॥ सूर्य अस्त हो गया
और पूर्व दिशा से चन्द्रमा भी प्रकट हो गया । राजा के पुत्र ने भेद नहीं
पहचाना और तारों की परछाई का अनुभव किया ॥ १८ ॥ वह अन्य स्त्री
को घर ले गया और मूर्ख कुछ भी भेद नहीं समझ सका । धाय को जब यह
पता लगा तो वह खुश हो गई कि मेरी पुत्री को विधाता ने रानी बना दिया
है ॥ १९ ॥ ॥ दोहा ॥ राजकुमारी शाह के घर सुखपूर्वक रहने लगी और
उसने धाय की पुत्री को पालकी में डालकर खाना कर दिया ॥ २० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद के दो सौ सैंतालीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २४७ ॥ ४६५४ ॥ अफजूं ॥

दो सौ अठतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ नर्मदा नदी पर चित्ररथ नामक एक राजा रहता था, जिसका
देश-देशान्तरों के राजा आठों प्रहर स्मरण किया करते थे ॥ १ ॥
॥ चौपाई ॥ चित्रमंजरी उसकी सुन्दर रानी मानों सूर्य की किरणों के समान
प्रभावती थी । अत्यन्त शूरवीर एवं बलवान उसके चार सुन्दर पुत्र थे ॥ २ ॥

बिकट मति ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ चित्रकेत बचित्र धुज ससिधुज
 रविधुज सूर । जिनके धनुष टंकोर धुनि रहत जगत सै
 पूर ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ नवल शाह इक रहत नगर तिह ।
 ससि आभावति दुहिता घर जिह । अमित प्रभा जनियत जाकी
 जग । सुर आसुर थकि रहत निरख लग ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ चारि
 पुत्र जे त्रिपति के ताकी प्रभा निहारि । रीझि रहत भे चित
 बिखै मन क्रम बच निरधार ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ त्रिप सुत
 दूतिक तहाँ पठाइसि । भाँति भाँति तिह बियहि भुगाइसि ।
 इही भाँति चारौ उठि धाए । चारों चलि ताँके ग्रहि
 आए ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ शाह सुता अति पतिव्रता अधिक
 चतुर मतिवान । चारहु पठ्यो संदेश लिखि चित चरित इक
 आन ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ जुदो जुदो लिखि चहुँन पठायो ।
 किस को भेद न किसू जतायो । सखी भए इह भाँति सिखाइसि ।
 राजकुमारन बोलि पठाइसि ॥ ८ ॥ ॥ शाह सुता बाच सखी
 सो ॥ ॥ दोहरा ॥ जिमि (मू० प्र० ११६७) जिमि त्रिप सुत आइहैं
 उत्तम भेख सु धारि । तिमि तिमि पगल खराक तैं किजियो
 मेरै द्वार ॥ ९ ॥ प्रथम पुत्र जब त्रिपति को आयो भेख
 सु धारि । पाइन को खटको कियो आनि सखी तिह

॥ दोहा ॥ चित्रकेतु विचित्रध्वज, शशिध्वज और रविध्वज ऐसे शूरवीर थे
 कि उनके धनुष की टंकार की ध्वनि सारे जगत में पूरित हो जाती थी ॥ ३ ॥
 ॥ चौपाई ॥ उस शहर में नवलशाह रहता था जिसकी पुत्री चन्द्रमा की आभा
 के समान थी । संसार में उसकी अपरिमित प्रभा जानी जाती थी और देव-
 दानव भी उसका रास्ता देखते थक जाते थे ॥ ४ ॥ ॥ दोहा ॥ राजा के
 चारों पुत्र उसकी प्रभा को देखकर मन-वचन-कर्म से उस पर मोहित थे ॥ ५ ॥
 ॥ चौपाई ॥ राजा के पुत्रों ने एक दूत उसके पास भेजा जिसने विभिन्न प्रकार
 से उनको उस स्त्री के साथ रमण करवाया । चारों उठे और उसके घर आ
 पहुँचे ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ शाह की पुत्री अत्यन्त पतिव्रता और चतुर थी ।
 उसने एक प्रपञ्च बनाकर चारों को संदेश लिखकर भिजवा दिया ॥ ७ ॥
 ॥ चौपाई ॥ चारों को अलग-अलग लिख भेजा और किसी का भेद किसी को
 नहीं बताया । उसने सखी को इस भाँति सिखाया और राजकुमारों को बुलवा
 लिया ॥ ८ ॥ ॥ शाहसुता उवाच सखी के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ जैसे-जैसे राजा
 के पुत्र उत्तम वेश धारण कर आएँगे तुम वैसे-वैसे पाँव द्वारा मेरे दरवाजे पर
 आवाज करना ॥ ९ ॥ राजा का जब पहला लड़का आया तो सखी ने पाँव

द्वार ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ हाहा पद तब तरुनि उचारो ।
 हाथन कौ छतिया पर मारो । कोऊ आहि द्वार मुरि ठाढा ।
 ताते अधिक त्रास मुहि बाढा ॥ ११ ॥ त्रिप सुत कह्यो
 जतन इक करो । चारि संदूक हैं इक मै परो । एक संदूक
 माँझ रहियो दुरि । जैहैं लोक बिलोक बिमुख घर ॥ १२ ॥
 इमि संदूक भीतर तिह डारो । दुतिय त्रिपति को पुत्र हकारो ।
 पग खटको सहचरि तब कीनो । दुतिय संदूक डारि तिह
 दीनो ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल त्रिप के चारि सुत चहूँ
 संदूकन डारि । तिन पितु ग्रहि प्यानो कियो उतिम भेख
 सुधारि ॥ १४ ॥ ॥ चौपई ॥ चारि संदूक संग लीने कर ।
 पहुचत भई त्रिपति के दर पर । जब राजा को रूप निहार्यो ।
 ताँ पर वारि नदी तिन डार्यो ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ वारि
 संदूक त्रिपाल पर दए नदी मै डारि । सभ छलिन छिन सो
 छला कोऊ न सका बिचार ॥ १६ ॥ ॥ चौपई ॥ धन्य धन्य
 सभ लोक बखानै । भेद अभेद न मूरख जानै । भूप भगति
 तिह अधिक बिचार्यो । त्रिप पर दरबु इतो जिन
 वार्यो ॥ १७ ॥ तब राजै इह भाँति उचार्यो । शाह सुता

से दरवाजे पर आवाज की ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ तब तरुणी नै हाय ! हाय !
 चिल्लाना शुरू किया और हाथों से छाती पीटना शुरू किया । मेरे दरवाजे
 पर कोई खड़ा है, इसी से मैं अत्यधिक भयभीत हूँ ॥ ११ ॥ राजा के लड़के
 से कहा कि तुम एक काम करो, चारों संदूकों में से एक में घुस जाओ । तुम
 एक संदूक में छिप जाओ, लोग स्वयं ही देखकर विमुख हो लौट जायेंगे ॥ १२ ॥
 इस प्रकार उसे संदूक में डाला और राजा के दूसरे पुत्र को बुलाया । सहचरी
 ने फिर पैर की आवाज की और दूसरे को भी संदूक में डाल दिया ॥ १३ ॥
 ॥ दोहरा ॥ इस छल से राजा के चारों पुत्र चार संदूकों में डाल दिये और
 उत्तम वेश बनाकर उसने उनके पिता के घर की ओर प्रस्थान किया ॥ १४ ॥
 ॥ चौपाई ॥ चारों संदूकों को साथ लेकर वह राजा के घर पर जा पहुँची ।
 जब राजा को देखा तो उस ओर से घुमाकर उस पर न्योछावर कर संदूकों
 को नदी में डाल दिये ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ संदूक उस पर न्योछावर कर उन्हें
 नदी में डाल दिया । उसने क्षण भर में क्षत्रियों को छल लिया कोई भी जान
 न सका ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ सभी धन्य-धन्य कहने लगे और कोई भी मूर्ख
 भेद-अभेद को न जान सका । राजा ने यह सोचा कि यह कोई परम श्रद्धालु
 हो जिसने इतना धन न्योछावर कर दिया ॥ १७ ॥ तब राजा ने मंत्री से

जेतो धन वार्यो । छोरि भंडार तितो तिह दीजै । मंत्रन कहा
बिलंब न कीजै ॥ १८ ॥ चारि संदूक अशरफी दीनी । शाहु
सुता सभ ही सो लीनी । त्रिप के चारौ पूत डुबाई । लै धनु
अमित बहुरि घर आई ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल सो
सुति त्रिपति के चारौ दए डुबाइ । आनि धाम बहुरो बसी
हिंदै हरख उपजाइ ॥ २० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ अठतालीस चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ २४८ ॥ ४६७४ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ उनचास चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ बतिसु लच्छन नगर इक सोहै । जाके तट
अमरावति को है । सैन सुलच्छन त्रिप तह सुभ मति ।
सूरबीर बलवान बिकट मति ॥ १ ॥ मंज्रि बिचच्छनि नारि
तवनि बर । पढ़ी (सू०प्र० ११६८) व्याकरण शास्त्र कोक सर ।
सोभा अधिक तवन की सोहत । सुर नर नाग असुर मन
मोहत ॥ २ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ एक शाह को पूत तहाँ सुंदर

यह कहा कि शाह की पुत्री ने जितना धन न्योछावर किया है उसे भंडार
खोलकर अविलम्ब दे दिया जाय ॥ १८ ॥ उसे चार संदूक अशरफियाँ दी
गईं जिन सबको शाह की पुत्री ने ले लिया । राजा के चारों पुत्र डुबाकर
एवं बहुत-सा धन लेकर वह पुनः घर आ गई ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रकार
छल से राजा के चारों लड़के डुवा दिये और सुखपूर्वक अपने घर में आकर
बस गई ॥ २० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ अठतालीसवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ २४८ ॥ ४६७४ ॥ अफजूं ॥

दो सौ उनचासवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बत्तीस लक्षणों में पूर्ण एक नगर था जिसके सामने
अमरावती भी क्या है । वहाँ सुलक्षणसेन शुभमति वाला राजा था जो
विकट रूप से शूरवीर एवं बलशाली था ॥ १ ॥ विचक्षणमंजरी उसकी
सुन्दर स्त्री थी जो व्याकरण, कोकशास्त्र एवं अन्य शास्त्रों की ज्ञाता थी ।
उसकी अत्यधिक शोभायमान सुन्दरता पर सुर-असुर, नाग, नर सभी मोहित
थे ॥ २ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ शाह का अत्यन्त सुन्दर एक पुत्र वहाँ था जो मानो

धनो । जनु औतार सदन को या जग सो बनो । बितनकेत
तिह नाम कुअर कै जानियै । हो जा सभ सुंदर अवर न कतहु
बखानियै ॥ ३ ॥ नैन हरिन के हरे बैन पिक के हरे । जनुक
सानि पर बिसिख दोऊ बाढिन धरे । बिना प्रहारे लगत न
काढे जात हैं । हो खटकत हिय के माँझ सदा पिय रात
हैं ॥ ४ ॥ निरखि तवन को रूप तरिनि मोहित भई । लोक
लाज कुल कानि त्यागि तबही दर्ई । आशिक की त्रिय भाँति
रही उरझाइकै । हो सकयो न धीरज बाँधि सु लियो
बुलाइकै ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ भेदि पाइ त्रिय ताहि बुलाइसि ।
भाँति भाँति भोजनहि खवाइसि । केल करन तासौ चित चहा ।
लाजि बिसारि प्रगट तिह कहा ॥ ६ ॥ बितनकेत जब यौ सुनि
पायो । भोग न कियो नाक ऐठायो । सुनि अबला मैं तोहि न
भजिहौ । नारि आपनी कौ नहि तजिहौ ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ जौ
उपाइ कोटिक करहु लछिक करहु इलाज । धरम आपनो छाडि
तुहि तऊ न भजहौ आज ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ रानी जतन
कोटि करि रही । एकै नाँहि मूढ़ तिह गही । कोप भयो त्रिय
को जिय भारो । ताकौ बाँधि भोहरे डारो ॥ ९ ॥ ताकौ

कामदेव का अवतार था । उस कुँवर का नाम बितनकेतु था और उसके
समान अन्य कोई भी सुन्दर नहीं बताया जाता था ॥ ३ ॥ उसने नयन हिरण
के और वाणी कोयल की चुराई थी । दोनों (नयन) मानों काट डालनेवाले
बाण हों । वे बिना चलाए ही आ लगते हैं और फिर बाहर नहीं निकलते ।
हे प्रिय ! वे दिन-रात हृदय में खटकते रहते हैं ॥ ४ ॥ उसका स्वरूप देखकर
तरुणी मोहित हो गयी और उसने समस्त लोकलाज, कुल की मर्यादा का तुरंत
त्याग कर दिया । वह स्त्री एक आशिक की तरह उलझकर रह गई । धैर्य
उसे बाँधकर न रख सका और उसने उसे बुला लिया ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ पता
लगाकर स्त्री ने उसे बुलाया और उसे भिन्न प्रकार के भोजन खिलाए । अब
उससे रमण करने को मन चाहने लगा । इस इच्छा को उसने लज्जा त्यागकर
प्रकट में कह दिया ॥ ६ ॥ बितनकेतु ने जब यह सुना तो भोग नहीं किया
और नाक सिकोड़ लिया । हे स्त्री ! सुनो, मैं तुम्हारे साथ रमण नहीं करूँगा
और अपनी स्त्री को नहीं छोड़ूँगा ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ यदि तुम अनेकों उपाय
और इलाज करो, तब भी अपना धर्म त्यागकर मैं तुम्हें आज नहीं भोगूँगा ॥ ८ ॥
॥ चौपाई ॥ रानी लाखों उपाय कर हटी पर उस मूर्ख ने तो केवल एक
'नाँह' ही पकड़े रखी । स्त्री अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी और उसे बाँधकर

बाँधि भोहरा डारा । मूआ शाहु सुत जगत उचारा । सौदा
 काज कह्यो कहूँ गयो । चोरन सारि लूटि धन लयो ॥ १० ॥
 भेस अनूप तरुनि तिन धरा । अभरन अंग अंग मै करा ।
 बितनकेत के ढिग चल गई । भाँति अनेक निहोरत
 भई ॥ ११ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ ग्रीव अंचरा डारि रही सिर
 न्याइकै । पकरि कुअर के पाइ रही लपटाइकै । एक बार
 डर डारि आनि पिय रति करो । हो सकल काम को ताप
 हमारो अब हरो ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ भरि मरि जनम कोटि
 तुम धरो । बार हजार पाइ कि न परो । तो को तऊ न भजो
 निलज तब । कहि दैहो तब पति प्रति बिधि सब ॥ १३ ॥
 अधिक जतन रानी करि हारी । पाइ परी लातन जड़ मारी ।
 चलु कूकरी निलज्ज मूड़ मति । काम भोग चाहत मोसो
 कत ॥ १४ ॥ कुबच सुने बिय भई बिसन (मू० प्र० ११६६)
 मन । अमित कोप जागा ताके तन । जिह पति को मुहि
 त्रास दिखारै । तौ मै जौ सोई तुहि मारै ॥ १५ ॥ यौ
 कहिकै तिह पकरि निकार्यो । पठै सहचरी नाथ हकार्यो ।

तहखाने में डाल दिया ॥ ६ ॥ उसको बाँधकर तहखाने में डाल दिया
 और लोगों को यह जता दिया कि शाह का पुत्र मर गया है । वह कहीं
 व्यापार करने गया था, चोरों ने उसे मारकर उसका धन लूट लिया ॥ १० ॥
 अब उस तरुणी ने अनुपम वेश बनाया; अंग-अंग में गहने धारण कर वह
 बितनकेतु के पास गई और अनेकों प्रकार से मित्रता करने लगी ॥ ११ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ गले में आँचल डालकर वह सिर झुकाकर खड़ी रही और कुँवर
 के पाँव पकड़ उससे लिपट गई । हे प्रिय ! एक बार भय का त्यागकर मुझसे
 रतिक्रिया करो और मेरी कामनाओं का ताप दूर करो ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम
 मर-मरकर चाहे अनेकों जन्म धारण करो और चाहे हजारों बार पाँव क्यों न
 पड़ो पर हे निलज्ज ! तुमको मैं नहीं भोगूँगा और सब कुछ तुम्हारे पति को बता
 दूँगा ॥ १३ ॥ रानी अत्यधिक यत्न करके हार गई । उस पाँवों पर पड़ी
 हुई को उस मूर्ख ने लातों से मारा और कहा कि कुतिया यहाँ से चली जा,
 तुम मुझसे क्यों काम-क्रीड़ा करना चाहती हो ॥ १४ ॥ दुर्वचनों को सुनकर
 स्त्री मन में खिन्न हो उठी और उसका क्रोध जाग उठा । तुम जिस पति का
 मुझे भय दिखा रहे हो वही पति आकर तुरन्त तुम्हें मार डालेगा ॥ १५ ॥
 यह कहकर उसे पकड़कर निकाल दिया और दासी को भेजकर पति को
 बुलाया । उसे भूत बताकर उसे दिखाया जिससे राजा के मन में चिंता पैदा

भूत भाखि तिह दियो दिखाई । त्रिप के अति चित चित
उपजाई ॥ १६ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुन राजा जो तसकरन हन्यो
शाह को पूत । सो मेरे ग्रहि प्रगटियो हेरहु ह्वै करि
भूत ॥ १७ ॥ ॥ चौपई ॥ त्रिप तब कही गाडि इह डारो ।
याहि न राखो तुरतु सँघारो । पावक भए पलीता जरियहि ।
शाहु पुत्र के सिर पर डरियहि ॥ १८ ॥ हाहा शब्द बहुत करि
रह्यो । भेद अभेद त्रिप मूढ़ न लह्यो । निरखहु का त्रिय
चरित सुधार्यो । शाह पूत करि भूत सँघार्यो ॥ १९ ॥
तस्निन कर हियरो नहि दीजै । तिन को चोरि सदा चित
लीजै । त्रिय को कछु बिस्वास न करियै । त्रिय चरित ते
जिय अति डरियै ॥ २० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ उनचास चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २४९ ॥ ४६९५ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ पचास चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अजितावती नगर इक सोहै । अजितसिंघ
राजा तह को है । अजितमंजरी ग्रहि जाके त्रिय । मन क्रम
हो गई ॥ १६ ॥ ॥ दोहरा ॥ हे राजन् !-सुनो, जिस शाह के पुत्र को चोरों ने
मार डाला था वही आज भूत बनकर मेरे घर में प्रकट हुआ है ॥ १७ ॥
॥ चौपाई ॥ तब राजा ने कहा कि इसे गाड़ दो और जीवित न रखकर तुरंत
मार डालो । आग से जलता पलीता शाह के पुत्र के सिर पर डाल दो ॥ १८ ॥
वह हाय-हाय कहने लगा । मूर्ख राजा भी भेद-अभेद न जान सका । देखो
उस स्त्री ने कैसा प्रपंच किया कि शाह के पुत्र को भूत बनाकर मार
डाला ॥ १९ ॥ स्त्री को कभी दिल नहीं देना चाहिए और उसका दिल चुरा
लेना चाहिए । स्त्री का कभी विश्वास मत करो और उसके प्रपंच से हमेशा
डरो ॥ २० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ उनचासवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २४९ ॥ ४६९५ ॥ अफजूं ॥

दो सौ पचासवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ अजितावती एक नगर है जहाँ का राजा अजीतसिंह है ।
उसकी स्त्री अजीतमंजरी थी : जिसने मन, वचन और कर्म से त्रिय को वश में

बच जिन बसि कीना पिय ॥ १ ॥ भुजंगमती ताकी दुहिता
 इक । पढ़ी कोक व्याकरण शास्त्रनिक । भागवान सुंदरि अति
 गुनी । जा सस लखी न कानन सुनी ॥ २ ॥ शाह पुत्र ब्रिखभ
 धुजि इक तहि । रूप सील सुचि ब्रतता जा भहि । तेजमान
 बलवान बिकट सति । अलख करम लखि ताँहि रिख्यो
 रति ॥ ३ ॥ वहै कुअर त्रिप सुता निहारा । सूरबीर बलवान
 बिचारा । हितू सहचरि इक निकटि बुलाइसि । भेद भाखि तिह
 तीर पठाइसि ॥ ४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ पवन भेस करि सखी तहाँ
 तुम जाइयहु । भाँति भाँति करि बिनती ताँहि रिझाइयहु ।
 कै अबहीं तै हमरी आस न कीजियै । हो नातर मोहि मिलाइ
 सजनकौ दीजियै ॥ ५ ॥ पवन भेस हवै सखी तहाँ ते तह गई ।
 भाँति अनेक प्रबोध करत ताकौ भई । उत्तम भेस सुधार
 लयाई तिह तहाँ । हो भुजंग मती त्रिप सुता बहिठी थी
 जहाँ ॥ ६ ॥ उठि सुकुअरि तिन लीन गरे सौ लाइ करि ।
 आलिंगन (मू०पं० ११७०) करि चुंबन हरख उपजाइ करि । भाँति
 भाँति तिह भजा परम रुचि मानिकै । हो प्रानन ते प्यारो
 सजन पहिचानकै ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ भाँति भाँति तरुनी

कर रखा था ॥ १ ॥ उसकी पुत्री भुजंगमंजरी थी जो व्याकरण एवं शास्त्र
 आदि पढ़ी हुई थी । वह सुन्दरी अत्यन्त भाग्यवान थी, जिसके समान न तो
 कोई देखी गई थी और न ही कोई सुनी गई थी ॥ २ ॥ वृषभध्वज वहाँ एक
 शाह का पुत्र था जिसमें प्रभूत मात्रा में शील-शुचिता एवं व्रतता थी । वह
 अत्यन्त तेजवान एवं बलवान था । रति भी उसे देखकर (अपने पति से अधिक
 सुन्दर होने के कारण) उससे ईर्ष्या करती थी ॥ ३ ॥ उसी कुँवर को राजा
 की पुत्री ने देखा और समझा कि यह शूरवीर एवं बलवान है । उसने अपनी
 एक हितैषिणी सखी को पास बुलाया और रहस्य समझाकर उसे उसके पास
 भेजा ॥ ४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ हे सखी ! तुम पवन वेग से वहाँ जाओ और भाँति-
 भाँति प्रकार से बिनती करके उसे रिझाओ । या तो तुम मुझे सजन से मिला
 दो अथवा फिर मेरी (जीवित रहने की) आशा को छोड़ दो ॥ ५ ॥ पवन
 वेग से वह सखी वहाँ से चली और अनेक प्रकार से उसे समझाने लगी ।
 वह उसे उत्तम वेश पहनाकर वहाँ ले आयी जहाँ राजा की पुत्री भुजंगमती
 बैठी थी ॥ ६ ॥ कुँवरि ने उठकर उसे गले से लगा लिया और हर्षपूर्वक
 आलिंगन-चुंबन किया । भाँति-भाँति से परम रुचिपूर्वक उसके साथ रमण

तरन भर्यो परम सुख पाइ । इही बिखै ताको पिता तही
निकसियो आइ ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ पितु आवत अंचर मुख
डरा । लागि गरे रोदन बहु करा । कह्यो दरसु बहु दिन
मो पायो । ताते मोर उमगि हिय आयो ॥ ९ ॥ जब ते मै
ससुरारि सिधाई । तह ते जाइ बहुरि घर आई । तब तें अब
मैं तात निहारा । ताते उपजा मोह अपारा ॥ १० ॥ अजित
सिंघ जब यौ सुनि लयो । रोदन करत गरे मिलि भयो ।
तब तिह घात भली कर आई । सखी दयो ग्रहि मीत
पठाई ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ पितु के अंचर डारि सिर आँखें
लई दुराइ । मोहित भयो रोवत रह्यो मीत दिया
पहुचाइ ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ पचास चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २५० ॥ ४७१० ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ इक्यावन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बिकटकरन इक हुतो त्रिपति बर । जनुक
प्रिथी तल दुतिय दिदाकर । स्त्री मकराछ कुअरि बनिता तिह ।

किया और उसे प्राणों से भी प्रिय सजन माना ॥ ७ ॥ ॥ दोहा ॥ वे तरुण-
तरुणी भाँति-भाँति के सुखों से जब पूर्ण हो रहे थे तो उसी क्षण उधर से पिता
आ निकला ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ पिता के आते ही उसने मुँह पर आँचल
डाल लिया और उसके गले लगकर रोने लगी । वह कहने लगी कि आपको
बहुत दिनों बाद देखा है इससे मेरा हृदय उमड़ पड़ा है ॥ ९ ॥ जब से मैं
ससुराल गई और वहाँ से वापस घर आई हूँ तब से मैंने आज पिता को देखा,
इसीलिए मुझमें भारी मोह पैदा हुआ है ॥ १० ॥ अजीतसिंह ने जब यह
सुना तो वह भी रोता हुआ गले से लग गया । तब उसने अवसर देखा और
सखियों ने मित्र को घर भेज दिया ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ पिता के गले में
आँचल डालकर आँखें छिपा लीं, जिससे वह मोहित हो रोने लगा और इसने
मित्र को पहुँचा दिया ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ पचासवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ २५० ॥ ४७१० ॥ अफजू ॥

दो सौ इक्यावनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बिकटकर्ण एक राजा था जो मानो धरती पर दूसरा सूर्य

प्रगट चंद्र सी प्रभा लगत जिह ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्त्री जलजाछ
 सुता तवनि जाको रूप अपार । गढ़ि तासी तरुनी बहुरि
 गढ़ि न सका करतार ॥ २ ॥ ॥ चौपई ॥ कल्प ब्रिछ धुज
 तह इक त्रिप बर । प्रगट भयो जनु दुतिय किरन धर ।
 अधिक रूप जनियत जाको जग । थकित रहत जिह निरख
 तरुनि मग ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजकुअरि निरखन उपबन
 इक दिन चली । लीने बीस पचास सहचरी संग भली । उठत
 कनूका धूरि उठाए पाइ तन । हो जनुक चले हवै संग
 प्रजा के सकल मन ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ कल्पब्रिछ धुज
 कुअर कौ निरखि गई ललचाइ । ठग नाइक से नैन द्वै ठग
 जिउ रही लगाइ ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राज सुता तिह रूप
 अलोक बिलोकि बर । अंग अनंग तबही गयो बिसिख प्रहार
 करि । काटि काटि कर खाइ बसाइ न कछू तिह । हो पंखनि
 बिधना दए मिलै उडि जाइ जिह ॥ ६ ॥ ॥ यो लिखि एक
 सँदेसा ताहि (सू० प्र० ११७१) पठाइयो । भाँति भाँति कहि
 भेद तिसै ललचाइयो । डारि लयो डोरा महि किनू न कछु
 लह्यो । हो परी लै गई ताँहि सु तहि पित त्रिय कयो ॥ ७ ॥

था । मकराक्षकुँवरि उसकी स्त्री थी जो चन्द्र की आभा के समान थी ॥ १ ॥
 ॥ दोहा ॥ जलजाक्ष, अपार रूप वाली उसकी पुत्री थी जिसे बनाने के बाद
 विधाता द्वारा दूसरी स्त्री न बना सका ॥ २ ॥ ॥ चौपाई ॥ कल्पवृक्षध्वज
 नामक एक श्रेष्ठ राजा था जो कि मानों दूसरा सूर्य था । वह संसार में
 अत्यधिक रूपवान माना जाता था और जिसकी राह देखते स्त्रियाँ थक जाती
 थीं ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजकुँवरि एक दिन पचास के लगभग सखियों-
 सहित उद्यान देखने चली । धूल के बगूले उठ रहे थे । ऐसा लग रहा था
 मानों सारी प्रजा का मन भी साथ-साथ चल रहा हो ॥ ४ ॥ ॥ दोहा ॥ वह
 कल्पवृक्षध्वज को देखकर ललचा गई और उस ठगनायक से उसे ठगने के
 लिए नयन लड़ा दिये ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजकुमारी उसके रूप को
 देखकर कामदेव के वाणों से अंगों में प्रहारित हो उठी । उसे सत्र कुछ काट-
 काटकर खा रहा था और कुछ भी सुहाता नहीं था । वह सोचती थी कि
 परमात्मा उसे पंख दे दे तो वह उड़कर उससे जा मिले ॥ ६ ॥ ॥ उसने
 लिखकर उसे एक संदेशा भेजा और विभिन्न प्रकार के भेदों को समझाकर उसे
 ललचाया । उसने उसे डोली में डाल लिया और किसी ने भी उसे न देखा ।

॥ चौपई ॥ रोइ पीटि ताको पितु हारा । किनूँ न ताको
 सोध उचारा । ताकी बधू त्रिपति पहि गई । परी हरत पति
 मुहि कह भई ॥ ८ ॥ त्रिप भाखी तिह सोध करीजै । शाह
 पुत कह जान न दीजै । खोजि थके नर नगर नदी मै ।
 दुहिता भेद न जाना जी मै ॥ ९ ॥ एक बरख राखा ता कौ
 घर । दुतिय कान किनहूँ न सुना नर । भाँति भाँति के
 भोगन भरी । बिबिध बिधन तन क्रीड़ा करी ॥ १० ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ नट आसन करि प्रथम बहुरि ललितासन लेई ।
 बहुरि रीति विपरीत करै बहु बिधि सुख देई । ललितासन
 कौ करत मदन को मद हरहि । हो रम्यो करत दिन रैन त्रास
 न रंज करहि ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ भाँति अनिक भामा
 भजत पायो अधिक अरामु । छिन छिन छतिया सौ लगै तजत
 न आठो जाम ॥ १२ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ बिकट करन इक दिवस
 तहाँ चलि आइयो । गहि बहिया तिह पीय पितहि दिखराइयो ।
 जोरि हाथ सिरु न्याइ कह्यो मुसकाइ करि । हो परी डारि
 इह गई हमारे आजु घर ॥ १३ ॥ ॥ चौपई ॥ सत्ति सत्ति

स्त्रियों ने पिता से कह दिया कि उसे परी ले गई है ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ रो-
 पीटकर पिता हार गया लेकिन किसी ने भी कोई खबर नहीं दी । उधर
 उस (शाह-पुत्र) की बधू राजा के पास गई और उसने कहा कि मेरे पति को
 परी ले गई है ॥ ८ ॥ राजा ने कहा कि उसको खोज करो और शाह के पुत्र
 को जाने मत दो । लोग नगर, नदी सब जगह खोज हारे पर उस कन्या का
 कहीं पता न चला ॥ ९ ॥ उसने उसे एक वर्ष तक घर रखा और किसी को
 कानोंकान खबर न हुई । विभिन्न प्रकार के भोगों से भरी उसने विविध
 प्रकार की क्रीड़ाएँ कीं ॥ १० ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ पहले नट-आसन और फिर
 ललितासन किया, फिर विपरीत रति से विविध सुख लिये । ललितासन
 करके वह कामदेव का गर्व चूर कर रहा था और बिना किसी भय के रात-
 दिन उससे रमा रहता था ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ अनेकों प्रकार से स्त्री के
 साथ रमण करते उसे बहुत सुख मिला । वह उसे प्रत्येक क्षण छाती से
 लगाए रहता था और आठों प्रहर उसे छोड़ता नहीं था ॥ १२ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ एक दिन बिकटकर्ण वहाँ आ निकला तो उस स्त्री ने प्रिय का
 हाथ पकड़कर उसे पिता को दिखाया । हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर
 उसने कहा कि इसे आज एक परी मेरे घर छोड़ गई है ॥ १३ ॥
 ॥ चौपाई ॥ पिता ने "सत्य-सत्य" का उच्चारण किया और कहा कि मैंने

तिह तात उचारा । लोन सुता सो नैन निहारा । मनुख संग
दै ग्रहि पहुचायो । भेद अभेद न कछु जड़ पायो ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ इक्यावन चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २५१ ॥ ४७२१ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ बावनों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ हंसधुजा राजा इक अति बल । अरि
अनेक जीते जिन दलि मलि । सुखदमती ताकी रानी इक ।
जाकी प्रभा कहत बनिता निक ॥ १ ॥ ताकी सुता सुखमती
सुनी । जा सम और न अबला गुनी । जोबन अधिक तवन
को राजत । जिह मुख निरखि चंद्रमा लाजत ॥ २ ॥
नागर कुअर नगर को राजा । जा सम दुतिय न बिधना साजा ।
करत शिकार कैसहूँ आयो । त्रिप दुहिता ग्रहि तर हव
धायो ॥ ३ ॥ राजकुअरि निरखति ताकी छबि । मद करि
मत्त रही छबि तर दबि । पान पीक ताके पर डारी । मोसौ
करे कैसहूँ यारी (म० प्र० ११७२) ॥ ४ ॥ नागर कुअर पलटि

जो कानों से सुना उसे आज आँखों से देख लिया । उसे मनुष्य साथ देकर
घर पहुँचा दिया और यह जड़ किसी भी भेद-अभेद को न समझ
सका ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ इक्यावनवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २५१ ॥ ४७२१ ॥ अफजूं ॥

दो सौ बावनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हंसध्वज एक बलवान राजा था जिसने अनेकों शत्रुओं
को जीता था । सुखदमती उसकी एक रानी थी जिसकी प्रभा का स्त्रियाँ
वर्णन किया करती थीं ॥ १ ॥ उसकी एक सुखमती नामक पुत्री थी जिसके
समान गुणवाली दूसरी अन्य कोई स्त्री नहीं थी । उसके शोभायमान यौवन
और मुख को देखकर चन्द्रमा भी लज्जित होता था ॥ २ ॥ नगरकुंवर उस
नगर का राजा था जिसके समान विधाता ने अन्य किसी का सृजन नहीं किया
था । वह शिकार खेलता उधर आया और राजा की लड़की के महल के
नीचे से निकला ॥ ३ ॥ राजकुमारी उसकी छवि देखकर मदमस्त हो गई ।
पान की पीक उसने उस पर फेंकी ताकि वह कैसे भी उससे मित्रता करे ॥ ४ ॥

तिह लहा । ताँहि बिलोक उरझि करि रहा । नैनन नैन
मिले दुहँअन के । शोक संताप मिटे सभ मन के ॥ ५ ॥
रेशम रसी डारि तर दीनी । पीरही बाँधि तवन सौ लीनी ।
ऐँचि ताहि निज धाम चढ़ायो । मन बाँछत प्रीतम कह
पायो ॥ ६ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ पिय धाम चढ़ाइ लयो जबही ।
मन भावत भोग किया तबही । दुति रीझि रही अवलोकति
यो । त्रिय जोरि रही ठग की ठग ज्यों ॥ ७ ॥ पुनि पौढि
रहँ उठि केल करें । बहु भाँति अनंग को ताप हरें । उर
लाइ रही पिय कौ त्रिय यौ । जनु हाथ लगे निधनी धन
ज्यों ॥ ८ ॥ मदनोदित आसन कौ करिकें । सभ ताप
अनंगहि को हरि कै । ललितासन बार अनेक धरें । दोऊ
कोक की रीति सौ प्रीति करें ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ भाँति
भाँति आसन करें चुंबन करत अपार । छैल छैलनी रस पगे रही
न कछू सँभार ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ हसि हसि केल दोऊ
मिलि करें । पलटि पलटि प्रिय कौ त्रिय धरें । हेरि रूप
ताको बलि जाई । छैलनि छैल न तज्यो सुहाई ॥ ११ ॥ तब
तह ताहि पितावत भयो । राज सुता जिय मै दुख पयो ।

नगरकुँवर ने पलटकर उसे देखा और उसी में उलझकर रह गया । नयनों से
नयन मिले और मन के शोक-संताप मिट गए ॥ ५ ॥ उसने रेशम की रस्सी
से पीढ़ा बाँधकर नीचे लटका दिया । उसे खींचकर अपने घर में चढ़ा लिया
और इस प्रकार मनचाहा प्रियतम प्राप्त किया ॥ ६ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ प्रिय
को जैसे ही घर पर चढ़ाया उससे मनचाहा भोग किया । उसकी छवि को
देखकर वह मोहित हो उठी और ठगी की ठगी रह गई ॥ ७ ॥ कभी लेट
जाते थे कभी उठकर केलिक्रीड़ा करते थे और अनेकों प्रकार से कामदेव का
ताप निवारण करते थे । प्रियतमा प्रिय को ऐसे हृदय से लगाए रहती थी
मानों निर्धन के हाथ धन लग गया हो ॥ ८ ॥ मदनोदित आसन को करके
कामदेव का ताप दूर करके फिर वे अनेकों बार ललितासन धारण करते थे
और दोनों कोक की रीति से प्रीति कर रहे थे ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ भाँति-
भाँति के आसन और चुंबन करके छैला और छैलनी सुध-बुध खोए हुए रस में
डूबे हुए थे ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ हंस-हँसकर दोनों केलिक्रीड़ा कर रहे थे
और पलट-पलटकर स्त्री प्रेमी को पकड़ रही थी । उसका रूप देखकर वह
बलिहार जा रही थी और छैला को छोड़ना प्रिया को अच्छा नहीं लगता
था ॥ ११ ॥ तब वहाँ पिता आ पहुँचा और राजसुता मन में दुखी हो उठी ।

चित्त मैं कही कवन बिधि कीजै । जाते पति पितु ते इह लीजै ॥ १२ ॥ आपि पिता के आगू गई । इह बिधि बचन बखानत भई । बिजिया एक त्रिपति बहु खई । ताँ ते बुद्धि ताकी सभ गई ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिजिया खाए ते तिसै रही न कछू सँभार । आनि हमारे ग्रहि धसा अपनो धाम बिचारि ॥ १४ ॥ ॥ चौपई ॥ तब मैं हेरि तिसै ग्रहि लीना । कछु भोजन खेबे कह दीना । अब सु करो तुम जु मुहि उचारो । जियत तजो कै जिय ते मारो ॥ १५ ॥ जो चलि ग्रहि दुश्मन हू आवैं । जो ता को ग्रहि कै त्रिप घावैं । नरक बिखैं ता को जम डारै । भला न ताकहू जगत उचारै ॥ १६ ॥ ॥ दोहरा ॥ जो आवैं निजु धाम चलि धरम भ्रात तिह जानि । जो कछु कहै सु कीजियै भूलि न करियै हानि ॥ १७ ॥ ॥ चौपई ॥ तब त्रिप ताकौ बोलि पठायो । निकट आपने तिह बैठायो । दुहिता वहै तवन कह दीनी । जासो रति आगे जिन कीनी ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ लै दुहिता ताकौ दई चित्त मैं भयो (मू०पं० ११७३) असोग । दुहिता को कछु ना लहा गूड़ अगूड़ प्रयोग ॥ १९ ॥ ॥ चौपई ॥ मन

मन में उसने सोचा कि कौन-सी विधि अपनाई जाय जिससे पिता से इस पति को माँग लिया जाय ॥ १२ ॥ स्वयं पिता के पास गई और उसे कहने लगी कि एक राजा ने ज्यादा भाँग पी ली थी इससे उसकी सुधि जाती रही है ॥ १३ ॥ ॥ दोहा ॥ भाँग खाने से उसे कुछ भी होश नहीं रहा और वह मेरे घर को अपना घर समझकर मेरे घर में आ घुसा है ॥ १४ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब मैंने उसे देखकर पकड़ा और खाने को कुछ भोजन दिया । अब तुम मुझे बताओ, मैं क्या करूँ ? इसे जीवित रहने दिया जाय या मार दिया जाय ॥ १५ ॥ घर में यदि दुश्मन भी चलकर आ जाय और राजा यदि उसे पकड़कर मार डाले तो यम उसे नर्क में डाल देता है और संसार भी उसे भला नहीं कहता ॥ १६ ॥ ॥ दोहा ॥ जो घर में चला आए उसे धर्म भाई समझना चाहिए; वह जो कहे करना चाहिए और भूलकर भी उसका नुक्सान नहीं करना चाहिए ॥ १७ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब राजा ने उसे बुलाया और अपने पास बैठाया । उसे वही पुत्री दे दी जिसके साथ उसने पहले ही रति-क्रीड़ा की थी ॥ १८ ॥ ॥ दोहा ॥ वही पुत्री उसे दे दी; मन में प्रसन्न हो उठा, परन्तु पुत्री का रहस्यात्मक प्रयोग समझ नहीं सका ॥ १९ ॥

भावत पावत पति भई । इह छल सौ पितु कह छलि गई । भेद अभेद किनहूँ नहि पायो । लै नागर लिय धाम सिधायो ॥ २० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ बावनों चरित्र समाप्तम् सतु सुभम् सतु ॥ २५२ ॥ ४७४१ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ तिरपन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ छत्वानी इस्त्री इक रहै । जीयो नाम ताहि जग कहै । मानिकचंद तवन कह बरा । भाँति भाँति के भोगन भरा ॥ १ ॥ वह जड़ एक जाटनी सौ रति । कछू न जानत मूढ़ महामति । लंबोदर पशु को अवतारा । गरधभ जोनि डरा करतारा ॥ २ ॥ लोगन ते अति तवन लजावै । ताते धाम न ताकौ ल्यावै । ताते और गाव लिय राखी । ससि सूरज ताके सभ साखी ॥ ३ ॥ बाज अरुड़ि तहा हवै जावै । काहू की लाजै न लजावै । जीयो जिय भीतर अति जरै । बाढी एक साथ रति करै ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब बहु अस्व अरुड़ हवै गाँव तवन मों जात । जियोमति तिह बाढिअहि

॥ चौपाई ॥ उसे इस छल से पिता को छलने के बाद मनचाहा पति मिल गया । भेद-अभेद को कोई नहीं जान सका और नागर उसे लेकर अपने घर को चलता बना ॥ २० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ बावनवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २५२ ॥ ४७४१ ॥ अफजूं ॥

दो सौ तिरपनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ एक क्षत्राणी स्त्री थी जिसे दुनिया जीओ कहती थी । मानिकचन्द्र ने उससे शादी की और भाँति-भाँति से भोग किये ॥ १ ॥ वह जड़ एक जाटनी से भी अनुरक्त था जो महा मूढ़मति थी । पशु के समान उसका लम्बा पेट था और उस गर्दभ-सदृश आकार से भगवान भी डरता था ॥ २ ॥ वह लोगों की लज्जा मानता था इससे उसे घर नहीं लाता था । चाँद-सूरज सभी जानते थे कि उसने अन्य गाँव में स्त्री रखी हुई थी ॥ ३ ॥ वहाँ वह निस्संकोच घोड़े पर सवार होकर जाता था । जीओ भी मन में कुढ़ती थी और एक बढ़ई के साथ रति-क्रीड़ा करती थी ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब वह

अपने धाम बुलात ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ तिह त्रिय होड ननद
 सौ पारी । बिहसित इह भाँतिन उचारी । सु मैं कहत हौ
 तीर तिहारे । सुनहु स्रवन धरि कथा पयारे ॥ ६ ॥ पति
 देखत कह्यो भोग कमहौ । ब्रह्म भोज ताँते करवैहौ ।
 जियोमती तबहूँ तुम जनियहु । मोरी साच कही तब
 मनियहु ॥ ७ ॥ यौ कहि बचनन बहुरि उचारा । पति गयो
 जबही अनत निहारा । तब बाढी तिह बोलि पठायो । काम
 भोग तिह संग कमायो ॥ ८ ॥ जाटिनि भोग जब जड़
 आयो । आन रमत लखि त्रियहि रिसायो । काढि क्रिपान
 महाँ रसु धयो । कर ते पकरि सहचरी लयो ॥ ९ ॥ जार
 एक उठि लात प्रहारी । गिरत भयो पसु प्रिथी मँझारी । देहि
 छीन तैं उठि न सकत भयो । जारपतरि भाजि जात
 भयो ॥ १० ॥ उठत भयो मूरख बहु काला । पाइन आइ लगी
 तब बाला । जौ पिय मुर अपराध बिचारो । काटि क्रिपान
 मार ही डारो ॥ ११ ॥ जिन निरभै तुहि लात प्रहारी । वहि
 आगै मैं कवन बिचारी । तुम भुअ गिरे जवन के मारे । खाइ

घोड़े पर सवार हो उसके गाँव में जाता तो इधर जीओमती उस बढ़ई को
 अपने घर बुला लेती थी ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ उस स्त्री की ननद के साथ
 शर्त लग गई और हँसते-हँसते बातें हुई कि मेरी बात सुनो और कान लगाकर
 मेरी कथा को श्रवण करो ॥ ६ ॥ पति के देखते रति-क्रीड़ा की जाय और
 ब्रह्मभोज करवाया जाय । (ननद ने कहा) मेरा कहा भी सच करके दिखा
 दो, तभी मैं तुमको जीओमती मानूँगी ॥ ७ ॥ इस प्रकार बहुत सी बातें हुई ।
 जब उसने पति को गए देखा तो बढ़ई को बुला लिया और उसके साथ काम-
 क्रीड़ा की ॥ ८ ॥ जाटनी से रमण करके जब वह मूर्ख आया तो अपनी
 पत्नी को अन्य के साथ रत देखकर क्रुद्ध हो उठा । कृपाण निकालकर वह
 दौड़ा पर एक दासी ने हाथ से पकड़ लिया ॥ ९ ॥ तब तक यार ने उठकर
 लात से प्रहार किया और वह पशु धरती पर गिर पड़ा । उसकी देह कमजोर
 थी और वह उठ न सका और यार भाग खड़ा हुआ ॥ १० ॥ थोड़ी देर बाद
 वह उठ खड़ा हुआ तो यह स्त्री उसके पैरों में आ पड़ी । हे प्रिय ! यदि मेरा
 दोष देखो तो मुझे कृपाण निकालकर मार ही डालो ॥ ११ ॥ जिसने निर्भय
 होकर आपको लात से मारा उसके आगे मैं बेचारी भला क्या हूँ । जिसके
 मारे हुए तुम धरती पर गिर पड़े हो और लुढ़ककर सँभल नहीं सके हो (मैं
 भला उसके सामने क्या हूँ) ॥ १२ ॥ ॥ दोहा ॥ जो व्यक्ति तुमसे नहीं डरा

लोढनी कछु न सँभारे (मू० प्र० ११७४) ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ जो
नर तुम ते ना डरा लातन किया प्रहार । ताके आगे हेरु मैं कहा
बिचारी नारि ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब मेरो तिन रूप
निहारा । सर अनंग तब ही तिह भारा । जोरावरी मोहि
गहि लीना । बल सौ दाबि रान तर दीना ॥ १४ ॥ मोर
धरम प्रभु आपु बचायो । जाते दरसु तिहारो पायो । जौ
तूँ अब इह ठौर न आतो । जोरावरी जार भजि
जातो ॥ १५ ॥ अब मुरि एक परीछा लीजै । जाते द्वरि चित्त
भ्रमु कीजै । मूत्र जरत जौ दिया निहारो । तब हसि हसि
मुहि साथ बिहारो ॥ १६ ॥ पात्र एक तट मूत्रयो जाई । जा
मै राख तेल को आई । पिय मुर चित तोसौँ अति डरा । ताते
लघु अति ही मैं करा ॥ १७ ॥ लघु के करै पाल सभ भरा ।
बाकी बचत मूत्र भुअ परा । तुभरो दास अधिक बलवाना ।
जाँ ते डरत हमारे प्राना ॥ १८ ॥ बही तेल भे दीप जगायो ।
पति देखत जिह लघु ठहरायो । भेद अभेद जड़ कछु न जाना ।
शीलवती इस्त्री कर माना ॥ १९ ॥ रीझि बचन इह भाँति
उचारो । मैं तेरो सत साचु निहारो । अब चेरा मैं भयो
तिहारा । कहो सु करौ काज बहु हारा ॥ २० ॥ मूत्र भए

और उसने लातों से प्रहार किया । तुम भला देखो उसके आगे मैं बेचारी स्त्री
क्या हूँ ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने जब मेरा रूप देखा तो कामासक्त हो
उठा । जबर्दस्ती उसने मुझे पकड़ लिया और जाँघों के नीचे बलपूर्वक दबा
लिया ॥ १४ ॥ मेरा धर्म तो प्रभु ने स्वयं बचाया कि तुम्हारे दर्शन हो गए ।
यदि तुम इस समय न आ जाते तो यह यात्रा तो मुझे बलात् भोग जाता ॥ १५ ॥
अब तुम मेरी एक परीक्षा ले लो और चित्त का भ्रम दूर करो । यदि मेरे
मूत्र का दिया जल जाए तो (मुझे पवित्र समझकर) मेरे साथ हँस-हँसकर रमण
करो ॥ १६ ॥ उसने एक पात्र में पेशाब किया और उसी में तेल रख आई ।
(कहने लगी) प्रिय मैं तो तुमसे अधिक ही डर गई हूँ, इसलिए मैंने थोड़ा ज्यादा
ही पेशाब कर दिया है ॥ १७ ॥ लवुशंका करने से हो पात्र भर गया है और
बाकी बचा हुआ मूत्र भूमि पर गिर पड़ा है । तुम्हारा भय तो अधिक
बलवान है जिससे मेरे प्राण भयभीत हैं ॥ १८ ॥ उसो तेल से दीपक जलाया
जिसे पति को पेशाब के तौर पर दिखाया था । मूर्ख कुछ भी रहस्य न समझ
सका और उसने उसे शीलवती स्त्री समझा ॥ १९ ॥ खुश होकर उसने कहा
कि मैंने तुम्हारा सतीत्व सत्य पाया है । अब तो मैं तुम्हारा दास हो गया

तें दीप जगायो । चमत्कार इह हमें दिखायो । पटुका डारि
 ग्रीव पग परा । घरी चारि लगि नाक रगड़ा ॥ २१ ॥
 ॥ दोहरा ॥ एक रिसालू निरखियो आँखिन ऐस चरित । कै हम
 आजु बिलोकियो साच कहत लिय मित ॥ २२ ॥ ॥ चौपई ॥ अब
 तू कहैं जु मुहि सोई करौ । हवै कर दास नीर तब भरौ ।
 हसि हसि लिय कौ गरे लगावै । भेद कछू मूरख नहि
 पावै ॥ २३ ॥ बिहसि नारि इह भाँति उचारा । ब्रह्म
 भोज करु नाथ सभारा । भली भाँति दिज प्रथम जिवावो ।
 बहुरो सेज हमारी आवो ॥ २४ ॥ कछू न लखा दैव के मारे ।
 ब्रह्म भोज कह किया सवारे । भली भाँति दिज प्रथम जिवाए ।
 बहुरि नारि की सेज सिधाए ॥ २५ ॥ जो लिय कही वहै गति
 कीनी । गति होड ननदी ते लीनी । तेल मूत्र कहि दीप
 जगायो । ब्रह्म दंड पति ते करवायो ॥ २६ ॥ अधिक
 हरीफ कहावत हुतो । भूलि न भाँगहि पीवत सुतो । इह चरित
 करि द्विगन दिखायो । इह छल सौ वहि लिय (मू० प्र० ११७५)
 डहकायो ॥ २७ ॥ प्रथम भोग पिय लखत कमायो । जारि

है, मुझे जो काम बताओ मैं करूँ ॥ २० ॥ मूत्र से तूने दीपक जलाकर मुझ
 एक चमत्कार दिखाया है । उसने गले में कपड़ा डालकर गर्दन पैरों पर
 रखकर चार घड़ी तक नाक रगड़ा ॥ २१ ॥ ॥ दोहरा ॥ एक रसिक ने आँखों
 से यह सब प्रपंच देखा और कहने लगा कि मैंने सच में आज स्त्री-मित्त
 को देख लिया है ॥ २२ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह (मानिकचन्द्र) कहने लगा कि
 अब तुम जो कहो वही मैं करूँगा और तुम्हारा गुलाम होकर तुम्हारा पानी
 भरूँगा । वह हँस-हँसकर स्त्री को गले लगा रहा था और मूर्ख कुछ भी भेद
 नहीं समझ पा रहा था ॥ २३ ॥ तब स्त्री ने हँसकर कहा कि हे नाथ ! सम्हाल
 कर ब्रह्मभोज कराओ । पहले भली प्रकार ब्राह्मणों को खिला दो फिर हमारी
 शय्या पर पदार्पण करो ॥ २४ ॥ उस भाग्य के मारे हुए ने कुछ नहीं देखा और
 भली प्रकार ब्रह्मभोज किया । अच्छी तरह पहले ब्राह्मणों को खिलाया और
 फिर पत्नी की शय्या की तरफ बढ़ा ॥ २५ ॥ जो स्त्री ने कहा वही कर दिखाया
 और अपनी ननद से वाजी जीत ली । तेल रूपी मूत्र से दीपक जला दिया
 और पति से ब्रह्मभोज करवा दिया ॥ २६ ॥ वह जो अधिक चतुर अपने
 आपको मानता था, फिर कभी भूलकर भी भाँग आदि पीकर नहीं सोया (और
 उसने कोई बुरा कर्म नहीं किया) । उस स्त्री ने यह प्रपंच करके दिखा दिया
 और उसे छल लिया ॥ २७ ॥ पहले तो उसने प्रिय के देखते-देखते यार से

मूत्र भे दीप दखायो । ब्रह्मभोज उलटो ता पर करि । पति
जानी पतिव्रत त्रिया घर ॥ २८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ तिरपन
चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ २५३ ॥ ४७६६ ॥ अफजूं ॥

अथ दो सौ चौअन चरित्र कथन ॥

॥ चौपाई ॥ बेस्वा एक ठौर इक सुनी । पातकला
नामा बहु गुनी । अधिक तरुनि की दिपति बिराजै । रंभा
को निरखत मन लाजै ॥ १ ॥ बिशनकेत इक राइ तहाँ को ।
पातिशाह जानियत जहाँ को । बिशनमती रानी ताके घर ।
प्रगट कला जनु भई निसाकर ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिशनकेत
बेस्वा भए निस दिन भोग कमाइ । बिशनमती त्रिय के सदन
भूलि न कबहूँ जाइ ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ रानी सखी पठी बेस्वा
पहि । दै धनु अधिक भाँति ऐसी कहि । बिशनकेत कौ जौ तूँ
मारें । बिशनमती दारिद तव टारें ॥ ४ ॥ सहचरि जब ऐसी
बिधि कही । बेस्वा बैन सुनत चुप रही । धन सराफ के घर मै

रमण किया । फिर मूत्र जलाकर दीपक दिखा दिया । उस पर फिर ब्रह्म-
भोज किया तथा पति ने भी स्त्री को पतिव्रता माना ॥ २८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ तिरपनवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २५३ ॥ ४७६६ ॥ अफजूं ॥

दो सौ चौवनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ एक स्थान पर पातकला नामक एक बहुत गुणों वाली
वेश्या थी । उस तरुणी की अत्यधिक दीप्ति थी, जिसे देखकर रंभा भी
लजाती थी ॥ १ ॥ वहाँ बिशनकेतु एक राजा था जिसे सभी बादशाह के
रूप में जानते थे । बिशनमती उसकी एक रानी थी जो मानों चन्द्रमा की
कला के समान प्रकट थी ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिशनकेतु वेश्या के साथ दिन-
रात रमण करता था और स्त्री बिशनमती के पास भूलकर भी नहीं जाता
था ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ रानी ने एक सखी को बहुत-सा धन देकर और यह
कहकर भेजा कि यदि तू बिशनकेतु राजा को मार दे तो बिशनमती तुम्हारी
सारी दरिद्रता दूर कर देगी ॥ ४ ॥ सखी ने जब यह कहा तो वेश्या बात
सुनकर चुप रह गई । उसने धन एक सराफ के यहाँ रख दिया और कह दिया

राखो । काम भए दीजै मुहि भाखो ॥ ५ ॥ सूरज छपा रैन
 हवै आई । तब बेस्वा त्रिप बोलि पठाई । बस्त्र अनूप पहिरि तह
 गई । बहु बिधि ताहि रिझावत भई ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ भौंति
 अनिक त्रिप संग सु केल कमाइकै । सोइ रही तिह साथ
 तरुनि लपटाइकै । अरध राति जब गई उठी तब जागि करि ।
 हो प्रीति रीति राजा की चित तें त्यागि करि ॥ ७ ॥ लै
 जमधर ताही को ताहि प्रहारिकै । उठि रुदिन किय आपि
 किलकटी मारिकै । निरखहु सभ जन आइ कहा कारन भयो ।
 हो तसकर कोऊ सँघारि अबै त्रिप को गयो ॥ ८ ॥ धूम नगर
 मौ परी सकल उठि जन धए । अतक त्रिपति कह आनि सकल
 निरखत भए । हाइ हाइ करि गिरह धरनि मुरछाइ करि । हो
 धूरि डारि सिर गिरहि धरनि दुख पाइ करि ॥ ९ ॥ बिसनमती
 हैं तहाँ तब आवत भई । निरखि राइ कह अतक दुखाकुलि
 अधिक भी । लूटि धाम बेस्वा को लिया सुधारिकै । हो तिसी
 कटारी साथ उदर तिह फारिकै ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ बहुरि
 कटारी काढि सो हनन लगी उर माँहि । बाँह सहचरी
 गहि लई (मू० पं० ११७६) लगन दई तिह नाहि ॥ ११ ॥
 ॥ चौपई ॥ प्रथम मारि पति पुनि तिह मारा । भेद अभेद किनूँ

कि जब मुझे जरूरत होगी तो दे देना ॥ ५ ॥ सूर्य छिप गया और रात हो
 गई तब राजा ने वेश्या को बुलवाया । वह अनुपम वस्त्र पहनकर वहाँ गई
 और अनेक प्रकार से उसे रिझाने लगी ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजा के साथ
 अनेकों प्रकार से केलिक्रीड़ा करके वह लिपटकर उसके साथ सो रही । जब
 आधी रात हुई तो राजा को प्रीति को चित्त से विस्मृत कर वह उठ खड़ी
 हुई ॥ ७ ॥ उसी की तलवार से उसको मारकर वह चीखकर रुदन कर उठी ।
 हे लोगो ! आकर देखो कि कोई चोर अभी राजा को मारकर चला गया है ॥ ८ ॥
 नगर में धूम मच गई और सभी लोग दौड़े आये और मृतक राजा को देखने
 लगे । वे हाय-हाय कहकर धरती पर गिरने लगे और सिर में धूल डालकर
 मूर्च्छित होने लगे ॥ ९ ॥ तभी बिसनमती भी वहाँ आ गई और राजा को
 मृत देखकर अत्यधिक दुखित हो गई । उसने उसी कटारी के साथ वेश्या का
 पेट फाड़कर उसका घर भी लूट लिया ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ फिर कटार
 निकालकर अपने सीने में मारने को उद्यत हुई । तब तक सहचरी ने उसकी
 बाँह पकड़ ली और उसे लगने नहीं दी ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ पहले पति को

न बिचारा । राजपुत्र अपने कौ दीना । ऐसो चरित चंचला
कीना ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ चौवन चरित्र
समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २५४ ॥ ४७८१ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ पचपन चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ दौला की गुजराति मै बसत सु लोक
अपार । चारि बरन तिह ठाँ रहै ऊच नीच सरदार ॥ १ ॥
॥ चौपाई ॥ मती लहौर तहाँ त्रिय सुनी । छत्रानि बुधि बहु बिधि
गुनी । एक पुरख तब ताँहि बरत भ्यो । अनिक भाँति के भोग
करत भ्यो ॥ २ ॥ तिह बहु छाडि पिता ग्रहि आयो । और
ठौर कह आप सिधायो । मलक नाम तिह के घर रहा । केल
करन तासौ त्रिय चहा ॥ ३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ भाँति भाँति
तासौ त्रिय भोगु कमाइयो । लपटि लपटि तिह साथ अधिक
सुख पाइयो । जब तिह रहा अधान तबै त्रिय यौ कियो ।
हो जहाँ हुतो तिह नाथ तही को मगु लियो ॥ ४ ॥

मारकर फिर उस (वेश्या) को मारा और किसी ने भी भेद-अभेद को नहीं
विचारा । अपने पुत्र को राज दे दिया और इस प्रकार का प्रपंच उस स्त्री ने
किया ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ चौवनवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २५४ ॥ ४७८१ ॥ अफजू ॥

दो सौ पचपनवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ दौला के गुजरात में अपार लोग रहते थे, जिसमें ऊँच-नीच
चारों वर्ण थे ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ वहाँ लाहौरमती एक क्षत्राणी स्त्री थी जो
बहुगुणज्ञ थी । एक पुरुष ने उसके साथ विवाह किया और अनेकों प्रकार से
रति-क्रीड़ा की ॥ २ ॥ उसे वह पिता के घर में छोड़ आया और आप अन्य
स्थान के लिए रवाना हो गया । उसके घर में मलिक नामक व्यक्ति था
जिससे उस स्त्री ने रति-क्रीड़ा करनी चाही ॥ ३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ उसके साथ
लिपट-लिपटकर उसने अत्यधिक सुख प्राप्त किया और जब उसको गर्भ रह
गया तो उस स्त्री ने ऐसा किया कि जहाँ उसका स्वामी रहता था वहीँ का
रास्ता पकड़ा ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ बिना प्रिय के मैंने अत्यधिक दुःख पाया है

॥ चौपई ॥ बिनु पिय मैं अति ही दुख पायो । ताँते मुर तन अधिक कुलायो । बिनु पूछे ताँते मैं आई । तुम बिनु मो ते रह्यो न जाई ॥ ५ ॥ त्रिय आए पति अति सुख पायो । भाँति भाँति तासौ लपटायो । तब तासौ ऐसे तिन कहा । तुहि ते गरभ नाथ मुहि रहा ॥ ६ ॥ तुमरे पीय प्रेम मै पागी । इशक तिहारे सौ अनुरागी । तिह ठाँ मो ते रहा न गयो । ताते तोर मिलन पथ लयो ॥ ७ ॥ अब जो कहो करौ मै सोई । महाराज कह जिय सुख होई । काढि क्रिपान चहौ तौ भारो । आपन ते मुहि जुदा न डारो ॥ ८ ॥ यह जड़ बचन सुनत हरखयो । भेद अभेद न पावत भयो । या कह हम तें रहा अधाना । मन महि ऐसे किया प्रमाना ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ नव आसन बीते सुता जनत भई त्रिय सोइ । जड़ अपनी दुहिता लखी भेद न पायो कोइ ॥ १० ॥ १ ॥ (सू० ग्रं० ११७७)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ पचपन चरित्र समाप्तम् सतु शुभम् सतु ॥ २५५ ॥ ४७९१ ॥ अफजूं ॥

और इसी से मेरा तन बहुत दुखी हो उठा है । मैं तुमसे बिना पूछे इसलिए आ गई हूँ कि तुम्हारे बिना मुझसे रहा नहीं जाता ॥ ५ ॥ स्त्री के आ जाने से पति बहुत सुखी हुआ और विभिन्न प्रकार से उससे लिपटा । तब उससे उसने ऐसे कह दिया कि हे नाथ ! तुमसे मुझे गर्भ रह गया है ॥ ६ ॥ हे प्रिय ! मैं तुम्हारे प्रेम में पगी तुम्हारे ही इशक में अनुरक्त हूँ । उस स्थान पर मुझसे रहा नहीं गया, इसीलिए तुमसे मिलने के वास्ते मैं राह पकड़कर चली आई हूँ ॥ ७ ॥ अब मुझसे जो कहो मैं करूँ ताकि मेरे स्वामी को सुख प्राप्त हो । अब चाहे कृपाण निकालकर मुझे मार दो पर मुझे अपने से अलग मत करो ॥ ८ ॥ वह जड़ यह बातें सुनकर प्रसन्न हो उठा और भेद-अभेद कुछ न समझ सका । वह मानने लगा कि गर्भ मुझी से रह गया है, क्योंकि वह ऐसा ही कह रही थी ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ नौ महीनों के बाद उस स्त्री ने एक पुत्री को जन्म दिया । इस मूर्ख ने बिना भेद समझे उसे अपनी पुत्री मान लिया ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद के दो सौ पचपनवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २५५ ॥ ४७९१ ॥ अफजूं ॥

अथ दो सौ छपन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ भनियत एक छिपति की दारा । चित्र-
मंजरी रूप अपारा । कान न सुनी न आँखिन हेरी । जैसी प्रभा
कुअरि तिह केरी ॥ १ ॥ अघटसिंघ तिह ठाँ को राजा ।
जा सम और न बिधना साजा । बाकी प्रभा वही कह सोही ।
लखि दुति सुरी आसुरी मोही ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ नरी
नागनी किन्नरी सुरी आसुरी बारि । अधिक रूप तिह राइ को
अटकत भई निहार ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ आखेटक सौ ताको
अति हित । राज साज महि राखत नहि चित । जात हुतो बन
झिग उठि धावा । ता पाछे तिन तुरै धवावा ॥ ४ ॥ जात
जात जोजन बहु गयो । पाछा तजत न झिग छिप भयो ।
महाँ गहिर बन तह इक लहा । घोर भयानक जात न
कहा ॥ ५ ॥ साल तमाल जहाँ द्रुम भारे । निबू कदप सु घट
जटियारे । नारंजी मीठा बहु लगे । बिबिध प्रकार रसन सौ
पगे ॥ ६ ॥ पीपर पार खजूरें जहाँ । सेवन सार सिरारी
तहाँ । जुगल जामनूँ जहाँ बिराजें । नरियर नार नागरी

दो सौ छप्पनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ एक राजा की अपार रूपवती स्त्री चित्रमंजरी नाम से
जानी जाती थी । उसकी ऐसी छवि थी जो न तो कानों से सुनी गई थी और
न आँखों से देखी गई थी ॥ १ ॥ वहाँ का राजा अघट सिंह था जिसके समान
विधि ने अन्य किसी को नहीं बनाया था । उसकी प्रभा उसी की थी और सुर-
असुर स्त्रियाँ सभी उस पर मोहित थीं ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ नर, नाग, किन्नर,
सुर एवं असुर-स्त्रियाँ सभी उस राजा का रूप देखकर उसमें उलझी हुई
थीं ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसका मन आखेट में अधिक लगता था और राज-
काज में उसका मन नहीं था । वह जंगल में जा रहा था कि मृग आगे दौड़
पड़ा । इसने भी घोड़ा उसके पीछे डाल दिया ॥ ४ ॥ भागते-भागते वह
अनेकों योजन चला गया पर राजा ने उसका पीछा नहीं छोड़ा । उसने एक
अत्यन्त गहरी जंगल देखा जिसकी भयानकता के बारे में बताया नहीं जा
सकता ॥ ५ ॥ वहाँ साल, तमाल, निबू, कदम्ब एवं बड़ वृक्षों जैसी जटाओं
वाले वृक्ष थे । नारंगी और मीठे फलों के वृक्ष विविध प्रकार के रसों से सिक्त
थे ॥ ६ ॥ पीपल, खजर, सेमल, जामुन आदि के वृक्ष वहाँ लगे थे और

राजें ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ नरगिस और गुलाब के फूल फुले
 जिह ठौर । नंदन बन सौ निरखिये जा सम कहूँ न
 और ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ सरिता बहुत बहत जिह बन मै ।
 झरना चलत लगत सुख मन मै । सोभा अधिक न बरनी
 जावै । निरखे ही आभा बनि आवै ॥ ९ ॥ तह ही जात भया
 सो राई । जाकी प्रभा न बरनी जाई । मरत भयो झिगहि
 लै तहाँ । देव दैत जा निरखत जहाँ ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ देव
 दानवन की सुता जिह बन सेवत नित्य । सदा बसायो राख
 ही ताहि चित्त ज्यो मित्य ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ जच्छ
 गंधर्बी अति उनमदा । सेवत हैं तिह बन कौ सदा । नरी
 नागनी कौ चित ल्यावै । नटी त्रितका कौन गनावै ॥ १२ ॥
 ॥ दोहरा ॥ तिनकी दुति तिनही बनी को कबि सकत बताइ ।
 लखे लगन लागी रहैं पलक न जोरी जाइ ॥ १३ ॥
 ॥ चौपई ॥ राजकुअरि तिन कौ जब लहा । मन महि अतिहि
 बिसम हवै रहा । चित भरि चौप डीठ इमि जोरी । जनुक
 चंद्र के साथ चकोरी ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ या राजा को रूप
 लखि अटकि रही वै बाल । ललना के लोइन निरखि सभ ही

नारियल, अनार आदि भी शोभायमान थे ॥ ७ ॥ ॥ दोहा ॥ नरगिस और
 गुलाब के फूल जहाँ खिल रहे थे, वह नंदन वन के समान अद्वितीय वन लग
 रहा था ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ उस वन में नदियाँ बहुत थीं और झरने भी सुख-
 दायक चल रहे थे । उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता, वह तो
 देखते ही बनता है ॥ ९ ॥ वहीं वह अवर्णनीय शोभा वाला राजा जा पहुँचा ।
 मृग उसे वहाँ ले जाकर मर गया । देव-दैत्य यहाँ सब देख रहे थे ॥ १० ॥
 ॥ दोहा ॥ देव-दानवों की कन्याएं इस वन का सदैव प्रयोग करती थीं और
 इस वन को मित्त के समान सदैव चित्त में बसाये रहती थीं ॥ ११ ॥
 ॥ चौपाई ॥ यक्षिणी, गंधर्व-स्त्रियाँ उन्मत्त हो सदैव इसी वन में विहार करती
 थीं । मनुष्य, नागिनी, नटी और नृत्यांगनाओं की तो गिनती ही नहीं की जा
 सकती ॥ १२ ॥ ॥ दोहा ॥ उनकी शोभा तो उन्हें ही सुहाती थी; कौन कवि
 भला उसका वर्णन कर सकता है । उन्हें देखते ही प्रेम हो जाता है और पलकें
 बन्द करते नहीं बनता था ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजकुंवर ने उनको जब
 देखा तो मन में अत्यन्त विस्मित हो उठा । चित्त में चौंककर उसने नजरें ऐसे
 जोड़ लीं, मानों चन्द्रमा को चकोरी देख रही हो ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ इस
 इस राजा का रूप देखकर वह बालिका उसी में उलझ गई और प्रिय के नयन

भई गुलाल ॥ १५ ॥ ॥ चौपई ॥ अटकत भई लाल लखि
 बाला । (सू०ग्र० ११७८) जैसे मनि लालन की माला । कह्यो
 चहत कछु तऊ लजावै । चलि चलि तीर कुअर के
 आवै ॥ १६ ॥ कै कुरबान लला मन डारै । भूखन चीर
 पटंबर वारै । फूल पान कोऊ लै आवै । भाँति भाँति
 सौ गीतन गावै ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ निरखि त्रिपत की
 अति प्रभा रीझि रही सभ नारि । भूखन चीर पटंबर सभ देइ
 छिनिक महि वार ॥ १८ ॥ जनु कुरंगनि नाद धुनि रीझि
 रही सुनि कान । त्यों अबला बेधी सकल बधी बिरह के
 बान ॥ १९ ॥ सभ रीझी लखि राइ छबि दिति यादिति
 कुमारि । किंचनि जच्छ भुजंग जा मोहि रही सभ
 नारि ॥ २० ॥ ॥ चौपई ॥ सभ अबला इह भाँति बिचारै ।
 जोर डीठ त्रिप ओर निहारै । कै हम आजु इही कह बरिहैं ।
 ना तर इही छेव पर मरिहैं ॥ २१ ॥ कहत दैत जा हम हों
 बरिहैं । देव सुता भाखै हम करिहैं । जच्छ किंचजा कहि
 हम लैहैं । नातर पिय कारन जिय दैहैं ॥ २२ ॥
 ॥ दोहरा ॥ जच्छ गंधर्वी किंचनी लखि छबि गई बिकाइ ।

देखकर रक्ताभ हो उठी ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ प्रिय को देखकर स्त्री उलझ
 कर ऐसे गुलाबी हो गई जैसे मणि और लालों की माला हो । वह कुछ कहना
 चाहती थी पर लजाती थी और चल-चलकर उस कुंवर के पास खिसकती
 आती थी ॥ १६ ॥ प्रिय पर उसने मन, आभूषण, वस्त्रादि सब न्योछावर
 कर दिए । कोई उसके लिए फूल, कोई पान ले आ रही थी और भाँति-भाँति
 के गीत गा रही थी ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा की अत्यन्त शोभा देखकर
 सभी स्त्रियाँ मोहित हो रही थीं और सबने आभूषण, वस्त्र आदि क्षण भर में
 न्योछावर कर दिये ॥ १८ ॥ जैसे हिरणी नाद के बाण से बिंध जाती है, उसी
 प्रकार सभी अबलाएँ बिरह के बाण से बिंधकर मोहित हो उठीं ॥ १९ ॥
 राजा की छवि देखकर सभी देव-दानव-स्त्रियाँ रोझ उठीं । किन्नर, यक्ष,
 भुजंग आदि की सभी स्त्रियाँ मोहित हो उठीं ॥ २० ॥ ॥ चौपाई ॥ सभी
 स्त्रियाँ इस प्रकार विचार कर रही थी और नज़र गड़ाकर राजा की ओर देख
 रही थीं । या तो हम आज इसका वरण करेंगी अथवा इसी स्थल पर मर
 जायँगी ॥ २१ ॥ दैत्य-कन्याएँ कहने लगों, हम वरण करेंगी और देव-स्त्रियाँ
 कहने लगों, हम वरण करेंगी । यक्ष और किन्नर-कन्याएँ कहने लगों कि हम
 विवाह करेंगी अन्यथा प्रिय के कारण प्राण दे देंगी ॥ २२ ॥ ॥ दोहरा ॥ यक्ष,

सुरी आसुरी नागनी नैनन रही लगाइ ॥ २३ ॥
 ॥ चौपई ॥ इक त्रिय रूप बिशन को धरा । एकन रूप
 ब्रहमा को करा । इक त्रिय भेस रुद्र को धार्यो । इकन
 धरम को रूप सुधार्यो ॥ २४ ॥ एकै भेस इंद्र को किया ।
 एकन रूप सूरज को लिया । एकन भेस चंद्र को धार्यो ।
 मनहु मदन कौ मान उतार्यो ॥ २५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ सात
 कुमारी चली भेस इह धारकै । वा राजा कह दरशन दिया
 सुधारिकै । सात सुता राजा हमरी ए बरु अबै । हो राज
 पाट पुनि करहु जीति खल दल सभै ॥ २६ ॥ ॥ चौपई ॥ जब
 राजै उन रूप निहरा । सतपटाइ पाइन पर परा । धक
 धक अधिक ह्रिदै तिहु भई । चटपट सकल बिसरि सुधि
 गई ॥ २७ ॥ धीरज धरा जबै सुधि आई । पुनि पाइन
 लपटाना धाई । धंनि धंनि भाग हमारे भए । सभ देवन
 दरशन मुहि दए ॥ २८ ॥ ॥ दोहरा ॥ पापी तें धरमी भयो
 चरन तिहारे लाग । रंक हुतो राजा भयो धन्य हमारे
 भाग ॥ २९ ॥ ॥ चौपई ॥ मैं सुई करौ जु तुम मुहि भाखौ ।
 चरनन ध्यान तिहारे राखौ । नाथ सनाथ अनाथहि किया ।

गंधर्व, किन्नर-स्त्रियाँ छवि देखकर विक गई और सुर, नाग, असुर-स्त्रियाँ भी
 नयनों को जोड़कर स्थित हो गई ॥ २३ ॥ ॥ चौपाई ॥ एक स्त्री ने विष्णु
 का और एक ने ब्रह्मा का रूप धारण किया । एक ने रुद्र का रूप बनाया
 और एक ने धर्मराज का रूप धारण कर लिया ॥ २४ ॥ एक ने इंद्र का,
 एक ने सूर्य का, एक ने चन्द्रमा का ऐसा सुन्दर रूप धारण किया कि मानों
 कामदेव का भी मान-मर्दन कर दिया हो ॥ २५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ सात कुमारियाँ
 यह वेश धारणकर चल पड़ीं और उस राजा को आ दिखाई दीं । हे राजन् !
 हमारी सात कन्याओं के साथ अभी विवाह करो और शत्रुओं को नष्ट कर राज
 करो ॥ २६ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब राजा ने उनका स्वरूप देखा तो घबराकर
 शीघ्र उनके चरणों में जा पड़ा । उसका हृदय अत्यधिक धक-धक करने लगा
 और शीघ्र ही उसकी सारी सुधि भूल गई ॥ २७ ॥ धैर्य धारण करने पर
 जब उसे होश आया तो वह पुनः चरणों में लिपटने के लिए दौड़ा । मेरे धन्य
 भाग्य हैं, जो आज मुझे सत्र देवताओं ने दर्शन दिये हैं ॥ २८ ॥ ॥ दोहा ॥ मैं
 आपके चरणों से लगकर पापी से धार्मिक हो गया हूँ । मैं निर्धन था आज
 राजा हो गया । मेरे धन्य भाग्य हैं ॥ २९ ॥ ॥ चौपाई ॥ मैं वही कहूँगा
 जो आप कहेंगे । मैं तो सदैव आपके चरणों में ध्यान लगाए रखूँगा । हे

क्रिपा (म०प्र० ११७६) करी दरशन मुहि दिया ॥ ३० ॥ यो
 बच सुनि लोपित तें भई । हवै कर सात कुमारी गई ।
 चलि करि तीर त्रिपति के आई । कह्यो आजु मुहि बरो
 इहाँई ॥ ३१ ॥ ॥ दोहरा ॥ यो जब तिन उचरे बचन कछु
 न लहा अग्यान । तिह कह तुरत बरत भयो बच करि सुरन
 प्रमान ॥ ३२ ॥ ॥ चौपई ॥ तब तिह ठौर बधाई बाजी ।
 सुरी आसुरी जहाँ बिराजी । जच्छ किन्नजा जहाँ सुहावें ।
 उरगि गंधर्वी गीतन गावें ॥ ३३ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल सौ
 राजा छला सपत कुअरि तिह ठौर । यह प्रसंग पूरन भयो
 चली कथा तब और ॥ ३४ ॥ भाँति भाँति तिह सुंदरी त्रिप
 कह भज्यो सुधार । भाँति भाँति क्रीड़त भई कोक बिचार
 बिचार ॥ ३५ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ छपन चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ २५६ ॥ ४८२६ ॥ अफजूं ॥

नाथ ! मुझ अनाथ को आपने सनाथ कर दिया है और मुझे दर्शन देकर कृपा
 की है ॥ ३० ॥ यह वचन सुनकर वे लुप्त हो गई और फिर सात कुमारियाँ
 बनकर आ पहुँचीं । वे चलकर राजा के पास आई और कहा कि हमारा वरण
 करो ॥ ३१ ॥ ॥ दोहा ॥ जब उन्होंने यह कहा तो वह अज्ञानी कुछ भी न
 जान सका और देवताओं के वचनों का प्रामाणिक मानता हुआ उनका वरण
 कर लिया ॥ ३२ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब उस स्थान पर बधाइयाँ बजने लगीं
 जहाँ सुर-असुर-स्त्रियाँ विराजमान थीं । जहाँ यक्ष और किन्नर-स्त्रियाँ
 विराजमान थीं और नाग-गंधर्व-स्त्रियाँ गीत गा रही थीं ॥ ३३ ॥ ॥ दोहा ॥ इस
 प्रपंच से सातों कुमारियों ने उस स्थल पर राजा को छल लिया । अब यह
 प्रसंग पूर्ण हुआ और अन्य कथा आगे चली ॥ ३४ ॥ उन स्त्रियों ने भाँति-
 भाँति प्रकार से राजा का उपभोग किया और कोक-विचार के अनुसार विविध
 क्रीड़ाएँ कीं ॥ ३५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ छपनवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २५६ ॥ ४८२६ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ सत्तावन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ नीलकेत राजा इक भारो । पुहपवती जिह
नगर जियारो । मंज्रि बचित्र तवन की दारा । रति पति
की त्रिय को अवतारा ॥ १ ॥ स्त्री अलिगुंजमती दुहिता
तिह । छवि जीती ससि पुंजन की जिह । तेज अपार कहा
नहि जाई । आपु हाथ जगदीस बनाई ॥ २ ॥ स्त्री मनि
तिलकु कुअरि इक राजा । राज पाट वाही कह छाजा ।
अप्रमान दुति कही न जाई । लखि छवि भान रहत
उरझाई ॥ ३ ॥ ॥ बिजं छंद ॥ स्त्री अलिगुंज मती सखि पुंज
लिए इक कुंज बिहारन आई । रूप अलोक बिलोकि महीप
को शोक निवारि रही उरझाई । देखि प्रभा सकुचै जिय
मै तऊ जोरि रही द्विग बाँधि ढिठाई । धाम गई मन हुआही
रह्यो जनु जूप हराइ जुआरी की न्याई ॥ ४ ॥ धामन जाइ
सखी इक सुंदरी नैन की सैनन तीर बुलाई । काढ दयो अति
ही धनवा कह भाँति अनेकन सौ समुझाई । पाइ परी मनु
हारि करी भुज हाथ धरी बहुतैं धिधिआई । मीत मिलाइ

दो सौ सत्तावनवाँ चरित्र कथन

॥ चौपाई ॥ पुष्पावती नगर का उजाला राजा नीलकेतु एक बड़ा
राजा था । विचित्रमंजरी उसकी स्त्री थी जो रति का अवतार थी ॥ १ ॥
अलिगुंजमती उसकी पुत्री थी जिसने मानों चन्द्र-किरणों की भी छवि जीत
रखी हो । उसका अपरिमित तेज अवर्णनीय था । उसे मानों परमात्मा नै
स्वयं बनाया था ॥ २ ॥ मणितिलक कुँवर एक राजा था जिसका अपार
राजपाट था । उसकी छवि अपरिमित थी और उसके सौंदर्य को देखकर सूर्य
भी ठिठक जाता था ॥ ३ ॥ ॥ विजय छंद ॥ अलिगुंजमती सखियों का झुंड
लेकर एक कुंज में विहार करने गई । राजा का सुन्दर स्वरूप देखकर वह
शोक का निवारण कर उलझकर रह गई । उसका सौंदर्य देखकर वह हृदय
में लज्जा से भर उठी और फिर भी ढीठतापूर्वक आँखें लड़ाकर देखती रही ।
वह घर तो चली गई पर उसका मन हारे हुए जुआरी की भाँति वहीं रह
गया ॥ ४ ॥ घर जाकर उसने आँख के इशारे से एक सखी को बुलाया ।
धन निकालकर उसके सम्मुख रख दिया और उसे अनेकों प्रकार से समझाया ।
उसके पाँव पड़ गई, उसकी मित्रता की और उसके सामने बहुत धिधियाई ।

कि मोहु न पाइ हैं जिय जु हुती कहि तोहि सुनाई ॥ ५ ॥
जोगिन हवै बसिहौ बन मै सखि भूखन छोरि बिभूति चडैहौ ।
अंगन मै सजिहौ भगवे पट हाथ बिखै गड्ढा गहि लैहौ ।
नैनन की पुतरीन के पत्न बाकी बिलोकनि माँगि (म०प्र० ११८०)
अघैहौ । देहि छुटो क्यों न आयु घटो प्रिय ऐसी घटान मै जान
न दैहौ ॥ ६ ॥ एकत बोलत मोर करोरिन दूसरो कोकिलका
कुहकारें । दादर दाहत है हिय कौ अरु पानी परै छित
मेघ फुहारें । झिग्र करै झरना उर भाँझ क्रियान कि बिदलता
चमकारें । प्रान बचे इह कारन ते प्रिय आस लगै नहि आज
पधारें ॥ ७ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ अति व्याकुल जब कुअरि
सु घरि सहचरि लही । कान लागि के बात बिहसि ऐसे कही ।
चतुरि दूतिका तह इक अबै पठाइयै । हो स्त्रीमनि तिलक
कुअर कौ भेद मँगाइयै ॥ ८ ॥ सुनत मनोहर बात अधिक
मोठी लगी । विरहि अगनि की ज्वाल कुअरि के जिय जगी ।
चतुरि सखी इक बोलि पठाई सीत तन । हो जिय जानी मुहि
राखि जानि प्रिय प्रान धन ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनत बचन
सहचरि चतुरि तहा पहुँची जाइ । जह मनि तिलक त्रिपति

मुझे या तो मित्र को मिला दो अथवा तुम मुझे नहीं पाओगे । मेरे मन में जो
था वह मैंने तुम्हें कह सुनाया है ॥ ५ ॥ हे सखी, मैं योगिनी होकर वन में
बस जाऊँगी और आभूषणों को छोड़कर भभूत मल लूँगी । अंगों पर भगवे
वस्त्र धारण कर लूँगी और हाथ में लोटा ले लूँगी । नैनो की पुतलियों के
पात्र बना लूँगी और माँगकर ही तृप्ति पा लूँगी । चाहे मेरी आयु घट जाय या
शरीर ही टूट जाय पर मैं प्रिय को ऐसे ही जाने न दूँगी ॥ ६ ॥ एक तो
अनेकों मोर बोल रहे हैं और दूसरे कोयलें कूक रही हैं । मेंढक हृदय को जला
रहे हैं और बादलों की फुहारें धरती पर पड़ रही हैं । झींगुर हृदय में छेद
किये दे रहे हैं और बिजली कृपाण की तरह चमक रही है । मेरे प्राण प्रिय
की आशा लगाए हुए ही बचे हुए हैं । पर प्रिय आज नहीं आए ॥ ७ ॥
॥ अडिल्ल ॥ जब सहचरी सखी ने कुँवरि को अत्यन्त व्याकुल देखा तो हँसकर
उसके कान में यह बात कही । एक चतुर दूती को अभी वहाँ भेजो और श्री
मणितिलक कुँवर को बुलवाइए ॥ ८ ॥ मनोहर बात सुनकर उसे अच्छा लगा
और कुँवरि के हृदय में विरह की ज्वाला जल उठी । उसने मित्र के पास
एक चतुर सखी को भेजा और कहलवाया कि जैसे भी चाहो हे प्रिय! मुझे बचा
लो ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ वह दासी सखी वहाँ आ पहुँची जहाँ मणितिलक

चढ़ा आखेटकहि बनाइ ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ सहचरि
 तहा पहुँचित भई । त्रिप आगमन जहाँ सुनि लई । अंग
 अंग सुभ सजे सिंगारा । जनु निसपति सौभित जुत
 तारा ॥ ११ ॥ सीस फूल सिर पर त्रिय झारा । करन
 फूल दुहूँ करन सु धारा । मोतिन की माला के धरा । मोतिन
 ही सो मागहि भरा ॥ १२ ॥ सभ भूखन मोतिन के धारे ।
 जिन महि बज्र लाल गुहि डारे । नील हरित मनि प्रोई
 भली । जनु ते हसि उडगन कह चली ॥ १३ ॥ जब राजै
 वा त्रिय को लहा । मन महि अधिक चक्रित हवै रहा । देव
 अदेव जच्छ गंध्रबजा । नरी नागनी सुरी परीजा ॥ १४ ॥
 ॥ दोहरा ॥ त्रिप चित्त्यो इह पूछियै क्यों आई इह देस ।
 सूरसुता कै चंद्रजा कै दुहिता अलिकेस ॥ १५ ॥
 ॥ चौपई ॥ चल्थो चल्थो ताके तट गयो । लखि दुति तिह
 अति रीझत भयो । रूप निरखि रहियो उरझाई । कवन
 देव दानो इह जाई ॥ १६ ॥ मोतिन माल बाल तिन लई ।
 जिह भीतर पतिया गुहि गई । कह्यो कि जैसी मुझहि

राजा शिकार के लिए पहुँचा हुआ था ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ दासी वहाँ
 पहुँच गई जहाँ उसने राजा का आना सुना । उसने अंग-अंग को सजा रखा
 था और ऐसा लग रहा था जैसे तारागणों से युक्त चन्द्रमा शोभायमान
 हो ॥ ११ ॥ स्त्री ने शीशफूल सिर पर सजाया और कर्णफूल दोनों कानों
 में पहने । मोतियों की माला पहनी और मोतियों से ही माँग भरी ॥ १२ ॥
 सब आभूषण उसने मोतियों के धारण किये और उनमें कठोर लाल भी गूँथ
 दिये । नीली, हरी मणियाँ पिरोई । ऐसा लग रहा था मानों तारागण हँस
 कर उड़ रहे हों ॥ १३ ॥ राजा ने जब उस स्त्री को देखा तो वह मन में
 अत्यधिक चकित हुआ । यह देव, अदेव, यक्ष अथवा गन्धर्व-कन्या है । यह
 नर, नाग अथवा सुर-स्त्री है या फिर परी है ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा ने
 सोचा कि इससे पूछा जाय कि क्यों इस देश में आई है । यह सूर्य की पुत्री,
 चन्द्र की कन्या अथवा कुबेर की पुत्री है ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ चलता-चलता
 वह उसके पास पहुँचा और उसकी छवि देखकर अत्यन्त मोहित हो उठा ।
 उसका रूप देखकर वह उलझकर रह गया और सोचने लगा कि यह किस देव
 अथवा दानव की पुत्री है ॥ १६ ॥ उस स्त्री ने मोतियों की माला ली और
 उसी में पत्र गूँथ दिया । उसे कहा कि तुम जैसी मुझे देख रहे हो उससे उसे

निहारहु । तैसियै तिह त्रिप सहस बिचारहु ॥ १७ ॥
 ॥ दोहरा ॥ त्रिप बर बाल बिलोकि छवि मोहि रहा सरबंग ।
 सुध ग्रहि की बिसरी सभै चलत भयो तिह संग ॥ १८ ॥
 ॥ चौपई ॥ लाल माल (सू०ग्रं० ११८१) कौ बहुरि निकारा ।
 पतिया छोरि बाँचि सिर झारा । जो सरूप दीयो बिधि याके ।
 तैसी सुनी सात सतवाँके ॥ १९ ॥ किह बिधि वाको रूप
 निहारौ । सफल जनस करि तदिन बिचारौ । जो ऐसी
 भेटन कह पाऊँ । इन रानिन फिरि मुख न दिखाऊँ ॥ २० ॥
 वही बाट ते उही सिधायो । तवनि तरुनि कह रथहि
 चढ़ायो । चलत चलत आवत भयो तहाँ । अबला भगहि
 निहारत जहाँ ॥ २१ ॥ ॥ दोहरा ॥ राज साज सभ त्यागि
 करि भेख अतिथ बनाइ । तवनि झरोखा के तरे बैठयो
 धूँआँ लाइ ॥ २२ ॥ ॥ चौपई ॥ राज सुता भिच्छा लै आवै ।
 ताकह अपने हाथ जिवावै । निसि कह लोग जबै स्वै जाँही ।
 लपटि लपटि दोऊ भोग कसाँहीं ॥ २३ ॥ इह बिधि कुअरि
 अधिक सुख लीए । सभ ही लोग बिस्वासित कीए । अतिथ
 लोग कहि ताँहि बखानै । राजा करि कोऊ न पछानै ॥ २४ ॥

हजार गुना मानों ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा उस बाला की छवि देखकर
 सर्वांग रूप से मोहित हो उठा । उसे घर की सुधि भूल गई और वह उसी के
 साथ चल पड़ा ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ लालों की माला को उसने निकाला
 और पत्र को खोल-पढ़कर अपना सिर धुना । विधाता ने जो स्वरूप इस
 स्त्री को दिया है तो इस हिसाब से उसके बारे में इसका कहना सत्य ही
 होगा ॥ १९ ॥ किस प्रकार उसका रूप देखूँ और अपने जन्म को सफल करूँ ।
 यदि ऐसी स्त्री कहीं मिल जाय तो इन रानियों को तो वापस मुँह न
 दिखाऊँ ॥ २० ॥ उसी रास्ते से उस ओर चल पड़ा और उस तरुणी को
 रथ में बिठा लिया । चलता-चलता वह वहाँ आ गया जहाँ वह बालिका
 उसका रास्ता देख रही थी ॥ २१ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजसाज सब त्याग कर
 और फ़कीर का वेश बनाकर उसके झरोखे के नीचे धुआँ लगाकर बैठ
 गया ॥ २२ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजकन्या भिक्षा लेकर आती थी और उसे
 अपने हाथ से खाना खिलाती थी । रात में लोग जब सो जाते थे तो ये
 लिपट-लिपटकर रत्ति-क्रीड़ा करते थे ॥ २३ ॥ इस विधि से कुँवरि ने अत्यधिक
 सुख प्राप्त किया और सब लोगों पर विश्वास जमा दिया । उसे सब फ़कीर

इक दिन कुअरि पिता पहि गई । बचन कठोर बखानत भई ।
 कोप बहुत राजा तब भयो । बनबासा दुहिता कह
 दयो ॥ २५ ॥ सुन बनबास प्रगटि अति रोवै । चित के
 बिखै सकल दुख खोवै । सिधि काज सोरा प्रभू कीना ।
 तात हमै बनबासा दीना ॥ २६ ॥ सिवकन संग इमि राज
 उचारो । एह कन्या कह बेगि निकारो । जह बन होइ घोर
 बिकराला । तिह इह छड आवहु ततकाला ॥ २७ ॥ लै
 सेवक तित संग सिधाए । ताँको बन भीतर तजि आए ।
 वह राजा आवत तह भयो । तही तवनि तें आसन
 लयो ॥ २८ ॥ द्विद रति प्रथम तवन सौ करी । भाँति
 भाँति कै भोगन भरी । है आरूढ़त पुनि तिह कीना । नगर
 अपन को मारग लीना ॥ २९ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ सत्तावन चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २५७ ॥ ४८५५ ॥ अफजू ॥

के तौर पर जानते थे और राजा कोई भी नहीं मानता था ॥ २४ ॥ एक
 दिन कुँवरि पिता के पास गई और उसे भला-बुरा कहने लगी । राजा उससे
 कुपित हो उठा और उसने पुत्री को वनवास दे दिया ॥ २५ ॥ वनवास को
 सुनकर वह प्रकट में तो रोने लगी पर मन में प्रसन्न थी । परमात्मा ने मेरा
 कार्य सिद्ध कर दिया है, जिससे पिता ने मुझे वनवास दिया है ॥ २६ ॥ सेवकों
 को राजा ने कहा कि इस लड़की को तुरन्त देश से निकालो । जहाँ घोर वन
 हो वहाँ इसको तत्काल छोड़ आओ ॥ २७ ॥ सेवक उसे साथ ले वहाँ पहुँच
 गए और उसे वन के भीतर छोड़ आए । वह राजा भी वहाँ आ गया और
 उसने वहीं आसन जमा लिया ॥ २८ ॥ सबसे पहले (मिलते ही) उसने
 वृद्धतापूर्वक रति-क्रिया की और भाँति-भाँति से भोग-विलास किया । फिर
 उसे घोड़े पर बैठाया और अपने नगर का रास्ता पकड़ा ॥ २९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ सत्तावनवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २५७ ॥ ४८५५ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ अठावन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ हंसाधुज राजा इक सुनियत । बल
प्रताप जिह अति जग गुनियत । केसोतमा धाम तिह नारी ।
जा सम सुनी न नैन निहारी ॥ १ ॥ हंसमती तिह ग्रहि
दुहिता इक । पढ़ी व्याकरण कोकशासत्रनिक । ता सम
अवर न कोऊ जग मै । थकित रहित (म०ग्रं० ११८२) निरखत
रवि मग मै ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अति सुंदरि वह बाल
जगत महि जानियै । जिह सम अवर सुंदरी कहूँ न बखानियै ।
जोबन जेब अधिक ताके तन राजई । हो निरखि चंद्र अरु
सूर मदन छबि लाजई ॥ ३ ॥ रूप कुअरि सु कुमार जबै
अबला लहा । जा सम निरखा कहूँ न कहूँ किन हूँ कहा । जब
वह राजसभा महि बैठत आइकै । हो सभ इसतिन के चित
कह लेत चुराइकै ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ राजसुता इक सखी
बुलाई । सिखै कुअर के पास पठाई । कोटि जतन करि तिह
ह्याँ ल्यावहु । मुख माँगहु जोई सोई पावहु ॥ ५ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ व्याकुल राजकुअरि जबै सहचरी निहारी ।

दो सौ अठ्ठावनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हंसाध्वज नामक एक राजा सुना जाता था, जिसका बल-
प्रताप सारा जगत मानता था । केशोतमा नामक स्त्री उसके घर में थी
जिसके समान अन्य कोई न देखा गया और न सुना गया था ॥ १ ॥ हंसमती
नामक एक पुत्री उसके घर में थी जो व्याकरण, कोक एवं शास्त्रादि पढ़ी
थी । जगत में उसके समान अन्य कोई नहीं था और सूर्य भी उसे रास्ते
चलती को देखने के लिए थककर भी खड़ा रहता था ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उस
बालिका को अत्यन्त सुन्दर समझा जाता और उसके समान अन्य सुन्दरी का
बखान नहीं होता था । उसका यौवन अत्यधिक शोभायमान था और सूर्य-
चन्द्र भी उसकी छबि को देख लज्जित होते थे ॥ ३ ॥ जब उस स्त्री ने
रूपकुंवर सुकुमार को देखा तो पाया कि ऐसा व्यक्ति न कहीं देखा और
न कहीं सुना गया है । जब वह राजसभा में बैठता था तो सभी स्त्रियों के
चित्त को चुरा लेता था ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजकुमारी ने एक सखी को
बुलाया और उसे सिखाकर कुंवर के पास भेजा । उसे कोई भी यत्न कर
यहाँ ले आओ और मुँहमाँगा इनाम पाओ ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ सखी ने

मति न कुअरि मरि जाइ इहै जिय माँहि बिचारी । चलो
 सकल डर डारि पहुँची जाइ तह । हो बैठो सेज सवारि तवन
 को मिल जह ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ ज्यों त्यों करि ताकौ
 तह ल्याई । बात मिलन की तिह न जताई । तब बहु धाम
 कुअरि के आयो । राजसुता निरखत सुख पायो ॥ ७ ॥
 ताकौ कही आनि मोकौ भजु । लाज साज सभ ही अबही तजु ।
 मथन भेद जब सीत पछाना । धरम छुटन ते अधिक
 डराना ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुंदरि अधिक कहाइ जग जनम
 राजग्रहि पाइ । ढीठ रसियो सो सों चहैं अजहूँ न निलज
 लजाइ ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ जब तुहि मैं निरखत छबि भई ।
 लोकलाज तबही तज दई । धरम करम मैं कछू न जाना ।
 तव दुति लखि मुर जीय बिकाना ॥ १० ॥ सुन तरनी मैं
 तोहि न भजौ । धरम आपनो कबहूँ न तजौ । जब ते क्रिपा
 नंद मुहि जायो । इहै मित्र उपदेश बतायो ॥ ११ ॥
 ॥ दोहरा ॥ पर नारी की सेज पर भूलि न दीजहु पाइ ।
 काम भोग नहि कीजियहु तासो रुचि उपजाइ ॥ १२ ॥
 ॥ चौपई ॥ अब तुमरे मैं करम निहारे । कहिहौ राजा पास

जब राजकुँवरि को व्याकुल देखा तो सोचा कि कहीं कुँवरि मर न जाय । वह
 सभी भय त्यागकर वहाँ जा पहुँची जहाँ शय्या सजाकर उसका मित्र बैठा
 हुआ था ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ जंसे-तैसे वह उसे वहाँ ले आयी पर मिलन
 की बात को उसने जताया नहीं । तब वह कुँवरि के घर चला आया और
 राजकुमारी को देखकर हर्षित हो उठा ॥ ७ ॥ उसने कहा कि लज्जा-सज्जा आदि
 को त्यागकर मुझसे रमण करो । जब रतिक्रीड़ा के भेद को मूर्ख ने जान लिया
 तो धर्महानि के भय से अत्यधिक डर गया ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा के घर
 जन्म पाकर, अत्यधिक सुन्दरी कहाकर यह ढीठ निर्लज्ज मुझसे अब रमण
 करना चाहती है ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब मैंने तुम्हारी छवि देखी तो लोक-
 लाज त्यागकर मैंने धर्म-कर्म कुछ नहीं जाना और तुम्हारी छवि पर मेरा मन
 बिक गया ॥ १० ॥ हे तरुणी ! सुनो, मैं तुम्हारा उपभोग नहीं करूँगा और
 अपना धर्म नहीं छोड़ूँगा । जबसे मैं पैदा हुआ हूँ, मुझे विप्र ने यही उपदेश
 दिया है ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ पराई स्त्री की शय्या पर भूलकर भी पाँव
 नहीं रखना चाहिए और उससे रुचिपूर्वक कभी भी कामभोग नहीं करना
 चाहिए ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ मैं तुम्हारे कर्म देख चुका हूँ और यह सब
 राजा को कहूँगा । तुम्हें घर से पकड़ मँगाऊँगा और अनेक प्रकार से

सवारे । तोहि लदन ते पकरि मँगैहो । अनिक भाँति सासना
 दिवँहो ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ परदा तुमरो फारिहौ तुमरे
 पिता हजूरि । तोकह देस निकारिहौ कूक्रिनि की ज्यों
 कूर ॥ १४ ॥ ॥ चौपई ॥ जरि बरि गई नामु कुतिया सुनि ।
 कोप किया अति ही साथो धुनि । प्रथम इसी कह
 अबै (सू० ग्रं० ११८३) सँघारो । बहुरि खिस याके कहु मारो ॥ १५ ॥
 जिन तुहि यह उपदेश दिडायो । ताते मोसौ न भोग कमायो ।
 कै जड़ आनि अबै मुहि भजो । नातर आस प्रान कि
 तजो ॥ १६ ॥ भूरख तिह रति दान न दीया । ग्रहि अपने
 का मारग लीया । अनिक भाँति तिन किया धिकारा । पाइन
 परी लात सौ मारा ॥ १७ ॥ राजसुता क्रुद्धित अति भई । इह
 जड़ मुहि रति दान न दई । प्रथम पकरि करि याहि सँघारो ।
 बहुरि मिस्र याकै कहु मारो ॥ १८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तमकि
 तेग को तब तिह घाइ प्रहारियो । ताहि पुरख कह मारि ठौर
 ही डारियो । ऐंच तवन की लोथि दई तर डारिकै । हो ता
 पर रही बैठि करि आसन मारिकै ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ जपमाला
 कर सहि गही बैठी आसन मारि । पठै सहचरी पिता प्रति लीना
 निकट हकारि ॥ २० ॥ ॥ चौपई ॥ हंसकेत तब ताँहि सिधाना ।

प्रताड़ित करवाऊंगा ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ तुम्हारे पिता के समक्ष तुम्हारा
 पर्दाफाश कलेंगा और वह तुम्हें कुत्तों की तरह बाहर निकाल देगा ॥ १४ ॥
 ॥ चौपाई ॥ वह कुतिया यह सुनकर जल-भुन गई और माथा धुनकर
 उसने अत्यन्त क्रोध किया । पहले तो मैं इसी को मारूँ और फिर इसके
 पंडित को भी मार डालूँगी ॥ १५ ॥ जिसने इसे ऐसा उपदेश दिया है कि
 इसने मेरे साथ रतिक्रीड़ा नहीं की है । मूर्ख या तो आकर मुझसे रमण करो
 नहीं तो अपने प्राणों की आशा त्याग दो ॥ १६ ॥ उस मूर्ख ने रतिदान नहीं
 किया और अपने घर का रास्ता लिया । अनेक प्रकार से उसे धिक्कारा और
 पाँव पर गिरी हुई को लात से मारा ॥ १७ ॥ राजकुमारी अत्यन्त क्रोधित
 हो उठी कि इस मूर्ख ने मुझे रतिदान नहीं दिया । पहले मैं इसे मारूँगी और
 फिर इसके गुरु को मार डालूँगी ॥ १८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उसने तमककर
 तलवार का वार उस पर किया और उस पुरुष को उसी स्थान पर मार
 डाला । उसकी लाश खींचकर नीचे फेंक दी और उस पर आसन जमाकर
 बैठ गई ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ माला हाथ में पकड़कर आसन मारकर बैठ

निरखि सुता तर अत्रितक डराना । कहसि कुअरि इह कसि
 तुहि करा । बिनु पराध याको जिय हरा ॥ २१ ॥ चितामनि
 मुहि संत सिखायो । बहु विधि मिस्र उपदेश दिड़ायो ।
 जो इह रूप कुअर ते सरिहै । तब सभ काज तिहारौ
 सरिहै ॥ २२ ॥ ताँते मै याको गहि मारा । सुनहु पिता
 तुम बचन हमारा । साधो संत बैठ याँ पर मै । जो जानहि
 सो करहु अब तैं ॥ २३ ॥ हंसकेत त्रिप कोप भरा तब । बचन
 सुता कौ लवन सुना जब । ह्याँ ल्यावहु तिह मिस्र पकरिकै ।
 जो ऐसे ग्यो संत सिखरिकै ॥ २४ ॥ सुनि अत्रित बचन उताइल
 धाए । तिह मिस्रहि त्रिप पहि गहि ल्याए । ताकह अधिक
 जातना दिया । करम चंडार बिप्र है किया ॥ २५ ॥ सुनि बच
 मिस्र अचंभे रहा । त्राहि त्राहि राजा तन कहा । मै प्रभु करम
 न ऐसा किया । तब दुहिता कह संत न दिया ॥ २६ ॥ तब
 लगि राजकुअरि तह आई । दिजवर के पाइन लपटाई । तुम
 सु संत जो हमहि सिखायो । ताही बिधि मै जाप कमायो ॥ २७ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ तब आइसु हम मानि मनुच्छ कह मारियो । ता

गई और दासी भेजकर पिता को बुलवा लिया ॥ २० ॥ ॥ चौपाई ॥ हंसकेतु
 तब उस ओर चल पड़ा और अपनी पुत्री के नीचे मृतक को देखकर घबरा
 गया । उसने कुँवरि को कहा कि यह तुमने क्या किया है और इसे निरपराध
 को क्यों मार डाला ॥ २१ ॥ मुझे पंडित ने चितामणि मंत्र विभिन्न प्रकार से
 दृढ़ करवाया है और कहा है कि यदि मैं इस कुँवर को मार दूँ तो मेरे सारे
 काम ठीक हो जायेंगे ॥ २२ ॥ इसलिए मैंने इसे पकड़कर मार डाला है ।
 हे पिता, तुम मेरी बात सुनो । मैंने इस पर बैठकर मंत्र की साधना की है
 और तुम जो कहो मैं अभी कर सकती हूँ ॥ २३ ॥ राजा हंसकेतु तब क्रोध
 से भर उठा और पुत्री की बात सुनते ही उसने कहा कि अभी उस पंडित को
 पकड़कर लाओ जो ऐसा मंत्र इसे सिखाकर गया है ॥ २४ ॥ बात सुनकर
 सेवक दौड़े गए और उस पंडित को पकड़कर ले आए । उसे अत्यधिक यातना
 सबने दी, क्योंकि वे यह समझ रहे थे कि इसने चांडाल का काम किया है ॥ २५ ॥
 मिश्र यह सुनकर अचंभे में पड़ गया और त्राहि-त्राहि करने लगा । हे प्रभु !
 मैंने यह कर्म नहीं किया है और आपकी पुत्री को कोई मंत्र नहीं दिया
 है ॥ २६ ॥ तब तक राजकुमारी वहाँ आ गई और विप्र के पाँवों से लिपट
 कर कहने लगी कि तुमने जो मंत्र मुझे सिखाया था, मैंने उसी विधि से उसका
 जाप किया है ॥ २७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तुम्हारी आज्ञा मानकर मैंने एक

पाछे चिंतामनि मंत्र उचारियो । चारि पहर निसि जया सु
सिधि न कछु भयो । हो ताते हम रिसि ठानि सु (मू० गं० ११८४)
कहि त्रिप प्रति दयो ॥ २८ ॥ ॥ चौपई ॥ अब किह काज
मुकरि तै गयो । तब चिंतामन हमहि द्रिड़यो । अब कयो न कहत
त्रिपति के तीरा । साच कहत कस लागत पीरा ॥ २९ ॥
मिश्र चक्रित चहूँ ओर निहारै । कहा भयो जगदीस सँभारै ।
करि उपदेश बहुत बिधि हारा । भेद अभेद त्रिप कछु
न बिचारा ॥ ३० ॥ ॥ दोहरा ॥ फाँसी तिहु मिश्रहि दिया
हंसकेत रिसि भानि । हंसमती कह जिह सिखयो । ऐसो मंत्र
बिधान ॥ ३१ ॥ जिह न भजी तिह घै हना इह छल मिश्रहि
मारि । इह बिधि त्रिप क्रुद्धित किया हंसमती बर
नारि ॥ ३२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ अठावन चरित्र
समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २५८ ॥ ४८८० ॥ अफजूं ॥

मनुष्य को मारा और फिर चिंतामणि मंत्र का उच्चारण किया । चार प्रहर
तक उसका जाप किया पर कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हुई । इसी से क्रुद्ध हो
राजा को यह सब मैंने बता दिया ॥ २८ ॥ ॥ चौपाई ॥ अब भला तुम
क्यों मुकर गए हो और तब तो तुमने मुझे चिंतामणि मंत्र दृढ़ करवाया था ।
अब राजा के सामने क्यों नहीं मानते हो और सत्य कहते तुमको क्या दर्द हो रही
है ॥ २९ ॥ मिश्र ने चक्रित हो चारों ओर देखा और सोचा अब यह क्या हो
रहा है । परमात्मा ही रक्षा करे । बहुत सी बातें उसने कही और हार
गया पर राजा ने भेद-अभेद कुछ नहीं माना ॥ ३० ॥ ॥ दोहरा ॥ हंसकेतु ने
क्रोध मानकर उस मिश्र को फाँसी दे दी, जिसने हंसमती को वह मंत्र-विधान
सिखाया था ॥ ३१ ॥ जिसने रमण नहीं किया उसे मार डाला और प्रपंच से
मिश्र को भी मार डाला । इस प्रकार श्रेष्ठ सुन्दरी हंसमती ने राजा को भी
क्रोधित कर दिया ॥ ३२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ अठ्ठावनवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २५८ ॥ ४८८७ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ उनसठि चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ रुद्रकेत राजा हुतो राशट्र देश को नाहि ।
जा सम और नरेश नहि दुतिथ प्रिथी तल माहि ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ स्त्री म्रिगराजकला ताकी त्रिय । बसत त्रिपति के
जिह अंतर जिय । जाके रूप तुल्लि नहि कोऊ । एकै घड़ी
विधाता सोऊ ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ दोइ पुत्र ताते भए अमित
रूप की रासि । तीनि भवन सहि जानियत जाको तेज
रुत्तास ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ ब्रिखभकेत सुभ नामु प्रथम को
जानियै । व्याघ्रकेत दूसर को नाम प्रमानियै । रूपवान
बलवान विदित जग मै भए । हो जनुक सूर ससि प्रगट दुतिय
तिह पुरवए ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ जब जोबन ब्रह्मका तिनके
तन । जात भयो जब ही लरिकापन । अरि अनेक बहु
विधन सँघारे । चाकर प्रजा आपने पारे ॥ ५ ॥
॥ दोहरा ॥ भाँति भाँति के देस लै बहु जीते अरिराज ।
सभहिन सिर सोभित भए दिन मन ज्यों नर राज ॥ ६ ॥ रूप
कुअर घटि प्रथम मै दूसर रूप अपार । देस देस तें आनि त्रिय
सेवत जाँहि हजार ॥ ७ ॥ ॥ सोरठा ॥ ऐसो किसी न देस

दो सौ उनसठवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ (सौ) राश्ट्र देश में एक राजा था, जिसके समान पृथ्वीतल
पर अन्य कोई राजा नहीं था ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ मृगराजकला उसकी
स्त्री थी जो राजा के मन में बसा करती थी । उसके रूप के समकक्ष अन्य
कोई नहीं था और लगता था मानों विधाता ने एक ही बनाई हो ॥ २ ॥
॥ दोहा ॥ उससे अमित रूपराशि वाले दो पुत्र हुए जिनका भय तीनों लोकों
में माना जाता था ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ पहले का नाम वृषभकेतु था और
दूसरे का नाम व्याघ्रकेतु था । वे संसार में रूपवान और बलवान जाने जाते
थे और ऐसे लगते थे मानों दूसरे चन्द्र-सूर्य धरती पर आए हों ॥ ४ ॥
॥ चौपाई ॥ जब उनका यौवन-काल आया और लड़कपन बीता तो उन्होंने
अनेकों शत्रुओं का नाश किया और अपने सेवकों का पालन किया ॥ ५ ॥
॥ दोहा ॥ भाँति-भाँति के देश और अनेकों शत्रु राजा उन्होंने मारे और
सबके सिर पर राजा सूर्य की तरह शोभायमान थे ॥ ६ ॥ पहले कुँवर में
रूप कम था पर दूसरे कुँवर में अपार रूप था और देश-देशान्तरों से स्त्रियाँ

जैसो लहु सुंदर कुअर । कै दूसरो दिनेश कै निशेश अलिकेश
 यहि ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ ताकी भात पुत्र की लखि छवि ।
 जात भई सुधि सात तवन सब । रम्यो चहत लहु सुत के
 संग । रानी व्यापी अधिक अनंगा ॥ ९ ॥ तिह तब चहा
 नाथ कह मरियै । (म० ग्रं० ११८५) पुनि टीका को पुत्र सँघरियै ।
 कवन चरित कह कहाँ बिचारो । लहु सिर पुत्र छल कह
 ढारो ॥ १० ॥ एक दिवस सिवधुजहि बुलायो । सदरा सो
 करि मत्त सुवायो । पुनि टीका को पूत हकारा । अधिक मत्त
 ताहू कह प्यारा ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ पति सुत प्रथम सुवाइ
 करि काढि लिया असि हाथ । पूत हेत मारा तिनै हाथ आपने
 साथ ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ मारि पूत पति रोइ पुकारा ।
 पति सुत सुत पति मारि सँघारा । मद के महा मत्त ए भए ।
 आपुस मै कोपित तन तए ॥ १३ ॥ उदित दोऊ आहव कह
 भए । काढि क्रिपान कोष तन तए । असि लै पितु सुत के
 सिर झारा । पूत काढि तितु सीस प्रहारा ॥ १४ ॥ मै ठाढी
 इह चरित निहारा । फूटि न गए नैन करतारा । दाव बचाइ
 न इन ते अयो । ताते काल दुहुँन को भयो ॥ १५ ॥ अब हौ

आकर उनकी सेवा करती थीं ॥ ७ ॥ ॥ सोरठा ॥ ऐसा सुन्दर कुँवर कहीं
 भी नहीं था । वह मानों सूर्य था अथवा चन्द्र था या फिर कुबेर था ॥ ८ ॥
 ॥ चौपाई ॥ उसकी माँ पुत्र की छवि को देखकर अपनी सुधि भूल जाती
 थी । वह छोटे पुत्र के साथ रमण करना चाहती थी, क्योंकि रानी के तन में
 अत्यधिक काम व्याप्त हो चुका था ॥ ९ ॥ तब उसने सोचा कि स्वामी को
 मारा जाय और फिर राज-तिलक पानेवाले पुत्र को मारा जाय । कौन सा
 प्रपंच किया जाय कि छोटे पुत्र के सिर पर राज्य-छत्र झूले ॥ १० ॥ उसने
 एक दिन शिवध्वज को बुलाया और मदिरा पिलाकर उसे मस्त कर सुला
 दिया । पुनः बड़े पुत्र को बुलाया और उसे भी अत्यधिक प्रेम किया ॥ ११ ॥
 ॥ दोहरा ॥ पति के पुत्र को सुलाकर तलवार निकाल ली और छोटे पुत्र के हेतु
 उसे अपने हाथ से मार दिया ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ पुत्र को मार कर रोकर
 पति को पुकारा । अब पति के पुत्र और पुत्र के पिता अर्थात् राजा को मार
 डाला । वे मद में मस्त हो कुपित हो उठे ॥ १३ ॥ दोनों युद्ध करने लगे
 और कृपाणें निकालकर कुपित हो मारने लगे । पिता ने कृपाण पुत्र के सिर
 में मारी और पुत्र ने उसके सिर पर वार किया ॥ १४ ॥ मै खड़ी-खड़ी यह
 देखती रही, परमात्मा ने मेरे नयन क्यों न फोड़ दिये । इनसे दाँव न बचाया

देव कहौ का करौ । उर महि सारि कटारी मरौ ।
 बानप्रस्थ हवै बनहि सिधैहौ । लहु सुत के सिर छत्र
 दुरैहौ ॥ १६ ॥ प्रथम पूत पति को बध कीना । बहुरि
 राज लहु सुत कह दीना । बहुरौ भेख अतिथि को धारी । पंथ
 उत्तरा ओर सिधारी ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ तहा जाइ तपसा
 करी शिव की बिबिध प्रकार । भूत राट रीझत भए निरखि
 ठिठुरता नारि ॥ १८ ॥ ॥ चौपई ॥ बरंबयूह पुत्री के कहा ।
 जो तब व्यापि ह्रिदै सहि रहा । देहु त पिता इहै बर पाऊँ ।
 बिरधा ते तरुनी हवै जाऊँ ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिरधा ते
 तरुनी भई बह दीना त्रिपुरारि । तुचा पुरातन छाडि करि ज्यों
 अहि कुंचुरि डारि ॥ २० ॥ ॥ चौपई ॥ बिरधा ते तरुनी जब
 भई । तब चलि तिसी नगर कह गई । जह खेलत सुत चड़ा
 शिकारा । सारे रीछ रीझ झंखारा ॥ २१ ॥ एक मृगी का
 भेस धार तब । तन के वस्त्र छोडि सुंदर सब । खेलत हुतो
 अखिट सुत जहाँ । हरनी हवै निकसत भी तहाँ ॥ २२ ॥ ता
 पाछे तिह सुत है डारा । संगी किसू न ओर निहारा ।
 एकल जात दूरि भयो तहाँ । धो बन घोर भयानक

जा सका इसलिए दोनों मारे गये ॥ १५ ॥ हे देव ! अब मैं क्या करूँ और
 क्यों न तन में कटार भोंककर मर जाऊँ । मैं तो छोटे पुत्र के सिर पर छत्र
 झुलाकर बानप्रस्थ हो जाऊँगी ॥ १६ ॥ पहले पुत्र और पति का वध किया
 और फिर छोटे पुत्र को राज दिया । पुनः साधु का वेश धारण किया और
 उत्तरी देश की ओर चली गई ॥ १७ ॥ ॥ दोहा ॥ वहाँ जाकर उसने शिव
 की विविध प्रकार से तपस्या की जिससे स्त्री की कठोरता देखकर भूत-सम्राट्
 उस पर प्रसन्न हो गए ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ उन्होंने कहा कि जो तुम्हारे
 मन में कामना है उसे मैं पूरा करता हूँ । तब उसने कहा कि हे देव ! मुझे
 यह वर दो कि मैं वृद्ध से तरुणी हो जाऊँ ॥ १९ ॥ ॥ दोहा ॥ शिव ने
 वरदान दिया और वह वृद्धा से तरुणी हो गई । उसने पुरानी त्वचा ऐसे ही
 छोड़ दी जैसे साँप केंचुली छोड़ता है ॥ २० ॥ ॥ चौपाई ॥ जब वह वृद्धा
 से तरुणी हो गई तो चलकर उसी नगर में जा पहुँची, जहाँ पुत्र शिकार के
 लिए निकला था और रीछ-भालू आदि को मार रहा था ॥ २१ ॥ वह एक
 मृगी का वेश धारण करके और तन के सुन्दर वस्त्र त्यागकर वहाँ जा निकली
 जहाँ पुत्र शिकार खेल रहा था ॥ २२ ॥ उसके पुत्र ने उसी के पीछे दौड़
 लगा दी और किसी संगी-साथी की भी परवाह नहीं की । वह अकेला वहाँ

जहाँ ॥ २३ ॥ साल तमाल जहाँ द्रुम भारे । निबू कदप
सुबट जटियारे । सीबर तार खजूरें भारी । निज हाथन जनु
ईस सुधारी ॥ २४ ॥ अंगी जाइ तह गई भुलाई । (म० प्र० ११८६)
उत्तमांगना भेस बनाई । आनि अपन तिह रूप दिखारा ।
राजकुअर मोहित करि डारा ॥ २५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ सुरी
आसुरी किन्नरि कवन बिदारियै । नरी नागनी नगनी को
जिय धारियै । गंधरबी अपसरा कवन इह जानियै । हो
रवी ससी बासवी पारबती सानियै ॥ २६ ॥ राजकुमार
निरख तह रहा लुभाइकै । पूछत भयो चलि ताहि तीर तिह
जाइकै । नरी नागनी नगनी इन ते कवनि तुय । हो कवन
साचु कहि कह्यो सुता तै एस भुअ ॥ २७ ॥ ॥ दोहरा ॥ मन
बच क्रम मै तोरि छवि निरखत गयो लुभाइ । अबही हवै अपनी
बसहु धाम हमारे आइ ॥ २८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक आध बिर
नाँहि नाँहि तिन भाखियो । लगी निगोडी लगन जात नहि
आखियो । अंत कुअर जो कहा मानि सोई लियो । हो पति
सुत प्रथम सँघारि लहु सुत छलि पिथ कियो ॥ २९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ उनासठि चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २५६ ॥ ४६१६ ॥ अफजू ॥

दुख निकल गया जहाँ घोर भयानक वन था ॥ २३ ॥ वहाँ साल, तमाल,
निबू, कदम्ब और बड़ के भारी वृक्ष थे । सीबर, ताड़, खजूर के भारी वृक्ष
थे और ऐसे लग रहे थे मानों उन्हें परमात्मा ने अपने हाथों से बनाया
हो ॥ २४ ॥ मृगी वहाँ जाकर लुप्त हो गई और उसने सुन्दर अंगोंवाली स्त्री
का वेश बना लिया । उसने अपना रूप आ दिखाया और राजकुँवर को मोहित
कर लिया ॥ २५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ यह सुर-स्त्री, असुर-स्त्री, किन्नर-स्त्री या
नर-नाग अथवा पर्वत (पहाड़ी) स्त्री है । गंधर्वी, अप्सरा, सूर्य, शशि की
स्त्री अथवा इन्द्राणी है ॥ २६ ॥ राजकुमार उसे देखकर लुब्ध हो उठा और
उसके पास जाकर पूछने लगा । तुम नर, नाग अथवा नग (पहाड़) की स्त्री
में से कौन हो ? मुझे सत्य बताओ ॥ २७ ॥ ॥ दोहा ॥ मैं तो मन-वचन-कर्म से
तुम्हारी छवि देखकर उस पर मोहित हो गया हूँ । तुम तुरन्त मेरे घर में चलो
और बसो ॥ २८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उसने एक आधी बार नाँह-नाँह कहा पर
निगोड़ी लगन ऐसी लगी थी कि अच्छी तरह कहा भी नहीं जाता था । अंत

जो कुवश ने कहा वही उसने मान लिया और इस प्रकार उसने पहले पति और पुत्र को मारकर फिर छलकर छोटे पुत्र को प्रिय बना लिया ॥ २६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ उनसठवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २५६ ॥ ४६१६ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ साठ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ मसतकरन इक त्रिपति जगिस्स्वी । तेज भान बलवान तपस्स्वी । स्त्री कजराछमती तिह दारा । पारबती को जनु अवतारा ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ मसतकरन त्रिप शिव पूजा नितप्रति करै । भाँति अनिक के ध्यान जानि गुर पगु परै । रैन दिवस तपसा के बिखै बितावई । हो रानी के ग्रहि भूलि न कबही आवई ॥ २ ॥ रानी एक पुरख सौ अति हित ठानिकै । रमत भई तिह संग अधिक रुचि मानिकै । सोत हुती सुपना महि शिव दरशन दियो । हो बचन आपने मुख ते हसि मुहि यौ कियो ॥ ३ ॥ ॥ शिव बाच ॥ इक गहिरे बन बिच तुम एकल आइयो । करि कै पूजा मोरी मोहि रिझाइयो । जोति आपने सौ तव जोति मिलाइहो । हो तुहि कह जीवत मुकति सु जगति दिखाइहौ ॥ ४ ॥ ताते तव आग्या लै पति तहि जाइहौ । करिकै शिव की पूजा अधिक

दो सौ साठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ मस्तकर्ण एक सूर्य के समान तेजस्वी और बलवान राजा था । कजराक्षमती उसकी स्त्री थी जो मानों पार्वती का अवतार थी ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजा मस्तकर्ण शिव की पूजा नित्य करता था और अनेक प्रकार के ध्यान करके वह गुरु के चरण पकड़ता था । रात-दिन तपस्या में बिताता था और रानी के घर भूलकर भी नहीं आता था ॥ २ ॥ रानी एक पुरुष से प्रेम करके उसके साथ रुचिपूर्वक रमण करती थी । उस सोती हुई को सपने में शिव ने दर्शन दिये और हँसकर कहा ॥ ३ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ तुम अकेली एक गहरे वन में जाओ और मेरी पूजा करके मुझे प्रसन्न करो । मैं अपनी ज्योति से तुम्हारी ज्योति मिलाऊँगा और तुम्हें जगत् में जीवन-मुक्त कर दूँगा ॥ ४ ॥ उससे आज्ञा ले पति के पास गई कि मैं शिव की पूजा कर

रिझाइहौ । मोकह जीवत मुकति सदा शिव करहिगे । हो
सपत मातृकुल सपत पितरकुल तरहिगे ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ भे
त्रिप की आग्या गई लै शिवजू को नाम । जियत
मुकति (मू० प्र० ११८७) भी पति लहा बसी जार के
धाम ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पण्ड्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ साठ चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६० ॥ ४६२२ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ इकसठ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अहिधुज एक रहै राजा बर । जनुक
दुतिय जग वयो प्रभाकर । स्त्री मासूकमती तिह रानी । रवी
चंद्रवी के इंद्रानी ॥ १ ॥ ताके पुत्र होत ग्रिह नाही । इह
चिंता त्रिय के जिय नाही । राजा ते जिय सहि डरपावै ।
बहु पुरखन संग केल कभावै ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक दिवस
सुंदरी झरोखा बैठि बर । महिखन को पालक तह निकस्यो आइ
करि । सेहीवाल सोहनी मुख ते गावतो । हो सभ नारिन के
चित्त कौ चला चुरावतो ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनि रानी स्त्रुत

उसे रिझाऊंगी । मुझे शिव जीवन-मुक्त करेंगे और मेरे माता-पिता के सातों
कुल पार हो जायेंगे ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ राजा की आज्ञा और शिवजी का नाम
लेकर जीवन-मुक्त हो गई और आकर यात्र के घर में बस गई ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ साठवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६० ॥ ४६२२ ॥ अफजूं ॥

दो सौ इकसठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ अहिध्वज एक श्रेष्ठ राजा था जो मानों दुनिया में दूसरा
सूर्य था । उसकी रानी मासूकमती थी और वह सूर्य की चन्द्रमा की अथवा
इन्द्र की पत्नी के समान थी ॥ १ ॥ उसके घर पुत्र उत्पन्न नहीं होता था उसे
यही चिन्ता सताती थी । राजा से वह मन में डरती थी और बहुत से पुरुषों
से रतिक्रीड़ा करती थी ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक दिन सुन्दरी झरोखे में
बैठी थी कि एक भैंस चरानेवाला उधर से आ निकला । वह सोहनी-
महिवाल का गीत गा रहा था और सब स्त्रियों के चित्त को चुरा ले रहा
था ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ रानी कानों से नाद की ध्वनि सुनकर होश खो बैठी

नाद धुनि मार करी बिसंभार । रमो सहिख पालक भएँ इह
 बिध किया बिचार ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ सहिख चरावत थो
 बहु जहाँ । रानी गई रात्रि कह तहाँ । द्वैक घरी पाछे पति
 जागा । असि गहि कर पाछे त्रिय लागा ॥ ५ ॥ सखी हुती
 इक तहाँ सियानी । तिन इह बात सकल जिय जानी । जो
 ताकौ पति ऐस लहैहैं । तौ ग्रहि जम के दुहँ पठैहैं ॥ ६ ॥
 आगू आपि तई उठि गई । रानी जहाँ मिलत तिह भई ।
 ऐंचि अंग तिह तबै जगाया । सभ ब्रितांत कहि ताहि
 सुनाया ॥ ७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ त्रास समुंद के बिखै बूडि तरुनी गई ।
 गरो पगरिया डारि तिसै सारत भई । एक बडे द्रम संग दयो
 लटकाइकै । हो बस्त्र उतारि तर न्हात भई तह जाइकै ॥ ८ ॥
 ॥ चौपई ॥ अहिधुज राज तहाँ तब आयो । न्हात म्रितक तर
 त्रिय लखि पायो । पूछत पकरि तबै तिह भयो । जरि बरि
 आठ टूक हवै गयो ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ निजु धामन कह
 छोरिकै क्यो आई इह ठौर । साचु कहै तौ छाडिहौ हनो कहै
 कछु और ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ तब त्रिय जोरि दुहँ कर
 लिआ । पति पाइनि तर मसतकि दिया । प्रथम सुनहु पिय
 बैन हमारे । बहुरि करहु जो ह्रिदै तिहारे ॥ ११ ॥ मोरे बढी

और उसने यह विचार किया कि इसी भैंस चरानेवाले से रमण किया
 जाय ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ जहाँ वह भैंसे चराता था रानी रात में वहाँ
 गई । दो घड़ी के बाद पति जग गया और तलवार पकड़कर स्त्री के पीछे
 लग गया ॥ ५ ॥ वहाँ एक चतुर सखी थी जिसने यह सारी बात समझ
 ली और सोचा कि यदि इसे पति ऐसे पकड़ लेगा तो दोनों को यमलोक पहुँचा
 देगा ॥ ६ ॥ वह पहले ही वहाँ पहुँची जहाँ उसे रानी मिली । उसे
 खींचकर इसने जगाया और सारा वृत्तांत कह सुनाया ॥ ७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अब
 वह स्त्री भय के सागर में डूब गई और उसने उसके गले में पगड़ी डालकर
 उसे मार दिया । उस व्यक्ति को उसने एक बड़े पेड़ के साथ लटका दिया और
 स्वयं निर्वस्त्र हो उसके नीचे स्नान करने लगी ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ अहिधुज
 राजा जब वहाँ आया तो उसने मृतक के नीचे स्नान करती स्त्री को देखा ।
 वह जल-भुनकर आठ टुकड़े हो गया और उससे पूछने लगा ॥ ९ ॥
 ॥ दोहरा ॥ अपना घर छोड़कर तुम इस जगह क्यों आई ? मुझसे सच
 बताओ, अगर झूठ कहा तो मार डालूँगा ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ तब स्त्री ने
 दोनों हाथ जोड़ लिये और पति के चरणों में मस्तक रख दिया । पहले हे

अधिक चिंता चित । ध्यान धरो स्त्री पति कै निति प्रति । पूत
देहु प्रभु धाम हमारो । पल पल बलि बलि जाँउ तिहारो ॥ १२ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ (सू० प्र० ११८८) पुल हेत मैं ह्याँ तसकर तर आइकै ।
मज्जन किया बनाइ अधिक सुख पाइकै । साच कहा पिय तोहि
जान जिय लीजियै । हो अवरु न याते बात जु जान सु
कीजियै ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनि राजा ऐसो वचन जिय
महि भयो प्रसन्न । जिन त्रिय हवै अस हठ किया धरनीतल
महि धन्य ॥ १४ ॥ ॥ चौपई ॥ जो त्रिय मोपै कहा बिचारी ।
साच वहै मै नैन निहारी । अस चरित सुत हित जिन किया ।
धनि धनि कुअरि तिहारो हिया ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ निरसंदेह
तुमरे सदन हवैहै पूत अपार । हठी जपी तपसी सती
सूरवीर सुकुमार ॥ १६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ ताँहि भोगि फासी
सौ बहुरि सँघारियो । करिकै त्रिपहि चरित इह भाँति
दिखारियो । मूढ़ प्रफुलित भयो न कछु लाकौ कहा । हो धनि
धनि कहि नारि मगन हवै सन रहा ॥ १७ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित पख्यानने त्रिया चरित मंत्री भूप संवाद दोइ सौ इकसठि चरित
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६१ ॥ ४६३६ ॥ अफजूं ॥

प्रिय ! मेरी बात सुनो और फिर वही करो जो तुम्हारे मन में है ॥ ११ ॥
मैं अत्यधिक चिन्तातुर थी और मैं नित्य विष्णु भगवान का ध्यान करती थी
कि हे भगवान ! मुझे एक पुत्र दो जिससे मैं प्रत्येक क्षण तुम पर न्योछावर
होऊँ ॥ १२ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ पुत्र के लिए मैंने इस चोर के नीचे आकर स्नान
किया है । हे प्रिय ! मैंने सत्य कहा है और इसके अलावा अन्य कोई बात नहीं
है, इसे मन में सत्य जानो और जो चाहो सो करो ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा
यह वचन सुनकर मन में प्रसन्न हो उठा कि जिस स्त्री ने ऐसा इस धरती पर
किया वह धन्य है ॥ १४ ॥ ॥ चौपाई ॥ जिस स्त्री ने मुझको ऐसा बताया
वह मैंने आँखों से सत्य देख लिया । जिसने पुत्र के लिए ऐसा चरित किया, हे
कुँवर ! तुम्हारा हौसला धन्य है ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ निस्संदेह तुम्हारे घर
पुत्र होंगे जो हठी, जपी, तपस्वी एवं शूरवीर कुमार होंगे ॥ १६ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ उसका भोग करके फिर उसे फाँसी से मार दिया और राजा
को यह प्रपंच करके दिखाया । वह मूर्ख खुश हो गया और कुछ न समझा
तथा स्त्री को धन्य-धन्य कहे मन में मस्त हो गया ॥ १७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरितोपाख्यान के त्रिया-चरित के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ इकसठवें चरित
की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६१ ॥ ४६३६ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ बासठ चरित्र कथन ॥

॥ अङ्गिल ॥ किलमाकन के देस इंद्रधुज त्रिपति वर ।
 स्त्री किलमाकमती रानी जिह बसत घर । पुन माशूकमती दुहिता
 ताकै भई । हो जनुक चंद्र की कला दुतिय जग मै वई ॥ १ ॥
 सौदा हित सौदागर तह इक आइयो । जनु ससि को अवितार
 मदन उपजाइयो । अधिक जुवन की जेब बिधातै दई तिह ।
 हो मुख पावत सुर असुर निहारे क्रांति जिह ॥ २ ॥ एक दिवस
 त्रिप सुता झरोखे आइकै । बैठत भी चित्त लगे सु बैस बनाइकै ।
 शाहु पुत्र तह आइ दिखाई दै गयो । हो या माननि को मनहि
 मनोहरि लै गयो ॥ ३ ॥ राजकुअरि लखि रूप रही उरझाइ
 करि । पठै सहचरी तहाँ बहुत धन द्याइ करि । शाहु सुतहि
 क्यो हूँ बिधि जो ह्याँ ल्याइहै । हो जो साँगै मुहि तू सो अबहीं
 पाइहै ॥ ४ ॥ सुनत कुअरि को बचन सखी तह जाइकै ।
 मन भावत पिय याकह दिया भिलाइकै । चौरासी आसन सु
 विविध बिधि कै लिए । हो चित्त के शोक संताप बिदा सभ कर
 दिए ॥ ५ ॥ छैल छैलनी छके न छोरत एक छिन । जनुक

दो सौ बासठवाँ चरित्र-कथन

॥ अङ्गिल ॥ किलमाकन देश में इंद्रध्वज श्रेष्ठ राजा था जिसकी रानी
 किलमाकमती थी । उनकी पुत्री माशूकमती थी जो जगत् में चन्द्रकला
 मानी जाती थी ॥ १ ॥ वहाँ व्यापार के लिए एक सौदागर आया जो मानों
 चंद्रमा अथवा कामदेव था । विधाता ने उसे अत्यधिक यौवन प्रदान किया
 था । सुर-असुर सभी उसकी कांति को देखा करते थे और सुखी होते थे ॥ २ ॥
 एक दिन राजा की पुत्री सज-धजकर झरोखे में आकर बैठ गई । उसे वह
 शाह-पुत्र दिखाई दे गया और मानों इस मानिनी का चित्त चुराकर ले
 गया ॥ ३ ॥ राजकुंवरी रूप देखकर उलझ गई और उसने बहुत-सा धन
 देकर वहाँ एक सहचरी भेजी । उससे कहा कि शाहपुत्र को कैसे भी यहाँ ले
 आओ और मुझसे जो चाहोगी वही पाओगी ॥ ४ ॥ सखी ने बात सुनकर
 वहाँ जाकर सखी का मनभाता प्रिय उसे मिलवा दिया । विविध विधि से
 चौरासी आसन उसने किए और चित्त के सभी शोकों को दूर कर दिया ॥ ५ ॥
 तरुण और तरुणी प्रसन्न हो एक क्षण के लिए भी एक-दूसरे को नहीं छोड़

नवो निधि राँक सु पाई आजु तिन । चिंतातुर चित भई बिचार
बिचारिकै । हो सदा बसौ सुख साथ पियरवा यारिकै ॥ ६ ॥
भेख पुरख (मू० प्र० ११८६) सहचरि करि दई पठाइकै । ताके
पितु के पास यौ कहियहु जाइकै । बूडि मरा तब सुत हम
आँखिन सौ लहा । हो बहत नदी महि गयो न कर किन्है
गहा ॥ ७ ॥ शाहु सुनत इह भाँति उठा अकुलाइकै । सरिता
तीर पुकारत आतुर जाइकै । लोटत लोटत भू पर इत ते उत
गयो । हो माल मताह लुटाइ अथित हवै जात भयो ॥ ८ ॥ वही
सखी या पहि इह भाँति उचारियो । तब पितु हवै करि अतिथ
सु बनहि पधारियो । माल मताहि लुटाइ जात बन कौ भयो ।
हो राजकुअरि के धाम सौँपि तुम कह गयो ॥ ९ ॥ पितु ते
भयो निरास रहत तिह ग्रहि भयो । देस माल सुख पाइ बिसरि
सभ ही गयो । काज करत सोई भयो कुअरि जो तिह कह्यो ।
हो इह छल सेती छला सदा ताके रह्यो ॥ १० ॥ अपनो
धाम बिसारि कुअरि चित ते दयो । बहुत काल सुख पाइ रहत
तिह ग्रहि भयो । भेद न दूजे कान किनूँ नर जानियो । हो
शाहु पुत्र सौ अधिक कुअरि रस ठानियो ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ बासठ चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६२ ॥ ४६५० ॥ अफजूँ ॥

रहे थे । उन्हें ऐसा लग रहा था मानों आज उन्होंने नवनिधियाँ प्राप्त कर
ली हों । अब वह चिन्तातुर हो उठी और सोचने लगी कि सदैव सुखपूर्वक
अब यार के साथ ही बसा जाय ॥ ६ ॥ कूँवरि ने पुरुष-वेश धारण करवा
एक दासी को उसके घर पिता से यह कहलवाने के लिए भेज दिया कि तुम्हारा
पुत्र डूब मरा है, मैंने आँखों से देखा है । वह नदी में बह गया, उसका हाथ
कोई भी न पकड़ सका ॥ ७ ॥ यह बात सुनकर शाह अकुला उठा और
नदी के किनारे जाकर पुकारने लगा । वह भूमि पर लोटता-लोटता इधर-
उधर लुढ़कने लगा और धन-माल लुटाकर फ़कीर बन गया ॥ ८ ॥ उसी
सखी ने इधर इससे कहा कि तुम्हारा पिता साधु बनकर धन-माल लुटाकर
वन को चला गया है । तुम्हें वह राजकुमारी को सौंप गया है ॥ ९ ॥
पिता की ओर से निराश होकर वह वहीं रह गया और सुख की प्राप्ति कर
उसे देश, माल आदि सब कुछ भूल गया । अब जो राजकुमारी कहती थी
वह वही कार्य करता था और इस प्रकार छल से (राजकुमारी ने) छल
लिया ॥ १० ॥ अब वह अपना घर भूलकर कंवरि में चित्त लगा बैठा और

बहुत समय तक सुखपूर्वक उसके घर रहा । किसी को कानों-कान खबर नहीं हुई और कुंवरी ने शाहपुत्र से भी अधिक रस प्राप्त किया ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ बासठवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६२ ॥ ४६५० ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ तिरसाठि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अजैचंद पूरब की दिसि त्रिप । अनिक भांति जीते जिन बहु रिप । नागरमती नारी ताके घर । रूपवान दुतिमान छटा बर ॥ १ ॥ जुद्धकरन राजा को भ्राता । कुंठ चारहूँ बिच बिछयाता । अति हीं रूप तवन को राजत । जानु दिवाकरि दुतिय बिराजत ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ अबला ताँको रूप लखि अटिक रही मन माँहि । पति करि दिया बिसारि करि कछू रही सुधि नाहि ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ सखी हुतो इक तहाँ सयानी । तिन यह बात सकल पहिचानी । रनियहि भाखि तहा चलि गई । सभ तिह बात बतावत भई ॥ ४ ॥ जुद्धकरन इह बात न मानी । नागमती तब भई खिसानी । जा सहि मैं अपना मन दिया । उह जड़ हम मैं चित्त न किया ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जौ इह हमरी सभ

दो सौ तिरसठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पूर्व दिशा में अजयचंद्र नामक राजा था जिसने अनेक प्रकार से अनेक शत्रुओं को जीता था । उसकी स्त्री नागरमती थी जो अत्यन्त रूपमान और छविमान थी ॥ १ ॥ राजा का भाई युद्धकरन था जो चारों दिशाओं में प्रसिद्ध था । उसका रूप अत्यन्त शोभायमान था, मानों वह दूसरा चन्द्रमा हो ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ वह स्त्री उसका रूप देखकर उसी में अटककर रह गई और सुधि भूलकर उसने पति को मन से भुला दिया ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ वहाँ एक चतुर सखी थी जो इस बात को पहचान गई । रानी से बात करके वह वहाँ चली गई और उसे सब बात बताई ॥ ४ ॥ युद्धकरन ने यह बात न मानी और इससे नागमती खिसिया गई । जिसको मैंने अपना मन दे दिया, उस मूर्ख ने मेरी तरफ ध्यान ही नहीं दिया ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ यदि यह सारी बात किसी के पास कह देगा तो

ब्रिथा कहि है काहू पास । अजैचंद राजा अबै हम ते होइ
 उदास ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ तब पति और त्रियन हित कहै ।
 भूल न धाम हमारे ऐहै । तब हौ काज कहो का करिहौ ।
 बिरहा की पावक सहि बरिहौ ॥ ७ ॥ (मू० प्र० ११६०)
 ॥ दोहरा ॥ ताते करो चरित्र कछु हनियै याकह आज । साम
 डारि याके इसै हनौ न जानहि राज ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ एक
 सखी कह कहि समझायो । अधिक दरबु दै तहाँ पठायो । जब
 आवत त्रिप कह लखि लीजौ । तब मद पी गारी तिह
 दीजौ ॥ ९ ॥ अजैचंद तिह ठाँ जब आयो । आपहि त्रिय
 बौरी ठहरायो । भाँति अनिक गारिन तिह दीयो । कोपमान
 राजा कह कीयो ॥ १० ॥ त्रिप इह कहा अबै गहि लेहू ।
 डारि इसी धौलर ते देहू । तब सखि भाज जात भी तहाँ ।
 जुद्धकरन को ग्रहि थो जहाँ ॥ ११ ॥ अधिक कोप रानी तब
 भई । सैना को आग्या इम दई । जिन त्रिप चोर डारि ग्रहि
 राखी । ताको हनो आजु यौ भाखी ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ यो
 त्रिप हूँ आग्या दई अति चित कोप बढ़ाइ । सखी सहित वहि
 मूढ़ कौ अब ही देहु उडाइ ॥ १३ ॥ ॥ चौपई ॥ आइसु दिया
 तोपखाना कौ । इह घर पर छाडहु बाना कौ । अब ही याकह

अजयचंद्र राजा भी मुझसे उदास हो जायगा ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब मेरा
 पति अन्य स्त्रियों के साथ हित बढ़ा देगा और भूलकर भी मेरे घर पर नहीं
 आएगा । तब मैं क्या कहूँगी और विरह-अग्नि में ही जलती रहूँगी ॥ ७ ॥
 ॥ दोहा ॥ इसलिए अब कुछ प्रपंच करना चाहिए और साम-नीति के अन्तर्गत
 इसे राजा को बिना पता चले मार डालना चाहिए ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने
 इसे राजा को बहुत-सा धन देकर और योजना-समझाकर वहाँ भेजा कि तुम
 जब राजा को आते देख लो तो शराब पीकर उसे गाली देना ॥ ९ ॥
 अजयचंद्र जब वहाँ आया तो इस स्त्री ने अपने आपको पागलों जैसा बना
 लिया । उसे अनेक प्रकार से गालियाँ दीं और राजा को क्रुद्ध कर
 दिया ॥ १० ॥ राजा ने कहा कि इसे पकड़कर अभी महल से नीचे गिरा
 दूँगा । तब वह सखी भागकर वहाँ जा पहुँची जहाँ युद्धकरन का निवास
 था ॥ ११ ॥ रानी तब अत्यधिक क्रुद्ध हो गई और उसने सेना को आज्ञा दी
 कि जिसने राजा के चोर को छुपा रखा है, उसे आज मार डालो ॥ १२ ॥
 ॥ दोहा ॥ राजा ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर आज्ञा दी कि सखी-समेत उस
 मूर्ख को अभी उड़ा दो ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ तोपखाने को आदेश दिया

देहु उडाई । पुनि मुख हमहि दिखावहु आई ॥ १४ ॥
 ॥ दोहरा ॥ सुनि त्रिप के चाकर बचन तहाँ पहुँचे जाइ ।
 त्रिया चरित्र न बूझियो भ्राता दियो उडाइ ॥ १५ ॥
 ॥ चौपई ॥ त्रिया चरित्र किन्हूँ नहि जाना । बिधना सिरजि
 बहुरि पछुताना । शिव घर तजि काननहि सिधायो । तऊ
 तरुनि को अंतु न पायो ॥ १६ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल सौ
 राजा छला जुद्धकरन कौ घाइ । त्रिय चरित्र को मूढ़ कछु भेव
 सका नहि पाइ ॥ १७ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ तिरसाठि चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २६३ ॥ ४६६७ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ चौसठि चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ त्रिपति बिचछनसैन के मती सुलच्छनि
 नारि । दच्छनि को राजा रहै धन करि भरे भंडार ॥ १ ॥
 ॥ चौपई ॥ बिरहकुअरि ताके दुहिता इक । पढ़ी व्याकरन
 कोकशास्त्रनिक । नाना बिधि की बिद्या धरै । बहु पंडित

कि इस घर पर गोलाबारी करो । इसे पहले उड़ा दो और मुझे आकर
 मुंह दिखाओ ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ राजा के सेवक आज्ञा सुनकर वहाँ आ
 पहुँचे । उस राजा ने त्रिया-चरित्र को नहीं समझा और भाई को उड़वा
 दिया ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ स्त्री के प्रपंच को कोई नहीं समझ सका है ।
 परमात्मा भी इसे बनाकर बाद में पश्चात्ताप में पड़ गया था । शिव घर
 छोड़कर जंगल में चले गए पर फिर भी स्त्री का रहस्य न पा सके ॥ १६ ॥
 ॥ दोहा ॥ उसने छल से राजा को छला और युद्धकरन को मार डाला ।
 मूर्ख राजा त्रिया-चरित्र का रहस्य न समझ सका ॥ १७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ तिरसठवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६३ ॥ ४६६७ ॥ अफजूं ॥

दो सौ चौसठवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ विलक्षणसेन राजा की सुलक्षणामती स्त्री थी । वह
 दक्षिण का राजा था और उसके भंडार धन से भरे हुए थे ॥ १ ॥
 ॥ चौपाई ॥ उसकी एक पुत्री विरहकुंवरि थी जो व्याकरण, कोकशास्त्र आदि
 की ज्ञाता थी । उसके पास नाना प्रकार की विद्या थी और पंडित उसका

उसतति जिह करै ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ अधिक रूप तिह
 कुअरि को ब्रह्म बनायो आपु । ता सम सुंदरि थापि करि सका
 न दूसरि थापु ॥ ३ ॥ परी पदमनी पंनगी ता सम और न
 कोइ । नरी धितकारी नटी दुतिय न वैसी होइ ॥ ४ ॥
 हिंदुनि (मू० ग्रं० ११६१) तुरकानी जिती सुरी आसुरी बारि ।
 खोजत जगत न पाइयत दूसर वैसी नारि ॥ ५ ॥ इंद्रलोक की
 अपछरा ताँहि बिलोकनि जात । निरखत रूप अघात नहि
 पलक न भूलि लगात ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ हेरि अपछरा तिह
 मुसकानी । सखिन साँझ इह भाँति बखानी । जैसी यह
 सुंदर जगि माही । ऐसी अवर कुअरि कहूँ नाही ॥ ७ ॥
 ॥ शाह परी बाच ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जैसी यह सुंदरी न सुंदरि
 कहूँ जग । थकति रहत जिह रूप चराचर हेरि मग । या सम
 रूप कुअरि जो कतहूँ पाइए । हो करिकै क्रोरि उपाइ सु याहि
 रिझाइए ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ परी सुनत ऐसे वचन सभन
 कहा सिर न्याइ । या सम सुंदरि पुरख इह दैहैं खोजि
 मिलाइ ॥ ९ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ परी राज की परी सभाग्या
 पाइकै । चलत भई सखि सहस शिगार बनाइकै । खोजि

सम्मान करते थे ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ विधाता ने उसका रूप अत्यन्त सुन्दर
 बनाया था और उसके समान सुन्दरी बनाकर वह अन्य कोई वैसी नहीं बना
 सका था ॥ ३ ॥ परी, पद्मिनी एवं नाग-स्त्री, कोई भी उसके समान नहीं
 थी । मनुष्य, नटी एवं अप्सरा कोई भी वैसी नहीं थी ॥ ४ ॥ हिन्दू, मुस्लिम,
 सुर-असुर में से खोजने पर भी वैसी कोई स्त्री नहीं थी ॥ ५ ॥ इंद्रलोक
 की अप्सराएँ भी उसे देखने जाती थीं और बिना पलक झपकाए उसका रूप
 देखकर अघाती नहीं थीं ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ अप्सरा उसे देखकर मुस्कुराती
 थी और सखियों में उसका वर्णन करती थी कि जैसी यह सुन्दर है वैसी सारे
 संसार में कोई सुन्दर स्त्री नहीं है ॥ ७ ॥ ॥ शाह परी उवाच ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जैसी
 यह सुन्दरी है वैसी जगत् में अन्य कोई सुन्दरी नहीं है । इसका रूप-सौंदर्य
 देखते-देखते सभी चराचर मार्ग में थकित हो उठते हैं । यदि कहीं ऐसा रूप-
 सौंदर्य वाला कुँवर मिल जाय तो उसके साथ इसे मोहित किया जाय ॥ ८ ॥
 ॥ दोहरा ॥ परियों ने यह वचन सुनकर सिर झुकाकर कहा कि खोजकर इसे
 इसी के समान सुन्दर पुरुष से मिलाया जायगा ॥ ९ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ परी-
 राज की सभी परियाँ आज्ञा पाकर अनेकों शृंगार बनाकर चल पड़ीं । वे

फिरी सभ देस न सुंदर पाइयो । हो एक हुतो रिखि
 तह तिन भेद बताइयो ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ इक रिखि थो
 कानन इक भीतर । ता सभ तपी न थो अबनी पर । तिनिक
 अपछरा तहाँ निहारी । क्रिपा जानि इहँ भाँति उचारी ॥ ११ ॥
 ॥ दोहरा ॥ को है री तूँ कह चली क्यों आई इह देस । कै तूँ
 इसली इंद्र की कै अबला अलिकेस ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ किह
 कारन ते तै ह्याँ आई । कहु कवनै किह काज पठाई । साच
 कहे बिनु जान न दैहौ । ना तर स्त्राप अबै तुहि कैहौ ॥ १३ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ एक दिवस मुनि चली अपछरा धाइकै । निरखि
 कुअरि को रूप रही उरझाइकै । चित महि किया बिचार
 कुअरि हूँ पाइयै । हो ऐसो सुंदरि खोजि सु याहि
 मिलाइयै ॥ १४ ॥ ॥ चौपई ॥ हम सी सखी सहजन सुंदरि ।
 पठै दई दसहूँ दिसि मुनिबर । खोजि थकी प्रीतम नहि पायो ।
 देस देस सभ हेरि गवायो ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ खोजि देस
 व्याकुल भई आई तुमरे पास । दीजै सुघर बताइ कहूँ कारज
 आवहि रास ॥ १६ ॥ ॥ चौपई ॥ ब्रह्मा एक पुरख उपजायो ।
 त्रिप के धाम जनम तिन पायो । सात समुंद्रन पार बसत सो ।

सभी देश घूम आयीं परन्तु वैसा सुन्दर व्यक्ति न मिला । एक ऋषि था,
 जिसने उन्हें सब रहस्य समझाया ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ जंगल में एक
 ऋषि था जिसके समान तपस्वी अन्य कोई धरती पर नहीं था । एक अप्सरा
 को उसने वहाँ देखा और कृपापूर्वक बोला ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ तू
 कौन है और इस देश में क्यों आयी है ? क्या तू इंद्र की स्त्री है अथवा
 कुबेर की पत्नी है ? ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम किस कारण से यहाँ आई हो
 और तुम्हें किस कार्य के लिए भेजा गया है ? सत्य कहे बिना मैं तुम्हें जाने
 नहीं दूंगा और न बताने पर तुरन्त शाप दे दूंगा ॥ १३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ हे मुनि !
 एक दिन हमारी (मुख्य) अप्सरा गई और कुबेरि का रूप देखकर उसी में उलझ
 कर रह गई । चित्त में उसने विचार किया कि इसे ऐसा ही सुन्दर खोजकर
 मिलाना चाहिए ॥ १४ ॥ ॥ चौपाई ॥ हे मुनिवर ! उसने हमारे जैसी अनेकों
 सुन्दर सखियाँ दसों दिशाओं में भेज दीं । हम सब खोजकर थक गई हैं पर
 वैसे प्रियतम नहीं मिल सका है ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ सभी देशों में खोजकर
 व्याकुल हो अब तुम्हारे पास आई हूँ । कृपा कर कोई उपाय बता दीजिए,
 जिससे हमारा कार्य बन जाय ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ ब्रह्मा ने एक पुरुष पैदा
 किया है जिसका जन्म एक राजा के घर हुआ है । परन्तु वह सात समुद्र के

को पहुचै तिह ल्याइ सकत सो ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ रिखि
के इह बिधि बचन सुनि चलत भई सुकुमारि । सपत
सिध के छिनिक महि जात भई (म०पं०११६२) उहि पार ॥ १८ ॥
॥ चौपई ॥ सुंदर सदन हुतो जह त्रिप बर । जात भई सुंदरि
तांही घर । जह त्रिप सुत आत्म सुनि लीया । गई तहाँ तिन
बिलस न कीया ॥ १९ ॥ लोकंजन डारत चख भई । परगट
हुती लोप हवै गई । यह सभ ही को रूप निहारै । याकौ
कोऊ न पुरख बिचारै ॥ २० ॥ ॥ अडिल्ल ॥ सिध दिलीस
धारि बरत बैठे जहाँ । लोकंजन द्रिग डारि जात भी द्विय
तहाँ । हेरि तवन की प्रभा रही उरझाई करि । हो सुधि
याकी गी भूलि रही ललचाइ करि ॥ २१ ॥ ॥ चौपई ॥ यह
सुधि ताहि बिसरि करि गई । तिह पुर बसत बरख बहु भई ।
कितक दिनन वाकी सुधि आई । सन महि तरनी अधिक
लजाई ॥ २२ ॥ जौ यह बात परी सुनि पैहै । मोकह काढि
स्वरग ले दैहै । ताते याकौ करौ उपाई । जाते इह उहि देउ
मिलाई ॥ २३ ॥ आलस्य हुतो कुअर को जहाँ । वाको चित्र
लिखत भई तहाँ । चित्र जबै तिन कुअरि निहारा । राज

पार वसता है । भला कौन वहाँ पहुँचकर उसे ला सकता है ? ॥ १७ ॥
॥ दोहरा ॥ ऋषि के यह वचन सुनकर वह कुमारी चल पड़ी और क्षण भर में
सातों समुद्र पार कर गई ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ जिस राजा का घर सुन्दर
सा था वहीं वह चली गई । जहाँ राजकुमार का निवास था वह अविलम्ब
वहाँ चली गई ॥ १९ ॥ उसने आँखों में लोकंजन डाला और प्रकट से लुप्त
हो गई । यह सबको देख सकती थी पर इसे कोई नहीं देख पाता था ॥ २० ॥
॥ अडिल्ल ॥ दिलीश सिंह वस्त्र पहन जहाँ बैठा था वह स्त्री लोकंजन डाल
कर वहाँ जा पहुँची । वह उसका सौंदर्य देखकर उलझकर रह गई और सुध
भूलकर ललचाकर रह गई ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसे होश ही भूल गया
(कि वह किस काम को आई है) और वह कई वर्षों तक वहीं रह गई । कितने
दिनों बाद उसे ख्याल आया और वह तरुणी मन में अत्यधिक लज्जित हो
उठी ॥ २२ ॥ यदि मुख्य परी यह जान जाएगी तो मुझे स्वर्ग से निकाल
देगी । इसलिए कुछ ऐसा उपाय किया जाना चाहिए, जिससे इसे उससे मिला
दिया जाय ॥ २३ ॥ जहाँ कुँवर का निवास था उसने उस (राजकुमारी) का
चित्र वहाँ बना दिया । उस कुँवर ने जब चित्र देखा तो तुरन्त सभी राजपाद-

पाट सभ ही तजि डारा ॥ २४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ मन मै भयो
 उदास राज को त्यागिकै । रैन दिवस तह बैठि रहत
 अनुरागिकै । रोइ रोइ द्विग नैनन रुहर बहावई । हो कोटिन
 करे बिचार न ताकौ पावई ॥ २५ ॥ नटी नाटकी चिपनी
 चितनि बखानियै । नरी नागनी नगनी निजु लिय जानियै ।
 शिवी बासवी ससी कि रवि तन जूझई । हो चेटक चित्र दिखाइ
 चतुरि चित ले गई ॥ २६ ॥ लिख्यो चित्र इह ठौर बहुरि तिह
 ठाँ गई । चित्र चतुरि के भवन बिखै लिखती भई । प्रात
 कुअरि को जब तिन चित्र निहारियो । हो राज पाट सभ साज
 तबै तजि डारियो ॥ २७ ॥ निरखि कुअरि को चित्र कुअर
 अटकत भई । राज पाट धन की सुधि सभ जिय ले गई । बढी
 प्रेम की पीर बतावै कहो किह । हो जो तिह शोक निवारि
 मिलावै आनि तिह ॥ २८ ॥ सतवारे की भाँति कुअरि बवरी
 भई । खान पान की सुधि तबही तजि करि दई । हसि हसि
 कबहूँ उठै कबै गुन गावई । हो कबहूँ रोवत दिन अरु रैन
 बितावई ॥ २९ ॥ दिन दिन पियरी होत कुअरि तज जावई ।
 अंतर पिय की पीर न प्रगट जतावई । सात समुंदर पार पिया

छोड़ दिया ॥ २४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ वह राज त्यागकर मन में उदास हो गया
 और रात-दिन प्रेमासक्त हो बैठा रहने लगा । वह रो-रोकर नयनों से नीर
 बहाने लगा । अनेकों विचार करने पर भी वह उसे पाने में असमर्थ था ॥ २५ ॥
 यह नटी, नाटकी, नृपनी, नृत्यांगना, नर-स्त्री, नागिनी अथवा पर्वतीय स्त्री
 है । यह शिव, इंद्र, शशि अथवा सूर्य की स्त्री है । यह कौन कौतुक दिखा
 कर मेरा मन हरकर ले गई है ॥ २६ ॥ उसने यहाँ फिर वहाँ चित्र बनाया
 और फिर सारे भवन में चित्र बनाती ही चली गई । प्रातः उसने जब राज-
 कुँवरि का चित्र देखा तो समस्त राजपाट त्याग दिया ॥ २७ ॥ कुँवर का
 चित्र देखकर कुँवरि भी उसी में अटक गई और उसे भी राजपाट, धन-धाम की
 सारी सुधि भूल गई । वह भी भला अपने प्रेम की बढी हुई पीड़ा किसे
 बताती जो उसे सभी शोकों का निवारण कर मिला देता ॥ २८ ॥ वह कुँवरि
 भी बावली हो गई और खान-पान का सारा होश उसने त्याग दिया । कभी
 वह हँसकर उठती और कभी गाने लग जाती । कभी वह रोते-रोते दिन-
 रात बिता देती ॥ २९ ॥ वह कुँवरि दिन-दिन पीली होने लगी । प्रिय की
 पीड़ा उसके अंदर थी जो वह किसी को नहीं जता रही थी । उसका प्रिय
 सात समुद्र पार था । अब जो उसे मिला सकता हो उसे ही वह अपना दुःख

ताको रहै । (सू० प्र० ११६३) हो आनि मिलावै ताहि इतो दुख
 किह करै ॥३०॥ अब कहों बिथा कुअर की कछु सुनि लीजियै ।
 सुनहु सुधर चित लाइ खवन इत दीजियै । रीत रीत निसु दिन सभ
 सजन बितावई । हो परै न ताके हाथ चित उर लावई ॥३१॥
 ॥ दोहरा ॥ इतै चाह उनकी लगी उन कौ इनकी चाह । कछु
 कौन छल पाइयै करता करै निबाह ॥३२॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अतिथ
 भेस धरि परी कुअरि के दिग गई । राज सुता की बात
 बतावत तिह भई । तुमकौ उनकी चाह उनै तुमरी लगी ।
 हो निसु दिनु जपत बिहंग ज्यों प्रीति तैसी जगी ॥ ३३ ॥ सात
 समुद्रन पार कुअरि वह जानियै । नेह लग्यो तुम सो तिह
 अधिक प्रमानियै । करि करि कौन उपाइ कहौ तिह ल्याइयै ।
 हो राजकुअर सुकुमारि सु किह बिधि पाइयै ॥ ३४ ॥ मुहि
 सरदार परी की सुरिद बखानियै । रवि ससि की सम जाको
 रूप प्रमानियै । जब बहु राजकुअरि की चित निरखत भई ।
 हो तब हौ तुमरे तीर पठाइ तुरित दई ॥३५॥ ॥ दोहरा ॥ तीनि
 भवन मै भ्रमि फिरी ता सम कहूँ न नारि । ताके बरबे जोग
 हौ तुमही राजकुमार ॥ ३६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ हौ सरदार परी

कह सकती थी ॥ ३० ॥ अब कुँवर की व्यथा कहता हूँ उसे सुन लो । हे
 सज्जनो ! इसे चित्त लगाकर और कान देकर सुनो । वह सजन भी रो-रोकर
 रात-दिन बिताता था । वह चित्र वाली उसके हाथ नहीं लगती थी । वह
 केवल चित्र को ही हृदय से लगा लेता था ॥ ३१ ॥ ॥ दोहरा ॥ इधर उसकी
 और उधर इसकी चाह लगी हुई थी । देखो अब कौन से प्रपंच से एक-दूसरे
 को पाते हैं । ईश्वर ही (उनका प्रेम) निभाए ॥ ३२ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ साधु-
 वेश धारणकर परी कुँवर के पास गई और उसे राजकुमारी की बात बताई ।
 तुमको उसकी और उसे तुम्हारी चाह लग गई है । वह रात-दिन (तोते)
 पक्षी की तरह रटती तुम्हें प्रीति करती है ॥ ३३ ॥ वह कुँवरि सात समुद्र
 पार है । उसका अत्यधिक स्नेह तुमसे लग गया है । उसे किस उपाय से
 लाया जाय । वह सुकुमारी राजकुमारी है, उसे कैसे पाया जाय ॥ ३४ ॥
 मुझे सरदार परी की मित्र समझो । उसका रूप सूर्य, चन्द्रमा के समान है ।
 है । जब उसने राजकुमारी के मन की बात जानी तब मुझे तुम्हारे पास
 भेजा ॥ ३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ मैं तीनों लोकों में घूम चुकी हूँ, उसके समान
 अन्य कोई स्त्री नहीं है । हे राजकुमार ! वह तुम्हारे ही वरण योग्य
 है ॥ ३६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ मैं अभी सरदार परी के पास जाऊँगी और

पहि अब उठ जाइहो । कुअरि जोग बर लहि तुहि ताहि
 बताइहो । जब तुम ताकह जाइ सजन बरि लेहुगे । हो कहा
 बतावहु मोहि तबै जसु देहुगे ॥ ३७ ॥ ॥ चौपई ॥ यौ कहि
 ताकौ परी उडानी । सिखी बासवी रवी पछानी । चलि
 सरदार परी पहि आई । सकल बिथा कहि ताहि सुनाई ॥ ३८ ॥
 ॥ दोहरा ॥ तीन लोक मै खोजि करि सुघर लखा इक ठौर ।
 चलि करि आपु निहारियै जा सम सुंद न और ॥ ३९ ॥
 ॥ चौपई ॥ सुनत बचन सभ परी उडानी । सात समुंद्र पार
 निज कानी । जब दिलीप सिंघ नैन निहारा । चित को शोक
 दूर करि डारा ॥ ४० ॥ ॥ दोहरा ॥ अप्रमान दुति कुअर
 की अटकी परी निहारि । यहि सुंदरि हम ही बरै डारी कुअरि
 बिसारि ॥ ४१ ॥ ॥ चौपई ॥ हाइ हाइ बहु परी उचारै ।
 दै दै मूँडि धरनि सौ भारै । जिह निमित्त हम अस लम
 कीया । सो बिधि ताहि न भेटन दीया ॥ ४२ ॥ ॥ दोहरा ॥ अब
 सरदार परी कहैं हो (मृ० पं० ११६४) ही बरिहो जाहि । पीर
 कुअरि की ना करै लाज न आवत ताहि ॥ ४३ ॥ सुनु सरदार
 परी जु हम जिह हित अति लम कीन । अब तैं याहि बर्यो

उसे बताऊँगी कि कुँवरि के योग्य वर मैंने (तुममें) देख लिया है । हे
 सजन ! तुम जब जाकर उसका वरण कर लोगे तो भला बताओ, मुझे
 क्या यश दोगे ॥ ३७ ॥ ॥ चौपाई ॥ यह कहकर वह परी उड़कर चली । वह
 शिव, इन्द्र, सूर्य की पत्नी लगती थी । वह चलकर सरदार परी के पास आई
 और अपनी पूरी व्यथा उसे कह सुनाई ॥ ३८ ॥ ॥ दोहा ॥ मैंने तीनों लोकों
 में खोजकर एक सुन्दर सुघड़ (व्यक्ति) देखा है । आप चलकर उसे देखिए,
 उसके समान अन्य कोई सुन्दर नहीं है ॥ ३९ ॥ ॥ चौपाई ॥ बात सुनकर
 सभी परियाँ उड़ चलीं और सात समुद्र पार कर वहाँ आ पहुँचीं । जब
 उन्होंने दिलीप सिंह को देखा तो उनके मन का शोक दूर हो गया ॥ ४० ॥
 ॥ दोहा ॥ कुँवर की अपरिमित छवि देखकर परी उलझ गई और कुँवरि को
 भुलाकर सोचा कि इसका तो हम ही क्यों न वरण कर लें ॥ ४१ ॥
 ॥ चौपाई ॥ वह परी 'हाय-हाय' कहने लगी और सिख धरती पर पटकने
 लगी । जिसके लिए मैंने इतना श्रम किया, विधाता ने इसे उसको मिलने
 नहीं दिया ॥ ४२ ॥ ॥ दोहा ॥ अब सरदार परी कहने लगी कि मैं ही इसका
 वरण करूँगी । उसे कुँवरि की पीड़ा नहीं लग रही थी और न उसे
 लज्जा आ रही थी ॥ ४३ ॥ हे सरदार परी ! तुम सुनो । जिसके लिए मैंने

चहत मिलन न ताकह दीन ॥ ४४ ॥ ॥ चौपाई ॥ सखि सरदार
परी क्या करै । बिरह ताप तन छतिया जरै । जब मैं याको
रूप निहार्यो । स्वरग बिखै को बास बिसार्यो ॥ ४५ ॥
॥ दोहरा ॥ कहा करो मैं जाउ कत लगै निगोड़े नैन । बिनु
हेरे कल ना परै निरखत लागत चैन ॥ ४६ ॥ बिनु देखे महबूब
के पलक लगत है जास । तब सरदार परी हुती अब इह भई
गुलाम ॥ ४७ ॥ कहा करौ कासौ कहाँ कहे न आवत बैन ।
बिनु देखे महबूब के भए जहमती नैन ॥ ४८ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ पलक
न इत उत जाइ नैन ऐसे लगे । पिय देखन के प्रेम दोऊ इह
बिधि पगे । लगन लागि मुरि गई निगोडि न छूटई । हो
नँकु निहारे बिनु सखि प्राण निखूटई ॥ ४९ ॥ छुटत छुटाए
नाहि निगोड़े जह लगे । पलक न इत उत होइ प्रेम पिय के
पगे । जहाँ लगे ए नैन तहीं कै हवै रहे । हो फिर आवन के
नाहि कबिन ऐसे कहे ॥ ५० ॥ ॥ दोहरा ॥ थरहराइ थिर
ना रहहि पलक नही ठहराहि । जह लागे ए लोड़ना फिर
आवन के नाहि ॥ ५१ ॥ निरखि नैन महबूब के नैन गडे तिन

इतना श्रम किया उसे अब यही वरण कर लेना चाहती है । इसे उस कुँवरी
से मिलने नहीं दिया ॥ ४४ ॥ ॥ चौपाई ॥ सरदार परी भी क्या करती,
उसकी छाती भी विरह-अग्नि से जल रही थी । उसने कहा कि जब मैंने
इसका रूप देखा तो स्वर्ग में रहने का भी विचार त्याग दिया ॥ ४५ ॥
॥ दोहरा ॥ मैं क्या करूँ मेरे निगोड़े नयन जो लड़ गए हैं । बिना देखे चैन
नहीं आता और उसे देखकर ही चैन पड़ता है ॥ ४६ ॥ महबूब को देखे बिना
एक पल भी एक प्रहर लगता है । पहले यह सरदार परी थी अब वही
गुलाम होकर रह गई है ॥ ४७ ॥ क्या करूँ, किससे कहूँ, कुछ कहते नहीं
बनता । महबूब को देखे बिना ये आँखें मुसीबत बन गई हैं ॥ ४८ ॥
॥ अडिल्ल ॥ नयन ऐसे लगे कि पल भर के लिए भी इधर-उधर नहीं होते ।
ये दोनों प्रिय को देखने के लिए उसी (के प्रेम) में भीग गए हैं । मेरी लगन
ऐसी लगी है कि छूट नहीं रही है । हे सखी ! उसे पल भर भी बिना देखे
प्राण नष्ट हो रहे हैं ॥ ४९ ॥ ये निगोड़े नयन जहाँ लग गए हैं अब छुड़ाए
भी नहीं छूटते । ये प्रेम में अनुरक्त पल भर के लिए भी इधर-उधर नहीं
होते । ये तो जहाँ लगे हैं वहाँ के हो गुजरे हैं । अब ये जहाँ जा पहुँचे हैं,
कवि कहते हैं, फिर वहाँ से वापस नहीं आयेंगे ॥ ५० ॥ ॥ दोहरा ॥ ये थर-
थराते रहते हैं और पल पर भी नहीं टिकते । जहाँ ये आँखें लड़ी हैं, वहाँ से

माहि । उडै अघाने बाज ज्यों फिर आवन के नाहि ॥ ५२ ॥
 जहाँ लगे ए लोइनाँ तह ही के सु भए । बहरी ज्यों कहरी दोऊ
 गए सु गए गए ॥ ५३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जित लागे ए नैन सु
 तितही के भए । करि हारी हौ जतन न भूलि इतै अए ।
 छूटी बात मुरि कर ते कहो हौं क्या करों । हो सदन ताप तन
 तई सदा जिय मै जरों ॥ ५४ ॥ ॥ चौपई ॥ कोटि जतन
 करि रही सखी सब । लगन निगौडी लागि गई जब । तब
 तिन परी उपाइ बिचारो । राजपुत्र सौ जाइ उचारो ॥ ५५ ॥
 राजकुअर तैं जिह बर लाइक । जाकी परी लगहि सभ
 पाइक । अब तुहि बर्यो चहत हमरी पति । कहा तिहारे
 आवत है सति ॥ ५६ ॥ राजकुअरि इह भाँति सुना जब ।
 बचन परी सों कहे बिहसि तब । मैं सरदार परिहि नहि
 बरिहौ । (सू० प्र० ११६५) लागि बिरह सु कुअरि के मरिहौ ॥ ५७ ॥
 ॥ दोहरा ॥ लाग कुअरि के बिरह तन बरिहौ दिन अरु रैन ।
 कहा भयो इह जौ परी नैक न लगिहैं नैन ॥ ५८ ॥
 ॥ चौपई ॥ कहा परी इक मोर कहा कर । राजकुअर तैं राज

ये वापस नहीं लौटेंगे ॥ ५१ ॥ महबूब के नयनों को देखकर मेरे नयन उनमें
 ही अटक गए हैं । ये तो बाज की तरह उड़ चले हैं, अब वापस आनेवाले
 नहीं हैं ॥ ५२ ॥ ये नयन जहाँ गए वहाँ के होकर रह गए । ये तो
 आक्रामक बाज की तरह गए तो गए (वापस आनेवाले नहीं हैं) ॥ ५३ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ ये नयन जहाँ लगे वहाँ के हो गए । मैं यत्न करके हार चुकी
 हूँ, ये भूलकर भी वापस नहीं आए । मेरे तो हाथ से बात जाती रही, बताओ
 भला मैं क्या करूँ ? मैं तो काम-दग्ध होकर नित्य मर रही हूँ ॥ ५४ ॥
 ॥ चौपाई ॥ अनेकों यत्न करने पर भी जब लगन लग गई तब उस परी ने
 विचार किया और राजकुमार से जाकर कहा ॥ ५५ ॥ हे राजकुंवर ! तुम तो
 उसके वरण योग्य हो, सब परियाँ जिसके चरणों को प्रणाम करती हैं । तुम्हें
 अब हमारी सरदार परी वरण करना चाहती है । यह तुम्हें क्या हो गया
 है ॥ ५६ ॥ राजकुंवर ने जब यह सुना तो हँसकर उसने कहा, मैं सरदार
 परी का वरण नहीं करूँगा और उसी राजकुमारी के विरह में मैं मर
 जाऊँगा ॥ ५७ ॥ ॥ दोहरा ॥ उस कुंवरि के विरह में दिन-रात अपने तन को
 जला दूँगा । क्या हुआ यदि यह परी है । मैं इससे आँखें भी नहीं
 मिलाऊँगा ॥ ५८ ॥ ॥ चौपाई ॥ परी ने कहा कि मेरा एक कहना
 मानो । तुम राजकुंवरि को छोड़कर, राजपरी अर्थात् मेरे साथ विवाह करो ।

परी बरु । राजकुअरि कहु बरि कस करिहै । पदमिनि
छाडि हसतिनी बरिहै ॥ ५६ ॥ ॥ दोहरा ॥ जासौ मेरो हित
लगा वहै हमारी नारि । सुरी आसुरी पदमिनी परी न बरौ
हजार ॥ ६० ॥ ॥ चौपई ॥ परी जतन करि करि बहु हारी ।
एक बात तब और बिचारी । जौ इह कहत वहै हौ करौ ।
बहुरो छलि याही कह बरौ ॥ ६१ ॥ प्रथम परी जो तहाँ
पठाई । वहै आपने तीर बुलाई । ताहि कहा जु कहा मुर
करिहै । तब तव दैव धाम धन भरिहै ॥ ६२ ॥ याहि कुअर
मुहि देहु मिलाई । हौ या पर जिय तें उरझाई । कहा हमारा
करै पयारी । तू साहिब सैं दास तिहारी ॥ ६३ ॥
॥ अडिल्ल ॥ सुनत बचन इह परी फूलि मन मैं गई । सुघर
कुअर के पास जात तबही भई । पर पाइन कर जोर कहा
मुसकाइकै । हौ करौ बिनति जौ कहौ कछू सकुचाइकै ॥ ६४ ॥
प्रथम परी सौ कुअर तुमैस उचारियहु । गहि बहिया सिंहजा
पर तिह बैठारियहु । रमयौ चहै तुम सौ तब तुम यौ
भाखियहु । हो घरी चारि पाँचक लागि द्रिड़ चित
राखियहु ॥ ६५ ॥ प्रथम ब्याह तासौ जौ मोर कराइहो ।

राजकुँवरि का वरण कर तुम क्या करोगे ? क्या पद्मिनी को छोड़ हस्तिनी स्त्री
को अपनाओगे ? ॥ ५६ ॥ ॥ दोहरा ॥ मेरा जिससे स्नेह लगा है अब तो वही
मेरी स्त्री है । मैं सुर, असुर, पद्मिनी अथवा परी किसी भी स्त्री का वरण नहीं
करूँगा ॥ ६० ॥ ॥ चौपाई ॥ परी अनेकों यत्न कर जब हार गई, तो उसने
तब एक और बात सोची । जो यह कह रहा है मैं भी वही करूँगी और ऐसे
छलकर इसी का वरण करूँगी ॥ ६१ ॥ उसने पहली परी, जिसे पहले भेजा
था, को अपने पास बुलाया । उससे कहा कि जो मैं कहूँ वह करो और मैं
तुम्हाशा घर धन-धान्य से भर दूँगी ॥ ६२ ॥ मुझे इस कुँवर से, मिला दो
क्योंकि मैं मन से इस पर आसक्त हूँ । यदि तुम मेश कहना मान जाओ तो मैं
तुम्हारी नौकरानी और तुम मेरी स्वामिनी होओगी ॥ ६३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ यह
सुनकर वह परी मन में फूल गई और तत्काल उस कुँवर के पास चली गई ।
उसके पाँव पड़, हाथ जोड़कर उससे कहा, मैं संकोचपूर्वक तुमसे प्रार्थना कर
रही हूँ ॥ ६४ ॥ तुम उस परी से (कुछ) पहले कहना और हाथ पकड़कर उसे
शय्या पर बैठा लेना । जब वह तुमसे रमण करना चाहे तो तुम कहना और
चार-पाँच घड़ी तक अपना मन मजबूत बनाकर रखना ॥ ६५ ॥ यदि तुम
मुझे पाना चाहती हो तो पहले मेरा विवाह उस (राजकुमारी) से करवा दो ।

बरयो चहहु जौ मोहि तु तबही पाइहो । तांहि बरे बिन मैं न
तोहि बयो हूँ बरो । हो नातर मारि कटारी उर अब ही
मरो ॥ ६६ ॥ इह बिधि भेद कुअर दे ताके ढिग गई । जिह
तिह सहचरि जानि पठै इह पै दर्ई । मैं करि जतन अनेक कुअरहि
रिझाइयो । हो तुम सो करन कलोल कबूल कराइयो ॥ ६७ ॥
॥ चौपई ॥ शाह परी कह लै तह आई । जहाँ कुअर की सेज
सुहाई । तहाँ कपूर अरगजा सहिकै । बाँधी धुजा धाम पर
लहिकै ॥ ६८ ॥ इह बिधि दीना कुअर मिलार्ई । बैठे दोऊ
सेज पर जाई । तह ते जबै सखी तरि गई । काम करा ताके
तन भई ॥ ६९ ॥ काम परी कह जबै संतायो । हाथ कुअर
की ओर चलायो । बिहसि कुअर इह (पं० ११९६) भाँति
उचारी । कहो बात तुहि सुनहु पयारी ॥ ७० ॥ प्रथम मोहि
तुम ताहि मिलावहु । बहुरि भोग मुरि संग कमावहु । पहिले
बरो वहै बर नारी । वह इसली तै यार हमारी ॥ ७१ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ करि हारी बहु जतन न तिह रति वहि दर्ई ।
जु कछु बखानी कुअर वहै मानत भई । पच्छन पर बैठाइ ताहि
लैगी तहाँ । हो पिय पिय रटत बिहंग ज्यों कुअरि परी

उसे व्याहे बिना मैं तुम्हारा वरण नहीं करूँगा अन्यथा कटार मारकर अभी
मर जाऊँगा ॥ ६६ ॥ यह रहस्य उसे समझाकर वह वापस उस (सरदार)
परी के पास गई जिसने इसे सहेली समझकर राजकुमार के पास भेजा था ।
इसने कहा कि मैंने अनेकों यत्न कर कुँवर को प्रसन्न किया है और तुमसे रमण
करने को मना लिया है ॥ ६७ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह शाह परी का वहाँ ले
आई जहाँ कुँवर की शय्या शोभायमान थी । वहाँ कपूर-अगरबत्ती महक रही
थी और निवास पर ष्वजा लहरा रही थी ॥ ६८ ॥ इस प्रकार उसे कुँवर से
मिला दिया और ये दोनों सेज पर बैठ गये । तब वह सखी वहाँ से चली गई
और इसके मन में कामकला जाग्रत हो उठी ॥ ६९ ॥ परी को जब काम
ने सताया तो उसने आप हाथ कुँवर की ओर बढ़ाया । तब कुँवर ने हँसकर
कहा कि हे प्रिय ! मेरी बात सुनो ॥ ७० ॥ पहले तुम मुझे उस (राजकुमारी)
के साथ मिलाओ, फिर मेरे साथ रतिक्रीड़ा करो । पहले मैं उसी का वरण
करूँगा । वह मेरी स्त्री होगी और तुम मेरी मित्र होगी ॥ ७१ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ वह अनेकों प्रयत्न करके हार गई पर वह उसे रतिदान नहीं दे
रहा था । जो कुँवर ने कहा, उसने मान लिया । उसे पंखों पर बिठाकर
वह वहाँ ले गई जहाँ पक्षी की तरह कुँवरि 'प्रिय-प्रिय' रटते हुए पड़ी

जहाँ ॥ ७२ ॥ चित्त जवन को हेरि मुहबति लगत भी ।
ताको दरस प्रतच्छि जबै पावत भई । कुअरि चहत जो हुती
बिधातै सो करी । हो बन बसंत की भाँति सु झरि झरि भी
हरी ॥ ७३ ॥ ॥ चौपई ॥ जब दरशन त्रिय का पिय करा ।
खान पान आगे लै धरा । बिबिध बिधन के असल मँगाए ।
बैठि कुअरि के तीर चड़ाए ॥ ७४ ॥ ताहू को बहु कैफ पिवाई ।
बहुरो लयो गरे सो लाई । आसन चुंबन बहु बिधि कीए ।
चित के ताप बिदा करि दीए ॥ ७५ ॥ ॥ दोहरा ॥ कुअरि
सजन सो रति करत रीझ रही मन माहि । वहि दिन पूजा
रुद्र की भूलि करी तिन नाहि ॥ ७६ ॥ ॥ चौपई ॥ कुअरि
कुअर कै संग सिधायी । एक बिबत मन माहि पकाई । इक
दुरबल त्रिय निकट बुलाइसि । कान लागि तिह मंत्र
सिखाइसि ॥ ७७ ॥ अपनी ठौर ताहि बैठायो । ताँहि भली
बिधि चरित सिखायो । सभ सखियन जब ताहि निहारा ।
तिन त्रिय तब इह भाँति उचारा ॥ ७८ ॥ मैं शिव पूजन
कालि न गई । ताते स्नाप रुद्र मुहि दई । याते अवर बरन
हवै गयो । गोर बरन ते साँवर भयो ॥ ७९ ॥ सभ सखियन

थी ॥ ७२ ॥ जिसका चित्र देखकर उसे प्रेम हो गया था, उसका उसने प्रत्यक्ष
दर्शन पा लिया । जो राजकुमारी चाहती थी, विधाता ने वही कर दिया ।
वह वसन्त में वन की तरह हरी-भरी हो उठी ॥ ७३ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब
उस स्त्री ने प्रिय का दर्शन किया तो खाने-पीने का सामान आगे रख दिया ।
उसने विविध प्रकार के नशे मँगाए और बैठकर राजकुमारी के पास ही उन्हें
चढ़ा गया ॥ ७४ ॥ उसको भी बहुत-सा मद्यपान कराया और फिर गले से
लगा लिया । विभिन्न आसन और चुंबन किये तथा चित्त के शोक दूर कर
दिये ॥ ७५ ॥ ॥ दोहा ॥ कुँवरि ने मस्त होकर कुँवर के साथ रतिक्रीड़ा
की और उस दिन रुद्र की पूजा करना भी भूल गई ॥ ७६ ॥
॥ चौपाई ॥ कुँवरि कुँवर के साथ चली गई और उसने एक योजना बनाई ।
उसने एक दुर्बल स्त्री को निकट बुलाया और कान के पास उसे एक बात
समझाई ॥ ७७ ॥ उसे अपने स्थान पर बिठा दिया और उसे भी भली प्रकार
प्रपंच सिखा दिया । जब उसे सब सखियों ने देखा तो उसने इस प्रकार
कहा ॥ ७८ ॥ मैं कल शिव की पूजा करने नहीं गई, इससे रुद्र ने मुझे यह
शाप दे दिया है । इससे मेरा रंग बदल गया है और गोरे से साँवला हो
गया है ॥ ७९ ॥ सब सखियों ने जब यह सुना तो सभी मिलकर राजा के

इह भाँति सुना जब । मिलि राजा पहि जात भई सब । सभ
 ब्रितांत करि ताहि सुनायो । दुहितहि तात बिलोकन
 आयो ॥ ८० ॥ अनत बरन राजै जब लहा । इह बिधि सो
 रानी तन कहा । कहा भयो इह राजदुलारी । गोरी हुती
 हवै गई कारी ॥ ८१ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिरध तरुनि ते हवै गई
 भई गोरि ते स्याम । सति स्नाप शिव ऐसई जपो सकल सभ
 जाम ॥ ८२ ॥ ॥ चौपई ॥ मूरखराज बात नहि जानी ।
 और नारि दुहिता पहिचानी । बिरहमती मितवा संग गई ।
 बहु बिधि भोग कमावत भई ॥ ८३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ इक
 दिन (सू० प्र० ११६७) धाम परी के देत पठाइकै । इक दिन आपु
 कलोल करत मुख पाइकै । अरधा अरध बजावै तासौ रैन
 दिन । हो मूरख बात न पाई राजै कछु इन ॥ ८४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ चौसठि चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६४ ॥ ५०५१ ॥ अफजू ॥

पास गई । उसे सारा वृत्तांत कह सुनाया और पुत्री को देखनै के लिए पिता
 आ गया ॥ ८० ॥ राजा ने जब उसका दूसरा रूप देखा तो उसने रानी से
 ऐसे कहा । इस राजकुमारी को क्या हो गया जो यह गोरी से काली हो गई
 है ॥ ८१ ॥ ॥ दोहरा ॥ यह तरुणी ने वृद्धा और गोरी से काली हो गई है ।
 शिव का शाप सत्य है, उसका आठों प्रहर जाप करना चाहिए ॥ ८२ ॥
 ॥ चौपाई ॥ मूर्ख राजा ने बात समझी नहीं और अन्य स्त्री को अपनी पुत्री
 मान लिया । उधर विरहमती तो अपने मित्र के साथ चली गई और विभिन्न
 प्रकार से सुख भोगने लगी ॥ ८३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक दिन वह (राजकुमार
 को) परी के घर भेज देती थी और एक दिन आप (स्वयं) सुखपूर्वक किल्लोल
 करती थी । रात-दिन उससे भोग-विलास करती थी पर मूर्ख राजा कुछ भी
 नहीं समझ सका ॥ ८४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद के दो सौ चौसठवें चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६४ ॥ ५०५१ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ पैसठि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ पूरब दिसि रथ चित्र नराधिप । सकल प्रथी तल हुतो त्रिपाधिप । प्रकृतिसती ताकी पटरानी । नरी सुरी जिह निरखि लजानी ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ चित्र कौच इक त्रिप हुतो ढाका शहिर मँझार । जा सम सुंद्र न होइगो भयो न राजकुमार ॥ २ ॥ जात्वा तीरथन की निमित गयो तह राजकुमार । जानुक चला शिंगार यह नौ सत साज शिंगार ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जहाँ झरोखा राना त्रिपति सुधारिकै । तिह मग निकसा त्रिप नौ सत शिंगारिकै । निरखि प्रभा तिह तरुनि अधिक बौरी भई । हो घर बाहर की सुधि छुटि करि सिगरी गई ॥ ४ ॥ निकसिठाढि भी नौ सत कुअरि शिंगार करि । जोरि रही जखु चारि सु लाज बिसारि करि । निरखि त्रिपति चकि रहा तरुनि केते जतन । हो मरी नागनी नगी बिचारी कौन मन ॥ ५ ॥ चारु चित्रनी चित्र कि प्रतिभा जानियै । परी पदमिनी प्रकृति पारबति मानियै । एक बार जौ ऐसी भेटन पाइयै । हो आठ जनम लगि पल पल

दो सौ पैसठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पूर्व दिशा में चित्ररथ नामक एक राजा था जो सारी पृथ्वी का सम्राट् था । उसकी पटरानी प्रकृतिमती थी, जिसे देखकर नर-सुर-स्त्रियाँ सभी लज्जित होती थीं ॥ १ ॥ ॥ दोहा ॥ चित्रकवच एक राजा था जो ढाका शहर में रहता था । उसके समान सुन्दर राजकुमार न हुआ, न होगा ॥ २ ॥ वह राजकुमार तीर्थयात्रा के लिए गया । ऐसा लगता था मानो शृंगार स्वयं सोलह शृंगार करके चला जा रहा हो ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जिस ओर शानियों का झरोखा था, राजा सज-धजकर उस ओर से निकला । उसकी प्रभा को देखकर तरुनियाँ अत्यधिक बौरा गईं और उन्हें घर बाहर की सुधि भूल गई ॥ ४ ॥ सभी कुँवरियाँ सोलह शृंगार कर निकल खड़ी हुईं और लज्जा को भुलाकर उसी ओर आँखें जोड़कर खड़ी हो गईं । तरुणी को देखकर राजा चकित हो गया और सोचने लगा कि यह नर, नाग अथवा पर्वत-स्त्रियों में से कौन है ॥ ५ ॥ वह सुन्दर प्रतिमा की अथवा परी, पद्मिनी, प्रकृति या पार्वती थी । एक बार यदि ऐसी स्त्री रमण के लिए मिल जाय तो आठ जन्मों तक प्रत्येक पल न्योछावर हुआ जा सकता

बलि बलि जाइयै ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ उतै कुअरि कह चाहि
 भई इह । इह कौ बांछा भई अधिक तिह । प्रगट ठाढ हवै
 हेरत दोऊ । इत उत पल न टरत भयो कोऊ ॥ ७ ॥
 ॥ दोहरा ॥ इत उत ठाढे हेर द्वै प्रेमातुर हवै तौन । जनु
 सनमुख रन भट भए भाजि चले कहु कौन ॥ ८ ॥
 ॥ चौपई ॥ लागति प्रीति दुहुन्न की भई । अथियो सूर रैनि
 हवै गई । रानी दूतिक तहाँ पठायो । अधिक सजन सौ नेह
 जतायो ॥ ९ ॥ तिह रानी सौ पति को अति हित । निसि
 कह ताँहि न छाडत इत उत । सोत सदा तिह गरे लगाए ।
 भाँति अनिक सौ हरख बढाए ॥ १० ॥ रानी घात कोऊ नहि
 पावै । जिह छल तासौ भोग कमावै । राजा सदा सोत संग
 ताके । किह बिधि संग मिलै इह वाके ॥ ११ ॥
 बिना (मू०पं० ११६५) मिले तिह कल नहि परई । राजा सोत
 संग तें डरई । जब स्वै गयो पतिहि लखि पायो । वहै घात
 लखि ताहि बुलायो ॥ १२ ॥ पठै सहचरी लयो बुलाई ।
 बहु बिधि ताहि कहा समुझाई । रानी कहा राव सो सोई ।
 यो भजियहु ज्यों जगै न कोई ॥ १३ ॥ चित्र कौच तिह ठाँ

है ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ उधर कुँवरि में भी चाह जगी और इधर इसमें भी
 इच्छा बढ़ी । दोनों ही खड़े होकर एक-दूसरे को देखने लगे और एक पल के
 लिए भी कोई इधर-उधर न हिला ॥ ७ ॥ ॥ दोहा ॥ इधर-उधर दोनों ही
 प्रेमातुर हो ऐसे खड़े थे मानो दो योद्धा आमने-सामने युद्ध में खड़े हों । देखें
 अब भला कोई कैसे भाग कर जा सकेगा ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ दोनों में
 प्रीति बढ़ चली और सूर्य अस्त होकर रात हो गई । रानी ने एक दूती वहाँ
 भेजी और प्रिय से गहन प्रेम जताया ॥ ९ ॥ उस रानी से उसके पति
 का अत्यधिक स्नेह था और रात में वह उसे इधर-उधर ज़रा भी नहीं छोड़ता
 था । वहाँ अनेकों प्रकार से हर्षित हो उसे सदैव गले से लगाकर सोता
 था ॥ १० ॥ रानी अवसर नहीं पा रही थी जिससे कि वह उस (प्रिय) के
 साथ भोग-विलास कर सके । राजा सदैव उसके साथ सोता था । अब
 भला वह उसे कैसे मिले ॥ ११ ॥ बिना उससे मिले उसे चैन नहीं पड़ता था
 और राजा साथ सोता था, इससे उसे डर लगता था । जब उसने पति को
 सो गया जाना तो अवसर पाकर उसे बुला लिया ॥ १२ ॥ उसे दासी भेजकर
 बुला लिया और विभिन्न प्रकार से उसे समझा दिया । रानी ने राजा को
 समझाया कि ऐसे तुम रमण करना कि कोई जागने न पाए ॥ १३ ॥ चित्र-

तब आयो । राजा रानी जानि न पायो । राजा की जाँघें
गहि लीनी । बल सों ऐँचि आपु तर कीनी ॥ १४ ॥ तब
त्रिप जगा कोप करि भारा । चोर चोर कहि खड़ग सँभारा ।
रानी जगी हाथ गहि लीना । यौ जड़कौ प्रतिउत्तर
दीना ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ तीरथ निमित्त आयो हुतो यह
ढाका को राइ । कहा प्रथम त्रिप पद परसि बहुरि अनहो
जाइ ॥ १६ ॥ ॥ चौपई ॥ तुमरे पग परसन के काजा ।
इह कारन आयो इह राजा । तिह न हनो इह बहु धन दीजै ।
चरन लगा पति बिदा करीजै ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिदा
किया त्रिप दरब दै ताँको चरन लगाइ । इह छल सौ मूरख
छला सका न छल को पाइ ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ पैसठि
चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६५ ॥ ५०६६ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ छिआसठि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुमतिसेन इक त्रिपति सुना बर । दुतिय
दिवाकर किधौ किरनि धर । समरमती रानी ग्रहि ताके ।

कवच तब वहाँ आया जिसे राजा और रानी दोनों नहीं जान पाये । उसने
(गलतीसे) राजा की जाँघों को बलपूर्वक खींचकर अपने नीचे ले लीं ॥ १४ ॥
राजा क्रुद्ध हो जग गया और चोर-चोर कहकर उसने खड़ग को [सँभाला ।
रानी ने जगकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे उत्तर दिया ॥ १५ ॥
॥ दोहरा ॥ तीर्थ के लिए यह ढाका का राजा आया हुआ है । यह कह रहा
था कि पहले राजा के चरण स्पर्श कर फिर कहीं अन्यत्र जाऊँगा ॥ १६ ॥
॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! यह तो तुम्हारे चरण स्पर्श करने के लिए आया था ।
इसे मारो मत और बहुत सा धन दे, चरण-स्पर्श करवा इसे विदा
कीजिए ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ उसे चरणों से लगाकर राजा ने उसे द्रव्य दे
विदा किया । इस छल से उस मूर्ख को छला । कोई भी उस प्रपंच का
रहस्य न जान सका ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ पैसठवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६५ ॥ ५०६६ ॥ अफजूं ॥

दो सौ छिछठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सुमतिसेन एक श्रेष्ठ राजा था जो मानों दूसरा सूर्य था ।

सुरी आसुरी सम नहि जाके ॥ १ ॥ स्त्री रणखंभकला दुहिता
 तिह । जीति लई ससि अंस कला जिह । निरखि भान
 जिह प्रभा रहत दबि । सुरी आसुरिन की नहि सम
 छबि ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ तरुनि भई तरुनी जब अधिक
 सुखन के संग । लरिकापन मिटि जात भयो दुंदभि दियो
 अनंग ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ चारि भ्रात ताके बलवाना ।
 सूरबीर सब शस्त्र निधाना । तेजवान दुतिमान अतुल बल ।
 अरि अनेक जीते जिह दलि मलि ॥ ४ ॥ सारदूल धुज नाहर धुज
 भन । सिंघकेत हरिकेत महा मन । चारौ सूरबीर बलवाना ।
 मानत शत्रु सकल जिह आना ॥ ५ ॥ चारौ कुअरि पढ़न
 के काजा । दिज इक बोलि पठायो राजा । भाख्यादिक
 व्याकरण पढ़े जिन । औगाहन सभ किय पुरान तिन ॥ ६ ॥
 अधिक (सू० प्र० ११६६) दरब त्रिप बर तिह दीया । बिबिध बिधन
 करि आदर कीया । सुता सहित सौंपे सुत तिह घर । कछु
 बिद्या दिजि देहु कृपा करि ॥ ७ ॥ जब ते तह पढ़बे कह आवै ।
 अपनो बिप कह सीस झुकावै । जो सिक्ख्या दिज देत सु लेही ।
 अमित दरब पंडित कह देही ॥ ८ ॥ इक दिन कुअरि अगमनो

उसके घर में समरमती नामक रानी थी जिसके समान कोई भी सुर-असुर-
 स्त्री नहीं थी ॥ १ ॥ उनकी पुत्री रणखंभकला थी जिसने चन्द्रकलाओं को
 भी जीत रखा था । सूर्य भी जिसकी प्रभा को देखकर दबा रहता था और
 सोचता कि सुर-असुर स्त्री अर्थात् किसी की भी छवि इसके समान नहीं
 है ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ तरुणी जब सुखपूर्वक युवती बनी तो उसका लड़कपन
 समाप्त हो गया और काम ने दुंदुभि बजाना आरम्भ कर दिया ॥ ३ ॥
 ॥ चौपाई ॥ उसके चार भाई अत्यन्त बलवान थे जो शूरवीर और शस्त्र
 (विद्या) के भंडार थे । वे अत्यन्त तेजस्वी, दुतिमान और बलशाली थे,
 जिन्होंने अनेकों शत्रुओं के दिलों को दलित किया था ॥ ४ ॥ शार्दूलध्वज,
 नाहरध्वज, सिंहकेतु और हरिकेतु नामक ये चारों बलवान थे जिनको सारे
 शत्रु मानते थे ॥ ५ ॥ चारों कुँवरों की पढ़ाई के लिए राजा ने एक ब्राह्मण
 को बुलाया, जिसने भाषा, व्याकरण आदि पढ़े हुए थे और सभी पुशणों का
 अवगाहन किया हुआ था ॥ ६ ॥ राजा ने उसे अत्यधिक द्रव्य और विविध
 प्रकार से सम्मान दिया । पुत्री-सहित पुत्र उसे सौंप दिए और कहा कि कृपा-
 पूर्वक कुछ विद्यादान इन्हें दो ॥ ७ ॥ वे जब उससे पढ़ने आते थे तो अपना
 पंडित (गुरु) मानकर वे उसके सामने सिर झुकाते थे । वह ब्राह्मण जो शिक्षा

गई । दिज कह सीस झुकावत भई । सालिग्राम पूजत था
 दिजबर । भाँति भाँति तिह सीस न्याइ करि ॥ ९ ॥ ताकौ
 निरखि कुअरि सुसकानी । सो प्रतभा पाहन पहिचानी ।
 ताहि कहा पूजत किह नमितिह । सिर नावत कर जोरि काज
 जिह ॥ १० ॥ ॥ दिज बाच ॥ सालग्राम ठाकुर ए बाला ।
 पूजत जिन बडे नरपाला । तें अग्यान इह कहा पछानै ।
 परमेस्वर कह पाहन जानै ॥ ११ ॥ ॥ राजा सुत बाच ॥
 ॥ सबैया ॥ ताहि पछानत है न सहाँ जड़ जाको प्रताप तिहँ पुर
 माही । पूजत है प्रभु कै तिस कौ जिनके परसे परलोक पराही ।
 पा पकरो परमार्थ कै जिह पा पन तें अति पाप डराही ।
 पाइ परो परमेश्वर के पसु पाहन मै परमेश्वर नाही ॥ १२ ॥
 ॥ बिजै छंद ॥ जीवन मै जल मै थल मै सभ रूपन मै सभ
 भूपन साही । सूरज मै ससि मै नभ मै जह हेरौ तहा चित लाइ
 तहाही । पावक मै अरु पौन हूँ मै प्रिथ्वीतल मै सु कहा नहि
 जाँही । व्यापक है सभ ही के बिखै कछु पाहन मै परमेश्वर
 नाही ॥ १३ ॥ कागज दीप सभ करिकै अरु सात समुंद्रन की

देता था वे लेते थे और उसे अपरिमित द्रव्य देते थे ॥ ८ ॥ एक दिन कुँवरि
 पहले चली गई और उसने द्विज के सामने सिर झुकाया । ब्राह्मण शालिग्राम
 की पूजा विभिन्न प्रकार से सिर झुकाकर कर रहा था ॥ ९ ॥ उसे देखकर
 कुँवरि मुस्कराई और उसने उस पत्थर की मूर्ति को देखा । उस कुँवरि ने कहा
 कि इसकी पूजा क्यों करते हो और क्यों इसके सामने सिर झुकाते तथा हाथ
 जोड़ते हो ॥ १० ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ हे बालिका ! यह शालिग्राम है, जिसकी
 पूजा बड़े-बड़े राजा करते हैं । तुम अज्ञानी इसे क्या पहचानो । तुम
 परमेश्वर को पत्थर मान रही हो ॥ ११ ॥ ॥ राजकुमारी उवाच ॥
 ॥ सबैया ॥ मूर्ख उसे पहचानते नहीं हैं, जिसका प्रताप तीनों लोकों में व्याप्त
 है । उसे प्रभु जान पूजते हैं, जिससे परलोक और भी दूर चला जाय ।
 परमार्थ के नाम पर इतने पाप करते हैं कि उन पापों से पाप स्वयं लज्जित
 होते हैं । हे पशु ! उस परमेश्वर के चरणों में गिरो, इन पत्थरों में परमेश्वर
 नहीं है ॥ १२ ॥ ॥ बिजै छंद ॥ वह समस्त प्राणियों में, जल में, स्थल में,
 सभी रूपों में, राजाओं में, सूर्य में, चन्द्र में, नभ में और सभी उन स्थानों में है
 जहाँ उसे मन से खोजा जाय । अग्नि, पवन, पृथ्वी और फिर भला कहाँ वह
 नहीं है । वह परमात्मा सब में व्याप्त है, इसलिए हे मूर्ख ! केवल पत्थरों में ही
 नहीं है ॥ १३ ॥ सभी द्वीपों को कागज और सातों समुद्रों को स्याही बनाया

मसु कैयै । काटि बनासपती सिगरी लिखबे हूकौ लेखन काज बनैयै । सारस्वती बकता करिकै सभ जीवन ते जुग साठि लिखैयै । जो प्रभु पायतु है नहि कैसेह सो जड़ पाहन मौ ठहरैयै ॥ १४ ॥ ॥ चौपाई ॥ ए जन भेव न हरि को पावै । पाहन मै हरि कौ ठहरावै । जिह किह बिधि लोगन भरमाहीं । ग्रहि को दरबु लुटि लै जाहीं ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जग मै आपु कहावई पंडित सुघर सुचेत । पाहन की पूजा करै याते लगत अचेत ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ चित भीतर आसा धन धारै । शिव शिव शिव मुख ते उच्चारै । अधिक डिभ करि जगहि दिखावै । द्वार द्वार मांगत न लजावै ॥ १७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ नाक मँदि करि चारि घरी ठाढे रहैं । शिव शिव शिव हवै (५०००१२००) एक चरन इसथित कहैं । जो कोऊ पैसा एक देत करि आइकै । हो दातन लेत उठाइ शिवहि विसराइकै ॥ १८ ॥ ॥ कवित्तु ॥ औरनुपदेश करै आपु ध्यान कौ न धरै लोगन कौ सदा त्याग धन को द्रिडात है । तेही धन लोभ ऊच नीचन के द्वार द्वार लाज कौ तियाग जेही तेही पै घिघात है । कहत पवित्र हम रहत

जाय; सभी वनस्पति को काटकर लिखने के लिए कलम बना लिया जाय; सरस्वती स्वयं बोले और सारे जीवों द्वारा साठों युगों तक लिखा जाय तब भी जिस प्रभु का रहस्य नहीं जाना जा सकता उसे हे मूर्ख ! तुम पत्थरों में कैसे मान रहे हो ॥ १४ ॥ ॥ चौपाई ॥ जो पत्थरों में प्रभु मानता है वह उसका रहस्य नहीं जान पाता । वह लोगों को भ्रम में डालता है और लोगों के घरों का द्रव्य लूट ले जाता है ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ ये पंडित संसार में तो बड़े चैतन्य पुरुष लगते हैं, परन्तु पत्थरों की पूजा करने से ये बिलकुल अचेत (मूर्ख) लगते हैं ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ चित्त में धन की आशा लगाए रहते हैं और मुख से शिव-शिव का उच्चारण करते हैं । जगत में अत्यधिक प्रपंच कर दिखाते हैं और द्वार-द्वार मांगते लजाते नहीं हैं ॥ १७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ नाक बन्द कर ये चार घड़ी तक खड़े रहते हैं और शिव-शिव कहकर एक पाँव पर खड़े रहते हैं । यदि कोई एक भी पैसा आकर देता है, तो ये शिव का विस्मरण कर उस दान को उठाने में लग जाते हैं ॥ १८ ॥ ॥ कवित्तु ॥ अन्यो को उपदेश देते हैं, स्वयं ध्यान नहीं देते और ये लोग लोगों को सदैव त्याग का उपदेश देते हैं । उसी धन के लोभ में ये ऊँच-नीच का विचार किये बिना द्वार-द्वार पर जिस-तिस के सामने घिघियाते हैं । कहते तो हैं कि हम पवित्र

अपवित्र खरे चाकरी मलेछन की कंकै टूक खात है। बडे असंतोखी हैं कहावत संतोखी सहाँ एक द्वार छाडि माँगि द्वारे द्वार जात है ॥ १९ ॥ माटी के शिव बनाए पूजिकै बहाइ आए आइकै बनाए फेरि माटी के सुधारिकै। ताके पाइ पर्यो माथो घरी द्वै रग्यो ऐ रे ताँ सै कहा है रे देहै तोहि कौ बिचारिकै। लिंग की तू पूजा करे शंभु जानि पाइ परे सोई अंत देहै तेरे कर सै निकारि कै। दुहिता कौ देहै की तू आपन जबैहै ताकौ यौ ही तोहि सारि है रे सदा शिव खवार कै ॥ २० ॥ ॥ बिजै छन्द ॥ पाहन कौ शिव तू जो कहै पसु याते कछु तुहि हाथ न ऐहै। लैयक जोनि जु आपु परा हसि कै तुहि कौ कहु का बरु देहै। आपन सो करिहै कबहूँ तुहि पाहन की पदवी तब पैहै। जानु रे जानु अजान सहाँ फिरि जान गई कछु जानि न जैहै ॥ २१ ॥ बैस गई लरिकापन मो तरुनापन सै नहि नाम लयो रे। औरन दान करात रहा कर आप उठाइ न दान दयो रे। पाहन कौ सिर न्यातन तै परमेश्वर कौ सिर न्यात भयो रे। कासहि काव फसा घर के जड़ कालहि काल कै काल गयो रे ॥ २२ ॥ द्वैक पुरानन कौ

हैं, पर वने रहते हैं आवित्र, तथा तथाकथित म्लेच्छों की चाकरी करके रोटी के टुकड़े पाते हैं। ये कहलाते तो बहुत सन्तोषी हैं, पर हैं परम असन्तोषी। ये एक परमात्मा के द्वार को छोड़ अन्य द्वारों पर जाकर माँगते हैं ॥ १९ ॥ ये मिट्टी का शिव बनाते हैं, उसको पूजा कर उसे वहाँ देते हैं तथा फिर उसे बनाते हैं। तुम उसके पाँव पड़ते हो, सिर रगड़ते हो; हे मूर्ख! उसके पास क्या है जो तुम्हें देगा। तुम उसके लिंग की पूजा करते हो और शिव जानकर उसके पाँव पड़ते हो। तुम्हें तो वह फिर वही निकालकर देगा (जिसकी तुम पूजा करते हो)। तू उसे अपना पुत्री को देगा या फिर खुद चबाएगा? शिव तुझे वहीं खींचकर मारेगा ॥ २० ॥ ॥ बिजै छन्द ॥ हे पशु! तू जो पत्थर का शिव कहता है, इससे तुझे कुछ हाथ नहीं लगेगा। जो पत्थर की योनि में खुद पड़ा है वह भला प्रसन्न हो तुझे क्या वरदान देगा। वह तो तुझे अपने जैसा कर लेगा और तुझे पत्थर का पद दे देगा। हे मूर्ख! अभी जान ले, फिर जान जाने पर कुछ भी नहीं जान पायेगा ॥ २१ ॥ लड़कपन तो ऐसे ही निकल गया और तहणाई में तूने उस प्रभु का नाम नहीं लिया। तू दूसरों से तो दान कराता रहा पर आप हाथ उठाकर कभी दान नहीं दिया। पत्थर को सिर झुकाकर मानों तुम परमात्मा का सिर नीचा कर

पढ़िकै तुम फूलि गए दिजजू जिय माही । सो न पुरान पढ़ा
 जिह के इह ठौर पढ़े सभ पाप पराही । डिभ दिखाइ करो
 उपसा दिन रैनि बसै जियरा धन माही । मूरख लोग प्रमान
 करै इन बातन कौ हम मानत नाही ॥ २३ ॥ काहे को काज
 करो इतनी तुम पाहन को किह काज पुजावो । काहे को डिभ
 करो जग मै इहलोक गयो परलोक गवावो । झूठे न मंत्र
 उपदेश करो जोऊ चाहत हो धन लौ हरखावो । राजकुमारन
 मंत्र दियो सु दियो बहुरौ हम कौ न सिखावो ॥ २४ ॥ ॥ दिज
 बाच ॥ ॥ चौपई ॥ कहा बिप्र सुनु राजदुलारी । तैं शिव
 की महिमा न बिचारी । ब्रह्मा बिशन रुद्र जू देवा । इनकी
 सदा कीजियै (मू०पं० १२०१) सेवा ॥ २५ ॥ तैं याके भे वहि
 न पछानै । महाँ मूढ़ इह भाँति बखानै । इनको परम
 पुरातन जानहु । परम पुरख मन महि पहिचानहु ॥ २६ ॥
 हम है कुअरि बिप्र व्रतधारी । ऊँच नीच सभ के हितकारी ।
 जिसी किसी कर मंत्र सिखावै । महाँ क्रिपन ते दान
 करावै ॥ २७ ॥ ॥ कुअरि बाच ॥ मंत्र देत सिख अपन करत

रहे हो । तू कामनाओं के काम में ही फँसा है, हे मूर्ख ! कल, कल करते सारा
 (जीवन-) काल ही समाप्त हो गया ॥ २२ ॥ हे पंडित ! तुम दो एक पुराण
 पढ़कर मन में फूल गए हो । तुमने वह पुराण नहीं पढ़ा, जिसके पढ़ने से
 सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । प्रपंच दिखाकर तुम तपस्या करते हो और दिन-
 रात तुम्हारा मन तो धन में वसा रहता है । मूर्ख लोग भले ही तुम्हें
 प्रामाणिक मानें पर हम तो इन बातों को नहीं मान सकते ॥ २३ ॥ क्यों
 इतना कार्य कर रहे हो और पत्थर के लिए यह सब क्यों पहुँचा रहे हो ।
 क्यों इस जगत में प्रपंच कर रहे हो । तुम्हारा यह लोक तो गया तुम परलोक
 क्यों गंवा रहे हो । झूठे ही तुम मुझे मंत्र और उपदेश मत दो, जो चाहते
 हो तो धन लेकर खुश हो जाओ । तुम राजकुमारों को ही मंत्र सिखाओ और
 मुझे कुछ मत सिखाओ ॥ २४ ॥ ॥द्विज उवाच॥ ॥चौपाई॥ ब्राह्मण ने कहा
 कि हे राजकुमारी ! सुनो ! तुमने शिव की महिमा नहीं जानी है । ब्रह्मा,
 विष्णु एवं रुद्रदेव की सदैव सेवा करनी चाहिए ॥ २५ ॥ तुम उनका रहस्य
 नहीं पहचानती हो और यहाँ मूर्खों की तरह बात करती हो । इन्हें परम
 प्राचीन मानना और परमपुरुष जानना चाहिए ॥ २६ ॥ हे कुँवर ! हम
 व्रतधारी विप्र हैं और ऊँच-नीच सबके हितैषी हैं । मंत्रविद्या सिखाते हैं
 और यहाँ कंजूसों से भी दान करवाते हैं ॥ २७ ॥ ॥ कुँवर उवाच ॥ तुम

हित । ज्यों ज्यों भेट लैत ताते बित । सत्ति बात ताकह
न सिखावहु । ताँहि लोक परलोक गवावहु ॥ २८ ॥
सुनहु बिप्र तुम मंत्र देत जिह । लूटि लेत तिह घर बिधि
जिह किह । ताकह कछू ग्यान नहि आवै । मूरख अपना
मूँड मुँडावै ॥ २९ ॥ तिह तुम कहु मंत्र सिधि हवैहै ।
महाँदेव तोको बरु दैहै । जब ताते नहि होत मंत्र सिधि ।
तब तुम बचन कहत हौ इह बिधि ॥ ३० ॥ कछू कुक्रिया तुमते
भयो । ताँते दरस न शिवजू दयो । अब तै पुन्य दान दिज
कर रे । पुनि शिव के मंत्रहि अनुसर रे ॥ ३१ ॥ उलटो डंड
तिसी ते लेहो । पुनि तिह मंत्र रुद्र को देहो । भाँति भाँति
ताकौ भटकावै । अंत बार इमि भाख सुनावै ॥ ३२ ॥ तो ते
कछु अच्छर रहि गयो । कै कछु भंग क्रिया ते भयो । ताते
तुहि बरु रुद्र न दीना । पुन्य दान चाहियत पुनि कीना ॥ ३३ ॥
इह बिधि मंत्र सिखावत ताको । लूटा चहत बिप्र घर जाको ।
जब वहु दरब रहत हवै जाई । और धाम तब चलत
तकाई ॥ ३४ ॥ ॥ दोहरा ॥ मंत्र जंत्र अरु तंत्र सिधि जौ
इन भहि कछु होइ । हजरति हवै आपहि रहहि भागत फिरत

सीखनेवालों को मंत्र सिखाने के नाम पर अपना ही हित करते हो और जैसे-
तैसे उनसे भेंट लेते हो । सच्ची बात उन्हें नहीं सिखाते हो और लोक-
परलोक दोनों को गँवाते हो ॥ २८ ॥ हे विप्र, तुम जिनको मंत्र देते हो,
उनका घर विधिपूर्वक लूट लेते हो । उनको कुछ ज्ञान नहीं होता और वे मूर्ख
अपना सिर मुँडाते हैं ॥ २९ ॥ उन्हें तुम कहते हो कि मंत्र-सिद्धि होगी और
शिव तुमको वरदान देगा । जब उनसे मंत्र सिद्ध नहीं होता, तुम उनसे ऐसे
कहते हो ॥ ३० ॥ तुमसे कुछ गलत क्रिया हो गई है इसी से शिव ने दर्शन
नहीं दिया । तुम अब ब्राह्मण को दान करो और पुनः शिव का जाप कर
अनुसरण करो ॥ ३१ ॥ तुम उलटा उसी से दंड लेते हो और उसे पुनः रुद्र
का मंत्र देते हो । विभिन्न प्रकार से उसको भटकाते हो और अन्त में यह
कह सुनाते हो ॥ ३२ ॥ तुमसे कुछ अक्षर रह गए और तुम क्रिया से
विचलित हो गए हो । इसी से रुद्र ने तुम्हें वरदान नहीं दिया, अतः फिर
पुण्य-दान करो ॥ ३३ ॥ इस प्रकार जिसका घर लूटना चाहो उसे तुम मंत्र
सिखाते हो । जब वह द्रव्य-विहीन हो जाता है तो तुम दूसरा घर पकड़
लेते हो ॥ ३४ ॥ ॥ दोहरा ॥ यदि तुम्हारे इन मंत्रों-तंत्रों में कुछ सिद्धि हो तो
तुम खुद बादशाह बनकर रहते और माँगते न घूमते ॥ ३५ ॥

न कोइ ॥ ३५ ॥ ॥ दिज बाच ॥ ॥ चौपई ॥ सुनि ए बचन
मिसर रिसि भरा । धिक धिक ताकहि बचन उचरा । तै
हमरी बातन कह जानै । भाँग खाइकै बैन प्रमानै ॥ ३६ ॥
॥ कुअरि बाच ॥ सुनो मिसर तुम बात न जानत । अहंकार कै
बचन प्रमानत । भाँग पिए बुधि जात न हरी । बिनु पीए
तव बुधि कह परी ॥ ३७ ॥ तुम आपन स्थाने कहलावत ।
कबहीं भूलि न भाँग चढ़ावत । जब पुन जाहु काज भिच्छा
के । करहो ख्वार रहत ग्रहि जाके ॥ ३८ ॥ जिह धन को
तुम त्याग दिखावत । दर दर तिह माँगन कस जावत । महाँ
मूढ़ राजन के पासन । लेत फिरत हो मिश्र जू (म०प्र० १२०२)
कन कन ॥ ३९ ॥ तुम जग सहि त्यागी कहलावत । सभ
लोकन कह त्याग द्रिड़ावत । जाकह मन बच क्रम तजि दीजै ।
ताकह हाथ उठाइ कस लीजै ॥ ४० ॥ काहू धन त्याग
द्रिड़ावहि । काहू कौ कोऊ ग्रहि लावहि । मन सहि दरब
ठगन की आसा । द्वार द्वार डोलत इह प्यासा ॥ ४१ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ वेद व्याकरण शास्त्र सिञ्चित इम उचरै । जिनि
किसहू ते एक टका सोकौ झरै । जे तिनको कछु देत

॥ द्विज उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ यह वचन सुनकर मिसर क्रोध से भर गया और
उसे धिक्कारने लगा । तुम मेरी बातों को क्या समझोगी जो भाँग खाकर
बातें कर रही हो ॥ ३६ ॥ ॥ कुँवरि उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! सुनो, तुम बात
नहीं समझते और अहंकार की बातें कहते हो । भाँग पीने से बुद्धि का हरण
नहीं होता । बताओ बिना पीने से तुम्हें कौन सी बुद्धि आ गई है ॥ ३७ ॥
तुम स्वयं को सयाने कहलाते हो और कभी भूलकर भी भाँग नहीं पीते हो ।
जब तुम भिक्षा माँगने जाओगे तो जिसके घर जाओगे उसे (अवश्य) दुखी
कर दोगे ॥ ३८ ॥ जिस धन के त्याग की बात तुम कहते हो उसे ही माँगने
के लिए तुम द्वार-द्वार पर क्यों जाते हो ? महामूर्ख राजाओं के पास हे मिश्र
जी ! तुम कण-कण के लिए घूमते-फिरते हो ॥ ३९ ॥ तुम संसार में त्यागी
कहलाते हो और सब लोगों को त्याग दृढ़ करवाते हो । जिसे मन-वचन-
कर्म से त्याग दिया जाय भला फिर उसे हाथ उठाकर क्यों पकड़ा जाय ॥ ४० ॥
किसी को धन का त्याग दृढ़ करवाते हो और किसी को कोई ग्रह लगा देते हो ।
मन में धन ठगने की आशा लगाए तुम प्यासे होकर द्वार-द्वार घूमते
हो ॥ ४१ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ वेद, व्याकरण, शास्त्र, स्मृति आदि का उच्चारण
करते हो कि जैसे-तैसे कोई टका मैं झाड़ लूं । जो तुम्हें कुछ देते हैं

उसतति ताकी करै । हो जो धन देत न तिनै निंद ताकी
 ररै ॥ ४२ ॥ ॥ दोहरा ॥ निंदिआ अरु उसतति दोऊ जीवत
 ही जग साहि । जब माटी माटी मिली निंदुसतति कछु
 नाहि ॥ ४३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ देनहार दाइकहि मुकति नहि
 करि दियो । अनदाइक तिह पुवन पित को बध कियो ।
 जाते धन कर परै सुजस ताको करै । हो जाते कछु न लहै
 निंद तिह उचरै ॥ ४४ ॥ ॥ चौपई ॥ दुहूँअन सम जोऊ करि
 जानै । निंद्या उसतति सम करि मानै । हम ताही कह
 ब्रहम पछानहि । वाही कहि दिज कै अनुमानहि ॥ ४५ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ ए दिज जाते जतन पाई धन लेवही । ता नर
 कह बहु भाँति बडाई देवही । मिथ्या उपमा बकि करि तहि
 प्रसंन करै । हो घोर नरक के बीच अंत दोऊ परै ॥ ४६ ॥
 धन के काज करत सभ काजा । ऊच नीच राना अरु राजा ।
 खयाल काल को किनूँ न पायो । जिन इह चौदह लोक
 बनायो ॥ ४७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ इही दरब के लोभ वेद
 व्याकरण पड़त नर । इही दरब के लोभ मंत्र जंत्र न उपदिस
 कर । इही दरब के लोभ देस परदेस सिधाए । हो परे दूरि

उनकी तुम स्तुति और जो नहीं देते हैं, उनकी निन्दा करते हो ॥ ४२ ॥
 ॥ दोहा ॥ निन्दा और स्तुति दोनों जीवित रहते समय तक की बातें हैं ।
 जब मिट्टी से मिट्टी मिल गई तो निन्दा-स्तुति दोनों ही समाप्त हो
 जाएगी ॥ ४३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ देनेवाले परमात्मा ने मुक्ति कहीं किसी के
 हाथ में नहीं पकड़ायी है । कभी-कभी तो अनचाहे में पुत्र-पिता का वध कर
 देते हैं । तुम जिससे धन पा जाते हो उसका यशोगान करते हो और जिससे
 कुछ नहीं पाते उसकी निन्दा करते हो ॥ ४४ ॥ ॥ चौपाई ॥ दोनों को
 अर्थात् निन्दा-स्तुति को जो समान रूप से मानता है, हम तो उसी को ब्रह्मा
 मानते हैं और सच्चे ब्राह्मण के रूप में पहचानते हैं ॥ ४५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ ये
 ब्राह्मण यत्नपूर्वक जिससे धन ले लेते हैं, उसकी विभिन्न प्रकार से बडाई करते
 हैं । उसकी झूठी प्रशंसा कर उसे प्रसन्न करते हैं और अन्त में दोनों घोर नरक
 में जा पड़ते हैं ॥ ४६ ॥ ऊँच, नीच, राजा आदि सभी धन के लिए ही कार्य
 करते हैं । काल का कोई भी ध्यान नहीं करता जिसने चौदह लोकों का
 निर्माण किया है ॥ ४७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ इसी द्रव्य के लोभ में लोग वेद-
 व्याकरण आदि पढ़ते हैं और इसी द्रव्य के लोभ में सभी मंत्र-यंत्र का उपदेश
 करते हैं । इसी द्रव्य के लोभ में देश-परदेश जाते हैं और दूर-दूर जाकर फिर

कह जाइ बहुरि निजु देसन आए ॥ ४८ ॥ ॥ कवित्त ॥ एही धन लोभ ते पड़त व्याकरण सभै एही धन लोभ ते पुरान हाथ धरे हैं । धन ही के लोभ देस छाडि परदेस बसे तात अरु मात के दरसहू न करे हैं । ऊँचे द्रुम साल तहाँ लाँबे बट ताल जहाँ तिन मै सिधात है न जी मै नैकु डरे हैं । धन कै नुरागी हैं कहावत तिआगी आपु कासी बीच जए ते कमाऊ जाइ मरे हैं ॥ ४९ ॥ ॥ बिजै छंद ॥ लालच एक लगै धन के सिर मद्धि जटान (मू० प्र० १२०३) के जूट सवारें । काठ की कंठिन कौ धरिकै इक कानन मै बिनु कानि पधारें । भोचन कौ गहिकै इक हाथन सीसहू के सभ केस उपारें । डिंभु करै जंग डंडन कौ इह लोक गयो परलोक बिगारें ॥ ५० ॥ माटी के लिंग बनाइकै पूजत ता मै कहो इन का सिधि पाई । जो निरजोति भयो जग जानत ताहि के आगे ले जोति जगाई । पाइ परे परमेस्वर जानि अजान बडै करिकै हठताई । चेत अचेत सुचेतन को चित की तजि कै चट दै दुचित्ताई ॥ ५१ ॥ काँसी के बीच पढ़ै बहुकाल बुटंत मै अंत मरै पुनि जाई । तात रहा

अपने देश में वापस आ जाते हैं ॥ ४८ ॥ ॥ कवित्त ॥ इसी धन के लोभ में सभी व्याकरण पढ़ते हैं और इसी धन के लोभ में पुराणों को हाथ में पकड़े घूमते हैं । धन के ही लोभ में देश छोड़कर परदेश में बसते हैं और माता-पिता के दर्शन तक नहीं करते । ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के कुंजों में, लम्बे-लम्बे बट के पेड़ों, तालाबों में जानै से नहीं डरते । ये धन के अनुरागी अपने-आपको त्यागी कहलाते हैं, पर इनका जन्म तो काशी में होता है, पर ये पैसे के चक्कर में कुमायूँ तक पहुँच जाते हैं और वहीं मरते हैं ॥ ४९ ॥ ॥ बिजै छन्द ॥ धन के लालच में ही लोगों ने सिर में अटाएँ धारण कर रखी हैं । लकड़ी की माला धारण कर ये सब लज्जा का त्याग कर जंगल में जाते हैं । कई हाथ में चिमटी पकड़कर सिर के वालों को उखाड़ते हैं । संसार को दंडित करने के लिए ये प्रपंच कर इस लोक को तो गँवाते ही हैं परलोक को भी बिगाड़ लेते हैं ॥ ५० ॥ मिट्टी का लिंग बनाकर पूजने से भला इनको कौन सी सिद्धि प्राप्त होगी । जो स्वयं ज्योति-विहीन है उसके आगे इन्होंने ज्योति जला रखी है । उसे परमेश्वर समझकर ये पाँव पड़ते हैं और मूर्खतापूर्वक हठ करते हैं । हे अचेत मूर्ख ! शीघ्र चेतो और शीघ्रता से चित्त का दुचित्तापन त्यागो ॥ ५१ ॥ काशी में बहुत समय तक पढ़ते हैं और मरते दूर भूटान आदि पहाड़ी प्रदेशों में है । पिता कहीं है, माता कहीं है, पुत्र-स्त्री-पुत्री कहीं अन्य स्थान

अरु मात कहूँ बनितासुत पुत्र कललन भाई । देस बिदेस फिरें
 तजिके घर थोरी सी सीखि कै चातुरताई । लोभ की लीक
 न लाँघी किमू नर लोभ रहा सभ लोग लुभाई ॥ ५२ ॥
 ॥ कबित्तु ॥ एकन को मूँडि नाँडि एकन सौ लेहि डाँड एकन
 कै कंठी काठ कंठ सै डरत हैं । एकन द्विड़ावें मंत्र एकन
 लिखावें जंत्र एकन को तंत्रन प्रबोध्यो ई करत है । एकन के
 बिद्या को बिबादन बतावें डिभ जग को दिखाइ ज्यों क्यों
 मात को हरत हैं । मैया कौन मानै महाकालै न मनावै मूढ़
 माटी को मानत ताते माँगत मरत है ॥ ५३ ॥ ॥ सबैया ॥ चेत
 अचेतु किए जिन चेतन ताँहि अचेतन को ठहरावें । ताहि
 कहै परमेश्वर कै मन साहि कहै घटि खोल बिकावें । जानत
 है न अजान बडै सु इते पर पंडित आपु कहावें । लाज के
 मारे मरै न महाँ लट ऐँठहि ऐँठ अमैँठि गवावें ॥ ५४ ॥
 ॥ बिजै छंद ॥ गतमान कहावत गात सभै कछू जानै न बात
 गतागत है । दुतिमान धने बलवान बडे हस जानत जोग मधे
 जत है । पाहन के कहैं बीच सही शिव जानै न मूढ़ महाँ मत है ।
 तुमहूँ न बिचारि सु जान कहो इन मै कहाँ पारबती पति

में हैं । थोड़ी सी चतुरता सीखकर घर त्यागकर लोग देश-विदेश में घूमते हैं ।
 लोभ की लकीर कोई नहीं लाँघ सका है । लोभ सबको लुभाता है ॥ ५२ ॥
 ॥ कवित्त ॥ कइयों को लूट-पाटकर, कइयों से दंड लेकर कइयों के गले में
 लकड़ी की माला डाल दी गई है । कइयों को मंत्र दढ़ कराते हैं, कइयों को
 यंत्र लिखाते हैं और कइयों को तंत्र-शिक्षा दिया करते हैं । कइयों को विद्वत्ता
 जताते हैं और कइयों को प्रपंच दिखाकर उनके धन का हरण किया करते हैं ।
 कई माता (दुर्गा) को मानते हैं, पर मूर्खतावश महाकाल को नहीं मानते ।
 मूर्ख मिट्टी (की मूर्ति) से माँगते हैं और मरे जा रहे हैं ॥ ५३ ॥
 ॥ सबैया ॥ जिसने जड़-जीव सभी को बनाया है उसको मूर्ख कोई नहीं
 पहचानता । उसी जड़ पदार्थ को परमेश्वर करके मानते हैं जो मोल बिकता
 है । जानते कुछ नहीं हैं, पर अज्ञानी होने पर भी पंडित कहलाते हैं ।
 महामूर्ख लज्जा में नहीं मरते और अकड़ में ही अकड़े रहते हैं ॥ ५४ ॥
 ॥ बिजै छंद ॥ सभी शरीरधारी अपने आपको सुविज्ञ कहलाते हैं पर गति-
 अगति को कुछ नहीं समझते । बड़े-बड़े दुतिमान और बलवान योग-क्रियाओं
 में अनुरक्त हैं । पत्थर में ही सत्य को मानते हैं और महामूढ़ होकर शिव
 (कल्याणकारी परमात्मतत्त्व) को नहीं पहचानते । तुम्हीं भला सोचकर

है ॥ ५५ ॥ माटी कौ सीस निवावत है जड़ याते कहे तुहि का
सिधि ऐहै । जौन रिझाइ लयो जग कौ तब चावर डारत
रीझि न जैहै । धूप जगाइकै संख बजाइ सु फूलन की बरखा
बरखैहै । अंत उपाइ कै हारिहैं रे पसु पाहन मै परमेश्वर न
पैहै ॥ ५६ ॥ एकन जंत सिखावत हैं दिज एकन मंत्र
प्रयोग बतावैं । जो न भिजै इन बातन ते (मू०ग्रं० १२०४) तिह
गीति कबित्त सलोक सुनावैं । दोस हिरै धन लोगन के ग्रहि
चोरु चकैं ठग देखि लजावैं । कानि करैं नहि काजी कुटवार
की मूँडि कै मूँडि मुरीदन खावैं ॥ ५७ ॥ ॥ दोहरा ॥ पाहन
की पूजा करै जो है अधिक अचेत । भाँग न एते पर भखैं
जानत आप सुचेत ॥ ५८ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ धन के लागि
लोभ गए अनतै । तजि मात पिता सुत बाल कितैं । बसि
कै बहु सास तहाँ ही मरैं । फिरि कै ग्रहि के नहि पंथ
परैं ॥ ५९ ॥ ॥ दोहरा ॥ धनी लोग हैं पुहप सम गुनिजन
भौर बिचार । गूँज रहत तिह पर सदा सभ धन धाम
बिसार ॥ ६० ॥ ॥ चौपई ॥ सभ कोऊ अंतकाल बसि भया ।

बताओ कि इन (पत्थरों) में कहीं पार्वतीपति शिव हो सकते हैं ॥ ५५ ॥
जड़ मिट्टी को सिर झुका रहे हैं । भला इनमें क्या सिद्धि मिलेगी । जिसने
सारे संसार को मोहित कर रखा है, तुम्हारे चँवर डालने से वह रीझ नहीं
जाएगा । तुम धूप-बत्ती जलाकर, शंख बजाकर फूलों की वर्षा करते हो ।
परन्तु हे पशु ! अंत में सब उपाय करके हार जाओगे पर पत्थरों में परमेश्वर
नहीं पाओगे ॥ ५६ ॥ ये द्विज एक को यंत्र सिखाते हैं और दूसरे को मंत्र का
प्रयोग बताते हैं । जो इन बातों से प्रसन्न नहीं होता उन्हें गीत-कवित्त-
श्लोकादि सुनाते हैं । दिन में ही ये लोगों का धन ऐसे चुरा लेते हैं कि चोर
और ठग भी लज्जित हो जाते हैं । ये क्राजी, कोतवाल की भी परवाह नहीं
करते और लूट-लूटकर अपने चेलों को ही खाते हैं ॥ ५७ ॥ ॥ दोहा ॥ जो
बिलकुल निर्बुद्धि होकर पत्थर की पूजा करते हैं और भाँग आदि का
नशा नहीं करते वे अपने को चैतन्य समझते हैं (यह कैसी अजीब बात
है) ॥ ५८ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ धन के लोभ में माता-पिता, सुत एवं पुत्री को
छोड़कर ये अन्यत्र चले जाते हैं । वे अनेकों मास, वर्षों तक वहीं बसकर वहीं
मर जाते हैं और फिर घर का रास्ता नहीं लेते ॥ ५९ ॥ ॥ दोहा ॥ धनी
लोग तो फूलों के समान हैं और गुणीजन भौरे हैं । वे घर-बाहर की चिन्ता
छोड़कर सदैव उन्हीं पर मँडराया करते हैं ॥ ६० ॥ ॥ चौपाई ॥ सभी अंत

धन की आस निकरि तजि गया । आसा करत गया संसारा ।
 इह आसा को वार न पारा ॥ ६१ ॥ एक निरास वहै
 करतारा । जिन कीना इह सकल पसारा । आसा रहित
 और कोऊ नाही । जान लेहु दिजबर मन साही ॥ ६२ ॥
 लोभ लगे धन के ए दिजबर । माँगत फिरत सभन के घर घर ।
 या जग सहि करि डिंभ दिखावत । ते ठगि ठगि सभ कहू धन
 खावत ॥ ६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ आसा की आसा लगे सभ ही
 गया जहान । आसा जग जीवत बची लीजै समझि
 सुजान ॥ ६४ ॥ ॥ चौपाई ॥ आशा करत सगल जग जया ।
 आसहि उपज्या आसहि भया । आसा करत तहन ब्रिध हुआ ।
 आसा करत लोग सभ मूआ ॥ ६५ ॥ आसा करत लोग सभ
 भए । बालक हुतो ब्रिद्ध हवै गए । जिति कित धन आसा
 करि डोलहि । देस बिदेस धनास कलोलहि ॥ ६६ ॥ पाहन
 कहू धनास सिर न्यावैं । चेत अचेतन कौ ठहरावैं । करत
 प्रपंच पेट के काजा । ऊच नीच राना अह राजा ॥ ६७ ॥
 काहू को भिच्छा सु द्विड़ावैं । काहूँ कौ लै मूँड मुँडावैं । काहूँ
 पठै तीरथन देहीं । ग्रहि को दरबु माँग सभ लेहीं ॥ ६८ ॥

में काल के वश में हैं परन्तु धन की आशा में सभी निकलकर घूमते हैं ।
 इच्छा करता ही सारा संसार गया है । इस आशा का तो कोई अन्त नहीं
 है ॥ ६१ ॥ आशा-विमुक्त एक वह कर्तार ही है, जिसने सारा प्रसार किया
 है । अन्य कोई भी आशा-रहित नहीं है । हे विप्रवर, तुम इसे जान लो ॥ ६२ ॥
 ये विप्र लोभ में ग्रस्त सबके घर-घर पर माँगते घूमते हैं । इस संसार में ये
 प्रपंच दिखाते हैं और सबको ठग-ठगकर उनका धन खाते हैं ॥ ६३ ॥
 ॥ दोहरा ॥ आशा की आशा में लिप्त तो सारा संसार ही चला गया है परन्तु
 हे सुजान, आशा फिर भी जीवित बची रही है ॥ ६४ ॥ ॥ चौपाई ॥ आशा
 लगाए सारा संसार जाता है और आशा में उपजता और आशा रूप ही हो
 जाता है । तहन भी आशा लगाए ही वृद्ध हो गया और आशा करते-करते
 ही सब मर जाते हैं ॥ ६५ ॥ आशा करते ही सब लोग बालक से वृद्ध हो
 गए हैं । इधर-उधर धन की आशा में ही वे डोलते हैं और धन की आशा में
 ही देश-विदेशों के भ्रमण किया करते हैं ॥ ६६ ॥ धन की आशा में ही
 मत्थर को सिर झुकाते हैं और अचेतन को भी चैतन्य मानते हैं । पेट के लिए
 ही प्रपंच करते हैं ॥ ६७ ॥ किसी को सुशिक्षा दृढ़ करवाते हैं और किसी
 को सिर मुँडवा देते हैं । किसी को तीर्थयात्रा पर भेज देते हैं और घर का

जिह नर को धनवान तकावैं । जोनि सिला सहि ताहि फसावैं ।
 बहुरि डंड तिह मूँडि चुकाहीं । काढि देत ताके पुनि
 माहीं ॥ ६६ ॥ इन लोगन धन ही की आसा । स्त्री हरि जी की
 नाहि पयासा । डिंभि जगत कह करि परचावै । (सू० ग्रं० १२०५)
 लछिमी हर ज्यो त्यो लै आवैं ॥ ७० ॥ ॥ दिज बाच ॥ सुनु
 पुत्री तै बात न जानै । शिव कह करि पाहन पहिचानै । बिप्रन
 कौ सभ ही सिर न्यावैं । चरनोदक लै माथ चड़ावैं ॥ ७१ ॥
 पूजा करत सगल जग इनकी । निंछा करत मूड़ तै जिनकी ।
 ए हैं परम पुरातन दिजबर । सदा सराहत जिन कह त्रिप
 बर ॥ ७२ ॥ ॥ कुअरि बाच ॥ सुन सूरख दिज तै नहि जानी ।
 परम जोति पाहन पहिचानी । इन सहि परम पुरख तै जाना ।
 तजि स्यानप हवैं गयो अयाना ॥ ७३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ लैनौ
 होइ सु लै दिज मुहि न झुठाइयै । पाहन मै परमेश्वर न भाखि
 सुनाइयै । इन लोगन पाहन सहि शिव ठहराइकै । हो मूड़न
 लीजहु लूट हरख उपजाइकै ॥ ७४ ॥ काहू कह पाहन सहि
 ब्रह्म बतात हैं । जल डूबन हित किसहूँ तीरथ पठात हैं ।

सारा द्रव्य स्वयं माँग लेते हैं ॥ ६८ ॥ जिस धनवान को ये देख लेते हैं उसे
 आवागमन के चक्र में (भय दिखाकर) फँसा लेते हैं । वे उसकी ओर अच्छा
 खासा दंड निकाल देते हैं और उसे चुकता करवाते हैं ॥ ६९ ॥ इन लोगों
 को धन की ही आशा होती है और हरि की ज़रा भी प्यास नहीं होती । जगत
 को ये प्रपंच में उलझाए रहते हैं और जैसे-तैसे लक्ष्मी का हरण कर ये लाते
 रहते हैं ॥ ७० ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ हे पुत्री ! सुनो, तुम बात नहीं समझती हो
 और शिव को पत्थर मान रही हो । ब्राह्मणों को तो सभी सिर झुकाते हैं और
 उनका चरणामृत लेकर माथे पर चढ़ाते हैं ॥ ७१ ॥ मूर्ख जिनकी निन्दा
 करते हैं सारा संसार इनकी पूजा करता है । ब्राह्मण सबसे प्राचीन हैं जिनकी
 प्रशंसा राजागण भी सदैव किया करते हैं ॥ ७२ ॥ ॥ कुँवरि उवाच ॥ हे
 मूर्ख ब्राह्मण, तुमने (कुछ भी) जाना नहीं है और परम ज्योति को पत्थर मान
 रहे हो । तुम इन (पत्थरों) में परमपुरुष को मान रहे हो और सयानामन
 छोड़कर वचकाने हो गए हो ॥ ७३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ हे विप्र, जो लेना हो
 सो लो परन्तु मुझे झूठ मत बताओ और पत्थर में परमेश्वर है ऐसा मत कहो ।
 मूर्खों को पत्थरों में शिव बतलाकर बेशक हर्षपूर्वक लूट लेना ॥ ७४ ॥ किसी
 को पत्थर में ब्रह्म बताते हो, किसी को जल में डूबकी लगाने के लिए तीर्थों
 पर भेज देते हो । अगणित यत्न कर तुम जैसे भी हो धन चुरा लेते हो ।

ज्यो त्यो धन हर लेत जतन अनगनित कर । हो टका गाठि
महिल ए न देही जान घर ॥ ७५ ॥ धनी पुरख कह लखि दिज
दोख लगावही । होम जग्य ताते बहु भाँत करावही । धनियहि
करि निरधनी जात धन खाइकै । हो बहुरि न ताकौ बदन
दिखावत आइकै ॥ ७६ ॥ ॥ चौपई ॥ काहू लौ तीरथन
सिधावै । काहू अफल प्रयोग बतावै । काकन ज्यो मँडरात
धनू पर । ज्यो किलका मच्छरीयै दू पर ॥ ७७ ॥ ज्यो द्वै
स्वान एक हडिया पर । भूसत मनो बादि बिद्याधर । बाहर
करत बेद की चरचा । तन अरु मन धन ही की
अरचा ॥ ७८ ॥ ॥ दोहरा ॥ धन की आसा मन रहै बाहर
पूजत देव । ना हरि मिला न धन भयो ब्रिथा भई सभ
सेव ॥ ७९ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ ए बिद्या बल करहि जोग की
बात न जानै । ए सुचेत करि रहहि हमनि आचेत प्रमानै ।
कहा भयौ जौ भाँग भूलि भौदू नहि खाई । हो निजु तन ते
बिसंभार रहत सभ लखत लुकाई ॥ ८० ॥ भाँग खाइ भट
भिड़हि गजन के दाँत उपारहि । सिमटि साँग संग्रहहि सार

जिसकी गाँठ में धन हो तुम उसे घर वापस (धन-सहित) नहीं जाने
देते ॥ ७५ ॥ धनी पुरुष को देखकर विप्र उसमें कुछ न कुछ दोष ढूँढ़ लेते हैं
और उससे बहुत प्रकार के होम-यज्ञादि करवाते हैं । धनी का धन खाकर
उसे निर्धन कर देते हैं और फिर उसे आकर मुँह नहीं दिखाते ॥ ७६ ॥
॥ चौपाई ॥ किसी को तीर्थों पर भेज देता है और किसी की साधना में
दोष बताता है । यह कौवे, मक्खी, मच्छर की तरह धन पर मँडराता रहता
है ॥ ७७ ॥ अथवा जैसे दो कुत्ते एक हड्डी पर टूट पड़ते हैं या फिर वाद-
विवादी एक-दूसरे पर भौंकते हैं । बाहर तो तुम लोग वेद की चर्चा करते
हो, पर मन ही मन धन की पूजा किया करते हो ॥ ७८ ॥ ॥ दोहरा ॥ मन में
धन की आशा लगाए रहते हो और बाहर से देवता की पूजा करते हो ।
ऐसे में न तो परमात्मा मिलता है और न ही धन मिलता है । इस प्रकार
सारी सेवा निष्फल चली जाती है ॥ ७९ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ विद्या का अभिमान
करते हो पर योग की बात नहीं जानते । स्वयं को प्रबुद्ध मानते हो और हम
लोगों को मूर्ख समझते हो । क्या हुआ जो इस मूर्ख ने भूल से भाँग नहीं
खाई परन्तु सभी जानते हैं कि यह धरती पर बोझ के समान है ॥ ८० ॥
भाँग खाकर ही वीर भिड़ते हैं और हाथियों के दाँत उखाड़ लेते हैं । पीछे
सिमटकर वे भाला पकड़ते हैं और शत्रु के सम्मुख हो उसे चलाते हैं । अरे

सनमुख हवै झारहि । तैं मूजी पी भाँग कहो का काज
 सवरिहै । हो हवै कै अतक समान जाइ औधे मुख
 परिहै ॥ ८१ ॥ (मू० प्र० १२०६) ॥ भुजंग छंद ॥ सुनो मित्र
 सिच्छा इनी को सु दीजै । महाँ झूठ ते राखिकै सोहि लीजै ।
 इतो झूठ कै और नीको द्विड़ावौ । कहा चाम के दाम कै कै
 चलावौ ॥ ८२ ॥ महाँ घोर ई नरक के बीच जँहौ । कि
 चंडाल की जोनि मै औरैहौ । कि टांगे मरोगे बधे अतुशाला ।
 सनै बंधु पुत्रा कलत्रान वाला ॥ ८३ ॥ कहो मित्र आगे कहाँ
 ज्वाब देहो । जबै काल के जाल मै फाँसि जँहो । कहो कौन
 सो पाठ कहो तहाँ ही । तऊ लिंग पूजा करोगे
 उहाँही ॥ ८४ ॥ तहाँ रुद्र ऐहैं कि श्री कृष्ण ऐहैं । जहाँ
 बाँधि श्री काल तोकौ चलै हैं । किधौ आनि कै राम हवैहै
 सहाई । जहाँ पुत्र माता न ताता न भाई ॥ ८५ ॥ महाकाल
 जू को सदा सोस न्यै । पुरी चौदहूँ त्रास जाको त्रसै ।
 सदा आनि जाकी सभै जीव मानै । सभै लोक खयाता बिधाता
 पछानै ॥ ८६ ॥ नही जानि जाई कछू रूप रेखा । कहाँ बास
 ताको फिरै कौन भेखा । कहाँ नाम ताको कहाँ कै कहावै ।

कंजूस ! तुम भला भाँग पीकर क्या कर पाओगे । तुम तो मृतक के समान
 औधेमुख हो गिर पड़ोगे ॥ ८१ ॥ ॥ भुजंग छन्द ॥ हे ब्राह्मण, तुम ऐसी
 शिक्षा इन (मूर्खों को) ही देना और मुझे इस महाझूठ से बचा लेना । झूठ
 को और अच्छे तरीके से हटाओ और इच्छानुसार चमड़े का सिक्का
 चलाओ ॥ ८२ ॥ तुम यहाँ नरक में जाओगे और चांडाल की योनि में
 अवतार धारण करोगे । मृत्युशाला में टाँगकर बंधु-पुत्रादि-समेत मारे
 जाओगे ॥ ८३ ॥ हे विप्र ! कहो, आगे क्या उत्तर दोगे जब तुम काल के जाल
 में पड़ोगे ? तब बताओ वहाँ कौन सा पाठ करोगे ? क्या वहाँ भी लिंग की
 ही पूजा करोगे ? ॥ ८४ ॥ वहाँ रुद्र आएँगे कि श्रीकृष्ण आएँगे ? जहाँ तुम्हें
 काल बाँधकर ले जायगा और पुत्र, माता, पिता भाई कोई नहीं होगा वहाँ
 क्या फिर राम तुम्हारी सहायता करेंगे ? ॥ ८५ ॥ सदैव महाकाल
 (परमात्मा) के सम्मुख सिर झुकाना चाहिए जिसका भय चौदह भुवन मानते
 हैं, जिसकी आन सभी मानते हैं और जिसे सभी विधाता के रूप में पहचानते
 हैं ॥ ८६ ॥ उसकी कोई रूप-रेखा, आवास और वेश जाना नहीं जा सकता ।
 उसका क्या नाम है वह क्या कहलाता है, मैं कहाँ तक वर्णन करूँ, मुझसे

कहा कै बखानो कहे सो न आवै ॥ ८७ ॥ न ताको कोऊ तात
माता न भाई । न पुत्रा न पोत्रा न दाया न दाई । कछू
संग सेना न ताके सुहावै । कहै सत्ति सोई करै सो
बन्यावै ॥ ८८ ॥ कईऊ सवारै कईऊ खपावै । उसारे गड़े
फेरि सेटै बनावै । घनी बार लौ पंथ चारो भ्रमाना ।
महाकाल ही को गुरु को पछाना ॥ ८९ ॥ मुरीद है उसी का
वहै पीर मेरो । उसी का किया अपना जीव चेरो । तिसी
का किया बालका मैं कहावौ । उही मोहि राखा उसी को
धिआवौ ॥ ९० ॥ ॥ चौपई ॥ दिज हम महाँ काल को मानै ।
पाहन मै मन को नहि आनै । पाहन को पाहन करि जानत ।
ताँते बुरो लोग ए मानत ॥ ९१ ॥ झूठा कह झूठा हम कहैं ।
जो सभ लोग मनै कुररहैं । हम काहू की कानि न राखैं ।
सत्ति बचन मुख ऊपर भाखैं ॥ ९२ ॥ सुनु दिज तुम धन के
लब लागे । माँगत फिरत सभन के आगे । अपने मन भीतरि
न लजावहु । इक टक हवै हरि ध्यान न लावहु ॥ ९३ ॥
॥ दिज बाच ॥ तब दिज बोला तै क्या मानै । संभू को पाहन
करि मानै । जो इनको करि आन बखानै । ताको ब्रहम

कहा नहीं जाता ॥ ८७ ॥ उसका न कोई पिता, माता, भाई, न पुत्र, पोत्र
और न कोई धाय है । उसके साथ कोई सेना नहीं है, परन्तु वह जो कहना
चाहता है वही होता है ॥ ८८ ॥ कइयों को उसने सँवारा और कइयों को
नष्ट कर दिया । कइयों को बनाया और फिर मिटा दिया । कई बार वह
चारों दिशाओं में घूमा है और सदैव महाकाल गुरु के रूप में पहचाना गया
है ॥ ८९ ॥ मैं उसे ही अपना पीर मानती हूँ और उसी की मुरीद हूँ, क्योंकि
मेरी जीवात्मा उसी को बनाई हुई है । उसी की रचना मैं बालिका
कहलाती हूँ; उसी ने मेरी रक्षा की है और मैं उसी का स्मरण करती
हूँ ॥ ९० ॥ ॥ चौपाई ॥ हे विप्र, मैं महाकाल को मानती हूँ और पत्थर
में मन नहीं लगाती । पत्थर को मात्र पत्थर ही मानती हूँ इससे लोग
बुरा समझते हैं ॥ ९१ ॥ झूठे को तो हम झूठा ही कहेंगे चाहे लोग मना करें
और चिल्लाएँ । हम किसी की परवाह नहीं करेंगे और सच्ची बात मुँह पर
कहेंगे ॥ ९२ ॥ हे पंडित, तुम धन के लोभ में सबसे माँगते घूमते हो ।
अपने मन में लज्जित नहीं होते और एक टका भर भी परमात्मा का ध्यान
नहीं करते ॥ ९३ ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ तब ब्राह्मण बोला— तुम क्या जानो
जो शिव को पत्थर समझ रही हो । जो इन्हें अन्यथा मानता है परमात्मा

पातकी जानें । ६४ (सू० प्र० १२०७) जो इन कह कटु बचन उचारें ।
 ताकौ महानरक बिधि डारें । इनकी सदा कीजियै सेवा ।
 ए है परम पुरातन देवा ॥ ६५ ॥ ॥ कुअरि बाच ॥ एकै महान
 काल हम मानें । महारुद्र कह कछू न जानें । ब्रह्म बिशन
 की सेव न करही । तिन ते हम कबहूँ नहि डरही ॥ ६६ ॥
 ब्रह्म बिशन जिन पुरख उचार्यो । ताकौ अत्रि जानियै
 मार्यो । जिन नर कालपुरख को ध्यायो । ताके निकट काल
 नहि आयो ॥ ६७ ॥ जे नर कालपुरख को ध्यावै । ते नर
 काल फाँस नहि जावै । तिनके रिद्ध सिद्ध सभ घर मौ ।
 कोबिद सभ ही रहत हुनर मौ ॥ ६८ ॥ कालपुरख इक दा
 जिन कहा । ताके रिद्धि सिद्धि हवै रहा । भाँति भाँति धन
 भरे भंडारु । जिन का आवत बार न पारु ॥ ६९ ॥ जिन
 नर कालपुरख कह ध्यायो । सो नर कलि सो कबहूँ न आयो ।
 या जग मै ते अति सुख पावै । भोग करै बैरनि कह
 घावै ॥ १०० ॥ जब तोको दिज काल सतैहैं । तब तूँ को
 पुस्तक कर लैहैं । भागवत पढ़ो कि गीता कहिहो । रामहि
 पकरि कि शिव कह गहिहो ॥ १०१ ॥ जो तुम परमपुरख

उसे पापी समझता है ॥ ६४ ॥ जो इन्हें कठोर वचन कहता है उसे महा-
 नरक में डालता है । इनकी सदैव सेवा करो क्योंकि यही प्राचीनतम देव
 हैं ॥ ६५ ॥ ॥ कुँवरि उवाच ॥ हम तो केवल एक महाकाल को ही जानते
 हैं और महारुद्र आदि को कुछ नहीं जानते । ब्रह्मा-विष्णु की सेवा हम
 नहीं करेंगे और उनसे तनिक भी नहीं डरेंगे ॥ ६६ ॥ जिसने (मात्र) ब्रह्मा-
 विष्णु का स्मरण किया, समझो मौत ने उसे मार दिया । जिसने अकाल
 पुरुष का स्मरण किया, समझो मौत उसको फंदे में नहीं फँसा सकती ॥ ६७ ॥
 जो मनुष्य कालपुरुष का ध्यान करते हैं, वह मृत्यु के फाँस में नहीं फँसते ।
 ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ उनके घर में रहती हैं और वे सब कलाओं में भी निपुण
 रहते हैं ॥ ६८ ॥ जिसने एक दिन भी अकालपुरुष का स्मरण कर उच्चारण
 किया, ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ उसकी होकर रह जाती हैं । उसके घर में धनों के
 भंडार भर जाते हैं जो अनन्त होते हैं ॥ ६९ ॥ जिसने अकालपुरुष का स्मरण
 किया है वह फिर योनियों में कभी नहीं आता । वह इस संसार में अत्यन्त सुख
 को प्राप्त करता है और भोग-विलास करता हुआ शत्रुओं का नाश करता
 है ॥ १०० ॥ हे विप्र ! जब तुम्हें मौत सताएगी तो बताओ भला तुम कौन सी
 पुस्तक सामने करोगे ? तुम भागवत पढ़ोगे कि गीता बाँचोगे और बताओ तब

ठहराए । ते सभ डंड काल के घाए । काल डंड बिन बचान कोई । शिव बिरंच बिशनिद्र न सोई ॥ १०२ ॥ जैसि जनि इक दैत बखनियत । त्यों इक जूनि देवता जनियत । जैसे हिंदूआ नो तुरकाना । सभहिंन सीस काल जरवाना ॥ १०३ ॥ कबहूँ दैत देवतन मारें । कबहूँ दैतन देव सँघारें । देव दैत जिन दोऊ सँघारा । वहै पुरख प्रतिपाल हमारा ॥ १०४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ इंद्र उपिंद्र दिनिंद्रहि जौन सँघारियो । चंद्र कुबेर जलिंद्र अहिंद्रहि मारियो । पुरी चौदहूँ चक्र जवन सुनि लीजिये । हो नमशकार ताही को गुर करि कीजिये ॥ १०५ ॥ ॥ दिज बाच ॥ ॥ चौपाई ॥ बहु बिधि बिप्रहि को समझायो । पुनि मित्रहि अस भाखि सुनायो । जे पाहन की पूजा करिहैं । ताके पाप सकल शिव हरि हैं ॥ १०६ ॥ जे नर सालिग्राम कह ध्यैहै । ताके सकल पाप को छैहै । जो इह छाडि अवर कह ध्यैहै । ते नर महां (म०ग्रं० १२०८) नरक सहि जैहै ॥ १०७ ॥ जे नर कछु धन बिप्रहि दैहै । आगे मांग दस गुनो लैहै । जो बिप्रन बिनु अनत देही । ताकौ कछु सु फल नहि सेई ॥ १०८ ॥

फिर राम को पकड़ोगे कि शिव को पकड़ोगे ॥ १०१ ॥ जिनको तुमने परमपुरुष ठहराया है, वे सब काल के दंड से ग्रस्त हैं । शिव, विष्णु, इंद्र, ब्रह्मा कोई भी कालदंड से नहीं बच सका है ॥ १०२ ॥ जैसी एक योनि दैत्यों की है वैसी ही एक योनि देवता की भी है । जैसे हिन्दू और तुर्क हैं वैसे ही सबके सिर पर कालमहाबली है ॥ १०३ ॥ कभी देवों ने दैत्यों को और कभी दैत्यों ने देवताओं को मारा है । परन्तु जिसने देव-दैत्यों दोनों को मारा है, वही परमपुरुष हमारी पूजा का उद्देश्य है ॥ १०४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जिसने इंद्र, उपेन्द्र, सूर्य, चंद्र, कुबेर, वरुण, शेषनाग को मार डाला है । जिसका चौदह पुरियों में चक्र चलता सुनाई पड़ता है, उसे ही गुरु मानकर प्रणाम करना चाहिए ॥ १०५ ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने बहुत प्रकार से मिसिर को समझाया, परन्तु उसने फिर कह सुनाया । जो पत्थर की पूजा करेंगे उसके समस्त पाप शिव नष्ट कर देंगे ॥ १०६ ॥ जो व्यक्ति शालिग्राम का ध्यान करेंगे उनके समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे । जो इसे छोड़ अन्य का स्मरण करेंगे वे महानरक में जायेंगे ॥ १०७ ॥ जो व्यक्ति विप्र को धन देगा वह आगे दस गुना पा जायगा । जो विप्र के अतिरिक्त अन्य किसी को देगा उसे कुछ फल नहीं मिलेगा ॥ १०८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तभी कुँवरि ने

॥ अङ्गिल ॥ तब कुअरि प्रतिमा शिव की कर मै लई । हसि हसि करि दिज के मुख कसि कसि कै दई । सालिग्राम भे दाँति फोरि सभ ही दिए । हो छीनि छानि करि बस्त्र भिन्न के सभ लिए ॥ १०६ ॥ कहो भिन्न अब रुद्र तिहारो कह गयो । जिह सेवत थो सदा दाँति छै तिन कियो । जिह लिंगहि को जपते काल बताइयो । हो अंत काल सो तुमरे मुख नहि आइयो ॥ ११० ॥ ॥ चौपई ॥ ताको दरबु छीनि जो लियो । सो सभ दान दिजन करि दियो । कह्यो भिन्न कछु चित न करहूँ । दान दस गुनो आगे फेरहूँ ॥ १११ ॥ ॥ कवित्तु ॥ औरन को कहत लुटावो तुम खाहु धन आपु पहिती मै डारि खातन बिसारिहैं । बड़े ही प्रपंची परपंचन को लिए फिरैं दिन ही मै लोगन को लूटत बजार हैं । हाथ ते न कौड़ी देत कौड़ी कौड़ी माँग लेत पुत्री कहत तासो करै बिभचार हैं । लोभता के जए हैं कि समता के भए हैं ए समता के पुत्र कैधौ दरिद्रावतार हैं ॥ ११२ ॥ ॥ चौपई ॥ पहती बिखै बिसार न डारहि । औरन पास गाल को मारहि । जनियत किसी देस के राजा । कौड़ी के आवत नहि काजा ॥ ११३ ॥ जाँ

हाथ में शिव की मूर्ति ली और हँसते हुए उसे ब्राह्मण के मुख पर दे मारा । सालिग्राम भी फोड़ दिए और मिश्र के वस्त्र भी छीन-छान लिये ॥ १०६ ॥ कहो विप्र ! अब तुम्हारा रुद्र कहाँ गया ? जिसका तुम पूजन-सेवन करते थे उसके मैंने दाँत तोड़ दिये हैं । जिस लिंग की पूजा करते तुमने समय नष्ट किया वही अन्त में तुम्हारे मुँह में आ पड़ा है ॥ ११० ॥ ॥ चौपाई ॥ उसका जो द्रव्य छीना था वह उसने सभी अन्य ब्राह्मणों को दान कर दिया । विप्र से कहा कि तुम चिन्ता मत करो, तुम्हें आगे (परलोक में) दस गुना मिल जायगा ॥ १११ ॥ ॥ कवित्त ॥ अन्यों से कहते हैं कि खूब धन लुटाओ और स्वयं (कंजूसी के कारण) दाल में नमक भी नहीं डालते हैं । ये बड़े प्रपंची हैं और दिन में ही लोगों को सरे बाजार लूट लेते हैं । हाथ से एक कौड़ी भी नहीं देते पर कौड़ी-कौड़ी करके सबसे माँग लेते हैं । जिसे पुत्री कहते हैं, उसी से व्यभिचार करते हैं । जैसे लोभ द्वारा पैदा हुए स्वार्थ के ही होकर रहनेवाले कृपणता के पुत्र अथवा दरिद्रता के अवतार हैं ॥ ११२ ॥ ॥ चौपाई ॥ खुद तो दाल में नमक तक नहीं डालते और दूसरों के पास गाल वजाते हैं । ऐसे जाने जाते हैं मानों किसी देश के राजा हों, लेकिन हैं एक

इन मंत्र जंत सिधि होई । दर दर भीखि न मागै कोई । एकै
 मुख ते मंत्र उचारै । धन सौ सकल धाम भरि डारै ॥ ११४ ॥
 राम क्रिशन ए जिनै बखानै । शिव ब्रह्मा ए जाहि प्रमानै ।
 ते सभ ही ली काल सँघारे । काल पाइकै बहुरि
 सवारे ॥ ११५ ॥ केते रामचंद्र अरु क्रिश्ना । केते
 चतुरानन शिव बिशना । चंद्र सूरज ए कवन बिचारे । पानी
 भरत काल के द्वारे ॥ ११६ ॥ काल पाइ सभ ही ए भए ।
 कालो पाइ काल हवै गए । कालहि पाइ बहुरि अवतरिहै ।
 कालहि काल पाइ संघरिहै ॥ ११७ ॥ ॥ दोहरा ॥ त्राप
 राक्षसी के दए जे भयो पाहन जाइ । ताहि कहत
 परमेश्वर तैं मन भहि नही लजाइ ॥ ११८ ॥ ॥ दिज बाच ॥
 ॥ चौपाई ॥ तब दिज अधिक कोप हवै गयो । भरभराइ ठाढा
 उठि भयो । (सू० प्र० १२०६) अब मैं इह राजा पै जैहौ । तही
 बाँधि करि तोहि सँगैहौ ॥ ११९ ॥ ॥ कुअरि बाच ॥ तब तिन
 कुअरि दिजहि गहि लिआ । डार नदी के भीतर दिया ।
 गोता पकरि आठ सै दीना । ताँहि पवित्र भली बिधि
 कीना ॥ १२० ॥ कही कुअरि पितु पहि मैं जैहौ । तैं सुहि

कौड़ी काम के भी नहीं ॥ ११३ ॥ यदि इन मंत्रों-यंत्रों में सिद्धि हो तो भला
 कोई भी दर-दर भीख न माँगे । मुख से मंत्र का उच्चारण करे और धन
 के समस्त भंडार भर ले ॥ ११४ ॥ राम, कृष्ण, शिव, ब्रह्मा आदि जितने भी
 बताए गए हैं वे सब काल के द्वारा मारे गए हैं और फिर उसी के द्वारा सँवारे
 गए हैं ॥ ११५ ॥ कितने ही रामचंद्र, कृष्ण, ब्रह्मा, शिव और विष्णु हैं ।
 चंद्र और सूर्य बेचारे क्या हैं; ये सब तो काल के द्वार पर पानी भरते
 हैं ॥ ११६ ॥ समय-समय पर ये सब हुए हैं और समय पाकर ही ये सब
 काल-कवलित हो गए हैं । फिर कालानुसार ही पुनः पैदा होंगे और समय
 पाकर ही काल द्वारा मार डाले जायेंगे ॥ ११७ ॥ ॥ दोहरा ॥ जो एक
 राक्षसी के शाप के कारण पत्थर बन गया उसे सब परमेश्वर कहते हैं और
 मन में नहीं लजाते ॥ ११८ ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ तब ब्राह्मण
 अत्यधिक कुपित होकर भड़भड़ाकर उठ खड़ा हुआ और कहने लगा कि मैं
 अभी राजा के पास जाता हूँ और तुम्हें बँधवाकर मँगवाता हूँ ॥ ११९ ॥
 ॥ कुँवरि उवाच ॥ तब उस राजकुमारी ने ब्राह्मण को पकड़ा और नदी में
 लुढ़का दिया । उसे पकड़कर आठ सौ गोता खिलाया और भली प्रकार
 पवित्र किया ॥ १२० ॥ कुँवरि कहने लगी कि मैं पिता के पास जाऊँगी और

डारा हाथ बतैहौ । तेरे दोनो हाथ कटाऊँ । तौ राजा की सुता कहाऊँ ॥ १२१ ॥ ॥ दिज बाच ॥ इह सुनि बात मिस्र डरपयो । लागत पाइ कुअरि के भयो । सोऊ करों जु भोहि उचारो । तुम निजु जिय ते कोप निवारो ॥ १२२ ॥ ॥ कुअरि बाच ॥ तुम कहियहु मैं प्रथम अन्हायो । धन निमिति मै दरबु लुटायो । पाहन की पूजा नहि करियै । महाकाल के पाइन परियै ॥ १२३ ॥ ॥ कबियो बाच ॥ तब दिज महां काल को धयायो । सरिता सहि पाहनन बहायो । दूजे कान न किनहूँ जाना । कहा मिस्र पर हाल बिहाना ॥ १२४ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल सौ मिसरहि छला पाहन दए बहाइ । महाकाल को सिख्य करि मदरा भाँग पिवाइ ॥ १२५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ छिआसठि चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६६ ॥ ५१६४ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ सतसठि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ रूपसेन इक त्रिपति सु लच्छन । तेजवान बलवान बिचच्छन । सकलमती ताको घर दारा । जा सम

कहूंगी कि तुमने मुझ पर हाथ डाला है । तेरे दोनों हाथ कटवाऊँगी तभी राजा की पुत्री कहलाऊँगी ॥ १२१ ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ यह बात सुनकर ब्राह्मण डर गया और कुँवरि के पाँव पड़ गया । तुम जो कहोगी मैं वही करूँगा, तुम अपना गुस्सा शान्त करो ॥ १२२ ॥ ॥ कुँवरि उवाच ॥ तुम यह कहना कि मैं नहाया हूँ और मैंने स्वयं अपना द्रव्य लुटा दिया है । पत्थर की पूजा नहीं करोगे और महाकाल (परमात्मा) के चरणों में पड़ोगे ॥ १२३ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ तब विप्र ने महाकाल की आराधना की और सरिता में पत्थरों को बहा दिया । किसी को कानोंकान भी खबर नहीं हुई कि मिसिर पर क्या बीती ॥ १२४ ॥ ॥ दोहा ॥ इस छल से उसने ब्राह्मण को छला और पत्थर वहाँ दिए । उसे मदिरा-भाँग पिलाकर महाकाल का उपासक बनाया ॥ १२५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ छिआसठवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६६ ॥ ५१६४ ॥ अफजूं ॥

दो सौ सड़सठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ रूपसेन एक राजा था जो विलक्षण रूप से तेजवान और

कहूँ न राजकुमारा ॥ १ ॥ तिहि इक बसै तुरकनी नारी ।
तिह सम रूप न मै न दुलारी । तिन राजा की छवि निरखी
जब । मोहि रही तरुनी ता पर तब ॥ २ ॥ रूपसेन पहि
सखी पठाई । लगी लगन तुहि साथ जताई । इक दिन मुरि
कह्यो सेज सुहैयै । नाथ सनाथ अनाथहि कैयै ॥ ३ ॥ इमि
दूजी प्रति त्रिपति उचारा । त्रिय आगे पति जियत तिहारा ।
जौ तौ प्रथम काजियहि मारै । तिह पाछे मुहि संगि
बिहारै ॥ ४ ॥ सुनि सहचरि तिह जाइ जताई । त्रिप हम
को इमि भाख सुनाई । जौ तै प्रथम काजियहि घावै । तिह
उपरांत बहुरि मुहि पावै ॥ ५ ॥ सुनि त्रिय बात चित्त
महि राखी । और न किसी औरतहि भाखी । रैन समै
काजी जब आयो । काढि क्लिपान सोवतहि (५०५०१२१०)
घायो ॥ ६ ॥ ताको काढि मूँड करि लियो । लै राजा के
हाजर कियो । तब निमित्त काजी मैं घायो । अब मुहि
संग करो मन भायो ॥ ७ ॥ जब सिर निरखि त्रिपति तिह
लयो । मन के बिखै अधिक डरपयो । पति मारत जिह लगी
न बारा । का उपपति तिह अग्र बिचारा ॥ ८ ॥ धिक धिक

बलवान था । सकलमती उसके घर में स्त्री थी जिसके समान कोई अन्य
राजकुमारी नहीं थी ॥ १ ॥ वहाँ एक मुस्लिम स्त्री रहती थी, उस कामदेव
की पत्नी के समान रूप वाली के समान अन्य कोई रूपवान नहीं था । जब
उसने राजा की छवि देखी तो वह तरुणी उसी पर मोहित हो उठी ॥ २ ॥
उसने रूपसेन के पास सखी भेजी और अपनी लगन उससे लगी हुई उससे
बताई । एक दिन मेरे कहने के अनुसार मेरी शय्या की शोभा बढ़ाओ और
मुझे अनाथ को सनाथ कर दो ॥ ३ ॥ राजा ने दूसरी स्त्री से कहा कि
तुम्हारा तो पति जीवित है । यदि तुम पहले उसे मारो तो फिर मेरे साथ
विहार करो ॥ ४ ॥ सखी ने सुनकर यह उससे कहा कि राजा ने मुझसे
कहा है कि यदि तुम पहले काजी को मार डालो तो उसके बाद मुझे प्राप्त कर
सकती हो ॥ ५ ॥ यह बात सुनकर उस औरत ने मन में रखी और किसी
अन्य स्त्री से नहीं कहा । रात को जब काजी आया तो कृपाण निकालकर
उसे मार डाला ॥ ६ ॥ उसका सिर काट लिया और राजा के सम्मुख हाजिर
कर दिया । तुम्हारे लिए मैंने काजी को मार डाला है, अब तुम मेरे साथ
मन-भाता रमण करो ॥ ७ ॥ जब राजा ने उस सिर को देखा तो मन में
अत्यधिक डर गया । जिसे पति को मारते देर नहीं लगी उसके सामने भला

बच तिह त्रियह उचारा । भोग करब मैं तजा तिहारा । त्रिय
पापनि तैं भरता घायो । ताते मोहि अधिक डर आयो ॥ ९ ॥
अब तैं जाहि पापनी तही । निज कर नाथ सँधारा जही ।
अब तेरो सभ ही ध्रिग साजा । अब ही लगि जीवत
निरलाजा ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ हित मेरे जिन पति हना
कीना बडा कुकाज । जमधर सारि न मरत हैं अब लौ
जियत निलाज ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ सुनत बचन ए नारि
रिसाई । लजित भई घर को फिरि आई । पति को मूँड
तिसी घर डारा । आइ धाम इस भाँति पुकारा ॥ १२ ॥
प्रात भए सभ लोग बुलाए । सभहिन काजी अितक दिखाए ।
खोनत धार परत जित गई । सो सगु हबै करि खोजत
भई ॥ १३ ॥ जह जह जाइ खोन की धारा । तिह हेरत जन
चले अपारा । तह सभहूँ लै ठाढो कीना । जह निजु हाथ
डारि सिर दीना ॥ १४ ॥ मूँड कट्यो सभहिन लखि पायो ।
इह काजी याही त्रिय घायो । ताकह बाँधि लै गए तहाँ ।
जहाँगीर बैठा थो जहाँ ॥ १५ ॥ सभ ब्रितांत कहि प्रथम
सुनायो । इह काजी राजै इन घायो । हजरति बाँधि त्रियहि

बेचारा प्रेमी क्या चीज हो सकती है ॥ ८ ॥ उसने स्त्री को धिक्कारा और
कहा कि मैं तुम्हारे भोग का त्याग करता हूँ । हे पापिनी स्त्री ! तुमने पति को
मार डाला है, इससे मैं अत्यधिक भयभीत हो उठा हूँ ॥ ९ ॥ हे पापिन !
अब तुम वहीं जाओ जहाँ तुमने अपने पति को मारा है । अब तो तुम्हारा
सारा साज-शृंगार धिक्कार है । अरे निर्लज्ज ! तुम अभी तक जीवित हो ॥ १० ॥
॥ दोहा ॥ जिसने मेरे लिए अपना पति मार दिया और बड़ा कुकर्म किया,
वह निर्लज्ज कटार मारकर मरती नहीं और अब तक जीवित है ॥ ११ ॥
॥ चौपाई ॥ यह वचन सुनकर स्त्री खिसिया गई और लज्जित होकर घर
चली आई । पति का सिर उसने उसी (राजा के) घर पर छोड़ दिया और
घर आकर लोगों को पुकारने लगी ॥ १२ ॥ प्रातः उसने सब लोगों को
बुलाया और मृत काजी को दिखाया । खून की धारा जिधर जा रही थी
वह उसी रास्ते पर खोजते आगे बढ़ी ॥ १३ ॥ जिस तरफ़ रक्त की धारा
गई, जनसमूह उसी ओर चल पड़ा । उसने वहाँ सबको ला खड़ा किया
जहाँ उसने अपने हाथों से सिर फेंका था ॥ १४ ॥ कटे सिर को देखकर
सबने समझा कि राजा ने ही काजी को मारा है । उसे सभी बाँधकर वहाँ
ले गए जहाँ जहाँगीर का दरबार था ॥ १५ ॥ उसे सब वृत्तांत कह सुनाया कि

कह दीना । भेद कछू जिय माँझ न चीना ॥ १६ ॥ मारन
 कौ लै ताहि सिधाई । आँखिन ही महि त्रिपहि जताई । मुर
 जिय राखु कहै सौ करिहौ । लै घट सीस पानि कौ
 भरिहौ ॥ १७ ॥ तब सुंदर इह भाँति बिचारो । अब माना
 त्रिप कहा हमारो । ताकौ छाडि हाथ ते दीना । खून बखशयो
 मैं इह कीना ॥ १८ ॥ प्रथमहि छाडि मित्र कह दीना । पुन
 इह भाँति उचारन कीना । अब मैं सैर सका को जैहौ । मरी
 त गई जियत फिरि ऐहौ ॥ १९ ॥ लोगन सैर भवारो दियो ।
 आपु पैड तिह ग्रहि कौ लियो । ताहि निरखि राजा डरपाना ।
 काम (सू०ग्रं० १२११) भोग तिह संग कमाना ॥ २० ॥ लोग
 कहैं मक्का कह गई । हुआँ की सुधि किनहूँ नहि लई । कहा
 बाल इन चरित दिखायो । किह छल सौ काजी कह
 घायो ॥ २१ ॥ इह छल साथ काजियहि मारा । बहुरि मित्र
 कह चरित दिखाया । इन की अगम अगाधि कहानी । दानव
 देव न किनहूँ जानी ॥ २२ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ सतसठि चरित्र
 समापतम सतु शुभम सतु ॥ २६७ ॥ ५२१६ ॥ अफजूं ॥

इस राजा ने ही काजी को मार डाला है । उसने राजा को बाँधकर स्त्री को दे
 दिया और भेद को कुछ भी नहीं समझ सका ॥ १६ ॥ उसे मारने के लिए ले
 गई और आँखों में ही जताया कि मेरा मन रखकर जो मैं चाहती हूँ करो, मैं
 सिर पर घड़ा रखकर तुम्हारा पानी भरूँगी ॥ १७ ॥ तब सुन्दरी ने विचार
 किया कि राजा अब मेरा कहना मान जायगा । उसे हाथ से छोड़ दिया कि
 मैंने खून माफ़ कर दिया है ॥ १८ ॥ पहले तो मित्र को छोड़ दिया और फिर
 कहा कि अब मैं मक्का की यात्रा पर जाऊँगी और यदि जीवित रह गई तो
 फिर वापस आऊँगी ॥ १९ ॥ लोगों को यात्रा के भ्रम में डाल दिया और
 स्वयं घर को चली आई । राजा उसे देखकर डर गया और उसने उसके
 साथ रतिक्रीड़ा की ॥ २० ॥ लोग समझे कि मक्का गई है और वहाँ की
 सुधि कसी ने नहीं ली । इस स्त्री ने क्या प्रपंच दिखाया कि छल से काजी
 को मार डाला ॥ २१ ॥ छल के साथ काजी को मारा और फिर मित्र को
 चरित दिखाया । इन (स्त्रियों) की कहानी अगम्य एवं अगाध है, जिसे
 दानव और देवता भी नहीं जान सके ॥ २२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ सड़सठवें

चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६७ ॥ ५२१६ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ अठसठ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ चंपावती नगर दिसि दच्छिन । चंपतराइ
त्रिपति सुभ लच्छन । चंपावती धाम तिह दारा । जा
सम कहूँ न राजदुलारा ॥ १ ॥ चंपकला दुहिता ताके ग्रहि ।
रूपमान दुतिमान अधिक बह । जब तिह अंग मैनता वई ।
लरिकापन की सुधि बुधि गई ॥ २ ॥ हुतो बाग इक तहाँ
अपारा । जिह सर नंदन कहा बिचारा । तहाँ गई बहु
कुअरि मुदित मन । लगे सुंदरी संग करि अनगन ॥ ३ ॥
तह निरखा इक शाह सरूपा । सूरति सोरति भाँझ अनूपा ।
रोझी कुअरि अटक गी तबही । सुंदर सुघर निहार्यो
जबही ॥ ४ ॥ सभ सुधि भूलि सदन की गई । आठ टूक
तिह ऊपर भई । ग्रहि ऐबे की बुद्धि न आई । तही उधरि
तिह संग सिधई ॥ ५ ॥ सहचरि भेद चरित इक जाना ।
इह बिधि साथ चरित प्रमाना । रोइ रोइ धनि ऊच पुकारै ।
दे दे मूँड धरनि सौ मारै ॥ ६ ॥ चंपकला राजा की जाई ।
राछस गही आनि दुखदाई । ताँहि छुरैयै जान न दीजै ।
बेगहि बध दानव को कीजै ॥ ७ ॥ ए सुनि बैन लोग सभ

दो सौ अठसठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ दक्षिण दिशा में चंपावती नामक एक नगर था जहाँ का
शुभ लक्षणों वाला राजा चम्पतराय था । उसकी स्त्री चम्पावती थी जिसके
समान अन्य कोई राजकुमारी नहीं थी ॥ १ ॥ उसकी पुत्री चम्पाकला थी
जो अत्यधिक रूपवती और दुतिमान थी । जब उसके अंगों में काम का
संचार हुआ तो उसे बचपन की सुधि विस्मृत हो गई ॥ २ ॥ वहाँ एक बाग
था जिसके सामने नन्दन वन भी बेचारा क्या था । वहाँ अनेकों सुन्दरियों
को साथ लेकर वह कुँवरि प्रसन्नतापूर्वक गई ॥ ३ ॥ वहाँ उसने एक शाह का
स्वरूप देखा जो सूरत और सीरत में अद्वितीय था । उस सुन्दर सुघड़ को
देखकर कुँवरि उस पर मोहित हो उठी ॥ ४ ॥ उसे घर की सारी याद भूल
गई और वह आठों टुकड़े होकर उस पर न्योछावर हो गई । उसे घर आना
ही भूल गया और वहाँ से उसके साथ चली गई ॥ ५ ॥ सखी ने इस भेद को
समझकर एक प्रपंच प्रस्तुत किया । वह ऊँची-ऊँची ध्वनि में रोने लगी और
सिर धरती पर पटकने लगी ॥ ६ ॥ राजा की पुत्री चम्पाकला को राक्षस
ने पकड़ लिया है । उससे उसे छुड़ाओ; जाने मत दो और शीघ्र दानव का

धाए । काढे खड़ग बाग मै आए । दैत वैत तह कछु न
 निहारा । चक्रित भे जिय माँझ बिचारा ॥ ८ ॥ हरि दानव
 तिह गयो अकासा । राजकुअरि ते भए निरासा । रोइ पीट
 दुहिता कह हारे । राजा भए अधिक दुखियारे ॥ ९ ॥
 केतिक दिनन सकल धन खायो । देस बिदेस फिरत दुख पायो ।
 राजकुअरि मिलहि कौ त्यागी । आधी राति देस कौ
 भागी ॥ १० ॥ लिखि पत्नी पित पास पठाई । दानव ते
 मै देव छराई । पठै (सू०ग्रं० १२१२) मनुछ अब बोलि पठावहु ।
 मोहि मिलाइ अधिक सुख पावहु ॥ ११ ॥ पढ़ि पत्नी पित
 कंठ लगाई । अधिक पालकी तहाँ पठाई । चंपकला कह
 ग्रहि लै आयो । सूरख भेद अभेद न पायो ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ अठसठ चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६८ ॥ ५२२८ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ उनहतरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ गूआ बंदर इक रहत त्रिपाला । जाको
 डंड भरत भूआला । अप्रमान ताके घर मै धन । चंद्र सूर कै

वध करो ॥ ७ ॥ यह सुनकर सभी दौड़े और खड़ग निकालकर बाग में आ
 गए । वहाँ दैत्य आदि उन्होंने कुछ नहीं देखा और वे सब चकित रह गए ॥ ८ ॥
 वे सोचने लगे कि कुँवरि का हरणकर दानव आकाश में चला गया है । इस
 प्रकार वे निराश हो गए । रो-पीटकर वे पुत्री गँवा गए और राजा अत्यधिक
 दुखी हो उठा ॥ ९ ॥ कितने ही दिनों तक धन खाते-खाते समाप्त कर दिया
 और देश-विदेश में घूमते-घूमते अनेकों दुख पाए । अब राजकुँवरि मित्र को
 त्यागकर आधी रात के समय पुनः अपने देश की ओर भागी ॥ १० ॥ उसने
 पिता के पास पत्र लिखा कि ईश्वर ने मुझे दानव से छुड़ा लिया है । अब
 कोई व्यक्ति भेजकर मुझे बुलवा लो और मुझसे मिलकर सुखी होओ ॥ ११ ॥
 पिता ने पत्र पढ़कर गले से लगाया और पालकियाँ वहाँ भेजी । चम्पाकला
 को घर ले आया और मूर्ख कुछ भी भेद-अभेद न समझ सका ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ अड़सठवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६८ ॥ ५२२८ ॥ अफजूं ॥

दो सौ उनहतरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ गोवा बंदरगाह में एक राजा रहता था जिसका सारे

इंद्र दुतिय जनु ॥ १ ॥ मित्रमती ताकी अरधंगा । पुन्य
मान दूसर जनु गंगा । मीनकेत राजा तह राजै । जा को
निरखि मीनधुज लाजै ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ स्त्री झखकेत
मती दुहिता तिह जानियै । अप्रमान अबला की प्रभा
प्रमानिये । जा सम सुंदरि कहूँ न जग भहि जानियत । हो
रूपमान उहि की सी वही बखानियत ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ प्रात
भाएँ त्रिष सभा लगाई । ऊच नीच सभ लिया बुलाई । तह
इक पुत्र शाहु को आयो । जिह सम दिति आदिति न
जायो ॥ ४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजकुअरि रही थकित सु ताँहि
निहारि करि । चक्रित चित भहि रही चरित बिचारि करि ।
सखी पठी तिह धाम मिलन की आस कै । हो चाह रही जस
मेघ पपिहरा प्यास कै ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ अति प्रसन्न चित
महि भई मन भावन कह पाइ । सहचरि को जु दरिद्र थो
तत छिन दिया मिटाइ ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ जबही तरुनि
तरुन कौ पायो । भाँति भाँति तिन गरे लगायो । रैन
सगरि रति करत बिहानी । चारि पहर पल चार
पछानी ॥ ७ ॥ पिछली पहर रात्रि जब रही । राजकुअरि
ऐसे तिह कही । हम तुम आव निकसि दोऊ जावैं । और

राजागण कर भरा करते थे । उसके घर में अपरिमित धन था और वह दूसरा
चन्द्रमा, सूर्य अथवा इंद्र था ॥ १ ॥ उसकी पत्नी मित्रमती थी जो मानो
दूसरी पुण्यवती गंगा थी । मीनकेतु राजा था जिसे देखकर कामदेव भी
लज्जित होता था ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ झखकेतुमती उसकी पुत्री थी जिसकी
प्रभा अपरिमित थी । उसके समान जगत् में कोई अन्य सुन्दर नहीं था और
अपने स्वरूप वाली केवल वही थी ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ प्रातः राजा ने
दरबार लगाया जिसमें ऊँच-नीच सबको बुलाया । वहाँ शाह का पुत्र आया
जिसके समान देव-दानवों में कोई नहीं था ॥ ४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजकुमारी
उसे देखते-देखते थक गई और मन में यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गई ।
सभी को उसने मिलने की आशा के साथ उसके घर पर भेजा । मानो
पपीहा मेघ की प्यास के लिए प्यासा हो ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ उस मनभावन
को पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और उसने तत्काल सखी की सारी दरिद्रता
दूर कर दी ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब तरुणी ने तरुण को प्राप्त किया तो
विभिन्न प्रकार से उसे गले लगाया । सारी रात रतिक्रीड़ा में गुज़र गई और
चार प्रहरों को उसने चार पलों की तरह समझा ॥ ७ ॥ जब रात्रि का

देस दोऊ कहूँ सुहावै ॥ ८ ॥ तुहि मुहि कह धन की थुर
नाही । तुमरी चहत कुसल मन माही । यौ कहि दुहूँ अधिक
धनु लीना । औरै देस पयाना कीना ॥ ९ ॥ चतुरि भेद
सहचरि इक पाई । तिह ग्रहि को दई आगि लगाई ।
रनियहि रानी जरी सुनाई । रोवत आपु त्रिपहि पहि
धाई ॥ १० ॥ रानी कहा (म० प्र० १२१३) त्रिपहि जरि मरी ।
तुम ताकी कछु सुद्धि न करी । अब तिनके चलि असति
उठावौ । मानुख दै गंगा पहुचावौ ॥ ११ ॥ त्रिप सुनि
बचन उताइल धायो । जह ग्रहि जरत हुतो तह आयो ।
हहा करत रानीयहि निकारहु । जरति अगनि ते याहि
उबारहु ॥ १२ ॥ जानी जरी अगनि महि रानी । उधलि
गई मन बिखै न आनी । अधिक शोक मन माहि बढायो ।
पजा सहित कछु भेद न पायो ॥ १३ ॥ धनि धनि इह रानी
को धरमा । जिन असि कीना दुहकरि करमा । लज्जा निमित
प्रान दै डारा । जरि करि मरी न रौरन पारा ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मन्त्री भूप संवादे दोइ सौ उनहतरि चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ २६६ ॥ ५२४२ ॥ अफजूं ॥

पिछला समय रह गया तब राजकुमारी ने कहा कि आओ, हम-तुम यहाँ से
निकल जायँ और किसी अन्य देश में जा बसैं ॥ ८ ॥ तुम्हें और मुझे धन
की कमी नहीं है, मैं केवल तुम्हारी कुशलता मन से चाहती हूँ । यह कहकर
दोनों ने अत्यधिक धन लिया तथा अन्य देश की ओर प्रस्थान किया ॥ ९ ॥
एक चतुर सखी ने रहस्य को जानकर उसके घर को आग लगा दी । रानियों
ने रानी को जला हुआ मान लिया और रोती हुई राजा के पास दौड़ीं ॥ १० ॥
रानियों ने कहा कि वह तो जल मरी लेकिन तुम्हें पता ही नहीं लगा । अब
उसकी अस्थियों को उठाओ और किसी व्यक्ति को देकर गंगा पहुँचाओ ॥ ११ ॥
राजा यह सुनकर शीघ्र चला और जहाँ घर जल रहा था वहाँ आया । वह
चिल्लाने लगा कि कोई रानी को निकालो और आग से बचाओ ॥ १२ ॥
रानी अग्नि में जल गई सबने मान लिया, पर किसी ने न सोचा कि वह भाग
गई है । उसे अत्यधिक शोक हुआ और प्रजा-समेत कोई भी कुछ न जान
सका ॥ १३ ॥ धन्य-धन्य रानी का धर्म है, जिसने ऐसा दुष्कर्म किया । वह
लज्जा के कारण जल मर गई पर चीखी-चिल्लाई नहीं ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ उनहत्तरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६६ ॥ ५२४२ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ सतर चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ मोरंग दिसि इक रहत त्रिपाला । जाके दिपत तेज की ज्वाला । पूरब दे तिह नारि भणिज्जै । को अबला पटतर तिह दिज्जै ॥ १ ॥ पूरब सैन त्रिपति को नामा । जिन जीते अनगन संग्रामा । जाके चड़त अमित दल संग । है गै रथ पैदल चतुरंगा ॥ २ ॥ तह इक आयो शाह अपारा । जाके संग इक पुत्र पयारा । जाको रूप कहै नही आवै । ऊख लिखत लेखन हवै जावै ॥ ३ ॥ पूरब दे तिह ऊपर अटकी । भूलि गई सभ ही सुधि घटिकी । लर्यो कुअर सो नेह अपारा । जिह बिनु रुचै न भोजन बारा ॥ ४ ॥ एक दिवस तिह बोलि पठायो । काम केल रुचि मानि कमायो । दुहुँअन ऐसो बधा सनेहा । जिनको भाखि न आवत नेहा ॥ ५ ॥ शाहु पुत्र तब शाहु बिसार्यो । ताके सदा रहित जिय धार्यो । पिता संग कछु कलह बढायो । चड़ि घोरा परदेस सिधायो ॥ ६ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ त्रिय निमित्त निजु पितु सौ कलह बढाइकै । चड़ि बाजी पर चला

दो सौ सतरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ मोरंग देश में एक राजा रहता था जिसके तेज की ज्वाला देदीप्यमान थी । पूर्वदेवी उसकी स्त्री थी जिसकी किसी स्त्री के साथ तुलना नहीं की जा सकती थी ॥ १ ॥ राजा का नाम पूर्वसेन था जिसने अनेकों संग्राम जीते थे । जिसके साथ हाथी, घोड़ों, पैदलों और रथों वाला अगणित संन्य समूह था ॥ २ ॥ वहाँ एक शाह आया जिसके साथ एक उसका प्यारा पुत्र था । उसके रूप-सौंदर्य को कहा नहीं जा सकता था । गन्ने जितनी बड़ी लेखनी भी लिखते-लिखते घिस जाती थी ॥ ३ ॥ पूर्वदेवी उसी में उलझ गई और उसे अपनी सुधि भूल गई । उसका कुँवर के साथ स्नेह हो गया और उसके बिना उसे भोजन रुचिकर नहीं लगता था ॥ ४ ॥ एक दिन उसने उसे बुलाया और रुचिपूर्वक काम-क्रीड़ा की । दोनों में ऐसा प्रेम हो गया कि कहा नहीं जा सकता ॥ ५ ॥ शाह के पुत्र ने भी शाह को भुला दिया और सदैव उसी (स्त्री) का स्मरण किया करता था । पिता के साथ उसका कुछ झगड़ा हो गया और घोड़े पर सवार हो परदेश चला गया ॥ ६ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ स्त्री के लिए अपने पिता से झगड़ाकर वह घोड़े पर सवार हो अन्य देश को ओर

देस कह धाइकै । पितु जान्यो सुत मेरो देस अपने गयो ।
हौ अरध रात्रि ने ग्रहि रानी आवत भयो ॥७॥ ॥ चौपई ॥ तह
ते शाहु जबै उठि गयो । तब रानी अस चरित बनयो ।
ताहि निपुंसक करि ठहरायो । राजा सौ इस भाँति
जतायो ॥ ८ ॥ मैं इक सोल निपुंसक आना । जाको रूप
न जात बखाना । (म०ग्रं० १२१४) ताते अपने काज करैहौ ।
मन भावत के भोग कमैहौ ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ भली भली
राजा कही भेद न सका बिचार । पुरख निपुंसक भाखि त्रिय
राखा धाम सुधारि ॥ १० ॥ रम्यो करत रानी भए तवन
पुरख दिन रेनि । त्रिपति निपुंसक तिह लखै कछू न
भाखै बैन ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ सत्तर चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ २७० ॥ ५२५३ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ इकहत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ तेलंगा जह देस अपारा । समरसैन तह को
सरदारा । ताहि बिलासदेइ घर रानी । जाकी जात न

चल पड़ा । पिता ने समझा कि पुत्र अपने ही देश में है पर वह आधी रात
के समय रानी के महल में आ गया ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ वहाँ से जब राजा
उठकर चला गया तब रानी ने यह चरित्र बनाया । उसे नपुंसक घोषित
कर दिया और राजा से कहा ॥ ८ ॥ मैंने एक नपुंसक मोल लिया है जिसके
रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता । उससे अपना काम करवाऊँगी और
सुखपूर्वक रहूँगी ॥ ९ ॥ ॥ दोहा । राजा ने कहा ठीक है, और भेद को न
जान सका । पुरुष को नपुंसक बतलाकर घर में ही अच्छी तरह रखा ॥ १० ॥
रानी दिन-रात उससे रमण किया करती थी । राजा उसे नपुंसक के तौर
पर देखता था और कुछ नहीं कहता था ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ सत्तरवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ २७० ॥ ५२५३ ॥ अफजूं ॥

दो सौ इकहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ तैलंग देश का सरदार समरसेन था । विलासदेवी उसकी
रानी थी जिसकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥ वहाँ एक

प्रभा बखानी । १ ॥ तिह इक छैल पुरी संन्यासी । तिह पुर मद्र देस कौ बासी । रानी निरखि लगनि तिह लागी । जाते नींद भूख सभ भागी ॥ २ ॥ रानी की ताहूँ सौ लागी । छुटै कहा अनोखी जागी । इक दिन तिह सौ भोग कमायो । भोग किया तिम द्रिड़ त्रिय भायो ॥ ३ ॥ बहु दिन भोग तवन संगि किया । ऐसुपदेश तवन कह दिया । जौ मैं कहौ मित्र सो कीजहु । मेरो कह्यो मानि करि लीजहु ॥ ४ ॥ कहूँ जु म्रितक पर्यो लख पैयौ । ताको काढि लिंग ले ऐयौ । ताहि कुपीन बिखें द्रिड़ रखियहु । भेद दूसरे नरहि न भखियहु ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब मैं दैहो तुमैं उरांभे लाइ कै । तब तुम हम पर उठियहु अधिक रिसाइ कै । काढि कुपीन ते हम पर लिंग चलाइयो । हो ऊँच नीच राजा कह चरित दिखाइयो ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ सोई काम मित्र तिह कीना । जिह बिधि सौ तवनै सिख दीना । रानी प्रात पतिहि दिखराई । संन्यासी पहि सखी पठाई ॥ ७ ॥ संन्यासी जुत सखी गहाई । राजा देखत निकट बुलाई । छैल गिरहि बहु भाँति दुखायो । तै चेरी संग भोग कमायो ॥ ८ ॥ यौ

नवयुवक संन्यासी था जो "पुरी" सम्प्रदाय का था और मद्र देश का रहनेवाला था । उसे देखकर रानी की लगन उससे लग गई और उसकी नींद-भूख सब भाग गई ॥ २ ॥ रानी की उससे लगी लगन भला अब कैसे छूट सकती थी । एक दिन उससे भोग किया जिससे वह स्त्री को और भी अच्छा लगने लगा ॥ ३ ॥ उसके साथ बहुत दिन तक भोग-विलास किया और उस संन्यासी को यह समझाया कि हे मित्र ! जो मैं कहूँ तुम वही करो और मेरा कहना मान लो ॥ ४ ॥ कहीं यदि कोई मृत व्यक्ति मिल जाय तो उसका लिंग काटकर ले आओ । उसे लँगोट में रख लेना और इस रहस्य को किसी से न कहना ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब मैं तुम्हें आकर बुरा-भला कहूँ तब तुम मुझ पर क्रुद्ध हो उठना और लिंग को अपने कौपीन में से निकालकर हमें दे मारना तथा राजा को ऊँचा-नीचा प्रपंच दिखाना ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ जो उसने सिखाया वही सब उस मित्र ने किया । रानी ने प्रातः उसे पति को दिखाया और उधर एक सखी को संन्यासी के पास भेज दिया ॥ ७ ॥ संन्यासी को सखी के साथ देखकर राजा ने उसे पास बुलाया । उस युवक को यह कहकर दुखी किया कि तुमने दासी के साथ रतिक्रीड़ा की है ॥ ८ ॥ वह बचन सुनकर वह क्रुद्ध हो उठा और उसने छुरा निकाल लिया । उसने

सुनि बचन तेज मन तयो । कर सहि काढि छुरा कह लयो ।
 कट्यो लिंग बस्त्र ते निकारा । राज तरुनि के मुख पर
 मारा ॥ ९ ॥ हाइ हाइ रानी कहि भागी । ताके उठि
 चरनन संग लागी । हमि रिखि तुमरो चरित न जाना ।
 बिनु समझे तुहि झूठ बखाना ॥ १० ॥ तब राजै इह भाँति
 बिचारी । इंद्री काटि संन्यासी डारी । ध्रिग ध्रिग कुपि
 रानियहि उचारा । तैं (५०५०१२१५) त्रिय किया दोख यह
 भागा ॥ ११ ॥ अब इह राखु आपने धामा । सेवा करहु
 सकल मिलि बामा । जब लगि जियै जान नहि दीजै । सदा
 जती की पूजा कीजै ॥ १२ ॥ रानी बचन त्रिपति को माना ।
 बहु बिधि साथ ताहि ग्रहि आना । भोग करै बहु हरख
 बढाई । मूरख बात न राजै पाई ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह
 बिधि चरित बनाइकै ताहि भजा रुचि मान । जीवत लगि
 राखा सदन सका न त्रिपति पछान ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सो इकहत्तरि चरित्र
 समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ २७१ ॥ ५२६७ ॥ अफजूं ॥

कटा हुआ लिंग कपड़े में से निकाला और रानी के मुख पर दे मारा ॥ ९ ॥
 रानी हाय-हाय कहकर भागी और उसके चरणों से जा लगी । हे ऋषि ! मैंने
 तुम्हारा चरित नहीं समझा और बिना सोचे ही तुम्हें झूठ कह दिया ॥ १० ॥
 तब राजा ने सोचा कि संन्यासी ने तो अपनी इन्द्री काट दी है । उसने रानी
 को धिक्कारा और कहा कि हे स्त्री ! तूने यह महान अनर्थ कर दिया है ॥ ११ ॥
 अब इसे अपने घर पर रखो और सब स्त्रियों के साथ मिलकर इसकी सेवा
 करो । जब तक यह जीवित रहे इसे जानै मत दो और सदैव इसकी पूजा
 करो ॥ १२ ॥ रानी राजा का वचन मानकर उसे अपने घर ले आई । वह
 हर्षपूर्वक उसके साथ रमण करने लगी पर मूर्ख राजा यह सब नहीं समझ
 सका ॥ १३ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार प्रपंच करके उससे रुचिपूर्वक रमण
 किया । उसे जीवन पर्यन्त घर में रखा और राजा कुछ भी न जान
 सका ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सो इकहत्तरवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २७१ ॥ ५२६७ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ बहत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ एक सुगंधसेन त्रिप नामा । गंधागिरि परबत जिह धामा । सुगंधमती ताकी चंचला । हीन करी ससि की जिन कला ॥ १ ॥ बीरकरन इक शाहु बिख्याता । जिह सम दुतिय न रचा बिधाता । धन करि सकल भरे जिह धामा । रीझि रहत दुति लखि सभ बामा ॥ २ ॥ सौदा नमित तहाँ वह आयो । जाकह निरखि रूप सिर न्यायो । जा सम सुंदर सुना न सूरा । देग तेग साचो भरपूरा ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ रानी ताको रूप लखि मन महि रही लुभाइ । मिलिबे के जतनन करै मिल्यो न तासो जाइ ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ रानी बहु उपचार बनाए । बहुत मनुख तिह ठौर पठाए । बहु करि जतन एक दिन आना । कामभोग तिह संग कमाना ॥ ५ ॥ बहुत दरब ताकह तिन दीना । ताके मोहि चित्त कह लीना । इह बिधि सौ तिह भेव द्रिड़ायो । ब्राह्मन को तिह भेस धरायो ॥ ६ ॥ आप त्रिपति संग कीया गिआना । किय उपदेश पतिहि बिधि

दो सौ बहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सुगंधसेन नामक एक राजा था जो गंधगिरि पर्वत पर रहता था । उसकी रानी सुगंधमती थी जिसके सामने चन्द्र-किरणें भी हीन थीं ॥ १ ॥ बीरकर्ण एक विख्यात शाह था जिसे विधाता ने अद्वितीय बनाया था । उसके धाम धन से भरे थे और स्त्रियाँ उस पर मोहित होकर रह जाती थीं ॥ २ ॥ वह सौदा खरीदने वहाँ आया जिसे देखकर उस रानी ने सिर झुका लिया । उसके समान शूरवीर कोई सुनने में नहीं आता था । वह देग और तेग अर्थात् दान देने और तलवार चलाने में सच्चा गुणों से भरा-पूरा था ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ रानी उसका रूप देखकर लुब्ध हो उठी । उससे मिलने का यत्न करने लगी पर मिला नहीं जा रहा था ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ रानी ने अनेकों उपाय किये और बहुत से मनुष्य वहाँ भेजे । बहुत यत्नों के बाद एक दिन वह लाया गया । उसके साथ उसने रतिक्रीडा की ॥ ५ ॥ उसे बहुत सा द्रव्य दिया और उसके चित्त को मोहित कर लिया । उसे रानी ने रहस्य समझाया और उसे ब्राह्मण का वेश धारण करवाया ॥ ६ ॥ स्वयं राजा के

नाना । जैसो पुरख दान जग द्यावै । तैसो ही आगे बर
पावै ॥ ७ ॥ मै तुहि बार दान बहु कीना । तातें पति तोसो
त्रिप लीना । तुम हौ पुनि बार बहु कीनी । तब मो सी
सुंदरि तिय लीनी ॥ ८ ॥ अब जौ पुन्य बहुरि मुहि करिहो ।
मो सी त्रिय आगे पुनि बरिहो । धरम करत कछु ढील न
कीजै । दिज कौ दै जग मौ जसु लीजै ॥ ९ ॥ इह सुनि यौ
त्रिप के मन आई । पुन्य करन इसती ठहराई । जो रानी के
मन सहि भायो । वहै जानि दिज बोलि पठायो ॥ १० ॥
ताकह नारि दान करि दीनी । मूढ़ (म०ग्रं० १२१६) भेद की
क्रिया न चीनी । सो लै जात तरुनि कह भयो । मूँडि मूँडि
मूरख को गयो ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ बहतरि चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ २७२ ॥ ५२७८ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ तिहतर चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुकृतसेन इक सुना नरेसा । जिह को
डंड भरत सभ देसा । सुकृतमंजरी तिह की दारा । जा

साथ गोष्ठी करने लगी और पति को विभिन्न प्रकार से उपदेश देने लगी ।
पुरुष संसार में जैसा दान करता है, वह वैसा ही वरदान पाता है ॥ ७ ॥ मैंने
तुम्हें अनेकों बार दान दिया है, इसी से तुम्हारे जैसा राजा पति मुझे मिला है ।
तुमने भी बहुत सा पुण्य किया है तो मेरी जैसी सुन्दर रानी प्राप्त की है ॥ ८ ॥
अब यदि तुम मेरे जैसी स्त्री दान करो तो आगे फिर मेरे जैसी स्त्री का वरण
करोगे । धर्म करने में कुछ ढील मत करो और दान देकर जगत में यश
का अर्जन करो ॥ ९ ॥ यह सुनकर राजा ने स्त्री को दान करने का विचार
बना लिया । रानी को जो दान रुचिकर था वही राजा ने ब्राह्मण को बुलाकर
दिया ॥ १० ॥ उसे स्त्री दान में दे दी और मूर्ख ने मन में कुछ नहीं जाना ।
वह युवती को लेकर चला गया और इस प्रकार मूर्ख राजा को ठग गया ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ बहतरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८२ ॥ ५२७८ ॥ अफजू ॥

दो सौ तिहतरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सुकृतिसेन एक राजा था जिसको सारा देश कर देता था ।
सुकृतमंजरी उसकी पत्नी थी जिसके समान न तो कोई देवता और न देवकुमारी

सम देव न देवकुमारा ॥ १ ॥ अतिभुतसेन शाहु सुत इक
 तह । जा सम दुतिय न उपज्यो महि मह । जगमगात तिह
 रूप अपारा । जिह सम इंद्र न चंद्र कुमारा ॥ २ ॥ रानी
 अटक तवन पर गई । तिह ग्रहि जाति आपि चलि भई ।
 तासों प्रीति कपट तजि लागी । छूटो कहा अनोखी
 जागी ॥ ३ ॥ बहु बिधि तिन संग भोग कमाना । केल
 करत बहु काल बिहाना । सुंदर और तहाँ इक आयो । वहै
 पुरख रानी कहलायो ॥ ४ ॥ वहै पुरख रानी कह भाइसि ।
 कामकेल ग्रहि बोलि कमाइसि । प्रथम मित्त तिह ठाँ तब
 आयो । रमत निरखि रानी कुररायो ॥ ५ ॥ अधिक कोप
 करि खड़गु निकार्यो । रानी राखि जार कह मार्यो । आपु
 भाज पुनि तह ते गयो । तेज भए त्रिय को तन तयो ॥ ६ ॥
 लिखि पतिया असि ताँहि पठाई । तोहि मित्त मुहि तजा न
 जाई । छिमा करहु इह भूलि हमारी । अब दासी मैं भई
 तिहारी ॥ ७ ॥ जौ आगे फिरि ऐस निहरियहु । सोह सहित
 मारि तिह डरियहु । भला किया तुम ताँहि सँघारा । आगे
 राह मित्त मुहि डारा ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ खतिया बाचत मूढ़

थी ॥ १ ॥ अद्भुतसेन नामक एक शाह का पुत्र वहाँ था जिसके समान
 धरती पर अन्य कोई पैदा नहीं हुआ था । उसका रूप-सौंदर्य जगमगाता था
 और उसके समान इंद्र, चन्द्र आदि कोई भी नहीं था ॥ २ ॥ रानी उसके
 सौंदर्य में अटक गई और स्वयं चलकर उसके घर पर चली गई । उससे
 निष्कपट प्रीति उसने लगा दी जो अब छूट नहीं सकती थी ॥ ३ ॥ उसने
 विभिन्न प्रकार से उसके साथ रतिक्रीडा की और इस प्रकार बहुत सा समय
 बीत गया । एक और सुन्दर युवक वहाँ आ गया, रानी ने उसे भी कहला
 भेजा ॥ ४ ॥ रानी को वह पुरुष भी भा गया । उसे भी घर बुलाकर उसने
 कामक्रीडा की । उसी समय पहला मित्र भी वहाँ आ गया जो रानी को
 रमण करते देखकर चिल्ला पड़ा ॥ ५ ॥ अत्यधिक कुपित होकर उसने खड़ग
 निकाला और रानी को बचाकर यार को मार डाला । स्वयं वहाँ से भाग
 गया और रानी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी ॥ ६ ॥ उसने उसे पत्र लिखा कि तुम
 मेरे प्रिय होकर मुझे छोड़ो मत । मेरी इस भूल को क्षमा कर दो, अब मैं
 तुम्हारी दासी हूँ ॥ ७ ॥ यदि फिर तुम मुझे ऐसे देखो तो मुझे उसके समेत
 मार डालना । अच्छा किया जो तुमने उसे मार डाला और मित्र के रूप में मुझे
 सही रास्ता दिखाया है ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ पत्र पढ़कर वह मूर्ख मन में फूल

मति फूल गयो मन माहि । बहुरि तहाँ आवत भयो भेद पछान्यो
नाहि ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ प्रथम मित्ति तिह ठाँ जब आयो ।
दुतिय मित्ति सौ बाँधि जरायो । जिन मेरे मितवा कह मार्यो ।
वहै चाहियत पकरि सँघार्यो ॥ १० ॥ अस त्रिय प्रथम भजत
भी जाको । इह चरित्त पुनि मार्यो ताको । इन अबलन
की रीति अपारा । जिन को आवत वार न
पारा ॥ ११ ॥ १ ॥ (मू०पं० १२१७)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ तिहतर
चरित्र समापतम सतु शुभम सतु ॥ २७३ ॥ ५२८६ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ चौहतर चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ इक अंबसट के देस त्रिपाला । पदुमिनि
दे जाके ग्रहि बाला । अप्रमान तिह प्रभा भनिज्जै । जिह
को को पतटर त्रिय दिज्जै ॥ १ ॥ ताके एक दास घर माही ।
जिह सम स्याम बरन कहूँ नाही । नामाफिक संख्या तिह
रहै । मानुख जोनि कवन तिह कहै ॥ २ ॥ चेरी एक हुती
तासौ रति । जाके हुती न कछु घट सहि गति । नामाफिक

गया और बिना रहस्य को पहचाने वह वहाँ पर आ गया ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब
पहला मित्र वहाँ आ गया तो उसे दूसरे (मृत) मित्र के साथ बाँधकर जला
दिया । उसने यह सोचा कि जिसने मेरे मित्र को मारा है उसी चाहनेवाले को
मार डालना ही ठीक है ॥ १० ॥ इस प्रकार स्त्री पहले जिसके साथ रमण
करती थी उसे प्रपंच से मार डाला । इन स्त्रियों की लीला अपार है, जिसका
कोई आदि-अंत नहीं है ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ तिहतरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २७३ ॥ ५२८६ ॥ अफजूं ॥

दो सौ चौहतरवाँ चरित्र-कथन ॥

॥ चौपाई ॥ अम्बस्ट देश का एक राजा था जिसके घर में पद्मिनी
स्त्री थी । उसकी सुन्दरता अपरिमित थी, जिसकी उपमा किसी के साथ
नहीं दी जा सकती ॥ १ ॥ उसके घर में एक दास था जिसके समान अन्य
कोई काला नहीं था । वह बिलकुल न होने की तरह रहता था और कोई
उसे मनुष्य-योनि में नहीं मानता था ॥ २ ॥ एक बिलकुल मूर्ख दासी उसमें

तिन नारि बुलायो । काम भोग मन खोलि मचायो ॥ ३ ॥
 तब लगि आइ त्रिपति ग्यो तहाँ । चेरी रमत दासि संग जहाँ ।
 लपटाइ दासी तब गई । चटपट जात सकल सुधि भई ॥ ४ ॥
 जतन अवर कछु हाथ न आयो । भारि दास उलटो
 लटकायो । हरे हरे तर आगि जराई । काढत है जन
 करि मिमियाई ॥ ५ ॥ त्रिपति अतक जब दास निहारा ।
 अदभुत ह्वै इह भाँति उचारा । क्यों इह हनि तैं
 दिय लटकाई । किह कारन तर आगि जराई ॥ ६ ॥
 ॥ चेरी बाच ॥ मिल्यो बंद मुहि एक त्रिपारा । क्रिया दई
 तिन मोहि सुधारा । मैं इह करी चकितसा ताते । लीजै
 सकल बिथा सुनि याते ॥ ७ ॥ खई रोग इह कह्यो राज
 महि । ताते भारि दास तूँ इह कहि । करि मिमियाई त्रिपहि
 खवावै । तब तिह दोख दूरि ह्वै जावै ॥ ८ ॥ तिह निमित
 याको मै घायो । मिमियाई को बिवत बनायो । जौ तुम
 भचछन करहु त कीजै । ना तर छाडि आगु ही दीजै ॥ ९ ॥
 जब इह भाँति त्रिपति सुनि पायो । ताँहि बंदनी करि ठहरायो ।
 मन महि कह्यो भली बिधि कीनी । घर महि नारि रोगि हा
 दीनी ॥ १० ॥ धंनि धंनि कहि ताहि बखाना । तेरो गुन

अनुरक्त थी । उस नामाफिक को स्त्री ने बुलाया और मन खोलकर उससे कामक्रीड़ा की ॥ ३ ॥ तब तक राजा वहाँ आ गया जहाँ दासी उस दास के साथ रमण कर रही थी । तब दासी लिपट गई और अपनी समस्त सुधि-स्मृति भूल गई ॥ ४ ॥ अब उसे अन्य कुछ न सूझा और उसने दास को मारकर उलटा लटका दिया । नीचे उसने धीमी-धीमी आग जला दी मानो उसकी चर्बी निकाल रही हो ॥ ५ ॥ जब राजा ने दास को मृत देखा तो बोल उठा कि तुमने क्यों इसे मारकर लटका दिया है और नीचे आग जलाई है ॥ ६ ॥ ॥ दासी उवाच ॥ मुझे हे राजन्, एक वैद्य मिला है जिसने मुझे एक प्रयोग बतलाया है । इससे मैं यह चिकित्सा-प्रक्रिया कर रही हूँ । आप पूरा सुनें ॥ ७ ॥ राजा को क्षय रोग है, इसलिए तुम इस दास को मारो । राजा को इसकी चर्बी खिलाओ जिससे उसका दुख दूर हो जाए ॥ ८ ॥ इसीलिए मैंने इसे मारा है और चर्बी निकालने का प्रयोग किया है । यदि तुमको खाना हो तो मैं आगे कल्लू अन्यथा यहीं पर छोड़ दूँ ॥ ९ ॥ जब राजा ने यह सुना तो उसे वैद्य-स्त्री समझा । मन में कहा कि परमात्मा ने भला किया है जो घर में ही रोगों का नाश करनेवाली स्त्री दे दी है ॥ १० ॥

हम आजु पछाना । पच्छम दिसि हम सुनी बनैयत । हमरे
देस न ढूँडी पैयत ॥ ११ ॥ तुहि जानत मुहि कहत बताई ।
मिमियाई इह देस बनाई । कहा भयो इक दास सँघारा ।
हमरो रोग बडो तैं टारा ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ चौहतर चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २७४ ॥ ५३-१ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ पञ्चत्तरहि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बंदर बस तह बासी जहाँ । हबशीराइ
नराधिप तहाँ । हबशमती ताकै घर रानी । जनु पुर खोजि
चौदहूँ आनी ॥ १ ॥ (मू०पं०१२१८) हाशिम खान पठान इक
तहाँ । जा सम सुंदर कोउ न कहाँ । रानी ताहि निरखि
उरझानी । बिरह बिबल हवै गई दिवानी ॥ २ ॥ रानी
जतन अनेक बनाए । छलबल सौ ग्रहि मित्र बुलाए । काम-
भोग तिह संग कमाना । आसन चुंबन किए प्रमाना ॥ ३ ॥
॥ दोहरा ॥ अनिक भाँति भजि मित्र कह गरे रही लपटाइ ।

उसने धन्य-धन्य कहते उसे कहा कि तुम्हारा गुण तो मैंने आज ही जाना है ।
हमने तो पश्चिम देशों में ऐसी प्रयोग-क्रिया सुनी थी, अपने देश में तो ढूँढ़ने
पर भी नहीं मिलती ॥ ११ ॥ तुम तो बता रही हो कि अपने देश में भी
बनाई जा सकती है । क्या हुआ यदि एक दास को मार डाला गया, मेरा
तो तुमने बहुत बड़ा रोग समाप्त कर दिया ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ चौहत्तरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २७४ ॥ ५३०१ ॥ अफजूं ॥

दो सौ पचहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बस नामक बंदरगाह का राजा हबशीराय था । हबशमती
उसकी रानी थी जो मानों चौदह लोकों में सुन्दर खोजकर लायी गई थी ॥ १ ॥
वहाँ हाशिम खाँ नामक एक पठान था जिसके समान अन्य कोई सुन्दर नहीं
था । रानी उसे देखकर उलझ गई और विरह में विकल हो उठी और विरह-
व्याकुल हो गई ॥ २ ॥ रानी ने अनेकों प्रयत्न किये और छल-बल से मित्र
को घर में बुलाया । उसके साथ कामभोग किया और आसन-चुंबनादि
किये ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ मित्र से अनेकों प्रकार से अनुरक्त हो रमण किया ।

जानु निरधनी पाइ धन रह्यो हीय सौ लाइ ॥ ४ ॥
 ॥ चौपई ॥ तब राजा ताके ग्रहि आयो । निरखि सेज पर
 ताहि रिसायो । असि गहि धयो हाथ गहि नारी । इह बिधि
 सौ हसि बात उचारी ॥ ५ ॥ तैं राजा इह भेद न जाना ।
 बिनु बूझे असि कोप प्रमाना । प्रथमहि बात जानियै याकी ।
 बहुरौ सुधि लीजै कछु ताकी ॥ ६ ॥ इह है मित्र मछिंदर
 राजा । आयो न्याइ लहन तब काजा । तपस्या बल आयो
 इह ठौरा । है सभ तपसिन का सिरमौरा ॥ ७ ॥ या संग
 मित्राचार करीजै । भुगति जुगति बहु बिधि तिह दीजै ।
 भली भली तुहि क्रिया सिखैहै । राज जोग बैठो ग्रहि
 पैहै ॥ ८ ॥ त्रिप ए बचन सुनत पग परा । मित्राचार तवन
 संग करा । ताहि मछिंद्रनाथ पछान्यो । मूरख भेव अभेव
 न जान्यो ॥ ९ ॥ बहु बिधि तन पूजा तिह करै । बारंबार
 पाइ पमु परै । ताहि सही रिखिराज पछाना । सत्ति बचन
 त्रिय कौ करि जाना ॥ १० ॥ ताहि मछिंदर करि ठहरायो ।
 त्रिय कह सौंपि ताहि उठि आयो । वह तासौ निति भोग
 कमावै । मूरख बात न राजा पावै ॥ ११ ॥ इह छल साथ

ऐसा लग रहा था मानों कोई निर्धन धन पाकर उसे गले से लगा ले रहा हो ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब राजा उसके यहाँ आ पहुँचा और उसे शय्या पर देखकर क्रुद्ध हो उठा । वह तलवार लेकर टूट पड़ा पर स्त्री ने हाथ पकड़कर हँसते हुए कहा ॥ ५ ॥ राजन् ! तुमने भेद नहीं जाना और बिना बूझे ही कुपित हो गए हो । पहले कुछ इसके बारे में जान लो, फिर उसका ध्यान करना ॥ ६ ॥ यह तो मत्स्येन्द्रनाथ है जो तुम्हारा न्याय देखने आया है । यह तो तपस्या के बल पर यहाँ आया है और तपस्वी शिरोमणि है ॥ ७ ॥ इसके साथ मित्राचार दिखाओ और इसे दानादि विभिन्न प्रकार से दो । यह तुम्हें अच्छी क्रियाएँ सिखाएगा और तुम घर बैठे ही राजयोग पा जाओगे ॥ ८ ॥ राजा यह सुनकर उसके चरणों में आ पड़ा और उसने उसके साथ मित्रवत् व्यवहार किया । उसे मत्स्येन्द्रनाथ मान लिया और मूर्ख ने रहस्य को नहीं पहचाना ॥ ९ ॥ उसकी भली प्रकार पूजा करने लगा और बार-बार वह पशु उसके पाँव पड़ने लगा । सखियों ने भी उस स्त्री का वचन सत्य मानकर उसे योगीराज के रूप में जाना ॥ १० ॥ उसे मछेन्द्र माना और स्त्री उसे सौंपकर राजा चला आया । वह रोज उससे भोग-विलास करने लगा, परन्तु मूर्ख राजा इस तथ्य को नहीं समझ पाता था ॥ ११ ॥ इस छल करने के

जार भजि गयो । अति बिसमै राजा कौ भयो । तब रानी
राजा ढिग आई । जोरि हाथ अस बिनै सुनाई ॥ १२ ॥
जिन त्रिप राज आपना त्यागा । जोग करन के रस अनुरागा ।
सो तेरी परवाहि न राखै । इमि रानी राजा तन भाखै ॥ १३ ॥
सत्ति सत्ति तब राज बखाना । ताको दरस सफल करि माना ।
भेद अभेद जड़ कछू न पायो । त्रिय संग चौगुन नेह
बढायो ॥ १४ ॥ १ ॥ (मू०प्र०१२१६)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ पञ्चत्तरहि चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २७५ ॥ ५३१५ ॥ अफजूं ॥

अथ दो सौ छिहतरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ शंक्रावती नगर इक राजत । जनु शंकर के
लोक बिराजत । शंकरसेन तहा को राजा । जा सम दुतिय
न बिधना साजा ॥ १ ॥ शंकर दे ताकी बर नारी । जनुक
आपु जगदीस सवारी । रुद्रमती दुहिता तिहँ सोहै । सुर नर
नाग असुर मन मोहै ॥ २ ॥ तहाँ छबील दास थो छत्री ।

बाद वह यार भाग गया तब राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ । तब रानी
राजा के पास आई और हाथ जोड़कर उससे प्रार्थना की ॥ १२ ॥ जिस
राजा ने अपना राज्य तक त्याग दिया और योग में लिप्त हो गया वह तेरी
परवाह नहीं करेगा । रानी ने राजा से यह कहा ॥ १३ ॥ राजा ने उसे
“सत्य-सत्य” कहा और उसके दर्शनमात्र को अपनी (जन्म की) सफलता
माना । उस मूर्ख ने भेद-अभेद कुछ नहीं जाना और स्त्री के साथ चार गुना
स्नेह करने लगा ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ पचहत्तरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २७५ ॥ ५३१५ ॥ अफजूं ॥

दो सौ छियत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ शंकरावती एक नगर था जो मानो शंकर का ही लोक
था । शंकरसेन वहाँ का राजा था जिसे विधाता ने अद्वितीय बनाया था ॥ १ ॥
शंकरदेवी उसकी रानी थी जिसे मानों परमात्मा ने स्वयं बनाया था ।
उसकी पुत्री रुद्रमती थी जो सुर-असुर, नर-नाग सबका मन मोहित करती
थी ॥ २ ॥ वहाँ छबीलदास क्षत्रिय रहता था जो अत्यन्त रूपवान था ।

रूपवान छबिमान अति अती । ताँ पर अटक कुअरि की भई ।
 आठ टूक वा पर ह्वै गई ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ लगन निगोड़ी
 लागि गई छुटत छुटाई नाहि । सत्त भई जनु मद पीआ मोहि
 रही मन माहि ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ एक सहचरी तहाँ पठाई ।
 चित जु हुती कहि ताहि सुनाई । सो चलि सखी सजन पहि
 गई । बहु बिधि ताहि प्रबोधत भई ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तब
 छबीलो छैल तहाँ चलि आइयो । रम्यो तरुन बहु भाँति कुअरि
 मुख पाइयो । लपटि लपटि तर जाइ पियरवहि भुजन भरि ।
 हो द्विड़ आसन दँ रह्यो न इत उत जाति टरि ॥ ६ ॥
 ॥ दोहरा ॥ एक सुघर दूजे तरुनि त्रितीए सुंदर भीत । बस्यो
 रहत निस दिन सदा पल पल चित जिमि चीति ॥ ७ ॥
 ॥ चौपई ॥ इक दिन मिति इमि बचन बखाना । तब पित के
 हौ त्रास तसाना । जौ तुहि भजत त्रिपति मुहि पावै । पकरि
 काल के धाम पठावै ॥ ८ ॥ ॥ बिहसि कुअरि अस ताहि बखाना ।
 तै इसत्रिन के चरित न जाना । पुरख भेख तुहि सेज बुलाऊ ।
 तौ मैं तुमरी यार कहाऊँ ॥ ९ ॥ ॥ रोमनासनी ताहि लगाई ।
 सकल समस तिह दूरि कराई । कर महि ताँहि तँबूरा दीया ।

राजकुमारी उस पर अटक गई और खंड-खंड हो उस पर न्योछावर हो गई ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ लगन निगोड़ी ऐसी लगी थी जो छूटते नहीं छूटती थी । वह शराबी की तरह मदमस्त हो गई और मन में मोहित हो उठी ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने एक दासी वहाँ भेजी और मन की बात कहलवायी । उस सखी ने सजन के पास आकर उसे विभिन्न प्रकार से संबोधित किया ॥ ५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तब वह छबीला युवक वहाँ चला आया; उससे विविध प्रकार से रमण किया जिससे कुँवरि को सुख प्राप्त हुआ । प्रिय को भुजाओं में भरकर वह लिपट-लिपट रह जाती थी पर वह भी दृढ़तापूर्वक आसन जमाए हुए था और इधर-उधर नहीं हिल रहा था ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ एक तो सुघड़, दूसरा तरुण और तीसरा वह सुन्दर मित्र था । वह प्रत्येक पल उसके चित्त में बस रहा था ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ एक दिन मित्र ने कहा कि तुम्हारे पिता के डर से मैं भयभीत हूँ । तुम्हारे साथ रमण करते को यदि राजा मुझे पा जाय तो वह पकड़कर मुझे यमलोक पहुँचा देगा ॥ ८ ॥ तब राजकुमारी ने हँसकर उससे कहा कि तुम स्त्रियों के चरित्रों को नहीं जानते । पुरुष-वेष में ही मैं तुम्हें शय्या पर बुलाऊँगी और तब तुम्हारी सच्ची प्रेमिका कहलाऊँगी ॥ ९ ॥ ॥ केशनाशक दवा उसे लगाई और उसकी मूँछें साफ़ करा दीं । उसके हाथ में

गाइन भेस सजन को कीया ॥ १० ॥ पिति बैठे तिह बोलि पठायो । भले भले गीतान गवायो । सुनि धुनि नाद रीझि त्रिप रहियो । भली भली गाइन इह कहियो ॥ ११ ॥ शंकर दे इह भाँति उचारी । सुन गाइन तैं बात हमारी । पुरख भेस धरि तुम निति ऐयहु । इह ठाँ गीति मधुरि धुनि गैयहु ॥ १२ ॥ यौ सुनि पुरख भेस तिन धरा । प्राची दिसा चाँद जन चरा । सकल लोग इसती तिह जानै । त्रिया चरित न मूढ़ पछानै ॥ १३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ मित्र पुरख कौ भेस धरे नित आवई । आन कुअरि सौ काम (सू० प्र० १२२०) कलोल कमावई । कोऊ न ताकह रोकत गाइन जानिकै । हो त्रिय चरित कह मूढ़ न सकहि पछानिकै ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल सौ तासौ सदा निसु दिन करत बिहार । दिन देखत सभ को छलै कोऊ न सकै बिचार ॥ १५ ॥ ॥ चौपई ॥ शंकरदेव न ताहि पछानै । दुहिता की गाइन तिह मानै । अति स्यानप ते कैफन खावै । महाँ मूड़ निति मूँड मुँडावै ॥ १६ ॥ कहा भयो जो चतुर कहाइसि । भूलि भाँग भौदू न चढ़ाइसि ।

तानपूरा दिया और सजन को गायक का वेश धारण करवाया ॥ १० ॥ पिता की उपस्थिति में उसे बुलवा लिया और सुन्दर-सुन्दर गीत गायन करवाये । नाद सुनकर राजा प्रसन्न हो उठा और उसके गायन की सराहना करने लगा ॥ ११ ॥ शंकरदेव यह कहने लगा कि हे गायक ! तुम मेरी बात सुनो । तुम पुरुष-वेश धारण कर रोज़ यहाँ आओ और मधुर ध्वनि में मुझे गीत सुनाओ ॥ १२ ॥ यह सुनकर उसने पुरुष-वेश धारण कर लिया । अब वह ऐसा लगा मानों पूर्व दिशा में चाँद उग आया हो ! सभी लोग उसे स्त्री समझते थे और त्रिया-प्रपंच को नहीं समझ पा रहे थे ॥ १३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ वह मित्र पुरुष का वेश धारण कर रोज़ आता था और आकर राजकुमारी के साथ रमण किया करता था । कोई उसे गायक समझकर नहीं रोकता था और स्त्री के प्रपंच को नहीं पहचानता था ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ इस छल के माध्यम से वह रात-दिन उससे विहार किया करता था और दिन-दहाड़े वह सबको छल जाता था । कोई विचार भी नहीं सकता था (कि कुछ गलत है) ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ शंकरदेव उसे पहचान नहीं सका और पुत्री की गायिका ही उसे मानता था । अत्यन्त चतुरता से वह नित्य नशीले पदार्थ खाता था और वह मूर्ख नित्य अपना सिर मुँडवाता था अर्थात् रोज़ ठगा जाता था ॥ १६ ॥ क्या हुआ यदि वह चतुर कहलाता था और भूलकर भी मूर्ख भाँग नहीं खाता

अमली भली खता जुन खावै । मूँड मूँड सोफिन को
जावै ॥ १७ ॥ शंकरसेन त्रिपहि अस छला । कह किय
चरित शंकरा कला । तिह गाइन की दुहिता गनियो । मूरख
भेद अभेद न जनियो ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ छिहत्तरि चरित्र
समापतम् सतु सुभम् सतु ॥ २७६ ॥ ५३३३ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ सतहत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ अडिल्ल ॥ शहिर मुरादाबाद मुगल की चंचला ।
हीन करी जिह रूप चंद्रमा की कला । रूपमती ताको सम
सोई जानियै । हो तिह समान तिहु लोक न और
प्रमानियै ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ दूसरि एक तिसी की नारी ।
तिह सम होत न ताहि पियारी । तिन इह जानि रोस जिय
ठानो । और पुरख संग कीया यरानो ॥ २ ॥
॥ दोहरा ॥ जैसे वाँ लिय की हुती सवतिन की अनहारि ।
तैसे ई तिन खोजि नर तिह संग कीया प्यार ॥ ३ ॥
॥ चौपई ॥ यि इक दिन तिह धाम बुलाइसि । काम केल

था । वह मद्यपान करनेवाला भला है जो धोखा न खाए और सूफियों (न पीनेवालों) को ठगकर खाता है ॥ १७ ॥ शंकरसेन राजा को इसी भाँति छला और इस प्रकार शंकरकला (रुद्रमती) ने प्रपंच किया । उसे पुत्री की गायिका जाना गया और कोई भी मूर्ख भेद-अभेद न जान सका ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ छिहत्तरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २७६ ॥ ५३३३ ॥ अफजूं ॥

दो सौ सतहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ अडिल्ल ॥ मुरादाबाद शहर में एक मुगल की स्त्री थी जिसने चन्द्रमा की कलाओं को भी हीन बना दिया था । उसके समान रूपवान वही थी और उसके समान तीनों लोकों में अन्य कोई नहीं थी ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसी की एक अन्य स्त्री थी पर वह उसे इसके समान प्यारी नहीं थी । दूसरी ने यह जानकर मन में क्रोध किया तथा अन्य पुरुष के साथ दोस्ती लगा ली ॥ २ ॥
॥ दोहा ॥ जैसी उस स्त्री की अपनी शकल सूरत थी वैसे ही पुरुष को खोजकर उसने उसके साथ प्रेम कर लिया ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ उस स्त्री ने उसे एक

तिह संग कसाइसि । सवतिह फासि डारि गर मार्यो । जाइ
मुगल तन ऐस उचार्यो ॥ ४ ॥ अद्भुत बात नाथ इक भई ।
तुमरी नार पुरखु हवै गई । ऐसी बात सुनी नहि हेरी । जो
गति भई नारि की तेरी ॥ ५ ॥ सुनि ए बचन चक्रित जड़
भयो । उठि तिह आपु बिलोकन गयो । ताके लिंग छोरि जौ
लहा । कह्यो भयो जो मुहि लिख कहा ॥ ६ ॥ अति चिन्तातुर
चित्त सहि भयो । बूडि शोक सागर सहि गयो । ऐ इलाह
तै इह कस कोना । इसत्नी कौ सानस कर दीना ॥ ७ ॥ यह
मोको थी अधिक पियारी । अब इह दैव पुरख करि डारी ।
दूसर नारि इसै (म० ग्रं० १२२१) दै डारूँ । भेद न दूसर पास
उचारूँ ॥ ८ ॥ निसच बात इहै ठहरई । पहिली नारि तिसै लै
दई । भेद अभेद जड़ कछू न पायो । इह छल अपनो मूँड
मूँडायो ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ पुरख भई निजु नारि लहि ताहि
दई निजु नारि । भेद अभेद की बात कौ सका न मूढ़
बिचारि ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ इस्त्री पुरखु भई ठहिराई ।
इस्त्री ताकह दई बनाई । दुलिय न पुरखहि भेद जतायो ।
इह छल अपनो मूँड मूँडायो ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ सतहत्तरि चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २७७ ॥ ५३४४ ॥ अफजूँ ॥

दिन घर बुलाया और उसके साथ काम-क्रीड़ा की । सौतन को गले में फाँसी
लगाकर मार डाला और जाकर मुगल को कह सुनाया ॥ ४ ॥ हे नाथ ! एक
बात अद्भुत हुई है कि तुम्हारी स्त्री पुरुष बन गई है । जो गति तुम्हारी
स्त्री की हुई है ऐसी बात तो कहीं देखने-सुनने में नहीं आई है ॥ ५ ॥ वह
मूर्ख यह सुनकर चकित हो उठा और उठकर स्वयं उसे देखने गया । जब
उसका लिंग खुलवाकर देखा तो जो स्त्री ने कहा था वही पाया ॥ ६ ॥
वह चित्त में अत्यन्त चिन्तातुर हो गया और शोक-सागर में डूब गया । हे
अल्लाह ! यह तूने क्या किया जो स्त्री को पुरुष बना दिया ॥ ७ ॥ यह मुझे
अत्यधिक प्यारी थी और इसे अब दैव ने पुरुष बना दिया है । दूसरी स्त्री
इसे ही दे दूँ और यह भेद किसी से भी न कहूँ ॥ ८ ॥ उसने यही निश्चय
किया और पहली स्त्री उसको दे दी । भेद-अभेद वह मूर्ख कुछ नहीं समझ
सका और इस छल से आप ठगा गया ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ अपनी स्त्री को
पुरुष बना देखकर उसे अपनी स्त्री दे दी और वह मूर्ख कुछ भी भेद-अभेद न
विचार सका ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ स्त्री को पुरुष बना मान लिया और

बना-सँवार कर स्त्री उसे दे दी । अन्य किसी पुरुष को यह भेद न जताया और इस प्रकार ठगा गया ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ सतहत्तरवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २७७ ॥ ५३४४ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ अठहत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ शहर जहानाबाद बसत जह । शाहिजहाँ जू राज करत तह । दुहिता राइ रौशना ताके । और नारि सम रूप न वाके ॥ १ ॥ शाहिजहाँ जब ही मरि गए । औरंग शाह पातिशाह भए । सैफदीन संग याको प्यारा । पीर अपन करि ताँहि बिचारा ॥ २ ॥ ताके संग रौशना राई । बिबिध बिधन तन प्रीतुपजाई । काम भोग तिह संग कमायो । ताहि पीर अपनो ठहिरायो ॥ ३ ॥ औरंगशाह भेद नहि जानै । वह मुरीद भई तिह मानै । पीय समुझि तिह भोग कमावै । पीर भाखि सभहँन सुनावै ॥ ४ ॥ इक दिन पीर गयो अपने घर । ताहि बिना तिह परत न छिनकर । रोगनि तन अपने ठहराई । वा पहि बैठि साँढनी आई ॥ ५ ॥ ताके रहत बहुत दिन भई । बहुरौ शहिर दिल्ली महि गई । भई अरोगनि भाखि अनाई ।

दो सौ अठहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ जहानाबाद शहर जहाँ था वहाँ शाहजहाँ राज करता था । उसकी पुत्री रौशनराय (रौशनआरा) थी जिसके समान अन्य किसी का रूप-सौंदर्य नहीं था ॥ १ ॥ शाहजहाँ जब मर गया और औरंगजेब बादशाह बना तो उसे सैफदीन के साथ प्यार हो गया और वह उसे अपना पीर मानता था ॥ २ ॥ रौशनराय ने भी उसके साथ विविध प्रकार से प्यार किया । उसके साथ रतिक्रीड़ा की और उसे अपना पीर माना ॥ ३ ॥ औरंगजेब इस रहस्य को नहीं समझ रहा था और मान रहा था कि वह भी मुरीद हो गई है । वह प्रिय समझकर तो रतिक्रिया करती थी पर सबके समक्ष उसे पीर कहती थी ॥ ४ ॥ एक दिन पीर अपने घर गया तो इसे पल भर भी उसके बिना चैन नहीं पड़ता था । वह शरीर के रोग का बहाना बना साँड़नी पर सवार हो उसके पास चली आई ॥ ५ ॥ उसके पास बहुत दिन रहकर वह पुनः दिल्ली चली गई । आकर कहा कि मैं अब स्वस्थ हो

बात भेद की किनूँ न पाई ॥ ६ ॥ भ्रात भए इह भाँति
उचारी । रोग बडा प्रभु हरी हमारी । बैदन अधिक इनाम
दिलायो । भेद अभेद न औरंग पायो ॥ ७ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ अठहतरि चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २७८ ॥ ५३५७ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ उनासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ प्रेमावती नगर इक राजत । प्रेमसैन जह
त्रिपति बिराजत । प्रेममंजरी तिह ग्रहि दारा । जा सम दिति
न अदिति कुमारा ॥ १ ॥ तहा शाहु के पूत सुघर अति ।
जा सम राजकुअरि न (स०ग्रं० १२२२) कहूँ कत । जाकी प्रभा
कनन नहि आवै । हेरै पलक न जोरी जावै ॥ २ ॥ जब
रानी तिह की दुति लही । ऐसी भाँति चित्त महि कही । कै
इह के संग भोग कमाऊँ । ना तर हवै जोगनि बन जाऊँ ॥ ३ ॥
एक सहचरी तहाँ पठाई । ताहि प्रबोधि तहाँ ले आई । बनि
ठनि बैठ चंचला जहाँ । लै आई सहचरि तिह जहाँ ॥ ४ ॥

गई हूँ, पर भेद की बात कोई नहीं समझ सका ॥ ६ ॥ भाई के पास आकर
उसने कहा कि प्रभु ने मेरा बहुत बड़ा रोग काट दिया है । वैद्य को अत्यधिक
इनाम दिलाया । औरगंजेब भी इस रहस्य को न जान सका ॥ ७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ अठहतरवें चरित्र
की सुभ सत् समाप्ति ॥ २७८ ॥ ५३५७ ॥ अफजूं ॥

दो सौ उनासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ प्रेमावती नामक एक नगर था जहाँ प्रेमसेन राजा था ।
प्रेममंजरी उसकी स्त्री थी जिसके समान सुर-असुर-स्त्रियाँ भी नहीं था ॥ १ ॥
वहाँ के शाह के सुन्दर पुत्र के समान अन्य कोई भी राजकुमार नहीं
था । उसकी प्रभा कही नहीं जा सकती । उसे देखकर तो पलक भी
नहीं झपकी जा सकती थी ॥ २ ॥ जब रानी ने उसकी छवि देखी तो
चित्त में यह सोचा कि या तो इसके साथ रतिक्रीड़ा कहूँगी अन्यथा
योगिनी बन जाऊँगी ॥ ३ ॥ उसने एक दासी को भेजा जो उसे बुलाकर
वहाँ ले आई । दासी जहाँ उसे ले आई वहाँ स्त्रियाँ सज-धजकर बैठी
थीं ॥ ४ ॥ उस कामातुर राजकुँवरि ने लिपटकर बहुत प्रकार से उस मित्र का

आतुर कुअर ताहि लपटाई । बहु बिधि भज्यो भित्त सुखदाई ।
 चतुर पहर रजनी रति मानी । करत काम की केल
 कहानी ॥ ५ ॥ अटक गई अबला तिह संगी । रंगित भई
 उही के रंगी । ताकह ऐस प्रबोध द्विड़ायो । आपु त्रिपहि
 चलि सीस झुकायो ॥ ६ ॥ जो मुहि भयो सुपन सुनुराई ।
 सोवत रुद्र जगाइ पठाई । आठ बरसि हम सौ तुम सोवौ ।
 रैन दिवस सोरे ग्रहि खोवौ ॥ ७ ॥ पटी बाँधि द्विगन दुहूँ
 सोवौ । आठ बरसि लगि जगहि न जोवौ । उपजो पूत धाम
 बिन सासा । सकल खलन को ह्वैहै नासा ॥ ८ ॥ किलबिख
 एक न तव तन रहै । मुहि शिव सुपन बिखै इमि कहै । अप्रमान
 धन भरे भंडारा । सकल काज सभ होइ तिहारा ॥ ९ ॥
 राजै सति इही द्विड़ कीनी । पट्टी बाँधि दुहूँ द्विग लीनी ।
 आठ बरस रानी संग सोयो । चित्त जु हुतो सकल दुख
 खोयो ॥ १० ॥ आँखें बाँधि तहाँ त्रिप सोवै । आवत जात
 न काहू जोवै । उत रानी कह जो नर भावै । ताँहि तुरतु
 ग्रहि बोलि पठावै ॥ ११ ॥ बहु बिधि करै केल संग ताके ।
 जो नर रुचै चित्त त्रिय वाके । बात करत पति सो इत जावै ।

उपभोग किया । काम-क्रीड़ा का यह हिसाब था कि चारों प्रहर रात तक यह
 रतिक्रिया चलती रही ॥ ५ ॥ वह स्त्री उसी में अटक गई और उसी के रंग में
 रंगी गई । उससे बातचीत कर स्वयं राजा के सामने आ सिर झुकाया ॥ ६ ॥
 राजन् ! जो मुझे सपना आया है, सुनो । मुझे तो शिव ने जगाकर भेजा है ।
 तुम आठ वर्ष तक मेरे घर में सोओ और मेरे साथ रहो ॥ ७ ॥ दोनों आँखों
 में पट्टी बाँधकर सोओ और आठ वर्ष तक जागो मत । बिना साँस वाला एक
 पुत्र जन्म लेगा और समस्त शत्रुओं का नाश होगा ॥ ८ ॥ तुम्हारे तन पर
 कोई कष्ट नहीं रहेगा, यह मुझे शिव ने स्वप्न में बताया है । तुम्हारे भंडार
 अपरिमित धन से भर जायेंगे और तुम्हारे सारे काम हो जायेंगे ॥ ९ ॥
 राजा ने इसे सत्य मान लिया और दोनों आँखों पर पट्टी बाँध ली ।
 आठ वर्षों पर्यन्त वह रानी के साथ सोया और चित्त का सारा दुःख नष्ट
 कर दिया ॥ १० ॥ राजा आँखें बाँधकर वहाँ सोता था और आते-जाते
 किसी को नहीं देखता था । उधर रानी जिस भी पुरुष को चाहती थी
 उसे तुरन्त घर में बुला लेती थी ॥ ११ ॥ स्त्री को जो व्यक्ति अच्छा
 लगता था उसके साथ विभिन्न प्रकार से केल-क्रीड़ा करती थी । पति से
 बात करती जाती थी और उधर यार के साथ कामक्रीड़ा करती जाती

उतै जार तर परी ठुकावै ॥ १२ ॥ जो त्रिय चहै वहै तह आवै । खैंचि तरुनि तरु ऐँचि बजावै । बहु नर जासौ भोग कमाही । एको पूत होइ ग्रिह नाही ॥ १३ ॥ कितक दिनन महि सुत इक जायो । त्रिप को साच हियो महि आयो । आगै जो त्रिय कहै सु मानै । भेद अभेद न मूढ़ पछानै ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मन्त्री भूप संवादे दोइ सौ उनासी चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ २७६ ॥ ५३६५ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ असी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बिशनचंद इक त्रिपति फिरंगा । जाके दिपत अधिक छबि अंगा । स्त्री जुगराजमंजरी रानी । सुंदरि भवन चतुर (मू०पं० १२२३) दस जानी ॥ १ ॥ सुकृति नाथ जोगी तहाँ । स्त्री जुगराजमती त्रिय जहाँ । जोगी त्रिशष्टि जबै लिह आयो । सदन चंचले बोलि पठायो ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ काम भोग तासो कियो ह्लिदै हरख उपजाइ । पकरि भुजन आसन तरै जात भई लपटाइ ॥ ३ ॥

थी ॥ १२ ॥ स्त्री जिसे चाहती थी वही वहाँ आता था और उस तरुणी को खींचकर उससे रमण करता था । जिस स्त्री से बहुत लोग भोग-विलास करते हैं, उसके घर कोई पुत्र नहीं होता ॥ १३ ॥ कई दिनों बाद उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । जिससे राजा को सन्चाई पर यक्रीन हो गया । अब स्त्री जो कहती थी वह वही मानता था और मूर्ख भेद-अभेद को नहीं समझता था ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ उनासीवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २७६ ॥ ५३६५ ॥ अफजूं ॥

दो सौ अस्सीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बिशनचन्द्र एक फिरंगी राजा था जिसके अंगों की छवि शोभायुक्त थी । जुगराजमंजरी उसकी रानी थी जिसे चौदह लोकों में सुन्दरी माना जाता था ॥ १ ॥ सुकृतनाथ योगी वहाँ था जहाँ जुगराजमती स्त्री रहती थी । स्त्री ने योगी को देखते ही उसे घर पर बुलवा लिया ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ उसने हृदय में प्रसन्न हो उससे काम-भोग किया और भुजाएँ

॥ चौपई ॥ बहु बिधि भोग ताँहि तिन कीया । मोहि ह्रिदै
 रानी को लीया । त्रिय तासौ अति हित उपजायो । राजा
 कह चित ते बिसरायो ॥ ४ ॥ त्रिय ऐसी बिधि चितहि
 बिचारा । इह राजा कह चाहियत सारा । लै तिह राज
 जोगियहि दीजै । कछू चरित्र ऐसि बिधि कीजै ॥ ५ ॥
 सोवत समै त्रिपति कह सार्यो । गाडि ताहि इह भाँति
 उचार्यो । राजै राज जोगियहि दीना । आपन भेस जोग को
 लीना ॥ ६ ॥ जोग भेस धारत त्रिप भए । दै इह राज बनहि
 उठ गए । हमहूँ राज जोगियहि दैहै । नाथ गए चित तही
 सिधैहै ॥ ७ ॥ सत्ति सत्ति सभ प्रजा बखान्यो । जो त्रिप
 कह्यो वहै हम सान्यो । सभहिन राज जोगियहि दीना । भेद
 अभेद मूढ़ नहि चीना ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ सारि त्रिपति कह
 चंचलै कियो आपने काज । सकल प्रजा डारी पगन दै जोगी
 कह राज ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि राज जोगियहि
 दीया । इह छल सौ पति को बध कीया । मूरख अब लग भेद
 न पावै । अब तक आइ सु राजकसावै ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ असी चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ २८० ॥ ५३७५ ॥ अफजूं ॥

पकड़कर लिपट-लिपट जाती थी ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने बहुत प्रकार
 से उससे भोग किया और रानी का हृदय मोह लिया । स्त्री का भी उससे
 अत्यधिक प्रेम हो गया और उसने राजा को मन से भुला दिया ॥ ४ ॥ स्त्री
 ने मन में सोचा कि इस राजा को जान से मार डाला जाय । राजा इससे
 लेकर योगी को दिया जाय और इसके लिए कुछ प्रपंच किया जाय ॥ ५ ॥
 उसने सोते हुए राजा को मार दिया और उसे गाड़कर कह दिया कि राजा ने
 राज्य योगी को दे दिया है और स्वयं योगी का वेश धारण कर लिया है ॥ ६ ॥
 राजा ने योगी-वेश धारण कर लिया है और इसे राज्य देकर वन को चले
 गए हैं । मैं भी राज्य योगी को दूंगी और जिस ओर मेरे नाथ गए हैं, मैं भी
 उसी ओर चली जाऊँगी ॥ ७ ॥ सारी प्रजा ने "सत्य, सत्य" का उच्चारण
 किया और कहा जो राजा ने किया-कहा है हम भी उसे मानते हैं । सब
 मुखों ने भेद-अभेद नहीं जाना और राज्य योगी को दे दिया ॥ ८ ॥
 ॥ दोहरा ॥ राजा को मार कर स्त्री ने अपना काम किया और योगी को
 राज देकर सारी प्रजा उसके चरणों में ला डाली ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस
 प्रकार योगी को राज्य दिया और छल से पति का वध कर दिया । मुख

अभी तक उसका भेद नहीं जान सके हैं और वह अभी तक राज कर रहा है ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ अस्सीवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८० ॥ ५३७५ ॥ अफजूं ॥

अथ दो सौ इकासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बिजैनगर इक राइ बखनियत । जाको त्रास भेस सभ मनियत । बिजैसैन जिह नाम त्रिपतिबर । बिजैमती रानी जिह के घर ॥ १ ॥ अजैमती दूसरि तिह रानी । जाके कर त्रिप देहि बिकानी । बिजैमती के सुत इक धामा । स्त्री सुलतानसैन तिह नामा ॥ २ ॥ बिजैमती को रूप अपारा । जा संग नही त्रिपति को प्यारा । अजैमती की सुंदरि काया । जिन राजा को चित्त लुभाया ॥ ३ ॥ ताके रहत रैन दिन परा । जैसी भाँति गोर महि मरा । दुतिय नारि के धाय न जावै । ताँते तरुनि अधिक कुररावै ॥ ४ ॥ आग्या (सू०ग्रं० ११२४) चलत तवन को देसा । रानी भई त्रिपति के भेसा । यहि रिसि नारि दुतिय जिय राखो ।

दो सौ इक्यासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ विजयनगर में एक राजा कहा जाता था जिसका भय सभी मानते थे । उस श्रेष्ठ राजा का नाम विजयसेन था और उसके घर में विजयमती नामक रानी थी ॥ १ ॥ उसकी एक दूसरी रानी अजयमती थी जिसके हाथ राजा बिका हुआ था । विजयमती के घर एक पुत्र था जिसका नाम सुलतानसेन था ॥ २ ॥ जिसके साथ राजा को प्यार नहीं था उस विजयमती का रूप अपार था । अजयमती का शरीर सुन्दर था जिसने राजा के चित्त को मोहित कर रखा था ॥ ३ ॥ उसके यहाँ रात-दिन ऐसे पड़ा रहता था मानों कब्र में पड़ा हो । वह दूसरी स्त्री के घर नहीं जाता था जिससे वह तरुणी अत्यधिक दुखी थी ॥ ४ ॥ उसी की आज्ञा देश में चलती थी और रानी ही राजा के वेश में कार्य करती थी । यह जलन दूसरी स्त्री ने मन में रखी और एक वैद्य को बुलाकर ऐसे बोली ॥ ५ ॥ यदि तुम इस

बोलिक बैद प्रगट असि भाखी ॥ ५ ॥ या राजा कह जु तैं
 खपावैं । मुख भाँगैं सो ते सो पावैं । तब चलि बैद त्रिपति
 पहि गयो । रोगी बपु तिहको ठहरयो ॥ ६ ॥ जो तुम कहो
 तु करो उपाई । ज्यों त्यों कहि तिह बरी खवाई । रोगी भयो
 अरोगी तन सौ । भेद अभेद न पावत जड़ सौ ॥ ७ ॥ भच्छत
 बरी पेट तिह छूटा । सावन जान पनारा फूटा । दूसरि बरी
 थंभ के काजैं । जोरावरो खवाई राजैं ॥ ८ ॥ ताते अधिक
 पेट छुटि गयो । जाते बहु बिहबल त्रिप भयो । संन भयो
 इह बैद उचारा । इह बिध किय उपचार बिचारा ॥ ९ ॥
 दस तोले अहिफेन मँगाई । बहु बिखि वाके संग मिलाई ।
 धूरा किया तवन के अंगा । चाम गयो ताके तिह संग ॥ १० ॥
 हाइ हाइ राजा जब करै । तिमि तिमि बैद इह भाँति उचरै ।
 या कहु अधिक न बोलन देह । मूँदि बदन राजा को
 लेह ॥ ११ ॥ जिमि जिमि धूरो तिह तन परै । हाइ हाइ तिम
 त्रिपति उचरै । भेद अभेद न किन्हूँ चीनो । इह छल प्रान
 तवन को लीनो ॥ १२ ॥ इह छल साथ त्रिपति कह मारा ।

राजा को खत्म कर दो तो मुझसे मुँह-माँगा इनाम पाओ । तब वैद्य चलकर
 राजा के पास गया और उसे विभिन्न रोगों से ग्रस्त बताया ॥ ६ ॥ यदि तुम
 कहो तो उपचार करूँ और जैसे-तैसे कहकर उसे दवा की जड़ी खिला दी ।
 निरोगी तन से रोगी हो गया और वह जड़-मूर्ख कोई भेद न समझ सका ॥ ७ ॥
 दवा खाते ही उसका पेट ऐसा ढीला हो गया मानों सावन में पैनाला बह
 निकला हो । अब उसे रोकने के लिए राजा को दूसरी दवाई जबरदस्ती
 खिला दी ॥ ८ ॥ उससे पेट और अधिक छूट गया और राजा अत्यन्त व्याकुल
 हो उठा । वैद्य ने कहा कि सन्निपात हो गया है और उसके उपचार का भी
 आयोजन किया ॥ ९ ॥ उसने दस तोले सर्प की फेन मँगाई और उसके साथ
 बहुत से विष मिलाए । उसके अंगों को उसके साथ धुआँ दिया जिससे उसका
 चमड़ा उतर गया ॥ १० ॥ जैसे-जैसे राजा “हाय-हाय” कहता था तो वैसे-
 वैसे वैद्य कहता था कि इसे बोलने मत दो और इसका मुँह हाथ से बंद कर
 लो ॥ ११ ॥ जैसे-जैसे उसका धुआँ उसे लगता था राजा हाय-हाय का
 उच्चारण करता था । कोई भी रहस्य को न समझ सका और इस प्रकार
 उसके प्राण ले लिये ॥ १२ ॥ इस छल से राजा को मार डाला और अपने

अपने छत्र पुत्र सिर ढारा । सभ सौअन कह देत निकार्या ।
भेद अभेद न किनू बिचार्यो ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ इकासी चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २८१ ॥ ५३८८ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ ब्यासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अमीकरन इक सुना बिपाला । अमरकला
जाके ग्रहि बाला । गढ़ सिराज को राज कमावै । सीराजी
जग नाम कहावै ॥ १ ॥ असुरकला दूसरि ताकी द्विय ।
निसि दिन रहत बिपति जामै जिय । अमरकला जिय माँझ
रिसावै । असुर कलहि प्रिय रोज बुलावै ॥ २ ॥ एक बनिक
कौ लयो बुलाई । मदन क्रीड़ तिह साथ कमाई । अनद कुअरि
तिह नर को नामा । जाकौ भजा बिपति की बामा ॥ ३ ॥
असुरकला कौ निजु कर घायो । मरी नारि तव पतिहि
सुनायो । तर तखता के मितहि धरा । ता पर बडो अडंबर
करा ॥ ४ ॥ (ध्रु० प्र० १२२५) तर तखता के मित दुरायो ।

पुत्र को राज्य-छत्र दे दिया । सब सौतनों को निकाल दिया और इस प्रकार
भेद-अभेद कोई भी न जान सका ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ इकासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८१ ॥ ५३८८ ॥ अफजूं ॥

दो सौ ब्यासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ अमीकर्ण नामक एक राजा था जिसके घर में अमरकला
नामक स्त्री थी । वह सिराजगढ़ में राज्य करता था और जगत में सिराजी
नाम से जाना जाता था ॥ १ ॥ उसको दूसरी स्त्री असुरकला थी जिसमें
रात-दिन राजा का मन रमा करता था । अमरकला यह सोचकर
जलती थी कि असुरकला को प्रिय रोज बुलाता है ॥ २ ॥ उसने एक वणिक
को बुलाया और उसके साथ रतिक्रीड़ा की । उस व्यक्ति का नाम
आनंदकुँवर था जिससे राजा की स्त्री क्रीड़ा किया करती थी ॥ ३ ॥ उसने
असुरकला को अपने हाथों से मार दिया और तब पति को बता दिया (कि वह
मर गई है) । (लकड़ी के) तख्ते के नीचे मित को छुपाया और बड़ा प्रपंच
किया ॥ ४ ॥ तख्ते के नीचे मित को छिपा दिया और ऊपर सौतन की

ता पर सवति लोथ कहि पायो । भेद अभेद न किनूँ बिचारा ।
इह छल अपनो यार निकारा ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ सवति
सँघारी पति छला मित्रहि लयो उबारि । भेद किसू पायो नही
धन सु अमर कुमारि ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ व्यासी चरित्र
समापत्तम सतु सुभम सतु ॥ २८२ ॥ ५३६४ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ तरासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ शहिर पलाऊ एक त्रिपारा । जिह धनि
भरे सकल भंडारा । किन्नरमती तिह राजदुलारी । जानुक
चंद्र लई उजियारी ॥ १ ॥ विक्रम सिंघ शाहु सुत इक तह ।
जा सम सुंदर दुतिय न महि मह । अप्रमान तिह प्रभा बिराजै ।
सुर नर असुर निरखि मन लाजै ॥ २ ॥ किन्नरमती वासौ हित
कियो । ताहि बोलि ग्रहि अपने लियो । काम भोग तासौ
द्विड़ किया । चित को शोक दूरि करि दिया ॥ ३ ॥ रानी
भोग मित्र को रसिकै । इह बिधि बचन बखान्यो हसिकै ।

लाश लिटा दी । किसी ने भी भेद-अभेद को न समझा और इस प्रकार उसने
अपना यार निकाल दिया ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ सौतन को मार दिया,
पति को छल लिया और मित्र को भी बचा लिया । किसी को पता नहीं
चला । अमरकुमारी धन्य है ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ बयासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८२ ॥ ५३६४ ॥ अफजूं ॥

दो सौ तिरासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पलामू शहर में एक राजा था जिसके भंडार धन से
भरे हुए थे । किन्नरमती उसकी स्त्री थी जिससे मानों चन्द्रमा ने भी
रोशनी उधार ली हो ॥ १ ॥ विक्रमसिंह वहाँ एक शाह का पुत्र था
जिसके समान धरती पर अन्य कोई नहीं था । उसकी शोभा अपरिमित
थी और उससे सुर, नर, असुर सभी लज्जित होते थे ॥ २ ॥ किन्नरमती
ने उससे प्रेम किया और उसे अपने घर पर बुला लिया । उससे शक्ति-
क्रीडा की और चित्त का शोक दूर कर दिया ॥ ३ ॥ रानी ने रसिक
मित्र से रमण कर उससे हँसकर कहा । हे प्रिय ! कुछ ऐसा प्रपंच

तुम हम कह लै संग सिधावहु । पिय चरित्र कछु ऐस
बनावहु ॥ ४ ॥ मित्र कह्यो मैं कहौ सु करियहु । भेद
पुरख दूसर न उचरियहु । रुद्र भवन पूजन तुम जैहौ । तबही
हित हित कह पैहौ ॥ ५ ॥ पति तन भाखि देहरे गई । तह
ते जात मित्र संग भई । किनहूँ पुरख भेद नहि जाना । अस
राजा तन बचन बखाना ॥ ६ ॥ रानी रुद्र भवन जब गई ।
शिवजू बिखै लीन सो भई । तिन साजुज मुक्ति कह पायो ।
जनम मरन को ताप मिटायो ॥ ७ ॥ त्रिप सुनि रुद्र भगति
अनुरागा । धनि धनि त्रियहि बखानन लागा । दुहकर
करम कीआ जिन दारा । पलि पलि प्रति ताके
बलिहारा ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ तिरासी चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २८३ ॥ ५४०२ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ चौरासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ दच्छनिसैन दच्छनी राजा । दच्छनि दे रानी
सिर ताजा । जा सम और न दूजी रानी । दच्छनवती बसत

करो कि मुझे साथ लेकर कहीं अन्यत्र चले चलो ॥ ४ ॥ मित्र ने कहा कि मैं
जो कहूँ वैसा करो और अन्य किसी से इस भेद को न कहना । जब तुम रुद्र
के मन्दिर में पूजा के लिए जाओगी तो वहीं अपने हितैषी को पाओगी ॥ ५ ॥
पति को कहकर वह मंदिर गई और वहीं से मित्र के साथ चली गई । किसी
भी व्यक्ति को भेद का पता नहीं लगा और उस व्यक्ति ने राजा से ऐसे
कहा ॥ ६ ॥ रानी जब शिव-मंदिर में गई तो वहीं शिव में लीन हो गई ।
उसने सायुज्य मुक्ति प्राप्त की है और जन्म-मरण के ताप को मिटा दिया
है ॥ ७ ॥ राजा भी मुनकर शिव की भक्ति में लीन हो गया और स्त्री को
धन्य-धन्य कहने लगा । जिस स्त्री ने इतना कठिन कार्य किया, मैं प्रतिपल
उसके बलिहारी जाता हूँ ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ तिरासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८३ ॥ ५४०३ ॥ अफजू ॥

दो सौ चौरासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ दक्षिण में एक दक्षिणसेन राजा था जो दक्षिणदेवी रानी
का सिरताज था । उसकी राजधानी में उसके समान अन्य कोई शानी नहीं

राजधानी ॥ १ ॥ दच्छिनीराइ एक तह चाकर । रूपमान
जनु दुतिय दिवाकर । ताकी जात प्रभा नहि (सू० प्र० १२२६)
कही । जानुक फूल चंबेली रही ॥ २ ॥ रूप तवन को दिपत
अपारा । तिह आगे क्या सूर बिचारा । सोभा कही न हमते
जाई । सकल त्रिया लखि रहत बिकाई ॥ ३ ॥ रानी दरस
तवन को पायो । पठै सहचरी धाम बुलायो । कामकेल तासौ
हसि मानी । रमत रमत सभ निसा बिहानी ॥ ४ ॥ जैसे
हुतो त्रिपति के रूपा । तैसो ताको हुतो सरूपा । जासौ
अटक कुअरि की भई । त्रिप की बात बिसरि करि गई ॥ ५ ॥
तासौ हित रानी को भयो । राजा साथ हेतु तजि दयो ।
मदरा अधिक त्रिपति कह प्यायो । राज सिंघासन जार
बैठायो ॥ ६ ॥ सत्त भए त्रिप सो धन पायो । बाँधि मित्र
के धाम पठायो । ताको प्रजा त्रिपति करि माना । राजा
कह चाकर पहिचाना ॥ ७ ॥ दुहँअन की एकै अनुहारा ।
राव रंक नहि जात बिचारा । ताको लोग त्रिपति करि मानै ।
लज्जत बचन न त्रिपति बखानै ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ रंक राज

थी ॥ १ ॥ दक्षिणराय नामक एक सेवक वहाँ था जो रूप-सौंदर्य में मानों दूसरा
सूर्य था । उसकी प्रभा वर्णनातीत थी । ऐसा लग रहा था मानों चमेली
फूल रही हो ॥ २ ॥ उसके अपार देदीप्यमान रूप के आगे सूर्य भी बेचारा
क्या था । हम उसकी सुन्दरता का वर्णन नहीं कर सकते, सभी स्त्रियाँ उसे
देखकर बिकी रहती थीं ॥ ३ ॥ रानी ने उसका दर्शन किया और दासी
भेजकर उसे घर बुलाया । उससे हँस-हँसकर कामक्रीड़ा की और रमण करते-
करते सारी रात बीत गई ॥ ४ ॥ जैसा राजा का स्वरूप था वैसा ही इसका
रूप था । जब से कुँवरि (रानी) उससे अटकी, राजा की बात तो उसे भूल ही
गई ॥ ५ ॥ रानी का प्रेम अब उससे हो गया और उसने राजा का साथ छोड़
दिया । राजा को अत्यधिक मदिरा पिलाई और अपने यार को राजसिंहासन
पर बैठा दिया ॥ ६ ॥ मदमत्त राजा को बाँधकर मृत्युलोक भेज दिया । उसे
प्रजा ने राजा मान लिया और राजा को नौकर मान लिया ॥ ७ ॥ दोनों का
स्वरूप एक ही जैसा होने से राजा और उस निर्धन में पहचान नहीं हो पाती
थी । लोग उसे ही राजा मानते थे और राजा लज्जावश कुछ नहीं कहता
था ॥ ८ ॥ ॥ दोहा ॥ निर्धन और राजा के साथ ऐसा कर उसने निर्धन को

ऐसे करा दिया रंक कौ राज । हवै अतीत पति बन गयो
तजि गयो सकल समाज ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ चौरासी चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २८४ ॥ ५४११ ॥ अफजूं ॥

अथ दो सौ पचासी चरित्र कथनं ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हुतो एक राजा प्रजासेन नामा ।
प्रजापालनी धाम ताँके सु बामा । प्रजा लोग जाकी सभै आनि
मानै । तिसै दूसरो जान राजा प्रमाने ॥ १ ॥ सुधासेन
नामा रहै भित ताके । रहै रीझि बाला लखें नैन वाके । न
हवैहै न हैना बिधाता बनायो । नरी नागनी गंधर्वी को न
जायो ॥ २ ॥ ॥ चौपाई ॥ बनिक एक धनवान रहत तह ।
प्रजासेन त्रिप राज करत जह । सुमतिमती ताकी इक कन्या ।
धरनीतल के भीतर धन्या ॥ ३ ॥ सुधासेन तिन जबै निहारा ।
हरि अरि सर ताके तन मारा । पठै सहचरी ताँहि बुलायो ।
सो नर धाम न बाँके आयो ॥ ४ ॥ नाहि नाहि जिमि जिमि
राज दे दिया । अब पति सारा समाज छोड़कर साधु बन जंगल में चला
गया ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ चौरासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८४ ॥ ५४११ ॥ अफजूं ॥

दो सौ पचासीवाँ चरित्र-कथन

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ प्रजासेन नामक एक राजा था जिसके घर में
प्रजापालनी नामक सुन्दर स्त्री थी । प्रजा भी उस स्त्री का आदेश मानती
थी और उसे दूसरा राजा समझती थी ॥ १ ॥ उसके पास सुधासेन नामक
एक सेवक रहता था, वह स्त्री उसकी आँखें देखकर उस पर मोहित हो उठी
थी । वैसा न तो कोई है, न होगा और न ही विधाता ने वैसा किसी को
बनाया है । वह मानव, नाग, गंधर्व आदि स्त्रियों में से किसी का भी नहीं
था ॥ २ ॥ ॥ चौपाई ॥ जहाँ राजा प्रजासेन राज्य करता था वहाँ एक
धनवान वणिक् रहता था । उसकी सुमतिमती नामक एक कन्या थी जो
धरती पर “धन्य-धन्य” कही जाती थी ॥ ३ ॥ सुधासेन ने जब उसे देखा तो
कामदेव ने उसे काम-बाण मार दिया ! उसने दासी भेजकर उसे बुलाया पर

वह कहै । तिमि तिमि हठि इस्त्री कर गहै । अधिक दूत का
 तहाँ पठावै । क्योंहूँ धाम मिल नहि आवै ॥ ५ ॥ ज्यों ज्यों
 मित्र न आवै धामा । त्यों त्यों अति व्याकुल हवै बासा । बहु
 दूतिन ते धाम लुटावै । पल पल प्रति तिह धाम
 पठावै ॥ ६ ॥ (मू०पं० १२२७) शाह सुता बहुबिधि करि हारी ।
 सुधासैन सौ भई न यारी । तब अबला इह मंत्र पकायो ।
 इक दूती कह तहाँ पठायो ॥ ७ ॥ चली चली सहचरि तह
 गई । जिह ग्रहि सुधि मितवा की भई । पकरि भुजा ते सोत
 जगायो । चलहु अब त्रिप त्रियहि बुलायो ॥ ८ ॥ मूरख कछू
 बात नहि पाई । सहचरि तहाँ संग करि ल्याई । बंठी सुता
 शाहु की जहाँ । लै आई मितवा कह तहाँ ॥ ९ ॥ वहि मूरख
 ऐसे जिय जाना । शाहु सुता को छल न पछाना । रानी अटक
 सु मुहि पर गई । ताँते हमै बुलावत भई ॥ १० ॥ ताके
 साथ भोग में करिहो । भाँति भाँति के आसन धरिहौ । त्रिप
 नारी कह अधिक रिझहौ । जो मुख मँगिहौ सोई
 पैहौ ॥ ११ ॥ शाहु सुता सो कीना संग । लखत भयो त्रिप
 की अरधंगा । मूरख भेद अभेद न पायो । इह छल अपनी

वह व्यक्ति उसके घर नहीं आया ॥ ४ ॥ जैसे-जैसे वह 'नहीं-नहीं' कहता था,
 उस स्त्री का हठ और जोर पकड़ता जाता था । वह और दासियों को वहाँ
 भेजती पर कैसे भी वह मित्र घर नहीं आता था ॥ ५ ॥ जैसे-जैसे वह मित्र
 घर नहीं आ रहा था वैसे-वैसे वह स्त्री और अधिक व्याकुल हो उठ रही थी ।
 अनेक सेविकाओं पर वह घर लुटाए चली जा रही थी और हर पल उन्हें उसके
 घर भेजने लगी ॥ ६ ॥ वह शाह की पुत्री अनेकों यत्न कर हार गई पर
 सुधासेन से उसकी दोस्ती नहीं हो सकी । तब उस स्त्री ने एक विचार किया
 और एक दूती को वहाँ भेजा ॥ ७ ॥ वह दासी चलती-चलती वहाँ पहुँची जहाँ
 उस मित्र की खबर उसे मिली थी । उसे बाँह पकड़ उसने सोते से जगाया
 और कहा, अभी चलो, तुम्हें रानी ने बुलाया है ॥ ८ ॥ उस मूर्ख ने कुछ नहीं समझा
 और वह दासी उसे वहाँ साथ ले आई जहाँ उस धनी की पुत्री बंठी थी ॥ ९ ॥
 उस मूर्ख ने सत्य समझा और धनी शाह की पुत्री के छल को नहीं पहचाना ।
 उसने सोचा कि रानी मुझ पर मोहित है इसलिए उसने मुझे बुलाया है ॥ १० ॥
 मैं उसके साथ रमण करूँगा और भाँति-भाँति के आसन प्रयुक्त करूँगा ।
 रानी को अत्यधिक रिझाऊँगा और जो मुख से माँगूँगा वही पाऊँगा ॥ ११ ॥
 शाह की पुत्री के साथ उसने रमण किया और उसे राजा की स्त्री मानने लगा ।

मूँड मुडायो ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ शाहु सुता कौ त्रिप त्रिया
जानत भयो मन माहि । हरख मन ताकौ भजा भेव पछाना
नाहि ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ पचासी चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २८५ ॥ ५४२४ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ छियासी चरित्र कथनं ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ दिसा बाहणी मै रहै एक राजा ।
सु वा तुल्लि दूजो बिधातै न साजा । बिख्या नाम ताकी सुता
एक सोहै । सुरी आसुरी नागिनी तुल्लि को है ॥ १ ॥ प्रभा-
सेन नामा रहै ताहि ताता । तिहूँ लोक मै बीर बाँको बिख्याता ।
तहा एक आयो बडो छत्रधारी । सभै शस्त्रवेता सु बिद्या-
धिकारी ॥ २ ॥ प्रभासेन आयो जहाँ बाग नीको । प्रभा
हेरि जाकी बढ्यो नंद जी को । तहाँ बोलि सूरहि रथहि ठाढ़
कीनो । पियादे भये पैड ताको सु लीनो ॥ ३ ॥ जब बाग
नीको सु तौनौ निहार्यो । इहै आपने चित्त माही बिचार्यो ।

मूर्ख ने भेद-अभेद नहीं समझा और इस प्रकार छला गया ॥ १२ ॥
॥ दोहा ॥ वह शाह की पुत्री को राजा को स्त्री समझ रहा था और बिना
भेद पहचाने हर्षपूर्वक उसके साथ रमण करता रहा ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ पचासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८५ ॥ ५४२४ ॥ अफजूं ॥

दो सौ छियासीवाँ चरित्र-कथन

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ बाहणी दिशा में एक राजा रहता था जिसके
समान विधाता ने अन्य किसी को नहीं बनाया था । विषया नामक उसकी
एक पुत्री, जिसके समान कोई भी देव, दानव, नाग-स्त्री नहीं थी ॥ १ ॥
प्रभासेन प्यारा राजा था जो तीनों लोकों में विख्यात वीर था । वहाँ एक
बड़ा छत्रधारी आया जो शस्त्रवेत्ता और विद्याओं में निपुण था ॥ २ ॥
प्रभासेन सुन्दर बाग में आया और वहाँ की शोभा देखकर उसका आनन्द बढ़
गया । शूरवीरों को कहकर वहाँ रथ रोका और पैदल ही चलने लगा ॥ ३ ॥
जब उसने सुन्दर बाग को देखा तो अपने चित्त में यही विचार किया कि कुछ
समय तक यहाँ विश्राम किया जाय और दो एक घड़ियों के बाद गाँव का

कछु काल ईहाँ अबै सैन कीजै । घरी द्वैक कौ ग्राम को पंथ
 लीजै ॥ ४ ॥ खरे बाज कीने घरी द्वैक सोयो । सभै आपने
 चित्त को शोक खोयो । तहाँ राजकन्या बिख्या नाम आई ।
 बिलोक्यो तिसै सुधि तौनै न पाई ॥ ५ ॥ तबै राजकन्या ह्रिदै
 यौ बिचार्यो । प्रभासैन कौ सोवते जौ निहार्यो । त्रिया
 मै (सू० प्र० १२२८) इसी की इहै नाथ मेरो । बरौंगी इसै मै भई
 आजु चेरो ॥ ६ ॥ त्रिसंसै इहै चित्त मै बाल आनी । इसी
 कौ बरौ कै तजौ राजधानी । तहाँ एक पत्नी सु डारी निहारी ।
 इहै चंचला चित्त माही बिचारी ॥ ७ ॥ चह्यो पत्निका कौ
 सु बाचौ उधारौ । डरौ बेद की सासना कौ बिचारौ । परी
 पत्निका कौ जु कोऊ उधारै । बिधाता उसै नरक कै माँझ
 डारै ॥ ८ ॥ रही शंकि लीनी तऊ हाथ पाती । लई लाइकै
 मित्र की जानि छाती । कबै हाथ माँही छिपावै उधारै ।
 मनो निरधनी द्रब पायो निहारै ॥ ९ ॥ तबै चंचला चित्त
 मै यौ बिचारी । तिसै जानिकै नाथ पाती उधारौ । जोऊ
 नाथ की जानि पाती उधारै । न ताकौ बिधाता महाँ नरक
 डारै ॥ १० ॥ हुतो एक राजा तहाँ छत्रधारी । प्रभासैन
 के प्रान को हंत कारी । तिनिछिआ इहै चित्त के भाँझ कीनी ।

रास्ता लिया जाय ॥ ४ ॥ घोड़ों को रोककर वह दो घड़ी सोया और अपने
 मन के शोक को दूर किया । वहाँ विषया नामक राजकन्या आई और उसे
 देखकर वह सुधि भूल गई ॥ ५ ॥ प्रभासेन को सोता देखकर राजकन्या ने
 यह विचार किया कि मैं तो इसी की स्त्री हूँ और यही मेरा स्वामी है । मैं
 इसी का वरण करूँगी ॥ ६ ॥ उस बालिका ने निश्चित रूप से सोच लिया
 कि या तो इसी का वरण करूँगी अथवा राजधानी का त्याग कर दूँगी ।
 तभी वहाँ एक पत्र डाला हुआ देखकर वह सोच में पड़ गई ॥ ७ ॥ वह चाह रही
 थी कि पत्र को खोलकर पढ़ूँ पर वेद-नियम भंग होने से डर रही थी । पढ़े
 हुए पत्र को यदि कोई खोले तो विधाता उसे नरक में डालेगा ॥ ८ ॥ शंकाकुल
 वह थी पर हाथ में उसने पत्र ले लिया और मित्र का मान कर उसे छाती से
 लगाया । कभी हाथ में छिपाती और कभी देखती थी । ऐसा लग रहा था
 मानों निर्धन द्रव्य पाकर देख रहा हो ॥ ९ ॥ तब चंचला स्त्री ने विचार
 किया और पत्र को खाला । जो प्रिय का पत्र खोलता है उसे परमात्मा नरक
 में नहीं डालता ॥ १० ॥ एक छत्रधारी राजा था जो प्रभासेन को मारना
 चाहता था । उसने एक इच्छा की थी जिसे उसने पत्र में लिख दिया

सोई लिख्य के पत्र के मद्धि दीनी ॥ ११ ॥ बिख्या नाम जाकी सपुत्री अपारा । तिसी ओर लिखि पत्रिके माँझ डारा । प्रभासेन आयो जबै जानि लीजो । बिखै लै तिसी काल मै तामु दीजो ॥ १२ ॥ रही पत्रिको बाचि के चौकि चित्तै । कियो मंत्र इक मित्त की रच्छ हित्तै । लियो आँजि के अंजनै हाथ प्यारी । बिख्या बिखि के दैनता कौ सु डारी ॥ १३ ॥ रही जात बाला तबै राज जागे । वहै पत्रिका हाथ लैके नुरागे । पिता तौन के हाथ लैके सु दीनी । सुन्यो मित्त को नामु लै भूप चीनी ॥ १४ ॥ जबै पत्रिका छोरिके भूप बाची । इहै बात राजै लिखी मित्त साची । बिख्या बाँचि पत्नी उसी काल दीजो । घरी एक बेलंब राजा न कीजो ॥ १५ ॥ बिख्या राज कन्या महाराज दीनी । कहा चंचला चेशटा चार कीनी । कछू भेद ताको सु राजै न पायो । प्रभासेन राजा तिसै ब्याहि ल्यायो ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ छियासी चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ २८६ ॥ ५४४० ॥ अफजू ॥

था ॥ ११ ॥ विषया जिस राजा की पुत्री थी उसी ओर यह पत्र लिखा गया था कि प्रभासेन राजा जब आए तो उसे विष दे देना ॥ १२ ॥ वह पत्र को पढ़कर मन में चौंक उठी और उसने मित्त की रक्षा के लिए एक विचार बनाया । अपना अंजन हाथ में लगाया और विषया ने उसमें विष की बात को हटा दिया ॥ १३ ॥ वह कन्या जाने लगी और तभी राजा जग गया और उसने वह पत्र प्रेमपूर्वक सँभाल लिया । उसने वह पत्र (विषया के) पिता के हाथ में दिया जिसे उसके पिता ने अपने मित्त का लिखा हुआ पहचान लिया ॥ १४ ॥ जब राजा ने पत्र खोलकर पढ़ा तो उसने पाया कि मित्त ने एक (सच्ची) आवश्यक बात लिखी थी । पत्र पढ़ते ही विषया तत्क्षण दे दो और एक घड़ी की भी देरी नहीं करना ॥ १५ ॥ राजकन्या विषया राजा ने दे दी और (प्रभासेन ने) कहा कि इस स्त्री ने तो बहुत सुन्दर उपाय किया है । राजा को उसका कुछ भी भेद न पता चला और प्रजासेन उससे विवाह कर उसे ले गया ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ छियासीवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८६ ॥ ५४४० ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ सतासी चरित्र कथन ॥

॥ दोहरा ॥ घाटमपुर कुररे बिखें एक मुगल की बाल ।
 भ्राता साथ चरित्र तिन कियो सु सुनहु त्रिपाल ॥ १ ॥
 ॥ चौपई ॥ सौदा निमित्त भ्रात तिह गयो । खाटि कमाइ
 अधिक धन लयो । निसि कह (सू० प्र० १२२६) धाम भगनि को
 आयो । कंठ लागि तिन मोह जतायो ॥ २ ॥ अपनी सकल
 ब्रिथा तिन भाखी । जो जो बितई सो सो आखी । जु धन
 हुतो संग खाटि कमायो । सो भगनी कह सकल दिखायो ॥ ३ ॥
 मरियम बेगम ताको नामा । भाई कौ मारा जिन बामा ।
 सभ ही दरब छीनि करि लीना । आपु चरित्र सु ऐसे
 कीना ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ भगनी दरब बिलोकि कै लोभ
 सिध कै माहि । नख सिख लौ बूडत भई सुधि न रही जिय
 माहि ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ भ्रातवात भगनी न बिचारा ।
 फाँसी डारि कंठि महि मारा । लीना लूटि सकल तिह धन
 कौ । कर्यो अमोह आपने मन कौ ॥ ६ ॥ प्रात भए रोवें
 तब लागी । जब सभ प्रजा गाँव की जागी । अतक बंधु तब

दो सौ सत्तासीवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ श्वेत फूलों के उद्यानों वाले घाटमपुर में एक मुगल की स्त्री
 थी । उसने अपने भाई के साथ जो प्रपंच किया, हे राजन् ! अब उसे सुनो ॥ १ ॥
 ॥ चौपाई ॥ उसका भाई व्यापार के लिए उसके पास गया और खा-कमाकर
 उसने काफ़ी धन एकत्र किया । रात को वह बहन के घर आ गया और
 उसने भी गले मिलकर काफ़ी प्रेम जताया ॥ २ ॥ उसने अपनी पूरी व्यथा
 कह सुनायी और जो बीता कह डाला । जो धन उसने कमाया था वह भी
 बहन को सारा दिखाया ॥ ३ ॥ उस स्त्री का नाम मरियम बेगम था जिसने
 भाई को मार डाला । ऐसा प्रपंच किया कि सारा द्रव्य छीन लिया ॥ ४ ॥
 ॥ दोहा ॥ बहन धन को देखकर लोभ के समुद्र में डूब गई । वह नख से
 लेकर शिख तक लीन हो गई और उसे कुछ भी सुधि न रही ॥ ५ ॥
 ॥ चौपाई ॥ भाई होने का कुछ विचार नहीं किया और उसे गले में फाँसी
 लगाकर मार डाला । अपने मन से मोह हटाकर उसका सारा धन लूट
 लिया ॥ ६ ॥ सुबह होने पर गाँव के लोगों के जग जाने पर वह रोने-
 चिल्लाने लगी । मृत भाई सबको दिखा दिया और कहा कि साँप के काट

सभन दिखायो । भर्यो आजु इह साँप चबायो ॥ ७ ॥ भली
भाँत तन ताँहि गडायो । यौ काजी तन आपु जतायो । साज
बाजि इक याको घोरो । और जु कछु याको धनु थोरो ॥ ८ ॥
सो इह त्रियहि पठावन कीजै । फारखती हम को लिखि दीजै ।
कबुज लिखा काजी तें लई । कछु धन भित्तक त्रिया कह
दई ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल अपनो भ्रात हति लीनी
कबुज लिखाइ । निसा करी तिह नारि की सभ धन गई
पचाइ ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ सत्तासी चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २८७ ॥ ५४५० ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ अठासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ यूना शहिर रूम महि जहाँ । देवछत्र
राजा इक तहाँ । छैल देइ दुहिता ताके इक । पढ़ी व्याकरन
कोकशास्त्रनिक ॥ १ ॥ अजितसेन तिह ठाँ इक छत्री ।
तेजवान बलवान धरती । रूपवान बलवान अपारा । पूरो
पुरख जगत उजियारा ॥ २ ॥ तेजवान दुतिवान अनुल बल ।

खाने से यह मरा है ॥ ७ ॥ भली प्रकार से उसका शरीर गाड़ दिया और
काजी से स्वयं कहा कि इसका घोड़ा और थोड़ा सा धन है ॥ ८ ॥ वह
इसकी पत्नी को भेज दो और मुझे बेबाकी पत्र लिख दो । बेबाकी पत्र
काजी से लिखा लिया और थोड़ा सा धन मृतक की स्त्री को दे दिया ॥ ९ ॥
॥ दोहा ॥ इस प्रकार छल से भाई को मारकर बेबाकी पत्र लिखा लिया ।
उस स्त्री को भी सन्तुष्ट कर दिया और स्वयं सारा धन पचा गई ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ सत्तासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८७ ॥ ५४५० ॥ अफजू ॥

दो सौ अट्ठासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ रूम देश में यूना नामक शहर था जहाँ का राजा देवछत्र
था । छैल देवी उसकी एक पुत्री थी जो व्याकरण-कोकशास्त्र आदि पढ़ी हुई
थी ॥ १ ॥ अजीतसेन वहाँ एक तेजस्वी और बलवान क्षत्रिय था । वह
रूपवान और बलशाली था और जगत में प्रकाश के समान तेजस्वी पूर्णपुरुष
था ॥ २ ॥ वह अत्यन्त तेजवान अपरिमित बलवान था जिसने शत्रुओं के

अरि अनेक जीते जिन दलि मलि । आवत ताँहि बिलोक्यो
 रानी । दुहिता सो इह भाँति बखानी ॥ ३ ॥ जौ इह धाम
 त्रिपति के होतो । तौ तुमरे लाइक बर को थो । अब मैं अस
 कह करौ उपाऊ । ऐसो बर तुहि आन मिलाऊँ ॥ ४ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ तनिक कुअरि के धुनि जब असि कानन परी ।
 देखि रही (सू० प्र० १२३०) तहि ओर सैन अरु मद भरी । मोहि
 रही मन माँहि न प्रगट जताइयो । हो पल पल बलि बलि
 जाती दिवस गवाइयो ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ रैन भए सहचरी
 बुलाई । चित्त बिथा तिह सकल सुनाई । जौ तिह दै मिलाइ
 मुहि प्यारी । तौ जानौ तूँ हितु हमारी ॥ ६ ॥ कह्यो कुअरि
 सहचरि सौ जाना । भेद न दूसर कान बखाना । तत छिन
 दौर तवन पहि गई । बहु बिधि ताँहि प्रबोधत भई ॥ ७ ॥
 बहु बिधि ताहि प्रबोध जताई । ज्यो त्यो ताँहि तहाँ लै आई ।
 मारग कुअरि बिलोकत जहाँ । लै पहुँची मितवा कह
 तहाँ ॥ ८ ॥ लखि तिह कुअरि प्रफुलित भई । जनुक राँक
 नवो निधि पई । बिहसि बिहसि तिह कंठ लगायो । मन
 मानत को भोग कमायो ॥ ९ ॥ ताको दूर दरिद्र दिया करि ।
 सोस रही धर सखी पगन पर । तव प्रसाद मैं मितहि लह्यो ।

अनेकों दल जीते थे । रानी ने उसे आते देखकर पुत्री से यह कहा ॥ ३ ॥
 यदि यह राजा के घर होता तो तुम्हारे योग्य वर था । अब मैं ऐसा उपाय
 करती हूँ कि तुझे ऐसा ही वर खोजकर देती हूँ ॥ ४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ कुँवरि
 के कानों में जब यह बात पड़ी तो वह कामासक्त होकर मदपूर्वक उसकी ओर
 देखने लगी । वह मन में मोहित हो उठी पर उसने जताया नहीं और पल-पल
 बलिहारी जाती उसने सारा दिन गंवा दिया ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ रात को
 उसने दासी को बुलाया और मन की सारी व्यथा उसे सुनाई । हे प्रिय ! यदि
 तुम मुझे उसे मिला दो तो मैं तुम्हें अपनी हितैषिणी समझूँ ॥ ६ ॥ कुँवरि ने
 केवल सखी से ही यह कहा और किसी दूसरे को भेद बिलकुल नहीं बताया ।
 वह तत्काल दौड़कर उसके पास गई और विभिन्न प्रकार से उसे संबोधित
 किया ॥ ७ ॥ विभिन्न प्रकार से उससे बातचीत करके उसे जैसे-तैसे वहाँ
 ले आई, जहाँ कुँवरि रास्ता देख रही थी । वह मित को लेकर वहाँ आ
 पहुँची ॥ ८ ॥ कुँवरि उसे देखकर खुश हो उठी मानो निर्धन व्यक्ति को
 नौ निधियाँ मिल गई हों । उसे हँस-हँसकर गले से लगाया और मनचाहा
 भोग-विलास किया ॥ ९ ॥ उसकी दरिद्रता दूर कर वह सखी के चरणों में

कहाँ कहो तुहि जात न कह्यो ॥ १० ॥ अब कछु ऐस चरित
बनैयै । जाते सदा मिल कह पैयै । सोवै सदा संग लै ताकौ ।
चीनि सकै कोऊ नहि वाकौ ॥ ११ ॥ त्रिय चरित अस चित्त
बिचारे । सु मैं कहत हो सुनहु प्यारे । ताहि छपाइ सदन
महि राखा । रानी सौ ऐसी विधि भाखा ॥ १२ ॥ रानी जो
तुम पुरख सराहा । ताकह स्त्री बिसनाथन चाहा । वाको
काली काल हवै गयो । या सखि के मुख ते सुनिलयो ॥ १३ ॥
हम सभहिन जो ताहि सराहा । ताते तिसु बिसुनाथन चाहा ।
जनियत द्विशटि त्रियन की लागी । ताते ताहि चित्तु लै
भागी ॥ १४ ॥ रानी शोक तदन को कियो । ता दिन अन
न पानी पियो । साच मर्यो जन्यो जिय ताकौ । भेद अभेद
न पायो याकौ ॥ १५ ॥ जस तुम सुंदर याहि निहार्यो ।
भयो न है हवैहै न बिचार्यो । याकी बहिन एक तिह घर मै ।
छाडि अयो जिह भ्रात नगर मै ॥ १६ ॥ मुहि तुम कहो तु तह
मैं जाऊँ । वाकी खोजि बहिन मैं ल्याऊँ । सो अति चतुरि
सभन गुन आगरि । आणि दिखाऊँ तुहि प्रिय नागरि ॥ १७ ॥
भली भली सभ त्रिय बखानी । भेद अभेद गति किनूँ न जानी ।

सिर रख रही थी । तुम्हारी कृपा से मैंने मित्र पाया है । क्या बताऊँ कुछ
कहा नहीं जाता ॥ १० ॥ अब कुछ ऐसा प्रपंच किया जाय जिससे मित्र को
हमेशा के लिए प्राप्त किया जा सके । उसके साथ हमेशा शयन किया जा
सके और कोई भी इस रहस्य को जान न सके ॥ ११ ॥ उस स्त्री ने मन में
ऐसा प्रपंच बनाया मैं अब उसे कहता हूँ सुनो । उसे घर में छिपा लिया और
रानी से कहा ॥ १२ ॥ हे रानी ! तुमने जिस पुरुष की सराहना की थी वह
विश्वनाथ भगवान को प्यारा हो गया । तुम इस सखी से सुन लो उसे मृत्यु
प्राप्त हो गई है ॥ १३ ॥ हम सबने उसकी प्रशंसा की इससे भगवान ने बुला
लिया । लगता है उसे औरतों की नज़र लग गई है; इसी से उसे मौत ले गई
है ॥ १४ ॥ रानी ने बहुत शोक मनाया और उस दिन अन्न-जल कुछ भी
ग्रहण नहीं किया । उसने रहस्य नहीं समझा और उसका मरना सच मान
लिया ॥ १५ ॥ जैसा वह सुन्दर था, वैसा न तो हुआ है और न ही होगा ।
उसकी एक बहिन है जिसे वह भाई पीछे नगर में छाड़ आया है ॥ १६ ॥
तुम मुझे कहो तो मैं वहाँ जाऊँ और उसकी बहिन को खोज लाऊँ । वह अत्यन्त
चतुर और गुणज्ञ है । मैं उसे लाकर तुम्हें दिखाती हूँ ॥ १७ ॥ सब स्त्रियों
ने "ठीक, ठीक" कहा और भेद-अभेद कोई भी न समझ सकी । उसे खर्च

खरची अधिक तवन कह दई । तत छिन करिकै बिदा
पठई ॥ १८ ॥ (सू० प्र० १२११) ॥ दोहरा ॥ बिदा भई बहु
दरब लै गई कुअरि के धाम । आठ मास दुरि तह रही लखी
न दूसर बास ॥ १९ ॥ ॥ चौपई ॥ नवमा मास चढ़त जब
भयो । ताकह भेस नारि को कयो । लै रानी कह ताहि
दिखायो । सभहिन हेरि हियो हलसायो ॥ २० ॥ जो मै
कहो सुनहु त्रिप नारी । इह सौपहु तुम अपनि दुलारी । राजा
साथ न भेद बखानो । मेरो वचन सत्ति करि मानो ॥ २१ ॥
जो इस कौ राजा लहि लैहै । भूलि तिहारो धाम न ऐहै ।
लै याकौ करिहै निजु नारी । मुख बाएँ रहि हो तुम
प्यारी ॥ २२ ॥ भली कही तुहि ताँहि बखानी । त्रिप
चरित गति किनूँ न जानी । तिह को भवन सुता के राखा ।
भेद न मूल त्रिपति तन भाखा ॥ २३ ॥ चहत हुती त्रिप सुता
सु भई । इह छल सो सहचरि छलि गई । ताकह प्रगट धाम
महि राखा । त्रिपहि भेद कोऊ त्रिपहिन भाखा ॥ २४ ॥
॥ दोहरा ॥ इह चरित तिह चंचला लह्यो आपनो यार ।
सभ त्रिप मुख बाएँ रही सका न कोऊ बिचार ॥ २५ ॥ सुर

दिया और तत्काल विदा किया ॥ १८ ॥ ॥ दोहा ॥ वह विदा हुई और द्रव्य
ले कुँवर के पास पहुँची । आठ महीने तक छुपी रही और दूसरी स्त्री को
देखा तक नहीं ॥ १९ ॥ ॥ चौपाई ॥ नौवाँ महीना जब चढ़ा तो उस (पुरुष)
का वेश नारी का बनाया । उसे लाकर रानी को दिखा दिया जिसे देखकर
सभी प्रसन्न हो उठे ॥ २० ॥ हे राजा की स्त्रियो, जो मैं कह रही हूँ उसे सुनो,
इसे तुम अपनी पुत्री को सौंप दो । राजा को बताना भी मत और मेरा
कहना सत्य कर जानना ॥ २१ ॥ यदि राजा इसे देख लेगा तो भूलकर वह
तुम्हारे घर भी नहीं आएगा । इसे अपनी स्त्री बना लेगा और तुम मुँह फाड़
देखती रहोगी ॥ २२ ॥ सबने कहा कि भला हुआ जो तुमने बता दिया ।
स्त्री के प्रपंच को कोई नहीं समझ सका । उसको पुत्री के घर पर रखा
और राजा को तनिक भी भेद नहीं बताया ॥ २३ ॥ राजा की पुत्री जो
चाहती थी वही हुआ और इस छल से उसने सब सखियों को छल लिया ।
उसको खुले आम घर में रखा और किसी भी स्त्री ने राजा को भेद नहीं
बताया ॥ २४ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रपंच से उस स्त्री ने अपना प्रेमी पाया और
सभी स्त्रियाँ मुख देखती रहीं कोई भी न जान सका ॥ २५ ॥ देव, मुनि,

मुनि नाग भुजंग सभ नर बपुरे किन माहि । देव अदेव त्रियान
के भेद पछानत नाहि ॥ २६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ अठासी चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २८८ ॥ ५४७६ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ ननानवें चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ सुना शहिर बगदाद के दच्छिनसेन नरेस ।
दच्छिन दे ताके तरुनि रहत सु रति के भेस ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ कमलकेतु इक शाहु बसत तह । जा सम दूसर
भयो न सहि सह । तेजवान बलवान धरती । जाहिर चहैं
ओर सहि छली ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब रानी तिह कुअर
को रूप बिलोका नैन । रही मगन हवै मैन मद बिसरि गई
मुनि ऐन ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ चतुर सहचरी कुअरि हकारी ।
आनि कुअरि तन किअस जुहारी । चित को भेद सकल
तिहँ दीयो । वाके तीर पठावन कीयो ॥ ४ ॥ बार न लगी
सखी तह आई । आन कुअरि तन त्रिया जताई । को पर

नाग, मनुष्य आदि किस खेत की मूली हैं । बड़े-बड़े देव-दैत्य भी त्रियाओं के
रहस्यों को नहीं पहचान सके ॥ २६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ अठ्ठासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८८ ॥ ५४७६ ॥ अफजूं ॥

दो सौ नवासीवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ बगदाद का दक्षिणसेन राजा था । उसकी स्त्री दक्षिणदेवी
रति-रूप में उसके साथ रहती थी ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ वहाँ कमलकेतु
नामक एक धनी रहता था जिसके समान दूसरा कोई भी धरती पर नहीं था ।
वह तेजवान, बलवान अस्त्र-शस्त्रों को धारण करनेवाला चारों ओर प्रसिद्ध
था ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ रानी ने जब उस कुँवर का रूप देखा वह कामाशक्त
हो उठी और उसे घर की सुधि भी भूल गई ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने एक
चतुर दासी को बुलाया जिसने फौरन् आ प्रणाम किया । उसे चित्त की
समस्त बात कहकर उसे उस कुँवर के पास भेजा ॥ ४ ॥ जरा भी समय न
बीता और सखी वहाँ आ पहुँची और उसने कुँवर को सब व्यथा कह सुनायी ।
तुम्हारे पर राजा की स्त्री अनुरक्त है । उसकी इस लगन से उसका सारा

अटकत त्रिप त्रिय भई । छूटहु कसब लगन लगि गई ॥ ५ ॥
 अब वह धाम क्रितारथ कीजै । दृयाँ ते चलि वहि (म०प० १२३२)
 ग्रहि पगु दीजै । उठहु कुअर जू बिलस न लैयै । राज तरुनि
 की सेज सुहैयै ॥ ६ ॥ जिह तिह विध ताको सन लीना ।
 आनि मिलाइ कुअरि कह दीना । भाँति भाँति तिन ताहि
 रिझायो । चारि पहर निसि भोग कमायो ॥ ७ ॥ केल
 करत निसि सकल बिहानी । करत काम की कोटि कहानी ।
 भाँति भाँति के आसन करिकै । काम तपत सभ ही कह
 हरिकै ॥ ८ ॥ भोर भयो रजनी जब गई । भाँति भाँति
 चिरई चुहचई । स्रमित भए दोऊ केल कमाते । एकहि सेज
 सोए रस माते ॥ ९ ॥ सोवत त्याग नीदि जब जगे । मिलि
 करि केल करन तब लगे । आसन करत अनेक प्रकारा । कोकहूँ
 ते दस गुन बिसतारा ॥ १० ॥ केल कमात अधिक रस
 मातैं । भूलि गई घर की सुधि सातैं । चित अपनो अस किया
 बिचारा । प्रगट मित्र के साथ उचारा ॥ ११ ॥ सुनहु बात
 प्यारे तुम मेरी । दासी भई आजु मैं तेरी । मेरे तोट दरब
 की नाही । हम तुम आवहु कहूँ सिधाही ॥ १२ ॥ ऐसो जतन
 मित्र कछु करियै । अपने लै मुहि संग सिधरियै । अतिथ भेस

काम-राज छूट गया है ॥ ५ ॥ अब उस घर को कृतार्थ करो और यहाँ से
 चलकर वहाँ चरण डालो । हे कुँवर ! उठो और देर किये बिना राज-स्त्री की
 शय्या पर शोभायमान होइए ॥ ६ ॥ उसने जैसे-तैसे उसका मन जीता और
 रानी से आ मिलाया । उसे भाँति-भाँति से रिझाया और चार प्रहर रात
 तक उसके साथ रमण किया ॥ ७ ॥ केलिक्रीड़ा में सारी रात बीत गई और
 कामलीला की अनेकों कहानियाँ कही गयीं । विभिन्न प्रकार के आसन कर
 कामाग्नि को शान्त किया गया ॥ ८ ॥ प्रातः होने पर अनेकों चिड़ियों ने जब
 चहचहाना शुरू किया तो एक ही शय्या पर मदमस्त सोये दोनों को जगने की
 याद आयी ॥ ९ ॥ नींद त्यागकर जब वे जगे तो फिर मिलकर केलिक्रीड़ा
 करने लगे । वे अब कोक-वर्णित आसनों से भी दस गुना अधिक आसन करने
 लगे ॥ १० ॥ अधिक रसमग्न होकर केलि-क्रीड़ा करते हुआँ को घर की सब
 सुधि भूल गई । उसने चित्त में विचार किया और मित्र को बताया ॥ ११ ॥
 हे प्रिय, तुम मेरी बात सुनो, मैं तो तुम्हारी दासी हो गई हूँ । मेरे पास धन
 की कमी नहीं है, आओ हम तुम मिलकर कहीं निकल चलें ॥ १२ ॥ हे मित्र,
 कुछ ऐसा यत्न करो कि मुझे साथ लेकर कहीं चले चलो । दोनों साधु-वेश

दोऊ धरि लैहै । इक ठाँ बैठ खजाना खैहै ॥ १३ ॥ जार
कह्यो अबला सौ ऐसे । तुहि निकसे लै करि संगि कैसे ।
ठाढे इहाँ अनिक रखवारे । नभ के जात पखेरु मारे ॥ १४ ॥
जौ तुहि मुहि कौ त्रिपति तिहारै । दुहूँअन ठौर मारि कर
डारै । ताते तुम अस करहु उपावै । मुर तुर भेद न दूसर
पावै ॥ १५ ॥ सूर सूर करि गिरी तरनि धरि । जानुक
गई साचु दैकै मरि । हाइ हाइ कह नाथ उचाई । बंद
लए सभ निकटि बुलाई ॥ १६ ॥ सभ बंदन सौ त्रिपति
उचारा । याको करहु कछू उपचारा । जाते रानी भरै न
पावै । बहुरि हमारी सेज सुहावै ॥ १७ ॥ बोलत भी इक
सखी सियानी । जन त्रिय की रति क्रिया पछानी । एक
नारि बंदनी हमारे । जिह आगे क्या बंद बिचारे ॥ १८ ॥
जौ राजा तुम ताहि बुलावो । ताही तें उपचार करावो ।
रानी बचै बिलंब न लावै । बहुरि तिहारी सेज सुहावै ॥ १९ ॥
सोई बात राजै जब मानी । बोल पठाई वहै सयानी । जो
तिन पुरख नारि करि भाखा । ताही कह बंदनि करि
राखा ॥ २० ॥ (म०प्र० १२३३) सखी तबै राजा पहि गई ।
ताहि तरुनि करि ल्यावत भई । जब तिन त्रिय की नारि

कर लेंगे और एक स्थान पर बैठकर खजाना खाते रहेंगे ॥ १३ ॥ यार ने
स्त्री से कहा कि तुम्हें लेकर मैं कैसे निकलूँगा । यहाँ तो इतने पहरेदार हैं
कि आसमान के पक्षी भी मार डाले जा रहे हैं ॥ १४ ॥ यदि राजा मुझे
और तुम्हें देख लेगा तो उसी स्थान पर दोनों को मार डालेगा । इससे तुम
ऐसा उपाय करो कि मेरे और तुम्हारे सिवा अन्य कोई न जाने ॥ १५ ॥
वह 'शूल-शूल' कहकर धरती पर ऐसे गिर पड़ी मानों सच में ही मर
गई हो । वह 'हाय-हाय' कहके अपने पति को पुकारने लगी और उसने सभी
वैद्यों को पास बुला लिया ॥ १६ ॥ राजा ने सब वैद्यों से कहा कि इसका
कुछ उपचार करो ताकि रानी बच जाए और मेरी शय्या की शोभा
बढ़ाए ॥ १७ ॥ एक सयानी दासी, जो रानी की रतिक्रीड़ा को जानती थी,
बोली कि हमारे यहाँ एक स्त्री वैद्य है, उसके सामने पुरुष वैद्य क्या है ॥ १८ ॥
राजन् ! आप उसी को बुलाएँ और उसी से उपचार कराएँ । रानी बच जायगी
और पुनः तुम्हारी शय्या की शोभा बढ़ाएगी ॥ १९ ॥ राजा ने बात मानकर
वही सयानी स्त्री बुलवा भी । उसी पुरुष को नारी-वेश पहनाकर वैद्य बनाकर
रखा हुआ था ॥ २० ॥ दासियाँ सभी राजा के पास से गई और उसी तरुणी

निहारी । राजा सो इह भाँति उचारी ॥ २१ ॥ राज रोग
रानी कह धरियो । जाति सिताबी दूरि न करियो । आठ
बरिस लगि रहै जु कोई । याको दूरि दुख तब होई ॥ २२ ॥
सोई सति त्रिपति करि मानी । जिह बिधि ता सौ जार
बखानी । ताके धाम बैदनी राखी । जो नर तें इसती करि
भाखी ॥ २३ ॥ रैन दिवस ताके सो रहै । भोग कबै तरुनी
जब चहै । मूरख राव भेद नहि पायो । आठ बरिस लगि मुँड
मुँडायो ॥ २४ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह चरित्र तिन चंचला त्रिप
कह छला सुधारि । आठ बरिस मित्रहि भज्यो सक्यो न मूढ़
बिचारि ॥ २५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ ननानवें
चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ २८६ ॥ ५५०१ ॥ अफजूं ॥

अथ दो सौ नब्बे चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ पूरब देस एक त्रिप रहै । पूरबसेन नाम
जग कहै । पूरब दे ताके घर नाही । जा सम लगत न देव
कुमारी ॥ १ ॥ रूपसेन छत्री इक तहाँ । ता सम सुंदर कहूँ
को ले आयी । जब उसने रानी को देखा तो राजा से कहा ॥ २१ ॥ रानी
को राजरोग है जो शीघ्र ही दूर नहीं होगा । आठ वर्ष तक यदि कोई
(इलाज) करे तो यह दुख दूर होगा ॥ २२ ॥ उस यार ने जो कहा राजा ने
वही सत्य मान लिया । उसके निवासस्थान पर वही वैद्य स्त्री रख दी जिसे
पुरुष होते हुए भी स्त्री बताया गया था ॥ २३ ॥ रात-दिन वह वहीं रहता
था और जब वह तरुणी चाहती थी, भोग-विलास करता था । मूर्ख राजा ने
भेद नहीं समझा और आठ वर्ष तक मूर्ख बनता रहा ॥ २४ ॥ ॥ दोहा ॥ इस
प्रपंच से उस स्त्री ने राजा को छला । आठ वर्ष तक मित्र से रमण किया
जिसे वह मूर्ख नहीं समझ सका ॥ २५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ नवासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २८६ ॥ ५५०१ ॥ अफजूं ॥

दो सौ नब्बेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पूर्व देश में पूरबसेन नामक एक राजा रहता था ।
पूरबदेवी उसकी स्त्री थी । देवकुमारियाँ भी उसके समान नहीं थीं ॥ १ ॥

न कहाँ । अप्रमान तिह तेज बिराजै । नरी नागनिन को
मनु लाजै ॥ २ ॥ राज तरुनि जब ताँहि निहारा । मन बच
क्रम इह भाँति बिचारा । कैसे केल सु या संग करौ । नातर
मारि कटारी मरौ ॥ ३ ॥ मित्र जानि इक हितू हकारी ।
ता प्रति चित की बात उचारी । कै इह मुहि तैं देहि मिलाई ।
नातर मुहि न निरखिहैं आई ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ कै सजनी
मुहि मित्र कह अब ही देहु मिलाइ । नातर रानी चित कौ
बहुरि निरखियहु आइ ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ जब इह भाँति
उचारो रानी । जानि गई तब सखी सयानी । याकी लगन
मित्र सौ लागी । ताते नीद भूख सभ भागी ॥ ६ ॥
॥ अड़िल्ल ॥ तनिक न लगी अवार सजन कै घर गई । बहु
बिधि ताहि प्रबोधत तह ल्यावत भई । जह आगे त्रिय बैठी
सेज डसाइकै । हो तही तवन कह हितू निकास्यो
ल्याइकै ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ उठि करि कुअरि अलिगन कियो ।
भाँति भाँति चुंबन तिह लियो । कामकेल रुचि मान कमायो ।
भाँगि अफीम शराब चढ़ायो ॥ ८ ॥ (सू० प्र० १२३४) जब मद
करि मतवारा कियो । भुज तैं पकरि सेज पर दियो । अधिक

वहाँ रूपसेन नामक एक क्षात्रिय था जिसके समान सुन्दर कोई नहीं कहा जाता
था । उसका अपरिमित तेज देखकर मानव और नाग-स्त्रियाँ भी लज्जित
होती थीं ॥ २ ॥ राजकन्या ने जब उसे देखा तो मन-वचन-कर्म से विचार
किया कि या तो इससे किसी प्रकार केलिक्रीडा की जाय अथवा मैं कटार
भोंककर मर जाऊँ ॥ ३ ॥ मित्र मानकर उसने एक हितैषिणी को बुलाया
और उसे अपने मन की बात कही । या तो मुझे इससे मिला दो अथवा तुम
मुझे नहीं देखोगी ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ हे सजनी ! या तो मुझे मित्र से मिला
दो अथवा आने पर तुम मुझे मृत देखोगी ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब रानी ने
यह कहा तो सयानी सखी सब समझ गई । इसकी लगन मित्र से लग गई
थी और इसकी नींद-भूख सब भाग गई थी ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उसने
तनिक भी देरी नहीं लगाई और सजन के घर चली गई और उसे विभिन्न प्रकार
से मनाकर वहाँ को आयी । जहाँ स्त्री शय्या पर बैठी थी वहीं वह उस मित्र
को ले आई ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ कुँवरि ने उठकर अलिगन किया और भाँति-
भाँति से चुंबन लिये । भाँग-अफीम-शराब चढ़ाकर रुचिपूर्वक कामक्रीडा
की ॥ ८ ॥ जब मद्य पीकर वह मतवाला हो गया तो उसे हाथ पकड़कर शय्या
पर पटक लिया । अधिक रुचिपूर्वक उसे गले से लगाया और उछल-उछलकर

मानि रुचि गरे लगायो । उछरि उछरि करि भोग
 कमायो ॥ ९ ॥ एक तरुन दूसर मद मातो । तीसर भोग
 तरुनि के रातो । दुहूँअन मद्ध हार को मानै । चारहु वेद
 भेद इह जानै ॥ १० ॥ जब लिय तरुनि तरुन कह पावै ।
 छिन छतिया ते छोरि न भावै । गहि गहि ताँकह गरे लगावै ।
 चारि पहिर निसि भोग कमावै ॥ ११ ॥ भोग करत तरुनी
 बसि भई । पर की तें वाकी हवै गई । छिन इक छैल न
 छोर्यो जावै । छैलियहि यार छबीलो भावै ॥ १२ ॥
 कोकसार के मतन उचारै । अमल पान करि द्रिढ़ रति धारै ।
 आन पुरख की कानि न करहीं । भाँति भाँति के भोगन
 भरहीं ॥ १३ ॥ पोसत भाँग अफीम मँगावै । एक खाट पर
 बंठि चढ़ावै । हसि हसि करि कोऊ जाँघन लेही । राज तरुनि
 कौ बहु सुख देही ॥ १४ ॥ भोग करत निसि सकल बिसावै ।
 सोइ रहै उठि केलि कमावै । फिरि फिरि लिय आसन कह
 लैकै । भाँति भाँति कै चुंबन कैकै ॥ १५ ॥ भोग करत
 तरुनियहि रिझायो । भाँति अनिक तिन केल मचायो । इह
 विधि हौ हसि ताहि उचारो । कहौ जु तुम सौ सुनहु

रतिक्रीडा की ॥ ९ ॥ एक तो युवक, दूसरा मदमस्त और तीसरा वह तरुणी
 के साथ भोगानुरक्त था । चारों वेद अर्थात् समस्त ज्ञान यह मानता है कि
 अब भला दोनों में कौन हारनेवाला था ॥ १० ॥ जब तरुणी स्त्री तरुण पुरुष
 पा जाती है तो उसे क्षण भर भी छाती से अलग नहीं करती । पकड़-पकड़
 उसे गले से लगाती है और सारी रात उसके साथ रमण करती है ॥ ११ ॥
 संभोग करते-करते तरुणी वश में हो गई और परकीया से स्वीकीया हो गई ।
 एक क्षण के लिए भी छैल छोड़ा नहीं जा रहा था और उस छैलिनी को वह
 छबीला मन भा रहा था ॥ १२ ॥ कोकसार के मतों को बोलते वे नशा
 पीकर दृढ़तापूर्वक रतिक्रीडा कर रहे थे । वे अब किसी की भी लज्जा नहीं
 मान रहे थे और विभिन्न प्रकार के लोगों से मन भर रहे थे ॥ १३ ॥ पोस्त,
 भाँग, अफीम मँगाकर एक ही पलंग पर बैठे चढ़ा रहे थे । हँस-हँसकर दोनों
 जंघाओं को पकड़कर वह राजस्त्री को अत्यंत सुख दे रहा था ॥ १४ ॥
 रतिक्रीडा में ही सारी रात बिताते थे और सोते से उठकर केलिक्रीडा करने
 लग जाते थे । बार-बार आसन और भाँति-भाँति के चुंबन लेकर ॥ १५ ॥
 केलिक्रीडा करते हुए उसने तरुणी को रिझाया और अनेक
 प्रकार से प्रणय-लीला की । तब उसने हँसकर उससे कहा कि हे

पयारो ॥ १६ ॥ जब तरुनी संग द्रिड़ रति करी । भाँति
भाँति के भोगन भरी । रीझि तरुनि इह भाँति उचारी ।
मित्र भई मैं दास तिहारी ॥ १७ ॥ अब जौ कहो नीर भरि
ल्याऊँ । बार अनेक बजार बिकाऊँ । जे तुम कहो वहै मै
करिहौ । और किसू ते नैकु न डरिहो ॥ १८ ॥ मित्र बिहसि
इह भाँति उचारा । अब मैं भयो गुलाम तिहारा । तो सो
तरुनि भोग कह पाई । पूरन भई मोरि भगताई ॥ १९ ॥
अब इह बात चित मै मेरे । सो मैं कहत यार संग तेरे । अब
कछु ऐस उपाय बनैये । जाते तोकह सदा हँदैये ॥ २० ॥
अब तुम ऐस चरित बनावहु । जाते मोहि सदा तुम पावहु ।
भेद दूसरो पुरख न पावै । लहै न स्वान न भूसन आवै ॥ २१ ॥
रानी सुनी बात ऐसी जब । बचन कहा हसि करि पिय सौ तब ।
रोम नास तुम बदन लगावहु । सकल नारि को भेस
बनावहु ॥ २२ ॥ रोमांतक (सू० प्र० १२३५) रानियहि मगायो ।
ताके बदन सार लै लायो । सभ ही केस दूरि जब भए ।
ताकह बस्त्र नारि के दए ॥ २३ ॥ बीना दई कंध ताकै पर ।
सुनन नमिति राख्यो ताकौ घर । जब राजा ताके ग्रहि आवै ।

प्यारे ! तुम मेरी बात सुनो ॥ १६ ॥ जब तरुणी के साथ दृढ़तापूर्वक
रतिक्रीडा भाँति-भाँति के भोगों से भरी हुई की, तब तरुणी ने कहा कि हे मित्र !
मैं तुम्हारी दासी हो गई हूँ ॥ १७ ॥ अगर कहो तो तुम्हारा पानी भरूँ या
तुम्हारे लिए हजारों बार बाजार में बिक जाऊँ । तुम जो कहो मैं वही करूँगी
और किसी से तनिक भी नहीं डरूँगी ॥ १८ ॥ मित्र ने भी हँसकर कहा कि
मैं अब तुम्हारा गुलाम हो गया हूँ । तुम्हारी जैसी तरुणी को मैंने भोग के
लिए पाया है, समझो मेरी भक्ति पूर्ण हो गई है ॥ १९ ॥ मेरे चित्त में एक
बात है जो हे प्रिय ! मैं तुमसे कहता हूँ । अब कुछ ऐसा उपाय बनाओ जिससे
मैं सदैव तुम्हारा उपभोग करूँ ॥ २० ॥ अब तुम कुछ ऐसा प्रपंच बनाओ
जिससे तुम हमेशा पाती रहो । दूसरा कोई भी पुरुष भेद न जाने क्योंकि
न कुत्ता देखे न भौंकेने दौड़े ॥ २१ ॥ रानी ने जब यह बात सुनी तो हँसकर
प्रिय से कहा कि बालनाशक दवा तुम अपने शरीर में लगाओ और पूर्ण रूप से
नारी का वेश धारण कर लो ॥ २२ ॥ रानी ने बालनाशक दवा मँगाई और
उसके सारे शरीर पर लगा दी । जब उसके सब बाल नष्ट हो गये तो उसे
स्त्री के वस्त्र दिये ॥ २३ ॥ उसने उसके कंधे पर वीणा रखवा दी और उसे
सुनने के लिए घर पर ही रख लिया । जब राजा उसके घर आता तो उस

तब तंत्री सौ बैठि बजावै ॥ २४ ॥ राज बीन सुनि त्रिय तिह
 मानै । पुरख वाहि इसत्री पहिचानै । ताको हेरि रूप
 ललचाना । घर बाहर तजि भयो दिवाना ॥ २५ ॥ इक दूती
 तब राइ बुलाइसि । अधिक दरब दै तहाँ पठाइसि । जब
 रानी ऐसे सुनि पाई । बचन कहा तासो मुसकाई ॥ २६ ॥
 जिनि तोको राजा यह बरै । हम सो नेहु सकल तजि डरै ।
 मैं अपने संग लै तुहि स्वैहों । चित के सकल शोक कह
 खवैहों ॥ २७ ॥ जो तापहि त्रिप सखी पठावै । सो चलि
 तीर तवन के आवै । रानी के संग सोत निहारै । इह बिधि
 त्रिप सो जाइ उचारै ॥ २८ ॥ रानी त्रिपति भेद लख गई ।
 ताते वहि छोरत नहि भई । अपने संग ताहि लै सोई । हमरो
 दाव न लागत कोई ॥ २९ ॥ जब इह भाँति त्रिपति सुनि पावै ।
 तह तिह आपु बिलोकन आवै । त्रिय सो सोत जार को हेरै ।
 निहफल जाइ तिनै नहि छेरै ॥ ३० ॥ माथो धुन्यो त्रिपति
 यौ कहियो । हमरो भेद रानियहि लहियो । ताते याहि संग
 लै सोई । मेरी घात न लागत कोई ॥ ३१ ॥ उन रानी ऐहो
 तब कीयो । भेद भाखि सखियन सभ दीयो । जो इह सोत

तन्त्री-वादक से बजवाया जाता ॥ २४ ॥ राजा उसकी वीणा सुनकर उसे
 स्त्री मानता और वह स्त्री (राजा की स्त्री) उसे पुरुष जानती थी । राजा
 उसका रूप देखकर ललचा गया और घर-बाहर (का ख्याल) छोड़कर दीवाना
 हो गया ॥ २५ ॥ राजा ने एक दूती को बुलाया और उसे बहुत सा धन देकर
 वहाँ भेजा । जब रानी ने यह सुना तब उससे मुस्कुराकर कहने लगी ॥ २६ ॥
 कहीं ऐसा न हो कि यह राजा तुम्हारा वरण कर ले और मुझसे स्नेह त्याग दे ।
 मैं तुम्हें साथ लेकर सोऊँगी और चित्त का शोक नष्ट करूँगी ॥ २७ ॥ राजा
 उसके पास जिस दासी को भेजता था, वह आती और उसे रानी के साथ शयन
 करते देखकर राजा से कह देती ॥ २८ ॥ रानी राजा का आशय समझ
 गई है और इसी से उसे नहीं छोड़ रही है । वह उसे अपने साथ लेकर सो
 रही है और मुझे अवसर हाथ नहीं लग रहा है ॥ २९ ॥ जब राजा यह सुनता
 तो स्वयं देखने आता । वह स्त्री के साथ यार को सोए देखता पर वह उसे
 न छेड़ता और उसका प्रयत्न बेकार जाता ॥ ३० ॥ राजा ने माथा धुना और
 कहा कि रानी को मेरा भेद पता लग गया है । तभी यह उसे साथ ले सो रही
 है और मुझे मौका नहीं लग रहा है ॥ ३१ ॥ तब उस रानी ने ऐसा किया कि
 सब दासियों को भेद बता दिया कि राजा यदि इसे अन्यत्र सोता पायगा तो

अनत त्रिप पावै । पकरि भोगवे काज मँगावै ॥ ३२ ॥ मैं
 सोवत ताते इह संगी । अपने जोर अंग सो अंगी । भली भली
 इसतिन सभ भाखी । ज्यों त्यों नारि ताह ते राखी ॥ ३३ ॥
 दिन देखत रानी तिह संगी । सोवत जोर अंग सो अंगी ।
 मूरख राव भेद नहि पावै । कोरो अपनो मुँड
 मुँडावै ॥ ३४ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सो नव्वे चरित्र
 समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ २६० ॥ ५५३५ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ इक्यानवो चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ पछिमावती नगर इक सोहै । पसचिम
 सैन त्रिपति तह को है । पसचिम दे रानी ताके घर । रहत
 पंडिता सकल लोभि करि ॥ १ ॥ अधिक रूप रानी को रहै ।
 जग तिह दुतिच चंद्रमा कहै । ता पर रीझि त्रिपति की भारी ।
 जानत ऊच नीचि पनिहारी ॥ २ ॥ (५०५०१२३६) तह इक हुतो
 राइ दिलवाली । जानक दूसर साहै माली । मो पहि जात न
 प्रभा बखानी । उरझि रही दुति हेरत रानी ॥ ३ ॥ तासौ

इसके साथ रतिक्रीडा करने के लिए इसे पकड़ मँगाएगा ॥ ३२ ॥ इसीलिए
 मैं इसके अंगों के साथ अंग जोड़कर सो रही हूँ । सब स्त्रियों ने “ठीक, ठीक”
 कहा और जैसे-तैसे उस स्त्री को राजा से वचाया ॥ ३३ ॥ अब दिन-दहाड़े
 रानी उसके अंगों से अंग जोड़कर सोती थी । मूर्ख राजा रहस्य नहीं समझ पा
 रहा था और अपना सिर मुँडवा रहा था ॥ ३४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ नव्वे
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६० ॥ ५५३५ ॥ अफजूं ॥

दो सौ इक्यानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पश्चिमावती नामक नगर में पश्चिमसेन नामक एक
 राजा था । उसकी रानी पश्चिमदेवी थी जिसे देखकर सभी विद्वद्गण
 ललचाया करते थे ॥ १ ॥ रानी अत्यधिक रूपवान थी और संसार उसे जगत
 में दूसरा चन्द्रमा मानता था । सभी लोग जानते थे कि राजा उस पर अधिक
 मोहित है ॥ २ ॥ वहाँ दिलवाली राय था जो हिमालय की तरह शोभायमान
 था । मुझसे उसकी प्रभा का बखान नहीं किया जाता । रानी उसकी छवि

अधिक सनेह बढ़ायो । एक दिवस ग्रहि बोलि पठायो । सो तब ही सुनि बच पह गयो । भेटत राजकुअरि कह भयो ॥ ४ ॥ पोस्त भाँग अफीम मँगाई । एक सेज पर बैठि चढ़ाई । जब मद सो मतवारे भए । तब ही शोक बिसरि सभ गए ॥ ५ ॥ एक सेज पर बैठि कलोलहि । रस की कथा रसिक मिलि बोलहि । चुंबन और अलिंगन करहीं । भाँति भाँति के भोगन भरहीं ॥ ६ ॥ रानी रमत अधिक उरझाई । भोग गए दिलवाली राई । चित अपने इह भाँति बिचारो । मैं याही के संग सिधारो ॥ ७ ॥ राज पाट मेरे किह काजा । मोकह नही सुहावत राजा । मैं साजन के साथ सिधैहौ । भली बुरी सिर माँझ सहैहौ ॥ ८ ॥ जहा सिंघ मारत बन साही । सुना देहरा एक तहाँ ही । चड़ि झंपान तिह ठौर सिधाई । मित्रहि तही सहेट बताई ॥ ९ ॥ महाँ गहिर बन मै जब गई । लघु इच्छा कह उतरत भई । तह ते गई मित्र के संग । छित मै डारि खोण के रंगा ॥ १० ॥ जब त्रिय साथ सजन के गई । तब अस सखी पुकारत भई । लए सिंघ रानी कह जाई । कोऊ आनि लेहु छुटकाई ॥ ११ ॥

देखकर उसमें उलझ गई ॥ ३ ॥ उससे अत्यधिक स्नेह बढ़ाया और एक दिन उसे घर बुलाया । वह वचन सुनकर तुरन्त गया और राजकुँवरि से मिला ॥ ४ ॥ पोस्त, भाँग, अफीम मँगाई गई और एक ही पलंग पर बैठकर पी गई । जब मदमस्त हो गये तो सभी दुःख विस्मृत हो गये ॥ ५ ॥ वे एक शय्या पर बैठकर किल्लोल करने लगे और मिलकर रस की कथा-वार्ता कहने लगे । चुंबन और अलिंगन करते हुए वे विभिन्न प्रकार के भोग-विलास करने लगी ॥ ६ ॥ रानी दिलवाली राय से रमण करते अत्यधिक अनुरक्त हो गई । उसने मन में सोचा कि मैं इसी के साथ चली जाऊँगी ॥ ७ ॥ राजपाट मेरे किस काम का है । मुझे राज अच्छा नहीं लगता है । मैं तो सजन के साथ ही जाऊँगी और भला-बुरा जो होगा सहैंगी ॥ ८ ॥ जहाँ वन में शेर आदि हैं, सुना है वहाँ एक मंदिर था । पालकी में सवार हो वहाँ चली गई और मित्र को भी वहाँ बुला लिया ॥ ९ ॥ जब घोर वन में पहुँची तो लघुशंका के लिए पालकी में से उतरी । वहाँ से वह मित्र के साथ चली गई और धरती पर उसने रक्त जैसा रंग फैला दिया ॥ १० ॥ जब वह सजन के साथ चली गई तो स्त्रियाँ इस प्रकार चिल्लाने लगीं— शेर रानी को ले जा रहा है, कोई आकर छुड़ा दो ॥ ११ ॥ शूरो ने शेर का नाम सुना और भयभीत हो उठे । उन्होंने

सूरन सिंघ नाम सुनि पायो । तसत भए अस करन उचायो ।
जाइ भेद राजा तन दयो । लै करि सिंघ रानियहि
गयो ॥ १२ ॥ त्रिप धुनि सोस बाइ मुख रहा । होनहार
भ्यो होत सु कहा । भेद अभेद कछू नहि पायो । लै रानी
कह जार सिधायो ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ इक्यानवो चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६१ ॥ ५५४८ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ बानवें चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ उत्तर सिंघ त्रिपति इक भारो । उत्तर
दिसि को रहत त्रिपारो । उत्तरमती धाम तिह नारी । जा
सम कान सुनी न निहारी ॥ १ ॥ तहाँ लहौरी राइक आयो ।
रूपवान सभ गुनन सवायो । जब अबला तिह हेरत भई ।
तत छिन सभ सुधि बुधि तजि दई ॥ २ ॥ उर अँचरा अँगिया
न सँभारै । कहब कछू हवै कछू (म० पं० ११३७) उचारै ।
पिय पिय रटत सदा मुख रहै । निस दिन जल अखियाँ ते
बहै ॥ ३ ॥ पूछन ताहि राइ जब आवै । मुहौ न भाखि

राजा से जाकर कहा कि रानी को शेर ले गया है ॥ १२ ॥ राजा सिर धुन
कर मुँह फाड़े खड़ा रहा और कहने लगा कि होनहार हो गई, उसे कौन रोक
सकता था । उसने रहस्य को नहीं समझा और प्रेमी, रानी को लेकर चलता
बना ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ इक्यानववें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६१ ॥ ५५४८ ॥ अफजूं ॥

दो सौ बानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ उत्तरसिंह एक भारी राजा उत्तर दिशा में रहता था ।
उसके घर उत्तममती नामक रानी थी, जिसके समान कभी कोई (स्त्री) देखी-
सुनी नहीं गई थी ॥ १ ॥ वहाँ एक लाहौरी राय आया जो रूप और गुण से
भरपूर था । जब स्त्री ने उसे देखा तो तत्क्षण, सुध-बुध भूल गई ॥ २ ॥
उससे आँचल और कंचुकी नहीं सँभल रही थी और वह कहना कुछ होता था
कह कुछ जाती थी । वह सदा प्रिय-प्रिय रटा करती थी और आँखों से अश्रु
बहते रहते थे ॥ ३ ॥ जब राजा उससे कुछ पूछने आता तो वह मुख से कुछ

उत्तरहि दयावै । झूम झूमि झट दै छित झरै । बार बार पिय
 शब्द उचरै ॥ ४ ॥ अदभुत हेरि राइ ह्वै रहै । सखियन सौ
 ऐसी बिधि कहै । या अवला कौ कस ह्वै गयो । जाते हाल
 ऐस इह भयो ॥ ५ ॥ याकौ कौन जतन अब करै । जाते यह
 रानी नहि मरै । जो वह माँगै सो मैं दैहौ । रानी निमिति
 करवतहि लैहौ ॥ ६ ॥ सिर करि तिह आगै जल भरौ ।
 बार बार ताके पग परौ । जो रानी का रोग मिटावै । रानी
 सहित राज कह पावै ॥ ७ ॥ जो रानी का रोग मिटावै ।
 सो नर हम कह बहुरि जियावै । अरध राज रानी जुत लेई ।
 एक रात्रि हम कह त्रिय देई ॥ ८ ॥ एक दिवस बहु राज
 करावै । रानी के संग भोग कमावै । दूसर दिन हम राज
 कमावहि । लै अपनी इसलियहि बजावहि ॥ ९ ॥ जब बहु
 बिधि त्रिप ऐस उचरा । सहचरि एक जोर दोऊ करा ।
 यौ राजा सौ बचन उचारे । सु मैं कहत हौ सुनहु
 पयारे ॥ १० ॥ एक बैद तुम ताहि बुलावौ । ताँते इह
 उपचार करावो । सो छिन मै याको दुख हरिहै । रोगनि
 तें सु अरोगनि करिहै ॥ ११ ॥ जब राजे ऐसे सुनि पावा ।

न कहकर किसी से उत्तर कहलवा देती थी । झूम-झूमकर वह धरती पर
 गिर पड़ती थी और बार-बार “प्रिय-प्रिय” शब्द का उच्चारण किया करती
 थी ॥ ४ ॥ राजा यह देखकर हैरान रह जाता था और दासियों को कहता
 था कि इस रानी को क्या हो गया है, जिससे इसका ऐसा हाल हो गया है ॥ ५ ॥
 कौन ऐसा प्रयत्न कर सकता है जिससे यह रानी न मरे । जो कोई माँगेगा
 मैं वही दे दूँगा और रानी के लिए करवत ले लूँगा ॥ ६ ॥ इसके लिए सिर
 पर पानी भरूँगा और बार-बार उसके पैर पड़ूँगा । जो रानी का रोग मिटा
 देगा उसे मैं रानी-समेत राज्य दे दूँगा ॥ ७ ॥ जो रानी का रोग मिटा देगा
 समझ लो वह मुझे पुनः जीवित करेगा । एक रात के लिए यह स्त्री ठीक
 करके मुझे दे दे तो रानी-समेत आधा राज दे दूँगा ॥ ८ ॥ एक दिन के लिए
 वह राज करे और रानी के साथ रमण करे । दूसरे दिन राज हम ले लेंगे पर,
 स्त्री उसकी कहलाएगी ॥ ९ ॥ जब राजा ने इस प्रकार बहुत बार कहा तो
 एक दासी ने हाथ जोड़कर जो कहा, हे प्रिय, वह मैं कहता हूँ ॥ १० ॥ तुम
 एक वैद्य बुलाओ और उससे इसका इलाज कराओ । वह क्षण में इसका
 रोग दूर कर इसे नीरोग कर देगा ॥ ११ ॥ जब राजा ने यह सुना तो
 तत्काल उसे बुला मँगाया । रानी की नाड़ी देखकर सुखदायक वैद्य

तत छिन ताकह बोलि पठावा । रानी की नाटिका दिखाई ।
 बोला बैद देखि सुखदाई ॥ १२ ॥ दुख जौनै इह तरुनि
 दुखाई । सो दुख तुम सो कह्यो न जाई । जान माफ हमरी
 जो कीजै । पाछे बात सकल सुनि लीजै ॥ १३ ॥ या रानी
 कह काम सँतायो । तुम नहि इह संग भोग कसायो । ताते
 याहि रोग गहि लीना । हम ते जात उपाव न कीना ॥ १४ ॥
 यह मद मत्त मैन लिय भरी । तुम क्रीड़ा इह साथ न करी ।
 अब यह अधिक भोग जब पावै । याको सोग दूर हवै
 जावै ॥ १५ ॥ इह तुम तब उपचार करावो । बचन हाथ
 मोरे पर द्यावो । जब इह दुख मैं दूर कराऊँ । अरध राज
 रानी जुत पाऊँ ॥ १६ ॥ भली भली राजै तब भाखी ।
 हमहूँ इह हिरदै मथि राखी । प्रथम रोग तुम याहि मिटावो ।
 अरध राज रानी जुत पावो ॥ १७ ॥ प्रथमहि बचन त्रिपति ते
 लिया । पुनि उपचार (मू०ग्रं० १२३८) तरुनि को किया ।
 भोग कियो लिय रोग मिटायो । अरध राज रानी जुत
 पायो ॥ १८ ॥ अरध राज इह छल तिह दियो । रानी
 भोग मित्र संग कियो । मूरख नाह नाहि छल पायो । प्रगट
 आपनो मूँड मुँडायो ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल रानी

बोला ॥ १२ ॥ जिस दुख से यह तरुणी दुखी है वह दुख तुमसे कहा नहीं जा
 सकता । पहले मुझे प्राणदान दो तब मेरी बात सुन लो ॥ १३ ॥ यह रानी
 कामासक्त है और तुमने इसके साथ रतिक्रीड़ा नहीं की है । इसी से इसे रोग ने
 पकड़ लिया है । मुझसे अब इसका उपाय नहीं किया जाता ॥ १४ ॥ यह स्त्री
 तो भयानक रूप से मदमस्त है और काम से पूर्ण है । तुमने इसके साथ
 रतिक्रीड़ा नहीं की है । अब जब यह अधिक भोग ली जायगी तो इसका कष्ट
 दूर हो जायगा ॥ १५ ॥ तुम मुझे वचन देकर इसका यही उपचार कराओ ।
 जब मैं इसका यह दुख दूर कर दूँ तभी रानी-समेत आधा राज्य प्राप्त
 कहेगा ॥ १६ ॥ राजा ने 'ठीक-ठीक' कहकर कहा कि मैंने भी हृदय में यही
 सोच रखा है । पहले तुम इसका रोग नष्ट करो और फिर रानी-समेत
 आधा राज्य प्राप्त करो ॥ १७ ॥ पहले राजा से वचन लिया और फिर
 तरुणी का उपचार किया । रमण करके स्त्री का रोग मिटा दिया और रानी
 समेत आधा राज्य प्राप्त किया ॥ १८ ॥ छल से उसे आधा राज (स्त्री ने दिला)
 दिया और मित्र के साथ रानी ने रमण भी किया । मूर्ख पति (रहस्यपूर्ण)
 छल को नहीं समझ सका और प्रकट में ठगा गया ॥ १९ ॥ ॥ दोहा ॥ इस

त्रिप छला रमी मित्त के साथ । अरध राज ताको दिया भेद न पायो नाथ ॥ २० ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि अरध राज तिह दीयो । मूरख पति कह असि छलि लीयो । इक दिन रनियहि जार बजावै । अरध राज तिह आप कमावै ॥ २१ ॥ इक दिन आवै त्रिप कै धामा । इक दिन भजै जार कौ बामा । इक दिन राजा राज कमावै । जार छल दिन दुतिय ढरावै ॥ २२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ बानवें चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६२ ॥ ५५७१ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ तरानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ राजपुरी नगरी है जहाँ । राजसेन राजा इक तहाँ । राजदई ताके ग्रहि नारी । चंद्र लई जाते उजियारी ॥ १ ॥ त्रिप सौ अति त्रिय को हित रहै । सोई करत जु रानी रहै । और नारि के धाम न जावै । अधिक नार के त्रास तसावै ॥ २ ॥ रानी की आग्या सभ मानै ।

छल से रानी ने राजा को छला और मित्त के साथ रमण किया । उसे आधा राज दे दिया और उसका स्वामी उसका रहस्य न जान सका ॥ २० ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार आधा राज उसे दे दिया और मूर्ख पति को छला । एक दिन यार रानी के साथ रमण करता और आधा राज करता ॥ २१ ॥ एक दिन वह राजा के घर आती और एक दिन वह स्त्री उस यार द्वारा भोगी जाती थी । एक दिन राजा राज करता था और दूसरे दिन वह यार छल झुलाता था ॥ २२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ बानबेवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६२ ॥ ५५७१ ॥ अफजूं ॥

दो सौ तिरानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ राजपुरी नगरी में राजसेन राजा था । उसके घर में राजदेवी रानी थी जिससे चन्द्रमा ने उजाला लिया था ॥ १ ॥ स्त्री का राजा से अत्यन्त स्नेह था और वह भी जो वह स्त्री कहती थी वही करता था । वह अन्य स्त्रियों के घर नहीं जाता था और उस स्त्री से सभी भयभीत रहते थे ॥ २ ॥ सभी रानी की आज्ञा मानते थे और राजा को कुछ नहीं

राजा को करि कछू न जानै । मार्यो चहत नारि तिह मारै ।
 जिह जानै तिह प्रान उबारै ॥ ३ ॥ बेस्वा एक ठौर तिह आई ।
 तिह पर रहे त्रिपति उरझाई । चहत चित्त महि ताहि बुलावै ।
 निजु नारी के त्रास त्रासावै ॥ ४ ॥ जब रानी ऐसे सुनि पाई ।
 इहै चित्त अपने ठहराई । जो मैं धाम जार के जाऊँ ।
 त्रिपन कहै कछु माफ कराऊँ ॥ ५ ॥ रैनि समै जब तह त्रिप
 आए । इह बिधि रानी बचन सुनाए । मो ते ताहि सुंदरि
 तिह जानौ । जासो प्रीति राइ तुम ठानो ॥ ६ ॥ ताते अधिक
 रोख मुहि भयो । बेस्वा के राजा ग्रहि गयो । इह अपनी
 भगनियहि न भजो । मो सो प्रीति नतर तुम तजो ॥ ७ ॥
 जौ तुम बेस्वा के ग्रहि जैहो । काम भोग तिह साथ कमैहो ।
 तब मै धाम जार के जैहो । तेरे फूलि डारि सिर ऐहो ॥ ८ ॥
 प्रथम बात मुहि यह लिखि (म० प्र० १२३६) द्यावहु । जिह
 जानहु तिह बहुरि बुलावहु । जिह चाहै तिह हौहूँ बुलावौ ।
 काम केल तिह साथ कमावौ ॥ ९ ॥ जब इह भाँति सुने त्रिप
 बैना । जोरि रहा नैनन सो नैना । चुप हवै रहा कछू नहि
 कह्यो । तवन भेद इसत्नी इन लह्यो ॥ १० ॥ मोरी लगन

समझते थे । रानी जिसे मारना चाहती थी मार देती थी और जिसे चाहती
 थी उसे छोड़ देती थी ॥ ३ ॥ वहाँ एक वेश्या आई जिस पर राजा आसक्त
 हो गया । वह अब जिसे चाहता था बुलाता था और अपनी स्त्रियों को
 दुखी करता था ॥ ४ ॥ जब रानी ने यह सुना तो मन में निर्णय किया कि
 यदि मैं अपने किसी यार के घर जाया करूँ तो राजा की इस आदत को कुछ
 कम करूँगी ॥ ५ ॥ रात को जब राजा वहाँ आया तो रानी ने कहा कि तुम
 उस स्त्री को मुझसे भी अधिक सुन्दर जानते हो जिसके साथ प्रेम करते
 हो ॥ ६ ॥ मुझे इस कारण अत्यधिक क्रोध हुआ है कि राजा वेश्या के घर
 जाता है । इस अपनी बहन (वेश्या) के साथ प्रेम मत करो अन्यथा मेरे साथ
 प्रेम का त्याग करो ॥ ७ ॥ यदि तुम वेश्या के घर जाकर उसके साथ रति-
 क्रीड़ा करोगे तो मैं भी अपने यार के घर जाऊँगी और उसके साथ कामलीला
 कर तुम्हारे सिर पर मिट्टी डालूँगी ॥ ८ ॥ पहले तुम मुझे यह लिख दो
 और फिर जिसे चाहो बुलाओ । तुम जिसे चाहो बुलाओ और काम-क्रीड़ा
 करो ॥ ९ ॥ राजा ने जब यह बात सुनी तो उसकी आँखों से आँखें मिलाई ।
 वह चुप रहा और समझने लगा कि इस स्त्री को रहस्य का पता लग गया
 है ॥ १० ॥ मेरी लगन उधर लग गई है तभी इस रानी ने ऐसा सोचा ।

उतै लगि गई । तब रानी असि बात ठटई । ताको करिये कवन उपाई । मुहि ते तजी न बेस्वा जाई ॥ ११ ॥ अब यह बात रानियहि गही । मोरि प्रीति बेस्वा संग लही । वा बिनु मोसौ रह्यो न जाई । ताहि भजे कर ते त्रिय जाई ॥ १२ ॥ जब त्रिप फिर रानी के आयो । तब रानी इह भाँति सुनायो । तुहि बेस्वा के ग्यो सुनि पैहौ । तब मैं भोग जार सौ कहौ ॥ १३ ॥ अब तुम हवै त्रिधात पिय गए । ताते सुत ग्रहि होत न भए । जब भजि है जु लोग इह बामा । हवैहै पूत तिहारो धामा ॥ १४ ॥ तब राजै यौ ह्निदै बिचारी । भली बात रानियहि उचारी । ताकौ भोग माफ लिखि दीयो । आप गवन बेस्वा के कीयो ॥ १५ ॥ जब राजा बेस्वा के जावै । जिह चाहै तिह नारि बुलावै । काम भोग तो सौ द्रिड़ करई । ह्निदै त्रिपति की शंक न धरई ॥ १६ ॥ रानी बेस्वहि आपु बुलायो । इह छल राजा तो लिखिवायो । जिह चाहै तिह बोलि पठावै । काम भोगि रुचि मानि कमावै ॥ १७ ॥ मूरख भेद न राजै पायो । इह

इसका कुछ उपाय किया जाय, मुझसे तो वेश्या छोड़ी नहीं जायगी ॥ ११ ॥ रानी ने यह बात पकड़ ली है और वेश्या के साथ मेरी प्रीति पकड़ ली है । मुझसे उसके बिना रहा नहीं जायगा और उसके साथ रमण करता हूँ तो मेरी स्त्री हाथ से जाती है ॥ १२ ॥ जब राजा फिर रानी के पास आया तब रानी ने फिर कहा कि तुम्हें वेश्या के पास जाते हुए यदि मैंने सुना तो मैं अपने यार के साथ रमण करूँगी ॥ १३ ॥ हे प्रिय, अब तुम वीर्य-विहीन हो गए हो, इसी से तुम्हारे घर में पुत्र उत्पन्न नहीं हो रहे हैं । जब तुम्हारी इस पत्नी से लोग रतिक्रीड़ा करेंगे तभी तुम्हारे घर में पुत्र पैदा होगा ॥ १४ ॥ तब राजा ने सोचा कि रानी ने तो ठीक ही कहा है । उसे पर-पुरुष-भोग माफ़ कर दिया और स्वयं वेश्या के यहाँ चला गया ॥ १५ ॥ जब राजा वेश्या के पास गया तो स्त्री मन-मरजी से पुरुषों को बुलाने लगी । तब वह उनसे कामक्रीड़ा करती थी और हृदय में राजा की तनिक भी शंका नहीं करती थी ॥ १६ ॥ रानी ने वेश्या को स्वयं बुलाया था और छलपूर्वक राजा से वचन लिखवा लिया था । वह जिसे चाहती थी बुला लेती थी और रुचिपूर्वक काम-क्रीड़ा करती थी ॥ १७ ॥ मूर्ख राजा रहस्य न समझा और छला गया ।

छल अपनो मूँड मुडायो । अबला ऐसो चरित बनयो । पति ते भोग साफ करि लयो ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ तिरानवों चरित्र समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २६३ ॥ ५५८६ ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ चुरानवों चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ अनदावती नगर इक सुना । आनदसेन त्रिपति बहु गुना । अनदावती सदन तिह बाला । जगत भयो ताते उजियाला ॥ १ ॥ अधिक रूप बिधिना तिह कीना । जा सम रूप न दूसर दीना । आयो पुरख एक तब बनो । रानी ते सुंदरि थो घनो ॥ २ ॥ जब अबला तिह रूप निहारा । सदन बान ताके तन मारा । रीझि रही सुंदरि मन माही । घर बाहर की कछु सुधि नाही ॥ ३ ॥ पठै हितू इक ताहि बुलावा । काम भोग तिह साथ कमावा । मन मानत आसन (मू०ग्रं० १२४०) तिह दए । चुंबन और अलिगन लए ॥ ४ ॥ अधिक मित्र रानी कह भायो । इह बिधि ताहि प्रबोध जनायो । कहा उजारि जहाँ बड अहीं । आसन लाइ स्त्री ने ऐसा प्रपंच किया कि पति से पर-पुरुष-भोग की माफ़ी लिखवा ली ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ तिरानवेवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६३ ॥ ५५८६ ॥ अफजू ॥

दो सौ चौरानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ आनन्दावती नामक एक नगर में आनन्दसेन नामक एक राजा था । उसके घर में आनन्दावती नामक पत्नी से मानों सारा संसार प्रकाशित था ॥ १ ॥ विधाता ने उसे अत्यधिक रूप दिया था और उसके समान अन्य कोई नहीं था । तब एक पुरुष आया जो रानी से भी सुन्दर था ॥ २ ॥ जब उस स्त्री ने उसका रूप देखा तो वह काम-बाण से बिध गई । सुन्दरी मोहित हो उठी और उसे घर-बाहर की सुधि भूल गई ॥ ३ ॥ एक, हितैषी भेजकर उसे बुलाया और कामक्रीड़ा की । चुंबन और अलिगन लेकर उसे मनमाने आसन प्रदान किये ॥ ४ ॥ रानी को वह मित्र बहुत अधिक भा गया और उसने उससे कहा कि जहाँ घना उजाड़ है तुम वहाँ आसन लगाकर

बैठियो तहीं ॥ ५ ॥ सभ ही अंग बिभूति चडैयहु । द्रुम तर
 बैठे ध्यान लगैयहु । राजा सहित तहाँ हम ऐहैं । तुमैं धाम ज्यों
 त्यों लै जैहैं ॥ ६ ॥ मानि जार सोई बच लयो । भेख अतिथ
 को धारत भयो । आसन एक ब्रिच्छ तर मारा । यौ राजा
 सौ नारि उचारा ॥ ७ ॥ सोवत हुती सुपन में पायो । महाँ
 रुद्र मेरे ग्रहि आयो । पाव साथ तिन मोहि जगायो । अधिक
 क्रिया करि बचन सुनायो ॥ ८ ॥ तुम राजा जू साथ
 उचरियहु । एक बात चित भीतरि धरियहु । एक रखीसुर
 बन महि सुता । ता सम भयो न है कहूँ मुना ॥ ९ ॥ राजा
 सहित जाइ तिह ल्यैयहु । द्वादस बरख संग लै स्वैयहु ।
 निहसंसै घर मै सुत होई । या मै बात न दूजी कोई ॥ १० ॥
 महाँ जती तिह मुनि को जानहु । कहूँ न बिनसा ताहि
 पछानहु । रंभादिक इसली पहिचानी । व्रत ते टरा न रिखि
 व्रतधारी ॥ ११ ॥ हम तुम साथ तहाँ दोऊ जावैं । ज्यों
 त्यों मुनि पाइ पर ल्यावैं । बारह बरिस मोरि संग स्वावहु ।
 निहसंसै घर मै सुत पावहु ॥ १२ ॥ मुनि बच त्रिप उठि ठाढो
 भयो । रानी सहित तवन बन गयो । जह छवँ ब्रिच्छ गगन तन
 रहे । घोर भयानक जात न कहे ॥ १३ ॥ रानी सहित राव

बैठो ॥ ५ ॥ तुम सभी अंगों पर भभूत लगाकर पेड़ के नीचे बैठकर ध्यान
 लगाना । मैं राजा समेत वहाँ आऊँगी और जैसे-तैसे तुम्हें घर ले जाऊँगी ॥ ६ ॥
 मित्र ने कहना मानकर वही किया और फ़कीर का वेश धारण कर लिया ।
 एक पेड़ के नीचे आसन जमा दिया और इधर उस स्त्री ने राजा से कहा ॥ ७ ॥
 सोते में मैंने सपने में देखा है कि महारुद्र मेरे घर आए हैं । उन्होंने पाँव के
 साथ मुझे जगाया है और अत्यधिक कृपापूर्वक कहा ॥ ८ ॥ तुम मन में यह बात
 रखकर राजा से कहो कि एक ऋषि वन में सुनने में आया है, उसके समान
 अन्य कोई मुनि नहीं है ॥ ९ ॥ राजा-सहित जाकर उसे लाओ और बारह
 वर्ष तक उसके साथ शयन करो । अवश्य तुम्हारे घर में पुत्र उत्पन्न होगा ।
 इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १० ॥ उस मुनि को महायती तथा कभी न नष्ट
 होनेवाला जानो । रम्भा आदि स्त्रियाँ भी प्रयत्न कर हार गई हैं, परन्तु वह
 व्रती अपने व्रत से नहीं टला ॥ ११ ॥ हम-तुम दोनों वहाँ चलो और जैसे-तैसे
 मुनि के चरण पकड़ उसे यहाँ ले आएं । उसे बारह वर्ष तक मेरे साथ शयन
 कराओ और निस्संदेह पुत्र प्राप्त करो ॥ १२ ॥ बात सुनकर राजा उठ खड़ा
 हुआ और रानी-समेत उस वन में गया जहाँ भयानक वृक्ष आकाश को छू रहे

तह गयो । हेरत तवन मुनीसहि भयो । नारि सहित पाइन
तिह परियो । चित मै इहै बिचार बिचरियो ॥ १४ ॥ जो
शिव सुपन समैं कहि गयो । सो हम साचु द्विगन लहि लयो ।
ज्यों त्यों करि इह ग्रहि लै जाऊँ । लै रानी के साथ
सुवाऊँ ॥ १५ ॥ ज्यों ज्यों त्रिप पाइन पर परै । त्यों त्यों
मुनि आँखें न उघरै । त्यों राजा सीसहि निहुरावै । ताकह
महाँ मुनी ठहरावै ॥ १६ ॥ जब त्रिप अनिक बार पग परा ।
तब आँखें मुनि दुहैं उघरा । तासौ कहा किह नमिति आयो ।
किह कारन इसल्यी संग ल्यायो ॥ १७ ॥ हम हैं मुनि कानन के
बासी । एक नाम जानत अबिनासी । राजा प्रजा बसत किह
ठौरा । (सू० प्र० १२४१) हम प्रभ के राचे रस बौरा ॥ १८ ॥
यह संपत्ति हमरे किह काजा । जो लै हमें दिखावत राजा ।
हम नहि धाम किसूके जाहीं । बनहीं सहि हरि ध्यान
लगाहीं ॥ १९ ॥ क्रिपा करहु त्रिप धाम पधारो । हमरे बडे
अवन कह टारो । बारह बरिस क्रिपा करि रहियै । बहुरो
मग बन ही को गहियै ॥ २० ॥ जब त्रिप अधिक निहोरा
कियो । तब इह बिधि उत्तरि रिखि दियो । हमरो कहाँ धाम

ये ॥ १३ ॥ रानी समेत राजा वहाँ गया और उसने मुनीश्वर को देखा
स्त्री-समेत वह चरणों में आ पड़ा और चित्त में विचार किया ॥ १४ ॥ जो
शिव ने स्वप्न में कहा वही मैंने सचमुच आँखों से देख लिया है । जैसे भी
हो इसे घर ले जाऊँ और इसे रानी के साथ सुला दूँ ॥ १५ ॥ जैसे-जैसे राजा
पाँव पड़ता था मुनि आँख ही नहीं खोलता था । फिर राजा और सिर झुकाता
था और महामुनि की ओर देखता था ॥ १६ ॥ जब राजा अनेकों बार पाँव
पड़ा तो मुनि ने दोनों आँखें खोलीं । उससे कहा कि किसलिए आए और
स्त्री को साथ लेकर क्यों आये हो ? ॥ १७ ॥ हम तो जंगल के वासी मुनि
हैं और केवल एक परमात्मा का नाम ही जानते हैं । राजा-प्रजा कहाँ रहते
हैं (हमें कुछ पता नहीं) । हम तो प्रभु के रस में मग्न हैं ॥ १८ ॥ हे राजन् !
जो यह सम्पत्ति तुम हमें दिखा रहे हो, हमारे किस काम की है । हम किसी
के घर नहीं जाते और वन में ही ध्यान लगाते हैं ॥ १९ ॥ कृपापूर्वक राजा के
घर चलो और हमारे बड़े पापों को नष्ट करो । बारह वर्ष तक कृपापूर्वक
रहिये और फिर वेशक वन में आ जाना ॥ २० ॥ जब राजा ने अधिक
बिनती की तो ऋषि ने इस प्रकार उत्तर दिया : मेरे पाँव क्यों पकड़ रहे हो,
मेरा तुम्हारे घर में क्या काम है ॥ २१ ॥ हमें शिव ने आपके बारे में बताया

तब काजा । बार बार पकरत पग राजा ॥ २१ ॥ हम कह
 शिव तुहि आपु बतायो । सोवत इहाँ जगाइ पठायो । ताँते
 मानि शंभु को कहो । बारह बरख हमारे रहो ॥ २२ ॥
 शिव की सुनत भयो जब बानी । तब मुनि साथ चलन
 की मानी । राजा के हवै संग सिधारा । रानी सहित सदन
 पग धारा ॥ २३ ॥ खान पान आगै त्रिप धरा । ताँहि
 निरखि रिखि ऐस उचरा । इह भोजन हमरे किह काजा ।
 ए है इन ग्रिहसतन के साजा ॥ २४ ॥ हम इसतिन तन नैन न
 लावहि । इन रस कसन भूल नहि खावहि । बिन हरि नाम
 काम नहि आवै । वेद कतेब यौ भेद बतावै ॥ २५ ॥ तब
 त्रिप ताहि सही मुनि माना । भेद अभेद न मूड़ पछाना ।
 निजु रानी तन ताहि सुवायो । मूरख अपनो मूँड मुडायो ॥ २६ ॥
 निजु कर मूरख सेज बिछावै । ताहि त्रिया के साथ सुवावै ।
 अधिक जती ताकह पहिचानै । भेद अभेद न मूरख जानै ॥ २७ ॥
 जब पति नहि हेरत त्रिय जानै । काम भोग तासो द्रिड़ ठानै ।
 भाँग अफीम अधिक तिह खवारी । चारि पहर रति करी
 पयारी ॥ २८ ॥ भोग करत इक क्रिया बिचारी । ऊपर
 एक तुलाई डारी । त्रिप बैठो मूकियै लगावै । सो अंतर

है और सोते से जगाकर यहाँ भेजा है । शिव का कहना मानो और हमारे
 यहाँ बारह वर्ष तक रहो ॥ २२ ॥ जब मुनि ने शिव की बात सुनी तो साथ
 चलना स्वीकार कर लिया । राजा के साथ चल पड़ा और रानी के साथ
 महल में प्रवेश करे ॥ २३ ॥ राजा ने खाद्य-सामग्री आगे रखी जिसे
 देखकर ऋषि ने कहा कि यह भोजन हमारे किस काम का है, यह सब तो
 गृहस्थी लोगों का साज-सामान है ॥ २४ ॥ हम तो स्त्रियों को देखते भी नहीं
 हैं और रसयुक्त और कषाय-वस्तुओं का सेवन भूलकर भी नहीं करते । वेद-
 कतेब सभी यह बताते हैं कि बिना परमात्मा के नाम के अन्य कुछ काम नहीं
 आएगा ॥ २५ ॥ तब राजा ने उसे सही मुनि माना और भेद-अभेद को कुछ
 भी नहीं समझा । अपनी रानी को उसके साथ सुलाया और मूर्ख ने अपना
 सर मुँडवाया ॥ २६ ॥ वह मूर्ख अपने हाथों से शय्या बिछाता था और उसे
 स्त्री के साथ सुलाता था । उसे अत्यधिक यती मानता था और भेद-अभेद
 कुछ नहीं जानता था ॥ २७ ॥ जब पति को न देखता हुआ समझती तो वह
 स्त्री उसके साथ दृढ़तापूर्वक काम-क्रीड़ा करती थी । उसे भाँग-अफीम
 खिलाकर चार प्रहर तक उससे रतिक्रिया करती ॥ २८ ॥ भोग करते समय

रानियहि बजावै ॥ २९ ॥ इह छल सौ मित्तहि तिन पावा ।
मूरख भूप न भेव जतावा । पाँवद बैठि मूकियन मारै । उत
रानी संग जार बिहारै ॥ ३० ॥ इह छल सौ रानी पति
छरियो । जार गवन त्रियि देखत करियो । मूरख भेद अभेद
न पायो । सो इसत्नी ते मूँड मुडायो ॥ ३१ ॥ १ ॥ (म०ग्रं० १२४२)

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ चुरानवें चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २९४ ॥ ५६२० ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ पंचानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ चंचलसेन त्रिपति इक नरवर । अवर
त्रिपति ताकी नहि सरबर । चंचल दे ताके घर दारा । ता
सम देव न देव कुमारा ॥ १ ॥ सुंदरिता इह कही न आवै ।
जाको मदन हेरि ललचावै । जोवन जेब अधिक तिह धरी ।
मैन सु नार भरत जनु भरी ॥ २ ॥ ताके एक धाम सुत भयो ।
बीस बरिस को हवै मरि गयो । रनियहि बाढा शोक अपारा ।
जाँते सभ बिसरा घर बारा ॥ ३ ॥ तह इक पूत शाह को

उसने एक क्रिया सोची और ऊपर एक रज़ाई डाल ली । राजा बैठकर उन्हें
दबाता और वह अन्दर रानी के साथ रमण करता ॥ २९ ॥ इस प्रपंच से
उसने मित्त प्राप्त किया और मूर्ख राजा ने भेद न समझा । वह पाँव की
तरफ़ बैठकर मुट्ठी-चापी करता था और उधर रानी के साथ उसका याश
रति-क्रीड़ा करता था ॥ ३० ॥ इस छल से रानी ने पति को छला और मित्त
देखते-देखते स्त्री के साथ प्रणय-क्रीड़ा करता था । मूर्ख ने रहस्य नहीं समझा
और ठगा गया ॥ ३१ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ चौरानवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २९४ ॥ ५६२० ॥ अफजू ॥

दो सौ पंचानववाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ चंचलसेन एक राजा था जिसके बराबर अन्य कोई राजा
नहीं था । चंचलदेवी उसकी स्त्री थी जिसके समान कोई देव-स्त्री नहीं थी ॥ १ ॥
उसकी सुन्दरता कहते नहीं बनती थी उसे देखकर तो कामदेव भी ललचाता
था । उसका यौवन बहुत अधिक था और वह काम से परिपूर्ण थी ॥ २ ॥ उसके
घर में एक पुत्र हुआ जो बीस वर्ष का होकर मर गया था । रानी अत्यन्त
शोकाकुल हो गई और उसे घर-बाहर सब भूल गया ॥ ३ ॥ वहाँ एक धनी

आयो । तेजवान दुति को जनु जायो । जैसो तिह सुत को थो रूपा । तैसो ई तिह लगत सरूपा ॥ ४ ॥ जब रानी सो पुरख निहारा । लाज साज तज ह्रिदै बिचारा । यासौ काम भोग अब करियै । नातर मारि छुरकिआ मरियै ॥ ५ ॥ जब वह कुअर राह तिह आवै । चंचल देखन कौ तिह जावै । इक दिन ताके नाथ निहारी । इह बिधि सौ तिह बात उचारी ॥ ६ ॥ किह निमिति इह ठाँ तूँ आई । हेरि रही किह कह द्विग लाई । तब रानी इह भाँति उचारो । सुनहु त्रिपति तुम बचन हमारो ॥ ७ ॥ जस तब सुत सुरलोक सिधायो । सो धरि रूप दुतिय जनु आयो । तिह तुम मुरि द्विग सेज सुवावो । हमरे चित को ताप मिटावो ॥ ८ ॥ मूरख भेद अभेद न पायो । ताहि बुलाइ आपु लै आयो । त्रिप पुनि तिह भरुआपन करियो । भलो बुरो न बिचारि बिचरियो ॥ ९ ॥ भरुआ की किरया कह करियो । चारि बिचार कछू न बिचरियो । दूती पठवन ते त्रिय बची । भूपति की दूती करि रची ॥ १० ॥ ताहि सेज के निकट सुवावै । भलो भलो भोजन तिह खुवावै । कहै सु सुत मुर की अनुहारा । ताते या संग हमरो प्यारा ॥ ११ ॥ जो त्रिय

का पुत्र आया जो अत्यन्त तेजवान और मानो प्रकाश का पुत्र था । जसा उसके पुत्र का रूप था वैसा ही इसका स्वरूप था ॥ ४ ॥ जब रानी ने उस पुरुष को देखा तो लज्जा का त्याग कर हृदय में विचार किया कि इसके साथ रमण कहूँगी अन्यथा छुरा मारकर मर जाऊँगी ॥ ५ ॥ जब वह कुँवर उधर आता तो स्त्री उसे देखने के लिए आती । एक दिन उसके स्वामी ने उसे देखा और कहा ॥ ६ ॥ तुम यहाँ क्यों आई हो और आँखें गड़ाकर किसे देख रही हो ? तब रानी ने कहा कि हे राजन् ! मेरी बात सुनो ॥ ७ ॥ तुम्हारा पुत्र जो मर गया है यह दूसरा मानो उसी का रूप धारण कर आया है । इसे तुम मेरे साथ सुलाओ और मेरा कष्ट दूर करो ॥ ८ ॥ मूर्ख ने भेद-अभेद कुछ नहीं जाना और उसे ले आया । राजा ने भड़ुआपन किया और भले-बुरे का कुछ विचार नहीं किया ॥ ९ ॥ भड़ए का काम किया और कुछ भी विचार नहीं किया । दूती भेजने के काम से वह बच गई और राजा को दूती बना दिया ॥ १० ॥ उसे शय्या के पास सुलाती थी और सुन्दर भोजन खिलाती थी । वह कहती कि इसका स्वरूप मेरे पुत्र के समान है, इसी से यह मुझे प्यारा है ॥ ११ ॥ जो स्त्री उसे भोजन परोसती थी रानी उसे

ताकौ भोजु खुवारै । रानी झझकि ताहि त्रिय डारै । इह
मोरे सुत की अनुहारा । भलो भलो चहियत तिह खवारा ॥ १२ ॥
निकटि आपने ताहि सुवावै । तिह छिग अपनी सेज बिछावै ।
जब ताँ संग त्रिपति स्वै जावै । तब त्रिय ता संग भोग
कमावै ॥ १३ ॥ कसि कसि रसै जार के संगी । दलि मलि
ताँहि करै सरबंगा । भाँति भाँति तन भोग कमाई । सोइ
रहै त्यों ही लपटाई ॥ १४ ॥ इक दिन गई जार पहि रानी ।
सोवत जगा त्रिपति अभिमानी । मुख चुंबन तिह
ताहि (सू० प्र० १२४३) निहारा । ध्रिग ध्रिग बच हवै कोप
उचारा ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ मैं इह बोली पूत करिया संग
अति मुर प्यार । ताते मुख चुंबत हुती सुत की जनु
अनुहार ॥ १६ ॥ ॥ चौपई ॥ त्रिप के साच इहै जिय आई ।
पूत जानि चुंबन मुख धाई । कोप जु बड़ा हुता तजि दीना ।
भेद अभेद कछू नहि चीना ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल
बंगसराइ कह राखा अपने धाम । दिन कह पूत उचारई निसि
कह भोगै बाम ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ पंचानवों चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६५ ॥ ५६३८ ॥ अफजू ॥

झिड़कती थी । यह मेरे पुत्र की तरह है, इसे भली प्रकार खिलाओ ॥ १२ ॥
उसे अपने पास सुलाती थी और अपने पास उसकी शय्या बिछवाती थी ।
जब राजा सो जाता था तब वह उसके साथ रमण करती थी ॥ १३ ॥ वह
कस-कसकर मित्र के साथ सभी अंगों का मर्दन करती हुई रमण करती थी ।
भाँति-भाँति प्रकार से भोग करके वह लिपटकर सोते रहे ॥ १४ ॥ एक दिन
जब रानी मित्र के पास गई तो सोता हुआ राजा जग गया । उसे मुख
चूमते हुए उसने देखा और क्रुद्ध हो "धिक-धिक" कहने लगा ॥ १५ ॥
॥ दोहा ॥ मैंने इसे अपना पुत्र कहा है और इसने मेरे साथ अत्यन्त प्यार
किया है । मैं भी इसे अपने पुत्र के रूप को जानकर इसका मुँह चूम रही
थी ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा ने भी यही सोचा कि पुत्र जानकर यह
उसका मुँह चूम रही है । उसने अपना बड़ा हुआ क्रोध त्याग दिया
और भेद-अभेद कुछ भी न जान सका ॥ १७ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार प्रपंच
से बंग के राजा को उसने अपने घर रख लिया । दिन में वह उसे पुत्र
कहती थी और रात में वह उस स्त्री से रमण किया करता था ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ पंचानवों
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६५ ॥ ५६३८ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ छ्यानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बंगससैन बंगसी राजा । सदन भरे जा के सभ साजा । बंगस दे ताको घर रानी । जिह लखि नारि त्रिलोक रिसानी ॥ १ ॥ तहाँ बसत इक शाह दुलारी । रूपमान गति मान उज्यारी । ताहि मंगला देई नामा । जा सभ नही काम की कामा ॥ २ ॥ तह इक आइ गयो बनिजारा । मोतिन लादे उशट हजार । और दरबु की तोटि न कोई । लखें सु रहत रीझि करि सोई ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब मंगला देवि सु शाहु निहारियो । इहै आपने चित महि चतुरि बिचारियो । करत वई मिजबानी सदन बुलाइकै । हो भ्रात तवन के आयो दियो उडाइकै ॥ ४ ॥ भाँति भाँति के भोजन करे बनाइकै । तरह तरह के आने अमल छिनाइकै । आनि तवन ढिग राखे कंचन थार भरि । हो सात बार मदियन तें मदहि चुआइ करि ॥ ५ ॥ प्रथम कर्यो तिन भोजन बिजिया पान करि । बहुरि पियो मद बडे बडो प्यालान भरि । जब रस मस भे तरुनि तबै ऐसो कियो । हो पकरि भुजा ते शाहु सेज ऊपरि लियो ॥ ६ ॥ ता सौ कहा कि आउ काम क्रीड़ा

दो सौ छानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बंग का राजा बंगससेन था जिसके भंडार द्रव्य से भरे हुए थे । बंगसदेवी उसकी रानी थी जिसे देखकर तीनों लोकों की स्त्रियाँ ईर्ष्या करती थीं ॥ १ ॥ वहाँ एक राजकुमारी थी जो अत्यन्त रूपमान, गतिमान और प्रकाशस्वरूप थी । उसका नाम मंगलादेवी था और कामदेव की स्त्री भी उसके समान नहीं थी ॥ २ ॥ वहाँ मोतियों से हजारों ऊँट लादे एक व्यापारी आ गया । उसके पास भी द्रव्य की कमी नहीं थी और उसे जो देखता रीझ उठता था ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब मंगलादेवी ने उस धनी को देखा तो अपने चित्त में चतुरतापूर्वक (कुछ) सोचा । उसे घर बुलाकर मेजबानी की और उड़ा दिया कि उसका भाई आया है ॥ ४ ॥ भाँति-भाँति के भोजन बनाए और तरह-तरह के नशे ले आए गए । सोने के थाल में भरकर उसने उसके पास रख दिये । ये सब नशे सात बार आसवित किये हुए थे ॥ ५ ॥ पहले तो उसने भाँग पीकर भोजन किया, फिर बड़े-बड़े प्यालों में भरकर मद्यपान किया । जब दोनों रससिक्त हो गए तो तरुणी ने उस धनी को

करें । भाँति भाँति तन ताप मदन को हम हरें । मैं तरुनी
 तें तरुन कहाँ चकिचित रह्यो । हो हम तुम रमहि सु आजु
 चंचला अस कह्यो ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ शाहु तवन की बात न
 मानी । अधिक मंगला भई खिसानी । अधिक कोप करि हेतु
 बिसारा । अरधा अरध चीर तिह डारा ॥ ८ ॥ लूटि लयो
 ताँको सभ ही धन । घोर अप्राध कियो पापी इन । या कह
 चीरि सत्त गज डारा (सू० प्र० १२४४) । किन्हूँ पुरख न करी
 निवारा ॥ ९ ॥ वारस भई आपु ताकी तिय । मात्ता लई
 मारि ताको जिय । भेद अभेद न किनूँ बिचारा । भोग न
 किया तिसै कौ मारा ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल मारा
 ताहि कौ जौ न रमा तिह संग । सु कबि स्याम पूरन भयो तब
 ही कथा प्रसंग ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ छियानवों चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ २९६ ॥ ५६४९ ॥ अफजू ॥

भुजा से पकड़कर शय्या पर डाल दिया ॥ ६ ॥ उससे कहा कि आओ हम
 कामक्रीड़ा करें और काम का ताप दूर करें ! तुम चकित क्यों हो, मैं तरुनी
 हूँ और तुम तरुण हो । उस स्त्री ने कहा कि आओ, हम-तुम रमण करें ॥ ७ ॥
 ॥ चौपाई ॥ उस व्यापारी ने उसकी बात नहीं मानी और मंगलादेवी
 खिसिया उठी । अत्यधिक क्रुद्ध हो उसने स्नेह का त्याग कर दिया और
 उसे आधा-आधा चीर डाला ॥ ८ ॥ उसने उसका सारा धन लूट लिया ।
 इस पापिनी ने घोर अपराध किया । उसने यह कह दिया कि इसे मदमत्त
 हाथी ने चीर डाला है । कोई भी व्यक्ति इसे न जान सका ॥ ९ ॥ वह
 स्वयं ही उसकी वारिस भी बन गई और उसे मार कर उसका धन भी लूट
 लिया । किसी ने यह भेद-अभेद न विचारा कि इसने भोग नहीं किया, इसी से
 इसे मार डाला है ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रकार जिसने उसके साथ रमण
 नहीं किया, उसे इस स्त्री ने मार डाला । कवि श्याम के कथनानुसार यह
 प्रसंग पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ छियानवों चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ २९६ ॥ ५६४९ ॥ अफजू ॥

अथ दो सौ सत्तानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बिजैसूर खत्री इक रहै । सिद्धपाल ताकह
जग कहै । शमसदीन दिलीस दिवाना । जानत सकल राख
अरु राना ॥ १ ॥ लछिमनसेन धाम सुत सुभ मति ।
बज्रसेन दूसरे बिकट मति । सकुचमती दुहिता इक ताके ।
नरी नागनी सम नहि जाके ॥ २ ॥ शमसदीन दिलीस जुवाना ।
मानत आनि देस जिह नाना । एक दिवस बहु गयो शिकारा ।
जाँ दिस हुती केहरी बारा ॥ ३ ॥ तही दिलीस आपु चलि
गयो । जहाँ सिधनी चितवत भयो । सिद्धपाल लिए अपने
संगा । और लिए अनगन चतुरंगा ॥ ४ ॥ ता पर करी
झुकावत भयो । केहरि समै जनम तब लयो । अरध रहा तन
मात कुखूतर । अरधह नाकर गज मसतक पर ॥ ५ ॥ तन
इक भाट कौतक अस लहा । हजरति सुनत दोहरा कहा ।
सु में कहत हो सुनहु प्यारे । जो तिन शाह न चित ते
टारे ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ सिध सापुरश पदमिनी इनका इहै
सुभाउ । ज्यों ज्यों दुख गाढ़ो परै त्यों त्यों आगै पाउ ॥ ७ ॥

दो सौ सत्तानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ विजयशूर में एक क्षत्रिय रहता था, जिसे सभी सिद्धपाल
कहते थे । शमसदीन दिल्ली का राजा था जिसे सभी राजा जानते थे ॥ १ ॥
उसके घर लक्ष्मणसेन शुभ मतिवान और बज्रसेन विकट बुद्धि का स्वामी
पुत्र था । उसके घर सकुचमती नामक एक पुत्री थी, जिसके समान नर-
नाग की कोई भी स्त्री नहीं थी ॥ २ ॥ शमसदीन दिल्ली का युवक था और
सभी अन्य देश उससे डरते थे । एक दिन वह वहाँ शिकार को गया जहाँ
एक शेरनी थी ॥ ३ ॥ दिल्लीश्वर ने जहाँ शेरनी देखी वहाँ स्वयं चलकर
गया । उसने सिद्धपाल और चतुरंगिणी सेना को अपने साथ लिया ॥ ४ ॥
उसने उस शेरनी पर हाथी डाल दिया । उसी समय उस शेरनी ने एक शेर
को जन्म दिया । उसका आधा तन अभी माँ की कोख में ही था कि उसने
अपने दो पाँव हाथी के मस्तक पर टिका दिये ॥ ५ ॥ एक भाट ने यह
कौतुक देखा और उसने बादशाह को सुनाते हुए एक दोहा कहा । हे प्यारे !
उसे मैं कहता हूँ जिसे उस बादशाह ने न भुलाया ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ शेर,
पुरुष (मर्द) और पद्मिनी का यह स्वभाव है कि ज्यों-ज्यों इन पर गहन दुख

॥ चौपई ॥ भाट जब इह भाँति उचारा । हजरति बचन
 स्रवन इह धारा । जब अपने महलन महि आयो । सिधपाल
 कह बोल पठायो ॥ ८ ॥ तासो इह बिधि नाथ बखाना ।
 तहै मोर वजीर सयाना । अब कछु अस तुम करहु उपाई ।
 जाते मिलै पदुमिनि आई ॥ ९ ॥ सिधपाल इह भाँति उचारा ।
 सुन हजरति जू बचन हमारा । सभ अपनी तुम सैन बुलावो ।
 मोहि सिंगलादीप पठावो ॥ १० ॥ जौ तुमरी आग्या कह पाऊँ ।
 अभित सैन लै तहाँ सिधाऊँ । खड़ग सिंगलादीप मचैहो ।
 ज्यों त्यों कै पदुमिनि लै ऐहो ॥ ११ ॥ यौ कहि गयो धाम जब
 राजा । बाजत भाँत अनेकन बाजा । बैरी हुतो (॥ १०५ ॥ १२४५)
 तहाँ इक ताको । भेद कहा हजरति पै वाको ॥ १२ ॥ एक
 धाम दुहिता है याके । परी पदमिनि तुल्लि न ताके । पठे
 मनुच्छ तिह हेरि मँगावहु । तिह पाछे पदुमिनि खुजावहु ॥ १३ ॥
 हजरति सुनत जबै से भयो । तत छिन दूती तहाँ पठयो ।
 चतुरि चितेरी रूप उजियारी । बिसुकरमा की जान
 कुमारी ॥ १४ ॥ इक चतुरा अरु दुतिय चितेरी । प्रतिमा
 दुतिय मदन जनु केरी । गोरबरन अरु खाए पाना । जानुक

पड़ता है, ये आगे की ओर क्रम बढाते जाते हैं ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ भाट
 ने जब यह कहा तो बादशाह ने इस बात को सुना । जब वह अपने महलों
 में आ गया तो उसने सिद्धपाल को बुलाया ॥ ८ ॥ उसे स्वामी ने कहा कि
 तुम मेरे सयाने मंत्री हो । तुम कुछ ऐसा उपाय करो जिससे मुझे पद्मिनी
 स्त्री आ मिले ॥ ९ ॥ सिद्धपाल ने यह कहा कि हे बादशाह ! मेरी बात सुनो ।
 तुम अपनी सारी सेना बुलाओ और, मुझे सिंहलद्वीप भेजो ॥ १० ॥ यदि
 आपकी आज्ञा पाऊँ तो अपरिमित सेना लेकर वहाँ जाऊँ । वहाँ सिंहलद्वीप
 में युद्ध करूँगा और जैसे-तैसे पद्मिनी को ले आऊँगा ॥ ११ ॥ यह कह कर
 राजा महल में गया और विभिन्न प्रकार के वाद्य बजने लगे । वहाँ सिद्धपाल
 का एक शत्रु था, उसने बादशाह से उसका रहस्य कह दिया ॥ १२ ॥ इसके
 घर में एक पुत्री है जिसके समान कोई परी अथवा पद्मिनी नहीं है । एक
 व्यक्ति भेजकर उसे बुला लो और बाद में पद्मिनी ढूँढ़ने के लिए
 कहना ॥ १३ ॥ बादशाह ने सुनते ही तत्काल एक दूती को वहाँ भेजा । वह
 चतुर चित्रकला में प्रवीण और रूप का प्रकाश फैलानेवाली थी । मानों
 विश्वकर्मा की पुत्री हो ॥ १४ ॥ वह चतुर मानों काम की द्वितीय प्रतिमा
 लगती थी । गोरा बदन और पान खाती हुई वह ऐसी लगती मानों आकाश

चढ़ा चंद असमाना ॥ १५ ॥ ताके धाम चितेरनि गई ।
 लिखि ल्यावत प्रतिमा तिह भई । जब ले करि कर शाह
 निहारी । जानुक तानि कटारी मारी ॥ १६ ॥ सभ सुधि गई
 मत्त हवै झूमा । घाइ लगे घायल जनु घूमा । तन की
 रही न तनिके सँभारा । जनु डसि गयो नाग कौडियारा ॥ १७ ॥
 इक दिन करी शाह मिजमानी । सभ पुर नारि धाम
 महि आनी । सिद्धपाल की सुता जबाई । सकल दीप
 ज्यों सभा सुहाई ॥ १८ ॥ छिद्र बीच करि ताँहि निहारा ।
 हजरति भयो तबै मतवारा । मन तरुनी के रूप बिकान्यो ।
 अतक सो तनु रह्यो पछान्यो ॥ १९ ॥ हजरति सकल
 पठान बुलाए । सिद्धपाल के धाम पठाए । के अपनी
 दुहिता मुहि दीजै । नातर मीच मूँड पर लीजै ॥ २० ॥
 सकल पठान तवन के गए । हजरति कही सु भाखत भए ।
 सिद्धपाल धन भाग तिहारे । ग्रहि आवहिगे शाह सवारे ॥ २१ ॥
 सिद्धपाल ऐसो जब सुना । अधिक दुखित हवै मसतक धुना ।
 दैव कवन गति करी हमारी । ग्रहि असि उपजी सुता
 दुखारी ॥ २२ ॥ जौ नहि देत तु बिगरत काजा । जात दए

में चाँद निकला हो ॥ १५ ॥ उसके घर वह चित्रकला में निपुण दूती गई
 और उसका चित्र बनाकर ले आई । जब बादशाह ने उसे देखा तो मानो
 उसे किसी ने तानकर कटारी मार दी हो ॥ १६ ॥ उसने सब सुधि खो दी
 और घायल हो घूमने लगा । उसे तन की तनिक भी होश न रही, और
 ऐसा लग रहा था मानो उसे भयंकर विषधर सर्प काट गया हो ॥ १७ ॥
 एक दिन बादशाह ने मेजबानी की और नगर की सारी स्त्रियों को महल
 में बुलाया । सिद्धपाल की पुत्री जब आई तो मानों सारी सभा शोभायमान
 हो उठी हो ॥ १८ ॥ छिद्र के बीच से देखकर तो बादशाह मतवाला हो
 उठा । उसका मन तरुणी के हाथों बिक चुका था और तन मानों मृतक
 के समान (क्रिया-हीन) हो चुका था ॥ १९ ॥ बादशाह ने सारे पठान
 बुलाए और यह कहकर सिद्धपाल के घर भेजे कि या तो अपनी पुत्री मुझे
 दे दो या फिर मौत स्वीकार करो ॥ २० ॥ बादशाह के भेजे पठान उसके
 पास गए और बादशाह ने जो कहा था वह उन्होंने कह सुनाया । सिद्धपाल
 तुम्हारा धन्यभाग है जो शाह तुम्हारे यहाँ सवारी करके आएँगे ॥ २१ ॥
 सिद्धपाल ने जब यह सुना तो दुखी हो उसने माथा पीट लिया । हे भगवान !
 तुमने यह मेरे साथ क्या किया जो ऐसी दुखदायक पुत्री मेरे घर पैदा हुई ॥ २२ ॥

छत्रिन की लाजा । मुगल पठान तुरक घर माही । अब लगि
 गी छत्रानी नाही ॥ २३ ॥ छत्रिन के अब लगे न भई ।
 दुहिता काढि तुरक कह दई । रजपूतन के होतह आई । पुत्री
 धाम मलेछ पठाई ॥ २४ ॥ हाडन एक दूसरन खत्री ।
 तुरकन कह इन दई न पुत्री । जो छत्री अस करम कमावै ।
 कुंभी नरक देह जुत जावै ॥ २५ ॥ जो नर तुरकहि देत
 दुलारी । ध्रिग ध्रिग जग तिह करत उचारी । लोक प्रलोक
 ताहि को जैहै । छत्री सुता तुरक कह दैहै ॥ २६ ॥
 हाडियन (सू०ग्रं० १२४६) सुता तुरक नहि दई । छत्रानी तुरकनी
 न भई । कछ रजपूतन लाज गवाई । रानी ते बेगमा
 कहाई ॥ २७ ॥ अब मैं धरै इहौ निजु बुद्धा । मंडौ बीर खेत
 महि क्रुद्धा । पहिरि कौच करि खड़ग सँभारौ । चुनि चुनि
 आजु पखरिया मारौ ॥ २८ ॥ तब कन्या निजु पिता हकारा ।
 इह बिधि तासो मंत्र उचारा । तात तनिक चिंता नहि करियै ।
 सनमुख पातिशाह सौ लरियै ॥ २९ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ बोल
 सदा थिर रहै दिवसरे जाइहैं । करे करम छत्रिन के चारण

यदि नहीं देता हूँ तो राजा बिगड़ता है और जाने देता हूँ तो क्षत्रियों को लाज
 लगती है और मर्यादा जाती है । अब तक मुगल पठानों के घर कोई क्षत्राणी
 नहीं गई है ॥ २३ ॥ अब तक क्षत्रियों में ऐसा नहीं हुआ कि किसी ने
 पुत्री तुर्क को दे दी हो । राजपूतों में ऐसा होता आया है कि पुत्रियों को
 उन्होंने म्लेच्छों को दिया है ॥ २४ ॥ यह एक तो हाड़ा वंश (कोटा-बूंदी
 नरेश वंश) की है, फिर क्षत्राणी है; इन लोगों ने तुर्कों को पुत्रियाँ नहीं दी
 हैं । जो क्षत्रिय ऐसा कर्म करता है वह सदेह कुंभी नर्क में जायगा ॥ २५ ॥
 जो व्यक्ति तुर्कों को पुत्री देता है, सारा संसार उसे धिक्कारता है । जो
 क्षत्रिय तुर्क को पुत्री देगा उसका लोक-परलोक सब नष्ट हो जायगा ॥ २६ ॥
 हाड़ा-वंशियों ने पुत्री तुर्कों को नहीं दी और क्षत्राणी अभी तक मुसलमानी
 नहीं बनी है । कुछ ही राजपूत-स्त्रियों ने लज्जा का त्याग कर रानी से
 बेगम कहलाना पसंद किया है ॥ २७ ॥ अब मैं तो यही निर्णय करता हूँ
 कि क्रुद्ध हो युद्ध किया जाय । कवच पहना जाय, खड़ग सँभाला जाय और
 चुन-चुनकर शूरवीरों को मारा जाय ॥ २८ ॥ तब कन्या ने भी अपने पिता
 से कहा कि आप चिन्ता न करें और बादशाह के सामने होकर लड़ें ॥ २९ ॥
 ॥ अडिल्ल ॥ दिन बीत जायेंगे लेकिन बातें सदा होती रहेंगी और
 किये हुए कर्मों का चारण-भाट गायन करते रहेंगे । हे पिता, मुझे

गाइहैं । ता तन मोको दीजै आहव कीजिये । हो दान
 क्रिपान दुहैं जग मै जस लीजिये ॥ ३० ॥ खड़ग हाथ जिनि
 तजहु खड़गधारा सहो । भाजि न चलियहु तात मंडि रन को
 रहो । पठे पखरिया हनियहु बिसिख प्रहार करि । हो
 मारि अरिन कौ मरियहु हमहि सँघारि करि ॥ ३१ ॥
 ॥ चौपई ॥ सुनहु पिता इक करहु उपाई । शमशदीन कह
 लेहु बुलाई । जब आवैं तब पकरि सँघरियहु । बहुरौ निकसि
 जुद्ध कौ करियहु ॥ ३२ ॥ सिधपाल तब ऐस बिचारी । भली
 बात इन सुता उचारी । अंतहपुर ते बाहरि आयो । बोलि
 पठानन ऐस जतायो ॥ ३३ ॥ ए है प्रभु के बडे बनाए ।
 हम तुम ए इनके पग लाए । जो इन कहा वहै मन माना ।
 सिर पर हुकम शाह को आना ॥ ३४ ॥ तब मिलि खान शाह
 के गए । अति ही ह्रिदै अनंदित भए । तुरकहि छत्रिन सुता
 न दई । हसि है इनै भली इह भई ॥ ३५ ॥ दुहिता इतै पितहि
 समुझावैं । छत्री जनमु फेरि नहि आवैं । अब लौ ऐसी बात
 न भई । तुरकन के छत्रानी गई ॥ ३६ ॥ ताते मोहि न दीजै
 ताता । मंडहु जुद्ध होत ही प्राता । चलि है कथा सदा जग

मत दीजिए और युद्ध कोजिए तथा खड़ग चलाकर संसार में यश का
 अर्जन कीजिए ॥ ३० ॥ हाथ से खड़ग का त्याग मत करो और कृपाण को
 धार को सहन करो । हे पिता, युद्ध को शुरू करो और भागना मत ।
 वीरों को बाण चलाकर मारना और शत्रुओं को मार, मुझे भी मार कर मर
 जाना (पर उनकी बात नहीं मानना) ॥ ३१ ॥ ॥ चौपाई ॥ हे पिता, एक
 उपाय सुनो और शमसदीन को बुला लो । जब आये तो पकड़कर मार देना
 और फिर निकलकर युद्ध करना ॥ ३२ ॥ सिद्धपाल ने तब सोचा कि पुत्री नै
 ठीक ही कहा है । वह अन्तःपुर से बाहर आया और पठानों को कहा ॥ ३३ ॥
 ये (बादशाह) तो ईश्वर के द्वारा ही बड़े बनाए गये हैं । हम-तुम तो इनके पाँव
 लगने के तुल्य हैं । जो उसने कहा है, मैं मानता हूँ और शाह का हुकम सिर
 आँखों पर है ॥ ३४ ॥ तब मिलकर पठान बादशाह के पास गए और
 हृदय में अत्यधिक आनंदित हुए । क्षत्रियों ने तुर्कों को पुत्री नहीं दी थी पर
 इसने हँसकर इस बात को मान लिया ॥ ३५ ॥ इधर पुत्री पिता को
 समझाने लगी कि क्षत्रिय-जन्म दुबारा नहीं मिलेगा । आज तक ऐसा नहीं
 हुआ है कि क्षत्राणी तुर्कों के पास गई हो ॥ ३६ ॥ इससे हे पिता, मुझे
 मत दीजिए और सुबह होते ही युद्ध करो । यह कथा युगों तक चलती

माही । प्रात पठान कि छत्री नाही ॥ ३७ ॥ पहिरहु कौच
बजाइ नगारे । पी पी अमल होहु मतवारे । प्रात मचत है जुद्ध
अपारा । ह्वैहै अंध धुंध बिकरारा ॥ ३८ ॥ पातिशाह संग
है संग्रामा । सभ ही करहु केसरी जामा । टांकि आफुएँ तुरे
नचावौ । साँग झलकती हाथ फिरावौ ॥ ३९ ॥ प्रथम
त्यागि प्रानन की आसा । बाहहु खड़ग सकल तजि
लासा । (सू० ग्रं० १२४७) पोसत भाँग अफीम चढ़ावो । रेती माँझ
चरित्र दिखावो ॥ ४० ॥ हजरति जोरि तहाँ दल आयो ।
सकल व्याह को साज बनायो । सिधपाल के जब घरि आए ।
पुनि कन्या अस बचन सुनाए ॥ ४१ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ ग्रहि
आवै जो शत्रु न ताहि सँघारियै । धाम गए इहु मारहु मंत्र
बिचारियै । लछिमन पुत्रहि डारि डोरि दिय त्रिय उचरि ।
हा संग सत सै खातिरेटा गयो त्रिय भेस धरि ॥ ४२ ॥
॥ चौपई । जब ते जात धाम ते भए । तब ताके मंदर मो
अए । लुबधमान ह्वै हाथ चलायो । लछिमन काढि कटारी
घायो ॥ ४३ ॥ ताकह ऐस कटारी मारा । बहुरि न हजरति
बैन उचारा । ताकह मारि भेस नर धारो । लोगन महि इह
भाँति उचारो ॥ ४४ ॥ मोहि अमल के काज पठावा । तुम

रहेगी । प्रातः या तो पठान नहीं रहेंगे या फिर क्षत्रिय नहीं रहेंगे ॥ ३७ ॥
नगाड़े बजाकर कवच पहन लो और नशा पी-पीकर सभी मस्त हो जाओ ।
प्रातः विकराल रूप से अंधाधुंध युद्ध होगा ॥ ३८ ॥ बादशाह के साथ
युद्ध है, सभी केसरिया बाना पहन लो । अफीम वगैरः खाकर [घोड़ों को
नचाओ और झिलमिलाती बछियाँ हाथों में घुमाओ ॥ ३९ ॥ प्राणों की
आशा छोड़कर अभय होकर खड़ग चलाओ । पोस्ता, भाँग, अफीम चढ़ा
लो और इस रेतीली धरती पर अपना कर्तव्य-कर्म दिखाओ ॥ ४० ॥ बादशाह
उधर आ पहुँचा और उसने विवाह की पूरी तैयारी की थी । जब वह
सिद्धपाल के घर आया तो कन्या ने फिर कहा ॥ ४१ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ घर
में शत्रु भी आ जाय तो उसे मारना नहीं चाहिए । जब वह घर जाय तब
इसे मार डालो । पुत्र लक्ष्मण ने उसे डोली में डालकर कहा कि साथ में
स्त्रियों के वेश में सात सौ क्षत्रिय साथ हैं ॥ ४२ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब वे घर
से निकले तो मंदिर में आए । मोहपूर्वक उसने हाथ चलाया और लक्ष्मण ने
कटार निकालकर उसे मार डाला ॥ ४३ ॥ उसे ऐसी कटार मारी कि बादशाह
ने फिर बात भी मुँह से नहीं निकाली । उसे मारकर वह नर-वेश में प्रकट हो

तन इह बिधि आपु कहावा । धाम आवने कोई न पावै । जो आवै सो जान गवावै ॥ ४५ ॥ इह छल लाघि डवढीयन आयो । चोबदार नहि किनी हटायो । जबही कुमक आपनी गयो । तब ही अमित कुलाहल भयो ॥ ४६ ॥ बाजै लगे तहाँ शदियाने । बाचत तिहूँ भवन महि जाने । ढोल म्रिदंग मुचंगनहारे । मंदल तूर उपंग अपारे ॥ ४७ ॥ ॥ दोहरा ॥ बजै दमामा जब लगे सुनि मारु धुनि कान । खान खवीन जिते हुते टूटि परे तह आनि ॥ ४८ ॥ ॥ चौपई ॥ ऐसो कवन द्वैखनी जायो । जिनै जुझऊआ इहाँ बजायो । ऐसा भयो कवन मतवाला । जह मूरख नहि सूझत चाला ॥ ४९ ॥ इह बिधि भाखि खान सभ धाए । बाँधे चुंग चौपतन आए । शमसदीन लछिमन जह घायो । तिह ठाँ सकल सैन मिलि आयो ॥ ५० ॥ लोदी सूर नयाजी चले । लीने संग सूरमा भले । दाओ जई रहेले आए । आफरीदियन तुरै नचाए ॥ ५१ ॥ ॥ दोहरा ॥ बावन खेल पठान तह सभै परै अरिराइ । भाँति भाँति बाना बधे गनना गनी न जाइ ॥ ५२ ॥ ॥ चौपई ॥ पखरियारे द्वारन नहि मावै ।

गया और लोगों से कहने लगा ॥ ४४ ॥ मुझे यही सब काम के लिए भेजा गया है और तुम लोगों से कहने के लिए कहा गया है । कोई भी मंदिर में आने न पाए । जो आयेगा वह जान गंवा लेगा ॥ ४५ ॥ ऐसा छल करके वह ड्योढ़ी लाँघकर आया और चोबदार ने किसी को नहीं हटाया । जब मदद के लिए सारी सेना गयी तब अत्यन्त कोलाहल होने लगा ॥ ४६ ॥ वहाँ वाद्य बजने लगे जो उसी मंदिर में बजते लग रहे थे । वहाँ ढोल, मृदंग, मुचंग, तुरही बजने लगे ॥ ४७ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब मारक वाद्य बजने लगे तो जितने खान, पठान थे वे टूट पड़े ॥ ४८ ॥ ॥ चौपाई ॥ ऐसा कौन द्वेषिणी-पुत्र यहाँ है जिसने मारु वाद्य बजा दिये हैं ? ऐसा कौन मतवाला है जिस मूर्ख को ठीक समझ नहीं आ रही है कि हम कितनी अपार संख्या में और किस कार्य के लिए आये हैं ॥ ४९ ॥ यह कहकर सभी खान चुंगियाँ भरते अर्थात् भागते हुए वहाँ आ गए । शमसदीन को लक्ष्मण ने जहाँ मारा था वहाँ सारी सेना आकर एकत्र हो गई ॥ ५० ॥ लोदी और नियाजी भले शूरवीरों को लेकर चल पड़े । दाऊ, जई, रहेले और अफरीदियों ने घोड़े नचा लिये ॥ ५१ ॥ ॥ दोहरा ॥ बावन खेल, पठान सभी चिल्लाकर टूट पड़े । वे भाँति-भाँति की पोशाकें पहने हुए थे । उनकी गिनती असंभव है ॥ ५२ ॥ ॥ चौपाई ॥ वीर

जहाँ तहाँ भठ तुरंग नचावैं । बानन की आँधी तह आई ।
 हाथ पसारा लखा न जाई ॥ ५३ ॥ इह बिधि शोर नगर में
 पयो । जनु रबि उलटि पलटि हवै (५००१२४८) गयो ।
 जैसे जलधि बारि परहरै । उछरि उछरि मखरी ज्यों
 मरै ॥ ५४ ॥ जिह बिधि नाव नदी की धारा । बही जात
 कोऊ नहि रखवारा । तैसी दशा नगर की भई । जनु बिनु
 शक्र सची हवै गई ॥ ५५ ॥ ॥ दोहरा ॥ इहि दिसि सभ छत्ती
 चढ़े छहि दिसि चढ़े पठान । सुनहु संत चित दै सभै जिह बिधि
 भयो निदान ॥ ५६ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जबै जोरि
 बाना अनी खान आए । इतैं छोभि छत्ती सभै बोर धाए ।
 चले बान ऐसे दुहूँ ओर भारे । लगैं अंग जाके न जाँही
 निकारे ॥ ५७ ॥ तबै लछिमन कुमार जू कोप कैकै । हने
 खान बानी सभै शस्त्र लैकै । किते खेत मारे परे बीर ऐसे ।
 बिराजै कटे इंद्र के केत जैसे ॥ ५८ ॥ पीएँ जानु भंगै मलंग परे
 हैं । कहूँ कोटि सौँडीन सीसैं झरे हैं । कहूँ उशट मारे सु लै
 भूमि सोषैं । कहूँ खेत खाँडे लसैं नगन धोपैं ॥ ५९ ॥ कहूँ
 बान काटे परे भूमि ऐसे । बुयो को किसानै कटे ईख जैसे ।

वरबाजे में नहीं घुस पा रहे थे और जहाँ-तहाँ घोड़ों को नचा रहे थे । वहाँ
 बाणों की आँधी चल पड़ी जिससे पसारा हुआ हाथ नजर नहीं आता था ॥ ५३ ॥
 नगर में ऐसा शोर हुआ मानों सूर्य उलट-पलट गया हो । मानों समुद्र पानी
 उछालकर बाहर फेंक रहा हो और मछलियाँ उछल-उछलकर मर रही
 हों ॥ ५४ ॥ जैसे नदी की धारा में नाव बहती चली जा रही हो और काई
 बचानेवाला न हो । नगर की ऐसी दशा हुई मानों शची इन्द्र के बिना हो गई
 हो ॥ ५५ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस दिशा से क्षत्रिय चढ़े और उधर पठान चढ़ उठे ।
 हे संतो, जो हुआ उसे चित्त लगाकर सुनो ॥ ५६ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जब
 बाणों का प्रहार करती इधर पठानों की सेना आई तो उधर से क्षुब्ध हो
 सभी क्षत्रिय वीर चल पड़े । दोनों ओर से इतने भीषण बाण चले कि
 जिसकी छाती में लग जाते थे, उससे वापस निकाले नहीं जाते थे ॥ ५७ ॥
 सभी लक्ष्मणकुमार ने कुपित हो खान लोगों को शस्त्र ले मार डाला । कहीं
 वीर कटे हुए ऐसे पड़े थे जैसे इन्द्र के कटे हुए झंडे पड़े हों ॥ ५८ ॥ वे ऐसे
 लग रहे थे मानों मलंग लोग भाँग पीकर पड़े हों । कहीं हाथियों के कटे सिर
 और कहीं मरे हुए ऊँट भूमि पर पड़े थे । कहीं खड्ग-बार से खेत रहे नगन
 वीर पड़े थे ॥ ५९ ॥ कहीं बाणों से कटे वीर ऐसे पड़े थे मानों किसानों ने

कहूँ लहिलहूँ पेट मै यो कटारी । मनो मछ सोहूँ बधे बीख
जारी ॥ ६० ॥ कितै पेट पाटे परे खेत बाजी । कहूँ मत्त
दंती फिरें छूछ ताजी । कहूँ मूँड माली पुऐ मूँड माला ।
कहूँ भूत औ प्रेत नाचैं बिताला ॥ ६१ ॥ कहूँ दैत काढो फिरै
दाँत भारे । बसै खौन केते परे खेत मारे । कहूँ ताजि छारे
जिरह खोल ऐसे । बगे व्योत भारे समैं सीत जैसे ॥ ६२ ॥
तहाँ बाज हाथीन की खौन धारैं । परै ज्यों फुहारानहूँ की
फुहारैं । प्रलै काल सो जान दूजो भयो है । जहाँ कोटि
सूरान सूर खयो है ॥ ६३ ॥ तहाँ कोटि सौडीन के मूँड
काटे । कहूँ बीर मारे गिरे केत फाटे । कहूँ खेत नाचैं पठै
पखरियारे । कहूँ मार बाजै उठै नाद भारे ॥ ६४ ॥ कहूँ
शंख भेरी तहाँ नाद बाजैं । हसैं गरजि ठोकै भुजा भूप गाजैं ।
नगारे नफीरी बजैं झाँझ भारी । हठे रोस कैकै तहाँ
छत्रधारी ॥ ६५ ॥ कहूँ भीम भेरी बजैं राग मारु । नफीरी
कहूँ नाड नाडै नगारु । कहूँ धेनु औ बीन बाजैं सुरंगा ।
रुचंगा खिदंगा उपंगा मुचंगा ॥ ६६ ॥ झरोखा तरे जो मची

बोया ईख काटकर फेंकता हो । कहीं पेट में कटारी ऐसे फँसी पड़ी थी मानों
मछली जाली में फँसी हो ॥ ६० ॥ कहीं पेट फटे मृत घोड़े पड़े थे । कहीं
मदमत्त हाथी और कहीं सवार-बिहीन घोड़े दौड़ रहे थे । कहीं मुंडमाला
पिरोयी जा रही थी और कहीं भूत-प्रेत एवं बंताल नाच रहे थे ॥ ६१ ॥
कहीं दैत्य भारी दाँत निकाले घूम रहे थे । कई रक्त बमन कर रहे थे और
कई युद्धस्थल में मरे पड़े थे । कहीं जिरहबस्तर ऐसे पड़े उड़ रहे थे मानों
शीतकाल में झंझावात चल रहा हो ॥ ६२ ॥ हाथी-घोड़ों की रक्तधाराएँ
फुहारों के रूप में पड़ रही थीं । ऐसा लग रहा था मानों प्रलयकाल हो गया
हो जिसमें कोटान-कोटि वीर नष्ट हो गये हों ॥ ६३ ॥ वहाँ अनेकों हाथियों
के मूँड काटे पड़े थे । कहीं वीर मारे गये और कई फटे गिरे पड़े थे । कहीं
वीर युद्ध में नृत्य कर रहे थे । कहीं मार-मार की ध्वनि बज रही थी और
कहीं घनघोर नाद उठ रहा था ॥ ६४ ॥ कहीं शंख, भेरी का नाद हो रहा
था और कहीं भुजाओं को ठोककर वीर गरज रहे थे । नगारे, नफीरियाँ और
झाँझें बज रही थीं और छत्रधारी रुष्ट हो वहाँ हठपूर्वक अड़े हुए थे ॥ ६५ ॥
कहीं भीमकाय भेरियाँ और कहीं मारु राग नाद बज रहे थे । कहीं नफीरियाँ
और नगाड़े बज रहे थे । कहीं घीणा और बाँसुरी सुन्दर रूप से बज रही
थी । मृदंग, उपंग और मुचंग आदि वाद्य बज रहे थे ॥ ६६ ॥ झरोखे के नीचे

मारि ऐसी । भई देव दानवान की है न तैसी । न ली राम
औ रावन जुद्ध ऐसी । कियो भी महाभारत सै सु तैसी ॥ ६७ ॥
तहा वीर केते खरे गालह मारें । (म० प्र० १२०६) किते वान छोड़ें
कितें शस्त्र धारें । किते नारि के भेस कौ साज लैकै । चले
छोरि बाजी हठी भाज कैकै ॥ ६८ ॥ किते खान खेदे किते खेत
मारै । किते खेत सै खिग खत्री लतारे । जहाँ वीर बाँके हठी
पूत घाए । तही गोल बाँधे चले सिख आए ॥ ६९ ॥ जब
सिद्धपाल पठानों निहारा । किनी हाथ लै न हथ्यारै सँभारा ।
किते भाजि चाले किते खेत मारै । पुराने पलासी मनो राइ
डारै ॥ ७० ॥ हठे जे जुझै से सभै खेत मारै । किते खोदि
कं कोट के मद्धि डारै । किते बाँधि लैकै किते छोरि दीने ।
किते जान मारै किते राखि लीने ॥ ७१ ॥ तिसी कौ हना खग
जौनै उचायो । सोई जीव बाचा जुई भाजि आयो ।
कहाँ लौ गनाऊँ भयो जुद्ध भारी । लखे लोह साचा कुपे
छत्रधारी ॥ ७२ ॥ किते नाद नादै किते नाद पूरै । किते
जवान जूझै बरै हेरि सूरै । किते आनि कैकै क्रियानै चलावै ।

तो ऐसी मार मची जैसी देव-दानवों में भी नहीं हुई थी । श्रीराम और रावण
तथा महाभारत में भी ऐसा युद्ध नहीं हुआ था ॥ ६७ ॥ वीर खड़े गालियाँ
बोल रहे थे और कहीं बाण छोड़े जा रहे थे और कहीं शस्त्र धारण किये जा
रहे थे । कहीं स्त्रियों के वेश में हठी वीर घोड़े आदि छोड़कर भाग ले रहे
थे ॥ ६८ ॥ कितने खान दीड़ा दिए गये और कितने ही युद्धस्थल में मार
डाले गए और कितने ही क्षत्रियों को युद्ध में कुचल डाला गया । जहाँ वीर
हठी पुत्रों को मारा गया था उनके शिष्यगण उसी ओर आ टूटे ॥ ६९ ॥ जब
सिद्धपाल को पठानों ने देखा तो किसी के भी हाथ में शस्त्र सँभलाने न रह
सका । कितने ही भाग खड़े हुए और कितने ही मार डाले गये । ऐसे लग
रहे थे मानों पुराने पलाश के पेड़ धरती पर गिरा दिये गये हों ॥ ७० ॥ जो हठ-
पूर्वक जूझते रहे उन सबको युद्धस्थल में मार डाला गया और कइयों को
धरती खोदकर गाड़ दिया गया । कइयों को बाँध लिया गया और कइयों
को छोड़ दिया गया । कइयों को जान से मार डाला गया और कइयों को
बचा लिया गया ॥ ७१ ॥ जिसने तलवार उठायी उसे मार डाला गया और
वही बच पाया जो भाग खड़ा हुआ । कहाँ तक बताऊँ, बहुत भीषण युद्ध
हुआ और छत्रधारी राजागण कुपित हो उठे ॥ ७२ ॥ कहीं घनघोर नाद हो
रहा था, कहीं जवान जूझ रहे थे और उनका ढूँढ़-ढूँढ़कर (अपसराओं द्वारा)

किते आनि गाजै किते भाजि जावै ॥ ७३ ॥ जबै सिद्धपालै
 सभै खान मारे । लए छीन कै ताज बाजी नगारे । हुते दूरि
 बासी तिते खान घाए । घिर्यो सिद्धपालै करी मस्त
 न्याए ॥ ७४ ॥ जिते खान भाजे तिते फेरि दूके । चहुँ ओर
 गाजै हथी सिद्ध जूके । कहाँ जाइगो छत्रि जाने न दैहैं ।
 इही छेत्र मै छिप्र तुहि आजु छैहै ॥ ७५ ॥ सुने बैन ऐसे भर्यो
 कोप सूरौ । सभै शस्त्र सौडी महा लोह पूरौ । दयो सैन कौ
 आइसै आपुही यो । कपी बाहनी कौ कह्यो राम जी
 यो ॥ ७६ ॥ सुने बैन सैना चली कोप कैकै । सभै शस्त्र
 अस्त्रान कौ हाथ लैकै । जिते खान आए तिते खेत मारे ।
 किते खेदि कै कोटि की ओट डारे ॥ ७७ ॥ किते बीर बानैत
 बाजी पलट्टै । किते बीर बानीन सो आनि जुट्टै । किते
 खग लै खिग खत्री उमंगै । जहाँ जंग जोधा जगे जोर
 जंगै ॥ ७८ ॥ घुरैं घोर बादित मारु नगारे । मचे आनि
 कैकै महाँ भूप भारे । खुले खग खत्री उठे भाँति ऐसी । मनो
 बहनि ज्वाला प्रलंकाल जैसी ॥ ७९ ॥ कहूँ टीक काटे गिरे

वरण किया जा रहा था । कई आ-आकर कृपाणें चलाते थे और कितने ही
 आकर गरज रहे थे और कितने ही भाग खड़े हो रहे थे ॥ ७३ ॥ जब
 सिद्धपाल ने सभी पठानों को मार दिया और छोड़े-नगाड़े वगैरः छीन लिये
 तो दूर-दराज के पठानों को मार कर सिद्धपाल मस्त हाथी की तरह घिर
 गया ॥ ७४ ॥ जितने पठान भागे उतने ही फिर आ पहुँचे और सिद्धपाल के
 हाथी चारों ओर गरजने लगे । वे भी कहने लगे कि क्षत्रिय ! तुम कहाँ जाओगे ?
 तुम्हें जाने नहीं देंगे और इसी युद्धक्षेत्र में तुझे खत्म कर देंगे ॥ ७५ ॥ यह
 वचन सुनकर वीर कुपित हो उठा । वह सभी शस्त्रों से सज्जित महाबली था ।
 उसने सेना को वंसे ही आज्ञा दी जैसे रामजी ने वानर-सेना को दी थी ॥ ७६ ॥
 वचन सुनकर सारी सेना सभी अस्त्र-शस्त्रों को हाथ में लेकर बख पड़ी ।
 जितने भी खान-पठान आये सभी मार दिए और कइयों को खदेड़ कर किले की
 ओट में फेंक दिया ॥ ७७ ॥ कहीं भीषण वीर घोड़ों-सहित पलट पड़े और
 कहीं वीर बाणों-समेत आ जुटे । कहीं खड्ग लेकर क्षत्रिय उमंगपूर्वक वहाँ आ
 रहे थे जहाँ युद्ध में योद्धागण जोर से युद्ध कर रहे थे ॥ ७८ ॥ घनघोर नगाड़े
 बरधरा रहे थे और भारी-भारी राजागण युद्ध कर रहे थे । क्षत्रियों के खुले
 हुए खड्ग ऐसे खग रहे थे मानों प्रलयकाल की ज्वाला बह रही हो ॥ ७९ ॥
 कहीं काटा जा रहा था और कहीं टोप टूट रहे थे । कहीं मुकुटधारी और

टोप टूटे । कहूँ ताज धारी परे बरम छूटे । कहूँ चरम काटे
 परे खेत ऐसे । कहूँ चौर सोहै मनो हंस जैसे ॥ ८० ॥ कहूँ
 केत काटे लसे भूम ऐसे । मनो बाय तोरो महां ब्रिछ जैसे ।
 कहूँ अरध काटे तुरंगै झरे है । कहूँ टुक टुक हवै (म० प्र० १२५०)
 मतंग परेहै ॥ ८१ ॥ किते डोब डूबे गिरे घूम घूबै । गजें
 राज बाजी हने भूमि झूमै । किते ऊठि भाजे दुरे बूट साही ।
 लगै घाव पीठै कढै मूँड साही ॥ ८२ ॥ कित्यो केसु फाँसे द्रुमो
 जात जोरें । हहा सोहि छाडै कहै शत्रु भोरें । निकारै
 क्रिपानै न पाछै निहारै । भजे जाँहि काजी न बाजी
 सँभारै ॥ ८३ ॥ किते खान तोरे न घोरे सँभारै । किते
 छोरि जोरे लिया भेस धारै । किते दै अकोरै निहोरै तिसी
 कौ । लए हाथ मै तेग देखै जिसी कौ ॥ ८४ ॥ किते जीब
 लैकै सिपाही सिधाए । कितै चुंग जाँधै चलै खेत भाए ।
 कित्यो प्रान होसे रनहि ज्वाल साही । सरै टुकटुक हवै भजे
 पै गुनाही ॥ ८५ ॥ तहाँ लै अपच्छान केते बरे है । जिते
 सामुहे जुद्ध कैकै मरे है । किते नरक बासी तिसी काल हुए ।

उनके खुले हुए कवच पड़े थे । कहीं चर्म कटे वीर युद्धस्थल में पड़े थे । कहीं
 चँवर पड़े ऐसे लग रहे थे मानों हंस हों ॥ ८० ॥ कहीं झंडे कटे हुए धरती पर
 ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानों वायु में बड़े-बड़े वृक्षों को तोड़ फेंका हो ।
 कहीं अधकटे घोड़े पड़े थे और कहीं खंड-खंड हो हाथी पड़े थे ॥ ८१ ॥ कितने
 ही (रक्त में) डूब गये और कितने ही घूम-घूमकर गिर पड़े । राजा और
 घोड़े गरज रहे थे और झूम-झूमकर मारे जा रहे थे । कहीं ऊँट भागकर
 पेड़ों के शृङ्खों में छिप गए और घाब लगने के कारण मुँद नहीं निकाल रहे
 थे ॥ ८२ ॥ कइयों के केश पेड़ों में फँसे हुए थे और कई शत्रुओं को छोड़ने के
 लिए पुकार रहे थे । कृपाणें निकालकर पीछे नहीं देखते थे और घोड़ों को
 सँभाले बिना काजी भागे जा रहे थे ॥ ८३ ॥ कई खानों को तोड़ दिया गया
 और घोड़े उन्हें सँभाल नहीं रहे थे और कई स्त्री-वेश धारण करने के
 कारण छोड़ दिये गये थे । कहीं मित्रता कर उसे भेंट दे रहे हैं जिसके हाथ में
 तलवार देखते हैं ॥ ८४ ॥ कहीं जान बचाकर सिपाही भाग खड़े हुए हैं और
 वे झुंड बाँधे युद्धस्थल में चले आये हैं । कइयों ने रणज्वाला में प्राणों का
 होम कर दिया और कई भागने को गुनाह समझकर टुकड़े-टुकड़े होकर कट
 मरे ॥ ८५ ॥ वहाँ अप्सराओं ने उन कइयों का वरण कर लिया जो सामने
 लड़कर युद्ध में मर गये हैं । कई वहीं नर्कवासी बने और कई कृपण, नशा न

जिते सूम सोफी भजे जात सूए ॥ ८६ ॥ किते भीर जोधा
मरे बाज मारे । गिरे खास कैकै बिना घान डारे । कित्यो
अगमन आनि कै प्रान दीने । कित्यो देव के लोक को पंथ
लीने ॥ ८७ ॥ जिते सूम सोफी भजे जात मारौ । तिते भूमि
भोगे नही बनि जारे । भई भीर गाढी मच्यो जुद्ध भारी ।
लखे बीर ठाढे कपै देह सारी ॥ ८८ ॥ जहाँ सिद्धपाले घने
शत्रु कूटे । तहाँ देखि जोधान तँ कोटि छूटे । चले भाजि
कै ना हथियारै सँभार्यो । लखें शमशदीनै पर्यो भूमि
मार्यो ॥ ८९ ॥ तहाँ भाट ढाढी खरे गीत गावै । सुनावै
प्रभे बैर ब्रिदै त्रसावै । कहूँ नाद बाजें नफोरी नगारे । हसै
गरजि ठोकें भुजा भूप भारे ॥ ९० ॥ जब खान जूझै सभै खेत
माही । बडे ऐठियारे बच्यो एक नाही । लई छीनि विल्ली
दिलीसँ सँघार्यो । तबै आपने सीस पै छत्र ढार्यो ॥ ९१ ॥
जबै सिद्धपाले घनी सैन कूटी । बचे प्रान लैकै चहूँ ओर फूटी ।
लई पातिशाही सिरै छत्र ढार्यो । पर्यो पासु बाँच्यो अर्यो
सो सँघार्यो ॥ ९२ ॥ लई पातिशाही ह्रिदै यौ बिचारा ।

पीनेवाले भागते हुए ही मर गये ॥ ८६ ॥ कई डरपोक योद्धा कोई थोड़ा तक
मारे बिना मर गये और कई बिना बाण चलाये ही डरकर गिर पड़े । कई
आगे आकर प्राण त्याग गए और कइयों ने देवलोक का मार्ग पकड़ा ॥ ८७ ॥
जितने न पीनेवाले भागे जा रहे थे वे मारे गए । कइयों को भूमि निगल
गई और कई बाँधकर मार डाले गये । आपाधापी मच गई और भीषण युद्ध
हुआ । वीरों को खड़े देखकर लोग काँप उठते थे ॥ ८८ ॥ जहाँ सिद्धपाल
ने अनेकों शत्रुओं को काटा वहाँ योद्धागण किले को छोड़ भाग गये ।
शमसदीन को भूमि पर मरा पड़ा देखकर हथियार सँभाले बिना वे
भाग खड़े हुए ॥ ८९ ॥ वहाँ भाट, चारण खड़े गीत गा रहे थे और
शत्रुओं को डरा रहे थे । कहीं नाद, नफोरी, नगाड़े बज रहे थे और बड़े-बड़े
राजागण भुजाओं को ठोंककर गरज तथा हँस रहे थे ॥ ९० ॥ जब सभी खान
युद्ध में मारे गए और एक भी नहीं बचा तो दिल्लीश्वर को मारकर दिल्ली
छीन ली गई और उसने अपने सिर पर छत्र झुलवा दिया ॥ ९१ ॥ जब
सिद्धपाल ने सेना को काट-कूट डाला और जो बची थी वह चारों ओर भाग
खड़ी हुई तो उसने बादशाहत लेकर सिर पर छत्र झुलाया । जो शरण में
आ गया वह बच गया और जो अड़ गया वह मार डाला गया ॥ ९२ ॥ राज
लेकर उसने हृदय में विचार किया कि मैंने इसे राह जाते को मारकर अच्छा

कर्यो काज नीको न राहै सँघारा । जग्यो रैन सारी धर्यो
ध्यान ताको । दियो पातिशाही भिले प्रात वाको ॥ ६३ ॥
कसाईन कौ दास तह एक आयो । नदी डारबे ओझरी लै
सिधायो । गह्यो जाइ ताको दर्ई पातिशाही । धर्यो जैन
आलावदी नाम ताही ॥ ६४ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब ही राज
तवन (मृ० प्र० १२५१) कह दयो । सुता सहित बन मारग लयो ।
बद्रकाशि सहि किया प्रवेशा । दुहिता सहित अतिथ के
भेसा ॥ ६५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब बहु तह उपमा करी प्रगट
भई जग माइ । बरंजूह तासो कह्यो जो तुहि सुता सुहाइ ॥ ६६ ॥
॥ चौपाई ॥ मैया इहै दानु मुहि दीजै । रच्छा आपु हमारी
कीजै । छलानी ग्रहि तुरक न जाइ । मुहि घर देहु इहै जग
माइ ॥ ६७ ॥ चरनन रहै तिहारै चित्ता । ग्रहि महि होइ
अनगनत बित्ता । शत्रु न जीति हमै कोई जाइ । तुम महि
रहै सोर मन माइ ॥ ६८ ॥ जग मातै ऐसे बर दीयो । तिन
कह राज असाम को कीयो । अब लगि राज तहाँ तै करें ।
दिल्लीपति की कानि न धरें ॥ ६९ ॥ किन कह राज भवानी
दीयो । तिन ते छीनि न किनहूँ लीयो । अब लौ करत तहाँ

काम नहीं किया है । उसने सारी रात जमकर यह विचार किया कि जो
भी प्रातः मिल जाय उसे ही यह राज दे दिया जाय ॥ ६३ ॥ वहाँ एक कसाई
का दास आ निकला जो नदी में कुछ गंदगी फेंकवे जा रहा था । उसे जा
पकड़ा और राज दे दिया और उसका नाम जैनुलावारी रख दिया ॥ ६४ ॥
॥ चौपाई ॥ जब राज उसे दे दिया तो स्वयं पुत्री-समेत जंगल का रास्ता
पकड़ लिया । पुत्री-सहित साधुवेश में उसने भद्रकाशी में प्रवेश किया ॥ ६५ ॥
॥ दोहरा ॥ जब वहाँ घनघोर तपस्या की तो जगत्माता प्रकट हुई और उसने
कहा कि तुम्हारी पुत्री को जो वर अच्छा लगे उसी से इसका विवाह कर
दो ॥ ६६ ॥ ॥ चौपाई ॥ हे माँ ! मुझे यह दान दो और स्वयं मेरी रक्षा करो ।
क्षत्राणी को कोई तुर्क न ले जाय, हे जगत्माता ! मुझे यही वरदान दो ॥ ६७ ॥
मेरा चित्त तुम्हारे चरणों में रहे और मेरे घर में अपरिमित द्रव्य हो । मुझे
कोई शत्रु न जीत सके और मेरा मन सदैव तुम्हारे में लगा रहे ॥ ६८ ॥
जगत्माता ने उसे ऐसा वर दिया कि उसे आसाम का राजा बना दिया ।
वहाँ अभी तक वहाँ राज करता है और दिल्लीश्वर की परबाह नहीं
करता ॥ ६९ ॥ जिन्हें भवानी ने खुद राज दिया हो उनसे कोई छीन नहीं
सकता । अब तक वह वहाँ का राजा है और ऋद्धिबाँ-सिद्धिबाँ उसके पास

को राजा । रिद्धि सिद्धि सभ ही घर साजा ॥ १०० ॥ प्रथम
दिलिस सौ पिता जुझायो । पुनि देवी तें अस बर पायो । अंग
देस के भए चिपारा । इह छल अबला धरम उबारा ॥ १०१ ॥ १ ॥
॥ इति श्री चरित्र पद्याने विया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दो सौ सतानवों चरित्र
समापतम सत् सुभम सत् ॥ २६७ ॥ ५७५० ॥ अफजू ॥

अथ दोइ सौ अठानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनियत एक शाह की दारा । रूपवान
गुनवान अपारा । झिलमिल दे तिह नाम भनिज्जै । को दूसर
पटतर तिह दिज्जै ॥ १ ॥ रूपकेत राजा इक तहाँ । रूपवान
अब सूर महाँ । थरहर कँपै शत्रु जाके डर । प्रगट भयो जनु
दुतिय निसाकर ॥ २ ॥ एक सपूत पूत तिन जयो । जा सौ
और न जग महि भयो । झिलमिल दे ताकौ लखि गई ।
तबहीं तो बवरी सी भई ॥ ३ ॥ वासौ बाँधा अधिक सनेहा ।
द्वै ते करी एक जनु देहा । और उपाउ न चलयो खलायो । तब
अबला नर भैस बनायो ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ धरि करि भैस
करोल की गई तवन के धाम । सभ को नर जाने तिसै कोई न
है ॥ १०० ॥ पहले दिल्लीश्वर से पिता को जुझाया । फिर देवी से वरदान
प्राप्त किया और अंगदेश का राजा बन गया । इस प्रकार का कार्य करके
उस अबला ने अपना धर्म बचाया ॥ १०१ ॥ १ ॥
॥ श्री चरित्रोपाख्यान के विया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में दो सौ सतानवों
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६७ ॥ ५७५० ॥ अफजू ॥

दो सौ अठानवों चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ एक घनी की स्त्री रूपवान और गुणवान सुनी जाती थी ।
उसका नाम झिलमिलदेवी था और दूसरा अन्य भला उसके समान कौन
था ॥ १ ॥ वहाँ रूपकेतु नामक एक राजा था जो अत्यन्त रूपवान और
शूरवीर था । शत्रु उससे थरथराते थे । वह मानों दूसरा चन्द्र था ॥ २ ॥
उसका एक सुपुत्र था जिसके समान जगत् में अन्य कोई नहीं था । झिलमिल
देवी ने उसे देखा और बावली-सी हो गई ॥ ३ ॥ उससे अत्यधिक स्नेह
बढ़ाकर मानों एक ही शरीर कर दिया । जब अन्य कोई उपाय न चला तो
स्त्री ने पुरुष-वेश बनाया ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ वह शिकारी (करोल) का वेश
धारणकर उसके घर गई । सब उसे पुरुष मान रहे थे, कोई भी उसे स्त्री

जानै बास ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ कुअरहि रोज शिकार खिलावै ।
 भाँति भाँति तन चिगहि हनावै । इकली फिरै सजन के
 संग । पहिरे पुरख भेस कह अंगा ॥ ६ ॥ इक दिन सदन
 न जात सु भई । पित तन कही सुता मरि गई । (५०५०१२५२)
 अपनी ठवर बकरियहि जारा । दूसर पुरख न भेद
 बिचारा ॥ ७ ॥ शाह लह्यो दुहिता मर गई । यौ नही
 लख्यौ करौलन भई । संग नित लै त्रिप सुत कौ जावै । बन
 उपवन भीतर भूमि आवै ॥ ८ ॥ बहुत काल इह भाँति
 बितायो । राजकुअर कह बहु बिरमायो । सो ताकह नहि नारि
 पछानै । भलो करौल ताहि करि मानै ॥ ९ ॥ इक दिन गए
 गहिर बन दोऊ । साथी दुतिय न पहुचा कोऊ । अथ्यो दिवस
 रजनी हवै आई । एक बिछ तर बसे बनाई ॥ १० ॥ तह
 इक आयो सिंघ अपारा । काढे दाँत बडे बिकरारा । ताहि
 निरखि त्रिप सुत डरपायो । शाह सुता तिह धीर
 बँधायो ॥ ११ ॥ तब तिह ताकि तुपक सौ मार्यो । त्रिप
 सुत देखत सिंघ प्रहार्यो । राजकुअरि अस बचन उचारे ।
 माँगहु जो जिय रुचत तिहारे ॥ १२ ॥ तब तिन तासौ ब्रिथा

नहीं जान रहा था ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह कुँवर को रोज शिकार
 खिलवाती थी और विभिन्न प्रकार के मृगों को मरवाया करती थी । वह
 साजन के साथ पुरुष-वेश में अकेली ही घूमती थी ॥ ६ ॥ एक दिन घर पर
 वापस नहीं गई और पिता से कहलवा दिया कि पुत्री मर गई है । अपने
 स्थान पर एक बकरी को जला दिया और दूसरे किसी को भी पता न
 लगा ॥ ७ ॥ राजा ने सोचा कि पुत्री मर गई है, यह नहीं सोचा कि वह
 शिकारिन हो गई है । वह राजा के लड़के को साथ ले रोज जाती और वन-
 उद्यान में भ्रमण कर आती ॥ ८ ॥ बहुत समय तक इसी तरह बीता और उसने
 राजकुमार को प्रसन्न कर लिया । वह उसे स्त्री न जानकर एक भला
 शिकारी मानता था ॥ ९ ॥ एक दिन दोनों गहरे जंगल में पहुँचे जहाँ उनका
 दूसरा साथी कोई भी न पहुँच सका । दिन बीत गया और रात हो गई ।
 वे दोनों एक पेड़ के नीचे रुक गए ॥ १० ॥ वहाँ एक भयंकर शेर आया
 जिसके विकराल दाँत थे । उसे देखकर राजा का पुत्र डर गया पर उस शाह
 की पुत्री ने उसे धैर्य बँधाया ॥ ११ ॥ उसने ताककर निशाना लगाया और
 बंदूक से राजा के लड़के के देखते-देखते उसे मार डाला । राजकुमार ने तब
 कहा कि तुम जो चाहो माँगो ॥ १२ ॥ तब उसने सारी बात कही कि हे

उचारी । राजकुअर मैं शाह दुलारी । तो सौ मोरि लगनि
 लग गई । ताते भेस धरत इह भई ॥ १३ ॥ अब तुम हमरे
 साथ बिहारो । इस्ती करि ग्रहि महि मुहि बारो । जस मुरि
 लगन तुम पर लागी । तस तुम होहु मोर अनुरागी ॥ १४ ॥
 आनंद भयो कुअर के चीता । जनु करि मिली राम कह सीता ।
 भोजन जानु छुधातरु माई । जनु नल मिली दमावति
 आई ॥ १५ ॥ उही ब्रिछ तर ताकौ भजा । भाँति भाँति
 आसन कह सजा । ताँहि सिंघ को चरम निकारी । भोग करे
 ता पर नर नारी ॥ १६ ॥ ताको नाम अपच्छरा धरा । कही
 कि रीझि मोहि इह बरा । इह छल ताहि नारि करि ल्यायो ।
 रूपकेतु पितु भेद न पायो ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल
 ताकौ व्याहिकै लै आयो निजु धाम । लोक अपच्छराँ तिह लखे
 कोऊ न जानै बाम ॥ १८ ॥ त्रिप सुत बरा करौल हवै भई
 अनाथ सनाथ । सभहूँ सिर रानी भई इह बिधि छल के
 साथ ॥ १९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ अठानवों चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ २६८ ॥ ५७६९ ॥ अफजूं ॥

राजकुमार ! मैं तो शाह की दुलारी हूँ । मुझे तुमसे प्रेम हो गया था इसी से
 मैंने यह वेश धारण किया था ॥ १३ ॥ अब तुम मेरे साथ रमण करो और
 स्त्री जानकर मेरा वरण कर लो । जैसे मेरी लगन तुमसे लगी है तुम भी
 मुझ पर आसक्त हो जाओ ॥ १४ ॥ कुँवर का मन वैसे ही आनंदित हो
 उठा, जैसे मानों राम को सीता मिल गई हो । मानों भूखे को भोजन मिल
 गया हो अथवा नल को दमयन्ती मिल गई हो ॥ १५ ॥ उसी वृक्ष के नीचे
 विभिन्न आसनों के माध्यम से उसके साथ केलिक्रीड़ा की । उसी शेर का
 चमड़ा निकालकर उस पर वे स्त्री-पुरुष रमण करने लगे ॥ १६ ॥ उसका
 नाम अप्सरा रखा और उड़ा दिया कि अप्सरा ने, रीझकर मेरा वरण किया
 है । इस छल द्वारा उसे स्त्री बनाकर ले आया और रूपकेतु पिता को पता
 नहीं लग पाया ॥ १७ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार छल से उसे व्याह कर घर
 ले आया । सब उसे अप्सरा मान रहे थे और कोई भी उसे स्त्री नहीं मान
 रहा था ॥ १८ ॥ शिकारी बनकश उसने राजा के पुत्र का वरण किया और
 अनाथ से सनाथ हो गई । वह छल से सबके सिर पर रानी बन
 बैठी ॥ १९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ अठानवेवें चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ २६८ ॥ ५७६९ ॥ अफजूं ॥

अथ दोइ सौ नन्यानवे चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ चंद्रचूड़ इक रहत भुपाला । अमितप्रभा
जाके ग्रहि बाला । ता सौ दूसरि जग महि नाही । नरी
नागनी निरखि (मू० प्र० १२५३) लजाही ॥ १ ॥ साहिक हुतो
अधिक धनवाना । जा सौ धनी न जग में आना । अछल
देइ दुहिता ताके घर । रहत पंडिता सभ सति हरि करि ॥ २ ॥
चंद्रचूड़ को हुतो पुत्र इक । पढ़ा व्याकरण अरु शास्त्रनिक ।
ताको नाम न कहवे आवै । लिखत ऊख लिखनी हवै
जावै ॥ ३ ॥ इक दिन कुअर अखेटक गयो । शाहु सुता को
निरखत भयो । वाकी लगी लगन इह संगी । सगल भई
तरुनी सरबंगा ॥ ४ ॥ चतुरि दूति इक तहाँ पठाई । कहियहु
ऐस कुअर कह जाई । एक दिवस मोरे घर आवहु । साथ
हसारे भोग मचावहु ॥ ५ ॥ तब वह सखी कुअरि पहि आई ।
कही कुअरि सो ताहि सुनाई । बिहसि साजन इह भाँत उचारी ।
कहियहु जाइ ऐस तुम प्यारी ॥ ६ ॥ इक अवधूत सु छत्र
त्रिपारा । सुनियत बसत समुद्र के पारा । है अवधूतमती

दो सौ नन्यानवेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ चन्द्रचूड़ एक राजा था जिसके घर पर अमितप्रभा नामक
स्त्री थी । उसके समान जगत् में कोई अन्य स्त्री नहीं थी । नर, नाग-
स्त्रियाँ सभी उसे देख लजाती थीं ॥ १ ॥ साहिक एक अत्यधिक धनी पुरुष
था जिसके समान धनवान जगत् में अन्य कोई नहीं था । उसके घर अछल
देवी नामक एक पुत्री थी जिसने पंडितों की मति हरण कर रखी थी ॥ २ ॥
चंद्रचूड़ का एक पुत्र था जो व्याकरण और शास्त्र पढ़ा हुआ था । उसकी
महिमा लिखते तो गन्ने जितनी बड़ी लेखनी घिसकर सामान्य लेखनी बन
जाती है ॥ ३ ॥ एक दिन राजकुमार शिकार खेलने गया और उसने उस
धनी की पुत्री को देखा । उसकी भी लगन इससे लग गई और तरुणी
सर्वांगरूप से उस पर आसक्त हो गई ॥ ४ ॥ उसने एक चतुर दूती को वहाँ
भेजा, जिससे यह कहलवाया कि एक दिन मेरे घर पर आओ और मेरे साथ
रमण करो ॥ ५ ॥ तब वह दासी कुँवर के पास आई और उसे सुनाकर कह
दिया । सजन ने हँसकर कहा कि तुम प्रिय से जाकर कह देना ॥ ६ ॥
एक अवधूत राजा समुद्र के पार बसता है । अवधूतमती उसकी पुत्री है जिसके

दुहिता तिह । अवर न घड़ी बिधाता सम जिह ॥ ७ ॥
 प्रथम तू तिसै मोहि मिलावै । ता पाछे दोसौ पति पावै ।
 यौ जो कोटि उपाव बनै है । तौ सोसो नहि भोगन पैहै ॥ ८ ॥
 यौ ही सखी जाइ तिह कही । मन बच कुअरि चक्रित हवै रही ।
 चित मौ अनिक चटपटी लागी । ताँते नींद भूख सभ
 भागी ॥ ९ ॥ समुंद पार जायो नहि जावै । तऊ कुअरि को
 शांति न आवै । साज तहाँ चलिबे को करा । तीरथ जात
 हौ पितहि उचरा ॥ १० ॥ साज बाज सभ कीआ तयारा ।
 तह हवै चली बाज असवारा । सेतबंध रामेश्वर गई । इह
 बिधि ह्रिद बिचारत भई ॥ ११ ॥ ताते हवै जहाज असवारा ।
 गई सिंगलादीप मझारा । जह तिह सुना राज को धामा ।
 जात भई तह ही कौ वामा ॥ १२ ॥ तह गी पुरख भेस को
 करिक । भाँति भाँति के भूखन धरिकै । जब अवधूतमती
 तिह हेरा । राजकुअरि जान्यो कहूँ केरा ॥ १३ ॥ निरखत
 कुअरि मदन बलि भई । अंग अंग बिहबल हवै गई । चित
 महि कहा इसी कह बरिहौ । ना तर घाइ कटारी
 मरिहौ ॥ १४ ॥ देखै लगी सीस निहुराई । तिह लिय घात
 इहै कर आई । तुरंग धवाइ जात तह भई । सिघनि जानु

समान विधाता ने अन्य नहीं बनाई है ॥ ७ ॥ पहले तुम मुझे उसे मिलाओ
 और तब मेरे जैसा पति प्राप्त करो । वैसे अगर तुम करोड़ों उपाय भी करो
 तो मुझसे रमण नहीं कर पाओगी ॥ ८ ॥ दासी ने वही जा कहा जिसे सुनकर
 राजकुमारी चक्रित हो उठी । उसके चित्त में उलझन बढ़ गई और उसकी
 नींद-भूख सब भाग गई ॥ ९ ॥ समुद्र पार जब तक नहीं जाया जायगा तब
 तक कुँवर को शांति नहीं मिलेगी । वहाँ जाने को सोचकर उसने पिता से
 तीर्थ जाने की बात कही ॥ १० ॥ सब तैयारी करके घोड़े पर सवार हो वह
 चल पड़ी । वह सेतुबंध रामेश्वरम् पहुँच गई और वहाँ आगे जाने का
 आयोजन करने लगी ॥ ११ ॥ वहाँ से जहाज पर सवार हो वह सिंहलद्वीप
 पहुँची । वह स्त्री उधर ही चल पड़ी जिस ओर उसे राजा के महल का पता
 चला ॥ १२ ॥ वहाँ वह पुरुष-वेश और भाँति-भाँति के आभूषण पहनकर
 गई । अवधूतमती ने उसे देखकर कहीं का राजकुमार समझा ॥ १३ ॥
 कुँवर को देखकर वह कामासक्त हो उठी और उसका अंग व्याकुल हो उठा ।
 उसने मन में सोचा कि मैं इसी का वरण करूँगी अन्यथा कटारी मारकर मर
 जाऊँगी ॥ १४ ॥ वह सिर झुकाकर देखने लगी और इसी समय इस स्त्री को

झिगी गहि लई ॥ १५ ॥ झटकि झरोखा तें गहि लई ।
बाँधल साथ (सू०ग्रं० १२५४) प्रिसट के भई । हाहा भाखि लोग
पचि हारे । राखि न सके ताँहि रखवारे ॥ १६ ॥ बाँधि
प्रिसटि तिह तुरंग धवायो । एकै बान मिला सो घायो । ताकह
जीति धाम लै आई । सखी कुअरि के धाम पठाई ॥ १७ ॥
जो तुम कहा काज मैं किया । अपनो बोल निबाहु पिया ।
प्रथम व्याहि सोको लै जावौ । ता पाछे याकह तुम
पावो ॥ १८ ॥ राजकुअर तब ही तह आयो । तासौ प्रथमै
व्याह करायो । बहुरौ व्याहि ताहि लै गयो । असि चरित्र
चंचला दिखयो ॥ १९ ॥ प्रथमहि पारसमुंद कै गई । राज
सुतहि हरि ल्यावत भई । बहुरौ मन भावत पति करियो ।
त्रिया चरित्र न जात बिचरियो ॥ २० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे दोइ सौ नन्यानवें चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ २९९ ॥ ५७८९ ॥ अफजूं ॥

अवसर मिल गया । घोड़ा दौड़ाकर यह वहाँ ऐसे पहुँच गई मानो शेरनी ने
मृगी को पकड़ लिया हो ॥ १५ ॥ उसे झटककर झरोखे से पकड़ लिया और
अपनी पीठ के साथ बाँध लिया । लोग हाहाकार मचाकर थक गए परन्तु
रक्षक भी उसे वचा न सके ॥ १६ ॥ पीठ पर बाँधकर उसने घोड़ा दौड़ाया
और जो मिला उसे एक ही वाण से मार डाला । उसे जीतकर घर ले आई
और तब उसने सखी को राजकुमार के घर भेजा ॥ १७ ॥ जो तुमने कहा है
वह मैंने कर दिया है, हे प्रिय ! अब तुम अपना वचन निभाओ । अब तुम पहले
मुझे व्याह कर ले जाओ, बाद में तुम इसे प्राप्त करो ॥ १८ ॥ तब राजकुमार
वहाँ आया और पहले उससे विवाह किया, फिर उसे व्याहकर ले गया । इस
प्रकार स्त्री ने यह चरित्र दिखाया ॥ १९ ॥ पहले वह समुद्र पार जा
राजकुमारी को लायी और फिर मनभाता पति पाया । त्रिया-चरित्र का
विचार नहीं किया जा सकता ॥ २० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में दो सौ नन्यानवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ २९९ ॥ ५७८९ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सीसी सारकेत इक राजा । जासो बिधि दूसर न साजा । सीसै सार देइ तिह रानी । जा सम दूसर हवै न बखानी ॥ १ ॥ तासौ अधिक त्रिपति की प्रीता । निस दिन रहै तरुनि मै चीता । कितक दिनन रानी मरि गई । राजा की उदास मति भई ॥ २ ॥ अवर नारि की ओर न हेरै । भूल न जात किसी के डेरै । नारी और अधिक दुख पावै । नाथ मिले बिनु सैन सँतावै ॥ ३ ॥ मिलि बँठी इक दिन सभ रानी । आपु बिखें मिलि करत कहानी । इह जड़ पति मति किन हरि लई । कहा भयो रानी मरि गई ॥ ४ ॥ एतो शोक कियो जाको इह । मति हरि लई कहाँ याको तिह । हवैहै त्रिया त्रिपन के धनी । सदा सलामति चाहियत धनी ॥ ५ ॥ सखी एक स्यानी तह अही । तिह इह भाँति बिहसि करि कही । मैं त्रिप ते त्रिय शोक मिटैहौ । बहुरि तिहारे साथ मिलैहौ ॥ ६ ॥ जारिक पकरि कठोरी राखा । त्रिप के सुनत ऐस बिधि भाखा । ध्रिग इह सूड़ त्रिप को

तीन सौवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सीसी सारकेतु एक अद्वितीय राजा था, जिसकी रानी सीसेसारदेवी थी । रूप में उसके समान कोई नहीं कही जाती थी ॥ १ ॥ राजा की उसमें अत्यधिक प्रीति थी और रात-दिन उसका ध्यान उसी तहणी में रहता था । कई दिनों बाद रानी मर गयी और राजा उदासीन हो गया ॥ २ ॥ वह अन्य किसी स्त्री की ओर देखता भी नहीं था और भूलकर भी किसी के निवास स्थान पर नहीं जाता था । अन्य स्त्रियाँ दुखित थीं क्योंकि प्रिय से मिले बिना उन्हें काम सताता था ॥ ३ ॥ एक दिन सब रानियाँ मिल-बैठकर आपस में बातचीत करने लगीं । इस जड़ पति की मति का हरण किसने कर लिया है । क्या हुआ जो रानी मर गयी है ॥ ४ ॥ इसने उसका इतना ही शोक किया है कि इसकी बुद्धि ही चुरा ली गयी है । राजा पति सलामत रहना चाहिए, स्त्रियाँ तो अनेकों मिल जायेंगी ॥ ५ ॥ वहाँ एक स्यानी सखी थी, जिसने हँसकर कहा कि मैं राजा का शोक दूर कर दूंगी और उसे पुनः तुम लोगों से मिलवा दूंगी ॥ ६ ॥ एक यार को उसने पकड़कर कोठरी में रख लिया और राजा को सुनाकर कहा कि राजा को धिक्कार है जिसे विवेक-अविवेक

जीआ । जिह अबिबेक बिबेक न कीआ ॥ ७ ॥ जु त्रिया और
सौ भोग कमावै । बातन साथ पतिहि उरझावै । त्रिप जु कोठरी
छोरि निहारै । साच झूठ तब आपु बिचारै ॥ ८ ॥ (मू० प्र० १२५५)
त्रिप के स्रवनन धुनि इह परी । तुरतु कुठरीया जाइ उघरी ।
हेरा जब बहु मनुछ बनाई । तब ऐसे तिह कहा रिसाई ॥ ९ ॥
इतो शोक हम कियो निकाजा । इह न लहत थो ऐस निलाजा ।
अब मैं रनियन अवर बिहारौ । रानी सरी न फेरि
चितारौ ॥ १० ॥ और त्रियन के साथ बिहारा । वा रानी
कह त्रिपति बिसारा । इह छल त्रियन नरिद्रहि छरा । त्रिय
चरित्र अतिभुत इह करा ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३०० ॥ ५८०० ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ इक चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ इच्छावती नगर इक सुना । इच्छासेन
राजा बहु गुना । इशटमती ताके घर नारी । इशटदेवका

का कुछ भी ख्याल नहीं रहा है ॥ ७ ॥ जो स्त्रियाँ अन्य के साथ रमण करती हैं
वे पति को प्यार के दिखावे की बातों में उलझाए रहती हैं । राजा यदि
कोठरी खोलकर देखे तो सच-झूठ का स्वयं ही उसे पता चल जायगा ॥ ८ ॥
राजा के कान में जब यह बात पड़ी तो उसने तुरन्त कोठरी को जा खोला ।
जब उसने उस व्यक्ति को वहाँ देखा तब क्रुद्ध हो ऐसे कहा ॥ ९ ॥ मैंने बेकार
ही शोक किया और इस निर्लज्ज को नहीं देखा । अब मैं अन्य रानियों के
साथ रमण करूँगा और मृत रानी को फिर नहीं याद करूँगा ॥ १० ॥ अब
वह अन्य स्त्रियों के साथ केलि-क्रीड़ा करने लगा और उस रानी को राजा ने
विस्मृत कर दिया । इस छल से स्त्रियों ने राजा को छला और इस प्रकार
अद्भुत प्रपंच बनाया ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३०० ॥ ५८०० ॥ अफजू ॥

तीन सौ एकवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ इच्छावती नामक नगर में गुणवान राजा इच्छासेन
था । उसकी स्त्री इश्टमती और पुत्री इश्टदेवका थी ॥ १ ॥ अजयसेन

रहत दुलारी ॥ १ ॥ अजैसैन खतरेटा तहाँ । आवत भयो
 धाम त्रिय जहाँ । राणी ता को रूप निहारा । गिरी धरनि
 जनु लग्यो कटारा ॥ २ ॥ उड़दा बेग निपुंसक बने । पठै दए
 रानी तह घने । गहि करि ताहि लै गए तहाँ । तरनी पंथ
 बिलोकत जहाँ ॥ ३ ॥ कामभोग तासौ रानी करि । पौढे
 दोऊ जाइ पलघा पर । तब लगि आइ त्रिपति तह गए ।
 सोवत दुहँ बिलोकत भए ॥ ४ ॥ भरभराइ त्रिय जगी
 दुखातर । डारि दयो दुपटा पति मुख पर । जब लौ करत
 दूरि त्रिप भयो । तब लौ जारि भाजि करि गयो ॥ ५ ॥
 दुपटा दूरि करा त्रिप जबै । पकर लियो रानी कह तबै ।
 कहाँ गयो वहु जु मैं निहारा । बिनु न कहे भ्रम मिटै
 हमारा ॥ ६ ॥ प्रथमै जान माफ सुर कीजै । बहुरौ बात
 साच सुनि लीजै । बचन देहु मेरे जौ हाथा । बहुरि लेहु
 बिनती सुनि नाथा ॥ ७ ॥ भंगे नेत्र तोरि विधि करे । इक
 तें जात दोइ लख परे । तुम कह कछू झाँवरो आयो । मुहि
 को दिखि लखि करि द्वै पायो ॥ ८ ॥ त्रिप सुनि बचन
 चकित हवै रहा । त्रिय सौ बहुरि बचन नहि कहा । मुख

एक क्षत्रिय वहाँ आया जहाँ स्त्रियाँ थीं । रानी ने उसका रूप देखा और
 धरती पर ऐसे गिर पड़ी मानों कटारी लगी हो ॥ २ ॥ उड़दाबेग तथा
 अनेकों अन्य नपुंसकों को रानी ने भेजा जो उसे वहाँ पकड़कर ले आए
 जहाँ वह तरुणी उसका रास्ता देख रही थी ॥ ३ ॥ रानी उसके साथ
 रतिक्रीड़ा कर उसके साथ पलंग पर लेट गई । तब तक राजा वहाँ आ
 गया और उसने दोनों को देखा ॥ ४ ॥ स्त्री हड़बड़ाकर उठी और दुखी
 हृदया ने पति के मुख पर दुपट्टा डाल दिया । जब तक राजा उसे हटाए
 तब तक वह यार भाग गया ॥ ५ ॥ जब राजा ने दुपट्टा दूर किया तो
 रानी को पकड़ लिया । वह कहाँ गया जिसे मैंने देखा था । उससे बात
 किये बिना मेरा भ्रम नहीं मिटेगा ॥ ६ ॥ पहले मुझे प्राण की माफ़ी दो
 तब सच्ची बात सुनो । पहले मुझे वचन दो और नाथ ! फिर मेरी बात
 सुनो ॥ ७ ॥ विधाता ने तुम्हारी आँखें भंगी कर दी हैं, इससे तुम्हें एक
 की जगह दो नज़र आते हैं । तुम्हें कुछ भ्रम हुआ है और मुझ एक को
 तुमने दो देखा है ॥ ८ ॥ राजा सुनकर चकित हो गया और स्त्री से पुनः

मुँदे घर को फिर आयो । करम रेख कह दोश
लगायो ॥ ६ ॥ १ ॥ (मू०पं० १२५६)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ इक चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३०१ ॥ ५८०६ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ दोइ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सोरठसेन एक भूपाला । तेजवान बलवान
छिताला । सोरठ दे ताकै घर रानी । सुंदर सकल भवन महि
जानी ॥ १ ॥ छत्रसेन तह शाह भनिज्जै । छत्रदेइ इक
सुता कहिज्जै । भूत भवान भविष्य मझारी । भई न है हवैहै
न कुमारी ॥ २ ॥ जब बहु तरुनि चंचला भई । लरिकापन
की सुधि बुधि गई । छतिया कुचन तबै उठि आए । मदन
भरतिया भरत भराए ॥ ३ ॥ अभरनसेन कुअर तिन लहा ।
तेजवान कछु जात न कहा । लागी लगन छूटि नहि गई ।
सुक नलनी की सी गति भई ॥ ४ ॥ तासौ लगी लगन बहु
भाता । किह बिधि बरन सुनाऊँ बाता । नितिप्रति ताकह
बोली पठावै । काम भोग रुचि मान कमावै ॥ ५ ॥ ताके

कुछ नहीं कहा । मुँह बंद कर वापस आ गया और भाग्य को दोष देने
लगा ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ एकवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३०१ ॥ ५८०६ ॥ अफजू ॥

तीन सौ दूसरा चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ राजा सोरठसेन तेजवान और बलवान छत्रधारी था ।
उसके घर में सोरठदेवी रानी थी जिसे सब भूवनों में सुन्दर माना जाता
था ॥ १ ॥ छत्रसेन नामक एक धनी था जिसकी पुत्री छत्रदेवी के नाम
से जानी जाती थी । भूत, भविष्य और वर्तमान में ऐसी सुन्दर कुमारी
नहीं हुई है ॥ २ ॥ जब स्त्री तरुणी हुई, उसकी बचपन की सुध-बुध भूली,
उसकी छाती की उठान उठी तो कामदेव ने उसे परिपूर्ण कर दिया ॥ ३ ॥
उसने अवर्णनीय तेजयुक्त कुँवर उग्रसेन को देखा । उसकी लगन लग गई
और सुक-नलनी जैसी स्थिति उसकी हो गई ॥ ४ ॥ उससे उसकी लगन
विभिन्न प्रकार से लग गई । मैं उसकी बातों का भला क्या वर्णन करूँ ?

लए नाथ कह मारा । तन मै राँड भेस को धारा । जब ग्रहि
अपने जार बुलायो । सभ प्रसंग कहि ताहि सुनायो ॥ ६ ॥
सुनिकै जार बचन अस डरा । ध्रिग ध्रिग बच तिह त्रियहि
उचरा । जिन अपनो पति आपु सँघरियो । मुहि कस चहत
भलाई करियो ॥ ७ ॥ पति मार्यो जाके हित गयो । सो
भी अंत न ताको भयो ! ऐसो मित्र कछू नहि करियो । इह
राखे ते भलो सँघरियो ॥ ८ ॥ कर सहि काढि भगौती लई ।
दुहूँ हाथ ताको सिर दई । हाइ हाइ जिमि भूप पुकारै । त्यों
त्यों नारि क्रिपानन मारै ॥ ९ ॥ द्वै दिन भए न पति के मरै ।
ऐसी लगे अब ए करै । ध्रिग जियबो पिय बिनु जग माही ।
जार चोर जिह हाथ चलाही ॥ १० ॥ मर्यो निरखि तिह
सभन उचारा । भला करा तैं जार सँघारा । चादर की लज्जा
तैं राखी । धन्य धन्य पुत्री तूँ भाखी ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ दोइ चरित्र
समापतम् सतु शुभम् सतु ॥ ३०२ ॥ ५८२० ॥ अफजूं ॥

वह रोज उसे बुलाती थी और रुचिपूर्वक कामक्रीडा करती थी ॥ ५ ॥
उसके लिए उसने अपने पति को मार कर विधवा का वेश धारण कर
लिया । जब उसने अपने घर अपने मित्र को बुलाया तो उसे सारा रहस्य
समझा दिया ॥ ६ ॥ यार उसकी बातें सुनकर डर गया और कहने लगा
कि उसे धिक्कार है जिसने स्वयं अपना पति मार दिया है । अब भला
वह मेरी कौन सी भलाई करेगी ॥ ७ ॥ जिसके लिए उसने पति को मारा
वह भी अब उसका नहीं हुआ । ऐसे मित्र को रखना नहीं चाहिए और
उसे मार डालना चाहिए ॥ ८ ॥ उसने तलवार हाथ से खींच दोनों हाथों
के जोर से उसके सिर पर दे मारी । अब राजा जैसे-जैसे हाय-हाय करता
था स्त्री वैसे-वैसे ही कृपाणों के वार करती जाती थी ॥ ९ ॥ अभी मेरे
पति को मरे दो दिन हुए और यह ऐसा कर रहा है । इस संसार में प्रिय
के बिना जीना धिक्कार है, जहाँ चोर, यार सभी हाथ उठाते हैं ॥ १० ॥
उसे मरा जानकर सब ने यह कहा कि तुमने भला किया जो यार को मार
डाला और इज्जत बचा ली । हे पुत्री ! तुम धन्य हो ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ दूसरे चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३०२ ॥ ५८२० ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ तीन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अभरन सिंघ सुना इक त्रिप वर । लजत
होत जिह निरखि दिवाकर । अभरन देइ सदन महि नारी ।
मथि अभरन जणु सकल निकारी ॥ १ ॥ रानी हुती मित्त सेती
रति । भोगत हुती तवन कह नितिप्रति । इक दिन भेद राव
लखि पायो । त्रिय को धाम बिलोकन आयो ॥ २ ॥ तह ते
लयो पकरि इक जारा । तौनै ठौरि (सू० प्र० १२५७) मारि करि
डारा । इस्त्री जानि न इस्त्री मारी । चित्त अपने ते दर्द
बिसारी ॥ ३ ॥ बीतत बरख अधिक जब भए । रानी बहु
उपचार बनए । राजा ताके धाम न आयो । तब इक
औरुपचार बनायो ॥ ४ ॥ रानी भेस संन्यासिनि को धरि ।
जात भई तजि धाम निकरि करि । खेलत त्रिपति अखिट जब
आयो । एक हरिन लखि तुरंग धवायो ॥ ५ ॥ जोजन किलक
नगर ते गयो । पहुचत जह न अनुच्छ इक भयो । उतर्यो बिकल
बाग मै जाई । रानी इकल पहुची आई ॥ ६ ॥ संन्यासिनि
को भेस बनाए । सीस जटन को जूट छकाए । जो नरु ताको

तीन सौ तीसरा चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ अभरन सिंह एक राजा था जिसे देखकर सूर्य भी
लजाता था । उसकी स्त्री अभरनदेवी थी जिसे मानों समुद्र से मथकर
निकाला गया था ॥ १ ॥ रानी मित्त के साथ अनुरक्त थी और नित्यप्रति
उसके साथ केलिक्रीडा करती थी । एक दिन राजा को रहस्य का पता
चला और वह स्त्री के निवास पर उसे देखने आया ॥ २ ॥ उसने एक
यार वहाँ से पकड़ लिया और उसे उसी स्थान पर मार डाला । स्त्री को
स्त्री समझकर नहीं मारा । पर अपने मन से निकाल दिया ॥ ३ ॥
जब अधिक वर्ष बीत गये तो रानी ने अनेकों उपाय किये । राजा उसके
घर नहीं आया तब रानी एक अन्य उपाय किया ॥ ४ ॥ रानी संन्यासिन
का वेश धारण कर घर से निकल गई । राजा जब शिकार खेलने के
लिए आया तो उसने मृग देखकर घोड़ा दौड़ाया ॥ ५ ॥ वह नगर से
कई योजन दूर वहाँ तक निकल गया जहाँ एक भी व्यक्ति नहीं था । वह
व्याकुल हो एक बाग में ठहरा जहाँ रानी आ पहुँची ॥ ६ ॥ उसने
संन्यासिन का वेश बनाया हुआ था और जटाजूट बढ़ा रखी थी । जो

रूप निहारै । उरझि रहै नहि शंक बिचारै ॥ ७ ॥ उतरत बाग तिहीं त्रिय भई । उहि राजा तन भेटन हुई । निरखत रूप उरझि त्रिप रहियो । नरी नागनी को इह कहियो ॥ ८ ॥ कवन रूप रानी तुम होजू । किधो अपछरा साच कहोजू । कै तुमहो रति पत की नारी । कै निसि पति की अहहु कुमारी ॥ ९ ॥ भाँति भाँति तन चरचा करी । वेद व्याकरण कोक उचरी । ज्यों त्यों चित ताको हरि लीना । बिना घाइ घायल पति कीना ॥ १० ॥ मगन भयो चित भीतर भूपा । निरखि नारि को रूप अनुपा । एक बार कह जौ इह पाऊँ । जनम अनेक लगे बलि जाऊँ ॥ ११ ॥ त्रिपहु नारि कह अधिक रिझायो । भाँति अनिक सेती उरझायो । भजौ याहि मन माहि बिचार्यो । इह बिधि तासौ बचन उचार्यो ॥ १२ ॥ हम तुम आउ रमैं मिलि दोऊ । और न लखत हमै हयौ कोऊ । क्यों तरुनापन ब्रिथा गवावत । रानी हवैं किन सेज सुहावत ॥ १३ ॥ अस तन सुंदरि धूरि न लावहु । जीवन जाल न ब्रिथा गवावहु । बिरधापनी आइ जब जैहै । इह ज्वानी कह तब पछतैहै ॥ १४ ॥ इह जीवन को कहा गुमाना ।

व्यक्ति उसके रूप को देखता था उसी में उलझकर रह जाता था ॥ ७ ॥ वह स्त्री उसी बाग में आई और राजा से मिली । राजा उसका रूप देखकर अनुरक्त हो गया और सोचने लगा कि नर, नाग-स्त्री में यह कौन है ? ॥ ८ ॥ हे रूप की रानी ! तुम कौन हो ? सच बताओ, कहीं तुम अप्सरा तो नहीं हो ? क्या तुम काम की स्त्री हो अथवा चन्द्रकुमारी हो ? ॥ ९ ॥ उससे विभिन्न प्रकार की चर्चा की और वेद-व्याकरण आदि की बातें की । जैसे-तैसे उसका चित्त चुरा लिया और अपने ही पति को घायल (आसक्त) कर लिया ॥ १० ॥ नारी का अनुपम रूप देखकर राजा मन में मगन हो उठा । वह सोचने लगा कि यदि इसे एक बार पा जाऊँ तो अनेकों जन्मों तक इस पर न्योछावर होता रहूँ ॥ ११ ॥ राजा ने श्री स्त्री को अत्यधिक प्रसन्न किया और अनेक प्रकार से उसे उलझा लिया । उसने उसके साथ रमण करने की बात सोचकर उससे कहा ॥ १२ ॥ आओ हम-तुम दोनों रमण करें । हमें यहाँ कोई देखनेवाला नहीं है । क्यों अपनी जवानी व्यर्थ गँवा रही हो और रानी वनकर क्यों नहीं मेरी शय्या की शोभा बढ़ाती हो ॥ १३ ॥ ऐसे तन को धूल मत लगाओ और जीवन को व्यर्थ न गँवाओ । जब वृद्धावस्था आ जायगी तो इस जवानी के लिए तुम

जो काहू पर थिर न रहाना । आउ करै दोऊ भोग विलासा ।
 कहा करत याको भरवासा ॥ १५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ धन जोवन
 को कहा गुमान न कीजियै । सुख हम कौ दै तरुनि आपि सुख
 लीजियै । बिरधापनु ऐहै तरनापन जाइहै । हो तब इह समै
 सँभारि अधिक पछुताइहै ॥ १६ ॥ ॥ चौपई ॥ प्रथम कही
 मेरी जो करै । तिह पाछै मुहि साथ (सू० प्र० १२५८) बिहरै ।
 बचन दीजियै मेरो हाथा । तौ मै सानौ बच तौ नाथा ॥ १७ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ प्रिथम त्रिया को दोख छिमापन कीजियै । तिह
 पाछे सोरा मन त्रिपवर लीजियै । दोख छिमापन कीन बचन
 त्रिय को तबै । हो सुने संन्यासिनि बैन खवन भीतर जबै ॥ १८ ॥
 ॥ चौपई ॥ एक दिवस त्रिय के ग्रहि आवै । दुतिय दिवस ताके
 घर जावै । रानी भेस संन्यासिनि धरै । काम भोग राजा तन
 करै ॥ १९ ॥ तिह त्रिप दुतिय नारि करि जानै । भेद
 अभेद न सूढ़ पछानै । इस्त्री चरित नही लखि पावै । नितप्रति
 अपनो मूँड मूँडावै ॥ २० ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ तीन चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३०३ ॥ ५८४० ॥ अफजू ॥

पछताओगी ॥ १४ ॥ इस यौवन का क्या अभिमान जो किसी के पास
 भी स्थिर नहीं रहता । आओ दोनों भोग-विलास करें, इसका कोई
 भरोसा नहीं है ॥ १५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ धन-यौवन का अभिमान नहीं
 करना चाहिए । तुम हमें सुख दो और स्वयं भी सुख लो । तरुणावस्था
 जायगी और वृद्धावस्था आ जायगी । तब इस समय को याद कर तुम
 पछताओगी ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ (रानी ने कहा—) पहले तुम मेरा
 कहना मानो, तब मेरे साथ विहार करो । हे राजन् ! मुझे वचन दो, तब मैं
 तुम्हारा कहना मानूँगी ॥ १७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अपनी पहली स्त्री का
 दोष माफ़ कर दो और हे राजन् ! फिर मेरा मन-तन स्वीकार करो ।
 संन्यासिन ने तब अपने कानों से सुना कि राजा ने स्त्री का दोष क्षमा कर
 दिया है ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ अब वह एक दिन उस स्त्री के घर जाता
 था और दूसरे दिन उसके घर जाता था । रानी ही संन्यासिन का वेश
 धारण कर राजा के साथ रमण करती थी ॥ १९ ॥ राजा उसे दूसरी
 स्त्री समझता था और मूर्ख भेद-अभेद कुछ नहीं जान रहा था । स्त्री के
 प्रपंच को नहीं समझ पा रहा था और रोज़ ठगा जाता था ॥ २० ॥ १ ॥
 ॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ तीसरे चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३०३ ॥ ५८४० ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ चार चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बिधीसेन राजा इक सूरु । तेग देग दुहँअनि करि पूरो । तेजवान दुतिवान अनुल बल । अरि अनेक जीते जिन दलि मलि ॥ १ ॥ बिध्यमती दुहिता इक ताके । नरी नागनी सम नहि जाके । अप्रमान तिह सेज सुहावै । रवि ससि रोज बिलोकन आवै ॥ २ ॥ ताको लग्यो एक संग नेहा । ज्यों सावन को बरिसत मेहा । चतुर कुअर तिह नाम भनिज्जै । कवन पुरख पटतर तिह दिज्जै ॥ ३ ॥ बिध्या देई इक दिन रसिकै । बोलि लिया प्रीतम कह कसिकै । कामभोग तिह साथ कमायो । तहनो तहन अधिक सुख पायो ॥ ४ ॥ बिधीसेन सौ किनहि जताई । तोरि सुता ग्रहि जार बुलाई । कामभोग तिह साथ करत है । तो ते त्रिय नहि नैकु डरत है ॥ ५ ॥ तब त्रिय साथ तिसो को लैके । जात भयो तह अधिक रिसैके । बिध्यामती जबै सुनि पाई । मोत सहित जिय मै डरपाई ॥ ६ ॥ खोदि छात द्वै छेद सवारे ।

तीन सौ चौथा चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बिधीसेन एक शूरवीर राजा था जो देग और तेग दोनों का धनी था । वह तेजस्वी, अनुल बलशाली था और उसने अनेकों शत्रुओं का मर्दन कर उन्हें जीता था ॥ १ ॥ विद्यामती उसकी एक पुत्री थी जिसके समान नर-नाग-स्त्री कोई भी नहीं थी । उसकी शय्या अपरिमित रूप से शोभायुक्त थी, जिसे सूर्य-चन्द्र भी रोज देखने आते थे ॥ २ ॥ उसका सावन की घनघोर वर्षा के समान किसी से स्नेह हो गया । उसका नाम चतुरकुंवर था । उसकी भी तुलना भला किसने साथ की जाय ॥ ३ ॥ एक दिन रसिक विद्यादेवी ने प्रियतम को बुला लिया । उसके साथ कामक्रीडा की और तरुण-तरुणी दोनों ने सुख प्राप्त किया ॥ ४ ॥ किसी ने राजा बिधीसेन को बता दिया कि तुम्हारी पुत्री ने घर में यार को बुलाया है । वह उसके साथ कामभोग करती है और राजा, तुमसे बिलकुल नहीं डरती है ॥ ५ ॥ तब राजा उस (व्यक्ति) को साथ ले क्रुद्ध हो उसी ओर चल पड़ा । जब विद्यामती ने सुना तो वह मित्र-सहित मन में डर गई ॥ ६ ॥ उसने छत खुदवा कर दो छिद्र किये जहाँ दो जानवर आये । उन्होंने उसी मार्ग से मल त्याग किया जो राजा और दूत के

जिह आवत वैराह बिचारे । तिह मग हवै बिसटा दुहूँ करा ।
 दूत सहित त्रिप के सिर परा ॥ ७ ॥ अंध गए हवै सूजन
 आयो । तिसी पैड ग्रहि जार पठायो । राजा भेद अभेद न
 लहा । दुहिता काम कै गई कहा ॥ ८ ॥ बिसटा रही दुहूँ
 के लगिके । सुघर गयो तिह के सिर हगि (सू० ग्रं० १२५६) के ।
 घरीक लगी धोवते बदनन । बहुरि गए दुहिता के सदनन ॥ ९ ॥
 तहाँ जाइ जौ त्रिपति निहरा । जारवार कछु दिशटि न परा ।
 तब त्रिप उलटि तिसी को सरियो । बिशटा प्रथम जाँहि सिर
 परियो ॥ १० ॥ इह छल सौ लिय प्रियहि उबार्यो । तिनके
 मुख बिशटा कौ डार्यो । भला बुरा भूपति न बिचारा ।
 भेददाइ कहि पकरि पछारा ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ चार चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३०४ ॥ ५८५१ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ पाँच चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ त्रिपुरा शहिर बसत है जहाँ । त्रिपुरपाल
 राजा थो जहाँ । त्रिपुरमती ताकी बर नारी । कनक अवटि

सिर पर पड़ा ॥ ७ ॥ वे दोनों देखने में असमर्थ हो गये और उन्हें कुछ भी
 नहीं सूझा । उसने उसी रास्ते से अपने यार को घर भेज दिया । राजा
 ने भेद-अभेद कुछ नहीं जाना और समझा कि पुत्री किसी कार्यवश
 बाहर गई है ॥ ८ ॥ मल दोनों को लगा और वह बुद्धिमान दोनों के
 सिर पर मल त्यागकर चला गया । उन्हें मुँह आदि धोने में घड़ी भर का
 समय लग गया । वे पुनः पुत्री के घर गए ॥ ९ ॥ वहाँ जाकर जब
 राजा ने देखा तो मित्र आदि कुछ भी दिखाई नहीं दिया । तब राजा ने
 उलटा उसे मार डाला जिसके सिर पर पहले मल गिरा था ॥ १० ॥
 इस छल से स्त्री ने प्रिय को बचाया और उन पर मल फिक्वाया ।
 राजा ने भला-बुरा कुछ नहीं सोचा और भेद देनेवाले को पछाड़
 फेंका ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में तीन सौ चौथे
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३०४ ॥ ५८५१ ॥ अफजू ॥

तीन सौ पाँचवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ त्रिपुरा शहर में त्रिपुरपाल राजा था जिसकी रानी

साँचे जनु ढारी ॥ १ ॥ फूलमती दूसरि तिह सवतिनि । जनु
तिह हुता आँखि में सौ कनि । तासौ ताहि सिपरधा रहै । चित
भीतर मुख ते नहि कहै ॥ २ ॥ त्रिपुरामती एक दिज ऊपर ।
अटकी रहै अधिक ही चित करि । रैन दिवस ग्रहि ताहि
बुलावै । काम केल रुचि मान सचावै ॥ ३ ॥ एक नारि तिन
बोली पठाई । अधिक दरब दै ऐसि सिखाई । जब ही जाइ
प्रभा सभ सोई । ऊच शब्द उठियहु तब रोई ॥ ४ ॥ यौ
कहि जाइ त्रिपति तन सोई । आधी राति अँधेरी होई । अधिक
दुखित हवै नारि पुकारी । त्रिप के परी कान धुनि भारी ॥ ५ ॥
राणी लई संग अपने करि । हाथ बिखै अपने अस कौ धरि ।
दोऊ चलि तीर तवन के गए । इह बिधि सौ पूछत तिह
भए ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ को है रो तूँ रोत क्यों कहाँ लग्यो दुख
तोहि । मारत हौ नहि ठौर तुहि साच बतावहु मोहि ॥ ७ ॥
॥ चौपई ॥ मुहि अरबला त्रिपति की जानहु । भूपति भोर
काल पहिचानहु । ताते मैं रोवत दुखियारी । सभै बिछुरिहै
निसुपति प्यारी ॥ ८ ॥ किह बिधि बचै त्रिपति के प्राणा ।

त्रिपुरमती थी जो मानों सोने के साँचे में ढालकर बनाई हुई थी ॥ १ ॥
आँख में धूल के समान उसकी एक सौतन थी जिसका नाम फूलमती था ।
उसकी मन ही मन उस रानी से स्पर्धा बनी रहती थी, परन्तु वह मुख से
कुछ नहीं कहती थी ॥ २ ॥ त्रिपुरामती मन ही मन एक ब्राह्मण के
साथ उलझी हुई थी । उसे रात-दिन घर बुलाती थी और केलिक्रीड़ा
रुचिपूर्वक किया करती थी ॥ ३ ॥ उसने एक स्त्री बुलाई और उसे
अत्यधिक द्रव्य दे बोली कि जब सभी सो जाएँ तो तुम ऊँचे स्वर में रोने
लग जाना ॥ ४ ॥ यह कहकर वह राजा के साथ सो गई और इधर
आधी रात बीतने पर वह स्त्री अत्यंत दुखित स्वर में चिल्लाई । राजा
ने स्वर सुना ॥ ५ ॥ हाथ में तलवार पकड़ उसने रानी को अपने
साथ लिया । दोनों उसके पास गए और इस प्रकार उससे पूछने
लगे ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ तुम कौन हो ? क्यों रो रही हो ? तुम्हें
क्या दुख है ? तुम सच बताओ नहीं तो तुम्हें अभी जान से मार
डालूंगा ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ मुझे राजा की आयु समझो । राजा को
सुबह काल पहचान कर ले जायगा । इससे मैं अत्यधिक दुखी हूँ कि सुबह
सभी इस चन्द्र-समान राजा से बिछुड़ जायेंगे ॥ ८ ॥ कोई ऐसा उपाय
किया जाय जिससे राजा के प्राण बच जायँ । उस स्त्री ने तब कहा कि

प्रात कीजिये सोई बिधाना । तह त्रिय कहियो क्रिया इक करै । तब मरवे ते त्रिपति उबरै ॥ ९ ॥ त्रिपुरमती दिजबर कह देह । डोरी निजु काँधे करि लेह । दरब सहित तिह ग्रहि पहुचावै । तब त्रिप निकट काल नहि आवै ॥ १० ॥ फूलि देइ जु दुतिय त्रिय घर सै । तिह देव चंडारहि कर सै । त्रिपुरमती (सू० ग्रं० १२६०) कह ग्रह न बुलावै । ताकौ फेरि न बदन दिखावै ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ प्रात आइ अपने सदन वहै क्रिया त्रिप कीन । इक रानी दिजबर दई दुतिय चंडारहि दीन ॥ १२ ॥ भेद अभेद त्रियान के सूठ न सक्यो बिचारि । दई दोऊ त्रिय पुन्य करि जिय को त्रास निवारि ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ पांच चरित्र समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३०५ ॥ ५८६४ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ छे चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बहड़ाइचि को देस बसत जह । धुंधपाल त्रिप बसत होत तह । दुंदब दे ताके घर रानी । जाकी सम

एक काम करो जिससे राजा मरने से बच सकता है ॥ ९ ॥ त्रिपुरमती रानी तो ब्राह्मण को दे दो और स्वयं कन्धे पर डोरी (जनेऊ) धारण कर लो । यदि द्रव्य समेत उसे उस पंडित के घर पहुँचाओगे तो काल तुम्हारे पास नहीं आ सकता ॥ १० ॥ फूलदेवी जो राजा की दूसरी स्त्री है, उसे चांडाल के हाथ में दे दो और त्रिपुरमती को फिर वापस घर नहीं बुलाया जाय और न ही वह फिर मुख दिखाए ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ प्रातः राजा ने अपने महल में आकर वही कार्य किया । एक रानी तो ब्राह्मण को दे दी और एक चांडाल को सौंप दी ॥ १२ ॥ वह मूर्ख स्त्रियों के रहस्य न समझ सका और मन का भय त्यागने के लिए उसने दोनों स्त्रियाँ दान में दे दीं ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ पाँचवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३०५ ॥ ५८६४ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ छठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बहुराइच में धुंधपाल राजा रहता था । दुंदुभिदेवी उसकी रानी थी जिसके समान शचि (इन्द्र की पत्नी) भी नहीं

सुंदरि न सकानी । १ ॥ तहिक सुलच्छन राइ बखनियत ।
छत्री को तिह पूत प्रमनियत । ताके तन सुंदरता घनी ।
सोर बदन ते जात न भनी ॥ २ ॥ तासौ बधी कुअरि की
प्रीता । जैसी भाँति राम सो सीता । रैन दिवस तिह बोलि
पठावै । शंक त्याग त्रिय भोग भचावै ॥ ३ ॥ इक दिन
खबरि त्रिपति कह भई । भेदी किनहि त्रिथा कहि दई ।
अधिक कोप करि गयो त्रिपति तह । भोगत हुती जार कह
त्रिय जह ॥ ४ ॥ रानी भेद पाइ अस कीया । बाँधि औध
सिहजा तर लीया । राव सहित ऊपरहि बहिठी । भाँति
भाँति तन होइ इकठी ॥ ५ ॥ रति मानी त्रिप साथ बनाई ।
सूरख कंत बात नहि पाई । रीझि रहा अबला कह भजिकै ।
भाँति भाँति के आसन सजिकै ॥ ६ ॥ भोग कमात अधिक
थकि गयो । सोवत सेज तिसी पर भयो । जौ त्रिचेशट त्रिय
पिय लखि पायो । जारि काढि करि धाम पठायो ॥ ७ ॥
॥ दोहरा ॥ जागि खोजि त्रिप घर थका जारन लह्या
निकारि । भेद दियो जिह जान तिह झूठो हन्यो
गवार ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ छे चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३०६ ॥ ५८७२ ॥ अफजूं ॥

थी ॥ १ ॥ वहाँ एक सुलक्षण राय नामक व्यक्ति क्षत्रिय-पुत्र जाना जाता
था । उसकी अत्यधिक सुन्दरता का मैं वर्णन नहीं कर सकता ॥ २ ॥
उस कुँवरि की प्रीति उससे वैसी हो गई जैसी राम-सीता की प्रीति
थी । वह रात-दिन उसे कहकर बुलवा लेती थी और निःशंक हो रमण
करती थी ॥ ३ ॥ एक दिन राजा को किसी भेदिए द्वारा यह खबर
मिल गई । राजा अत्यधिक कुपित हो वहाँ चला गया, जहाँ स्त्री अपने
यार के साथ भोग-रत थी ॥ ४ ॥ रानी ने पता लगने पर ऐसा किया
कि मित्र को शय्या के नीचे औंधा बाँध लिया । अब वह राजा-समेत
ऊपर बैठी और विभिन्न प्रकार से चिमट गई ॥ ५ ॥ राजा के साथ
रतिक्रीड़ा की ओर मूर्ख समझ ही नहीं पाया । वह स्त्री के साथ
भाँति-भाँति के आसनों के माध्यम से रमण कर प्रसन्न हो उठा ॥ ६ ॥
जब क्रीड़ा करते अत्यधिक थक गया तो उसी शय्या पर राजा सो गया ।
जब स्त्री ने पति को निश्चेष्ट देखा तो यार को निकाल कर घर भेज
दिया ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ जगने पर राजा खोज कर थक गया पर वह

घार उसे दिखाई नहीं दिया । जिसने भेद दिया था उसे व्यर्थ ही उसने मार डाला ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ छठवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३०६ ॥ ५८७२ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ सात चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ भैरोपाल सुना इक राजा । राज पाट ताही कह छाजा । चपलावती सुनी तिह त्रिय वर । हुती पंडिता सकल हुनर करि ॥ १ ॥ अद्रपाल इक त्रिपति परोसा । देग तेग को जाहि भरोसा । सुघनावती सुता इक ताकी । रोशन भयो जोति ससि वाकी ॥ २ ॥ (५०००१२६१) इक दिन निकसा त्रिपति शिकारा । लए स्वान सीचान हजार । चीता और जारियन लीने । स्याह गोस नहि जाँहि सु चीने ॥ ३ ॥ लगर झगर जुररा अरु बाजा । बहरी कुही सिचान समाजा । बासे और बसीन घनी । चिपक धूतियें जाँहि न गनी ॥ ४ ॥ भाँति भाँति तन खेल शिकारा । अधिक झिगन कह खेदि पछारा । तब लगि द्रिशटि बराहिक आयो । तिह पाछे तिह तुरंग धवायो ॥ ५ ॥ जात भयो ताही

तीन सौ सातवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ भैरवपाल एक राजा था जिसका राजपाट चारों ओर छाया हुआ था । उसकी श्रेष्ठ स्त्री चपलावती थी जो सभी कलाओं में निपुण थी ॥ १ ॥ पड़ोस में ही अद्रपाल नामक राजा था जिसे अपनी दान-क्षमता और वीरता पर पूरा भरोसा था । उसकी पुत्री सुघनावती थी, जिससे चाँद भी रोशन होता था ॥ २ ॥ एक दिन राजा हजारों कुत्ते, बाज्र लेकर शिकार के लिए निकला । उसने पालतू चीते, आग जलानेवाले व्यक्ति और स्याहगोश (कुत्ते और बिल्ली की मिश्रित नस्ल का काले कानों वाला शिकारी जानवर) आदि लिये ॥ ३ ॥ अनेकों प्रकार के बाज्र लिये जिनमें मगर, बहरी, कुही, सीचान आदि भी थे । बास, बसीन, चिपक, धूतिए आदि अगणित पशु-पक्षी लिये ॥ ४ ॥ विभिन्न प्रकार से शिकार खेलकर उसने अनेकों मृगों को दौड़ाकर पछाड़ फेंका । तब तक एक सूअर नज़र आया और उसके पीछे उसने घोड़ा लगा

के देसा । हाँकि तुरंग पवन के भेसा । सुघनावती लखा जब
 ताकौ । लयो बुलाइ तही ते वाकौ ॥ ६ ॥ धौलर तर
 कमंद लरकाई । लयो तिसौ तिह पैड चढ़ाई । काम भोग
 अति रुच करि माना । भेद दूसरे मनुख न जाना ॥ ७ ॥
 तब तिह पित यौ ह्रिदै बिचारा । निजु रानी के साथ
 उचारा । हम तुम आउ सुता के जाही । दुहिता होइ खुशी
 मन माही ॥ ८ ॥ तब वै दोऊ सुता के गए । ताके प्रापति
 द्वार पर भए । सुघनमती तिह लखि दुख पायो । अधिक
 अशरफी काहि मँगायो ॥ ९ ॥ और अधिक तिन अतिथ
 बुलाए । एक एक दै मुहर पठाए । तिन के साँहि बिपति
 कर मँगना । दै सत मुहर निकार्यो अँगना ॥ १० ॥ मुर
 परवार लख्यो इन राजा । एतो दयो दरब बिनु काजा ।
 ताते दुगुन तवन कह दयो । भेद अभेद न जानत भयो ॥ ११ ॥
 ॥ दोहरा ॥ राज सुता प्रिय मित्र कौ इह छल अतिथ
 बनाइ । दै अशरफी निकारियो भेद न जाना राइ ॥ १२ ॥

दिया ॥ ५ ॥ वह अब पवनवेग से घोड़े को हाँककर उसी के देश की
 ओर चल पड़ा । सुघनावती ने जब उसे देखा तो उसे बुला लिया ॥ ६ ॥
 महल के नीचे कमंद लटकाकर उसे उसी रास्ते से ऊपर चढ़ा लिया ।
 उसने रुचिपूर्वक कामक्रीड़ा की और किसी दूसरे व्यक्ति को पता तक
 नहीं चल पाया ॥ ७ ॥ तब उसके पिता ने हृदय में विचार कर रानी
 से कहा, आओ हम-तुम पुत्री के घर चलें, वह खुश हो जायगी ॥ ८ ॥
 तब वे दोनों पुत्री के दरवाजे तक जा पहुँचे । सुघनमती उनको देखकर
 दुखी हो उठी और उसने काफ़ी अशक्तियाँ मँगाई ॥ ९ ॥ उसने और
 अनेकों अतिथियों (साधुओं) को बुलाया और सबको एक-एक मुहर देकर
 बिदा किया । उसी के बीच उस राजा को भी याचक बनाकर सात मुहर
 देकर बिदा कर दिया ॥ १० ॥ राजा ने सोचा कि आखिर मेरे परिवार
 को राजकुमारी है, तभी इसने इतना धन अकारण ही दे दिया है ।
 मूर्ख ने भेद-अभेद पहचाने बिना उससे दुगना धन उसे दे दिया ॥ ११ ॥
 ॥ दोहरा ॥ राजकुमारी ने प्रिय मित्र को छलपूर्वक साधु-फ़कीर बनाकर
 अशक्तों देकर निकाल दिया और राजा ने भी इस छल-भेद को नहीं

मन मानत को भोग करि पित अह भात दिखाइ । इह छल
सौ काढा तिसै तिसै न गहयो बनाइ ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ सात चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३०७ ॥ ५८८५ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ आठ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ कोच बिहार शहिर जह वसै । अमरावती
पुरी कह हसै । ब्रिद्धकेत तिह भूप भनिज्जै । को राजा
पटतर तिह दिज्जै ॥ १ ॥ स्त्री फुट बेसरि दे तह दारा ।
जिह सभ देव न देवकुमारा । ताको जात न रूप उचारा ।
दिवस भयो ताते उजियारा ॥ २ ॥ हाजी राइ तहाँ खतिरेटा ।
इशक मुशक के साथ लपेटा । ताकी जात न प्रभा (सू०ग्रं० १२१२)
उचारी । फूलि रही जानुक फुलवारी ॥ ३ ॥ स्त्री फुट बेसरि
दे तिह लहा । इह बिधि चित अपने महि कहा । कै अब
भरौ कटारी हनिकै । कै इह भजौ आजु बनि ठनिकै ॥ ४ ॥

समझा ॥ १२ ॥ मनचाहा भोग करके, माता-पिता को दिखाते हुए उसे
छलपूर्वक निकाल दिया और उसे कोई पकड़ न सका ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सातवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३०७ ॥ ५८८५ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ आठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ कूच बिहार शहर अपनी सुन्दरता के कारण अमरावती
(स्वर्ग) की भी हँसी उड़ाता था । बृहदकेतु वहाँ का राजा कहा जाता
था जिसके समान अन्य कोई राजा नहीं था, जिससे उसकी तुलना
की जा सके ॥ १ ॥ उसकी पत्नी फुटबेसरी देवी थी जिसके समान कोई
देव-कन्या भी नहीं थी । उसके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता ।
दिन ने भी मानों उसी से उजाला लिया हो ॥ २ ॥ वहाँ एक क्षत्रिय
हाजी राय था जो इशक-मुशक में साराबोर था । उसकी छवि का भी वर्णन
नहीं किया जा सकता । वह ऐसा था मानों फुलवाड़ी खिली हो ॥ ३ ॥
श्री फुटबेसरी देवी ने उसे देखकर मन में सोचा कि या तो आज
कटारी मारकर मर जाऊँगी अथवा वन-ठनकर आज ही इसके
साथ रमण करूँगी ॥ ४ ॥ ॥ दोहा ॥ अभी उसकी मस भीग ही रही

॥ दोहरा ॥ मसि भीजत तिह बदन पर अति सुंदर सरबंग ।
 कनक अवटि साँचे ढर्यो लूटी प्रभा अनंग ॥ ५ ॥
 ॥ चौपई ॥ सुघरि सहचरी तहाँ पठाई । छल सौ ताँहि
 तहाँ ले आई । जब तिह हाथ चलायो रानी । हाजी राइ
 बात नहि मानी ॥ ६ ॥ अबला कोटि जतन करि हारी ।
 क्योंहूँ न भजी ताहि त्रिप नारी । हाइ हाइ गिरि भूम
 उचारा । मुर करेज डाइनी निहारा ॥ ७ ॥ तिह त्रिय
 बस्त्र हुते पहिराए । डाइन सुनत लोग उठि धाए । जब
 गहि ताहि बहुत बिधि मारा । तब तिन मना जु त्रिया
 उचारा ॥ ८ ॥ तब लगि तहाँ त्रियति हूँ आयो । सुनि
 करेज त्रिय हर्यो रिसायो । इह डाइनि कह कहँ सँघारो ।
 कै अब ही रानियहि जियारो ॥ ९ ॥ तब तिन दूरि ठाढ
 त्रिप कीए । रानी के चुंबन तिन लीए । राजा लखे करेजो
 डारै । भेद अभेद नहि मूढ़ बिचारै ॥ १० ॥ सभ तब ही
 लोगान हटायो । अधिक नारि सौ भोग मचायो । राखे जो
 मुरि कहि प्रिय प्राना । तुम सौ रमौ सदा बिधि नाना ॥ ११ ॥

यों अर्थात् चेहरे पर छोटे-छोटे बाल उग रहे थे और वह सर्वांग सुन्दर था ।
 वह मानों सोने के साँचे में ढला था और उसने मानों कामदेव की प्रभा
 भी लूट ली थी ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने एक सयानी दासी वहाँ
 भेजी जो उसे छलपूर्वक वहाँ ले आई । जब रानी ने हाथ बढ़ाया तो
 हाजी राय ने बात नहीं मानी ॥ ६ ॥ वह स्त्री जोर लगाकर हटी पर कैसे
 भी उस क्षत्रिय ने राजपत्नी के साथ रमण नहीं किया । अब वह धरती
 पर गिरकर हाय-हाय पुकारने लगी और कहने लगी कि मुझ डायन ने कलेजे
 से दवा लिया है ॥ ७ ॥ उस क्षत्रिय को उसने स्त्री वस्त्र पहना रखे थे ।
 डायन की बात सुनकर सभी लोग उठ दौड़े और उसे पकड़कर बहुत मारा
 और जो उस स्त्री ने कहा वह सत्य मान लिया ॥ ८ ॥ तब तक राजा वहाँ
 आ गया और कलेजा चुरा लेने की बात सुनकर क्रुद्ध हो उठा । उसने कहा
 कि अभी डायन को मार दो अथवा यह रानी को अभी जीवित करे ॥ ९ ॥
 तब उस (हाजी राय) ने राजा को दूर खड़ा कर रानी का चुंबन लिया ।
 राजा समझ रहा था कि कलेजा डाल रही है । वह मूर्ख भेद-अभेद
 तनिक नहीं पहचान रहा था ॥ १० ॥ तब उसने सब लोगों को हटा
 दिया और उस स्त्री के साथ खूब रमण किया । हे प्रिय ! तुमने मेरे प्राण
 बचाए हैं, मैं तुमसे विभिन्न प्रकार से सदैव रतिक्रीड़ा करती रहूँगी ॥ ११ ॥

अधिक भोग तासौ लिय करिकै । धाइ भेस दं दयो निकरिकै ।
भाखत जाइ पतिहि अस भई । देइ करिजवा डाइनि
गई ॥ १२ ॥ दित मुहि प्रथम करिजवा भई । पुनि वह
अंतध्यान हवै गई । त्रिपबर द्रिशटि न हमरी आई । क्या
जनियै किह देस सिधई ॥ १३ ॥ सत्ति सत्ति तब त्रिपति
उचारा । भेद अभेद न मूढ़ बिचारा । निरखत थो लिय
जार बजाई । इह चरित गयो आंखि चुराई ॥ १४ ॥ प्रथम
मित्र लिय बोलि पठायो । कह्यो न किय लिय त्रास दिखायो ।
बहुरि भजा इह चरित लखाया । ठाढ़ त्रिपति जड़ मूंड
मुंडाया ॥ १५ ॥ १ ॥ (मू०ग्रं० १२६३)

॥ इति स्त्री चरित पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ आठ चरित
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३०८ ॥ ५६०० ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ नौ चरित कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ करनाटक को देश बसत जह । स्त्री
करनाटक सैन त्रिपति तह । करनाटक देई ग्रहि नारी ।
जाते लिय रवि ससि उजियारी ॥ १ ॥ तह इक शाह बसत

उस स्त्री से अत्यधिक विहार करके वेश बदलकर वह निकल गया ।
अब उस रानी ने पति से जाकर कहा कि डायन मुझे कलेजा दे गई
है ॥ १२ ॥ वह मुझे कलेजा देकर अन्तर्धान हो गई है । राजन् ! वह
तो अलोप हो गई, पता नहीं किस देश में चली गई है ॥ १३ ॥ राजा
ने “सत्य-सत्य” कहा और मूर्ख ने भेद-अभेद नहीं समझा । उसके देखते-
देखते मित्र भोग गया और प्रपंच से आंख चुराकर निकल गया ॥ १४ ॥
पहले तो स्त्री ने मित्र को बुलाया, किसी से कहा नहीं और उसे डराया ।
फिर उसका इस प्रपंच से उपभोग किया और राजा मूर्ख बना ठगा हुआ
खड़ा का खड़ा रहा ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ आठवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३०८ ॥ ५६०० ॥ अफजूं ॥

तीन सौ नौवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ कर्नाटक देश में कर्नाटकसेन राजा था जिसकी रानी
कर्नाटकमती थी । सूर्य-चन्द्र ने भी मानों उससे प्रकाश लिया हो ॥ १ ॥

थो नीको । जाँहि निरखि सुख उपजत जी को । ताके सुता
 हुती इक धामा । थकित रहत निरखत जिह बामा ॥ २ ॥
 सुता अपूरब दे तिह नामा । जिह सी कहूँ कोऊ नहि बामा ।
 एक शाह के सुत कह व्याही । बीरजकेत नाम तिह आही ॥ ३ ॥
 जब वह व्याहि ताहि लै गयो । निजु सदनन लै प्रापति
 भयो । एक पुरख तिन नारि निहारा । जाकी सर नहि
 राजकुमारा ॥ ४ ॥ निरखत ताँहि लगन तिह लगी । नींद
 भूखि तब ही ते भगी । पठै सहचरी ताहि बुलावै । कामभोग
 रुचि मान कसावै ॥ ५ ॥ संग ताके बहु बधा सनेहा । राँझन
 और हीर को जेहा । बीरजकेतह यादि न लयावै । धरम
 भ्रात कहि ताँहि बुलावै ॥ ६ ॥ भेद ससुर के लोग न जानै ।
 धरम भ्रात तिह त्रिय पहिचानै । भेद अभेद न सूरख लहही ।
 भ्राता जान कछू नहि कहही ॥ ७ ॥ इक दिन त्रिय इह भाँति
 उचारा । निजु पति कौ दैकै बिखु मारा । भाँति भाँति सौ
 रोदन करै । लोग लखत सिर केस उपरै ॥ ८ ॥ अब मैं
 धाम कवन के रहो । मैं पिय शब्द कवन सौ कहो । न्याइ

वहाँ एक सुन्दर धनिक बसता था जिसे देखकर सुख प्राप्त होता था ।
 उसके घर एक पुत्री थी जिसे देखकर स्त्रियाँ थक जाती थीं ॥ २ ॥
 उस पुत्री का नाम अपूर्वदेवी था जिसके समान अन्य कोई स्त्री नहीं थी ।
 वह एक धनी के पुत्र को व्याही थी जिसका नाम वीर्यकेतु था ॥ ३ ॥
 जब वह उससे विवाह कर अपने घर पहुँचा तो उसकी स्त्री ने एक पुरुष
 को देखा, जिसके समान कोई राजकुमार भी नहीं था ॥ ४ ॥ उसे देखते
 ही उसकी लगन उससे लग गई और उसकी नींद-भूख सब भाग खड़ी हुई ।
 अब वह दासी भेजकर उसे बुलाती थी और रुचिपूर्वक उससे कामभोग
 करती थी ॥ ५ ॥ उसका उसके साथ ऐसा ही स्नेह बन गया जैसा
 हीर-राँझा का स्नेह था । वीर्यकेतु को वह याद नहीं रखती थी और
 उस प्रेमी को धर्मभाई कहकर बुला लेती थी ॥ ६ ॥ ससुराल के लोग
 रहस्य को नहीं समझते थे और उस व्यक्ति को धर्मभाई ही समझते थे ।
 वे मूर्ख भेद-अभेद कुछ नहीं समझते थे और उसे भाई समझकर कुछ
 नहीं कहते थे ॥ ७ ॥ एक दिन स्त्री ने ऐसा किया कि पति को विष
 देकर मार दिया । भाँति-भाँति प्रकार से वह रोने लगी और लोगों के
 देखते अपने सिर के बाल उखाड़ने लगी ॥ ८ ॥ अब मैं किसके घर
 रहूँ और प्रिय शब्द किसके लिए कहूँ । परमात्मा के घर में न्याय नहीं

नही हरिके घरि भीतरि । इह गति करी मोरि अवनी
तर ॥ ९ ॥ ग्रहि को दरब संग करि लीना । मित्रहि संग
पयाना कीना । धरम भाइ जाकौ करि भाखा । इह छल
नाथ धाम करि राखा ॥ १० ॥ लोग सभे इह भाँति उचारा ।
आपु बिखै मिलि करत बिचारा । कहा करै इह नारि
बिचारी । जाकी दैव अस गति धारी ॥ ११ ॥ ता ते लै
सभ ही धन धामा । अपुने गई भाइ के बामा । भेद अभेद
न सकत बिचरिकै । गई जार के नाथ सँघरिकै ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ नौ चरित्र
समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ ३०६ ॥ ५६१२ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ दस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ पुनि मंत्री इह भाँति उचारा । सुनहु
त्रिपति जू बचन हमारा । गारव देस बसत है जहाँ । गौरसेन
राजा थो तहाँ ॥ १ ॥ (सू० प्र० १२६४) स्त्री रसतिलक देइ तिह
दारा । चंद्र लियो जाते उजियारा । सामुंद्रक लच्छन
तामै सब । छबि उचार तिह सकै कवन कवि ॥ २ ॥ तह

है । मेरी इस धरती पर क्या हालत बना दी है ॥ ९ ॥ उसने प्यार
का द्रव्य बटोरा और मित्र के साथ प्रस्थान कर दिया । जिसे धर्मभाई
कहा था उसे छलपूर्वक पति मानकर रखा ॥ १० ॥ लोग सभी विचार
करने लगे और कहने लगे कि यह बेचारी स्त्री क्या करे, जिसकी परमात्मा
ने यह हालत कर दी है ॥ ११ ॥ यह अब धन-दौलत लेकर अपने भाई
की पत्नी के साथ रहने के लिए गई है । भेद-अभेद कोई न जान सका
और वह पति को मार यार के साथ चली गई ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ नौवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३०६ ॥ ५६१२ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ दसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ फिर मंत्री ने कहा कि हे राजन् ! मेरी बात सुनो ।
गारव देश में गौरसेन नामक राजा बसता था ॥ १ ॥ उसकी स्त्री
रसतिलक देवी थी जिससे चन्द्रमा ने भी प्रकाश लिया था । उसमें सामुद्रिक
विद्या में माने जानेवाले सभी (शुभ) लक्षण थे और उसकी छवि का
वर्णन कोई कवि नहीं कर सकता था ॥ २ ॥ वहाँ एक धनिक का

इह हुतो शाह को पूता । भूतल को जानुक पुरहूता । अधिक तरुन को तेज बिराजै । नरी नागनी को मन लाजै ॥ ३ ॥ जब रानी तिह प्रभा निहारी । तब ते भई अधिक मतवारी । निरखि मिल के नैन बिकानी । तब ही ते हवै गई दिवानी ॥ ४ ॥ तब तिह बोलि लियो अपने घर । कामकेल कीना अति रुचि करि । भाँति भाँति तिह गरे लगायो । अवला अधिक ह्रिदै सुख पायो ॥ ५ ॥ तब लग आइ त्रिपति तह गयो । तत छिन डारि महल ते दयो । सरि गयो त्रिपति न भेद बिचारा । जो जन अरध उरध तें पारा ॥ ६ ॥ आप होत इह भाँति उचारा । देव पकरि करि त्रिपति पछारा । मोरे साथ कियो थो संग । ताते भयो अपवित्त सबंगा ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल जार निकार्यो निजु नाइकहि सँघारि । भेद अभेद मूरख किछू सका न नैक बिचारि ॥ ८ ॥ निजु नाइक को महल ते तिह हित दियो गिराइ । यार बचायो आपनो नैक न रही लजाइ ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ दस चरित्र समाप्तम् सतु शुभम् सतु ॥ ३१० ॥ ५६२१ ॥ अफजू ॥

पुत्र था जो मानो धरती पर इन्द्र था । उस तरुण के अत्यधिक तेज को देखकर नर-नाग-स्त्रियों का मन लज्जित होता था ॥ ३ ॥ जब रानी ने उनकी प्रभा देखी तो वह अत्यधिक मतवाली हो गई । मिल के नयनों को देखकर बिक गई और तत्क्षण दीवानी हो गयी ॥ ४ ॥ तब उसने उसे अपने घर बुला लिया और रुचिपूर्वक कामक्रीड़ा की । उसे विभिन्न प्रकार से गले लगाया और उस स्त्री ने सुख प्राप्त किया ॥ ५ ॥ तब उधर से राजा वहाँ आ गया तो उसे तत्क्षण महल से नीचे गिरा दिया । राजा मर गया और ऊपर से नीचे गिर पड़ा ॥ ६ ॥ तब उस (स्त्री) ने रोते हुए ऐसा कहा कि किसी दैत्य ने पकड़ कर राजा को पछाड़ फेंका है । इसने मेरे साथ समागम किया था इसलिए पूर्ण रूप से अपवित्त हो गया था ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस छल से अपने पति को मारकर उसने यार को निकाल दिया । वह मूर्ख कुछ भी भेद-अभेद न जान सका ॥ ८ ॥ उस प्रेमी के लिए अपने पति को महल से गिरा दिया । अपने यार को बचा लिया और तनिक भी लज्जित नहीं हुई ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ दसवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३१० ॥ ५६२१ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ ग्यारह चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ विरतसैन इक त्रिपति सुजाना । मानत
आनि देस जिह नाना । बिरहमंजरी ताकी रानी । सुंदरि
भवन चतुदस जानी ॥ १ ॥ ताकै धाय एक सुत भयो ।
जानक रवि दुतियो प्रगटयो । सुंदरिता तिह कही न आवै ।
निरखत पलक न जोरी जावै ॥ २ ॥ तह इक तरनि शाह की
जाई । जाकी छवि नहि जात बताई । कै ससि ते रोहनि
इह जई । आगे हवैहै न पाछे भई ॥ ३ ॥ राजकुअर जब
तवन निहार्यो । मदन बान तन ताहि प्रहार्यो । लगी
अटकि सुधि बुधि छुट गई । तबहि तरुनि मतवारी भई ॥ ४ ॥
भाँति भाँति तन दरबु लुटाई । अधिक सखिन कह रही पठाई ।
राजकुअरि क्यों हूँ नहि आए । तासौ करे न मन के
भाए ॥ ५ ॥ करि करि जतन कुअर (सू० गं० १२६५) बहु
हारी । कैस हूँ भजी मिल नहि प्यारी । घायल फिरै कुअरि
मतवारी । जानुक अग्नि बिसिख तन भारी ॥ ६ ॥ रोवत
कुअरि कबूँ उठि गावै । नाचत कबहूँ वचन सुनावै । मिल

तीन सौ ग्यारहवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ विरतसेन एक सुजान राजा था जिसकी आन अनेकों
देश मानते थे । विरहमंजरी उसकी रानी थी जो चारों दिशाओं में
सुन्दरी मानी जाती थी ॥ १ ॥ उसके घर एक पुत्र पैदा हुआ जो मानों
दूसरा सूर्य था । उसकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता उसे
देखकर आँखें बंद नहीं होती थीं ॥ २ ॥ वहाँ एक धनी की तरुणी पुत्री
थी जिसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता । मानों चन्द्रमा
से रोहिणी नक्षत्र के रूप में पैदा हुई, जो न तो कभी पैदा हुई है और न
कभी पैदा होगी ॥ ३ ॥ राजकुमार को जब उसने देखा तो उसे काम-
बाण आ लगा । उसकी सुधि-बुधि जाती रही और वह तरुणी मतवाली
हो गई ॥ ४ ॥ उसने अनेकों प्रकार से द्रव्य लुटाया और कई सखियों
को भेजा पर राजकुमार आता ही नहीं था और उससे मनचाहा रमण नहीं
करता था ॥ ५ ॥ वह कुँवरि यत्न कर करके हार गई पर किसी भी
प्रकार मिल के साथ रमण न कर पाई । वह कुँवरि ऐसे घायल घूम रही
थी मानों मृगी को बाण लगा हो ॥ ६ ॥ रोती हुई कुँवरि कभी तो उठकर

मिलाइ देइ मुहि कोई । जो मुख माँगै द्यो तिह सोई ॥ ७ ॥
 एक सखी इह भाँति उचारो । सुनहु मिलनी बचन हमारो ।
 जो तुहि कौ तव मित्र मिलाऊँ । तऊ कहाँ तुमते बर
 पाऊँ ॥ ८ ॥ शाह सुता जब यौ सुनि पावा । जनक बहुरि
 बपु मै जिय आवा । निधनी अधिक मनहु धन पायो । जनु
 कर अंम्रित म्रित के आयो ॥ ९ ॥ तासौ लगन कुअरि को
 हुती । तासौ भेस धारि कै सुती । राज ग्रिहन मै किया
 पियाना । भाखत भई बचन बिधि नाना ॥ १० ॥ त्रिप सुत
 त्रिय जु तिहारे भई । मै तिन दुधरे धाम पठई । तुम तिह
 त्रिय को चित्त चुरायो । अब चलि कुअर करो मन भायो ॥ ११ ॥
 जब त्रिप सुत ऐसे सुनि पाई । चलयो न पनहीं पाइ चढ़ाई ।
 भेद अभेद जड़ कछु न बिचारा । आयो शाह सुता कै
 द्वारा ॥ १२ ॥ दिया बुझाइ दयो आगे त्रिय । आवत भयो
 अंधेरे घर पिय । चित अटका जासौ सो जानी । काम
 क्रिया तासौ कसि ठानी ॥ १३ ॥ काम भोग करि धाम
 सिधार्यो । मूरख कछु न बिचार विचार्यो । दिया बुझाइ

गाने लग जाती और कभी नाचते-नाचते बातें करने लग जाती थी ।
 मुझे कोई मित्र से मिला दे, जो माँगेगा मैं वही दे दूंगी ॥ ७ ॥ एक सखी
 ने उससे कहा कि हे सखी ! मेरी बात सुनो । यदि मैं तुम्हें तुम्हारा मित्र
 मिला दूँ तो बताओ तुमसे मुझे क्या प्राप्त होगा ? ॥ ८ ॥ धनी की पुत्री
 ने जब यह सुना तो मानों उसके शरीर में प्राण वापस आ गए । मानों
 निर्धन ने अत्यधिक धन पा लिया हो या फिर मृतक को अमृत मिल
 गया हो ॥ ९ ॥ उसकी कुँवरि से परम मित्रता थी वह उसी का वेश
 धारण कर राजमहल में चली गई और विभिन्न प्रकार की बातें करने
 लगी ॥ १० ॥ हे राजकुमार ! जो तुम्हारी स्त्री अपने आपको मान चुकी
 है, मुझे उसने तुम्हारे पास भेजा है । तुमने उसका चित्त चुरा लिया है,
 अब तुम उसके साथ मनचाहा विहार करो ॥ ११ ॥ जब राजपुत्र ने
 यह सुना तो वह बिना जूता पहने ही चल पड़ा । उस मूर्ख ने भेद-
 अभेद कुछ नहीं समझा और उस शाह की पुत्री के द्वार पर आ
 पहुँचा ॥ १२ ॥ आगे स्त्री ने दीपक बुझा दिया और प्रिय अंधेरे घर में
 प्रविष्ट हुआ । जिसमें उसका मन अटका हुआ था उससे कसकर केलिक्रीड़ा
 की ॥ १३ ॥ रमणोपरान्त वह घर गया और मूर्ख ने तनिक भी विचार
 नहीं किया । दीपक बुझा कर वह स्त्री उसे रोज बुलाती और उससे

त्रिय रोज बुलावै । कामकेल करि कुवति कमावै ॥ १४ ॥
 देन कहा सु द्वितीयहि दीना । काम भोग त्रिय सुत तन कीना ।
 जिन जड़ भेद अभेद न पायो । इह छल अयनो मूँड
 मूँडायो ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ ग्यारह चरित्र
 समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३११ ॥ ५६३७ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ बारह चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ जोगसैन राजा इक अति बल । अरि
 अनेक जीते जिन दलसलि । स्त्री संन्यासमती दारा घर ।
 अधिक चतुरि त्रिय हुती गुनन करि ॥ १ ॥ केतिक दिनन
 जनत सुत भई । सिख्या राम विरागी दई । बढत बढत सो
 भयो तरुन जब । अत ही सुंदरि होत भयो तब ॥ २ ॥
 तह इक हुती जाट की दारा । अटकि रही लखि राजकुमारा ।
 निसु दिन सदन तवन के जावै । त्रिय सुत ताहि चित्त
 नहि (सू०ग्रं० १२६६) त्यावै ॥ ३ ॥ ताते तरुनि दुखित अति
 भई । चित्त भै चरित बिचारे कई । तब तन इहै बिचार

कामक्रीड़ा करती थी ॥ १४ ॥ जो उसने दूती को देने को कहा था वह
 उसे दे दिया और राजा के पुत्र के साथ संभोग किया । उस मूर्ख ने
 भेद-अभेद न समझा और इसी प्रकार ठगा जाता रहा ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ ग्यारहवें चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३११ ॥ ५६३७ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ बारहवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ जोगसेन एक राजा था जिसने अनेकों शत्रुओं का मर्दन
 कर उन्हें जीता था । उसकी स्त्री संन्यासमती अत्यन्त गुणज्ञ थी ॥ १ ॥
 कितने ही दिनों बाद उसके यहाँ पुत्र हुआ जिसे उसने राम और वैराग्य की
 शिक्षा दी । बढ़ता-बढ़ता जब वह तरुण हो गया तो अत्यन्त सुन्दर लगने
 लगा ॥ २ ॥ वहाँ एक जाट की स्त्री थी जो राजकुमार को देखकर उसमें
 उलझ गई । वह रोज उसके घर में जाती थी पर राजा का लड़का
 उसकी ओर ध्यान नहीं देता था ॥ ३ ॥ इससे तरुणी अत्यन्त दुखी हुई
 और उसने मन में अनेकों प्रपंच सोचे । तब मन में उसने सोच-समझकर

बिचारा । निजु तन भेस जोग को धारा ॥ ४ ॥ जोग भेस धरि तिह ग्रहि गई । जंत्र मंत्र सिखवत बहु भई । ताको लयो चोर करि चित्ता । और हरा ग्रहि को सभ बित्ता ॥ ५ ॥ इक दिन यौ तिह साथ उचारो । जानत जोगी सबहि उठारो । इक दिन इकल जु मोसौ चलै । कौतक लखहु सकल तुम भलै ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ अब लगि जगत मसान को नाहि निहारा नैन । अब जुगिया के हेत ते दिखिहैं भाखे बैन ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ जब निमु भई अरध अँधारी । तब त्रिप सुत इह भाँति बिचारी । इकलो जोगी साथ सिधैहैं । उठत मसान निरखि घर ऐहैं ॥ ८ ॥ चलत भयो जोगी के संग । त्रिय चरित्र को लख्यो न ढंगा । ह्वै एकलो गयो तिह साथ । शस्त्र अस्त्र ग्रहि लयो न हाथा ॥ ९ ॥ जब दोऊ गए गहर बन माही । जह कोऊ मनुख तीसरो नाही । तब अबला इह भाँति उचारा । सुनहु कुअरि जू बचन हमारा ॥ १० ॥ ॥ त्रिय बाच ॥ कै जड़ प्रानन की आसा तजु । कै रुचि मानि आउ मुहि कौ भजु । कै तुहि काटि करै सत खंडा । कै दै मोरि भग बिखै लंडा ॥ ११ ॥ राजकुअर अत ही तब डरा ।

योगी का वेश धारण कर लिया ॥ ४ ॥ योग-वेश में वह उसके घर गई और अनेकों यंत्र-मंत्र सिखाने लगी । उसने उसका चित्त और घर का सारा द्रव्य चुरा लिया ॥ ५ ॥ एक दिन इसने उससे कहा कि मैं सोते हुआँ (मुदों) को भी उठा सकती हूँ । यदि एक दिन अकेले तुम मेरे साथ चलो तो तुमको आश्चर्यकारक काम दिखाऊँ ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ वह सोचने लगा, आज तक मैंने भूत को जागते नहीं देखा, अब योगी के प्रताप से यह भी देखूँगा ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब अँधेरी आधी रात हो गई तो राजकुमार ने सोचा कि अकेला ही योगी के साथ चलूँगा और भूत उठता देखकर घर आ जाऊँगा ॥ ८ ॥ वह योगी के साथ चल दिया और उसने स्त्री के प्रपंच को न समझा । वह अकेला ही उसके साथ गया और शस्त्र-अस्त्र कुछ भी हाथ में नहीं लिया ॥ ९ ॥ जब दोनों गहरे निर्जन वन में गए तो स्त्री ने कहा कि हे राजकुमार ! सुनो ॥ १० ॥ ॥ स्त्री उवाच ॥ हे मूर्ख ! या तो प्राणों की आशा त्याग दो अथवा आकर मेरे साथ रमण करो । तुझे काट कर सात टुकड़े कर दूँगी अथवा तुम मेरी योनि में लिंग प्रविष्ट कराओ ॥ ११ ॥ राजकुमार अत्यन्त भयभीत हो उठा और उसने उस स्त्री

काम भोग तिह त्रिय संग करा ! इह छल सै वाको छलि गई । राइ बिरागियहि भोगत भई ॥ १२ ॥ अंत त्रियन के किनूँ न पायो । बिधना सिरजि बहुरि पछुतायो । जिन इह कियो सकल संसारो । वहै पछानि भेद त्रिय हारो ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ बारह चरित्र समापतम् सतु शुभम् सतु ॥ ३१२ ॥ ५६४६ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ तेरह चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ स्वरनसैन इक सुना त्रिपाला । जाके सदन आठ सै बाला । बिस्वमती ता के इक नारी । जात न जिह की प्रभा उचारी ॥ १ ॥ नाइनेक तिन त्रिपति निहारी । रूपवान गुन भान बिचारी । ताकह पकरि सदन लै आयो । काम भोग तिह साथ कमायो ॥ २ ॥ ताको लै इस्त्री त्रिप करो । भाँति भाँति तिह साथ बिहरो । ता त्रिय की (भू०पं० १२६७) कुटेव नहि जाई । अवरन साथ रमै

के साथ रतिक्रीडा की । इस छल से उसे छल गई और उसका उपभोग कर गई ॥ १२ ॥ स्त्रियों के रहस्य को कोई नहीं समझ सका है, इन्हें तो बनाकर विधाता भी पछताया था । जिसने यह सारा संसार बनाया है, वह भी स्त्री के रहस्य के सामने हार गया है ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ बारहवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३१२ ॥ ५६४६ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ तेरहवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ स्वर्णसेन एक राजा सुना जाता था जिसके घर में आठ सौ स्त्रियाँ थीं । उसकी एक स्त्री विश्वमती थी जिसकी प्रभा का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥ राजा ने एक नाइन को देखा जो उसे रूपवान और गुणवान लगी । उसे वह पकड़कर महल में ले आया और उसके साथ कामक्रीडा की ॥ २ ॥ राजा ने उसे रानी बना लिया और विभिन्न प्रकार से उसके साथ विहार करने लगा । परन्तु उस स्त्री की बुरी आदतें नहीं गईं और वह अन्यो के साथ भी रमण किया करती थी ॥ ३ ॥ एक दिन जब आधी रात हुई तो वह अपने प्रेमी के घर गई ।

लपटाई ॥ ३ ॥ इक दिन अरध निसा जब भई । जार धाम
 नाइनि वह गई । चौकीदारन गहि ताकौ लिय । नाक काटि
 कर बहुरि छाडि दिय ॥ ४ ॥ नाइनि कटी नाक लैक कर ।
 फिर आई त्रिप के भीतर घर । तब त्रिप रोस मूँडवे काजा ।
 माँग्यो तुरतु उसतरा राजा ॥ ५ ॥ तब तिन वहै उसतरा
 दीयो । जा पर बाढि न कबहूँ कीयो । निरखि त्रिपति तिह
 अधिक रिसायो । गहि ता लिय की ओर चलायो ॥ ६ ॥
 तब त्रिय हाइ हाइ कहि उठी । काटि नाक राजा जू सुटी ।
 तब राजा हेरन तिह धायो । खोन पुलत लखि मुख
 बिसमायो ॥ ७ ॥ हाहा पद तब त्रिपति उचारा । मैं नहि
 ऐसो भेद बिचारा । निरखहु ता लिय की चतुरई । राजा
 मूँड बुराई दई ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ भेद अभेद कौ तिन
 त्रिपति किया न ह्रिदै बिचार । ताहि बुराई सिर दई नाक
 कटाई नारि ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ तेरह चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३१३ ॥ ५६५८ ॥ अफजू ॥

चौकीदारिन ने उसे पकड़ लिया और उसकी नाक काटकर उसे छोड़
 दिया ॥ ४ ॥ नाइन कटी नाक को हाथ में लेकर राजा के महल में वापस
 आ गई । तब राजा ने बाल काटने के लिए उस्तरा उससे माँगा ॥ ५ ॥
 तब उसने उसे वही उस्तरा दिया जो बिलकुल काट नहीं सकता था ।
 राजा यह देखकर क्रुद्ध हो उठा । उसने उस्तरा पकड़कर उसकी तरफ
 फेंक चलाया ॥ ६ ॥ तब वह स्त्री हाय ! हाय ! कर उठी और कहने लगी
 कि हे राजन् ! तुमने मेरी नाक ही काट दी है । तब राजा ने उसे देखा और
 रक्त से भीगे मुख को देखकर चकित हो उठा ॥ ७ ॥ तब वह भी "हाय-
 हाय" करके कहने लगा कि मैंने भी इस भेद को नहीं समझा था । उस
 स्त्री की चतुरता देखो, राजा को मूर्ख बना उसी पर बुराई डाल
 दी ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा ने भी मन में भेद-अभेद को न जाना ।
 स्त्री ने भी नाक कटवाकर बुराई राजा के मथे डाल दी ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ तेरहवें चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३१३ ॥ ५६५८ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ चौदह चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ दक्षिणसेन सु दक्षिण त्रिप इक । शास्त्र सिञ्चित जानत थो निक । सदन सुदक्षिण दे तिह दारा । जनु ससि चढ़ियो गगन मँझारा ॥ १ ॥ अप्रमान रानी की थी छबि । निरखि प्रभा जिह रहत भान दबि । राजा अधिक आसकत ता परि । जिह बिधि अलि पंखुरी कमल करि ॥ २ ॥ तहाँ शाह की हुती दुलारी । तिन राजा की प्रभा निहारी । स्त्री सुकुमार देइ तिह नामा । जिह सी भई न महि महि बामा ॥ ३ ॥ चित महि शाह सुता यौ कहियो । जब तिह हेरि अटक मन रहियो । कौन जतन जाते त्रिप पाऊँ । चित तें त्रिय पहिली बिसराऊँ ॥ ४ ॥ बसतति उतम सकल उतारे । मेखलादि तन मो पट धारे । ताके धूम द्वार पर डार्यो । इस्त्री पुरख न किनूँ बिचार्यो ॥ ५ ॥ केतिक दिवस बीत जब गए । लखन नगर निकसत प्रभ भए । भाखा सुनन सभन की काजा । अतिथ भेस धरि निकस्यो राजा ॥ ६ ॥ तिन त्रिय भेस अतिथ को धरिकै । बचन

तीन सौ चौदहवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ दक्षिण में दक्षिणसेन नामक एक राजा था जो शास्त्र, स्मृति आदि अच्छी तरह जानता था । सुदक्षिणदेवी उसकी स्त्री थी जो मानों आकाश में चढ़ा हुआ चन्द्रमा थी ॥ १ ॥ रानी भी अपरिमित छवि को देखकर सूर्य भी दब जाता था । राजा उस पर उसी प्रकार अत्यधिक रूप से आसक्त था जैसे भौरा फूल पर मस्त रहता है ॥ २ ॥ वहाँ एक धनी की पुत्री थी जिसने राजा की सुन्दरता देखी । उसका नाम सुकुमारदेवी था जिसके समान धरती पर अन्य कोई स्त्री नहीं थी ॥ ३ ॥ धनिक-पुत्री ने जब से उसे देखा और जब से उसका मन उसमें अटका तो वह सोचने लगी कि किस तरह मैं राजा को प्राप्त करूँ और उसकी पहली स्त्री उसे विस्मृत करा दूँ ॥ ४ ॥ उसने वस्त्रादि उतारकर मेखला आदि वस्त्र तन पर धारण कर लिये । उसके दरवाजे पर बिना किसी स्त्री-पुरुष का विचार किये उसने धुआँ जला दिया ॥ ५ ॥ कई दिन बीतने के बाद राजा नगर देखने निकला । वह फक्कीर का वेश धारण कर सबकी सुनने के लिए निकला ॥ ६ ॥ उस स्त्री ने फक्कीरी वेश धारण

उच्चार्यो त्रिपहि निहरिकै । (सू० ग्रं० १२६८) कह भयो राजा
 मूर्ख मति कौ । भली बुरी जानत नहि गति कौ ॥ ७ ॥
 दुराचार रानी जु कमावै । ताके धाम नित्य त्रिप जावै ।
 जड़ इह लखत मोरि हित कारनि । सो नित सोत संग लै
 यारनि ॥ ८ ॥ त्रिप यह धुनि खवनन सुनि पाई । पूछत
 भयो तिसी कह जाई । अहित त्रिपति दृष्टाँ को क्या करै ।
 जो तुम कहहु सो बिधि परहरै ॥ ९ ॥ इह त्रिप जोग न ऐसी
 नारी । चाहियत हनी कि तुरनु निकारी । भलो न गवन
 करो ताके छिन । दुराचार त्रिय करत जु निसदिन ॥ १० ॥
 इनके जोग एक त्रिय अही । एक शाह के जाई कही । ज्यों
 इह त्रिप पुरखन को राजा । त्यों बहु नारि त्रियन
 सिरताजा ॥ ११ ॥ जौ वाकौ राजा ग्रहि लयावै । राज
 पाट तब सकल सुहावै । ताहि लखे त्रिय सभ दुरि जाहीं ।
 जिमि उडगन रवि की परछाहीं ॥ १२ ॥ जब राजै इह बिधि
 सुन पायो । इहै मतो जिय साँझ पकायो । दुराचार इसली
 परहरौ । निजु त्रिय शाह सुता लै करौ ॥ १३ ॥ प्रातःकाल
 धाम जब आयो । नेगी सह तन बोलि पठायो । शाह सुता

करके राजा को देखकर कहा । मूर्ख-मति राजा को क्या हो गया
 है जो भला-बुरा नहीं जानता है ॥ ७ ॥ जो रानी दुराचारिणी है, राजा
 रोज उसके पास जाता है । मूर्ख यह समझता है कि उसे मेरे साथ ही
 स्नेह है, परन्तु वह नित्य अपने यार के साथ सोती है ॥ ८ ॥ राजा यह
 सुनकर जाकर उसी से पूछने लगा कि हे साधु ! बताओ तब यहाँ के राजा
 को क्या करना चाहिए जिससे जो तुम बता रहे हो वह दूर हो ॥ ९ ॥
 यह नारी राजा के योग्य नहीं है, इसे या तो मार डालना चाहिए या
 निकाल देना चाहिए । भला तो यह है कि एक क्षण के लिए भी उसके
 पास न जाया जाय जो दुराचार में लिप्त है ॥ १० ॥ इस राजा के योग्य
 तो एक स्त्री है जो एक धनी की पुत्री है । जैसे यह पुरुषों का राजा है
 वैसे ही वह स्त्रियों की सिरताज है ॥ ११ ॥ यदि राजा उसे घर ले आए
 तो राजपाट सभी ठीक रहेगा । उसे देखकर सभी स्त्रियाँ ऐसे ही छिप
 जायेंगी जैसे सूर्य की चमक में तारागण छिप जाते हैं ॥ १२ ॥ जब राजा
 ने यह सुना तो मन में यही विचार बना लिया । उसने दुराचारिणी स्त्री
 का त्याग कर दिया और उस धनी की पुत्री को अपनी रानी बना
 लिया ॥ १३ ॥ प्रातः जब वह घर आया तो उसने दासी भेजकर उसे

जिह तिह विधि लई । रानी डारि ह्रिदै ते दई ॥ १४ ॥
॥ दोहरा ॥ इह चरित तह चंबला ताको चरित दिखाइ ।
निजु लिय साथ तुराइ हित आपन भज्यो बनाइ ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित पद्याने त्रिया चरिते मंत्री भूप संवादे तीन सौ चौदह चरित
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३१४ ॥ ५६७३ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ पंद्रह चरित कथनं ॥

॥ चौपई ॥ शहिर इटावा गंग तीर जह । पाल
सुपच्छिम हुते त्रियति तह । नारि सु पच्छिमदे ताके घर ।
सुरी नागनी नरी न सरवर ॥ १ ॥ बांढी एक रानियहि
हेरा । मदन देह तब ही तिह घेरा । अधिक नेह तिह साथ
बढायो । राजा को चित ते बिसरायो ॥ २ ॥ ऐसी रसिगी
ता सौ नारी । जाँते पति तन प्रीति बिसारी । गेरु घोरि
पान करि लीयो । सुख ते डारि लखत त्रिप दीयो ॥ ३ ॥
जाना स्त्रोण बदन ते बसा । त्रिय मन सै इह सूलन छमा ।

बुलवा लिया । उसने जैसे-तैसे धनी की पुत्री को अपना लिया और रानी
को हृदय से भुला दिया ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रपंच से उस स्त्री ने
उसकी अपनी स्त्री से उसका सम्बन्ध तोड़कर स्वयं उसके साथ रमण-क्रीडा
सुखपूर्वक की ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरितोपाख्यान के त्रिया-चरित के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ चौदहवें चरित
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३१४ ॥ ५६७३ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ पन्द्रहवाँ चरित-कथन

॥ चौपाई ॥ गंगा के किनारे इटावा शहर में पश्चिमपाल राजा
था, जिसकी स्त्री पश्चिमदेवी थी । उसके समान कोई सुर, नाग अथवा
मनुष्य-स्त्री न थी ॥ १ ॥ रानी ने एक बढई देवा और कामासक्न हो
गई । उसने उसके साथ अत्यधिक स्नेह बढ़ा लिया और राजा को चित्त
से विस्मृत कर दिया ॥ २ ॥ वह स्त्री उसमें ऐसी लीन हो गई कि उसने
पति-प्रेम को भुला दिया । उसने (एक दिन) गेरु मिट्टी
घोलकर पी लिया और राजा के देखते उसे मुँह से निकाल
दिया ॥ ३ ॥ राजा ने सोचा कि रक्त का वमन हुआ है और इसे
सूल के कारण कष्ट है । उसने व्याकुल हो वैद्यों को बुनाया

अति आतुर हवै बैद बुलाए । चिह्न रोग तिह नारि
 सुनाए ॥ ४ ॥ तब तिन पी गेरु पुनि डारा । स्त्रोण बसा
 सभहूँन बिचारा । तब पति सो इम नारि उचारो । अब
 रानी (मू० प्र० १२६६) कह मरी बिचारो ॥ ५ ॥ रानी कहत
 त्रिपति सो करियहु । मेरो बहुरि न बदन निहरियहु । और
 सखी काहू न दिखैयो । रानी जाइ जार घरि ऐयो ॥ ६ ॥
 साच बचन जढ़ सुनत उचरिकै । दम कह रोकि गई जनु
 मरिकै । आंसू पुलित अखीआँ पति भई । तब ही जार साथ
 उठि गई ॥ ७ ॥ आँखि पूँछि त्रिप हेरै कहा । ऊहाँ न अंग
 तवन को रहा । तब सखियन इह भाँति उचार्यो । भेद
 अभेद पसु त्रिप न बिचार्यो ॥ ८ ॥ रानी गई सदेह स्वरग
 कह । छोरि गई हम कौ कत महि मह । मूरख साचु इहै
 लहि लई । देह सहित सुरपुर त्रिय गई ॥ ९ ॥ जे जे पुण्यवान
 हैं लोगा । ते ते हैं इह गति को जोगा । जिन इक चित हवै
 कै हरि ध्यायो । ताके काल निकट नहि आयो ॥ १० ॥
 इक चित जो ध्यावत हरि भए । देह सहत सुरपुर ते

और उन्हें रोग के लक्षण बताए ॥ ४ ॥ उसने फिर पीकर गेरु बाहर निकाला
 और सबने सोचा कि रक्त का वमन हुआ है । तब पति से स्त्री ने कहा कि
 अब अपनी रानी को मरा समझो ॥ ५ ॥ रानी ने पति से कहा कि तुम मेरा
 मुँह दुबारा नहीं देख सकोगे । वह अन्य किसी को भी दिखाई न दी और रानी
 यार के घर पहुँच गई ॥ ६ ॥ सत्य वचन को मूर्ख स्वयं ही दुहराने लगा कि
 रानी तो मानों मरकर भी (मेरे लिए) दम रोक गई । उसकी आँखें जब
 अश्रुपूरित हो गई तो वह उसी समय उठकर यार के पास चली गई ॥ ७ ॥
 आँखें पोंछकर राजा देखने लगा कि वह कहाँ है, परन्तु वह वहाँ नहीं थी ।
 तब सखियों ने कहा, जिसे मूर्ख राजा समझ न सका ॥ ८ ॥ रानी सदेह स्वर्ग
 चली गई और हम लोगों को क्यों धरती पर छोड़ गई । उस मूर्ख ने यही
 सत्य मान लिया कि वह सदेह स्वर्ग चली गई है ॥ ९ ॥ जो जो पुण्यवान हैं,
 वे इसी गति के योग्य होते हैं । जिसने एक मन से प्रभु का ध्यान किया, काल
 उसके निकट नहीं आ सका ॥ १० ॥ जो एक मन से हरि का स्मरण करते

गए । भेद अभेद की क्रिया न पाई । मूरख सत्ति इहै
ठहराई ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ पंद्रह चरित्र
समापतम सत्तु सुभम सत्तु ॥ ३१५ ॥ ५६८४ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ सोलह चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ शहिर सुनार गाँव सुनियत जह । राइ
बंगाली सैन बसत तह । स्त्री बंगालमती तिह रानी ।
सुंदरि भवन चतदस जानी ॥ १ ॥ बंगदेइ दुहिता इक ताके ।
और सुंदरी सम नहि जाके । तिन इक पुरख निहारो जबही ।
कामदेव के बसि भी तबही ॥ २ ॥ सूर सूर कहि भूप पर परी ।
जनु गज बेल बाव की हरी । सुछबिराइ सुधि पाइ बुलाइसि ।
काम भोग रुचि मान मचाइसि ॥ ३ ॥ बधि गी कुअरि सजन
के नेहा । जिमि लागत सावन को मेहा । सूर सूर कहि गिरी
प्रिथी पर । तात मात आई सखि सभ घर ॥ ४ ॥ मात परी
दुहिता कह जनियहु । ता तन जीए कुअरि प्रमनियहु ।

हैं वे सदेह स्वर्ग जाते हैं । मूर्ख भेद-अभेद न समझकर इसे ही सत्य मानते
हैं ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ पंद्रहवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३१५ ॥ ५६८४ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ सोलहवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सुनारगाँव नामक शहर में राजा बंगालीसेन रहा करता
था । उसकी रानी बंगालमती चारों दिशाओं में सुन्दर मानी जाती थी ॥ १ ॥
उनकी एक अद्वितीय रूप से सुन्दर बंगदेवी थी । उसने जब एक पुरुष को देखा
तो वह काम के वशीभूत हो गई ॥ २ ॥ वह “शूल-शूल” कहकर धरती पर
ऐसे गिर पड़ी मानों हवा ने पानों की बेल तोड़ फेंकी हो । उसने होश आने
पर सुछविराय को बुलवाया और रुचिपूर्वक काम-भोग उसके साथ किया ॥ ३ ॥
वह कुँवरि सजन के स्नेह में वैसे बँध गई जैसे सावन की वर्षा (धरती से स्नेह
करके) बरसती जाती है । वह “पीड़ा, पीड़ा” कहकर धरती पर गिर पड़ी ।
उसके निवास पर माता-पिता तथा सखियाँ आ गई ॥ ४ ॥ सखियों ने कहा
कि तुम्हारी पुत्री परी है और यह परी के शरीर में ही जीवित रह पायगी

जो मैं कहत तुमै सो करियहु । छोरि कफन मुख नहिन
 निहरियहु ॥ ५ ॥ तुम कौ तात मात दुख ह्वैहै । तुमरी
 सुता अधोगत जैहै । हमरो कछू न शोकहि धरियहु । छमापराध
 हमारो करियहु ॥ ६ ॥ रवि ससि कौ मैं मुख न दिखारा ।
 अब हेरै कस अंग न हमारा । सास घूटि जनु करि मरि गई ।
 सखियन (सू० प्र० १२७०) लपिटि बस्त्र महि लई ॥ ७ ॥ बकरी
 बाँध सिरही मधि दीनी । छोर बस्त्र पितु मात न चीनी । डुहूँ
 सुता को बचन सँभारा । सल के माँझ बकरियहि नारा ॥ ८ ॥
 गई जार संग राजकुमारी । भेद अभेद किन्ही न बिचारी ।
 दुहिता मरी जारि जनु दीनी । त्रिय चरित्र की क्रिया न
 चीनी ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ सोलह चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३१६ ॥ ५६६३ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ सत्रह चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ मंत्री कथा उचारी औरै । राजा देस बंगला
 गौरै । समनप्रभा ताकी पटरानी । जिह सम सुनी न किनी

(मानव-शरीर में नहीं) । जो हम कहें वही करता और इसका कफन उठाकर
 भी मुँह नहीं देखना ॥ ५ ॥ (यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो) तुम्हारी पुत्री
 दुखी होगी और उसकी अधोगति होगी । हमारा ख्याल न करना और हमारा
 अपराध क्षमा कर देना ॥ ६ ॥ हम लोगों ने तो सूर्य-चंद्र को भी अंग नहीं
 दिखाया है अब भला ये सब कैसे देख लेंगे । ऐसे लगा मानों वह साँस दबाकर
 मर गई हो । सखियों ने उसे वस्त्रों में लपेट दिया ॥ ७ ॥ वहाँ सिर के
 स्थान पर बकरी का एक सिर बाँध दिया और माता-पिता ने वस्त्र उठाकर
 नहीं देखा । दोनों ने पुत्री के वचन को माना और चिता में बकरी को जला
 दिया ॥ ८ ॥ यार के साथ राजकुमारी चली गई और किसी ने भी भेद-
 अभेद का रहस्य न समझा । उन्होंने समझा कि मरी हुई पुत्री को जला
 दिया है और उस स्त्री के प्रपंच को न पहचाना ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सोलहवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३१६ ॥ ५६६३ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ सत्रहवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ मंत्री ने और कथा कही कि गौड़ बंगला देश का राजा था

बखानी ॥ १ ॥ पुहपप्रभा इक राजदुलारी । बहुरि बिधाता
तसि न सबारी । ताकी आभा जात न कही । जनु करि फूलि
अबासी रही ॥ २ ॥ भूमि गिरी ताकी सुंद्राई । तांते अबासी
लई ललाई । गाल्हम ते जो रस चुइ परा । भयो गुलाब तिसी
ते हरा ॥ ३ ॥ जोबन जब आयो अंग तांके । शाह एक आयो
तब बाके । एक पुत्र सुंदरि तिह संग । जन मनसा द्वै जए
अनंगा ॥ ४ ॥ गाजी राइ नाम तिह नर को । कंकन जान
काम के कर को । भूखन को भूखन तिह मानो । दूखन को
दूखन पहिचानो ॥ ५ ॥ पुहपप्रभा ताको जब लहा । मन बच
क्रम ऐसे कर कहा । ऐसि करौ मैं कवन उपाई । मोरि इही
संग होइ सगाई ॥ ६ ॥ प्रातहिकाल सुयंबर किया । कुंकम
डारि तिसी पर दिया । अरु पुहपन तै डारिसि हारा । हेरि
रहे मुख भूप अपारा ॥ ७ ॥ तिह त्रिप सुत सभहूँ करि जाना ।
शाह पुत्र किन्हूँ न पछाना । माता पिता नहि भेद बिचरा ।
इह छल कुअरि सभन कह छरा ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ सत्रह चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३१७ ॥ ६००१ ॥ अफजू ॥

जिसकी पटरानी सुमनप्रभा थी । उसके समान रानी कही-सुनी नहीं गई
थी ॥ १ ॥ एक राजकुमारी पुष्पप्रभा थी जो विधाता की सृष्टि में अतुलनीय
थी, मानों गुलाबासी फूली हुई हो ॥ २ ॥ उसकी सुन्दरताई जमीन पर गिरी
थी अतः गुलाबासी ने उससे ललाई ली थी । उसके गालों से चूनेवाले रस से ही
मानों गुलाब हरा था ॥ ३ ॥ जब उसके अंग में यौवन आया तो वहाँ एक
धनी पुरुष आया । उसके साथ एक पुत्र था जो मानों कामदेव का मानस
पुत्र हो ॥ ४ ॥ उसका नाम गाजीराय था । वह मानों कामदेव के हाथ में
पहना कंगन था । उसे आभूषणों का आभूषण और सभी दोषों का दमन
करनेवाला समझो ॥ ५ ॥ पुष्पप्रभा ने जब उसे देखा तो मन, वचन और कर्म
से ऐसा कहा कि ऐसा कोई उपाय किया जाय जिससे मेरी इसी के साथ
सगाई हो ॥ ६ ॥ प्रातः ही उसने स्वयंवर किया और उस पर कुंकुम डाल
दिया । फूलों का हार उसके गले में डाल दिया और अनेकों राजा मुंह देखते
रह गए ॥ ७ ॥ उसे सभी ने राजपुत्र माना और कोई न जान सका कि यह
धनिक का पुत्र है । माता-पिता ने भी भेद का विचार नहीं किया और इस
प्रकार छल से कुअरि ने सबको छल लिया ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सत्रहवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३१७ ॥ ६००१ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ अठारह चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ मरगजसेन हुतो इक त्रिप बर । मरगजदेइ नारि जाके घर । रूपवान धनवान बिसाला । भिछक कल्पतरु द्रुजनन काला ॥ १ ॥ मुंगी पटना देस तवन को । जीति कवन रिप सकत जवन को । अप्रमान तिह प्रभा बिराजै । सुर नर नाग असुर मन लाजै ॥ २ ॥ (सू० प्र० १२७१) एक पुरख रानी लखि पायो । तेजमान गुनमान सवायो । पुहपराज जनु मधि पुहपन के । चोरि लेति जनु चित इस्तिन के ॥ ३ ॥ ॥ सोरठा ॥ रानी लयो बुलाइ तवन पुरख अपने सदन । अति रुचि अधिक बढाइ तासौ रति मानत भई ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ तब लगि नाथ धाम तिह आयो । मनहाँ तर त्रिय जार छपायो । बहु बुगचा आगे दै डारे । ताके जात नअंग निहारे ॥ ५ ॥ बहु चिर तह बैठा त्रिप रहा । भला बुरा कछु भेद न लहा । जब ही उठि अपनो घर आयो । तब ही त्रिय घर मीत पठायो ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ अठारह चरित्र समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३१८ ॥ ६००७ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ अठारहवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ मरगजसेन एक राजा था जिसकी स्त्री मरगजदेवी थी । वह राजा रूपवान, धनवान, भिक्षुकों के लिए कल्पतरु और दुर्जनो के लिए काल था ॥ १ ॥ उसका देश मुंगीपतन (विशाखापतनम जिले का एक नगर) था, जिसे कोई भी शत्रु जीत नहीं सकता था । उसकी प्रभा अपरिमित थी और सुर-असुर, नाग, नर सभी उसके सामने लज्जित होते थे ॥ २ ॥ रानी ने एक पुरुष देखा जो अधिक तेजवान, गुणवान था । वह पुष्पों में मानों पुष्पों का राजा था और मानों स्त्रियों का चित्तचोर था ॥ ३ ॥ ॥ सोरठा ॥ रानी ने उस पुरुष को अपने घर बुलाया और अत्यन्त रुचिपूर्वक उससे रतिक्रीड़ा की ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब उसका पति घर में आ गया और इसने उसे पलंग के नीचे छिपा दिया । उसके आगे बोरे आदि रख दिये जिससे उसके अंग न दिखाई दें ॥ ५ ॥ राजा वहाँ बहुत देर तक बैठा रहा और भला-बुरा

कुछ न जान सका । जब वह उठकर अपने घर आया तो स्त्री ने मित्र को अपने घर भेज दिया ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ अठारहवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३१८ ॥ ६००७ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ उनीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनो त्रिपति मैं भाखत कथा । जह मिलि देव समुद्द कह मथा । तहां सुव्रत नामा मुनि रहै । अधिक व्रती जाकह जग कहै ॥ १ ॥ त्रिय मुनिराज मती तिह रहै । रूप अधिक जाको सभ कहै । असि सुंदरि नहि और उतरी । है हवैहै न बिधाता करी ॥ २ ॥ सागर मथन देव जब लागे । मथ्यो न जाइ सगल दुख पागे । तब तिन त्रिय इह भाँति उचारो । सुनो देवतियो बचन हमारो ॥ ३ ॥ जो बिधि धरै सीस पर झारी । पानि भरै जल रासि मँझारी । मेरो धूरि पगन की धोवै । तब यह सफल मनोरथ होवै ॥ ४ ॥ ब्रह्म अति आतुर कछु न बिचरा । झारी राखि सीस जल भरा । देखहु इह इसतिन के चरिता । इह बिधि चरित दिखायो करता ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ उनीस चरित्र समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३१९ ॥ ६०१२ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ उन्नीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! सुनो, मैं कथा सुनाता हूँ । जहाँ देवताओं ने समुद्र-मंथन किया वहाँ सुव्रत नामक एक मुनि रहता था जिसे सारा संसार अत्यधिक व्रती मानता था ॥ १ ॥ मुनिराजमती उसकी स्त्री थी जो संसार में अत्यधिक रूपमती जानी जाती थी । वैसी अन्य सुन्दरी न होगी और न ही विधाता ने बनाई थी ॥ २ ॥ देव जब सागर-मंथन करने लगे तो उनसे मंथन नहीं हो पा रहा था और वे दुखी हो उठे । तब उस स्त्री ने कहा कि हे देवगणो ! मेरी बात सुनो ॥ ३ ॥ यदि विधाता सिर पर घड़ा लेकर पानी भरे और मेरे चरणों की धूल साफ़ करे तब तुम लोगों का मनोरथ सफल होगा ॥ ४ ॥ ब्रह्मा ने व्याकुल हो अन्य कुछ विचार न किया और घड़ा सिर पर रखकर जल भरा । इन स्त्रियों के प्रपंच देखो, इन्होंने स्रष्टा को भी प्रपंच दिखाया ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ उन्नीसवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३१९ ॥ ६०१२ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ बीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ भूमि भार तें अति दुख पायो । ब्रह्मा पे दुख रोइ सुनायो । ब्रह्मा करी बिशन की सेवा । ताते भए क्रिशन जग देवा ॥ १ ॥ मुर दानव को कंसवतारा । करत पूरब लौ द्रोह सँभारा । वाके करत हनन के दावै । नितप्रति आसुरन तहाँ पठावै ॥ २ ॥ प्रथम पूतना क्रिशन सँघारी । पुनि सकटासुर देह उधारी । बहुरि (सू० पं० १२७०) बकासुर असुर सँघार्यो । बिखभासुर के बिखन उपार्यो ॥ ३ ॥ अघासुर को अघ निवरत करि । पुनि केसी मार्यो चरनन धरि । बहुरि ब्रह्म कह चरित दिखायो । धरि करि पर गिर इंद्रह रायो ॥ ४ ॥ नंदहि छीन बरन ते ल्यायो । संदीपन के सुतहि मिलायो । दावानल ते गोप उबारै । गोपन सौ ब्रिज करे अखारै ॥ ५ ॥ कुबल्या गज को दाँत लयो हरि । चांडूरहि मुसटकहि प्रहरि करि । पकरि केस ते कंस पछारा । उग्रसेन सिर छत्रहि टारा ॥ ६ ॥ जरासिंधु की चमूँ सँघारी । संख लयो संखासुर मारी । नगर द्वारिका किया प्रवेशा । देस देस के जोति

तीन सौ बीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पृथ्वी ने वोझ से दवकर अत्यन्त दुख पाया तो ब्रह्मा के पास दुख रो सुनाया । ब्रह्मा ने विष्णु की सेवा की तो जगत् में कृष्ण पैदा हुए ॥ १ ॥ कंस मुर राक्षस का अवतार था जिसे पूर्वजन्म की ही शत्रुता थी । कृष्ण को मारने के लिए वह नित्यप्रति असुरों को वहाँ भेजता था ॥ २ ॥ पहले कृष्ण ने पूतना को मारा, फिर शकटासुर का उद्धार किया । फिर बकासुर को मारा और वृक्षासुर के वृक्षों को उखाड़ फेंका ॥ ३ ॥ अघासुर के पापों की निवृत्ति कर केशी को चरणों में पटककर मार डाला । पुनः ब्रह्मा को कौतुक दिखाया और हाथ पर पर्वत उठाकर इंद्र को दिखा दिया ॥ ४ ॥ नंद को वरुण से छीनकर लाये और संदीपन को उसके पुत्रों से मिला दिया । गोपों को दावानल से और ब्रज में गोपों के अखाड़े बनाए ॥ ५ ॥ कुबल्या गज के दाँत लाया और चंडूर पर मुष्टिका-प्रहार किया । कंस को केशों से पकड़कर पछाड़ दिया और उग्रसेन के सिर पर छत्र झुलाया ॥ ६ ॥ जरासंध की चतुरंगिणी सेना का संहार किया और शंखासुर को मारकर उससे शंख लिया । देश-देशान्तरों के राजाओं को

नरेशा ॥ ७ ॥ दंतबक्र नरकासुर घायो । सोरह सहस बधू
बरि ल्यायो । पारजात सुरपुर ते ल्याया । बिद्रावन महि
खेल दिखाया ॥ ८ ॥ पंडवन की जिन करी जितारी । द्रुपद
सुता की लाज उबारी । सभ कौरव के दलहि खपाई । संतहि
आँच न लागन पाई ॥ ९ ॥ सभ सूचनता जौ करि जैयै । ग्रंथ
बढ़न ते अधिक डरैयै । ताते थोरी कथा उचारी । चूक होइ
कवि लेहु सुधारी ॥ १० ॥ अब मैं कहत कथा रुकमनी । जिह
छल बर्यो क्रिशन सो धनी । लिखि पतिया दिज हाथ पठाई ।
कहियहु महाराज तन जाई ॥ ११ ॥ ॥ सवैया ॥ व्याह बढ्यो
सिसपाल भए सुई जोरि ब रात बियाहन आए । हौ अटकी
मधसूदन सौ जिनकी छवि हाटक हेरि हिराए । चालिक की जिमि
प्यास घटै न बिना घन से घन स्याम सुहाए । हारि गिरी न
हिर्यो हिय को दुख हेरि रही न हहा हरि आए ॥ १२ ॥
॥ चौपई ॥ पतिया बाचि चढ़े हरि रथै । मानहु लूट लयो
मनमथै । उत सिसुपाल जोरि दल आयो । कुंदनपुरी नगर
नियरायो ॥ १३ ॥ भेद कहा रुकमिनी विप्र स्थों । प्राणनाथ

जीतकर द्वारिका नगर में प्रवेश किया ॥ ७ ॥ वक्रदंत और नरकासुर को
मारा तथा सोलह सहस स्त्रियों का वरण किया । स्वर्ग से पारजात वृक्ष
ले आया और वृंदावन में रासलीला दिखाई ॥ ८ ॥ जिसने पांडवों को
जिताया और द्रौपदी की लाज रखी । उसने कौरवों के समस्त दलों को नष्ट
कर दिया, पर संतों को आँच नहीं आने दी ॥ ९ ॥ यदि सभी सूचियाँ
बनाई जायँ तो ग्रंथ के बढ़ने से डर लगता है । इसीलिए मैंने थोड़ी बात कही
है, चूक होने पर कविगण सुधार लेंगे ॥ १० ॥ अब मैं रुकमिणी की कथा कहता
हूँ कि उसने किस छल से कृष्ण का वरण किया । उसने पत्र लिखकर कृष्ण की
ओर ब्राह्मण के हाथ भेजा और बताने को कहा ॥ ११ ॥ ॥ सवैया ॥ मेरा
विवाह शिशुपाल से तय हो गया है और वह वारात लेकर मुझे व्याहने आ
गया है । मैं तो मधुसूदन की उस छवि में अटकी हूँ जिस छवि को देखकर
सोने की भी संभाल नहीं रहती । चातक की बादलों को देखे बिना प्यास
नहीं बुझती । मैं तो देखते-देखते हार गई हूँ, पर हाथ हरि कृष्ण अभी तक
नहीं आए हैं ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ पत्रिका पढ़कर कृष्ण रथ पर चढ़े ।
उन्हें मानों काम ने लूट लिया हो । उधर शिशुपाल भी सेना एकत्र कर
कुंदनपुरी के निकट आ गया ॥ १३ ॥ रुकमिणी ने विप्र (ब्राह्मण) से कहा
कि प्राणनाथ कृष्ण से कहना कि जब मैं गौरीपूजन के लिए आऊंगी तो तुम्हारे

सेती कहियहु यौ । जब मैं गौरि पूजबै ऐहों । तब तव दरस
चंद्र सो पैहों ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ तब तुम हमको भुजा
भरि लीजहु रथहि चढ़ाइ । निजु मारी लै कीजियहु दुशट सभन को
घाइ ॥ १५ ॥ ॥ चौपई ॥ रुकम ब्याह की सौज बनाई । भाँति
भाँति पकवान मिठाई । फूल्यो फिरत त्रियन के गन (सू० ग्रं० १२७३)
मे । मूँड मूँडे की खबरि न मन मै ॥ १६ ॥ गौरि पूजने बहिनि
पठाई । तह ते हरी क्रिशन सुखदाई । दुशट लोग मुख बाइ
रहत भे । हाइ हाइ इह भाँति कहत भे ॥ १७ ॥ ॥ भुजंग
छंद ॥ चल्यो क्रिशन ताकौ रथै डारि लैकै । तबै बीर धाए
सभै कोप टवैकै । जरासिंधु ते आदि लै बीर जेते । हथै लै
पटैलै चले डारि तेते ॥ १८ ॥ किते पाखरैं डारिकै बाजियो पै ।
किते चार जामे चढ़े ताजियो पै । मघोले धधेले बुंदेले
चंदेले । कछ्वाहेर ठौरे बघेले खंडेले ॥ १९ ॥ तबै रुकम
रुकमी सभै भाइ लैकै । चल्यो सैन बाकी हठी गोल कैकै ।
तहाँ बान तीखे छुटे ओर चारु । मंडे आनि जोधा बज्यो राग
मारु ॥ २० ॥ कही भीम भेरी बजैं संख भारे । कहूँ नाद
नाफीरियें औ नगारे । परी मारि बानान की भाँति ऐसी ।

चन्द्रमुख का दर्शन करूंगी ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ तब तुम मुझे बाँह पकड़कर
रथ पर चढ़ा लेना और सभी शत्रुओं को मारकर मुझे अपनी पत्नी बना
लेना ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ रुकम ने विवाह की तैयारी की और भाँति-भाँति
के पकवान बनवाए । वह स्त्रियों के झुंड में खुशी-खुशी फूला घूम रहा था
और उसे ठगे जाने की तनिक भी खबर नहीं थी ॥ १६ ॥ उसने बहन को
गौरी-पूजा के लिए भेजा और वहीं से सुखदायक कृष्ण ने उसका हरण कर
लिया । दुष्ट लोग मुँह फाड़े देखते रहे और हाय-हाय करते रहे ॥ १७ ॥
॥ भुजंग छंद ॥ कृष्ण जब उसे रथ में डालकर चल पड़ा तो वीर क्रुद्ध हो टूट
पड़े । जरासंध आदि वीर से लेकर सभी वीर हाथों में शस्त्र लेकर चल
पड़े ॥ १८ ॥ कहीं घोड़ों पर जीनें कसकर और कहीं स्वयं सुन्दर वस्त्र धारण
कर चल पड़े । मघोले, धधेले, बुंदेले, चन्देले, बघेले और खंडेले आदि चल
पड़े ॥ १९ ॥ तभी रुकम और रुकमी भी सेना लेकर गोल बनाकर चल पड़े ।
वहाँ चारों ओर तीखे बाण छूटने लगे और योद्धाओं के रणमंडन से भीषण नाद
के साथ युद्ध होने लगा ॥ २० ॥ भीमकाय भेरियाँ और भारी शंख बजने लगे ।
कहीं नफ़ीरी और नगाड़े का नाद होने लगा । बाणों की मार ऐसी पड़ने
लगी कि प्रलयकाल की अग्नि-ज्वाला जैसी लपटें उठने लगीं ॥ २१ ॥ बाण

उठी अगनि ज्वाला प्रलैकाल जैसी ॥ २१ ॥ चलै शीघ्रता
 सौ खहै बान बाने । उठै अगनि ज्वाला लसै ज्यों टनाने ।
 कहूँ चरम बरमैं परे भरम भेदे । कहूँ मांस के गोध लेंगे
 लबेदे ॥ २२ ॥ कहूँ अंगुलिद्वान काटे परे हैं । कहूँ अंगुली
 काटि रतनैं झरे हैं । रही हाथ ही मै क्रिपानैं कटारे । गिरै
 जूझि कैकै परे भूम मारे ॥ २३ ॥ तबै कोप कैकै चंदेले
 सिधाए । बधे चुंग चुंगी चले खेत आए । चहूँ ओर घेर्यो
 हरी क्रिशन कौ यौ । गड़े दार मानो करी मत्त की
 ज्यों ॥ २४ ॥ तबै कोप कै क्रिशन मारे चंदेले । मघेले
 धधेले बघेले बुंदेले । चंदेरीस हूँ कौ तबै बान मारा । गिर्यो
 भूमि पै न हथ्यारै सँभारा ॥ २५ ॥ ॥ चौपई ॥ जरासिंध
 कहि पुनि सर मारा । भागि चल्यो न हथ्यार सँभारा । भिरे
 सु मरे बचे तौ हारे । चंदेरियहि चंदेल सिधारे ॥ २६ ॥ तब
 रुक्मी पहुचत भयो जाई । अधिक क्रिशन सौ करी लराई ।
 भाँति भाँति तन बिसिख प्रहारे । हार्यो वहै क्रिशन नहि
 हारे ॥ २७ ॥ चित्त मै अधिक ठानिकै क्रुद्धा । माँडत भयो
 क्रिशन सौं जुद्धा । एक बान तब स्याम प्रहारा । गिर्यो प्रिथी

शीघ्रता से चलकर बाणों से टकराने लगे और अग्नि की चिनगारियाँ उड़ते
 जुगनुओं के समान दिखाई देने लगीं । कहीं चर्म और कहीं लौहकवच पड़े थे
 और कहीं मांस के लोथड़े गिद्ध आदि ले जा रहे थे ॥ २२ ॥ कहीं अंगुलिद्वान
 कटे पड़े हैं और कहीं कटी अंगुलियों से रत्न झड़ रहे हैं । कृपाण और कटारें
 हाथ में ही रह गईं और वीर युद्ध में जूझकर भूमि पर गिर मरे हैं ॥ २३ ॥
 तभी चंदेले क्रुद्ध हो छलांगे लगाते युद्ध में आ गए । उन्होंने चारों ओर से
 श्रीकृष्ण को ऐसे घेर लिया जैसे शिकारियों ने हाथी को घेर लिया हो ॥ २४ ॥
 तब कृष्ण ने भी कुपित हो चन्देलों, बघेलों, मघेलों और बुन्देलों आदि सबको
 मार डाला । तभी चंदेरी-अधिपति शिशुपाल को बाण मारा और वह शस्त्र
 छोड़कर भूमि पर गिर पड़ा ॥ २५ ॥ ॥ चौपाई ॥ फिर जरासंध को बाण
 मारा जो शस्त्र सँभाले बिना भाग चला । जो भिड़ गए वे मारे गए और
 जो बच गए वे हार गए । चंदेले चंदेरी की ओर भाग निकले ॥ २६ ॥
 तब तक रुक्मी (रुक्मिणी का भाई) आ पहुँचा और उसने कृष्ण से भीषण
 युद्ध किया । उसने विभिन्न प्रकार के बाण चलाए जिसमें वही हारा, कृष्ण
 नहीं हारे ॥ २७ ॥ चित्त में अत्यधिक क्रुद्ध हो वह कृष्ण से युद्ध करने लगा ।
 तब कृष्ण ने एक बाण मारा और वह पृथ्वी पर ऐसे गिर पड़ा मानों मर

पर जानु सँघारा ॥ २८ ॥ सर सौ मूँडि प्रथम तिह सीसा ।
बाँधि लयो रथ सौ जदुईसा । भ्रात जानि रुक्मिणी छुड़ायो ।
लजत धाम सिसपाल सिधायो ॥ २९ ॥ (मू०ग्रं० १२७४) किन्तू
चंदेलन के सिर तूटे । कईक गए मूँड घर टूटे । सकल चंदेले
लाज लजाए । नारि गवाइ चंदेरी आए ॥ ३० ॥
॥ दोहरा ॥ गए चंदेल चंदेरि यहि कर ते नारि गवाइ । इह
चरित्र तन रुक्मिणी बरत भई जदुराइ ॥ ३१ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ बीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३२० ॥ ६०४३ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ इकीस चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ सुक्राचारज दान्वन को गुर । सुक्रावती
बसत जाको पुर । सारि देव जाकौ रन जावै । पढ़ि संजीवनि
ताहि जियावै ॥ १ ॥ देवजानि इक सुता तवन की । अप्रमान
छबि हुती जवन की । कचमाना देवन को दिजबर । आवत
भयो सुक्र के तब घर ॥ २ ॥ देवजानि संगि किया अधिक
हित । हरि लीनो ज्यों त्यों त्रिय को चित । मंत्रहि लेन

गया हो ॥ २८ ॥ उसका सिर मूँडकर कृष्ण ने उसे रथ के साथ बाँध लिया ।
उसे भाई समझकर रुक्मिणी ने छुड़ा दिया जो लज्जित हो शिशुपाल के पास
चला गया ॥ २९ ॥ कितने ही चंदेलों के सिर टट गए और कई एक सिर
मूँडवाकर घर गए । सारे चंदेले लज्जित थे क्योंकि स्त्री गँवाकर वे चन्देरी
वापस आए थे ॥ ३० ॥ ॥ दोहरा ॥ चन्देले, स्त्री गँवाकर वापस चन्देरी को
चले गए और इस प्रपंच से रुक्मिणी ने कृष्ण का वरण किया ॥ ३१ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रौपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ बीसवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३२० ॥ ६०४३ ॥ अफजू ॥

तीन सौ इक्कीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ शुक्राचार्य दानवों का गुरु था और वह शुक्रवती नगर
में रहता था । देवता जिसे भी युद्ध में मार देते थे वह संजीवनी विद्या
पढ़कर उसे जीवित कर देता था ॥ १ ॥ उसकी एक पुत्री देवयानी थी
जिसका सौंदर्य अपरिमित था । कच देवताओं का पुरोहित माना जाता था,
वह शुक्राचार्य के घर आया ॥ २ ॥ उसने देवयानी के साथ स्नेह बढ़ाकर
जैसे-तैसे उसका मन चुरा लिया । उसे संजीवनी मंत्र सीखने के लिए

संजीवन काजा । इह छल पठ्यो देवनन राजा ॥ ३ ॥ दैत
भेद पावत जब भए । ताको डारि नदी हनि गए । बिलम
लगी वह धाम न आयो । देवजानि अति ही दुख पायो ॥ ४ ॥
भाखि पिता तन बहुरि जियायो । दैतन देख अधिक दुख
पायो । नितिप्रति मारि ताँहि उठि जावै । पुनि पुनि ताको
सुक्र जियावै ॥ ५ ॥ तब तिह मारि मद्य महि डार्यो ।
बचत भूँजि निजु गुरहि खवार्यो । देवजानि जब ताहि न
लहा । अधिक दुखित हवै पित प्रति कहा ॥ ६ ॥ अब लौ
कच जु धाम नहि आयो । जनियत किनहूँ असुर चबायो ।
ताते पितु तिह बहुरि जियावो । हमरे मन को शोक
मिटायो ॥ ७ ॥ तब ही सुक्र ध्यान महि गए । तिह निजु
पेट बिलोकत भए । मंत्र सजीवन कौ किह दै करि । काढत
भयो उदर अपनो फरि ॥ ८ ॥ काढत ताहि सुक्र मरि गयो ।
बहुरि मंत्र बल कचहि जिययो । स्त्राप दयो मदरा को तिह तह ।
ताते पियत न याकह कोऊ कह ॥ ९ ॥ देविजान पुनि ऐस
बिचारा । यौ कच तन तजि लाज उचारा । काम भोग
मोसौ तै कर रे । हमरे मदन ताप कह हर रे ॥ १० ॥ तिन

देवताओं ने भेजा था ॥ ३ ॥ दैत्यों को जब रहस्य का पता लगा तो उसे
मारकर उन्होंने नदी में फेंक दिया । जब विलम्ब हो गया और वह घर
नहीं पहुँचा तो देवयानी अत्यंत दुखी हो गई ॥ ४ ॥ पिता से कहकर
उसने उसे फिर जीवित करवा लिया जिसे देखकर दैत्यों को बहुत दुख
हुआ । वे उसे नित्य मार देते थे और शुक्राचार्य उसे बार-बार जीवित कर
देता था ॥ ५ ॥ तब उन्होंने उसे मार कर (उसकी राख को) शराब
में मिला दिया और जो बचा उसे भूनकर गुरु को खिला दिया । देवयानी
ने जब उसे न देखा तो अत्यधिक दुखित हो पिता से कहा ॥ ६ ॥ कच
अभी तक घर नहीं आया है, लगता है किसी दैत्य ने उसे चबा लिया है ।
इसलिए हे तात ! उसे फिर जीवित करो और मेरे मन का शोक दूर
करो ॥ ७ ॥ तब शुक्राचार्य ने ध्यान लगाकर उसे अपने पेट में देखा । तब
उसे संजीवनी मंत्र सिखाकर उसने अपना पेट फाड़कर उसे निकाला ॥ ८ ॥
उसके निकलते ही शुक्राचार्य मर गया जिसे कच ने मंत्र पढ़कर जीवित कर
दिया । तब से उसने मदिरा को शाप दिया कि तुम्हें आज से मैं नहीं
पियूंगा ॥ ९ ॥ देवयानी ने फिर विचार किया और लज्जा का त्याग कर
कच से कहा कि तुम मुझसे कामक्रीड़ा करो और मेरी कामाग्नि को शान्त

रति करी न तासे संग। व्यापि रह्यो तिह जदपि अनंगा ।
 देवजानि तब अधिक रिसाई (मू० अं० १२७५) मोहि न भज्यो याहि
 दुखदाई ॥ ११ ॥ इह बिधि स्नाप देत तिह भई । कथा
 चउपई सु मै बनई । पापी फुरै मंत्र तव नाही । तो ते सुर न
 जिवाए जांही ॥ १२ ॥ प्रथम जियायो तांहि कशठ करि ।
 रम्यो न सो स्नाप्यो तब रिसि भरि । पिता भए इह भांति
 सुनायो । देवराज इह कचहि जयायो ॥ १३ ॥ तात बात
 कहो मै सो करो । मंत्र सजीवन इह ननुसरो । जब इह
 सीखि मंत्र कह जैहैं । देवराज फिर हाथ न ऐहैं ॥ १४ ॥
 मंत्र न फुरै स्नाप इह दीजै । मेरो बचन मानि तितु लीजै ।
 भेद अभेद कछु सुक न पायो । मंत्र निफल को स्नापु
 दिवायो ॥ १५ ॥ तांहि मरो बहु बार जियायो । तब स्नाप्यो
 जब भोग न पायो । त्रिय चरित्र गति किनू न पाई । जिति
 बिधन इह नारि बनाई ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ इक्कीस चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३२१ ॥ ६०५७ ॥ अफजू ॥

करो ॥ १० ॥ यद्यपि उसके अंगों में काम व्याप्त था, पर कच ने उसके
 साथ रतिक्रीडा नहीं की । तब देवयानी अत्यधिक क्रुद्ध हो उठी कि इस
 दुखदायी ने मेरे साथ रमण नहीं किया है ॥ ११ ॥ उसने इसे शाप दे
 दिया । इस कथा को मैंने चौपाई में कहा है । हे पापी ! तुझे मंत्र समय
 पर याद नहीं आयेगा और तुम देवताओं को जीवित नहीं कर सकोगे ॥ १२ ॥
 पहले तो उसे कष्टपूर्वक जीवित करती रही । जब उसने रमण नहीं किया
 तो क्रुद्ध हो उसे शाप दे दिया । फिर उसने पिता से कहा कि यह देवराज
 को जीवित कर लेगा ॥ १३ ॥ इसलिए हे पिता जी, जो मैं कहती हूँ
 उसे मानों और इसका संजीवनी मंत्र निष्फल कर दो । जब यह मंत्र
 सीख कर चला जायगा तो देवराज (इन्द्र) फिर हमारे हाथ कैसे लग
 सकेगा ॥ १४ ॥ इसलिए हे तात ! मेरा कहना मानकर इसे शाप दे दीजिए
 कि इसे मंत्र याद न रहे । शुक्राचार्य ने भेद-अभेद को नहीं जाना और मंत्र
 की निष्फलता का शाप उसे दे दिया ॥ १५ ॥ उस मरे हुए को पहले बहुत
 बार जीवित किया, फिर कामक्रीडा न मिलने पर उसे शापित किया ।
 स्त्रियों के चरित्र की गति को कोई नहीं समझ सका है । वह भी नहीं
 समझ सका है, जिस विधाता ने इस नारी को स्वयं बनाया है ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ इक्कीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३२१ ॥ ६०५७ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ बाईस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु प्रभु और बखानो कथा । ऐहै चित्त हमारे जथा । छजकरनन को देस बसत जह । सुछबिकेत इक हुतो त्रियति तह ॥ १ ॥ अचरज दे ताके इक नारी । कनक अवटि साँचे जनु दारी । स्त्री मकराछमती दुहिता तिह । छीनि करी ससि अंस सकल जिह ॥ २ ॥ जब बर जोग भई बहु दारा । शाहु पूत तन किया पयारा । कामकेल तिह साथ कमावै । भाँति अनिक तन ताहि रिजावै ॥ ३ ॥ त्रिप तन भेस किसु नर भाखा । तब ते ताँहि धाम असि राखा । जहाँ न पंछी करै प्रवेसा । जाइ न जहाँ पवन को वेसा ॥ ४ ॥ कुअरि मित्र बिनु बहु दुख पायो । बीर हाँकि इक निकट बुलायो । तासौ कहा तहाँ तुम जाई । ल्याहु सजन की खाटि उचाई ॥ ५ ॥ सुनत बचन तह बीर सिधयो । खाट उचाइ लयावत भयो । काम भोग करि कुअरि कुअर संग । पनुचायो ग्रहि ताहि तिसी ढंग ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ एक दिबस ताकौ पिता गयो सुता के ग्रेह । सेज देखि करि दलमली चित महि

तीन सौ बाईसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! तुम्हें मन में आयी एक अन्य कथा सुनाता हूँ । छाजकर्णों के देश में सुछबिकेतु एक राजा था ॥ १ ॥ उसकी स्त्री अचरज देवी थी जो मानों सोने के साँचे में ढालकर बनाई हुई थी । मकराक्षमती उसकी पुत्री थी जिसने मानों समस्त कलाओं को छीनकर अपने में समेट रखा था ॥ २ ॥ जब वह स्त्री बर योग्य हुई तो उसने एक धनी के पुत्र से प्यार किया । वह उसके साथ कामकेल करती थी और अनेकों प्रकार से उसे प्रसन्न करती थी ॥ ३ ॥ राजा से किसी ने यह भेद कह दिया, तब से उसने राजकुमारी को ऐसे स्थान पर रखा, जहाँ पक्षी भी प्रवेश न पा सकें और जहाँ हवा भी न जा सके ॥ ४ ॥ कुँवरि ने मित्र के बिना बहूत दुख पाया । उसने एक वीर को पास बुलाया और उससे कहा कि तुम मेरे सजन का पलंग यहाँ उठा लाओ ॥ ५ ॥ वीर यह वचन सुनकर उस ओर चल पड़ा और पलंग उठाकर ले आया । कुँवरि ने कुँवर के साथ कामभोग किया और उसे फिर उसी तरह उसके घर पहुँचा दिया ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ एक दिन कुँवरि का पिता पुत्री के कक्ष में

बढ़ा संदेह ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ चिंतातुर घर को फिर आयो ।
 शहर ढँढोरा ऐस दिलायो । जे केई पुहप खरीदन आवै ।
 मुहि निरखे बिनु लेन न पावै ॥ ८ ॥ (सू० प्र० १२७६) पुहपन
 समै बिकन जब भयो । तब तह त्रिपति बिलोकन अयो । जोगी
 एक तहाँ तब आयो । पुहप पाँच मन सोल चुकायो ॥ ९ ॥
 आइ सु फूल सोल लै गयो । पाछो गहत त्रिपति तिह भयो ।
 जात जात दोऊ गए गहिर वन । जह लखि जात तीसरो
 मनुछ न ॥ १० ॥ तब जोगी सर जटा उधारी । तिन भीतर
 तें नारि निकारी । भाँति भाँति तासौ रति करिकै । सोयो
 ताप सदन कौ हरिकै ॥ ११ ॥ जब ही सोइ संन्यासी गयो ।
 जूत जटन तिह नारि छुरयो । तह ते पुरख एक तिह काढा ।
 कामभोग तासौ करि गाढा ॥ १२ ॥ त्रिप ठाढ़े तिह चरित
 निहारा । जोरि हाथ जोगियहि उचारा । सो ग्रहि काल
 क्लिपा करि ऐयो । जथा शक्ति भोजन करि जैयो ॥ १३ ॥
 प्रात गयो संन्यासी तिह घर । भगवा भैस सकल तन सै धरि ।
 भाँति भाँति तन प्रभा बनाई । महाँ धरम सो जनियो
 जाई ॥ १४ ॥ संन्यासी कह त्रिप आगे धरि । दुहिता के

गया और शय्या को उलटी-पलटी देखकर उसके मन में संदेह
 बढ़ा ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह चिंतातुर वापस अपने निवास पर आया
 और उसने शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि यदि कोई पुरुष खरीदने के
 लिए आए तो मुझसे मिले बिना न खरीदे ॥ ८ ॥ फूलों के बिकने का समय
 जब हुआ तो राजा स्वयं वहाँ देखने गया । तब एक योगी वहाँ आया और
 उसने पाँच मन फूलों का दास चुकता किया ॥ ९ ॥ वह फूल लेकर गया
 और राजा भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ा । चलते-चलते वे गहरे वन में
 चले गये, जहाँ तीसरा व्यक्ति दिखायी नहीं देता था ॥ १० ॥ तब योगी
 ने सिर की जटाएँ खोल दी और उनमें से एक स्त्री निकली । वह उससे
 भाँति-भाँति वीरमण-क्रीडा करके कामाग्नि शान्त करके सो गया ॥ ११ ॥
 जब संन्यासी सो गया तो नारी ने उसकी जटा को छुआ और उनमें से
 एक पुरुष निकला जिसने दृढ़तापूर्वक उससे रतिक्रीडा की ॥ १२ ॥ राजा
 ने खड़े होकर यह दृश्य देखा और हाथ जोड़कर योगी से कहा कि कृपा कर
 कल मेरे घर आइए और यथाशक्ति मुझसे भोजन ग्रहण कीजिए ॥ १३ ॥
 प्रातः भगवे वस्त्र धारण कर संन्यासी वहाँ उसके घर गया । उसने तन को
 भाँति-भाँति प्रकार से सजाया जिसे वह महाधार्मिक जाना जा रहा

राजा आयो घर । तीन थाल भोजन के भरिकै । आगे राखे
बचन उचरिकै ॥ १५ ॥ इह बिधि बचन कहे संन्यासी ।
कहा करत है मुहि तन हासी । एक समुछ हो इतनी भोजन ।
खायो जाइ कवन बिधि सो तन ॥ १६ ॥ एक थार भोजन तुन
करो । दुतिय जटन मे तिह अनसरो । जिह तिह भाँति जटा
छुरवाइ । तह ते नारि निकासी राइ ॥ १७ ॥ त्रितिय थार
आगे तिह राखा । बिहसि बचन तासौ त्रिप भाखा । केस
फाँत ते पुरख निकारहु । यह भोजन तुन ताकह
खवारहु ॥ १८ ॥ जिह तिह बिधि ताको सु निकार्यो ।
बहुरि सुता सौ बचन उचार्यो । तीन थार आगे तिह राखे ।
तीनो भखहु याहि बिधि भाखे ॥ १९ ॥ दुहकर करम
लखियो पित को जब । चक्रित भई चित साँझ कुअरि तब ।
जार सहित वह बीर बुलायो । आपन सहित भोज वह
खायो ॥ २० ॥ त्रास चित मै अधिक बिचारा । इन राजै
सभ चरित निहारा । कवन उपाइ आजु ह्याँ करियै । कछुक
खेलि करि चरित निकरियै ॥ २१ ॥ बीर हाकि अत मंत्र
उचारा । पित जुत अंध तिनै करि डारा । गई मित के साथ

था ॥ १४ ॥ संन्यासी को आगे-आगे लेकर राजा पुत्री के घर आया ।
उसने तीन थालों में भोजन परोसकर उसके आगे रखा ॥ १५ ॥ संन्यासी
ने कहा कि तुम क्यों मुझसे हँसी कर रहे हो ? मैं एक हूँ और भोजन
इतना अधिक है । मैं कैसे खा पाऊँगा ? ॥ १६ ॥ एक थाल भोजन तुम
खाओ और दूसरा जटाओं में डाल लो । उसकी जटाएँ जैसे-तैसे खुलवाकर
राजा ने उसमें से स्त्री को निकाला ॥ १७ ॥ तीसरा थाल उसके आगे
रखकर राजा ने हँसकर उससे कहा । केशपाश से पुरुष को निकालो और
यह भोजन तुम उसको खिलाओ ॥ १८ ॥ उसने जैसे-तैसे उसको भी
निकाला और पुनः पुत्री से कहा । तीनों थाल उसके आगे रखे और कहा
कि तीनों खाओ ॥ १९ ॥ पिता के दुस्तर कार्य को देखकर कुँवरि चित्त
में चकित हो उठी । उसने यार समेत उस वीर (प्रेत) को बुलाया और
तीनों ने वह भोजन खाया ॥ २० ॥ उसने चित्त में अधिक दुख किया कि
राजा ने मेरा सारा प्रपंच देख लिया है । कुछ उपाय किया जाय जिससे
इस जवाबी प्रपंच से बचा जाय ॥ २१ ॥ उसने वीर (प्रेत) को बुलाकर
ऐसा मंत्र चलाया कि अपने पिता को अंधा कर दिया । वह मित्र के
साथ निकलकर चली गई और किसी को रहस्य का पता ही न लग

निकरि करि । भेद सका नहि किनूं बिचरि करि ॥ २२ ॥
 अंध भए ते (मृ०पं० १९७७) लोग सभै जब । इह बिधि बचन
 बखाना त्रिप तब । आछि बैद कोऊ लेहु बुलाइ । जो आँखिन
 को करै उपाइ ॥ २३ ॥ दुहिता बैद भेस तह धरिकै । रोग
 त्रिपति अखिअन कौ हरिकै । माँगि लयो पित ते सोई पति ।
 खचित हुती जाके भीतर मति ॥ २४ ॥ इह छल बर्यो बाल
 पति तौनै । मन महि चुभ्यो चतुरि के जौनै । इन इसलिन के
 चरित अपारा । सजि पछुतान्यो इन करतारा ॥ २५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ बाईस चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३२२ ॥ ६०८४ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ तेईस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ भद्रसैन राजा इक अति बल । अरि
 अनेक जीते जिन दलमलि । शहिर भेहरा मे असथाना । जिन
 कौ भरत दंड त्रिप नाना ॥ १ ॥ कुमदनिदे ताके घर नारी ।
 आपु जनुक जगदीस सवारी । ताकी जात न प्रभा उचारी ।
 फूल रहो जनु करि फुलवारी ॥ २ ॥ प्रमुबसैन सुत ग्रहि

पाया ॥ २२ ॥ जब सभी अंधे हो गये तो राजा ने तब कहा कि कोई
 अच्छा वैद्य बुलाओ जो आँखों का उपाय करे ॥ २३ ॥ पुत्री ने वैद्य का
 वेश धारण कर पिता का रोग दूर कर पिता से वही पति माँग लिया
 जिसमें वह अनुरक्त थी ॥ २४ ॥ इस छल से उसने अपने उस पति का
 वरण किया जो मन में समाया हुआ था । इन स्त्रियों के अपार चरित
 हैं । इन्हें बनाकर तो विधाता भी पछताया है ॥ २५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ बाईसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३२२ ॥ ६०८४ ॥ अफजू ॥

तीन सौ तेईसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ भद्रसेन एक अत्यंत बलशाली राजा था जिसने अनेकों
 शत्रुओं का दलन कर उन्हें जीता था । मेरा (जेहलल के किनारे एक
 शहर) में वह रहता था और अनेकों राजा उसका कर भरते थे ॥ १ ॥
 कुमुदिनी देवी उसकी स्त्री थी जिसे मानों परमात्मा ने अपने हाथ से सँवारा
 था । उसकी प्रभा का वर्णन नहीं किया जा सकता । वह ऐसी लगती

अवतरियो । मदन रूप दूसर जनु धरियो । जाकी जात न
 प्रभा बखानी । अटिक रहत लखि रंकर रानी ॥ ३ ॥ जब
 वह तरुन कुअर अति भयो । ठौरहि ठौर अवर हवै गयो ।
 बालपने कि तगोरी आई । अंग अंग फिरी अनंग दुहाई ॥ ४ ॥
 तह इक सुता शाह की अही । कुअर बिलोक थकित हवै रही ।
 हौस मिलन की ह्रिदै बढाई । एक सहचरी तहाँ पठाई ॥ ५ ॥
 सखी कुअर तन ब्रिथा जनाई । शाह सुता तव हेरि लुभाई ।
 करहु सजन तिह धाम पयाना । भोग करो वासो बिधि
 नाना ॥ ६ ॥ द्वै हँगे इह नगर खुदाई । तिन दुहँअन मौ रारि
 बढाई । जो तूँ दुहँ जियन तैं मारे । बहुरि हमारो साथ
 बिहारे ॥ ७ ॥ सुनि बच भेस तुरक ब्रिय धरा । बाना वहै
 आपनो करा । गहि क्लिपान तह कियो पयाना । जहाँ निमाजी
 पढ़त दुगाना ॥ ८ ॥ जबही पढ़ी निमाज तिनो सब । सिजदा
 बिखै सु गए तुरक जब । तब तिह घात भली करि पाई ।
 काटि मूँड दुहँअन के आई ॥ ९ ॥ इह बिधि दोऊ खुदाई
 मारे । रमी आनि करि साथ पयारे । भेद अभेद न किनी

थी मानों फुलवाड़ी फूली हो ॥ २ ॥ उनके घर प्रमुदसेन नामक पुत्र पैदा
 हुआ जो मानों दूसरा कामदेव था । उसकी प्रभा का वर्णन नहा किया
 जा सकता । उसे देखकर रानी और रंक-स्त्रियाँ सभी उसमें उलझ
 जाती थीं ॥ ३ ॥ जब वह कुँवर तरुण हुआ तो देखते-देखते और से
 और हो गया । बचपन विदा हुआ और अंग-अंग में कामदेव छा
 गया ॥ ४ ॥ वहाँ एक धनी की पुत्री थी जो कुँवर को देखकर
 व्याकुल हो उठी । उसने मन में मिलने की लालसा से एक दासी वहाँ
 भेजी ॥ ५ ॥ दासी ने कुँवर से कहा कि धनी की पुत्री तुम पर लुब्ध
 है । हे सजन ! उसके घर जाओ और उससे विभिन्न प्रकार के रास-विहार
 करो ॥ ६ ॥ इस नगर में दो मुसलमान हैं जिनसे मेरा झगड़ा बढ़ा हुआ
 है । यदि तुम उन दोनों को जान से मार डालो तो फिर मेरे साथ रमण
 करो ॥ ७ ॥ यह सुनकर स्त्री ने तुर्क वेश धारण किया और उसी प्रकार
 के वस्त्र धारण कर लिये । कृपाण पकड़कर उसने वहीं प्रस्थान किया, जहाँ
 नमाजी नमाज पढ़ रहे थे ॥ ८ ॥ जब वे सब नमाज पढ़कर सज्दः में झुके
 तब इसने अवसर पाकर दोनों के सिर काट लिये ॥ ९ ॥ इस प्रकार दोनों
 मुसलमानों को मार दिया और फिर आकर अपने प्रिय के साथ रत हो
 गई । किसी ने भेद-अभेद न जाना और समझा कि किसी दुष्ट ने इन्हें मार

बिचारा । किनही दुशट कट्यो इन सारा ॥ १० ॥ (सू०प्र० १२७५)
 ॥ दोहरा ॥ मारि खुदाइन दुहँ कह बर्यो आन करि मित ।
 देव अदेव न पावही अबलान के चरित ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ तेईस चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३२३ ॥ ६०६५ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ चौबीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ मंत्री कथा उचारन लागा । जाके
 रस राजा अनुरागा । सूरतिसैन बिपति इक सूरति ।
 जानुक दुतिय सैन की सूरति ॥ १ ॥ अच्छादेइ सदन
 तिह नारी । कनक अवटि साँचै जन ढारी । अपसरमती
 सुता तिह सोहै । सुर नर नाग असुर मन मोहै ॥ २ ॥
 सुरिदसेन इक शाह पुत्र तह । जिह सम दूसर भयो न
 महि सह । राज सुता तिह ऊपर अटकी । बिसरि गई
 सभ ही सुधि घट की ॥ ३ ॥ चतुरि सहचरी तहाँ पठाई ।
 नारि भेस करि तिह लै आई । जब बहु तरुन तरुनियहि पायो ।

डाला है ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ दोनों खुदा के बंदों को मारकर आकर
 मित्र का वरण किया । देव-अदेव कोई भी स्त्रियों के प्रपंचों को नहीं जान
 सका है ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ तेईसवें चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३२३ ॥ ६०६५ ॥ अफजू ॥

तीन सौ चौबीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ मंत्री कहानी कहने लगा जिसमें राजा लीन था ।
 सूरत में सूरतिसैन नामक एक राजा था जो मानों कामदेव की प्रतिमा
 था ॥ १ ॥ अक्षरदेवी उसकी स्त्री थी जो मानों सोने के साँचे में ढालकर
 बनाई गई थी । अपसरमती उसकी पुत्री थी जो सुर, नर, नाग, सबको
 मोहित कर लेनेवाली थी ॥ २ ॥ सुरिदसेन वहाँ एक धनी का पुत्र
 था जिसके समान अन्य कोई नहीं था । राजसुता उसी पर आसक्त थी
 और उसे सारी सुध-बुध भूली हुई थी ॥ ३ ॥ एक चतुर सहेली उसने
 वहाँ भेजी जो उसे नारी-वेश में राजकुमारी के पास ले आई । जब
 उस तरुण ने युवती पायी तो उसे विभिन्न प्रकार से आलिंगनबद्ध

भाँति भाँति भजि गरे लगायो ॥ ४ ॥ भाँति भाँति के आसन
लैकै । भाँति भाँति तन चुंबन कैकै । तिह तिह बिधि ताको
बिरमायो । ग्रहि जैबो तिनहूँ सु भुलायो ॥ ५ ॥ सखी भेस
कह धारे रहै । सोई करै जु अबला कहै । रोज भजै आसन
तिह लै कै । भाँति भाँति ताकह सुख दै कै ॥ ६ ॥ पित तिह
निरखै भेद न जानै । दुहिता की तिह सखी प्रमानै । भेद
अभेद जढ़ कोइ न लहही । वाकी ताँहि खवासिनि कहही ॥ ७ ॥
इक दिन दुहिता पिता निहारत । भई खेल के बीच महौ रत ।
तवन पुरख कह पुरख उचरि कै । भरता करा सुयंबर
करि कै ॥ ८ ॥ बैठी बहुरि शोक मन धरि कै । सुनत मात
पित बचन उचरि कै । कह इह करी लखहु हमरी गति ।
मुहि इन दीन सहचरी करि पति ॥ ९ ॥ अब मुहि भई इहै
सहचरि पति । खेलत दई लरिकवन सुभ मति । अब जौ है
मोरै सत माँही । तौ इह नारि पुरख हवै जाहीं ॥ १० ॥
तिय ते इहै पुरख हवै जाही । जौ कछु सत मेरे सहि आही ।
यह अब जूनि पुरख की पावै । भदन भोग मुरि संग
कमावै ॥ ११ ॥ चक्रित भयो राजा इन बचनन । रानी

किया ॥ ४ ॥ उसने भी उसे विभिन्न प्रकार से उलझाया और घर वापस
जाना ही भुलवा दिया ॥ ५ ॥ वह सखी के वेश में था और वही करता
था जो वह स्त्री कहती थी । उसके साथ आसनों के माध्यम से रोज
रमण करता था और विभिन्न प्रकार से उसे सुख देता था ॥ ६ ॥
पिता उसे देखकर समझता नहीं था और उसे पुत्री की सहेली ही मानता
था और वह भी उसे सेविका ही कहती थी ॥ ७ ॥ एक दिन पुत्री पिता
के देखते-देखते रमण-रत हो गई और उस पुरुष को पुरुष कहकर उसने
उसे स्वयंवर में पति बना लिया ॥ ८ ॥ वह मन में शोक धारण कर बैठ
गई और माता-पिता को सुनाकर कहने लगी । देखो मेरी क्या गति हो
गयी है । मैंने तो इस सहेली को ही अपना पति बना लिया है ॥ ९ ॥
बचपन से साथ खेलती चली आनेवाली यह सहेली ही अब मेरा पति हो
गई है । यदि मुझमें सतीत्व होगा तो यह स्त्री ही पुरुष बन
जायगी ॥ १० ॥ यही नारी से नर हो जायगी यदि मुझमें कुछ शक्ति
होगी । यह अभी पुरुष-योनि प्राप्त करेगी और मेरे साथ रमण
करेगी ॥ ११ ॥ राजा यह वचन सुनकर चकित हो उठा और उसने रानी-

सहित बिचार कियो मन । दुहिता कहाँ कहत बैनन कह ।
 अचरज सो आवत है जिय मह ॥ १२ ॥ (सू० प्र० १ ७६) जब
 तिह बस्त्र छोरि बिप लहा । निकस्यो वहै जु दुहिता कहा ।
 अधिक सती ताकहि करि जाना । भला बुरा नहि मूढ़
 पछाना ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ चौबीस चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३२४ ॥ ६१०८ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ पचीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ स्त्री सुलतानसेन इक राजा । जा सम
 दुतिय न बिधना साजा । स्त्री सुलतानदेइ तिह नारी ।
 रूपवान गुनवान उज्यारी ॥ १ ॥ ताके भवन भई इक
 बाला । जानुक सिथर अगनि की ज्वाला । स्त्री सुलतान
 कुअरि उजियारी । कनक अवटि साँचे जन ढारी ॥ २ ॥
 जोवनंग ताके जब भयो । बालापन तब ही सभ गयो ।
 अंग अंग दयो अनंग दसामा । जाहिर भई जंगत महि
 बामा ॥ ३ ॥ सुनि सुनि प्रभा कुअर तह आवै । द्वारे भीर

समेत विचार किया कि पुत्री क्या आश्चर्यकारक बातें कह रही है ॥ १२ ॥
 जब उसके कपड़े खोलकर उसने देखे तो जो पुत्री ने कहा वही सच
 निकला । उसे अत्यधिक सती माना और मूर्खों ने भला-बुरा कुछ नहीं
 पहचाना ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद के तीन सौ चौबीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३२४ ॥ ६१०८ ॥

तीन सौ पचीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सुलतानसेन एक राजा था जिसके समान विधाता ने
 अन्य किसी को नहीं बनाया था । उसकी स्त्री सुलतानदेवी रूपवान
 और गुणवान थी ॥ १ ॥ उनके घर एक पुत्री थी जो मानों अग्नि की
 ज्वाला थी । उनका नाम सुलतानकुंवरी था जो मानों सोने के साँचे में
 ढालकर बनाई गई थी ॥ २ ॥ जब यौवन उसके अंगों पर आया और
 उसका बचपन बीता तो काम ने अंग-अंग पर अधिकार कर लिया और
 वह स्त्री-रूप में सबके समक्ष प्रकट हो उठी ॥ ३ ॥ उसकी प्रभा के

बार नहि पावै । एक तरुन तरुनी कौ भायो । जानुक मदन
 रूप धरि आयो ॥ ४ ॥ सोइ कुअरि तरुनी कौ भायो ।
 पठै सहचरी बोलि पठायो । क्रीड़ा करी बहुत बिधि वा सो ।
 कीनो प्रात सुयंबर ता सो ॥ ५ ॥ जब ही ब्याह तवन सौ
 कीयो । बहुतिक बरिस न जाने दीयो । क्रीड़ा करै भाँति
 भाँतिन तन । हरख बढाइ बढाइ अधिक मन ॥ ६ ॥ भोग
 बहुत दिन ता संग कयो । ताको बल सभ ही हरि लयो ।
 जबै त्रिधात कुअर वह भयो । तब ही डारि ह्रिदै ते
 दयो ॥ ७ ॥ औरन साथ करै तब प्रीता । निसु दिन
 करै कास की रीता । पतिहि तोरि खोजा करि डारा ।
 आपु अवर सो केल सचारा ॥ ८ ॥ बिरहराइ ताको थो
 यारा । जासो बढ्यो कुअर के प्यारा । ता पर रही होइ सो
 लटकन । तिह तिह मरत प्यास अरु भूखन ॥ ९ ॥ इक दिन
 भाँग मित्र तिन लई । पोस्त सहित अफीम चढ़ई । बहु रति
 करी न बीरज गिराई । आठ पहिर लागि कुअरि बजाई ॥ १० ॥
 सभ निसि नारि भोग जब पायो । बहु आसन करि हरख

बारे में सुनकर कुँवर वहाँ आते थे और उसके दरवाजे पर रास्ता मिलना
 कठिन हो गया था । उस तरुणी को एक युवक भा गया । वह मानों
 कामदेव का रूप धारण करके आया था ॥ ४ ॥ वह तरुण जो
 युवती को अच्छा लगा उसे सखी भेजकर उसने बुलवा लिया । उससे
 विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएँ कीं और स्वयंवर में उसका वरण कर
 लिया ॥ ५ ॥ जब उससे विवाह कर लिया तो बहुत वर्षों तक उसे
 जाने नहीं दिया । वह मन में अत्यंत प्रसन्न हो उससे विभिन्न प्रकार की
 क्रीड़ाएँ किया करती थी ॥ ६ ॥ उससे बहुत दिनों तक भोग करके
 उसका सारा बल समाप्त कर दिया । जब वह कुँवर वीर्य-विहीन हो
 गया तो उसे हृदय से भुला दिया ॥ ७ ॥ अब वह अन्यो के साथ
 प्रीति करने लगी और रात-दिन रतिक्रीड़ा करने लगी । पति से हित उसने
 तोड़ दिया और दूसरे के साथ केलिक्रीड़ा करने लगी ॥ ८ ॥ कुँवर
 का प्यार बिरहराय के साथ अत्यधिक था । वह उसी में उलझकर रह
 गयी थी और उसी के हित में भूखी-प्यासी रहती थी ॥ ९ ॥ एक दिन
 उसके मित्र ने पोस्त-अफीमयुक्त भाँग का सेवन किया और बिना स्थलित हुए
 आठ प्रहर तक वह कुँवर के साथ रतिक्रीड़ा करता रहा ॥ १० ॥ जब सारी
 रात उसने नारी को भोगा और विभिन्न आसनों के माध्यम से सुख बढ़ाया

बढायो । ता पर तरुनि चित ते अटकी । भूलि गई सभ हो
 सुधि घट की ॥ ११ ॥ द्वै घटिका जो भोग करत नर । ता
 पर रीझत नारि बहुत करि । चारि पहर जो केल कमावै ।
 सो किन लिय कै चित्त चुरावै ॥ १२ ॥ (सू० प्र० १२८०) रैन
 सकल तिन तरुनि बजाई । भाँति भाँति के साथ हँडाई ।
 आसन करे तरुनि बहु हारा । चुंबनादि लख घात
 अपारा ॥ १३ ॥ भाँति भाँति के चतुरासन करि । भज्यो
 ताँहि तर दाबि भुजन भरि । चुंबन आसन करत बिचछन ।
 कोक कला कोबिद सभ लच्छन ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ पोसत
 शराब अफीम बहु घोटि चढ़ावत भंग । चारि पहर भामहि
 भजा तऊ न मुचा अनंग ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ भोग करत
 सभ रैन बितावत । दलमलि सेज मलिन हवै जावत ।
 होत दिवाकर की अनुराई । छैल सेज मिलि बहुरि
 बिछाई ॥ १६ ॥ पौढि प्रजंक अंक भरि सोऊ । भाँग अफीम
 पियत मिलि दोऊ । बहुरि काम की केल मचावैं । कोकसार
 सत प्रगट दिखावैं ॥ १७ ॥ कैफन साथ रसमसे हवै करि ।
 प्रोढि प्रजंक रहत दोऊ स्वै करि । बहुरि जगै रस रीति

तो वह तरुणी चित्त से उसी में अटक गई और घर-बाहर की सुधि भूल
 गई ॥ ११ ॥ जो दो घड़ी तक स्त्री के साथ रमण करता है, उस पर
 स्त्रियाँ आसक्त रहती हैं । जो चार प्रहर तक केलिक्रीड़ा करता है, वह
 भला क्यों नहीं स्त्री का चित्त चुराएगा ॥ १२ ॥ उसने सारी रात
 विभिन्न प्रकार से स्त्री का उपभोग किया । बहुविध आसनादि उसने किए
 और चुंबन, नख-आघात आदि किए ॥ १३ ॥ भाँति-भाँति के चतुरता-
 पूर्ण आसन कर उसने भुजाओं से दबाकर उससे रमण किया । वे कोक के
 लक्षणों के अनुसार विलक्षण प्रकार से चुंबन-आसन करते रहे ॥ १४ ॥
 ॥ दोहरा ॥ पोस्त, शराब, अफीम और भंग पीकर चार प्रहर तक उस स्त्री
 से रमण किया, परन्तु फिर भी कामाग्नि शान्त नहीं हुई ॥ १५ ॥
 ॥ चौपाई ॥ भोग करते बहुत रात बीत जाती और सारी शय्या का मर्दन
 हो जाता । सुबह होते ही वह छैला के साथ मिलकर फिर शय्या बिछा
 लेती थी ॥ १६ ॥ पलंग पर एक-दूसरे से आलिंगनबद्ध होते सोते थे
 और भाँग अफीम दोनों पीते थे । फिर काम-क्रीड़ा करते और कोक-
 सार पर चर्चा करते थे ॥ १७ ॥ नशों में खचित होकर दोनों पलंगों पर
 सोये रहते थे । जगने पर फिर रासक्रीड़ा करते थे और कवित्तों का

मचावें । कबित उचारहि धुरपद गावें ॥ १८ ॥ तब लगि
 बिरहनटा ताको पति । निकस्यो आइ तहाँ मूरख मति । तब
 त्रिय चतुर चरित बिचरिकै । हन्यो ताहि फाँसी गर
 डरिकै ॥ १९ ॥ एक कोठरी मिल छपायो । पतिहि मारि
 सुर ऊच उघायो । राजा प्रजा शबद सुनि धाए । दुहिता के
 मंदरि चलि आए ॥ २० ॥ अतक पर्यो ताको भरतारा ।
 राव रंक सभहूँ निहारा । पूछत वयो तिसी कह राजन ।
 कहा भई याकी गति कामनि ॥ २१ ॥ सुनहु पिता मैं कछू न
 जानो । रोग याहि जो तुमै बखावो । अकसमात याकह कछु
 भयो । जीवत हुतो अतक हवै गयो ॥ २२ ॥ अरु जौ अब
 मो मैं कछु सत है । अरु जौ सत्य बेद कौ सत है । अब मैं
 रुद्र तपस्या करिहौ । याहि जियाऊँ कै जरि मरिहौ ॥ २३ ॥
 तुमहूँ बैठ याहि अंगना अब । पूजा करहु सदा शिव की सब ।
 मैं याको इह घर लै जैहौ । पूजि सदा शिव बहुरि
 जिवैहौ ॥ २४ ॥ मात पिता अंगना बैठाए । नैबी महता सगल
 बुलाए । लै संग गई अतक कह तिह घर । राख्यो थो जहाँ
 जार छपा करि ॥ २५ ॥ तिह घर जाइ पाट द्विड़ दै करि ।

उच्चारण करते हुए ध्रुपद गाते थे ॥ १८ ॥ तब तक मूर्ख विरहनट
 नामक उसका पति वहाँ आ निकला । तब चतुर स्त्री ने प्रपंच कर उसे
 फाँसी लगाकर मार डाला ॥ १९ ॥ एक कोठरी में मित्त को छिपा दिया
 और पति को मारकर ऊँचे स्वर में चिल्लाई । राजा-प्रजा सभी चीत्कार
 सुनकर उस पुत्री के निवास की ओर आ गए ॥ २० ॥ राजा, रंक सब ने
 उसके मृत पड़े हुए पति को देखा । राजा ने उसी से पूछा, हे स्त्री, इसकी
 यह गति कैसे हो गई ? ॥ २१ ॥ हे राजन् ! सुनो, इसे कुछ रोग था जिसके
 बारे में मैं कुछ नहीं जानती जो तुम्हें बताऊँ । इसे अचानक ही कुछ हुआ
 और यह मर गया ॥ २२ ॥ अब यदि मेरा सतीत्व कुछ है और वेद का मत
 भी यदि सत्य है तो मैं रुद्र की पूजा-तप करूँगी और या तो इसे जीवित
 कर लूँगी अथवा स्वयं भी जलकर मर जाऊँगी ॥ २३ ॥ तुम भी अब इसी
 आँगन में बैठो और सभी शिव की पूजा करो । मैं इसे घर के अन्दर ले
 जाती हूँ और शिव का पूजन कर इसे जीवित कर लूँगी ॥ २४ ॥ उसने
 माता-पिता को आँगन में बैठाया और सभी सेवकों को बुला लिया ।
 वह मृतक को उस स्थान पर ले गई जहाँ उसने यार को छिपा रखा
 था ॥ २५ ॥ उस कक्ष में पहुँचकर उसने दरवाजे को दृढ़तापूर्वक बन्द

रमी जार के साथ बिहसि करि । त्रिप जुत बठ लोग द्वारा
परि । भेद अभेद न सकत बिचरि करि ॥ २६ ॥ (सू० प्र० १२८१)
ते सभही जिय मै अस जानै । सुता शिवत पूजत अनुमानै ।
याकी आजु सत्तता लहिहैं । भली बुरी बतिया तब
कहिहैं ॥ २७ ॥ जो यह कुअरि रुद्र सों रत है । जौ यह तिह
चरनन मै सत है । तौ पति जीवत बार न लगिहै । शिव
शिव भाखि अितक पुनि जगिहै ॥ २८ ॥ इत ते द्वार बिचार
बिचारत । उस त्रिय संग भी जार सहा रत । ज्यों ज्यों
लपटि चोट चटकावै । ते जाने वह गाल्ह बजावै ॥ २९ ॥
तहाँ खोदि भू ताको गाडा । बाहर हाड गोड नहि छाडा ।
अपने साथ जार कह धरिकै । लै आई इह भाँति उचरि कै ॥ ३० ॥
जब मैं ध्यान रुद्र को धरियो । तब शिव अस भुर साथ
उचरियो । बरंब्रूह पुत्री मन भावत । जो इह समैं हिंदै
महि आवत ॥ ३१ ॥ तब मैं कह्यो जियाइ देहु पति । जो
तुमरे चरनन महि भुर सति । तब इह भाँति बखान्यो शिव
बच । सो तुम समझि लेहु भूपति सच ॥ ३२ ॥ ॥ दोहरा ॥ ताँते

कर लिया और प्रसन्नतापूर्वक यार के साथ रमण करने लगी । राजा
अन्य लोगों-समेत दरवाजे पर बैठा था और भेद-अभेद को नहीं जान पा रहा
था ॥ २६ ॥ वे सभी मन में पुत्री द्वारा शिव की पूजा करने का अनुमान
लगा रहे थे । वे सोच रहे थे कि आज इसका सतीत्व देखा जायगा
और तब भले-बुरे का निर्णय किया जायगा ॥ २७ ॥ यदि यह रुद्र की
पूजा में अनुरक्त है और उसी के चरणों में लीन है तो पति को जीवित होने
में देर नहीं लगेगी और मृतक शिव-शिव कहकर जीवित हो उठेगा ॥ २८ ॥
इधर दरवाजे पर ये सब इस प्रकार के विचार बना रहे थे उधर
स्त्री यार के साथ क्रीडारत थी । जैसे-जैसे वे लिपट-लिपटकर आघात कर
रहे थे, ये समझ रहे थे कि बकरे जैसी आवाज़ निकाल (गाल बजा) कर वह
शिव को प्रसन्न कर रही है ॥ २९ ॥ वहाँ धरती खोदकर अपने पति को
गाड़ दिया और बाहर कुछ नहीं छोड़ा । अपने यार को यह कहती हुई बाहर
ले आई ॥ ३० ॥ जब मैंने शिव का ध्यान किया तो शिव ने मुझे इस प्रकार
कहा । हे पुत्री, इस समय जो मन में आए माँग लो ॥ ३१ ॥ तब
मैंने कहा कि यदि तुम्हारे चरणों में मेरा प्यार है तो मेरे पति को
जीवित कर दो । तब हे राजन् ! सच मानना, शिव ने यह कहा ॥ ३२ ॥

अति सुंदर करो वा ते बैस किशोर । नाथ जियो स्त्री संभु
की कृपा द्रिशटि की कोर ॥ ३३ ॥ ॥ चौपई ॥ सभहिन
बचन सत्त करि जाना । शिव को सत्त बचन अनमाना ।
तब तैं तजि सुंदर जिय लासा । नितप्रति तासौ करत
बिलासा ॥ ३४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ पचीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३२५ ॥ ६१६१ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ छबीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ गहरवार राजा इक अति बल । कबै न
चलया पीर हलाचल । गूढ़मती नारी ताके घर । कही न
परत प्रभा ताकी बर ॥ १ ॥ तह इक हुतो शाह बडभागी ।
रूपवान गुनवाननुरागी । सुकचमती दुहिता ताके घर ।
प्रगट भई जनु कला किरणिधर ॥ २ ॥ एक तहाँ बैपारी
आयो । अमित दरब नहि जात गनायो । जबलि जाइफरं
उसटै भरे । लौंग लायची कवन उचरे ॥ ३ ॥ उतरत धाम
तवन के भयो । मिलबो काज शाह संग गयो । दुहित घात

॥ दोहा ॥ मैं इसे पहले से भी सुन्दर और जवान बना देता हूँ । इस प्रकार
शिव की कृपादृष्टि से मेरा पति जीवित हो उठा है ॥ ३३ ॥ ॥ चौपाई ॥ सबने
इसे सत्य वचन मान लिया और शिव-कथन की बात को भी सच्चा जान
लिया । तब से मन का भय दूर कर वह नित्य उससे भोग-विलास करने
लगी ॥ ३४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ पचीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३२५ ॥ ६१६१ ॥ अफजू ॥

तीन सौ छबीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ गहरवार एक अत्यन्त बलशाली राजा था जिसके यहाँ
कभी कोई कष्ट और हलचल नहीं हुई थी । उसकी स्त्री गूढ़मती थी जिसकी
शोभा अवर्णनीय है ॥ १ ॥ वहाँ एक भाग्यशाली धनवान रहता था जो
रूपवान और गुणानुरागी था । उसकी पुत्री सुकचमती थी जो मानों चन्द्र
की कलाओं के समान सुन्दर थी ॥ २ ॥ वहाँ अपरिमित द्रव्य वाला एक
व्यापारी आया । जावित्री, जायफल, लौंग, इलायची के उसने ऊँट भरे हुए
थे । इस सबका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३ ॥ वह उस धनवान से

तवन की पाई । सकल दरबु तिह लियो चुराई ॥ ४ ॥ माता
ग्रहि की सकल निकारि । दर्ई बहुरि तह आगि प्रजार ।
रोवत सुता पिता पहि आई । जर्यो धाम कहि तांहि
सुनाई ॥ ५ ॥ सुन त्रिय बचन शाह द्वै धाए । घर को
माल (सू०पं०१२८२) निकासन आए । आगे आइ निहारैं कहाँ ।
निरखा ढेर भसम का तहाँ ॥ ६ ॥ बहुरि सुता इमि बचन
उचारे । यहै पिता दुख ह्रिदै हमारे । आपनि गए का शोक
न आवा । याको लगत हमैं पछतावा ॥ ७ ॥ पुनि सुत कौ
अस शाह उचारे । सोई भयो जु लिख्यो हमारे । तुम याको
कछु शोक करहु जिन । दैहो दरबु जर्यो जितनो इन ॥ ८ ॥
भेव अभेव ना कछु जड़ पायो । मूँड मुँडाइ बहुरि घर आयो ।
करम रेख अपनी पहिचानी । त्रिय चरित्र की रीति न
जानी ॥ ९ ॥ शाहु सुता इह छल धन हरा । भेद न ताके
पितैं बिचरा । स्याना हुतो भेद नहि पायो । बिनु लागे जल
मूँड मुँडायो ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्यानने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ छवीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३२६ ॥ ६१७१ ॥ अफजूं ॥

मिलने के लिए उसी के घर ठहरा । पुत्री ने अवसर पाकर उसका समस्त
धन चोरी कर लिया ॥ ४ ॥ अपने घर का सारा द्रव्य बाहर निकालकर
उसने फिर आग लगा दी । अब पुत्री रोती हुई पिता के पास आयी और
उससे कहा कि घर जल गया है ॥ ५ ॥ उस स्त्री की बात सुनकर दोनों
धनिक दौड़े हुए आये और घर का माल निकालने का उपक्रम करने लगे ।
आगे आकर क्या देखते हैं कि वहाँ राख का ढेर पड़ा हुआ है ॥ ६ ॥ फिर
पुत्री ने कहा कि हे पिताजी ! मुझे यही दुख है कि अपना माल जाने की कोई
बात नहीं, इनका चला गया, यही पछतावा है ॥ ७ ॥ धनी ने पुत्री से कहा
कि वही हुआ है जो मेरे भाग्य में लिखा था । तुम इसका शोक मत करो ।
जिसने जलाया है वही वापस द्रव्य भी देगा ॥ ८ ॥ मूर्ख ने भेद-अभेद कुछ
नहीं जाना और अपने आपको ठगवाकर वापस घर आ गया । उसने इसे
अपना भाग्य ही समझा और स्त्री के प्रपंच को नहीं पहचाना ॥ ९ ॥ धनी
की पुत्री ने इस छल से धन चुरा लिया और इस भेद को उसका पिता भी न
जान पाया । स्याना होने पर भी उसने भेद नहीं जाना और बिना पानी
लगवाए ही सिर मुँडवा दिया अर्थात् ठगा गया ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ छवीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३२६ ॥ ६१७१ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ सत्ताईस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अचलावती नगर इक सोहै । अचलसेन राजा तह कोहै । अचलदेइ ताके घर रानी । सुंदरि भवन चतुदस जानी ॥ १ ॥ अचलमती दूसर तिह दारा । ताते सुंदरि हुती अपारा । तासौ त्रिप को नेह अपारा । जानत ऊच नीच तिह प्यारा ॥ २ ॥ दुतिय नाहि अस चरित बिचार्यो । एक नारि के साथ सिखार्यो । ताको भर्यो दरब सौ धामा । जानत अवर न दूजी बामा ॥ ३ ॥ जब सभ अरध राति स्वै जाँहि । जागत रहै एक जन नाहि । दीप जर्यो धौलर जब लहियहु । तब तुम अस राजा सौ कहियहु ॥ ४ ॥ माया गडी मोहि त्रिप जानो । एक बात मैं तुमैं बखानो । अछला दे त्रिय कौ बलि दैकै । ग्रहि ले जाँहि काढि मुहि लैकै ॥ ५ ॥ अछला दे जबही मुनि पायो । उलटि भेद तिह त्रियहि सिखायो । एक बात मांगे मुहि देहु । त्रिप पहि नाम तिसी का लेहु ॥ ६ ॥ प्रथमै अधिक दरबु तिह दिया । दुगनो दरब देन तिह किया । तिन सहेट उत

तीन सौ सत्ताईसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ अचलावती नगर में अचलसेन नामक एक राजा था । उसकी रानी अचलदेवी थी जो चौदह भुवनों में सुन्दरी समझी जाती थी ॥ १ ॥ उसकी एक अन्य स्त्री अचलमती थी जो उससे भी सुन्दर थी । राजा का उससे अपार स्नेह था और उसके प्रेम के माध्यम से ही वह ऊँच-नीच की पहचान किया करता था ॥ २ ॥ दूसरी स्त्री ने एक प्रपंच करने का विचार किया । उसने एक स्त्री को सिखाया । उसका घर धन से भर दिया और दूसरी स्त्री को पता भी नहीं लगा ॥ ३ ॥ जब सब आधी रात को सो जाँएँ और कोई भी जगता हुआ न हो; जब तुम महल पर जलता हुआ दीपक देखो तब राजा से इस प्रकार कहना ॥ ४ ॥ हे राजन् ! मुझे तुम धन की देवी समझो । मैं तुम्हें और बताती हूँ । तुम अचलादेवी की बलि देकर मुझे साथ लेकर धन निकालकर ले जाओ ॥ ५ ॥ अचलादेवी ने जब यह सुना तो उसने उस स्त्री को उलटी ही बात समझा दी । उससे कहा कि तुम मुझ वचन दो कि तुम (मेरे बजाय) उसका नाम ही लोगी ॥ ६ ॥ पहली ने भी उसे काफ़ी द्रव्य दिया था परन्तु उसने उसे दुगना धन दे दिया । उसने उधर नियत स्थान पर

दीप जगायो । इति इस्त्री इमि भाखि सुनायो ॥ ७ ॥ हे त्रिप
 मुहि माया तुम जानी । बिकट केतकी गड़ी पछानो । अपनी
 इस्त्री कह बलि दै कै । याते भखहु काढि धन लै कै ॥ ८ ॥
 रानी साथ जहाँ त्रिप सोयो । अरधिक (मू०पं० १२८३) रात्रि
 बचन तह होयो । मुहि भाया कौ घर ही राखहु । इस्त्री दै
 अपनी बलि भाखहु ॥ ९ ॥ जिन इस्त्री इह चरित बनायो ।
 ताही को त्रिप नाम सुनायो । राजा लोभ दरब के मारे ।
 तिसी नारि कह बलि दै डारे ॥ १० ॥ जिनहु नारि कौ मतो
 सिखायो । पलटि कास ताही के आयो । उन त्रिय दरब
 ताँहि बहु द्याइ । नारि तिसी कौ हन्यौ बनाइ ॥ ११ ॥
 बुरी बात जो कोई बनावै । उलटि काम ताही के आवै ।
 जैसा कियो तैस फल पायो । ताँहि हनत थी आपु
 हनायो ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ सत्ताईस चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३२७ ॥ ६१८३ ॥ अफजूं ॥

दीपक जलाया और इधर स्त्री ने इस प्रकार कहा ॥७॥ हे राजन ! तुम मुझे
 लक्ष्मी मानों जो कि एक विकट स्थान पर गड़ी पड़ी है । तुम अपनी स्त्री
 की बलि देकर इस धन को निकालकर उसका उपभोग करो ॥ ८ ॥ जब
 राजा रानी के साथ सो गया तो आधी रात के बाद फिर यह आवाज़ आयी ।
 मुझे माया (लक्ष्मी) को घर में ही रखो और अपनी स्त्री का बलिदान देकर
 मुझे प्राप्त करो ॥ ९ ॥ जिस स्त्री ने यह प्रपंच किया था उसने राजा को
 उसी का नाम कह सुनाया । राजा ने धन के लालच में उसी स्त्री की बलि
 दे दी ॥ १० ॥ जिस स्त्री ने प्रपंच उस स्त्री को सिखाया था वह उसी के
 काम आ गया । उस स्त्री ने उसे अत्यधिक धन दिया और उसने उसी को
 मार डाला ॥ ११ ॥ जो कोई बुरी बात बनाता है वह उलटकर उसी पर
 लागू हो जाती है । उसने जैसा किया था वैसा ही फल पाया । वह दूसरे
 को मार रही थी पर स्वयं ही मारी गई ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सत्ताईसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३२७ ॥ ६१८३ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ अठ्ठाईस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ थंभकरन इक थंभ्र देख त्रिप । सिख्य
साधु को दुशटन को रिपु । ताके स्वान एक थो आछा ।
सुंदर घनो सिंघ सो काछा ॥ १ ॥ इक दिन धाम त्रिपति के
आयो । पाहन हनि तिह ताहि हटायो । त्रिय की हुती स्वान
सौ प्रीता । पाहन लगे भयो दुख चीता ॥ २ ॥ पाहन लगे
स्वान मरि गयो । रानी दोश त्रिपति कह दयो । मर्यो
स्वान भयो कहाँ उचारा । ऐसे हमरे परं हजार ॥ ३ ॥
अब तैं याकौ पीर पछाना । ताको भाँति पूजिहै नाना ।
कहियो सही तब याहि पुजाऊँ । भले भले ते नीर भराऊँ ॥ ४ ॥
कुतब शाह राखा तिह नामा । तहीं खोदि भुअ गाड़यो बामा ।
ताँ की गोर बणाई ऐसी । किसी पीर की होइ न जैसी ॥ ५ ॥
इक दिन आपु तहाँ त्रिय गई । सिरनी कछू चढ़ावत भई ।
मंनति मोरि कही बर आई । सुपना दियो पीर सुखदाई ॥ ६ ॥
मोहि सोवतैं पीर जगायो । आपु आपनी कबुर बतायो । ताँते
में इह ठौर पछानी । जब हमरी मनसा बर आनी ॥ ७ ॥

तीन सौ अठ्ठाईसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ थंभ्र देश का राजा थंभकरन साधुओं का सेवक और
दुष्टों का शत्रु था । उसके पास एक कुत्ता था जो शेर से भी अच्छा था ॥ १ ॥
वह एक दिन राजा के घर पर आया जिसे उसने पत्थर मारकर भगा दिया ।
उसकी स्त्री की कुत्ते से अत्यन्त प्रीति थी और उसे पत्थर लगने से अत्यन्त
दुख हुआ ॥ २ ॥ पत्थर लगने से कुत्ता मर गया और रानी ने राजा पर
यह आरोप लगाया । कुत्ते के मर जाने पर राजा ने कहा कि ऐसे (कुत्ते)
हमारे पास हजारों पड़े हैं ॥ ३ ॥ तुमने तो इसे ही पीर मान लिया है और
लगता है तुम भली प्रकार इसी की पूजा करोगी । उसने कहा कि ठीक है मैं
इसी की पूजा करवाऊँगी और अच्छे-अच्छे लोगों से यहाँ पानी भरवाऊँगी ॥ ४ ॥
उस स्त्री ने उसका नाम कुतुबशाह रख दिया और धरती खोदकर उसे गाड़
दिया । उसकी कब्र ऐसी बनाई जैसी किसी पीर की भी नहीं होगी ॥ ५ ॥
वह स्त्री एक दिन स्वयं वहाँ गई और कुछ प्रसाद आदि वहाँ चढ़ाया । उसने
कहा कि सपने में पीर ने मेरी मन्नत पूरी कर दी है ॥ ६ ॥ पीर ने मुझे
सोते से जगाया है और अपनी कब्र स्वयं दिखाई है । मेरी मुराद पूरी हो

इह बिधि जब पुर सै सुनि पायो । ज्यारति सकल लोग मिलि
आयो । भाँति भाँति सीरनी चढ़ावैं । चूँबि कबुर कूकर की
जावैं ॥ ८ ॥ काजी शेख सैयद तह आवैं । पढ़ि फात्या
सीरनी बटावैं । धूरि समस झारुअन उडाही । चूँमि कबुर
कूकर की जाही ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल अपनै स्वान
को चरित दिखायो बाम । अब लगि कह ज्यारति करै
शाहु (सू०ग्रं० १२८४) कुतब दी नाम ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति सी चरित पख्याने त्रिया चरिते मंत्री भूप संवादे तीन सौ अठारिस चरित
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३२८ ॥ ६१९३ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ उन्तीस चरित कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बिजियावती नगर इक सोहै । बिभ्रमसेन
त्रिपति तह कोहै । व्याघ्रमती ताके घर दारा । चंद्र लयो
ताते उजियारा ॥ १ ॥ तिह ठाँ हुती एक पनिहारी । त्रिप
के बार भरत थी द्वारी । तिह कंचन के भूखन लहिकै ।
डारि दए घट मौ कर गहिकै ॥ २ ॥ ऊपर जल ताके तर

गई और इसी से मैंने यह जगह पहचान ली है ॥ ७ ॥ जब नगर में लोगों
ने यह सुना तो सभी लोग वहाँ तीर्थलाभ के लिए आ पहुँचे । भाँति-भाँति
के प्रसाद चढ़ाने लगे और कुत्ते की कूब्र चूम-चूमकर जाने लगे ॥ ८ ॥ वहाँ
पर काजी, शेख, सैयद आते थे और फ़ातिहः पढ़कर प्रसाद बाँटाते थे । वहाँ
पर झाड़ुओं से धूल उड़ाते और कुत्ते की कूब्र को चूम-चूमकर जाते थे ॥ ९ ॥
॥ दोहरा ॥ इस प्रकार उस स्त्री ने अपने कुत्ते के लिए प्रपंच दिखाया और
लोग कुतुबशाह के नाम से अभी तक वहाँ तीर्थयात्रा करते हैं ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ अट्ठाईसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३२८ ॥ ६१९३ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ उन्तीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ विजयावती नामक सुन्दर नगर में विभ्रमसेन नामक एक
राजा था । उसकी स्त्री व्याघ्रमती थी जिससे मानों चन्द्रमा ने भी उजाला
लिया हो ॥ १ ॥ वहाँ एक पनिहारिन थी जो राजा के दरवाजे पर पानी
भरती थी । उसने एक दिन सोने के आभूषण देखकर घड़े में डाल दिये ॥ २ ॥
ऊपर पानी और नीचे गहने थे, परन्तु कोई भी व्यक्ति इस बात को समझ

भूखन । किनूँ न नर समझ्यो तिहूँ दूखन । बहु पुरखन
ताको जल पीआ । किनहूँ जानि भेद नहि लीआ ॥ ३ ॥
रानीहूँ तिहूँ घटहि निहारा । त्रिशटि त्रिपति की तर सु
निकारा । काहूँ बात लखी नहि गई । भूखन जात नारि
हरि भई ॥ ४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ उनतीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३२६ ॥ ६१६७ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ तीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बिरहावती नगर इक दच्छन । बिरहसैन
तह त्रिपति बिचछन । बिरहा देइ सदन सहि बाला । जनु
करि सिखर अगनि की ज्वाला ॥ १ ॥ इशकादे तिहूँ सुता
भनिज्जै । चंद सूर जिहूँ सम छबि दिज्जै । अवर नारि तिहूँ
सम नहि कोई । त्रिय की उपमा कह त्रिय सोई ॥ २ ॥
सुंदरता ताके तन ऐसी । सची पारवती होइ न तैसी ।
मालम सकल जगत उजियारी । जच्छ गांध्रवी भीतर
प्यारी ॥ ३ ॥ कंचनसैन दैत तह भारो । बीरजमान दुतिमान

न सका । बहुत से व्यक्तियों ने उसका पानी पिया पर किसी को भी इस
रहस्य का पता न लगा ॥ ३ ॥ रानी ने भी उस घड़े को देखा और राजा
की दृष्टि से भी वह घड़ा निकल गया । किसी से भी बात देखी नहीं गई
और इस प्रकार वह स्त्री गहने चुशकर ले गई ॥ ४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ उनतीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३२६ ॥ ६१६७ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ तीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ दक्षिण के विरहावती नगर में विरहसेन एक विलक्षण
राजा था । उसके घर में विरहदेवी नामक स्त्री थी जो मानों अग्नि की ज्वाला
के समान थी ॥ १ ॥ उसकी पुत्री इशकदेवी के नाम से जानी जाती थी,
जिसकी उपमा चन्द्र-सूर्य से दी जा सकती है । उसके समान अन्य कोई
स्त्री नहीं थी और उस स्त्री के समान तो वही स्त्री थी ॥ २ ॥ उसका
सौंदर्य तो ऐसा था जैसा शची और पार्वती का भी नहीं था । वह सकल
जगत का प्रकाश थी और यक्ष, गंधर्वों आदि सबमें प्यारी थी ॥ ३ ॥ वहाँ

करारो । निहकंटक असुरान कर्यो जिन । समुहि भयो सो बली हन्यो तिन ॥ ४ ॥ तिह पुर अरधि राति वह आवै । एक पुरख नितप्रति भखि जावै । सभहिंन सोच बढ्यो जिय मै अति । बैठि विचार करत भे सुभ मति ॥ ५ ॥ इह राक्षस अति ही बलवाना । मानुख भखत रैन दिन नाना । तास करत काहू नहि जन कौ । निरभं फिरत होत करि मन कौ ॥ ६ ॥ बेस्वा हुती एक पुर तवनै । दानव खात मनुख भुअ जवनै । सो अबला राजा पह आई । निरख राव की प्रभा लुभाई ॥ ७ ॥ इह बिधि कह्यो बिपति (मू०पं० १२८५) तन बैना । जौ तुम मुहि राखहु निजु ऐना । तौ हौ नारि असुर कह आवौ । या पुर को सभ शोक मिटावौ ॥ ८ ॥ तब मै बरौ तोहि कौ धामा । जब तैं हनै असुर कह बामा । देस सभे अह लोग बसैं सुख । मिटै प्रजा के चित को सभ दुख ॥ ९ ॥ बली आठ सैं महिख मँगायो । भच्छ भोज पकवान पकायो । मदरा अधिक तहा लै धरा । सात बार जु चुआइनि करा ॥ १० ॥ भली भाँति सभ अंन बनाए । भाँति भाँति बिखु साथ मिलाए । गरधभान बहु दर्ई अफीमैं । बाँधे आनि

कंचनसेन नामक भारी दैत्य था जो अत्यंत वीर्यमान और द्युतिमान था । उसने असुरों को अभय बना दिया था । उसके सामने जो भी बली आया उसने मार डाला ॥ ४ ॥ वह उस नगर में आधी रात को आता था और रोज एक व्यक्ति को मारकर खा जाता था । सभी चिन्तित हो गये और बैठकर विचार करने लगे ॥ ५ ॥ यह राक्षस अत्यंत बलवान है जो रात-दिन मनुष्यों को खाता रहता है । यह किसी से नहीं डरता और निर्भय होकर घूमता रहता है ॥ ६ ॥ जिस नगर में दानव मनुष्यों को खाता था वहाँ एक वेश्या रहती थी । वह स्त्री राजा के पास आयी और उसकी सुन्दरता देखकर मुग्ध हो उठी ॥ ७ ॥ उसने राजा से कहा कि यदि तुम मुझे अपने घर में रख लो तो मैं राक्षस को मार दूंगी और इस नगर का दुःख दूर कर दूंगी ॥ ८ ॥ (राजा ने कहा—) तब मैं तुम्हारा वरण कर लूँगा, यदि हे स्त्री ! तुम उस असुर को मार डालो । देश के सभी लोग सुख से बसैं और प्रजा के चित्त का दुख दूर हो ॥ ९ ॥ उसने आठ सौ बलवान भैसे मँगाये और अनेक प्रकार के भक्ष्य, भोज, पकवान तैयार करवाये । अत्यधिक मदिरा ले ली जो सात बार आसवित की हुई थी ॥ १० ॥ उसने भलीभाँति सब भोजन विष मिलाकर बनाये ।

असुर की सीमें ॥ ११ ॥ आधी राति दैत तह आयो ।
गरधभान महि खान चवायो । भच्छ भोज बहुते तब खाए ।
भरि भरि प्याले मदहि चढ़ाए ॥ १२ ॥ मद के पिए बिसुध
हवै रहा । आनि अफीम गरौ तिह गहा । सोइ रहा सुधि
कछू न पाई । नारि पछान घात कह धाई ॥ १३ ॥ अठ
हजार मन सिक्का लयो । ता पर अवटि ढारि करि दयो ।
भसमीभूत दैत बहु कियो । बिरहवती पुर कौ सुख
दियो ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ इन छल अबला असुर हनि
त्रिपहि बर्यो सुख पाइ । सकल प्रजा सुख सौ बसी हिंदै
हरख उपजाइ ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ तीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३३० ॥ ६२१२ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ इकतीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ वलंदेज को एक त्रिपाला । वलंदेजदेई घर
बाला । ता पुर कुप्यो फिरंगराइ मन । सैन चढ़ा लै करि
गदहों को विभिन्न प्रकार की अफीमें पिलाई और उन्हें असुर की सीमा में
ला बाँधा ॥ ११ ॥ आधी रात को दैत्य वहाँ आया और उसने गदहों को
चबा डाला । उसने अनेकों को खा डाला और प्याले भर-भरकर शराब
पी डाली ॥ १२ ॥ वह मद्य पीकर बेसुध हो गया और अफीम चढ़ जाने के
कारण गिर पड़ा । वह बेसुध हो सो रहा और इसी अवसर को पहचानकर
वह स्त्री वहाँ आ गयी ॥ १३ ॥ उसने आठ हजार मन सीसा लिया और
उसे औटा कर उस पर डाल दिया । उसने उसे भस्मीभूत कर दिया और
बिरहवती नगरी को सुख दिया ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ इस छल से उस स्त्री
ने राक्षस को मारकर राजा का वरण किया और सारी प्रजा सुखपूर्वक
रहने लगी ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ तीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३३० ॥ ६२१२ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ इकतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ वलंदेज (फ़ारस के लोग हालैंड को वलंदेज कहते हैं ।
—महान कोश) देश का एक राजा था जिसकी रानी वलंदेज देवी थी ।

संग अनगन ॥ १ ॥ नामु फिरंगीराइ त्रिपति तिह ।
 अंगरेजन पर चढ़त करी जिह । अनगन लए चमूं चतुरंगा ।
 जनु करि उमडि चलयो जल गंगा ॥ २ ॥ बलंदेज देई के नाथहि ।
 प्राण तजे डर ही के साथहि । रानी भेद न काहू दयो । त्रास
 त्रसत राजा मरि गयो ॥ ३ ॥ अतक नाथ तिह समैं निहारा ।
 और संग बहु सैन बिचारा । इहै घात जिय माँहि बिचारी ।
 कास्ट पुत्रिका लच्छ सवारी ॥ ४ ॥ लच्छ ही हाथ बंदूक
 सवारी । दारू गोलिन भरी सुधारी । डिवठा चुनत भई
 तुपखाना । तीर बंदूक कमान अरु बाणा ॥ ५ ॥ जब अरि
 सैन निकट तिह आई । सभहिन गई पलीता लाई । बीस
 हजार तुपक इक बारा । छुटगो कछु न (सू० प्र० १२८६) रही
 सँभारा ॥ ६ ॥ जिमि मखोर की उडत सु साखी । तिमि
 हीं चली बंदूकें बाखी । जाके लगे अंग सौ बाणा । ततछिन
 तिन भट तजे पराना ॥ ७ ॥ तरफराहि गौरिन के मारे ।
 पछु सुत ओरन जनकु बिदारे । रथी सु नागपती अरु बाजा ।
 जमपुर गए सहित निजु राजा ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह

उस राजा पर फिरंगियों का सम्राट् कुपित हो उठा और अगणित सेना
 लेकर चढ़ उठा ॥ १ ॥ उस राजा का नाम फिरंगीराय था जिसने अंग्रेजों
 पर चढ़ाई की थी । उसने अपार चतुरंगिनी सेना साय ली । ऐसा लग
 रहा था मानों गंगा उमड़ रही हो ॥ २ ॥ बलंदेज देवी के पति ने तो
 भयभीत होकर ही प्राण त्याग दिये । रानी ने यह रहस्य किसी को नहीं
 बताया कि राजा डरकर मर गया है ॥ ३ ॥ उसने मृत पति को देखा
 और अपनी सेना के साथ विचार-विमर्श किया । उसने मन में कुछ विचार
 कर लकड़ी की एक लाख मूर्तियाँ बनवा लीं ॥ ४ ॥ गोलियों से भरी
 एक लाख बंदूकें उनके हाथ में पकड़ा दी । डेढ़ गुना तोपखाना, तीर,
 कमान और बाण ले लिये ॥ ५ ॥ जब शत्रु-सेना पास आ गई तो सबका
 पलीता जला दिया । बीस हजार बंदूकें एक ही बार में चल गईं और कुछ
 भी सँभाला नहीं जा सका ॥ ६ ॥ जैसे छत्ते से मक्खियाँ उड़ चली हों
 इसी पर बाक्ला बंदूकें भी चल पड़ीं । बाण जिस-जिस के अंग में लगे उस
 वीर ने तो वहीं तत्काल प्राण त्याग दिये ॥ ७ ॥ तड़फड़ाते गोरों को ऐसे
 मारा मानों गरुड़ ने साँपों को मार दिया हो । रथी, हाथियों के स्वामी
 और घोड़े अपने राजा समेत जमपुर चले गये ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस

चरित्र तन चंचला कूटो कटक हज़ार । अरि मारे राजा
सहित गए ग्रहिन कौ हारि ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ इकतीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३३१ ॥ ६२२१ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ बत्तीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ शहिर भेहरै एक चिपति बर । कामसेन
तिह नाम कहत नर । कामावती तवन की नारी । रूपवान
दुतिवान उज्यारी ॥ १ ॥ ताके बहुत रहै ग्रहि बाजिन । जयो
करत ताजी अरु ताजिन । तह भव एक बछेरा लयो । भूत
भविष्य न वैसे भयो ॥ २ ॥ तह इक होत शाह बडभागी ।
रूप कुअर नामा अनुरागी । प्रीतिकला तिह सुता भनिज्जै ।
को दूसर पटतर तिह दिज्जै ॥ ३ ॥ सो त्रिय एक चौधरी सुत
पर । अटक गई तरुनी अति रुचि करि । मिजमानी छल
ताहि बुलायो । भाँति भाँति भोजनहि भुजायो ॥ ४ ॥
कीना कैफ रसमसो जबही । तरुनी इह बिधि उचरी तब ही ।

चरित्र के द्वारा उस स्त्री ने हज़ारों की सेना को मार डाला और शत्रु राजा
समेत मारे गये और हार कर घरों को वापस गए ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ इकतीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३३१ ॥ ६२२१ ॥ अफजू ॥

तीन सौ बत्तीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ भेरा (झेलम नदी के किनारे एक नगर) का राजा
कामसेन था और उसकी स्त्री कामवती अत्यंत रूपवान, छविमान और मानों
प्रकाश के समान थी ॥ १ ॥ उसके घर में अनेकों घोड़े थे और अनेकों
घोड़े-घोड़ियाँ वहाँ जन्मते रहते थे । वहाँ एक अश्व-शावक ने जन्म लिया,
जिसके समान न तो कोई भूत में था और न भविष्य में होगा ॥ २ ॥
वहाँ एक भाग्यशाली धनी था जिस प्रेमी का नाम रूपकुँवर था । उसकी
पुत्री प्रीतिकला थी जिसकी उपमा किसी के साथ देना संभव नहीं है ॥ ३ ॥
वह स्त्री एक चौधरी के पुत्र पर आसक्त हो गई । उसे छल से उसने खाना
खाने के लिए बुलाया और भाँति-भाँति के भोजन उसे खिलाये ॥ ४ ॥ जब
परम्परा के अनुसार शराब पिलाई गई तो उस तरुणी ने कहा : अब तुम मेरे

अब तैं गवन आइ मेरो करि । काम तपत अब ही हमरो
हरि ॥ ५ ॥ तब इह बिधि तिन पुरख उचारी । यौ न भजौ
तुहि सुनहु पयारी । जो राजा के उपज्यो बाजी । सो दे
प्रथम आनि मुहि ताजी ॥ ६ ॥ तब तिन त्रिय बिचार अस
कियो । किह बिधि जाइ तुरंगम लियो । ऐसो करियै कवनु
पचारा । जाते परे हाथ सो प्यारा ॥ ७ ॥ अरध रात्रि
बीतत भी जबै । स्वान भेख धारा त्रिय तबै । कर सहि गहि
क्लिपान इक लई । बाजी हुतो जहाँ तह गई ॥ ८ ॥ सात
कोट तह कूदि पहुँची । दान क्लिपान मान की सूची । जिह
जागत पहरअहि निहारै । ताको मूँड काटि करि डारै ॥ ९ ॥
॥ अडिल्ल ॥ एक पहरअहि मारि दुतिय कह मारियो ।
त्रितिय मारि चतरथ को सोस उतारियो । पंचम खसटम मारि
सपतवौ हति कियो । हो (३०५०१२८७) अशटम पुरख सँघारि
छोरि बाजी लियो ॥ १० ॥ परी नगर मै रौरि जबै त्रिय है
हर्यो । पठै पखरिया कछि कछि कहै कहाँ पर्यो । बाट
घाट सभ रोकि गहो इह चोरि कौ । हो धरि लीजै इह होन
न दीजै भोर कौ ॥ ११ ॥ जित जित धावहि लोग हरियो है

साथ रमण करो और मेरी कामाग्नि को शान्त करो ॥ ५ ॥ तब उस पुरुष
ने कहा कि हे प्रिय ! मैं ऐसे तुम्हारे साथ केलिक्रीडा नहीं करूँगा । जो
(सुन्दर) घोड़ा राजा के यहाँ पैदा हुआ है तुम पहले वह मुझे लाकर
दो ॥ ६ ॥ तब स्त्री ने सोचा कि घोड़ा कैसे प्राप्त किया जाय ? कौन
सा उपाय किया जाय जिससे प्रिय मेरे हाथ लग जाय ॥ ७ ॥ जब आधी
रात बीत गई तो स्त्री ने कुत्ते का वेश धारण किया । हाथ में एक कृपाण
पकड़ ली और जहाँ घोड़ा था वहाँ जा पहुँची ॥ ८ ॥ वह दान, मान
और कृपाण चलाने में सिरमौर सात किले कूदकर वहाँ जा पहुँची ।
जिस पहरदार को वह जगते हुए देखती उसका सिर काट देती
थी ॥ ९ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ एक पहरदार को मार दूसरे को मारते हुए
तीसरे को समाप्त किया और चौथे का सिर उतार दिया । पाँचवें,
छठवें को भी मार सातवें को भी मार डाला और आठवें का संहार करके
घोड़े को ले लिया ॥ १० ॥ जब स्त्री ने घोड़ा चुरा लिया तो सारे नगर में
कोलाहल मच गया । राजा ने घुड़सवार दूढ़ने के लिए भेजे ताकि वे
सब घरों-रास्तों को देखकर चोर को सुबह होने से पहले पकड़ सकें ॥ ११ ॥
जिस ओर भी लोग दौड़ रहे थे, कह रहे थे कि किसने किसका हरण किया

कहै किस । कठै क्रिपानै दिखियत धावत दसौ दिसि ।
 अस कारज जिह किय न जान तिह दीजियै । हो ज्यों त्यों
 जीति तुरंग त्रिपति को लीजियै ॥ १२ ॥ बहुत पहुँचे निकट
 तरुनि के जाइकै । फिरि मारे तिन वहै तुरंग नचाइकै ।
 करि करि जाहि चलाकी बाही बेग तन । हो तिनकी हौस न
 राखी राखे एक बन ॥ १३ ॥ ॥ चौपई ॥ कूदकीआ जाके
 परवारा । इक तें ताँहि दोइ करि डारा । चुनि चुनि हने
 पखरिया मन तें । द्वै द्वै गे हवै इक इक तन तें ॥ १४ ॥ बहु
 बिधि बीर पखरिया मारे । इक इक तें करि द्वै द्वै डारे । घोरा
 सहित घाइ जो घए । द्वै ते चारि टूक ते भए ॥ १५ ॥
 ॥ दोहरा ॥ इह बिधि बीर बिदार बहु नदी तुरंग तराइ ।
 जहाँ मित्त को ग्रहि हुतो तही निकास्यो आइ ॥ १६ ॥
 ॥ चौपई ॥ जब तिह आनि तुरंगम दीयो । कामभोग तासै ब्रिढ़
 कीयो । जौ पाछे तिन फौज निहारी । इह बिधि सौ तिह
 त्रियहि उचारी ॥ १७ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ बुरो करम हम कर्यो
 तुरंग त्रिप को हर्यो । आपु आपुने पगन कुहारा कौ मर्यो ।
 अब ए तुरंग समेत पकरि लै जाइ हैं । हो फाँसी देंहुँ कि सूरी

है । सभी दशों दिशाओं में कृपानों निकाले दौड़े फिर रहे थे और कह रहे
 थे कि उसने ऐसा काम किया है उसे जाने मत दो । जैसे भी हो राजा का
 घोड़ा जीतकर लाया जाना चाहिए ॥ १२ ॥ बहुत से लोग उस तरुणी के
 पास जा पहुँचे जिन्हें उसने घोड़ा नचाकर मार डाला । वीर चतुरतापूर्वक
 उमड़कर उसके पास जाते थे परन्तु उसने भी उनकी कोई इच्छा न छोड़ी
 और एक ही घाव में सबको रख लिया ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ जो
 उसके घेरे में कूदा उसे उसने एक में दो कर दिया । उसने चुन-चुनकर
 अश्वारोहियों को मारा और एक से दो-दो टुकड़ों में बाँट दिया ॥ १४ ॥
 उन्होंने अनेक प्रकार के वीरों को मार दिया और एक-एक के दो-दो टुकड़े
 कर दिये । घोड़ों-समेत जो मारे गये वे दो से चार टुकड़ों में बँट
 गये ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रकार वीरों को मारकर घोड़े को नदी में तैराकर
 जहाँ मित्त का घर था घोड़े को वहाँ आ निकाला ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब
 उसे आकर घोड़ा दिया तो उसने भी दृढ़तापूर्वक उससे कामभोग
 किया । उसके पीछे लगी फौज जब उसने देखी तो उसने स्त्री से
 कहा ॥ १७ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ हमने बुरा किया जो राजा का घोड़ा चुराया
 और स्वयं अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारी है । अब ये घोड़े समेत पकड़ ले

द्याइ हैं ॥१८॥ ॥चौपाई॥ त्रिय भाखयो प्रिय शोक न करो ।
 बाज सहित दोऊ बचे बिचरो । ऐसो चरित अब मैं करिहों ।
 दुशटन डारि सिर छार उबरिहों ॥ १९ ॥ तहाँ पुरख को भेस
 बनाइ । दल कह मिली अगमने जाइ । कही हमारो सतर
 उबारो । और गाँव ते सकल निहारो ॥ २० ॥ मिलि दल
 धाम अगमने जाइ । बाज पाइ झाँझर पहिराइ । सकल
 गाँव तिन कह दिखराई । फिरि तिह ठौरि तिनै लै आई ॥२१॥
 परदा लेत तानि आगे तिन । देखहु जाइ जनाना कहि जिन ।
 आगे करि सभहिन के बाजा । इह छल बाम निकार्यो
 राजा ॥ २२ ॥ सो आँगन लै तिनै दिखावै । आगे
 बहुरि (मू०पं० १२८८) कनात तनावै । आगे करि करि बाज
 निकारै । नेवर के बाजत झनकारै ॥ २३ ॥ बहू बधू तिनकी
 बहु जानै । बाजी कह मूरख न पछानै । नेवर के बाजत
 झनकारा । भेद अभेद न जात बिचारा ॥ २४ ॥ दुहिता
 बहू तिनै करि जानै । सुनि सुनि धुनि नेवर की कानै ।
 भेद अभेद कछू न बिचारी । इह छल छलै पुरख सभ

जायेंगे और दोनों को फाँसी पर लटका देंगे ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ स्त्री ने
 कहा कि हे प्रिय ! शोक मत करो और समझो कि हम घोड़े-समेत बचे हुए
 ही घूम रहे हैं । मैं अभी ऐसा प्रपंच करूँगी कि दुष्टों के सिर पर मिट्टी
 डालकर हम दोनों बच जायेंगे ॥ १९ ॥ वह पुरुष का वेष बनाकर सेना
 को आगे से ही जा मिली । कहने लगी कि हमें कृतार्थ कीजिए
 और हमारे गाँव को देखो ॥ २० ॥ दल से मिलकर फिर आगे
 पहुँचकर घोड़े को झाँझर पहना दी । उन्हें सारा गाँव
 दिखाकर फिर उसी स्थान पर ले आई ॥ २१ ॥ वह आगे
 पर्दा तान लेती थी ताकि कोई स्त्रियों को न देख ले । घोड़े को सबके
 आगे कर इस प्रकार उस स्त्री ने राजा को निकाल दिया ॥ २२ ॥ एक
 आँगन उन्हें दिखा देती थी और फिर आगे कनात लगवा देती थी । आगे
 कर करके वह घोड़े को बढ़ाती जाती थी । उसकी झाँझर की झनकार
 सुनाई दे रही थी ॥ २३ ॥ वे सब उसे उसकी वधू अथवा बहू जान रहे
 थे और मूर्ख लोग घोड़े को नहीं पहचान रहे थे । झाँझर की झनकार में
 भेद-अभेद का विचार नहीं हो पा रहा था ॥ २४ ॥ झाँझर की झनकार
 कानों से सुनकर वे उसे उसकी पुत्री अथवा बहू समझ रहे थे । किसी ने
 भेद-अभेद को नहीं पहचाना और इस प्रकार उसने छलपूर्वक सभी पुरुषों को

नारी ॥ २५ ॥ जवन रुचा ज्यों त्यों तिह भजा । जिय जु न
भायो तिह कौ तजा । इन इसत्नीन के चरित अपारा । जिनें
न बिधना सकत बिचारा ॥ २६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ बत्तीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३३२ ॥ ६२४७ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ तेतीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनहो राजकुअर इक बाता । त्रिय चरित्र
जो किय बिखयाता । पसचिम दिसा हुती इक नगरी ।
हंसमालनी नाम उजगरी ॥ १ ॥ हंससेन जिह राज बिराजै ।
हंसप्रभा जाकी त्रिय राजै । रूपवान गुनवानुजियारी ।
जाहिर लोक चौदहूँ प्यारी ॥ २ ॥ तह इक शाहु सुता
दुतिमाना । बहुरि जियत जिह निरखि समाना । जोवन भयो
अधिक तिह जबही । बहुतन साथ बिहारत तबही ॥ ३ ॥
इक दिन भेस पुरख को धारि । निजु पति साथ करी बहु
रारि । लात मुशट के करत प्रहार । सो तिह नारि न सकै

छल लिया ॥ २५ ॥ स्त्री को जो कोई भा गया वह जैसे-तैसे उसका उपभोग
कर लेती है और जो अच्छा नहीं लगता उसका त्याग कर देती है । इन
स्त्रियों के प्रपंच अपार हैं, जिन्हें विधाता भी नहीं विचार सकता ॥ २६ ॥ १

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ बत्तीसवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३३२ ॥ ६२४७ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ तेतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजकुमार ! मेरी एक बात सुनो । मैं बताता हूँ
कि स्त्री ने क्या बिखयात प्रपंच किये हैं । पश्चिम दिशा में हंसमालनी
नामक एक नगरी थी ॥ १ ॥ वहाँ का राजा हंससेन था जिसकी स्त्री
हंसप्रभा थी । वह रूपवान, गुणवान एवं चौदह भुवनों में प्रसिद्ध थी ॥ २ ॥
वहाँ एक धनिक की पुत्री थी ; आकाश भी उसे देखकर ही जीवित था ।
जब वह यौवन को प्राप्त हुई तो अनेकों के साथ रमण करने लगी ॥ ३ ॥
एक दिन उसने पुरुष-वेश धारण कर अपने पति के साथ झगड़ा किया ।
वह लात-धूसों से उस पर प्रहार कर रही थी और वह उस स्त्री को पहचान
नहीं रहा था ॥ ४ ॥ उससे लड़कर वह काजी के पास गई और पैदल सिपाहियों

बिचारि ॥ ४ ॥ तासौ लरि काजी पहि गई । लैइ लाम
 प्यादन संग अई । ऐंच पतिहि लै लहा सिधाई । कोतवार
 काजी जिह ठाई ॥ ५ ॥ प्यादन साथ द्वार पति थिर करि ।
 दिन कह गई मित्त अपने घर । ता संग करि क्रीड़ा की गाथा ।
 लै आई शाहिद कहि साथ ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जार
 प्यादन पति जुति द्वारे ठाठि कर । दुतिय मित्त के गई दिवस
 कह नारि घर । काम भोग तिह साथि किया रुचिमानि करि ।
 हो शाहिद कै ल्याई अपने तिह साथ धरि ॥ ७ ॥
 ॥ चौपाई ॥ कहाँ लगे मैं कहों उचरि करि । इह बिधि गई
 बहतन के घर । संग शाहिद सभ ही करि लीने । सकल
 रुजू काजी के कीने ॥ ८ ॥ तिह अपनी अपनी ते मानै ।
 एक एक को भेद न जानै । जु त्रिय कहत सो पुरख
 बखानत । (सू०प्र०१२८६) आपु आपु की बात न जानत ॥ ९ ॥
 सभ साहिद जब नजरि गुजरे । एक बचन वह लिया उचरे ।
 तब काजी साची इह कीनो । दरब बटाइ अरध तिह
 दीनो ॥ १० ॥ किनूँ न ताको भेद बिचारा । कस चरित
 इह नारि दिखारा । औरन की कोऊ कहा बखानै । आपु
 आप महि तेऊ न जानै ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ कहाँ लखा

को साथ लेकर आ गई । वह पति को खींचकर वहाँ आ गई जहाँ काजी और
 कोतवाल थे ॥ ५ ॥ सिपाहियों के साथ पति को दरवाजे पर खड़ा करके दिन
 में ही वह अपने मित्त के घर गई । वहाँ उसके साथ क्रीड़ा की और उसे
 गवाह बनाकर ले आई ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ यार को पति-सहित
 सिपाहियों के साथ छोड़कर वह स्त्री दूसरे मित्त के घर गई । उसके साथ
 भी रुचिपूर्वक कामक्रीड़ा की और उसे भी गवाह बनाकर साथ ले
 आई ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ मैं कहाँ तक बताऊँ, इस प्रकार वह अनेकों
 के घर गई । सभी गवाहों को अपना बना लिया और सबको काजी के
 सामने ला खड़ा किया ॥ ८ ॥ सभी उसे अपनी ही समझते थे और एक
 दूसरे का भेद नहीं जानते थे । जो स्त्री कहती थी वे सभी पुष्प वही कहें
 थे और अपनी बात नहीं जानते थे ॥ ९ ॥ जब सभी गवाह देख लिये गए
 तो इस स्त्री ने अपनी बात कही । काजी ने उसे सच्ची मान लिया और
 आधा धन उसे बाँटकर दे दिया ॥ १० ॥ किसी ने उसका रहस्य न जाना
 कि इस स्त्री ने क्या प्रपंच दिखाया है । अन्यो की तो कोई क्या कहे,

लिय करम करि कैसे करम कसाइ । भेद अभेद सभ आपु महि
सका न कोऊ पाइ ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवाद तीन सौ तेतीस चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३३३ ॥ ६२५६ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ चौतीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ राजसेन इक राजा दच्छिन । त्रिय तिह
राजमती सुभ लच्छन । अमित दरब तन भरे भंडारा ।
जिन को आवत बार न पारा ॥ १ ॥ पिंगल दे तह शाह
दुलारी । जाकी सम नहि दुतिथ कुमारी । निरखि त्रिपति
त्रिय भई दिवानी । तब ते रुचत खान नहि पानी ॥ २ ॥
ताकी लगनि त्रिपति तन लागी । छूटै कहा अनोखी जागी ।
सखी चीनि इक हितू सयानी । पठै दई त्रिप की
रजधानी ॥ ३ ॥ जिमि तिमि बदा मिलन तिह संगी । तिह
तन व्याप्यो अधिक अनंगा । तिह भेटन कौ चित ललचावै ।
घात न निकसन की त्रिय पावै ॥ ४ ॥ कह्यो शाहु इक भूप

आपस में भी कुछ नहीं जानते थे ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ स्त्री ने क्या देखा
और क्या कर्म किया, इस भेद-अभेद को कोई न जान सका ॥ १२ ॥ १ ॥
॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ तेतीसवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३३३ ॥ ६२५६ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ चौतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ दक्षिण का राजा राजसेन था जिसकी सुलक्षणा स्त्री
राजमती थी । उसके घर में अपरिमित द्रव्य भरा हुआ था ॥ १ ॥
वहाँ एक धनी की पुत्री पिंगलदेवी थी जिसके समान अन्य कोई कुमारी
नहीं थी । वह राजा को देखकर दीवानी हो गयी और खाने-पीने में उसकी
रुचि समाप्त हो गई ॥ २ ॥ उसकी लगन राजा के साथ लग गई थी जो
अनोखी थी और छूटती नहीं थी । उसने एक सयानी सखी को देखकर
उसे राजा की राजधानी में भेज दिया ॥ ३ ॥ जैसे-तैसे उसने उससे मिलने
की ठानी, क्योंकि उसके तन में अत्यधिक काम व्याप्त था । उससे मिलन
के लिए उसका चित्त ललचा रहा था पर निकलने की घात नहीं लग रही
थी ॥ ४ ॥ उसने धनिक से कहा कि राजा बुला रहा है और सभी अन्नो

बुलावत । सभ अंनन को निरख लिखावत । बचन सुनत
तह शाहु सिधारा । भलो बुरो नहि मूढ़ बिचारा ॥ ५ ॥
निकसत भई घात त्रिय पाइ । भोग किआ राजा सौं जाइ ।
रह्यो मूढ़ पर द्वार बहिठो । भला बुरा कछु लह्यो न
डिठो ॥ ६ ॥ त्रिय करि केल भूप सौ आई । लयो शाहु
घर बहुरि बुलाई । कह्यो प्रात हम तुम दोऊ जैहैं । राजा
कहत वहै करि ऐहैं ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल मूरख तिह
छला सक्यो न भेद बिचार । कहा चरित इन त्रिय किया त्रिप
संग रमी सुधारि ॥ ८ ॥ १ ॥ (मू०प्र० १२६०)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ चौंतीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३३४ ॥ ६२६७ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ पैंतीस चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ शहिर सरोही के बिखैं बिकृतकरन इक
राइ । बीर बडो बाँको रथी राखत सभ को भाइ ॥ १ ॥
॥ चौपई ॥ अबला दे रानी ताके घर । अधिक पंडिता सकल

के भाव लिखा रहा है । यह बात सुनकर बिना भले-बुरे का विचार किये
धनिक चल पड़ा ॥ ५ ॥ अवसर पाकर स्त्री निकल पड़ी और उसने राजा
के साथ जाकर कामक्रीड़ा की । वह मूर्ख दूसरे के दरवाजे पर बैठा रहा
और उसने भला-बुरा कुछ भी नहीं देखा, सुना ॥ ६ ॥ स्त्री राजा से
केलिक्रीड़ा कर वापस आयी और उसने धनिक को वापस घर बुला लिया ।
वह कहने लगी कि प्रातः हम-तुम दोनों जायेंगे और जो राजा कहेगा वही
करेंगे ॥ ७ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रपंच से उस मूर्ख को छला, जो रहस्य को
न जान सका । इसने भी कैसा प्रपंच किया कि उसके साथ पूर्णरूपेण
रमण किया ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ चौंतीसवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३३४ ॥ ६२६७ ॥ अफजू ॥

तीन सौ पैंतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ सरोही नगर में विकृतकर्ण एक राजा था जो महाबली,
बाँका रथी और सबका सम्मान करनेवाला था ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसकी
रानी अबलादेवी थी जो समस्त कलाओं में अत्यधिक निपुण थी । उसने

हुनर करि । बीरमदेव पुत्र तिह जायो । तेजवान बलवान
 सुहायो ॥ २ ॥ ताकी जात न प्रभा बखानी । रूप अनंग
 धर्यो है जानी । कह लागि प्रभा करै कवनै कबि । निरखि सूर
 ससि रहत इंद्र दबि ॥ ३ ॥ छैल छबीलो कुअर अपारा ।
 आपु घड़ा जानुक करतारा । कनक अवटि साचे जन ढार्यो ।
 रीझि रहत जिन ब्रह्म सवार्यो ॥ ४ ॥ नैन फबत म्रिग से
 कजरारे । केसजाल जनु फाँस सवारे । जाके परे गरै सोई
 जानै । बिनु बूझै कोई कहा पछानै ॥ ५ ॥ जेतिक देत प्रभा
 सभ ही कबि । तेतिक तुही तवन भीतरि छबि । पुरख नारि
 चितवह जो ताँहि । कछु न सँभार रहत तब वाहि ॥ ६ ॥
 चंचरीट दुति देखि बिकाने । भवर आजु लागि फिरति दिवाने ।
 महादेव ते नैक निहारे । अब लागि बन मै बसत उधारे ॥ ७ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ चतुरानन मुख चतुर लखि याही ते करैं । सिखि
 बाहन खटबदन सु याही ते धरैं । पंचानन याते शिव भए
 बचारि करि । हो सहसानन नहु सका प्रभा को सिंधु
 तरि ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ जे अबला तिह रूप निहारत ।
 लाज साज धन धाम बिसारत । मन मै रहत भगन हवै नारी ।

बीरमदेव नामक पुत्र को जन्म दिया जो तेजस्वी और बलवान था ॥ २ ॥
 उसकी प्रभा का वर्णन नहीं किया जा सकता, वह मानों कामदेव का रूप
 धारण किए था ॥ ३ ॥ छैल-छबीले कुँवर को मानों स्वयं परमात्मा ने
 बनाया था । वह मानों सोने के साँचे में ढाला गया था । ब्रह्मा भी उसे
 देखकर मोहित था ॥ ४ ॥ उसके कजरारे नयन मृग के समान शोभायुक्त
 थे और केश मानों पाश के समान शोभायमान थे । वह केश-जाल जिसके
 गले पड़ता था वही उसके बारे में जानता था । बिना जाने कोई भला
 उनकी क्या पहचान कर सकता था ॥ ५ ॥ कवि जितनी भी उपमाएँ देते
 थे वे सब उसकी सुन्दरता के भीतर ही थीं । जो भी पुरुष, स्त्री उसे देखता
 था उसे अपनी तनिक भी होश नहीं रहती थी ॥ ६ ॥ खंजन उस पर
 बिके थे और भँवरे आज तक उसकी शोभा को देखकर दीवाने थे । महादेव
 उसे तनिक-सा देखकर आज तक वन में नंगे होकर घूम रहे
 हैं ॥ ७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ ब्रह्मा ने उसे देखकर ही चार मुख बना लिये ।
 कार्तिकेय ने इसी के कारण छः मुख बनाए और शिव इसी को जानकर पाँच
 मुखवाले हो गए । सहस्रमुख-शेषनाग भी इसके प्रभा-समुद्र को नहीं तैर
 सका ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ जो स्त्री उसका स्वरूप देखती थी वह लज्जा, धन,

जानु बिसिख तन म्रिगी प्रहारी ॥ ९ ॥ शाहजैन अल्लावदीन
 जह । आयो कुअर रहन चाकर तह । फूलमती हजरति की
 नारी । ताके ग्रहि इक भई कुमारी ॥ १० ॥ खी दिमाग
 रोशन वह बारी । जनु रति पति ते भई कुमारी । जनुक
 चीरि चंद्रमा बनाई । ताही ता ते सै अतितार्ई ॥ ११ ॥
 बीरम दे मुजरा कह आयो । शाहु सुता को ह्मिदै चुरायो ।
 अनिक जतन अबला करि हारी । कैसिहु मिला न प्रीतम
 प्यारी ॥ १२ ॥ कामातुर भी अधिक बिगम जब । पिता
 पास तजि लाज कही तब । कै बाबुल ग्रहि गोरि खुदाओ ।
 कै बीरम दे मुहि बरखाओ ॥ १३ ॥ भली भली तब शाह
 उचारी । मुसलमान बीरम कर प्यारी । बहुरि ताहि तुम
 करौ निकाहा । जिह (मू०पं० १२६१) सौ तुमरी लगी
 निगाहा ॥ १४ ॥ बीरम तीर वज्जीर पठायो । शाह कर्षो
 तिह ताहि सुनायो । हमरे दीन प्रथम तुम आवहु । बहुरि
 दिलिस की सुता बियावहु ॥ १५ ॥ बीरमदेव कहा नहि
 माना । कर्षो आपने देस पयाना । प्राते खबरि दिलिस जब

धाम सब भुला देती थी । नारियाँ उसी प्रकार मन ही मन मगन हो जाती
 थीं मानों वाण से प्रहारित मृगी पड़ी हो ॥ ९ ॥ शाह अलाउद्दीन जहाँ था
 वहाँ वह कुँवर नौकरी करने के लिए आया । उस बादशाह की स्त्री फूलमती
 थी जिसके घर एक कुमारी पैदा हुई थी ॥ १० ॥ दिमागरौशन नामक वह
 बालिका मानों कामदेव की पुत्री थी । वह मानों चन्द्रमा को चोरकर बनाई
 हुई थी और इसी से उसमें अत्यधिक अहंकार भी था ॥ ११ ॥ वीरमदेव
 जब मुजरा देखने के लिए गया तो उसने शाह की पुत्री का हृदय चुश लिया ।
 वह स्त्री अत्यधिक यत्न करके हार गई पर किसी भी प्रकार प्रियतम न
 मिला ॥ १२ ॥ जब वह वेगम अत्यधिक कामातुर हो उठी तो उसने लज्जा
 का त्याग कर पिता से कहा कि हे पिता, या तो मेरी अपने घर कन्न खुदावा
 दो या मेरा विवाह वीरमदेव के साथ कर दो ॥ १३ ॥ तब शाह ने
 “अच्छा, अच्छा” कहते हुए कहा कि तुम वीरम को मुसलमान बना लो । तुम
 उससे निकाह कर लो जिससे तुम्हारी नज़रें लगी हैं ॥ १४ ॥ उसने मंत्री
 को वीरमदेव के पास भेजा और जो शाह ने कहा था वह उसे कह सुनाया ।
 पहले तुम हमारे धर्म में आओ और फिर दिल्लीश्वर की पुत्री के साथ शादी
 करो ॥ १५ ॥ वीरमदेव ने कहना नहीं माना और अपने देश की ओर
 प्रस्थान कर गया । प्रातः जब बादशाह को पता लगा तो उसने अपरिमित

पाई । अमिति सैन अरि गहन पठाई ॥ १६ ॥ बीरमदेव
 खबरि जब पाई । पलट करी तिन साथ लराई । भाँति भाँति
 भारी भट घाए । तहाँ न टिके तवन के पाए ॥ १७ ॥
 काँधलवत राजा थो जहाँ । बीरमदेव जात भ्यो तहाँ ।
 काँधल दे आगे जह रानी । रूपवान गुनवान सयानी ॥ १८ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ काँधल दे रानी तिह रूप निहारिकै । गिरी धरनि
 के भीतर हिये बिचारिकै । ऐसो इक पल कुअर जु भेटन पाईयें ।
 हो जनम पचासिक लौ सखी बलि बलि जाईयें ॥ १९ ॥
 ॥ चौपाई ॥ जाइ सखी बीरम दे पासा । इह बिधि साथ करी
 अरदासा । कै तुम काँधल दे कौ भजो । कै इह देस हमारो
 तजो ॥ २० ॥ पाछे लगी फौज तिन मानी । दुतिय रहन
 की ठौर न जानी । ताको देस तरुन नहि तजो । काँधल दे
 रानी कह भजो ॥ २१ ॥ रानी रमी मित्र के भोगा । चित
 के दए त्यागि सभ सोगा । तब लगि लिखो शाह को आयो ।
 बाँधि मंत्रियन भाखि सुनायो ॥ २२ ॥ लिखि सु लिखा महि
 यहै पठाई । और बात दूजी न जनाई । कै बीरम कह बाँधि
 पठावहु । कै मेरे संग जुद्ध मचावहु ॥ २३ ॥ रानी बाँधि न

सेना शत्रु की ओर भेजी ॥ १६ ॥ बीरमदेव को जब पता लगा तो उसने भी
 धूमकर लड़ाई की । बड़े-बड़े वीरों का मार डाला और वहाँ कोई भी नहीं
 टिक सका ॥ १७ ॥ बीरमदेव जहाँ गया वहाँ का राजा काँधलवत था ।
 उसकी रानी काँधलवती थी जो रूपवान और सयानी तथा गुणवान थी ॥ १८ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ काँधलदेवी उसका रूप देखकर उसके बारे में सोचकर धरती
 पर गिर पड़ी । ऐसा कुँवर यदि एक पल के लिए मिल जाय तो पचास जन्म
 तक मैं उस पर न्योछावर जाऊँ ॥ १९ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसकी सखी ने बीरम
 के पास जाकर उससे प्रार्थना की कि या तो काँधलदेवी के साथ रमण करो
 अथवा हमारा देश छोड़ो ॥ २० ॥ उसने सोचा कि मेरे पोछे फौज लगी
 हुई है और अन्य किसी स्थान पर रहने का ठिकाना नहीं है । इसलिए
 हे तरुणी ! मैं उसका देश नहीं छोड़ूँगा और काँधलदेवी रानी के साथ रमण
 करूँगा ॥ २१ ॥ रानी ने मित्र के साथ रमण किया और चित्त के सभी
 शोकों का त्याग कर दिया । तब तक बादशाह का लिखा परवाना आ गया
 जो सब मंत्रियों ने पढ़कर सुना दिया ॥ २२ ॥ उसमें यही लिखा था और
 अन्य कुछ नहीं कहा गया था । तुम या तो बीरम को बाँधकर मेरे पास भेजो
 अथवा मेरे साथ युद्ध करो ॥ २३ ॥ रानी ने बीरम को नहीं दिया और

बीरज दयो । पहिर कौंच दुंदभी बजयो । निरभै चली जुद्ध
 के काजा । है गै रथ साजत सर साजा ॥ २४ ॥ ॥ भुजंग
 प्रयात छंद ॥ बज्यो राग मारु मँडे छलधारी । बहै तीर
 तरवार काती कटारी । कहूँ केत फाटे गिरे छल टूटे । कहूँ
 मत दंती फिरै बाज छूटे ॥ २५ ॥ कहूँ बाज जूझे परे हैं
 मतंगे । कहूँ नाग मारे बिराजै उतंगे । कहूँ बीर डारे परे
 बरस फाटे । कहूँ खेत खाँडे लसै चरम काटे ॥ २६ ॥ गिरे
 बीर मारे कहा लौ गलाऊँ । कहौ जो सभै एक ग्रंथै बनाऊँ ।
 जथा शक्ति कै अलप ताँते उचारो । सुनो कान दै कै सभै
 ही पिआरो ॥ २७ ॥ इतैं खान ढूँके उतैं राज नीके । हठी
 रोस बाढे सु गाढे अनीके । (सू० प्र० १२६२) लरे कोष कैके सु
 एकै न भाज्यो । घरी चारि लौ सार सौ सार बाज्यो ॥ २८ ॥
 तहा संख भेरी धने नाद बाजे । म्रिदंगं मुचंगं उपंगं बिराजे ।
 कहूँ नाइ नाफीरियैं औ नगारे । कहूँ झाँझ बीणा बजैं घंट
 भारे ॥ २९ ॥ कहूँ टूक टूक हवै गिरै हैं सिपाही । मरे
 स्वाम के काजहूँ को निबाही । तहाँ कौंच धारे चढ़े छलधारी ।

कवच पहनकर दुंदुभि बजा दी । वह हाथी, घोड़े, अस्त्र-शस्त्र लेकर निर्भय
 हो युद्ध के लिए चल पड़ी ॥ २४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ मारु रणवाद्य बजने
 लगे, छलधारी एकत्र हो गए और तीर, तलवार, कटारें चलने लगीं । कहीं छल
 टूटने लगे और झंडे फटने लगे और कहीं मस्त हाथी और घोड़े दौड़ने लगे ॥ २५ ॥
 कहीं घोड़े, हाथी जूझकर पड़े हुए थे और कहीं नागबाणों के मारे भीमकाय
 (वीर) पड़े थे । कहीं कवच फटे हुए वीर पड़े थे और कहीं युद्धक्षेत्र में चर्म
 काटनेवाले खड़ग शोभायमान हो रहे थे ॥ २६ ॥ गिरे हुए वीरों की
 गिनती कहाँ तक करूँ ? यदि उनका वर्णन करने लगूँ तो समझ लो कि एक
 ग्रंथ ही बन सकता है । इसलिए उनका वर्णन यथाशक्ति अत्यल्प ही
 करता हूँ । हे प्रियजनो ! सुनो ॥ २७ ॥ इधर बली खान और उधर सुन्दर
 राजागण थे । घनघोर सेना के वीर हठपूर्वक रोष बढ़ा रहे थे । कुपित
 होकर लड़े और कोई भी न भागा और चार घड़ी तक लोहे से लोहा वजता
 रहा ॥ २८ ॥ शंख, भेरी, घनघोर वाद्य, मृदंग, मुचंग, उपंगादि बजने लगे ।
 कहीं नफीरी, नगाड़े, झाँझ, बीणा, घनघोर घड़ियाल बजने लगे ॥ २९ ॥
 कहीं घोड़े और सिपाही खंड-खंड हो गिरे थे और कहीं स्वामी के कार्य
 को निभाते हुए वीर मर रहे थे । वे कवचधारी एवं छलधारी वीर ऐसे
 मिल रहे थे मानों मदारी आपस में मिल रहे हों ॥ ३० ॥ कहीं भूमि पर लेटे

मिले मेल मानो मदारे मदारी ॥ ३० ॥ किते भूमि लोटें सु
 हाथें उच्चाए । डरै सेख जैसे समाई समाए । जुझे जवान
 जोधा जगे जोर जंगै । मनो पान के भंग सोए मलंगै ॥ ३१ ॥
 बहैं आन ऐसे बचै बीर कौनै । लरियो आनि जो पै गयो जूझि
 तौनै । तहाँ जो अनं पाँच भयो बीर खेतं । बिदारे परे बीर
 बिदे बिचेतं ॥ ३२ ॥ कहूँ बीर बैताल बोना बजावैं । कहूँ
 जोगनीयें खरी गीत गावैं । कहूँ लै बरंगनि वरैवै तिसी को ।
 लहैं सामुहे जुद्ध जुझो जिसी को ॥ ३३ ॥ ॥ चौपई ॥ जब ही
 सैन जूझि सभ गई । तब त्रिय सुतहि पठावत भई । सोऊ
 जूझि जब स्वरग सिधायो । दुतिय पुल तह और
 पठायो ॥ ३४ ॥ सोऊ गिर्यो जूझि रन जब ही । तीजे
 सुतहि पठायो तब ही । सोऊ जूझि जब गयो दिवालै । चौथे
 पुत पठायो बालै ॥ ३५ ॥ चारो गिरे जूझि सुत जब ही ।
 अबला चली जुद्ध कौ तबही । सूर बचे ते सकल बुलाइसि ।
 लरन चली दुंदुभी बजाइसि ॥ ३६ ॥ ऐसा करा बाल तह
 जुद्धा । रही न भट काहू महि सुद्धा । मारे परे बीर
 बिकरारा । गोमुख झाँझर बसत नगारा ॥ ३७ ॥ जा पर

वीर हाथ उठा रहे थे और ऐसे लग रहे थे मानों शेख आदि धर्मसंकट में पड़े
 डर रहे हों । योद्धागण जंग में ऐसे जूझ रहे थे मानों मलंग भाँग पीकर
 सोये पड़े हों ॥ ३१ ॥ ऐसी बाण-वर्षा मैं कौन वीर बच सकता था । जो भी
 आकर लड़ा वह जूझ गया । वहाँ जो भी वीर मदमस्त होकर आये वे सब
 मरकर अथवा बेसुध होकर झुंडों के रूप में गिर पड़े ॥ ३२ ॥ कहीं
 बैताल वीर वीणा बजा रहे थे और कहीं योगिनियाँ खड़ी होकर गीत
 गा रही थीं । कहीं अप्सराएँ उन वीरों का वरण कर रही थीं जो सम्मुख
 होकर युद्ध में जूझ रहे थे ॥ ३३ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब सारो सेना जूझ गई
 तब स्त्री ने पुत्र को भेजा । जब वह भी स्वर्ग सिधार गया तो उसने दूसरे
 पुत्र को भेजा ॥ ३४ ॥ जब वह भी रण में काम आ गया तो उसने तत्काल
 तीसरे पुत्र को भेजा । जब वह भी जूझकर देवपुरी चला गया तो उस स्त्री ने
 चौथे पुत्र को भेजा ॥ ३५ ॥ जब चारों पुत्र जूझकर गिर पड़े तो वह स्त्री
 स्वयं युद्ध के लिए चल पड़ी । उसने वचे हुए समस्त वीरों को बुलाया और
 दुंदुभी बजाकर लड़ने के लिए चल पड़ी ॥ ३६ ॥ उस स्त्री ने ऐसा युद्ध
 किया कि किसी वीर को होश न रहे । बिकराल वीर मारे हुए पड़े थे आर
 साथ ही साथ गोमुख, झाँझर, नगाड़े आदि बज रहे थे ॥ ३७ ॥ सिरोंही

सिमटि सरोही मारति । ताको काटि भूम सिर डारति ।
 जाके हनै तरुनि तन बाना । करै सुभट अतिलोक
 पयाना ॥ ३८ ॥ चुनि चुनि जवान पखरिया मारे । इक इक
 से द्वै द्वै करि डारे । उठी धूरि लागी असमाना । असि
 चमकै बिजुरी परमाना ॥ ३९ ॥ काटे सुभट सरोहिन परे ।
 जनु मारत बर बिरछ उपरे । गज जूझे मारे बागी रन ।
 जनु क्रीड़ा शिव को यह है बन ॥ ४० ॥ रन ऐसो अबला
 तिन कीया । पाछे भयो न आगे हुआ । खंड खंड हवै गिरी
 धरनि पर । रन जूझी भवसिंधु गई तरि ॥ ४१ ॥ खंड खंड
 बाजी पर भई । तऊ न छोरि अयोधन गई । भूत पिसाच
 गए भखि तामा । बागि ओरि तऊ भजी (म० ग्रं० १२६३) न
 बामा ॥ ४२ ॥ प्रथम चारऊ पुत्र जुझाए । बहुरि आपु बैरी
 बहु घाए । प्रथम बाल कौ जबै सँघार्यो । तिह पाछे बीरम
 दे मार्यो ॥ ४३ ॥ ताको मारि काटि सिर लियो । ले
 हाजिर हजरति के कियो । तब पित पठै सुता पहि दीना ।
 अधिक दुखित हवै दुहिता चीना ॥ ४४ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब

नामक शस्त्र जिसे पीछे होकर मारती उसका सिर भूमि पर काट गिराती
 थी । उस तरुणी ने जिसको भी वाण मारा वह वीर मृत्युलोक को
 प्रस्थान कर गया ॥ ३८ ॥ जवानों को चुन-चुनकर मारा और एक-एक से
 दो-दो कर दिए । धूल उड़कर आसमान को छूने लगी और ऐसा लगने
 लगा मानों बिजली चमक रही हो ॥ ३९ ॥ तलवारों से कटे वीर ऐसे पड़े
 थे मानों वायु के कारण वृक्ष उखड़कर गिर पड़े हों । रणक्षेत्र में हाथी और
 घोड़े जूझ गए और ऐसा लग रहा था मानों यह शिव का क्रीड़ास्थल हो ॥ ४० ॥
 उस स्त्री ने ऐसा युद्ध किया जो न तो पहले कभी हुआ था और न ही आगे
 कभी होगा । वह स्वयं भी खंड-खंड होकर धरती पर गिर पड़ी और रण में
 जूझकर भवसागर पार कर गयी ॥ ४१ ॥ वह घोड़े पर ही टुकड़े-टुकड़े
 हो गयी, पर फिर भी युद्ध छोड़कर नहीं गयी । उसका मांस भूत-पिशाच
 आदि खा गए पर वह स्त्री फिर भी लगाम मोड़कर वापस नहीं पलटी ॥ ४२ ॥
 पहले उसने चारों पुत्र मरवा दिये और फिर स्वयं अनेक शत्रुओं को मारा ।
 शत्रु ने पहले स्त्री को और फिर वीरमदेव को मारा ॥ ४३ ॥ उसे मारकर
 उसका सिर काटकर बादशाह के सामने प्रस्तुत किया गया । तब पिता ने
 उसे पुत्री के पास भेज दिया जिसे पुत्री ने बहुत दुखपूर्वक पहचाना ॥ ४४ ॥

बेगम तिह स्वार कौ देखा सीस उघारि । पलटि परा तब मुँड
त्रिप तउ न कबूली नारि ॥ ४५ ॥ ॥ चौपई ॥ बेगम शोक
मान तब हवैकै । जसधर हना उदर कर लैकै । प्राण मित्र
के लीने दीना । ध्रिग मोकौ जिन अस क्रम कीना ॥ ४६ ॥
॥ दोहरा ॥ बीरम दे राजा निमित्त बेगम तजे परान । सु
कवि स्याम था कथा को तबही भयो निदान ॥ ४७ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ पैंतीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३३५ ॥ ६३६४ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ छत्तीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ राजसेन इक सुना त्रिपति बर । राज
देइ रानी ताके घर । रंगझड़ दे दुहिता तह सोहै । सुर नर
नाग असुर मन मोहै ॥ १ ॥ बडत बडत अबला जब बडी ।
मदन सु नार आपु जनु गडी । मात पिता चरचा भई जोई ।
प्रचुर भई जग भीतरि सोई ॥ २ ॥ मातैं कहीं सु ताके संगी ।

॥ दोहा ॥ जब बेगम ने मुँह नंगा करके उस सवार के सिर को देखा तो
राजा का वह सिर भी मुड़ गया और उसने उस स्त्री को स्वीकार नहीं
किया ॥ ४५ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब बेगम ने शोकपूर्वक हाथ में कटार लेकर
अपने पेट में मार ली । वह कहने लगी कि मैंने मित्र के प्राण ले लिये, मुझे
धिक्कार है जो मैंने ऐसा कर्म किया ॥ ४६ ॥ ॥ दोहा ॥ बेगम ने बीरमदेव
राजा के लिए प्राण त्याग दिए और कवि श्याम के कथनानुसार तब ही इस
कथा का आशय बन पड़ा ॥ ४७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ पैंतीसवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३३५ ॥ ६३६४ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ छत्तीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ राजसेन नामक एक राजा सुना जाता था जिसके घर
में राजदेवी नामक रानी थी । उनकी पुत्री रंगझड़देवी थी जो सुर, नर,
नाग, असुर सबका मन मोहती थी ॥ १ ॥ वह कन्या जब बढ़ते-बढ़ते
बढ़कर जवान हुई तो ऐसी लगने लगी मानों कामदेव ने उसका निर्माण किया
हो । उसके माता-पिता की चर्चा भी सारे संसार में होने लगी ॥ २ ॥
उसकी माँ ने उससे कहा कि हे सुन्दरी ! तुम चंचलता मत दिखलाओ ।

चंचलता जिन करु सुदंभा । कहा बिसेस धुजहि तूँ बरि हैं ।
 ताको जीति दास लै करि हैं ॥ ३ ॥ सुनत बात ता कह लागि
 गई । राखी गूढ़ न भाखत भई । जब अबला निसि कौ घर
 आई । चली तहाँ नर भेस बनाई ॥ ४ ॥ चलत चलत बहु
 चिर तह गई । जहाँ बिलासवती नगरई । तवन नगर बलि
 जूप मचायो । ऊच नीच सभ ही ठहरायो ॥ ५ ॥ बड़े बड़े
 जूपी अब हारे । मिलि राजा के तीर पुकारे । इक हयाँ ऐस
 जुआरी आयो । किसू पास नहि जात हरायो ॥ ६ ॥ इह
 बिधि सुने बचन जब राजा । आपन सज्यो जूप को साजा ।
 कह्यो ताँहि हयाँ लेहु बुलाइ । जिन जूपी सभ लए
 हराइ ॥ ७ ॥ भ्रित सुनि बचन पहुँचे तहाँ । जूपिन कुअरि
 हरावत जहाँ । कह्यो ताहि तुहि राइ बुलायो । चाहत
 तुम सौ जूप मचायो ॥ ८ ॥ त्रिप के तीर तरुनि तब गई ।
 बहु बिधि जूप मचावत भई । अधिक दरब तिन भूप
 हरायो । (सू० प्र० १२६४) ब्रह्मा तें नहि जात गनायो ॥ ९ ॥
 जब त्रिप दरब बहुत बिधि हारा । सुत ऊपर पासा तब ढारा ।
 वहै हरायो देस लगायो । जीता कुअरि भज्यो मन

विशेषध्वज ने कहलवाया है कि वह तुम्हारा वरण करेगा और तुम्हें जीतकर दासी बना लेगा ॥ ३ ॥ उसकी बात उसे दिल में लग गई परन्तु उसने उसे मन में ही रखा और किसी को नहीं बताया । जब वह रात को घर आयी तो वहाँ से पुरुष का वेश बनाकर चल पड़ी ॥ ४ ॥ चलती-चलती वह वहाँ जा पहुँची जहाँ विलासवती नगरी थी । उसने वहाँ पहुँचकर जुए की धूम मचा दी और छोटे-बड़े सबको चकित कर दिया ॥ ५ ॥ बड़े-बड़े जुआरी हारकर राजा के पास जाकर पुकार करने लगे कि यहाँ एक ऐसा जुआरी आया है जो किसी से हराया नहीं जाता ॥ ६ ॥ राजा ने जब यह सुना तो स्वयं जुआ खेलने का उपक्रम किया । उसने कहा कि उसे यहाँ बुला लो जिसने सारे जुआरियों को हरा दिया है ॥ ७ ॥ सेवक वचन सुनकर वहाँ पहुँचे जहाँ कुँवरि जुआरियों को हरा रही थी । उससे कहा कि तुम्हें राजा ने बुलाया है और वह तुमसे जुआ खेलना चाहता है ॥ ८ ॥ स्त्री जब राजा के निकट पहुँची तो उसने विभिन्न प्रकार से जुआ खेलना शुरू कर दिया । उसने राजा का इतना द्रव्य हरवा दिया कि ब्रह्मा से भी नहीं गिना जा सकता ॥ ९ ॥ जब राजा विभिन्न प्रकार से द्रव्य हार गया तो उसने अपने पुत्र को दाँव में लगाया । उसे हराकर फिर देश को लगा दिया । वह

भायो ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ जीति सकल धन तवन को दीना
देस निकार । कुअर जीति करि पति करा बसी धाम हवै
नार ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ चंचलान के चरित को सकत न
कोई बिचार । ब्रहम बिशन शिव खटबदन जिन सिरजी
करतार ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ छत्तीस चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३३६ ॥ ६३२६ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ सैंतीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ जमलसेन राजा बलवाना । तीन लोक
मानत जिह आना । जमला टोडी को नरपाला । सूरबीर अरु
बुद्धि बिसाला ॥ १ ॥ सोरठ दे रानी तिह सुनियत । दान
शील जाको जग गुनियत । परजमती दुहिता इक ताकी ।
नरी नागनी सस नहि जाकी ॥ २ ॥ बिसहर को इक हुतो
त्रिपाला । आयो गढ़ जमला किह काला । छाछ कामनी की
पूजा हित । मन क्रम बचन इहै करि करि ब्रत ॥ ३ ॥ ठाढ़ि

कुँवर को जीत गई और उससे मनचाहा रमण किया ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ उसका
समस्त धन जीतकर उसे देश से निकाल दिया और कुँवर को जीतकर उसे
पति बनाकर वह उसके घर में बस गई ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ स्त्रियों के
प्रपंच को ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कार्तिकेय एवं स्वयं परमात्मा भी नहीं जान
सका है ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ छत्तीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३३६ ॥ ६३२६ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ सैंतीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ जमलसेन एक बलवान राजा था जिससे तीनों लोक
डरते थे । जमल, टोडी का राजा था और सूरवीर तथा बुद्धिमान था ॥ १ ॥
सोरठदेवी उसकी रानी संसार में दानी और शीलवान जानी जाती थी ।
उसकी एक पुत्री परजमती थी जिसके समान कोई नर, नाग-स्त्री नहीं
थी ॥ २ ॥ बिसहर का एक राजा था जो जमल के किले में आया । वह
शीतलादेवी की मन, वचन और कर्म से पूजा करना चाहता था ॥ ३ ॥
परजदेवी अपने निवास में खड़ी थी और उसने दुखों को दूर करनेवाले

परज दे नीक निवासन । राजकुअर निरखा दुख नासन ।
 इहै चित मै किअसि बिचारा । बरौ याहि करि कबन
 प्रकारा ॥ ४ ॥ सखी भेजि तिह धाम बुलायो । भाँति भाँति
 को भोग कमायो । इह उपदेश तवन कह दयो । गौरि पुजाइ
 बिदा करि गयो ॥ ५ ॥ बिदा कीया तिह ऐस सिखाइ ।
 आपु त्रिपति सो कही जताइ । मनीकरन तीरथ मै जैहौ ।
 न्हाइ धोइ जमला फिरि ऐहौ ॥ ६ ॥ जात तीरथ जाब्रा कह
 भई । शहिर बेशहिर मों चलि गई । होत तवन सौ भेद
 जतायो । मन मानत के भोग कमायो ॥ ७ ॥ काम भोग
 करि कै घर राखी । रच्छ पालकन सो अस भाखी । बेगि
 नगर ते इनै निकारहु । हाथ उठावै तिह हनि मारहु ॥ ८ ॥
 सो तरुनी तिह रसि रसि गई । काढि समिग्री सिगरी दई ।
 इह छल साथ लहा मन भावन । सका चीन कोऊ पुरख
 उपाव न ॥ ९ ॥ काढि दए सभ ही रखवारे । लोह करा
 जिन ते हनि डारे । जमलेस्वर त्रिप सौ यौ भाखी । तुमरी
 छीनि सुता त्रिप राखी ॥ १० ॥ बेसहरा (म०प्र० १२६५) पर
 कछु न बसायो । सुनत बात त्रिप मूँड दुरायो । इह

राजकुँवर को देखा । उसने मन में विचार कर लिया कि किसी भी प्रकार
 इसी का वरण करूँगी ॥ ४ ॥ उसने सखी को भेजकर उसे घर बुलाया और
 भाँति-भाँति के भोग किये । उसे कुछ समझाया और गौरी की पूजा करवाकर
 विदा कर दिया ॥ ५ ॥ उसे तो सिखाकर विदा कर दिया और स्वयं राजा
 से कहा कि मैं मनीकरण तीर्थ पर जाऊँगी और स्नान के बाद जमला के यहाँ
 जाऊँगी ॥ ६ ॥ तीर्थयात्रा को गई और बेसहर में जा पहुँची । उससे सारा
 भेद कहा और मनचाही रमण-क्रीड़ा की ॥ ७ ॥ उसने केलिक्रीड़ा के बाद
 उसे घर रख लिया और रक्षकों से कहा कि इन्हें अर्थात् साथियों को शीघ्र
 नगर से निकाल दो और जो हाथ उठाए उसे मार डालो ॥ ८ ॥ वह स्त्री तो
 प्रेम-विभोर हो उठी और उसने लाई हुई सारी सामग्री प्रस्तुत कर दी । इस
 छल से उसने मनभावन प्रिय को प्राप्त किया जिसे कोई भी पुरुष न जान
 सका ॥ ९ ॥ सभी साथी रक्षकों को निकाल दिया गया और जो लड़े उन्हें
 मार डाला गया । लोगों ने जमलेश्वर राजा से कहा कि तुम्हारी पुत्री को
 राजा ने छीन लिया है ॥ १० ॥ राजा का बेसहर पर कुछ भी वश नहीं था ।

छल बरा कुअरि बहु राजा । बाइ रहा मुख सकल
समाजा ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ सैंतीस चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३३७ ॥ ६३३७ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ अठतीस चरित्र कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ नगर बिभासावती मै करन बिभास नरेस ।
जाके तेजरत्नास कौ जानत सगरो देस ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ मती
बिबास तवन की रानी । सुंदरि भवन चतवस जानी ।
सात सवति ताकी छवि मान । जानुक सात रूप की
खान ॥ २ ॥ आयो तहाँ एक बैरागी । रूपवान गुनवान
तिआगी । स्याम दास ताको भनि नामा । निस दिन निरखि
रहत तिह बामा ॥ ३ ॥ मती बिभास तवन रस राची ।
काम भोग पितवा के साची । गवन करौ तासौ मन भावै ।
सवतिन शोक ह्रिदै सहि आवै ॥ ४ ॥ अहिधुज दे झख केतमती
भनि । पुहपमंजरी फूलमती गनि । नागरि दे नागनि दे

वह बात सुनकर मुँह लटकाकर बैठ गया । इस छल से उस कुंवरे ने उस
राजा का वरण किया और समाज मुँह देखता ही रह गया ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सैंतीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३३७ ॥ ६३३७ ॥ अफजू ॥

तीन सौ अड़तीसवाँ चरित्र-कथन

॥ दोहा ॥ विभासावती नगरी में कर्णविभास नामक राजा था
जिसके तेज और भय को सारा देश जानता, मानता था ॥ १ ॥
॥ चौपाई ॥ उसकी रानी विभासमती थी जो चौदह भुवनों में सुन्दर मानी
जाती थी । उसकी सुन्दर सात सौतनें थीं जो मानों रूप की खानें थीं ॥ २ ॥
वहाँ एक बैरागी आया जो रूपवान, गुणवान और त्यागी था । उसका नाम
स्यामदास था जिसे स्त्रियाँ रात-दिन देखा करती थीं ॥ ३ ॥ विभासमती
उसके प्रेम में लीन हो उस मित्र के साथ भोगरत रहती थी । वह उससे
मनचाहा ममन करती थी और उसकी सौतनों के मन में शोक उत्पन्न होता
था ॥ ४ ॥ अहिध्वजदेवी ने केतुमती से कहा और पुष्पमंजरी ने फूलमती
से मंत्रणा की । वहाँ नागरी देवी और नागिन देवी थी और नृत्यमती सारे

रानी । चित्तमती सभ ही जग जानी ॥ ५ ॥ तिन दिन
 एक करी भिजमानी । निवति पठी सभ ही घर रानी । बिखु
 कौ भोजन सभन खवाइ । सकल दई अतिलोक पठाइ ॥ ६ ॥
 बिखु कह खाइ मरीं सवतै सब । रोवत भई बिभासमती तब ।
 पाप करम कीना में भारो । धोखे लवन इनै बिखु
 खवारो ॥ ७ ॥ अब में गरौ हिमांचल जाइ । कै पावक महि
 बरौ बनाइ । सहचरि सहस हटक तिह रही । मानत भई
 न तिन की कही ॥ ८ ॥ वहै संग बैरागी लीना । जासौ
 काम भोग कह कीना । लोग लखैं त्रिय गरबे गई । किन्हू
 बात जानि नहि लई ॥ ९ ॥ मूरख राइ बाइ मुछ रहा ।
 भला बुरा कछु ताहि न कहा । नारि जहुरि के साथ
 सिधाई । बात भेद की किन्हु न पाई ॥ १० ॥ त्रिय को
 चरित न बिधना जानै । महाँ रुद्र भी कछु न पछानै ।
 इन की बात एक ही पाई । जिन इसती जगदीस
 बनाई ॥ ११ ॥ १ ॥ (मू० प्र० १२९६)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ अठतीस चरित्र
 समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ ३३८ ॥ ६३४८ ॥ अफजूं ॥

संसार में जानी जाती थी ॥ ५ ॥ उस रानी (विभासमती) ने एक दिन
 मेज़वानी की और सब रानियों को न्यौता दे दिया । सबको विषयुक्त
 भोजन खिलाकर उसने मृत्युलोक भेज दिया ॥ ६ ॥ जब विष खाकर सभी
 सौतनें मर गईं तो विभासमती रोने लगी । मुझसे पापकर्म हो गया है
 और नमक के धोखे में मैंने जहुर डालकर इन्हें खिला दिया है ॥ ७ ॥ अब
 मैं हिमालय में जाकर गल जाऊंगी अथवा आग में जल मरूंगी । उसे उसकी
 सखियाँ मनाती रहीं पर उसने उनकी एक नहीं मानी ॥ ८ ॥ उसने उसी
 बैरागी को साथ लिया जिसके साथ उसने कामभोग किया था । लोगों ने
 सोचा कि स्त्री गलने के लिए चल पड़ी है और कोई भी रहस्य को
 न जान सका ॥ ९ ॥ मूर्ख राजा मुँह खोले खड़ा रहा और उसने उस स्त्री
 को कुछ भी भला-बुरा नहीं कहा । वह स्त्री अपने यार के साथ चल
 दी और रहस्य की बात कोई भी न जान सका ॥ १० ॥ स्त्री के प्रपंचों को
 विधाता भी नहीं जान सकता और रुद्र भी इनकी पहचान नहीं कर सकता ।
 इसकी बात तो केवल एक परमात्मा ही जान सकता है ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ अठतीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३३८ ॥ ६३४८ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ उनतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ सुनियत इक नगरी उजियारी । बिमुकरमा
निजु हाथ सवारी । नामु अलूरा ताको सोहै । तीनो लोक
रचित तिन सोहै ॥ १ ॥ भूपभद्र तिह गड़ को राजा ।
राजपाट ताही कह छाजा । रतनमती तिह त्रिप की रानी ।
अधिक कुरूप जगत महि जानी ॥ २ ॥ ताके निकट न राजा
जावै । निरखि नारि को रूप डरावै । अवर रानियन के
घर रहै । तासौ बैन न बोला चाहै ॥ ३ ॥ यह दुख अधिक
नारि के मनै । चाहत प्रीति त्रिपति सौ बनै । एक जतन
तब किया पियारी । सुनहु कहत हौ कथा विचारी ॥ ४ ॥
पूजा करत लखयो जब राजा । तब तन सजा सकल त्रिय
साजा । सहाँ रुद्र को भेस बनाइ । अपनै अंग बिभूति
चढ़ाइ ॥ ५ ॥ करत हुतो राजा जपु जहाँ । शिव बनि आनि
ठाढ़ि भी तहाँ । जब राजै तिह रूप निहरा । मन क्रम ईस
जानि पग परा ॥ ६ ॥ सुफल भयो अब जनम हमारा ।
महादेव को दरस निहारा । कह्यो करी मैं बडी कमाई ।

तीन सौ उनतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ एक सुन्दर नगरी सुनी जाती है जिसे विश्वकर्मा ने मानों
अपने हाथों से बनाया हो । उसका नाम अलूरा (एलोरा) था जो तीनों
लोकों का मन मोहती थी ॥ १ ॥ वहाँ का राजा भूपभद्र था जिसका
राजपाट शोभायमान था । रतनमती उस राजा की रानी थी जो बेहद
कुरूप मानी जाती थी ॥ २ ॥ राजा उसके पास नहीं जाता था और रानी
का रूप देखकर डरता था । वह अन्य रानियों के घर रहता था और उससे
बात भी नहीं किया करता था ॥ ३ ॥ उस रानी के मन में यह गहरा दुख था
और वह चाहती थी कि किसी प्रकार राजा से प्रीति बने । तब उस प्रिया ने
जो एक यत्न किया वह मैं तुमसे कहता हूँ, इस कथा को विचारपूर्वक
सुनो ॥ ४ ॥ जब राजा को पूजा करते देखा तो उस स्त्री ने अपने शरीर
को भली-भाँति सुसज्जित किया । उसने महादेव का वेश बनाया और अपने
अंगों पर भभूत रमा ली ॥ ५ ॥ जहाँ राजा जाप कर रहा था वह वहाँ
शिव बनकर आ खड़ी हुई । राजा ने जब उसे देखा तो मन-वचन-कर्म से
उसे शिव जानकर उसके पाँवों में आ पड़ा ॥ ६ ॥ मेरा जन्म सफल हो

जाते दीनी रुद्र दिखाई ॥ ७ ॥ बरं ब्रूह तिह कहा नारि तब ।
 जौ जड़ रुद्र लख्यो जाना जब । तैं सुरि करी सेव भाखा
 अति । तब तहि दरसु दियो मैं सभ सति ॥ ८ ॥ सुनि बच
 नारि राइ हरखाना । भेद अभेद जड़ कछू न जाना । त्रिय
 के चरन रहा लपटाई । नारि चरित की बात न पाई ॥ ९ ॥
 तब ऐसा त्रिय किया उचारा । सुनहु बात तुम राजकुमारा ।
 रतनमती तुमरी जो रानी । यह सुरि अति सेवकी
 प्रमानी ॥ १० ॥ जौ यासौ तुम करहु पयारा । ह्वैहै तुमरो
 सब उधारा । शत्रु होइगो नास तिहारो । तब जानौ तूं भगत
 हमारो ॥ ११ ॥ यौ कहि लोकंजन द्विग डारी । भई लोप
 नहि जाइ निहारी । मूढ़ राव तिह रुद्र प्रमाना । भेद अभेद
 कछु पसू न जाना ॥ १२ ॥ तब ते तासौ किया पयारा ।
 तजि करि सकल सुंदरी नारा । इह छल छला चंचला राजा ।
 आलूरे गढ़ को सिरताजा ॥ १३ ॥ १ ॥ (सू०ग्रं० १२६७)

॥ इति स्त्री चरित पद्याने त्रिया चरिते मंत्री भूप संवादे तीन सौ उनतालीस चरित
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३३६ ॥ ६३६१ ॥ अफजू ॥

गया है, क्योंकि मैंने महादेव का दर्शन कर लिया है । उसने कहा कि मैंने
 बड़ी कमाई की है जिससे मुझे रुद्र ने दर्शन दिया है ॥ ७ ॥ जब इस मूर्ख
 ने उसे रुद्र मान लिया तो उस स्त्री ने कहा कि तुम वरदान माँगो । उसने
 कहा कि तुमने मेरी बहुत सेवा की है, इसलिए मैंने तुम्हें दर्शन दिए हैं ॥ ८ ॥
 स्त्री के वचन सुनकर राजा हर्षित हो उठा और उस जड़ ने भेद-अभेद कुछ
 नहीं समझा । वह स्त्री के चरणों में लिपट गया और उसके प्रपंच की बात
 को न जान सका ॥ ९ ॥ तब स्त्री ने राजा से कहा कि हे राजकुमार ! तुम
 मेरी बात सुनो । तुम्हारी रानी जो रतनमती है वह मेरी प्रामाणिक
 सेविका है ॥ १० ॥ यदि तुम उससे प्रेम करोगे तो तुम्हारा उद्धार होगा ।
 तब तुम्हारे शत्रुओं का नाश होगा और तुम मेरे भक्त के रूप में जाने
 जाओगे ॥ ११ ॥ यह कहकर उसने लोकंजन नामक सुरमा आँखों में डाला
 और लोप हो गई । मूर्ख राजा ने उसे रुद्र माना और भेद-अभेद कुछ भी
 नहीं जाना ॥ १२ ॥ तब से समस्त अन्य सुन्दर स्त्रियों को त्यागकर वह
 उससे प्यार करने लगा । इस छल से उस स्त्री ने राजा को छला जो
 अलूरगढ़ का सिरताज था ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ उनतालीसवें
 चरित की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३३६ ॥ ६३६१ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ चालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ मथुरा नाम हमारे रहै । जग तिह
त्रियहि गुलाबो कहै । रामदास नामा तह आयो । निरखि
नारि तिह मदन सतायो ॥ १ ॥ बहुत बरिस तासौ बहु रहा ।
पुनि ऐसे तिह त्रिय सौ कहा । आउ होहि हमरी तै नारी ।
कसि देहैं तुहि यह मुरदारी ॥ २ ॥ भली भली अबला तिन
भाखी । चित महि राखि न काहू आखी । जब मथुरा आयो
तिह धामा । तब असि बचन बखान्यो बासा ॥ ३ ॥ हरीचंद
राजा जग भयो । अंत काल सो भी मरि गयो । मानघात
प्रभ भूष बढ़ायो । अंत काल सोऊ काल खपायो ॥ ४ ॥
जो नर नारि भयो सो मरा । या जग महि कोऊ न उबरा ।
इह जग थिर एकै करतारा । और अतक इह सगल
संसारा ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ या जग महि सोई जियत पुन्य
दान जिन कीन । सिखियन की सेवा करी जो मांगे सो
दीन ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ यह उपदेश सुनत जड़ ढरियो ।
बहुरि नारि सौ बचन उचरियो । जो उपजै जिय भली

तीन सौ चालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चोपाई ॥ मथुरा नामक स्त्री हमारे यहाँ रहती थी जिसे लोग
गुलाब (के समान सुन्दर) मानते थे । रामदास नामक एक व्यक्ति आया
जो स्त्री को देखते ही कामासक्त हो गया ॥ १ ॥ वह बहुत वर्षों तक
उसके साथ रहा और फिर स्त्री से उसने कहा कि आओ तुम मेरी पत्नी
बन जाओ, तुम्हें इस सेविकाई में भला क्या हासिल होगा ॥ २ ॥ उस स्त्री
ने “भला-भला” कहा और बात मन में ही रखते हुए किसी अन्य को नहीं
बताई । जब मथुरा उनके घर आ गई तब उस स्त्री ने कहा ॥ ३ ॥ राजा
हरिश्चन्द्र हुआ लेकिन अन्त में काल की गोद में समा गया । मांघाता
नामक सम्राट् हुआ, अन्त में वह भी काल के गाल में समा गया ॥ ४ ॥ जो
भी स्त्री-पुरुष इस संसार में पैदा हुए वे सब मर गए; इस संसार से बचकर
कोई भी नहीं गया । इस संसार में केवल एक परमात्मा ही स्थिर है अन्य
सभी मरणशील हैं ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस संसार में तो वही जीवित
(अमर) रहता है जिसने पुण्यदान किया हो और जिज्ञासुओं की सेवा कर
उन्हें मुंह मांगा दान दिया हो ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ यह उपदेश सुनकर वह

तिहारै । वहै काम में करौ सवारै ॥७॥ ॥ त्रिय बाच ॥ फटा
बस्त्र जाका लखि लीजै । बस्त्र नवीन तुरत तिह दीजै ।
जाकै घरि महि होइ न दारा । ताकहूँ दीजै अपनी नारा ॥८॥
रामदास तब ताहि निहार्यो । धन बिहीन बिनु नारि
बिचार्यो । धनहूँ दिया नारि हूँ दीनी । भली बुरी जड़ कछू
न चीनी ॥ ९ ॥ इह छल गई जार के नारा । बस्त्र दरब
ले साथ अपारा । इह आपन अति साध पछाना । भली बुरी
का भेव न जाना ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूष संवादे तीन सौ चालीस चरित्र
समाप्तम् सतु शुभम् सतु ॥ ३४० ॥ ६३७१ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ इक्यालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुकृतावती नगर इक सुना । सुकृतसेन
राजा बहु गुना । सुभलच्छनि दे नारि बिराजै । चंद्र सूर
की लखि इति लाजै ॥ १ ॥ स्त्री अपच्छरादेइ सु बाला ।
मानहु सकल राग की माला । कही न जात तवन की सोभा ।

मूर्ख द्रवित हो उठा और स्त्री से कहने लगा कि जो तुम्हारे मन में हो मैं
वही करूँगा ॥ ७ ॥ ॥ स्त्री उवाच ॥ जिसके फटे कपड़े देखो उसे तुरन्त
नये वस्त्र प्रदान करो; जिसके घर में स्त्री न हो उसे अपनी स्त्री दे दो ॥ ८ ॥
रामदास ने तब देखा कि कुछ धनहान हैं और कुछ नारी-विहीन हैं । धन-
हीनों को उसने धन दे दिया और अन्यो को उसने स्त्री दे दी । इस प्रकार
उस जड़ ने भला-बुरा कुछ नहीं पहचाना ॥ ९ ॥ इस छल से वह स्त्री अन्य
यारों के पास चली गई और साथ में अपार द्रव्य व वस्त्र ले गई । अपने
आपको वह साधु मानने लगा और भला-बुरा न जान सका ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूष-संवाद में तीन सौ चालीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३४० ॥ ६३७१ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ इकतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सुकृतावती नगर में सुकृतसेन नामक गुणज्ञ राजा था ।
शुभलक्षण देवी उसकी नारी थी जो चन्द्र-सूर्य को देखकर भी लजा उठती
थी ॥ १ ॥ अप्सरा देवी उनकी सुन्दर पुत्री थी जो मानों रागमाला के
समान थी । उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता और इन्द्र, चन्द्र

इंद्र चंद्र जस रवि लखि लोभा ॥ २ ॥ तह इक आइ गयो
 सौदागर । पूत साथ तिह जानु प्रभाकर । राज सुता तिह
 ऊपर अटकी । चटपट लाज लोक की सटकी ॥ ३ ॥
 चतुरि जानि तह (सू० प्र० १२६८) सखी पठाई । ज्यों ज्यों तहाँ
 ताहि लै आई । राज सुता तासौ रति मानी । केल करत
 सभ राति बिहानी ॥ ४ ॥ बाढा बिरह दुहन को ऐसा ।
 हम तें भाखि न जाई कैसा । एक छोरि इक अनतन जावैं ।
 पलक ओट जुग कोटि बिहावैं ॥ ५ ॥ कामभोग करि बदा
 संकेता । लाग्यो शाह पुत्र सो हेता । मुहि अपने लै संग
 सिधारो । तब जानौ तें यार हमारो ॥ ६ ॥ तासौ रति
 करि धाम सिधायो । किया जतन जो हितू सिखायो । वस्त्र
 बहुत बहु मोल पठाए । प्रथम विपति कह सकल दिखाए ॥ ७ ॥
 पुनि रनिवासहि पठै बनाए । राजसुतहि अस गयो जताए ।
 जो पसंद इन सै ते कीजै । सो दे वस्त्र मोलि मुरि लीजै ॥ ८ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ रानी मालु दिखाइ बहुरि लै कुअर दिखायो ।
 लपटि तरुनि तिह साँहि आपनो अंग दुरायो । गई मित्त के

तथा सूर्य भी उसके रूप के लोभी थे ॥ २ ॥ वहाँ एक सौदागर आ गया
 जिसके साथ सूर्य के समान तेजस्वी उसका पुत्र था । राजकुमारी उस पर
 आसक्त हो गई और उसने लोक-लाज आदि तुरन्त विस्मृत कर दी ॥ ३ ॥
 उसने एक सखी को चतुर समझकर उसके पास भेजा जो उसे जैसे-तैसे वहाँ
 ले आई । राजकुमारी ने उससे श्रमण किया और कामक्रीड़ा में ही सारी
 रात बीत गई ॥ ४ ॥ दोनों का विरही प्रेम इतना बढ़ा कि मुझसे उसका
 वर्णन नहीं हो सकता । एक-दूसरे को छोड़कर कोई भी अन्य स्थान पर
 नहीं जाता था और पल भर दूर रहना उन्हें युगों के समान लगता था ॥ ५ ॥
 कामभोग के बाद उस स्नेही धनी-पुत्र के साथ बाजी लगी कि मैं तुम्हें तभी
 अपना सच्चा प्रेमी मानूँगी यदि तुम मुझे अपने साथ भगाकर ले चलो ॥ ६ ॥
 वह उसके साथ कामक्रीड़ा कर घर चला गया और जैसे-उसे सिखाया गया
 था उसने वैसा ही प्रयत्न किया । उसने बहुत से वस्त्र मोल लिये और सभी
 राजा के समक्ष प्रस्तुत किए ॥ ७ ॥ फिर उन्हें रनिवास में भेज दिया
 और राजकुमारी को भी जता दिया । जो वस्त्र इनमें से पसन्द करो उसका
 मोल मुझे दे देना ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ रानी को माल दिखाकर फिर
 कुँवर को दिखाया गया । उस तरुणी ने अपने अंग उन्हीं वस्त्रों में छिपा
 लिये । वह मित्त के घर चली गई और राजा ने तनिक भी विचार नहीं

धाम न भूप बिचारियो । हो इह छल तिह लै साथ हरीफ
सिधारियो ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ भाँगन भौदू पियत थो राहत
भयो परबीन । दुहिता हरी हरीफ यौ सका न जड़ छल
चीन ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ इक्यालीस चरित्र
समापतम सत् सुभम सत् ॥ ३४१ ॥ ६३८१ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ बतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ उत्तर दिसा प्रगट इक नगरी । स्त्री
ब्रिजराजवती सु उजगरी । स्त्री ब्रिजराजसेन तह राजा ।
जाकह निरखि इंद्र अति लाजा ॥ १ ॥ स्त्री ब्रिजराजमती तिह
रानी । सुंदरि भवन चतरदस जानी । स्त्री बरंगना दे तिह
बाला । जनु निरधूम अगनि की ज्वाला ॥ २ ॥ चतुरि
सखी जब ताहि निहारै । मधुर बचन मिलि ऐस उचारै ।
जैसी इह है दुतिय न जई । आगे होइ न पाछे भई ॥ ३ ॥
जब बरंगना देइ तरुनि भी । लरिकापन की बात बिसरिगी ।

किया और इस प्रकार छल के साथ वह प्रमी प्रेमिका को लेकर चलता
बना ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ राजा जो अपने आपको बहुत प्रवीण समझता था
मानों भाँग पिये हुए था । उसकी पुत्री को उसका मित्र हरण करके ले
गया और यह मूर्ख उसे पहचान ही नहीं सका ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ इकतालीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३४१ ॥ ६३८१ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ बयालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ उत्तर दिशा में श्री ब्रजराजवती नामक एक प्रसिद्ध
नगर था । वहाँ का राजा ब्रजराजसेन था जिसे देखकर इंद्र भी लज्जित
होता था ॥ १ ॥ ब्रजराजमती उसकी रानी थी जो चौदह भुवनों में सुंदर
जानी जाती थी । वारंगनादेवी उसकी पुत्री थी जो मानों आग की लपटों
के समान थी ॥ २ ॥ जब चतुर सखियाँ उसे देखती थीं तो मधुरतापूर्वक
यही कहती थीं कि इसके समान अन्य किसी ने जन्म नहीं लिया है । न तो
कोई पहले हुई है न आगे होगी ॥ ३ ॥ जब वारंगनादेवी तरुणी हुई और
वचन की यादें उसे विस्मृत हो चलीं तो उसने एक राजकुंवर को देखा और

राजकुअर तब ताहि निहार्यो । ता पर तरुनि प्रान कह
 वार्यो ॥ ४ ॥ तासौ कामभोग नित भानै । द्वै तै एक
 देह करि जानै । तब चतुरा इह चरित बिचार्यो । कहो
 त्रिपति सो प्रगट उचार्यो ॥ ५ ॥ सो कौ स्नाप सदाशिव
 दीना । ताते जनस तिहारे लीना । स्नाप अवधि पूरन ह्वै
 है जब । पुनि जै हौ हरि (म० ग्रं० १२६६) लोक बिखै तब ॥ ६ ॥
 इक दिन गई मित्र के संगी । लिखि पत्रा पर अपने अंगा ।
 स्नाप अवधि पूरन अब भई । सुरपुर सुता तिहारी गई ॥ ७ ॥
 अब जो धाम हमारे भाला । सो दीजै दिज कौ ततकाला ।
 यार अपन ब्रह्मन ठहरायो । सकल दरब इह छल तिह
 द्यायो ॥ ८ ॥ इह चरित गी मित्रहि साथी । दै धन किया
 अनाथ सनाथा । सात पिता सभ अस लखि लई । स्नाप
 मुचित भयो सुरपुर गई ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ बतालीस चरित्र
 समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ ३४२ ॥ ६३६० ॥ अफजू ॥

उस पर प्राण न्योछावर कर दिए ॥ ४ ॥ वह उससे नित्य कामक्रीड़ा करती
 थी और दोनों अपना शरीर एक ही समझते थे । तब उस चतुर स्त्री ने
 एक प्रपंच सोचा और प्रकट में राजा से कहा ॥ ५ ॥ मुझे शिव ने शाप
 दिया था जिससे मैंने तुम्हारे यहाँ जन्म लिया है । जब शाप की अवधि
 पूरी हो जायगी तो मैं फिर शिवलोक को चली जाऊँगी ॥ ६ ॥ एक दिन
 अपने हाथ से पत्र लिखकर वह मित्र के साथ चली गई । (उसने लिखा था
 कि) शाप की अवधि पूरी हो गई है और तुम्हारी पुत्री देवलोक को चली गई
 है ॥ ७ ॥ अब जो मेरे घर में द्रव्य है वह तुरन्त ब्राह्मण को दान कर दो ।
 अपने प्रेमी को उसने ब्राह्मण बना दिया और छल से सारा धन उसे दिला
 दिया ॥ ८ ॥ इस छल से वह मित्र के साथ चली गई और अनाथ को धन देकर
 धनी बना दिया । माता-पिता ने यह मान लिया कि उसका शाप समाप्त
 हो गया और वह देवलोक चली गई है ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ बयालीसवें चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३४२ ॥ ६३६० ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ त्रितालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ सोरठ देस बसत है जहाँ । दिजवरसेन
नराधिप तहाँ । सती सुमेर तवन की नारी । दुतिय न जग
मै ऐसि कुमारी ॥ १ ॥ सोरठदेइ सुता इक ताके । और
नार सम तुलि न वाके । दुतिय परजदे भई कुमारी । जिह
सी दुतिय न ब्रह्म सवारी ॥ २ ॥ दोऊ सुता तरुनि जब
भई । जन करि किरणि सूर ससि बई । ऐसी प्रभा होत भी
तिनकी । बाछा करत बिधाता जिनकी ॥ ३ ॥ ओजसेन
इक अनत त्रिपति बर । जनु करि सैन प्रगटियो बपु धरि ।
सो त्रिप खेलन छड़ा शिकारा । रोझ रीछ मारे झंखारा ॥ ४ ॥
निकस्यो तहाँ एक झंखारा । द्वादस जाके सींग अपारा ।
त्रिप तिह निरखि तुरंग धवावा । पाछे चला कोस बहु
आवा ॥ ५ ॥ बहुत कोस तिह झिगहि दखेरा । चाकर एक
न पहुचा नेरा । आयो देस सोरठी के महि । त्रिप की सुता
अन्हात हुती जहि ॥ ६ ॥ आनि तही झंखार निकारा ।

तीन सौ तेंतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सोरठ देश में द्विजवरसेन नामक राजा था । उसकी
स्त्री सुमेरमती थी जिसके समान दुनिया में अन्य कोई स्त्री नहीं थी ॥ १ ॥
उनकी एक पुत्री सोरठदेवी थी जिसके समान भी अन्य कोई स्त्री नहीं थी ।
परजदेवी एक अन्य राजकुमारी थी जिसके समान ब्रह्मा ने किसी को नहीं
बनाया था ॥ २ ॥ दोनों कन्याएँ जब बड़ी हुईं तो ऐसी थीं मानों चाँद-
सूरज की किरणें हों । उनकी सुन्दरता ऐसी थी कि विधाता भी वैसी
सुन्दरता की आकांक्षा किया करता था ॥ ३ ॥ ओजसेन एक अन्य राजा था
जो मानों कामदेव के अवतार के रूप में संसार में प्रकट हुआ था । वह
राजा शिकार खेलने के लिए गया और उसने रोझ, रीछ, हिरण आदि
मारे ॥ ४ ॥ उधर से एक हिरण आ निकला जिसके बारह सींग थे ।
राजा ने उसे देखकर उसके पीछे घोड़ा दौड़ाया और बहुत कोस चला
आया ॥ ५ ॥ अनेकों कोस तक वह मृग दिखता रहा परन्तु कोई भी सेवक
साथ न पहुँच सका । वह (चलता-चलता) सोरठ देश में आ गया जहाँ
राजा की पुत्री स्नान कर रही थी ॥ ६ ॥ हिरण वहाँ आ निकला जिसे

अबला दुहूँ निहारति मारा । ऐसा बान तबन कह लागा । ठौर
रहा पग द्वेक न भागा ॥ ७ ॥ राजकुमारी दुहूँ निहारो । दुहूँ
हिंदै इह भाँति बिचारो । बिनु पूछे पितु इह हम बरिहैं । नातर
मारि कटारी भरिहैं ॥ ८ ॥ तब लगु भूप लिखानुर भयो ।
अग के सहित तहाँ चलि गयो । सो अगिराज सु तन कह
दीयो । तिन को सीत बारि लै पीयो ॥ ९ ॥ बाँधा बाज
एक द्रुम के तर । सोवत भयो हबै भूप खमातर । राज
कुमारन घात पछाना । सखियन सो अस किया बखाना ॥ १० ॥
मदरा बहु दुहूँ कुअरि मँगायो । (म० प्र० १३००) सात बार जो
हुतो चुआयो । अपन सहित सखियन कौ प्याइ । अधिक मत्त
करि दर्ई सुवाइ ॥ ११ ॥ जब जाना ते भई दिवानी । सोए
सकल पहरेआ जानी । दुहूँ सनाही लई मँगाइ । पहिरि
नदी मै धसी बनाइ ॥ १२ ॥ तरत तरत आई ते तहाँ ।
सोवत सुतो नराधिप जहाँ । पकरि पाव तिह दिया जगाइ ।
अजा चरम पर लिया चढ़ाइ ॥ १३ ॥ भूपति लिया चढ़ाइ
सनाई । सरिता बीच परी पुनि जाई । तरत तरत अपनो तजि
देसा । प्रापति भी तिह देस नरेसा ॥ १४ ॥ जब कछु सुधि

दोनों राजकुमारियों के देखते-देखते उस (ओजसेन) ने मार डाला । उसे
ऐसा बाण लगा कि वहीं रह गया और दो कदम भी न भाग सका ॥ ७ ॥
दोनों राजकुमारियों ने देखा और मन में विचार किया कि पिता से पूछे बिना
ही हम इसका वरण करेंगी अन्यथा कटार मारकर मर जाएंगी ॥ ८ ॥ तब
तक राजा को प्यास लगी और वह मृग-समेत उनके पास जा पहुँचा । राजा
ने वह मृग उन्हें दे दिया और उनसे ठंडा पानी लेकर पिया ॥ ९ ॥ घोड़े
को उसने एक पेड़ के नीचे बाँधा और थककर राजा सो गया । राजकुमारियों
ने अवसर देखकर अपनी सखियों से बताया ॥ १० ॥ दोनों राजकुमारियों
ने मदिरा मँगायी और उसे सात बार आसवित किया । स्वयं समेत सखियों
को पिलाकर अधिक मदमत्त कर उन्हें सुला दिया ॥ ११ ॥ जब उसने जाना
कि वे दीवानी हो गई हैं और सारे पहरेदार भी सो गए हैं तो दोनों ने हवा से
भरी मशकें मँगा लीं और उनके सहारे नदी में धँस गईं ॥ १२ ॥ तैरती-तैरती वे
वहाँ आ गई जहाँ राजा सोया हुआ था । उसे पाँव से पकड़कर जगा लिया
और उस बकरी की खाल (मशक) पर चढ़ा लिया ॥ १३ ॥ राजा को भी
मशक पर चढ़ाकर पुनः वे नदी में आ गईं । तैरते-तैरते वे अपना देश छोड़कर
उस राजा के देश में आ पहुँचीं ॥ १४ ॥ जब उन सखियों को कुछ होश आया

सखियन तिन पाई । त्रिसंदेह यौ ही ठहराई । मद सौ भई
जानु मतवारी । डूबि मुई दोऊ राजदुलारी ॥ १५ ॥
॥ दोहरा ॥ वै दोऊ त्रिप संग गई अनिक हिये हरखात ।
अजा चरम पर भूप बर दुहुँअन चला बजात ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ त्रितालीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३४३ ॥ ६४०६ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ चौतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ हरिद्वार इक सुन त्रिपाला । तेजिमान
दुतिमान छिताला । स्त्रीरस रंगमती तिह जाई । जिह सम
दूसरि बिधि न बनाई ॥ १ ॥ जब वह तखनि तखन अति भई ।
भूपसेन त्रिप कहि पित दई । सिरीनगर भीतर जब आई ।
लखि चंडालिक अधिक लुभाई ॥ २ ॥ पठै सहचरी लिया
बुलाई । त्रिप सौ भोग कथा बिसराई । रैन दिवस तिह लेत
बुलाई । रति अति नितप्रति करत बनाई ॥ ३ ॥ रसत
रसत ऐसी रसि गई । जनु कर नारि तवन की भई । सभ

तो उन्होंने निस्संदेह यही ठहराया कि मद (नशे) में मस्त दोनों राजकुमारियाँ
नदी में डूब गई हैं ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ वै दोनों ही प्रसन्न हो राजा के साथ
चली गई । राजा भी दोनों के साथ रमण करता हुआ उस बकरी की खाल
(की बनी मशक) पर चला गया ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ त्रितालीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३४३ ॥ ६४०६ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ चौवालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हरिद्वार का राजा तेजस्वी एवं छविमान था ।
रसरंगमती उसकी पुत्री थी जिसके समान विधाता ने अन्य किसी को
नहीं बनाया था ॥ १ ॥ जब वह कन्या जवान हो गई तो उसके पिता
ने उसे राजा भूपसेन को दे दिया । जब वह श्रीनगर में आयी तो वह
एक चांडाल को देखकर उस पर मोहित हो उठी ॥ २ ॥ उसने दासी
को भेजकर उसे बुला लिया और राजा के साथ रमण-लीला को मानों
भूल गई । उसे वह रात-दिन बुलाया करती थी और नित्यप्रति उसके
साथ रतिक्रीड़ा किया करती थी ॥ ३ ॥ धीरे-धीरे वह उसमें इतना

ब्रितांत कहि ताँहि सिखायो । सोवति समैं भूप कह घायो ॥४॥
 प्रात जरन के काज सिधाई । आगे राखि लए निजुराई ।
 जब चिता पर बैठी जाइ । चहूँ ओर दिगि आगि लगाइ ॥५॥
 चारो दिसा अगनि जब लागी । तब ही उतरि चिता पै भागी ।
 लोगन चरित क्रिया नहि जानी । दीनी तिसी चँडारहि
 रानी ॥ ६ ॥ यौ छलि छैलचिकनि सन गई । किनूँ न
 बात ताहि लखि लई । नारि अधिक मन हरख बढायो ।
 चाहत हुती सोइ पति पायो ॥ ७ ॥ तब ते आजु लगे उह
 देसा । (सू० प्र० १३०१) मारत त्रिय कौ प्रथम नरेसा । काठ
 तरे करि जाँहि जरावत । भाखि सकति नहि बात लजावत ॥८॥
 ॥ दोहरा ॥ तिह रानी के पुत्र तब राज करा तिह ठाव ।
 आजु लगे चंडालिये भाखत तिन को नाव ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ चौतालीस चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३४४ ॥ ६४१५ ॥ अफजूँ ॥

रम गई मानों वह उसी की स्त्री हो । उसे उस स्त्री ने सब कुछ समझा
 दिया और सोते हुए राजा को मार डाला ॥ ४ ॥ प्रातः वह जल भरने
 के लिए चल पड़ी और उसने अपने आगे राजा (के शव) को रख लिया ।
 जब वह चिता पर बैठ गई तो चारों ओर आग लगा दी ॥ ५ ॥ जब
 चारों दिशाओं में आग लग गई तो वह चिता से उतरकर भाग निकली ।
 लोगों ने उसके प्रपंच को नहीं जाना और उस रानी को उसी चांडाल के
 हवाले कर दिया ॥ ६ ॥ इस प्रकार वह छैल और चिकने अंगोंवाली
 चली गई और कोई भी उसकी बात को न जान सका । वह स्त्री मन में
 अत्यन्त प्रसन्न हो उठी क्योंकि उसे मनचाहा पति मिला था ॥ ७ ॥ तब
 से आज तक उस देश में राजागण स्त्रियों को (मरने से) पहले ही मार
 देते हैं । उन्हें लकड़ियों में जलाते हैं और ऐसा करने में तनिक भी लज्जा
 का अनुभव न करते ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ तब उस रानी के पुत्र ने वहाँ
 राज्य किया और चांडाल लोग आज तक उसका नाम लेते हैं ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में तीन सौ चवालीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३४४ ॥ ६४१५ ॥ अफजूँ ॥

अथ तीन सौ पैंतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ दौला की गुजराति बसत जह । अमरसिंघ
इक हुता त्रिपति तह । अंगनादे रानी तिह राजै । निरखि
दिवंगनन को मन लाजै ॥ १ ॥ राजा अधिक पीर कह मानै ।
भली बुरी जढ़ बात न जानै । तहा सुबरन सिंघ इक छत्री ।
रूपवान धनवान धरत्री ॥ २ ॥ सुंदर अधिक हुतो छतिरेटा ।
जनुक रूप सौ सकल लपेटा । जब तें निरखि नारि तिह गई ।
सुधि बुधि छाड़ि दिवानी भई ॥ ३ ॥ ता संग नेह सजा रुचि
मान । जानि बूझि ह्वै गई अजान । दई सहचरी तहिक
पठाइ । ज्यों त्यों तिह ग्रहि लिया मँगाइ ॥ ४ ॥ पोस्त
भाँग अफीम मँगाई । पानि डारि करि भाँग घुटाई । पान
किया दुहँ बैठि प्रजंकहि । रति मानी भरि भरि द्रिड़
अंकहि ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब टनाने कैफ के आए अखियन
माहि । करहि बिलास प्रजंक चड़ि हसि हसि नारि औ
नाहि ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ भाँति भाँति के आसन लैकै ।

तीन सौ पैंतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ दौला के गुजरात में अमरसिंह नामक एक राजा था ।
उस राजा की रानी अंगनादेवी थी जिसे देखकर देवस्त्रियाँ भी मन में
लज्जित होती थीं ॥ १ ॥ राजा एक पीर को अधिक मानता था और
भले-बुरे की पहचान नहीं कर पाता था । वहाँ स्वर्णसिंह नामक एक
क्षत्रिय था जो रूपवान, धनवान और वीर था ॥ २ ॥ वह क्षत्रिय-पुत्र
अत्यधिक रूपवान था और उसने मानों सारा सौंदर्य ही ओढ़ रखा था ।
जब से इस स्त्री ने उसे देखा वह सुधि भुलाकर उसी पर दीवानी हो
गई ॥ ३ ॥ वह उसके साथ प्रेम करने लगी और जान-बूझकर मानों
सब बातों से अनजान हो गई । उसने अपनी सखी को वहाँ भेजा और
जैसे-तैसे उसे अपने घर मँगवा लिया ॥ ४ ॥ पोस्त, भाँग, अफीम मँगाई
और पानी डालकर भाँग पिसवाई । पलंग पर बैठकर दोनों ने पान किया
और एक-दूसरे से आलिंगनबद्ध हो रतिक्रीड़ा की ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ जब
शराब का नशा आँखों में आया तो दोनों स्त्री-पुरुष पलंग पर चढ़कर
हँस-हँसकर विलास करने लगे ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ विभिन्न प्रकार के
आसन लगाकर और स्त्री को अनेकों प्रकार से रिझाकर उस मदनमोहिनी

अबला कह बहु भाँति रिझै कै । आपन पर घायल करि मारी ।
मदन मोहनी राजदुलारी ॥ ७ ॥ अधिक बढ़ाइ नारि सौ
हेता । इहि बिधि बाँधत भए संकेता । धूँई काल्हि पीर की
ऐयहु । डारि भाँग हलवा सहि जैयहु ॥ ८ ॥ सोफी जब
चूरमा खैहैं । जीयत नितक सभै हवै जैहैं । तहीं क्रिपा
करि तुमहूँ ऐयहु । मुहि लै संग दरब जुत जैयहु ॥ ९ ॥
जब ही दिन धूँई को आयो । भाँगि डारि चूरमा पकायो ।
सकल मुरीदन गई ख्वाइ । राखे मूढ़ मत्त करि स्वाइ ॥ १० ॥
सोफी भए जबै मतवारे । प्रियस दरब हरि बस्त्र उतारे ।
दुहूँअन लिया देस को पंथा । इह बिधि दै साजन कह
संथा ॥ ११ ॥ भया प्रात सोफी सभ जागे । पगरी बस्त्र
बिलोकन लागे । सरवर कहै क्रोध किय भारा ।
सभहिन (म०ग्रं० १३०२) कौ अस चरित दिखारा ॥ १२ ॥ सभ
जड़ रहो तहा मुख बाई । लज्जा मान मूँड निहुराई । भेद
अभेद न किनूँ पछाना । सरवर किया सु सिर पर माना ॥ १३ ॥

राजदुलारी को अपने पर मोहित कर लिया ॥ ७ ॥ उसने स्त्री से
अत्यधिक प्रेम बढ़ाया और आपस में मिलकर यह सलाह कर ली कि तुम
पीर के मेले के दिन आना और हलवे में भाँग डालकर चले आना ॥ ८ ॥
न नशा खानेवाले जब चूरमा खाएंगे तो सभी जीवित मृतक हो जाएंगे ।
तब तुम कृपा करके आ जाना और द्रव्य-समेत मुझे ले जाना ॥ ९ ॥ जब
मेले का दिन आया तो भाँग मिला चूरमा पकाया गया । सारे भक्तों को
खिला दिया गया और वे सब बेहोश पड़े रहे ॥ १० ॥ जब सभी सोफी
(न पीनेवाले) मतवाले हो गए तो पहले धन चुराकर फिर उनके वस्त्र
उतार लिये । दोनों ने अपने देश का रास्ता पकड़ लिया और इस प्रकार
उस सजन (पीर) को सबक दिया ॥ ११ ॥ सुबह होने पर सभी जागे
और अपनी पगड़ी, वस्त्रादि देखने लगे । सरवर (नामक पीर) क्रुद्ध हो
कहने लगा कि सबको ऐसा प्रपंच किसने दिखाया ॥ १२ ॥ सभी मूर्ख
वहाँ मुँह खोले खड़े रहे और लज्जा से सिर हिलाने लगे । किसी ने भेद-
अभेद न पहचाना और जो सरवर (वीर) ने किया उसे सत्य मान

॥ दोहरा ॥ भेद अभेद त्रियान को सकत न कोऊ पाइ । सभन लखो कैसे छला कस करि गई उपाइ ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ पैतालीस चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३४५ ॥ ६४२६ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ छितालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक कहौ कवित्त । जिह बिधि अबला किया चरित । सभहिन कौ दिन ही महि छला । निरखहु या सुंदरि की कला ॥ १ ॥ इशकावती नगर इक सोहै । इशकसेन राजा तह को है । स्त्री गजगाहमती तिह नारी । जा सम कहूँ न राजकुमारी ॥ २ ॥ इक रणदूलह सैन त्रिपति तिह । जा सम उपजा दुतिय न सहि महि । महा सूर अरु सुंदर घनो । जनु अवतार मदन को बनो ॥ ३ ॥ सो त्रिप इक दिन चढ़ा शिकारा । मारत रीछ रोझ झंझारा । इशकावती नगर तर निकसा । प्रभा बिलोकि नगर की बिगसा ॥ ४ ॥ अस सुंदरि जिह त्रिप की नगरी । कस ह्वैहै

लिया ॥ १३ ॥ ॥ दोहा ॥ स्त्रियों के रहस्य को कोई नहीं जान सकता । देखो उसने किस उपाय से सबको छला और चली गई ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ पैतालासवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३४५ ॥ ६४२६ ॥ अफजू ॥

तीन सौ छियालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपई ॥ हे राजा ! सुनो एक कवित्त कहता हूँ कि स्त्री ने किस प्रकार प्रपंच किया । इस सुन्दरी की कला देखो, इसने सबको दिन में ही छल लिया ॥ १ ॥ इशकावती नगरी में इशकसेन नामक एक राजा था । गजगाहमती उसकी स्त्री थी जिसके समान कोई राजकुमारी नहीं थी ॥ २ ॥ रणदूलहसेन एक (अन्य) राजा था जिसके समान धरती पर कोई अन्य राजा नहीं हुआ था । वह महान् वीर और अत्यन्त सुन्दर मानों कामदेव का अवतार बना हुआ था ॥ ३ ॥ वह राजा एक दिन शिकार के लिए गया और उसने रीछ, नीलगाय, हिरण आदि मारे । वह इशकावती नगर के पास आ निकला और नगर का सौंदर्य देखकर प्रसन्न हो उठा ॥ ४ ॥ जिस राजा की नगरी इतनी सुन्दर है उसकी स्त्री कितनी

तिह नारि उजगरी । जिह किह बिधि तिह रूप निहरियै ।
 नातर अतिथ इही हवै मरियै ॥ ५ ॥ बस्त्र उतारि मेखला
 डारी । भूखन छोरि भिभूति सवारी । सभ तन भेख अतिथ
 का धारा । आसन आन द्वार तिह मारा ॥ ६ ॥ केतक
 बरस तहाँ बिताए । राज तरुनि के दरसन पाए । कितक
 दिनन प्रतिबिंबु निहारा । चतुर भेद सभ गयो बिचारा ॥ ७ ॥
 तरुनी खरी सदन आनंद भरि । जल प्रतिबिंब परा तिह
 सुंदरि । तही सुवर तिह ठाढ निहारा । जानि गयो सभ भेद
 सुधारा ॥ ८ ॥ त्रियहु ताँहि प्रतिबिंबु लखा जब । इह
 बिधि कहा चित्त भीतर तब । इहु जनियत कोई राजकुमारा ।
 पारबतीस अरि को अवतारा ॥ ९ ॥ रानी बोलि सुरंगिया
 लीना । अति ही दरब गुप्त तिह दीना । निजु ग्रहि भीतरि
 सुरंगि दिवाई । काही तही न किनहूँ पाई ॥ १० ॥
 ॥ दोहरा ॥ सखी तिसी मारग पठी तहीं पहुँची जाइ । गहि
 जाँघन ते लै गई चला न (सू०ग्रं० १३०३) भूप उपाइ ॥ ११ ॥
 ॥ चौपई ॥ गहि त्रिप को लै गई सखी तह । रानी हुती
 बिलोकति मग जह । दिया मिलाइ मित्र ताको इन । मन

सुन्दर होगी । जैसे भी हो उसे देखा जाय अन्यथा यहीं फक्कीर बनकर मर
 जाया जाय ॥ ५ ॥ उसने वस्त्र उतारकर मेखला धारण की और गहनों को
 त्याग भभूत (शरीर पर) धारण कर ली । साधु का पूर्ण वेश बना कर वह
 राजा के दरवाजे पर आ बैठा ॥ ६ ॥ वहाँ कितने ही साल उसने बिता दिए
 पर राज-स्त्री का दर्शन न पा सका । कितने ही दिनों बाद उस विचारशील
 चतुर ने उसका प्रतिबिंब देखा ॥ ७ ॥ वह तरुणी आनन्दपूर्वक घर में
 खड़ी थी तो उसका प्रतिबिंब जल में पड़ा । उस सुन्दर व्यक्ति ने वहीं
 खड़े होकर देखा और सारे रहस्य को समझ गया ॥ ८ ॥ स्त्री ने भी
 जब उसका प्रतिबिंब देखा तो मन में कहा कि यह तो कोई राजकुमार
 और कामदेव का अवतार जान पड़ता है ॥ ९ ॥ रानी ने एक सुरंग
 बनानेवाले को बुलाया और उसे अपार द्रव्य गुप्त रूप से दिया । अपने
 घर में सुरंग बनवाई और सुरंग निकलवाने का किसी को पता भी न चल
 सका ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ उसी मार्ग से उसने सखी को भेजा जो उसे
 जंघाओं से पकड़कर ले गई और राजा जान भी न सका ॥ ११ ॥
 ॥ चौपाई ॥ वह सखी उसे पकड़कर वहाँ ले गई जहाँ रानी उसका रास्ता
 देख रही थी । उसने इसका मित्र मिला दिया और उन दोनों ने मनमानी

मानत रति करी दुहू तिन ॥ १२ ॥ भाँति भाँति चुंबन
 दुहूँ लीने । अनिक अनिक आसन लिय दीने । अस लुभधा
 राजा को चित्ता । जस गुनि जन सुनि स्रवन कबित्ता ॥ १३ ॥
 रानी कहत बचन सुनु सीता । तौसौ बधा हमारा चीता । जब
 ते तव प्रतिबिंबु निहारा । तबते मन हठ पर्यो हमारा ॥ १४ ॥
 नितिप्रति चहै तुमो संग जाऊँ । मात पिता की कानि न
 ल्याऊँ । अब किछु अस पिय चरित बनैयै । लाज रहै तोहि पति
 पैयै ॥ १५ ॥ छोरि कथा तिह भूप सुनाई । निजु त्रिप ताकी
 कथा जताई । मैहौ रास्ट्र देस को राजा । तव हित भेस
 अतिथ को साजा ॥ १६ ॥ नेत्र लगे तुम सौ हमरे तब ।
 तव प्रतिबिंबु लखे जल महि जब । तव मुरि जब प्रतिबिंबु
 निहारा । गयो सारि तुहि मदन कटारा ॥ १७ ॥ मुहि
 लखि धीरज न तुमरा रहा । सुरंगि खोदि सखियन अस कहा ।
 सो गहि मुहि गी तीर तिहारी । चहत जु थो सो भई
 पयारी ॥ १८ ॥ दुहूँ बैठ इक मंत्र बिचारा । मैं राजा
 लखि गयो रखवारा । पिय पठाइ ग्रहि ऐस उचारी । लोन

रतिक्रिया की ॥ १२ ॥ विभिन्न प्रकार से दोनों ने चुंबन लिये और
 अनेकों आसन लगाए । उसने राजा का चित्त उसी प्रकार मोहित कर
 लिया जैसे गुणीजनों का चित्त काव्य सुनकर मोहित हो जाता है ॥ १३ ॥
 रानी ने कहा, हे मित्र ! मेरा मन तुम्हारे में अनुरक्त है । जबसे मैंने
 तुम्हारा प्रतिबिंब देखा है, तबसे मेरा मन मान नहीं रहा है और हठी हो
 गया है ॥ १४ ॥ मन चाहता है कि नित्य मैं तुम्हारे साथ ही जाऊँ और
 माता-पिता की भी लज्जा न मानूँ । हे प्रिय ! अब कुछ ऐसा प्रपंच करो
 जिससे लाज भी रह जाय और तुम्हारे जैसा पति भी मिल जाय ॥ १५ ॥
 उस राजा ने तब सारा वृत्तांत कह सुनाया और स्वयं राजा होने के बारे में
 भी वृत्ता दिया । मैं राष्ट्र देश का राजा हूँ और तुम्हारे लिए मैंने साधु का
 वेश धारण किया है ॥ १६ ॥ मेरी आँखें तुमसे तभी से लगी हैं जबसे मैंने
 जल में तुम्हारा प्रतिबिंब देखा है । तुमने भी जब मेरे प्रतिबिंब को देखा
 तो तुम्हें भी कामदेव कटार मार गया ॥ १७ ॥ मुझे देखकर तुम्हारा भी
 धैर्य न रहा और तुमने भी सुरंग खोदकर सखियों से कहा । वह भी
 मुझे पकड़कर तुम्हारे पास ले गई और फिर हे प्रिय ! जो चाहती थी वही
 हुआ ॥ १८ ॥ दोनों ने बैठकर एक मंत्रणा की । उस राजा ने कहा
 कि मुझे रक्षक देख गया है । रानी ने प्रिय को निकालकर इस प्रकार

लेत त्रिप नार तिहारी ॥ १९ ॥ सुनत स्रवन सभ जन मिलि
आए । आनि तवन कह बचन सुनाए । किह निमित्त छाडत
हैं देही । सुनि राजा की नारि सनेही ॥ २० ॥ सुनु राजा
इक दिज मारियो मुहि । लोन लेऊंगी साच कहूँ तुहि । जो
धन हमरे धाम निहारहु । सो सभ गाडि गोरि महि
डारहु ॥ २१ ॥ होरि रहे सभ एक न मानी । परी भोहरा
भीतर रानी । आस पास ले लोन बिथारो । जो धन हुतो
गाडि सभ डारो ॥ २२ ॥ सुरंगि सुरंगि रानी तह आई ।
बैठे जहाँ मोत सुखदाई । ताको संग लौ तही सिधारी । मूड़
लोग कछु गति न बिचारी ॥ २३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ छितालीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३४६ ॥ ६४५१ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ संतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ जह हम दिसा उत्तरा सुनी । राजा तहिक
बसत थो गुनी । कलगीराइ जाँहि जग भाखत । नाना देस

कहना शुरू किया कि हे राजन् ! तुम्हारी स्त्री नमक में गल जाना चाहती
है ॥ १९ ॥ यह सुनकर सभी दौड़े आए और उससे आकर कहने लगे
कि हे राजा की प्रिय स्त्री ! तुम किस कारण से शरीर छोड़ रही
हो ? ॥ २० ॥ हे राजन् ! सुनो, मैंने एक ब्राह्मण को मार दिया है,
इसलिए मैं नमक अवश्य लूंगी (और उसमें गल जाऊँगी) । मेरे घर में
जो भी द्रव्य है उसे क्रब्र में गाड़ दो ॥ २१ ॥ सभी रोक रहे थे पर उसने
एक भी नहीं मानी और वह रानी तहखाने में चली गई । उसने नमक
आसपास बिखेर दिया और जितना धन था उसे गाड़ दिया ॥ २२ ॥
सुरंग सुरंग से ही रानी वहाँ आ पहुँची जहाँ उसका सुखदायक मित्र बैठा
था । वह उसे लेकर वहाँ से चल दी और मूर्ख लोग उसकी चाल को
समझ ही नहीं सके ॥ २३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ छियालीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३४६ ॥ ६४५१ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ सैंतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ जिधर उत्तर दिशा कही-सुनी जाती है, वहाँ एक गुणी

कानि तिह राखत ॥ १ ॥ (सू० प्र० १३०४) मीतमती तिह नारि
 बिराजै । जाहि बिलोकि चंद्रमा लाजै । ताकी एक
 लच्छिमिनि दासी । दुरबल देह घड़ी अबिनासी ॥ २ ॥
 तासौ नारि हेतु अति मानै । मूढ़ न रानी क्रिया पछानै ।
 गुपत लेत दासी सु छिमाही । बुरी बुरी तिह देत उगाही ॥ ३ ॥
 तिह रानी अपनी करि मानै । मूरख ताँहि जसूस न जानै ।
 परै बात ताकह जे स्रवनन । लिखि पठवै ततछिन राजा
 तन ॥ ४ ॥ हुते दोइ दासी के भाई । बिरध दंत कछु कहा
 न जाई । श्याम वरन इक दुतिय कुरूप । आखें जानु
 सुरन के कूपा ॥ ५ ॥ बगल गंधि तिन ते अति आवै । बैठन
 निकट न कोई पावै । चेरी भ्रात जानि हित मानै । मूढ़
 नारि कछु क्रिया न जानै ॥ ६ ॥ तह इक हुती जाटि की नार ।
 मै न कहत तिह नाम उचार । जउ तिह नाम चेरि सुनि
 पावै । तह ते ताँहि टूकरा जावै ॥ ७ ॥ तिन इस्त्री इह
 भांत बिचारी । दासी मूढ़ ह्रिदै सहि धारी । भाइ खरचु
 कछु मांगत तेरे । गुहज पठ्यै करि करि मेरे ॥ ८ ॥ तब

राजा था । उसे संसार कलगीराय के नाम से जानता था और अनेकों
 देश उसकी आन मानते थे ॥ १ ॥ उसकी शोभायुक्त स्त्री मीतमती थी
 जिसे देखकर चन्द्रमा भी लज्जित होता था । लक्ष्मिणी नामक उसकी
 दासी थी जिसकी देह परमात्मा ने दुर्बल बनाई थी ॥ २ ॥ वह नारी
 उससे अत्यन्त प्रेम करती थी और मूर्ख रानी उसके कार्य को नहीं जानती
 थी । वह दासी अर्द्धवार्षिक वेतन लेती थी और बुरी-बुरी खबरें (राजा
 को) दिया करती थी ॥ ३ ॥ रानी उसे अपना समझती थी और मूर्खता-
 वश जासूस नहीं जानती थी । जो बात उसके कानों में पड़ती थी वह
 तत्काल राजा को लिख भेजती थी ॥ ४ ॥ उस दासी के दो भाई थे जो
 बड़े-बड़े दांतों वाले थे । एक तो श्याम वर्ण था और ऊपर से कुरूप थे
 और उनकी आँखें मानों कुएँ के समान थीं ॥ ५ ॥ उनके पास से इतनी
 दुर्गन्ध आती थी कि उनके पास कोई बैठ नहीं पाता था । वह रानी उन्हें
 दासी का भाई समझकर उनका हित करती थी और इस प्रकार वह मूर्ख
 स्त्री कुछ नहीं समझती थी ॥ ६ ॥ वहाँ एक जाट की स्त्री थी जिसका
 मैं नाम नहीं बताता । जब दासी उसको आया सुनती तो उसे कुछ खाने
 को देती ॥ ७ ॥ उस स्त्री ने कुछ सोचा और उस दासी ने भी उसे मन
 में वसा लिया । उसने कहा कि मैं जब तुमसे माँगती हूँ तो तुम छिपाकर

चेरी ऐसो तन कियो । डारि दरब भोजन भहि दियो । भाइ
निमित्त खरची पठ दई । सो ले नारि दरबु घर गई ॥ ६ ॥
आधो धन तिह भ्रातन दीना । आधो काढि आपि त्रिय
लीना । मूरख चेरी भेद न पावै । इह चरित तन मूँड
मुँडावै ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ संतालीस चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३४७ ॥ ६४६१ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ अठतालीस चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ गौरिपाल इक सुना नरेसा । मानत आनि
सकल तिह देसा । गौरादेई नारि तिह सोहै । गौरावती
नगर तिह कोहै ॥ १ ॥ ताकी त्रिया नीच सेती रति । भली
बुरी जानत न मूढ़ मति । इक दिन भेद भूप लखि लयो ।
वासित जारु तुरतु भजि गयो ॥ २ ॥ गौरादे इक चरित
बनायो । लिखा एक लिखि तहाँ पठायो । इक राजा की
जान सु रीता । सो ताँकौ ठहरायो भीता ॥ ३ ॥ तिसु

मेरे हाथ कुछ बाहर भेज दिया करो ॥ ८ ॥ तब उस दासी ने ऐसा ही
किया और भोजन में द्रव्य छिपाकर उसे दे दिया । उसने अपने भाइयों
के लिए खर्च भेज दिया जिसे लेकर वह स्त्री अपने घर को चली गई ॥ ९ ॥
उसने आधा धन तो भाइयों को दे दिया और आधा स्वयं निकाल लिया ।
मूर्ख दासी भेद नहीं समझ पा रही थी और इस प्रकार अपना सिर मँडवा
रही थी ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सैंतालीसवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३४७ ॥ ६४६१ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ अठतालीसवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ गौरीपाल एक राजा था जिसका सम्मान सभी देश
करते थे । उसकी सुन्दर स्त्री गौरीदेवी थी और उसके नगर का नाम
गौरावतीनगर था ॥ १ ॥ उसकी स्त्री एक नीच के साथ रत थी जो
कि भला-बुरा कुछ नहीं जानती थी । राजा ने एक दिन इस भेद को देख
लिया और उसका डरा हुआ याद भाग खड़ा हुआ ॥ २ ॥ गौरीदेवी ने
एक प्रपंच किया और एक पत्र लिखकर भेज दिया । उस व्यक्ति को
राजा की एक खरीदी हुई स्त्री (दासी) का मित्त ठहरा दिया ॥ ३ ॥

मुख ते लिखि लिखा पठाई । जहाँ हुते अपने मुखदाई । कौ
 दिन रमत ईहाँ ते रहना । दै करि पठिवहु हमरा लहना ॥४॥
 सो पत्नी त्रिप के कर आई । जानी मोरि सु रीति पठाई ।
 जड़ निजु त्रिय को भेदन पायो । नेह त्याग तिह साथ
 गवायो ॥ ५ ॥ सुघर (मू०पं० १३०५) हुतौ तौ भेव पछानत ।
 त्रिय की घात सत्ति करि जानत । मूढ़ राव कछु क्रिया न
 जानी । इह बिधि मूंड मूंडिगी खानी ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ अठतालीस चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३४८ ॥ ६४६७ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ उनचास चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक कथा प्रकासौ । तुमरे जिय
 का भरम बिनासौ । उग्रदत्त इक सुनियत राजा । उग्रावती
 नगर जिह छाजा ॥ १ ॥ उग्रदेइ तिह धाम दुलारी । ब्रह्म
 बिशन शिव तिहूँ सवारी । अवरि न असि कोई नारि बनाई ।
 जैसी यह राजा की जाई ॥ २ ॥ अजबराइ इक तह खतिरेटा ।
 इशक मुशक के साथ लपेटा । राजसुता जब तिह

उसकी ओर से लिख दिया कि हे मेरे सुखदायक प्रिय ! मुझे यहाँ
 कितने दिन रहना पड़ेगा ? मेरा लिया हुआ धन वापस क्यों नहीं
 भेजते ? ॥ ४ ॥ वह पत्र राजा के हाथ आ गया और उसने समझा कि
 इसे मेरी क्रीत् स्त्री ने भेजा है । मूर्ख ने उसका भेद नहीं समझा और
 अपना स्नेह उसके साथ समाप्त कर दिया ॥ ५ ॥ यदि वह अक्लमंद
 होता तो रहस्य को समझता और स्त्री के दाँव को पहचानता । मूर्ख राजा
 ने कुछ न समझा और इस प्रकार वह उसे मूर्ख बना गई ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ अठतालीसवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३४८ ॥ ६४६७ ॥ अफजू ॥

तीन सौ उनचासवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! सुनो, एक कहानी कहता हूँ और तुम्हारे
 भ्रम का निवारण करता हूँ । उग्रावती नगर का राजा उग्रदत्त
 था ॥ १ ॥ उग्रदेवी उसकी पुत्री थी जिसे मानों ब्रह्मा, विष्णु और शिव
 ने स्वयं बनाया था । जैसी यह राजा की पुत्री थी वैसी कोई अन्य स्त्री
 नहीं बनाई गई थी ॥ २ ॥ अजबराय वहाँ एक क्षत्रिय-पुत्र था जो इशक-

लखि पायो । पठै सहचरी पकरि मँगायो ॥ ३ ॥ काम
भोग माना तिहू संगी । लपटि लपटि ताके तर अंगी । इक
छिन छैल न छोरा भावै । मात पिता तें अधिक डरावै ॥ ४ ॥
इक दिन करी सभन मिजमानी । संबलखार डारि करि
स्यानी । राजा रानी सहित बुलाए । दे दोऊ बिखि स्वरग
पठाए ॥ ५ ॥ आपु सभन प्रति ऐस उचारा । बर दीना
मुहि कह त्रिपुरारा । रानी सहित नराधिप घाए । मुर नर
के सभ अंग बनाए ॥ ६ ॥ अधिक भया मों पर शिव कीनी ।
राज समग्री सभ मुहि दीनी । भेद अभेद न काहू पायो ।
सीस सुता के छत्र फिरायो ॥ ७ ॥ कितक दिवस इह भाँति
बिताई । रोम मित्त के दूर कराई । त्रिय के वस्त्र सगल दै
वाकौ । बर आन्यों इस्त्री करि ताकौ ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ मात
पिता हनि पुरख बन बर्यो मित्त त्रिय सोइ । राज करा इह
छल भए भेद न पावत कोइ ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ उनचास चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३४६ ॥ ६४७६ ॥ अफजूं ॥

मुश्क से सराबोर था । राजकुमारी जब उसे देखा तो दासी भेजकर उसे
पकड़ मँगाया ॥ ३ ॥ उसके अंगों के साथ लिपट-लिपटकर उसने काम-
क्रीड़ा की । वह एक दिन के लिए भी उसे छोड़ना नहीं चाहती थी पर
माता-पिता से अधिक डरती भी थी ॥ ४ ॥ एक दिन उसने मेजबानी
की और भोजन में उस चतुरा ने ज़हर मिला दिया । राजा को रानी-
समेत बुलाया और दोनों को ज़हर दे स्वर्ग भेज दिया ॥ ५ ॥ स्वयं
उसने सबसे कहा कि शिव ने मुझे वरदान दिया है । शिव ने रानी-समेत
राजा को मार दिया और मेरे सभी अंग पुरुषों के बना दिए हैं ॥ ६ ॥
शिव ने मुझ पर अत्यधिक कृपा की है और राज्य-सामग्री सब मुझे प्रदान
की है । किसी ने भेद-अभेद न समझा और पुत्री के सिर पर छत्र झुला
दिया ॥ ७ ॥ कितने ही दिन उसने ऐसे गुज़ारने पर उस मित्त के सभी
बाल साफ़ करवा दिए । उसे स्त्री के वस्त्र पहनाकर उसे स्त्री बनाकर
उसका वरण कर लिया ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ माता-पिता को मार स्वयं
पुरुष बन मित्त को स्त्री बना लिया । इस प्रकार इस प्रपंच से राज्य
किया और किसी को भेद पता न चल सका ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ उनचासवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३४६ ॥ ६४७६ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ पचास चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुजनावती नगर इक पूरब । सभ शहिरन ते हुतो अपूरब । सिध सुजान तहाँ को राजा । जिह सम बिधनै और न साजा ॥ १ ॥ स्त्री नवजोवन दे तिह नारी । घड़ी न जिह सी ब्रह्म कुमारी । जो अबला तिह रूप निहारै । मन क्रम बच इह भाँति उचारै ॥ २ ॥ (सू० ग्रं० १३०६) इंद्र धाम है ऐस न नारी । जैसी त्रिष की नारि निहारी । अस सुंदर इक शाह सपूता । जिह लखि प्रभा लजत पुरहूता ॥ ३ ॥ यह धुनि परी तरुनि के कानन । तब तें लगी छटपटी भामनि । जतन कवन मैं आजु सु धारूँ । उहि सुंदर कह नैन निहारूँ ॥ ४ ॥ नगर ढँढोरा नारि फिरायो । सभहिन कह इह भाँति सुनायो । ऊँच नीच कोई रहै न पावै । प्रातकाल भोजन सभ खावै ॥ ५ ॥ राजहि बात कछू नहि जानी । निवता दियो लख्यो त्रिय मानी । भाँति भाँति पकवान पकाए । ऊँच नीच सभ निवति बुलाए ॥ ६ ॥ भोजन खान जनावहि बिगसहि । त्रिय की त्रिशटि तरे हवै निकसहि ।

तीन सौ पचासवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सब शहरों में सुन्दर पूर्व में सुजनावती नामक एक नगर था । सुजानसिंह वहाँ का राजा था जिसके समान विधाता ने अन्य किसी को नहीं बनाया था ॥ १ ॥ नवयौवनदेवी उसकी स्त्री थी जिसके समान ब्रह्मा ने अन्य कोई स्त्री नहीं बनाई थी । जो स्त्री उसका रूप देखती थी, वह मन-वचन-कर्म से कह उठती ॥ २ ॥ जैसी राजा की स्त्री है ऐसी स्त्री तो इंद्र के घर में भी नहीं है । एक धनी का सुन्दर पुत्र था जिसे देख इंद्र भी लजाता था ॥ ३ ॥ उसके बारे में युवती को पता लगा तो उसके मन में हलचल हो उठी । वह सोच रही थी कि मैं कौन सा यत्न करूँ जिससे उस सुन्दर को अपनी आँखों से देख सकूँ ॥ ४ ॥ उस स्त्री ने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया और सबसे कहलवा दिया कि कोई भी ऊँच-नीच न छूटे और सब मेरे यहाँ भोजन खाएँ ॥ ५ ॥ राजा मन में कुछ नहीं जाना और समझा कि स्त्री ने सामान्य तौर पर सबको भोजन के लिए बुलाया है । भाँति-भाँति के पकवान बनवाए गए और ऊँच-नीच सबको बुलाया गया ॥ ६ ॥ भोजन खाने के लिए जितने लोग

ऐंठीराइ जबायो तहाँ । बैठि झरोखे रानी जहाँ ॥ ७ ॥
 रानी निरखि चीन तिह गई । बहु बिधि ताँहि सराहत भई ।
 धंनि धंनि मुख ते बहुरि उचारा । जिन करतै इह कुअर
 सवारा ॥ ८ ॥ लीना सखी पठाइ तिसै घरि । काम भोग किय
 लपटि लपटि करि । एक तरुन अरु भाँग चढ़ाई । चार पहरि
 निसि नारि बजाई ॥ ९ ॥ ऐंठी सौ बधि गयो सनेहा । जो
 मुहि कहे न आवत नेहा । भेद सिखै तिह धाम पठायो ।
 आधी रैन नरेसहि घायो ॥ १० ॥ प्रात चली जरबे के राजा ।
 दरबु लुटावत नारि त्रिलाजा । द्रिशट बंधु सभ की असि
 करी । सभहू लखा अबला जरि मरी ॥ ११ ॥ निकसि
 जारि संग आपु सिधारी । भेद न लखै पुरख अरु नारी ।
 द्रिशटि बंद करत अस भई । सँडि सँडि सभहिन को
 गई ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ पचासवों चरित्र
 समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३५० ॥ ६४८८ ॥ अफजू ॥

प्रसन्नतापूर्वक आ रहे थे वे सब उस स्त्री की नज़र से गुज़र रहे थे ।
 ऐंठीराय तब वहाँ आया जहाँ रानी झरोखे में बैठी थी ॥ ७ ॥ रानी
 उसे देखकर पहचान गई और विविध प्रकार से उसकी प्रशंसा करने लगी ।
 वह उस कर्ता के लिए धन्य-धन्य कहने लगी जिसने उसे बनाया था ॥ ८ ॥
 सखी को भेजकर उसे घर बुलवा लिया और लिपट-लिपटकर उससे काम-
 क्रीड़ा की । एक तो वह तरुण था दूसरे उसने भाँग चढ़ा रखी थी ।
 उसने चार पहर तक उस स्त्री को भोगा ॥ ९ ॥ उसका ऐंठीराय से
 इतना स्नेह बढ़ गया कि कहा नहीं जा सकता । उसे भेद समझाकर घर
 भेज दिया और आधी रात को राजा को मार डाला ॥ १० ॥ प्रातः
 वह स्त्री निर्लज्जतापूर्वक द्रव्य लुटाकर राजा के साथ जलने के लिए चल
 पड़ी । सब बंधुओं की नज़र को यही लगा कि स्त्री जल मरी है ॥ ११ ॥
 वह निकलकर यार के साथ चली गई । नारी और पुरुष भेद न जान
 सके । उसने सबकी दृष्टि बाँध दी और सबको ठग गई ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ पचासवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३५० ॥ ६४८८ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ इक्यावन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनो भूप इक कहौ कहानी । किनहू
सुनी न आगे जानी । भूप सु बस्त्र सैन इक सोहै । ताके सम
न नराधिप को है ॥ १ ॥ धाम सु बस्त्रमती तिह नारी ।
बस्त्रावती नगर उजियारी । अवलचंद तिह ठा इक रावत ।
रानी सुना एक दिन गावत ॥ २ ॥ बधि गयो तासौ ऐस
सनेहा । जस सावन को बरसत मेहा । एक जतन तिन नारि
बनायो । पठै सखी तिह बोलि पठायो ॥ ३ ॥ काम भोग
तासौ (मू०पं० १३०७) द्रिढ़ कीना । भाँति भाँति पिय को रस
लीना । राजपाट सभ ही सु बिसार्यो । ताके हाथ बेचि
जिय डार्यो ॥ ४ ॥ सभ अतीत ग्रिहि निवति पठाए ।
बस्त्र भगौहैं तिस पहिराए । आपहु बस्त्र भगौहे धरिकै ।
जात भई तिह साथ निकरिकै ॥ ५ ॥ चोबदार किनहूँ न
हटाई । सभहिन करि जोगी ठहराई । जब बहु जात कोस
बहु भई । तब राजै पाछै सुध लई ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ इति सी.चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ इक्यावन चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३५१ ॥ ६४६४ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ इक्यावनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! एक कहानी कहता हूँ जो पहले कभी
भी कही-सुनी नहीं गई होगी । वस्त्रसेन एक राजा था जिसके समान
अन्य कोई राजा नहीं था ॥ १ ॥ उसके घर में उसकी स्त्री सुवस्त्रमती
थी जो सारे बस्त्रावती नगरी का प्रकाश थी । वहाँ अवलचन्द्र नामक
एक रावत था जिसे रानी ने एक दिन गाते हुए सुना ॥ २ ॥ सावन में
बरसते घने मेघ के समान उससे उसका प्रगाढ़ प्रेम हो गया । उस स्त्री ने
एक दिन प्रयासपूर्वक एक सखी को भेजकर उसे बुला लिया ॥ ३ ॥
उससे दृढ़तापूर्वक कामक्रीड़ा की और विभिन्न प्रकार से प्रिय का रस
लूटा । राजपाट सब भुला दिया और अपना मन उसके हाथों बेच ही
दिया ॥ ४ ॥ उसने सब साधुओं को घर में निमंत्रण दिया और उसे भी
भगवे वस्त्र धारण करवा दिये । स्वयं भी भगवे वस्त्र धारण कर उसके
साथ निकल गई ॥ ५ ॥ किसी भी पहरेदार ने मना नहीं किया और

सबने उन्हें योगी ही समझा । जब वह अनेकों कोस चली गई तब राजा को पता चल पाया ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ इक्यावनवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३५१ ॥ ६४९४ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ बावन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ इशकतंबोल शहिर जह सोहै । इशक तंबोल नरिस तह को है । इशकपेच दे ताकी रानी । सुंदरि देस देस भहि जानी ॥ १ ॥ काजी बसत एक तह भारो । आरफदीन नाम उजियारो । सुता जेब तुल निसा तवन की । ससि की सी दुति लगत जवन की ॥ २ ॥ तह गुलजारराइ इक नामा । थकित रहत निरखत जिह बाभा । सो काजी की सुता निहारा । मदन बान तन ताँहि प्रहारा ॥ ३ ॥ हितू जानि इक सखी बुलाई । ताकह कहा भेद समझाई । जौ ताकह तैं मोहि मिलावैं । मुब माँगें सोई बरु पावैं ॥ ४ ॥ सखी गई तब ही ताके प्रति । आनि मिलाइ दयो तिन सुभ सति । भाँति भाँति दुहूँ करे बिलासा । तजि करि मात पिता को लासा ॥ ५ ॥ अस गो अटक तवन

तीन सौ बावनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ इशकतंबोल (इस्तम्बुल) नामक नगर में इशकतंबोल नामक राजा था । उसकी रानी इशकपेच देवी थी जो देश-देशान्तरों में सुन्दर मानी जाती थी ॥ १ ॥ वहाँ एक बड़ा काजी भी रहता था जिसका नाम आरिफदीन था । जेबतुलनिसा उसकी पुत्री थी जो चन्द्रमा की चाँदनी के समान लगती थी ॥ २ ॥ वहाँ गुलजारराय नामक एक व्यक्ति था जिसे स्त्रियाँ देख-देखकर थक जाती थीं । उसे काजी की पुत्री ने देखा और उसे कामदेव बाण मार गया ॥ ३ ॥ उसने अपनी एक हितैषिणी सखी बुलाई और उसे सारा भेद समझाया । यदि तुम मुझे उससे मिला दो तो मुँह माँगा इनाम पाओगी ॥ ४ ॥ सखी तुरन्त उसकी ओर गई और उसे उससे ला मिलाया । उन्होंने माता-पिता का भय त्यागकर विभिन्न प्रकार से भोग-बिलास किया ॥ ५ ॥ वह तरुणी उसमें

पर तरुनी । जोरि न सकत पलक सौ बरनी । रैन दिवस
 तिह प्रभा निहारै । धन्य जनम करि अपन बिचारै ॥ ६ ॥
 धनि धनि तवन दिवस बडभागी । जिह दिन लगन तुमारी
 लागी । अब कछु ऐस उपाव बनैयै । जिह छल पिय के संग
 सिधैयै ॥ ७ ॥ बोलि भेद सभ पियहि सिखायो । रोमनास
 तिह बदन लगायो । सभ ही केस दूर करि डारे । पुरख
 नारि नहि जात बिचारे ॥ ८ ॥ सभ लिय भेस धरा प्रीतम
 जब । ठाढा भयो अदालति सै तब । कहि मुरि चित काजी
 सुत लीना । मैं चाहत ता कौ पति कीना ॥ ९ ॥ काजी
 काढि किताब निहारी । देखि देखि करि इहै उचारी । जो
 आवैं आपन ह्वै राजी । ताकह कहि न सकत कछु
 काजी ॥ १० ॥ (म०पं० १३०८) यह हमरे सुत की भी दारा ।
 हम याकी करिहैं प्रतिपारा । भेद अभेद जड़ कछू न चीनी ।
 निरखति शाह मुहर करि दीनी ॥ ११ ॥ मुहर कराइ धाम
 वह गयो । पुरश भेस धरि आवत भयो । जब दिन दुतिय
 कचहिरी लागी । पातशाह बैठे बडभागी ॥ १२ ॥ काजी

इतनी अनुरक्त हो गई कि अब वह उसे देखती हुई पलक भी नहीं झपकती
 थी । रात-दिन उसी की प्रभा देखती रहती थी और अपना जन्म “धन्य-
 धन्य” माना करती थी ॥ ६ ॥ वह दिन धन्य है जिस दिन मेरी लगन
 तुम्हारे साथ लगी । अब कुछ ऐसा उपाय किया जाना चाहिए जिससे
 इस प्रिय के साथ भाग जाया जाय ॥ ७ ॥ उसने प्रिय को सब समझा
 दिया और केशनाशक उसके शरीर पर लगा दिया । उसके सभी बाल
 नष्ट कर दिए और अब उसके पुरुष नारी के भेद को नहीं जाना जा
 सकता था ॥ ८ ॥ उस प्रियतम ने जब पूर्ण रूप से स्त्री-वेश धारण कर
 लिया तो आकर अदालत में खड़ा हो गया । वह (स्त्री-वेश में) कहने
 लगा कि मेरा चित्त काजी के पुत्र ने चुरा लिया है, मैं उसे पति के रूप में
 वरण करना चाहता हूँ ॥ ९ ॥ काजी ने किताब निकालकर देखी और
 देख-देखकर कहा कि जो स्वयं खुशी से आना चाहता है उसमें काजी कुछ
 नहीं कर सकता ॥ १० ॥ यह मेरे पुत्र की पत्नी हो गई है और अब मैं
 इसका पोषण करूँगा । कुछ भी भेद-अभेद को न समझा और बादशाह ने
 भी देखते-देखते मुहर लगा दी ॥ ११ ॥ मुहर कराकर वह पुरुष-वेश में
 घर आ पहुँचा । जब दूसरे दिन कचहिरी लगी तो बादशाह दरबार में
 बैठा ॥ १२ ॥ जहाँ काजी कोतवाल था वह पुरुष-वेश धारण कर वहाँ

कोटद्वार थो जहाँ । पुरख भेस धरि आयो तहाँ । संग सुता
काजी की आनी । शाह सुनत इह भाँति बखानी ॥ १३ ॥
निरखहु काजि सुता मुहि बरा । आपहि रीझि सदनपति करा ।
वहै मुहर हजरतिहि दिखाई । जो इस्ती हवै आपु
कराई ॥ १४ ॥ निरखत मुहर सभा सभ हसी । काजि
सुता मितवा ग्रहि बसी । काजी हूँ चुप हवै करि रहा ।
न्याइ किया तैसा फल लहा ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह छल
सौ काजी छला बसी मित के धाम । लखन चरित चतुरान
को है न किसी को काम ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ बावन चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३५२ ॥ ६५०६ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ त्रिपन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनहु राज इक कथा उचारो । जिय
तुमरो को भरम निवारो । बिशनावती नगर इक दच्छिन ।
बिशनचंद तह भूप बिचच्छन ॥ १ ॥ उग्र सिंघ तह शाहु

आ गया । साथ में वह क्राजी की पुत्री को ले आया और बादशाह को
सुनाते हुए कहा ॥ १३ ॥ देखिए क्राजी की पुत्री ने मेरे साथ विवाह कर
लिया है और स्वयं ही रीझकर कामदेव के समान पति पाया है । उसने
वही मुहर बादशाह को दिखा दी जो उसने स्वयं स्त्री बनकर लगवाई
थी ॥ १४ ॥ मुहर देखकर सारी सभा हँस पड़ी और क्राजी की पुत्री
अपने मित के घर में बस गई । क्राजी भी चुप होकर रह गया और जैसे
उसने न्याय किया था वैसा फल पाया ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रपंच से
क्राजी को छलकर वह मित के घर में बस गई । चतुर स्त्रियों के अनेकों
प्रपंच हैं और वे भी किसी से कम नहीं हैं ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ बावनवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३५२ ॥ ६५०६ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ तिरपनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! सुनो, एक कहानी कहता हूँ और तुम्हारे
मन का भ्रम दूर करता हूँ । दक्षिण में विष्णुवती एक नगरी का विष्णुचन्द्र
नामक विलक्षण राजा था ॥ १ ॥ वहाँ उग्रसिंह नामक एक धनी

भनिज्जै । कवन भूप पटतर तिह दिज्जै । स्त्री रन झूमकदे तिह बाला । चंद्र लयो जाते उजियाला ॥ २ ॥ सुंभकरन कह हुती बिवाही । सो दिन एक निरख त्रिप चाही । जतन थक्यो करि हाथ न आई । कोप बढ़ा अति ही नरराई ॥ ३ ॥ देखहु इहु अबला का हीया । जिह कारन हम अस छल कीया । रंक छोरि करि राव न भायो । बहु भ्रितन कह तहाँ पठायो ॥ ४ ॥ सुनत बचन चाकर तह गए । घेर लेत ताको घर भए । ताके पति कह हुना रिसाई । भाजि गई त्रिय हाथ न आई ॥ ५ ॥ भ्रितक नाथ जब नारि निहार्यो । इहै चंचला चरित बिचार्यो । कवन जतन राजा कह मरियै । अपने पति को बैर उतरियै ॥ ६ ॥ लिख पतिया पठई इक तहाँ । बैठो हुतो नराधिप जहाँ । जो मोकह रानी तुम करहु । तो मुहि भूप आजु ही बरहु ॥ ७ ॥ सुनत बचन त्रिप बोलि पठाई । पर की (सू० प्र० १३०६) त्रिय रानी ठहराई । जिह तिह बिधि ताको ग्रहि आनो । भेद अभेद जड़ कछु न पछानो ॥ ८ ॥ संग अपने ताकौ लै सोयो । चित को भरमु

था जिसके सौन्दर्य की तुलना किसी से नहीं की जा सकती । रणझूमक देवी उसकी पुत्री थी जिससे मानों चन्द्रमा ने भी उजाला लिया हो ॥ २ ॥ सुंभकरण से विवाहित उस स्त्री को एक दिन एक राजा ने देखकर चाहना शुरू कर दिया । उसने यत्न किए पर यह उसके हाथ न आई और इसी से इस राजा का क्रोध बढ़ गया ॥ ३ ॥ वह कहने लगा कि इस स्त्री की हिम्मत देखो जिसके लिए मैंने इतना प्रयत्न किया है । गरीब को छोड़ इसे राजा अच्छा नहीं लगा है । उसने बहुत से सेवकों को वहाँ भेजा ॥ ४ ॥ उसकी बातें सुनकर नौकर वहाँ गए और उन्होंने उसके घर को घेर लिया । उसके पति को क्रुद्ध हो मार डाला । वह स्त्री भाग गई और उन लोगों के हाथ में नहीं आई ॥ ५ ॥ जब स्त्री ने अपने स्वामी को मृत देखा तो मन में यह सोचा कि कैसे भी राजा को मारा जाय और अपने पति-वध का बदला लिया जाय ॥ ६ ॥ एक पत्र लिखकर उसने वहाँ भेजा जहाँ राजा बैठा हुआ था । हे राजन् ! यदि तुम मुझे रानी बनाने को तैयार हो तो मुझसे आज ही विवाह कर लो ॥ ७ ॥ यह सुनते ही राजा ने संदेश भिजवा दिया और परकीया स्त्री को रानी बना लिया । जैसे-तैसे उसे अपने घर ले आया और मूर्ख ने कुछ भी भेद-अभेद न जाना ॥ ८ ॥ उसको साथ लेकर सोया और चित्त का ध्रम दूर

सकल ही खोयो । कामातुर हवै हाथ चलायो । काढि
क्रिपान नारि तिन घायो ॥ ६ ॥ त्रिप कह मारि वसही
डारी । ता पर त्यों ही बस्त्र सवारी । आपु जाइ निजु पति
तन जली । निरखहु चतुरि नारि की भली ॥ १० ॥
॥ दोहरा ॥ बैर लिया निजु नाहि को त्रिप कह दिया सँघारि ।
बहुरि जरी निजु नाथ सौ लोगन चरित दिखायि ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पण्ड्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ त्रिपन चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३५३ ॥ ६५२० ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ चौवन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनहु भूप इक कथा नवीनी । किनहूँ
लखी न आगे चीनी । राधा नगर पूरब मै जहाँ । रुक्मसेन
राजा इक तहाँ ॥ १ ॥ स्त्री दलगाहमती त्रिय ताकी । नरी
नागनी तुल्लि न वाकी । सुता सिधुलादेइ भनिज्जै । परी
पदमनी प्रकृत कहिज्जै ॥ २ ॥ तहिक भवानी भवन भनीजै ।
को दूसर पटतर तिहि दीजै । देस देस एस्वर तह आवत ।

किया । कामातुर होकर उसने हाथ चलाया और कृपाण निकालकर उसे
मार डाला ॥ ९ ॥ राजा को मारकर फेंक दिया और उस पर वैसे ही
वस्त्र सँवारकर पहना दिये । स्वयं जाकर अपने पति के साथ जल मरी ।
इस स्त्री की चतुराई देखो ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ अपने पति का बदला
लिया और राजा को मार डाला । पुनः लोगों को प्रपंच दिखाकर अपने
स्वामी के साथ जल मरी ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ त्रिपनवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३५३ ॥ ६५२० ॥ अफजूं ॥

तीन सौ चौवनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ राजन् ! एक नयी कहानी सुनो, जिसे पहले कभी देखा,
सुना नहीं गया है । पूर्व में जहाँ राधानगर है वहाँ रुक्मसेन नामक एक
राजा था ॥ १ ॥ दलगाहमती उसकी स्त्री थी जिसके समान मानव एवं
नाग-स्त्री कोई भी नहीं थी । सिधुलादेवी उसकी पुत्री कही जाती थी जो
परियों जैसी पद्मिनी स्त्री कही जाती थी ॥ २ ॥ वहाँ भवानी का एक
मंदिर था जिसके समान अन्य दूसरा कोई (मंदिर) नहीं था । देश-

आनि गवरि कह सीस झुकावत ॥ ३ ॥ भुजबल सिंघ तहां
 त्रिप आयो । भोजराज ते जनुक सवायो । निरखि सिंधुला
 दे दुति ताकी । मन बच क्रम चेरी भी वाकी ॥ ४ ॥ आगे
 हुती और सो परनी । अब इह साथ जात नहि बरनी ।
 चित सहि अधिक बिचार बिचारत । सहचरि पठी तहां ह्वै
 आरति ॥ ५ ॥ सुनु राजा तैं पर मैं अटकी । भूलि गई
 सभ ही सुधि घट की । जौ मुहि अब तुम दरस दिखावौ ।
 अंघ्रित डारि जनु चितक जियावो ॥ ६ ॥ सुनि सखी बचन
 कुअर के आतुर । जात भई राजा तहि सातिर । जु कछु
 कह्यो कहि ताहि सुनायो । सुनि बच भूप अधिक
 ललचायो ॥ ७ ॥ चित करी किह बिधि तह जैयै । बिह छल
 सौ ताकौ हरि ल्येयै । सुनि बच भूखि भूप की भागी । तब
 ते अधिक चटपटी लागी ॥ ८ ॥ भूप सखी तब तही
 पठाई । इसथित हुती जहां सुखदाई । कहा चरित कछु
 तुमहि बनावहु । जिह छल सदन हमारे आवहु ॥ ९ ॥ एक
 ढोल त्रिय कोर मंगावा । बैठि चरम सों बीच मढ़ावा ।

देशान्तरों के राजा वहाँ आते थे और आकर गौरी के समक्ष सिर झुकाते
 थे ॥ ३ ॥ वहाँ भुजबलसिंह नामक राजा आया जो शोभा में भोजराज
 से भी सवा गुना था । सिंधुलादेवी उसकी सुन्दरता देखकर मन-वचन-कर्म
 से उसकी दासी हो गयी ॥ ४ ॥ वह पहले ही किसी अन्य के साथ
 विवाहित थी, अब वह इसके साथ उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा
 सकता । उसने मन में अधिक सोचकर दुखी होकर एक सखी वहाँ
 भेजी ॥ ५ ॥ हे राजन् ! सुनो मैं तुम्हारे में अनुरक्त हो गई हूँ और
 तन की सुधि भी भूल गई हूँ । अब यदि तुम मुझे दर्शन दे दो तो मानों
 मृतक को अमृत देकर जीवित करने के समान है ॥ ६ ॥ कुँवरि के आतुर
 वचन सुनकर सखी तत्काल राजा के पास चली गई । जो उसने कहा था
 उस सखी ने उसे कह सुनाया जिसे सुनकर राजा अत्यधिक ललचा
 उठा ॥ ७ ॥ उसने सोचा कि कैसे वहाँ जाया जाय और कैसे उसे
 छलपूर्वक हरण कर ले आया जाय । सब बातें सुनकर राजा की भूख भी
 उड़ गई और मन में अत्यधिक उलझन बढ़ गई ॥ ८ ॥ राजा ने तब
 सखी को उसके पास भेजा जहाँ वह सुखदायक बैठी थी । उससे कहा कि
 तुम ही कुछ प्रपंच बनाओ ताकि हमारे घर आ सको ॥ ९ ॥ स्त्री ने एक
 बड़ा नया ढोल मँगावा और उसे चमड़े से मढ़वा लिया । आप उसमें

इसथित आपु तवन सहि भई । इह छल (मू० प्र० १३१०) धाम
मित्र के गई ॥ १० ॥ इह छल ढोल बजावत चली । मात
पिता सभ निरखत अली । भैव अभैव न किनहूँ पायो ।
सभही इह बिधि मूँड मुँडायो ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह
चरित्र तन चंचला गई मित्र के धाम । ढोल ढमाको दै गई
किनहूँ लखा न वाम ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ चौवन चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३५४ ॥ ६५३२ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ पचपन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक कथा अपूरब । जो छल
किया सुता त्रिप पूरब । भुजंग धुजा इक भूप कहावत ।
अमित दरब बिप्पन पह दयावत ॥ १ ॥ अजितावती नगर तिह
राजत । अमरावती निरखि जिह लाजत । बिमलमती ताके
ग्रहि रानी । सुता बिलासदेइ पहिचानी ॥ २ ॥ मंत्र जंत्र
तिन पढ़े अपारा । जिह सम पड़ै न दूसरि नारा । गंग

बैठ गई और इस प्रकार मित्र के घर में चली गई ॥ १० ॥ इस प्रपंच से
ढोल बजाती हुई चल दी और माता-पिता, सखियाँ आदि सब देखती रह
गई । कोई भी भेद-अभेद न जान सका और सभी इस प्रकार छले
गए ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रपंच से स्त्री मित्र के घर चली गई ।
वह ढोल, नगाड़े बजाते चली और कोई भी उस स्त्री को न देख
सका ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ चौवनवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३५४ ॥ ६५३२ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ पचपनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! एक अपूर्व कथा सुनो कि पूर्व के राजा
की पुत्री ने कैसा प्रपंच किया था । भुजंगध्वज एक राजा था जो ब्राह्मणों
को अपरिमित द्रव्य दान में देता था ॥ १ ॥ अजीतवती एक नगरी थी,
जिसे देखकर स्वर्गपुरी भी लज्जित होती थी । उस राजा की स्त्री का
नाम बिमलमति था जिसकी पुत्री बिलासदेवी थी ॥ २ ॥ उसने मंत्र-
यंत्र इतने अपार पढ़े थे कि उसके समान अन्य कोई स्त्री नहीं थी । गंगा

समुद्रहि जहाँ मिलानी । तही हुती तिनकी राजधानी ॥ ३ ॥
 निरखि प्रभा तिह जात न कही । रजधानी ऐसी तिह अही ।
 ऊच धौलहर तहा सु धारे । जिन पर बैठि पकरियत तारे ॥ ४ ॥
 मज्जन हेत तहाँ त्रिप आवत । न्हाइ पुरबले पाप गवावत ।
 तह इक न्हान नराधिप चलो । जोवनवान सिपाही भलो ॥ ५ ॥
 सो बिलास दे नैन निहारा । मन क्रम बच इह भाँति बिचारा ।
 कै मैं अब याही कह बरिहौ । नातर बूडि गंग महि
 मरिहौ ॥ ६ ॥ एक सखी लखि हितू सियानी । तासौ
 चित की बात बखानी । जो ताको तूँ मुझे मिलावै । मुख
 माँगै जो तो धन पावै ॥ ७ ॥ तब सखि गई तवन के गेहा ।
 पर पाइन असि दियो संदेहा । राजसुता तुमरै पर अटकी ।
 भूलि गई ताकहि सुधि घट की ॥ ८ ॥ सुनि त्रिप बचन भयो
 बिसमै मन । इह बिधि ताँहि बखाने बैनन । अस किछु
 करियै बचन सयानी । स्त्री बिलास दे हवै मुर रानी ॥ ९ ॥
 ॥ चौपई ॥ तुम त्रिप भेस नारि को धारहु । भूखन बसतर
 अंग सु धारहु । भुजंग धुजा कह दै दिखराई । फुनि अंगना
 महि जाहु छपाई ॥ १० ॥ भूपति वस्त्र नारि के धारे ।

समुद्र से जहाँ मिलती है वहीं इनकी राजधानी थी ॥ ३ ॥ उसकी
 राजधानी की शोभा देखकर वर्णन नहीं की जा सकती । वहाँ महल
 इतने ऊँचे थे कि उन पर बैठकर तारों को पकड़ा जा सकता था ॥ ४ ॥
 राजा वहाँ स्नान करने आता था और अपने पापों का नाश करता था ।
 वहीं एक यौवनवान और वीर सिपाही नहाने के लिए आया ॥ ५ ॥
 विलासदेवी ने उसे आँखों से देखा और मन-वचन-कर्म से सोचा । या तो
 मैं अब इसी का वरण करूँगी अन्यथा गंगा में डूब मरूँगी ॥ ६ ॥ उसने
 एक हितैषिणी और चतुर सखी देखी और उसे मन की बात कही । यदि-
 तुम मुझे उससे मिला दो तो मैं तुम्हें मुँह माँगा धन दूँगी ॥ ७ ॥ तब
 सखी उसके घर में गई और चरणों पर गिरकर उसे संदेश दिया कि
 राजकुमारी तुम्हारे ऊपर अनुरक्त है और उसे अपनी सुधि भी भूल गई
 है ॥ ८ ॥ राजा यह सुनकर विस्मित हो उठा और उससे उसने इस
 प्रकार कहा कि हे चतुर स्त्री ! कुछ ऐसा उपाय किया जाय जिससे विलास
 देवी मेरी रानी बन जाय ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजन् ! तुम स्त्री-वेश
 धारण करो और वस्त्र-आभूषण आदि पहनो । भुजंगध्वज राजा को एक
 बार दिखाई देकर फिर आँगन में छिप जाओ ॥ १० ॥ राजा ने स्त्री के

अंग अंग गहिना गुहि डारे । भुजंग धुजा कह दई दिखाई ।
 निजु अंगना महि गयो लुकाई ॥ ११ ॥ (सू० प्र० १३११) निरखि
 भूप तिह रहा लुभाइ । वहै सखी तह देइ पठाइ । प्रियमै
 निरखि ताहि तुम आवहु । बहुरि ब्याह को ब्योत
 बनावहु ॥ १२ ॥ सुनत बचन सहचरि तह गई । टारि घरी
 द्वै आवत भई । तिह मुख ते हवै बचन उचारे । सुनहु
 सवन दै भूप हमारे ॥ १३ ॥ प्रथम सुता अपनी तिह दीजै ।
 बहुरौ बहिनि तवन की लीजै । सुनत बंन त्रिप फेर न कीनो ।
 दुहितहि काढि तवन कह दीनो ॥ १४ ॥ सुता प्रथम दै ब्याह
 रचायो । त्रिप कौ ब्याह नारि कर ल्यायो । तब तिन बधि
 तिह जड़ को कियो । दुहिता सहित राज हर लियो ॥ १५ ॥
 प्रथम सुता राजा की हरी । बहुरि नास तिह तन की करी ।
 बहुरौ छीनि राज तिन लीना । बरि बिलासदेई कह
 कीना ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ पचपन चरित्र
 समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३५५ ॥ ६५४८ ॥ अफजूं ॥

वस्त्र धारण कर अंग-अंग में गहने पहन लिये । भुजंगध्वज को दिखाई
 देकर वह आँगन में छिप गया ॥ ११ ॥ राजा उसे देखकर लुब्ध हो उठा
 और एक दासी को उसने वहाँ भेजा । तुम पहले उसे देखकर आओ फिर
 विवाह का कुछ उपक्रम करो ॥ १२ ॥ वह दासी यह सुनकर वहाँ गई
 और लगभग दो घड़ी समय बिताकर वह आ गई । उसने आकर मुँह से
 कहा कि हे राजन् ! मेरी बात सुनो ॥ १३ ॥ पहले अपनी पुत्री उसे दो,
 तब उसकी बहन को प्राप्त करो । राजा ने सुनकर विलम्ब नहीं लगाया
 और पुत्री निकालकर उसे दे दी ॥ १४ ॥ पहले पुत्री देकर ब्याह रचाया
 और फिर राजा से शादी कर उसे स्त्री बनाकर घर ले आया । तब
 उसने उसे मूर्ख से पुत्री-समेत राज्य ले लिया ॥ १५ ॥ पहले राजा की
 पुत्री का हरण किया, फिर उसे मार डाला । पुनः राज्य छीन लिया ।
 इस प्रकार विलासदेवी ने यह सब कर लिया ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ पचपनवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३५५ ॥ ६५४८ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ छपन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु त्रिप कथा बखानै औरै । जो भई
 एक राज की ठौरै । शहिर सु नार गाँव है जहाँ । सबल
 सिंह राजा इक तहाँ ॥ १ ॥ दलथंभन देई तिह नारि ।
 जंत मंत जिह पढ़े सुधारि । जोगी इक सुंदर तह आयो ।
 जिह सम सुंदर बिध न बनायो ॥ २ ॥ रानी निरखि रीझि
 तिह रही । मन बच क्रम ऐसी बिधि कही । जिह चरित्र
 जुगिया कह प्यै । उसी चरित्र कौ आजु बनैयै ॥ ३ ॥ ब्रिसटि
 बिना बदरा गरजाए । मंत्र सकति अंगरा बरखाए । लोन
 असथि प्रियमी पर परै । निरखि लोग सभ ही जिय डरै ॥ ४ ॥
 भूप मंत्रियन बोलि पठायो । बोलि बिप्र पुसतकन दिखायो ।
 इन बिघनन को कह उपचारा । तुम सभ ही मिलि करहु
 बिचारा ॥ ५ ॥ तब लगि बीर हाँकि तिह रानी । इह
 बिधि सौ कहवाई बानी । एक काज उबरे जो करै । नातर
 प्रजा सहित त्रिप मरै ॥ ६ ॥ सभहिन लखी गगन की बानी ।
 बीर बाक्य किन्हू न पछानी । बहुरि बीर तिन ऐस उचारो ।

तीन सौ छप्पनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! एक कहानी और कहता हूँ जो एक राजा
 के साथ हुई । सुनारगाँव नगर में सबल सिंह नामक एक राजा रहता
 था ॥ १ ॥ दलथंभनदेवी उसकी स्त्री थी जिसने यंत्र-मंत्र सब पढ़ रखे
 थे । वहाँ एक सुन्दर योगी आया जिसके समान विधाता ने अन्य कोई
 नहीं बनाया था ॥ २ ॥ रानी उसे देखकर रीझ उठी और मन-वचन-कर्म
 से कहने लगी कि जिस प्रपंच से योगी को प्राप्त किया जा सके वही प्रपंच
 आज बनाया जाय ॥ ३ ॥ बिना बादलों के उसने वर्षा करा दी, मंत्र-
 शक्ति से अंगारे बरसा दिए । रक्त और अस्थियाँ पृथ्वी पर गिरने लगीं
 और यह देखकर सब लोग ही मन में डरने लगे ॥ ४ ॥ राजा ने मंत्रियों
 को बुलाया और ब्राह्मणों से ग्रंथ दिखलवाये । इस विघ्न का क्या उपचार
 है ? तुम सब मिलकर विचार करो ॥ ५ ॥ तब तक उस रानी ने वीरों को
 बुलाकर इस प्रकार वाणी कहलवायी । यदि एक काम करो तो बचोगे
 अन्यथा राजा प्रजा-समेत मर जायगा ॥ ६ ॥ सबने उसे आकाशवाणी
 समझा और उन वीरों की बातों को न पहचाना । पुनः वीर ने कहा कि

सु मैं कहत हो सुनहु प्यारो ॥ ७ ॥ जौ राजा अपनी ले
नारी । जुगियन दे धन सहित सुधारी । तब इह प्रजा
सहित नहि मरै । अबिचल राज प्रिथी (सू० प्र० १३१२)
पर करै ॥ ८ ॥ प्रजा लोक सुनि बच अकुलाए । ज्यों त्यों
तहाँ बिपहि लै आए । जुगियहि देइ दरबु जुत हारी । भेद
अभेद की गति न बिचारी ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ प्रजा सहित
राजा छला गई मित्त के नारि । भेद अभेद भला बुरा सका
न कोई बिचारि ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ छपन चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३५६ ॥ ६५५८ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ सत्तावन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक और प्रसंगा । भाखि
सुनावत तुमरे संगी । अचलावती नगर इक राजत । सूर
सिंघ तह भूप बिराजत ॥ १ ॥ अंजनदेइ तवन की रानी ।
खंजनदे दुहिता तिह जानी । अधिक दुहूँ की प्रभा बिराजै ।
निरखि नरी नागिनि मन लाजै ॥ २ ॥ तहाँ एक आयो

हे प्यारो, जो मैं कहता हूँ उसे सुनो ॥ ७ ॥ यदि यह राजा अपनी
स्त्री-समेत धन योगी को दे दे तो प्रजा-समेत यह मरेगा नहीं और सदैव
पृथ्वी पर राज्य करता रहेगा ॥ ८ ॥ लोग यह सुनकर आकुल हो उठे
और जैसे-तैसे राजा को वहाँ ले आए । स्त्री-समेत द्रव्य योगी को दिया
और भेद-अभेद कुछ नहीं जाना ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ प्रजा-समेत राजा
को छलकर स्त्री मित्त के पास चली गई और कोई भी भेद-अभेद भला-
बुरा नहीं जान सका ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ छप्पनवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३५६ ॥ ६५५८ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ सत्तावनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ राजन् ! एक अन्य प्रसंग सुनो जो तुमसे कहता हूँ ।
अचलावती नामक एक नगर था जहाँ शूरसिंह नामक एक राजा
शोभायमान था ॥ १ ॥ उसकी स्त्री अंजनदेवी थी और खंजनदेवी
उसकी पुत्री थी । दोनों अत्यधिक प्रभायुक्त थी और नर-नाग-स्त्रियाँ

सौदागर । रूपवंतु जनु दुतिय निसाकर । जो अबला तिह
 रूप निहारै । राज पाठ तजि साथ सिधारै ॥ ३ ॥ सो
 आयो त्रिप त्रिय के घर तर । राजसुता निरखा तजि द्विग
 भरि । मन बच क्रम इह ऊपर झूली । जनु मद पी मतवारी
 झूली ॥ ४ ॥ सिंघ प्रचंड नाम तिह नर को । जनु करि
 मुकत काम के सिर को । सखी एक तह कुअरि पठाई ।
 कहियहु ब्रिथा सजन सौ जाई ॥ ५ ॥ सखी तुरतु तिन तह
 पहुचायो । जस नावक को तीर चलायो । सकल कुअरि तिन
 ब्रिथा सुनाई । मन बच रीझि रहा सुखदाई ॥ ६ ॥ नदी
 बहत त्रिप ग्रहि तर जहाँ । ठाढ हूजियहु निति कह तहाँ ।
 डारि देग मै कुअरि बहै हैं । छिद्र मुँदि ताको सभ लैहैं ॥ ७ ॥
 ऊपर बाँधि तँबूरा दै है । इह चरित्र मुहि ताहि मिलेहै ।
 जब तुबरी लखियहु ढिग आई । काढि भोग दीजहु
 सुखदाई ॥ ८ ॥ इह बिधि बदि तासो संकेता । दूती गी
 त्रिप त्रियज निकेता । डारि देग मै कुअरि बहाई । बाँधि
 तँबरी तह पहुचाई ॥ ९ ॥ जब बहती तुबरी तह आई ।

दोनों ही उन्हें देखकर मन में लज्जित होती थीं ॥ २ ॥ वहाँ एक
 सौदागर आया जो मानों रूप में दूसरा चन्द्रमा था । जो स्त्री उसका रूप
 देखती थी, राजपाट तक छोड़कर उसी के साथ हो लेती थी ॥ ३ ॥ वह
 रानी के महल के नीचे आया और राजकुमारी ने उसे देखा । वह मन-
 वचन-कर्म से उस पर ऐसे मोहित हो गई मानों मद पी मतवाली हो झूम रही
 हो ॥ ४ ॥ उस व्यक्ति का नाम प्रचंडसिंह था और ऐसा लगता था
 मानों कामान्ध हाथी हो । कुँवरि ने एक सखी वहाँ भेजी ताकि वह
 कुँवर से मन की व्यथा कह सके ॥ ५ ॥ सखी ने तुरन्त संदेश वहाँ पहुँचा
 दिया जैसे नाविक नाव को किनारे पहुँचा देता है । उसने कुँवरि की
 सारी आकुलता उसे कह सुनाई जिसे सुनकर वह मन एवं वचन से रीझ
 उठा ॥ ६ ॥ राजा के घर के नीचे जहाँ नदी बहती है तुम रात को वहाँ
 खड़े रहना । मैं देग में डालकर कुँवरि को बहा दूंगी और उस देग का
 छिद्र (मुँह) बंद कर दूंगी ॥ ७ ॥ ऊपर एक ताँबूरा बाँध दूंगी । इस
 प्रपंच से मैं तुम्हें उससे मिला दूंगी । जब तँबड़ी को पास आते देखना तो
 निकाल लेना और सुखपूर्वक भोग करना ॥ ८ ॥ यह संकेत निश्चित कर
 वह दूती राजा की स्त्री के घर गई । देग में डालकर कुँवरि को बहा
 दिया और तूँबी बाँधकर उसे वहाँ पहुँचा दिया ॥ ९ ॥ जब तूँबी बहती

आवत कुअरि लखा सुखदाई । ऐंचि तहाँ ते देग निकारी ।
लै पलका ऊपर बैठारी ॥ १० ॥ पोसत भाँग अफीम मँगवाई ।
हुँ खाट पर बैठि चढ़ाई । चारि पहर तासौ करि भोगा ।
भेद न लखा दूसरे लोगा ॥ ११ ॥ इह बिधि तासौ रोज
बुलावै । काम भोग करि ताहि पठावै । भूप सहित (मू० ग्रं० १३१३)
कोई भेद न पावै । नितप्रति अपनो मुँड मुँडावै ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ सत्तावन चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३५७ ॥ ६५७० ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ अठावन चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु भूपति इक कथा नवीनी । किन्हूँ
लखी न आगे चीनी । सुंदरावती नगर इक सोहै । सुंदरसिंघ
राजा तह को है ॥ १ ॥ सुंदर दे राजा की नारी ।
आपु जनुक जगदीश सवारी । ताकी जात न प्रभा बखानी ।
ऐसी हुती राइ की रानी ॥ २ ॥ तहिक शाह को पूत अपारा ।
कनक अवटि साँचे जनु ढारा । निरखि नाक जिह सुआ

हुई वहाँ आई तो उस आती हुई सुखदायक कुँवरि को उसने देखा ।
खींच कर उसने देग को निकाल लिया और उसे निकालकर पलकों पर
बैठा लिया ॥ १० ॥ पोस्त, भाँग और अफीम मँगवाई गई और दोनों ने
पलंग पर बैठकर पी । उससे चार प्रहर तक भोग किया जिसे दूसरे लोग
देख भी न सके ॥ ११ ॥ इस प्रकार वह उसे रोज बुलाता था और
कामक्रीड़ा कर उसे भेज देता था । राजा समेत किसी को भी पता न
चलता था और वे सभी नित्यप्रति ठगे जाते थे ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सत्तावनवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३५७ ॥ ६५७० ॥ अफजूं ॥

तीन सौ अट्ठावनवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! एक नई कहानी सुनो जिसे किसी ने भी
पहले कहा-सुना नहीं है । सुन्दरावती नगर का राजा सुंदर सिंह था ॥ १ ॥
उस राजा की स्त्री सुंदरदेवी थी जिसे मानों परमात्मा ने स्वयं बनाया था ।
वह राजा की रानी ऐसी थी कि उसकी प्रभा का वर्णन नहीं किया जा
सकता ॥ २ ॥ वहाँ एक धनी का पुत्र था जिसे मानों सोने के साँचे में

रिसानो । कंज जानि द्विग भवर भुलानो ॥ ३ ॥ कटि
 केहरि लख अधिक रिसावत । ताते फिरत म्रिगन कह घावत ।
 सुनि बानी कोकिल कुकरई । क्रोध जरत कारी ह्वै गई ॥ ४ ॥
 नैन निरखि करि जलज लजाना । ताँते जल सहि किया
 पयाना । अलक हेरि नागिनि रिसि भरी । चित सहि लजत
 पतारहि बरी ॥ ५ ॥ सो आयो राजा के पास । सौदा की
 जिय मै धरि आसा । सुंदरि दे निरखत तिह कई । सुधि
 बुधि तजि बौरी ह्वै गई ॥ ६ ॥ पठै सहचरी ताहि बुलावा ।
 काम भोग किय जस मन भावा । तह इक हुती त्रिपति की
 चेरी । हेरि गई जस हेरि अहेरी ॥ ७ ॥ पाव दाबि त्रिप
 जाइ जगायो । धाम तोर तसकरि इक आयो । रानी के
 संग करत बिलासा । चलि देखहु तिह भूष लमासा ॥ ८ ॥
 सुनत बचन त्रिप अधिक रिसायो । खड्ग हाथ लै तहाँ सिधायो ।
 जब अबला पति की सुधि पाई । अधिक धूम तह दिया
 जगाई ॥ ९ ॥ सभ के नैन धूम्र सौ भरे । असुआ टूटि बदन
 पर परे । जब रानी इह घात पछानी । मित्र लँघाई हिये

ढालकर बनाया गया था । उसकी नासिका देखकर तोता भी ईर्ष्या करता
 था और नयन देखकर मृग भी भूले फिरते थे ॥ ३ ॥ शेर उसकी कमर
 देखकर ईर्ष्या करते थे और खीझकर मृगों को वन में मारते घूमते थे ।
 कोयल उसकी बोली को सुनकर ही क्रुद्ध हो जलकर काली हो गई
 है ॥ ४ ॥ कमल उसके नयनों को देखकर लजाता है और इसीलिए वह
 पानी में छिप गया है । उसके बालों को देखकर क्रुद्ध नागिन लज्जित
 होकर पाताललोक में जा घुसी है ॥ ५ ॥ वह राजा के पास व्यापार
 की आशा मन में लगाए हुए आया । सुंदरदेवी उसे देखते ही होश खोकर
 दीवानी हो गई ॥ ६ ॥ एक सहेली को भेजकर उसे बुलाया और
 मनचाहा भोग किया । वहाँ राजा की एक दासी थी जो शिकारी की तरह
 सब देख गई ॥ ७ ॥ उसने पैर दबाकर राजा को जगा दिया और कहा
 कि तुम्हारे घर में चोर आ गया है । वह रानी के साथ क्रीड़ा कर रहा
 है । हे राजन् ! तुम स्वयं चलकर तमाशा देख लो ॥ ८ ॥ राजा यह
 सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और खड्ग हाथ में लेकर उस ओर चल
 पड़ा । जब स्त्री को पति के आने का पता चला तो वहाँ उसने अत्यधिक
 धुआँ कर दिया ॥ ९ ॥ सबकी आँखों में धुआँ भर गया और आँसू गिरने
 लगे । जब रानी ने यह अवसर देखा तो मित्र को भेजकर हृदय में प्रसन्न

हरखानी ॥ १० ॥ आगे सौ करि काढा जारा । धूस्र भरे
 द्विग त्रिपन निहारा । पौछ नेल जबही गयो तहाँ । कोऊ न
 पुरख निहारा उहाँ ॥ ११ ॥ उलटि तिसी चेरी कह घायो ।
 इह रानी कह दोश लगायो । मूरख भूप न भेद बिचारा ।
 आगे करि त्रिय मित्त निकारा ॥ १२ ॥ १ ॥ (पृ०पं० १३१४)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ अठावन चरित्र
 समापत्तम सतु सुभम सतु ॥ ३५८ ॥ ६५८२ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ उनसठि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक और चरित्र । जिह छल
 नारि निकारा मित्त । पूरवदेस अपूरब नगरी । तिहूँ भवन
 के बीच उज्जरी ॥ १ ॥ शिव प्रसाद राजा तहको है । सदा
 सरबदा सिवरत सोहै । भावन दे तिह नारि भणिज्जै । मन
 मोहनि दे सुता कहिज्जै ॥ २ ॥ शाह मदार पीर तह जाहिर ।
 सेवत जाँहि भूष नर नाहर । एक दिवस त्रिप तहाँ सिधारा ।

हो उठी ॥ १० ॥ आगे से यार को निकाल दिया और धुएँ भरे नेत्रों से
 राजा को देखा । वह राजा भी जब आँखें पोंछकर वहाँ गया तो उसने
 वहाँ किसी भी पुरुष को नहीं देखा ॥ ११ ॥ पलटकर उसने उस दासी
 को मार डाला जिसने इस रानी पर आरोप लगाया था । मूर्ख राजा ने
 रहस्य न समझा और स्त्री ने आगे करके अपने मित्त को निकाल
 दिया ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूष-संवाद में तीन सौ अठावनवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३५८ ॥ ६५८२ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ उनसठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजा ! एक अन्य प्रपंच सुनो, जिससे स्त्री ने अपने
 मित्त को (सुरक्षित) निकाल दिया । पूर्व देश में एक अपूर्व नगरी थी जो
 तीनों भुवनों में प्रकाशमान थी ॥ १ ॥ वहाँ का राजा शिवप्रसाद सदैव
 शिव-भक्ति में लीन रहता था । भावनदेवी उस स्त्री का नाम था और
 उसकी पुत्री मनमोहनदेवी थी ॥ २ ॥ वहाँ शाह मदार नामक एक
 जाहिर (अत्यन्त शक्तिशाली) पीर था जिसे सब राजा और प्रजा पूजते
 थे । एक दिन राजा वहाँ गया । उसके साथ पुत्री और पत्नी भी

दुहिता सहित लए संग दारा ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक
 पुरख त्रिप की दुहिता कह भाइयो । पठै सहचरी ताकह तही
 बुलाइयो । तही काम के केल तरुनि तासौ कियो । हो हसि
 हसि करि आसन ताकौ कसि कसि लियो ॥ ४ ॥ पीर चूरमा
 हेत जु भूप बनाइयो । अधिक भाँग कौ ता सहि तरुनि
 मिलाइयो । सभ सोफीतिह खाइ दिवाने ह्वै परे । हो जानु
 प्रहार बिना सगरे आपे मरे ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ सोफी भए
 सभै मतवारे । जनु कर परे बीर रन मारे । राज सुता इत
 घात पछाना । उठ प्रीतम संग किया पयाना ॥ ६ ॥ सोफी
 किनूँ न आँखि उधारी । लात जानु शैतान प्रहारी । भेद
 अभेद न किनहूँ पायो । राजकुअरि लै सीत सिधायो ॥ ७ ॥ १ ॥
 ॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ उनसठि चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३५६ ॥ ६५८६ ॥ अफजूँ ॥

अथ तीन सौ सठ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक और प्रसंगा । जस किय
 सुता पिता के संग । प्रबल सिंघ राजा इक अति बल । अरि
 थी ॥ ३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजकुमारी को एक व्यक्ति भा गया । उसे
 उसने सहेली भेजकर बुला लिया । तरुणी ने उसके साथ कामक्रीड़ा की
 और हँस-हँसकर दृढ़तापूर्वक उससे आसनादि किए ॥ ४ ॥ राजा ने पीर
 के लिए जो चूरमा बनाया था तरुणी ने उसमें भाँग मिला दी । सभी
 वहाँ खाकर दीवाने होकर गिर पड़े । वे सभी बिना किसी आघात के
 मारे ही स्वयं मर गए ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ सभी ऐसे मतवाले हो गये
 मानों युद्ध में मरे पड़े हों । राजकुमारी ने तभी अवसर पाकर प्रियतम
 के साथ प्रस्थान कर दिया ॥ ६ ॥ न पीनेवाले (सोफी) बेहोशों में से
 किसी ने भी आँख नहीं खोली । ऐसा लग रहा था मानों शैतान ने लात
 मारकर सबको गिराया हो । भेद-अभेद कोई भी न जान पाया और
 मित्र राजकुमारी को लेकर चलता बना ॥ ७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ उनसठवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३५६ ॥ ६५८६ ॥ अफजूँ ॥

तीन सौ साठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ राजा एक अन्य कहानी सुनो जिसमें पुत्री ने पिता

काँपत धाके डर जल थल ॥ १ ॥ स्त्री झकझूमक दे तिह
बारि । घड़ी आपु जनु ब्रह्म सु नार । तह थो सुघरसैन
खतिरेटा । इशक मुशक के साथ लपेटा ॥ २ ॥ जगन्नाथ कह
भूप सिधायो । पुत्र कलत्र संग ले आयो । जगन्नाथ को निरख
दिवाला । बचन बखाना भूप उताला ॥ ३ ॥ हमरो पाप
पुरातन गयो । सफल जनम हमरो अब भयो । जगन्नाथ को
पायो दरशन । और करा हाथन पग परसन ॥ ४ ॥ तब
लग भूप सुता तह आई । पिता सुनत अस कहा सुनाई । सुनि
मैं सैन आजु हियाँ करिहो । जिह ए कहै तिसी कह बरिहो ॥ ५ ॥
प्रात उठी तह ते सोई जब । बचन कहा पित संग इह बिधि
तब । सुघरसैन खत्री जो आही । (मू० प्र० १३१५) जगन्नाथ
दीनी मैं ताही ॥ ६ ॥ राजे बचन सुना इह बिधि जब ।
ऐस कहा दुहिता के संग तब । जगन्नाथ जाकह तूँ दीनो ।
हम सौ जात न तासौ लीनो ॥ ७ ॥ भेद अभेद न कछु
जड़ पायो । इह छल अपना मूँड मूँडायो । जगन्नाथ
को बचन पछाना । राजसुता ले भीत सिधाना ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ सठ चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६० ॥ ६५६७ ॥ अफजूं ॥

के साथ क्या किया । प्रबलसिंह एक बलवान राजा था जिसके डर से
सभी शत्रु काँपते थे ॥ १ ॥ झकझूमकदेवी उसकी पुत्री थी जिसे मानों
ब्रह्मा ने स्वयं बनाया था । वहाँ एक क्षत्रिय सुघड़सेन था जो इशक-मुशक
में सराबोर था ॥ २ ॥ राजा जगन्नाथपुरी गया और पुत्र-स्त्री अर्थात्
परिवार को भी साथ ले गया । जगन्नाथ का मंदिर देखकर राजा ने
शीघ्र ही कहा ॥ ३ ॥ कि मेरा पुरातन पाप नष्ट हो गया है और मेरा
जन्म सफल हो गया है । मैंने जगन्नाथ का दर्शन पाया है और अपने हाथों
से चरण स्पर्श किए हैं ॥ ४ ॥ तब तक राजकुमारी वहाँ आ गई और
उसने पिता को सुनाते हुए कहा कि आज मैं यहीं सोऊँगी और मुझे जिसके
साथ (भगवान) आदेश देंगे उसी का वरण करूँगी ॥ ५ ॥ प्रातः वह
जब सोकर उठी तो उसने पिता से कहा कि सुघड़सेन जो क्षत्रिय है,
श्री जगन्नाथ ने मुझे उसे ही दे दिया है ॥ ६ ॥ राजा ने जब यह वचन
सुना तो अपनी पुत्री से कहा कि भगवान जगन्नाथ ने तुझे जिसे दे दिया है
अब मैं भला उससे वापस कैसे ले सकता हूँ ॥ ७ ॥ उस मूर्ख ने भेद-
अभेद कुछ भी नहीं समझा और इस प्रपंच से ठगा गया । उसने जगन्नाथ

का वचन माना और इधर मित्र राजकुमारी को लेकर चलता बना ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के द्विया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ साठवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६० ॥ ६५६७ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ इकसठ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक कथा पुरातन । जिह बिधि पंडित कहत महाँ मुनि । एक सहेस्त्र सिंघ राजाना । डंड देत जाको त्रिप नाना ॥ १ ॥ नगर सहेस्त्रावति तह राजत । अमरावति जह दुतिय बिराजत । ताकी जात न उपमा कही । अलका निरखि थकित तिह रही ॥ २ ॥ गज गामिनि दे सुता भनिज्जै । चंद्र सूर पटतर मुख दिज्जै । ताकी जात न प्रभा बखानी । थकित रहत राजा अरु रानी ॥ ३ ॥ ताकी लगन एक सों लागी । नींद भूखि जाते सभ भागी । गाजी राइ तवन को नामा । थकित रहत जाकौ लखि बामा ॥ ४ ॥ और घात जब हाथ न आई । एक नाव तव निकट मँगाई । राजकुअर तिह राखा नामा । जानत सकल पुरख अरु बामा ॥ ५ ॥ गाजी राइ बंठि तिह ऊपर । निकसा आइ

तीन सौ इकसठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! एक पुरानी कथा सुनो जिसे पंडित, मुनियों ने भी कहा है । महेश्वर सिंह एक राजा था जिसे अनेकों राजा डंड दिया करते थे ॥ १ ॥ महेश्वरवती एक नगर था जो मानो दूसरी देवपुरी थी । उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता । अलकापुरी भी उसे देखकर थकी-थकी सी लगती थी ॥ २ ॥ उसकी पुत्री गजगामिनी देवी थी, जिसकी तुलना सूर्य-चन्द्र से की जाती थी । उसकी प्रभा अवर्णनीय थी और राजा और रानी भी उस पर न्योछावर थे ॥ ३ ॥ उसका प्रेम एक से हो गया और नींद-भूख सब उड़ गई । उसका नाम गाजीराय था जिसकी राह देखते स्त्रियाँ थक जाती थीं ॥ ४ ॥ जब अन्य उपाय काम न आया तो उसने एक नाव अपने पास मँगाई । उसका नाम राजकुँवर रखा जिसे सभी स्त्री-पुरुष जानने लगे ॥ ५ ॥ गाजीराय उस पर बैठा और राजा के महलों के नीचे आ निकला । वह कहने लगा कि

भूप महलन तर । लेनी होइ नाव तौ लीजै । ना तर मोहि
उत्तर कछु दीजै ॥ ६ ॥ मैं लै राजकुअरि कौ जाऊँ । बेचौ
जाइ और ही गाऊँ । लेनी होइ नाव तब लीजै । ना तर
हमैं बिदा करि दीजै ॥ ७ ॥ मूरख भूप बात नहि पाई ।
बीता दिन रजनी हवै आई । राजसुता तब देग मँगाइ ।
बैठी बीच तवन के जाइ ॥ ८ ॥ छिद्र मूँदि नौका तर बाँधी ।
छोरी तबै बही जब आँधी । जब त्रिप प्रात दिवान लगायो ।
तब तिन तह इक मनुख पठायो ॥ ९ ॥ जौ तुम नाव न
मोल चुकावत । राजकुअरि लै बनिक सिधावत । जानि
देहु जो मोल न बनी । मेरे घर लवका हैं घनी ॥ १० ॥
हरी कुअरि राजा कौ कहिकै । मूरख सका भेद नहि लहिकै ।
प्रात सुता की जब सुधि पाई । (म०ग्र० १३१६) बैठि रहा मूँडी
निहराई ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ इकसठ चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३६१ ॥ ६६०८ ॥ अफजूं ॥

नाव लेनी हो तो ले लो नहीं तो मुझे कुछ उत्तर दो ॥ ६ ॥ मैं
(अपनी) राजकुँवर को ले जाऊँगा और अन्य गाँव में बेचूँगा । लेना
हो तो ले लो अन्यथा हमें बिदा करो ॥ ७ ॥ मूर्ख राजा
समझा नहीं और दिन बीतकर रात हो गई । राजकुमारी तब देग
मँगवाकर बीच में जा बैठी ॥ ८ ॥ मुँह वन्द करके उसे नौका के नीचे बाँध
दिया और तब छोड़ा जब आँधी आई ! जब राजा ने प्रातः दरबार लगाया
तो उसके पास एक मनुष्य भेज दिया ॥ ९ ॥ यदि तुम नाव का मोल नहीं
चुकाओगे तो व्यापारी राजकुमारी को ही ले जायगा । राजा ने कहा कि
मेरे पास अनेकों नौकाएँ हैं, जाने दो, हमारा मोलभाव नहीं बनेगा ॥ १० ॥
राजा को कहकर उसकी पुत्री का हरण कर लिया और वह मूर्ख भेद न जान
सका । प्रातः जब उसे पुत्री की खबर मिली तो बैठा सिर धुनने
लगा ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ इकसठवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६१ ॥ ६६०८ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ बासठि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु भूपति इक कथा बचित्र । जिह बिधि
किय इक नारि चरित्र । गुल्लो इक खलानी आही । जेठमल्ल
छत्री कह ब्याही ॥ १ ॥ ताकौ और पुरख इक भायो ।
निजु पति सेती हेतु भुलायो । रैन दिवस तिह धाम बुलावै ।
कामभोग तिन साथ कमावै ॥ २ ॥ इक दिन सुधि ताके
पति पाई । बहुबिधि ता संग करी लराई । अनिक करी
जूतिन की मारा । तब तिन इह बिधि चरित बिचारा ॥ ३ ॥
ता दिन तें निजु पति कौ त्यागी । साथ फकीरन के अनुरागी ।
वाहि अतिथ करिकै संग लीना । औरै देस पयाना
कीना ॥ ४ ॥ जिह जिह देस आपु पगु धारै । तहीं तहीं
वहु संग सिधारै । और पुरखु तिह अतिथ पछानै । त्रिया
चरित्र न कोई जानै ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ बासठि चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६२ ॥ ६६१३ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ बासठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! एक कथा सुनो कि कैसे एक नारी ने विचित्र
प्रपंच किया । गुल्लो नामक एक क्षत्राणी थी जो जेठमल नामक क्षत्रिय से
ब्याही गई थी ॥ १ ॥ उसको एक अन्य पुरुष भा गया और उसने अपने
पति के साथ प्रेम को भुला दिया । वह रात-दिन उसे घर बुलाती थी और
उसके साथ कामभोग करती थी ॥ २ ॥ एक दिन उसके पति को पता
लगा और उसने उसके साथ विविध प्रकार से झगड़ा-लड़ाई की । उसे
अनेक जूते मारे और तब उस स्त्री ने एक प्रपंच सोचा ॥ ३ ॥ वह उसी
दिन से अपने पति को त्यागकर फकीरों के साथ हो ली । उसे भी उन्होंने
साधु बना लिया तथा अन्य देश की ओर प्रस्थान कर दिया ॥ ४ ॥ जहाँ-
जहाँ वे क्रदम रखते थे यह भी वहीं-वहीं साथ जाती थी । अन्य लोग उसे
साधु ही समझते थे और स्त्री के प्रपंच को नहीं जानते थे ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ बासठवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६२ ॥ ६६१३ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ त्रैसठि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुन राजा इक कथा नवीन । जस चरित्र
किय नारि प्रबीन । सिंघ महैस्र सुना इक राजा । जिह सम
और न बिधना साजा ॥ १ ॥ नगर महेसावति तिह राजत ।
देवपुरी जा कौ लखि लाजत । विमलमती रानी तिह ऐन ।
जा सम सुनी न निरखी नैन ॥ २ ॥ स्त्री पंजाबदेइ तिह
बेटी । जा सम इंद्र चंद्र नहि भेटी । अधिक तवन को प्रभा
बिराजै । जिह दुति निरखि चंद्रमा लाजै ॥ ३ ॥ जब जोवन
ताके तन भयो । अंग अंग सदन दमामो दयो । भूप ब्याह
को बिवत बनाइ । सकल प्रोहितन लिया बुलाइ ॥ ४ ॥
सिंघ सुरेस्र भूप तब चीना । जिस ससि जात न पटतर दीना ।
करी तवन के साथ सगाई । दै सनमान बरात बुलाई ॥ ५ ॥
जोरि सैन आयो राजा तह । रचा ब्याह को बिवतारे जह ।
तहीं बरात आइ करि निकसी । रानी कंज कली जिमि
बिगसी ॥ ६ ॥ (सू० प्र० १३१७) ॥ दोहरा ॥ राजसुता सुंदर

तीन सौ तिरसठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजा ! एक अन्य नई कथा सुनो कि किस प्रकार एक
चतुर स्त्री ने प्रपंच किया । महेश्वर सिंह नामक एक राजा सुना जाता था,
जिसके समान विधाता ने अन्य किसी को नहीं बनाया था ॥ १ ॥
महेश्वरवती नगरी थी जिसे देखकर देवपुरी भी लज्जित होती थी । उस
राजा के घर में विमलमती रानी थी जिसके समान सुन्दर स्त्री देखी-सुनी
नहीं जाती थी ॥ २ ॥ पंजाब देवी उसकी बेटी थी जिसके समान इंद्र, चन्द्र
को भी स्त्री नहीं मिली थी । उसकी अत्यधिक शोभा को देखकर चन्द्रमा
भी लज्जित होता था ॥ ३ ॥ जब वह यौवनवती हो गई तो अंग-अंग में
कामदेव ने आकर नगाड़े बजाने शुरू कर दिये । राजा ने विवाह का
आयोजन कर सभी पुरोहितों को बुला लिया ॥ ४ ॥ राजा ने सुरेश्वर सिंह
राजा को चुना जिसकी बराबरी चन्द्रमा भी नहीं कर सकता था । उसके
साथ सगाई कर दी और सम्मानपूर्वक बारात बुलाई ॥ ५ ॥ राजा सेना
समेत वहाँ आ गया जहाँ विवाह का आयोजन था । वहीं बारात आ पहुँची
और रानी भी फूल की कली के समान प्रफुल्लित हो उठी ॥ ६ ॥
॥ दोहा ॥ राजकुमारी सुन्दर थी और उसका वर (उसकी अपेक्षा) कुरूप

हुती तिह बर होत कुरूप । बिमल भई अबला निरखि जनु जिय
 हारा जूष ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ एक शाह को पूत हुतो संग ।
 सुंदर हुते सकल जाके अंग । राज सुता लख ताहि लुभाई ।
 गिरी धरनि जनु नाग चबाई ॥ ८ ॥ सुता गिरी मइया तह
 आई । सींचि बारि बहु चिरै जगाई । जब ताको बहुरौ
 सुधि आई । उलटि गिरी जन लगी हवाई ॥ ९ ॥ पहिरक
 बिसे बहुरि सुधि आई । रोइ मात सौ बात जनाई । अगनि
 जारि मुहि अबै जरावौ । इहु कुरूप के धाम न छावौ ॥ १० ॥
 मातहि हुती सुता अति प्यारी । चिंता करी चित्त महि भारी ।
 जिनि इह राजसुता मरि जाइ । कहा करै ताकी तब
 माइ ॥ ११ ॥ जब त्रिप सुता कछू सुधि पाई । रोइ मात
 सौ बात सुनाई । ध्रिग मुहि राजसुता क्यों भई । किसी
 शाह के धाम न गई ॥ १२ ॥ सोरो भाग लोप हवै गयो ।
 ताँते जनम भूप को लयो । अब ऐसे कुरूप के जैहौ । रैन
 दिवस सभ रोत बितैहौ ॥ १३ ॥ ध्रिग मुहि नारि जोनि कस
 धरी । क्यों भूपति के धामौतरी । माँगी देत न चितु
 बिधाता । अब हो करौ देहि कों घाता ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ मुख

था । वह देखकर वैसे ही बे-मन हो गई जैसे कोई जुए में हारकर खिन्न हो
 जाता है ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ एक धनी का पुत्र साथ में था जिसके समस्त अंग
 सुन्दर थे । राजकुमारी उसे देखकर मोहित हो ऐसे धरती पर गिर पड़ी
 मानों नाग ने उसे काट लिया हो ॥ ८ ॥ पुत्री गिर पड़ी और माँ वहाँ आ
 पहुँची और पानी छिड़ककर उसे होश में लाई । जब उसे फिर होश आया
 तो वह फिर उलटकर ऐसे गिर पड़ी मानों उसे कोई गोली लगी हो ॥ ९ ॥
 लगभग एक प्रहर बीतने पर जब उसे फिर होश आया तो उसने रोते हुए
 अपनी माँ को बात बताई । आग लगाकर मुझे अभी जला दो पर इस
 कुरूप के घर मत भेजो ॥ १० ॥ माँ को बेटी बहुत प्यारी थी उसे भी मन
 में भारी चिंता हुई । कहीं यह राजकुमारी मर न जाय । फिर उसकी माँ
 क्या करेगी ॥ ११ ॥ जब राजा की पुत्री को कुछ होश आया तो रोते हुए
 उसने माता से कहा कि मुझे धिक्कार है, मैं राजकुमारी क्यों बनी और क्यों न
 किसी धनी के घर चली गई ॥ १२ ॥ मेरा भाग्य ही नष्ट हो गया जो मैंने
 राजा के घर जन्म लिया । अब यदि ऐसे कुरूप के साथ जाती हूँ तो रात-
 दिन रोते हुए ही बिताऊँगी ॥ १३ ॥ मेरे नारी होने को धिक्कार है । मैं भला
 क्यों राजा के घर में जन्मी ? माँगने पर तो विधाता मृत्यु भी नहीं देता ।

मांगे जो पुरख को भलो बुरो कुछ होइ । तौ दुखिया इह जगत मै जियत न उबरै कोइ ॥ १५ ॥ ॥ चौपई ॥ अब मैं मारि कटारी मरिहौ । ना तर वस्त्र भगौहे धरिहौ । बरौ त पूत शाह को बरौ । ना तर आजु खाइ बिखु मरौ ॥ १६ ॥ रानी को दुहिता थी प्यारी । सोई करी जु ताहि उचारी । चेरी काढि तवन कह दीनी । भूप सुता करि तिन जढ़ चीनी ॥ १७ ॥ शाह पुत्र कह दई कुनारी । दुतिय पुरख नहि क्रिया बिचारी । लं चेरी बहु भूप सिधायो । जान्यो राज सुता बरि ल्यायो ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ त्रैसठि चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६३ ॥ ६६३१ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ चौसठि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ गनपति सिंघ एक राजा बर । गनपावती हुतो जाके घर । स्त्री सहताबप्रभा तिह रानी । जाहि निरखि करि नारि लजानी ॥ १ ॥ मुहकर्मसिंघ एक

मैं अभी आत्मघात कर लूंगी ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ यदि मुंह मांगा भला-बुरा कुछ हो जाय तो इस संसार में कोई भी दुखी न बचे ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ अब मैं कटार मारकर मर जाऊंगी अन्यथा भगवे वस्त्र धारण कर लूंगी । अगर कलूंगी तो धनिक के पुत्र का वरण कलूंगी नहीं तो आज ही जहर खाकर मर जाऊंगी ॥ १६ ॥ रानी को पुत्री से प्यार था । उसने वही किया जो उसने कहा । उसे (राजा को) एक दासी दे दी जिसे उस मूर्ख ने राजा की पुत्री समझ लिया ॥ १७ ॥ धनिक के पुत्र को वह कुलटा दे दी जिसने दूसरे पुरुष के साथ जाने की क्रिया का (तनिक भी) विचार नहीं किया । उसपर वह राजा दासी को लेकर ही चल पड़ा और समझ रहा था कि राजकुमारी विवाह कर लाया है ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में तीन सौ तिरसठवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६३ ॥ ६६३१ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ चौसठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ गनपति सिंह एक श्रेष्ठ राजा था जिसका निवास गनपावती नामक नगर में था । उसकी रानी सहताबप्रभा थी जिसे देखकर

छत्री जह । जिह सभ उपजा दुतिय न सहि सह (म०प्र० १३१८)
 रानी जब ताको लखि पायो । कामभोग ग्रहि बोलि
 कमायो ॥ २ ॥ तब लगि आइ गयो राजा तह । जार हुतो
 भोगत ताको जह । निरख नाथ त्रिय चरित्र बिचारा ।
 हार तोरि आँगना सहि डारा ॥ ३ ॥ बिहसि बचन त्रिप संग
 उचारा । खोजि हार तुम देहु हमारा । आन पुरख जौ
 हाथ लगै है । तौ हमरे पहिरन ते जैहै ॥ ४ ॥ खोजत भयो
 जड़ हार अथानो । नेत्र नीच करि भेद न जानो । नारि
 आगे ह्वै सीत निकारा । सिर नीचें पसु तिह न निहारा ॥ ५ ॥
 पहरिक लगे खोजि जड़ हारो । लै रानी कह दयो सुधारो ।
 अति पतिव्रता ताहि ठहरायो । दुतिय पुरख जिन कर न
 छुआयो ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ चौसठि चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६४ ॥ ६६३७ ॥ अफजू ॥

स्त्रियाँ लज्जित होती थीं ॥ १ ॥ वहाँ एक मुहकम सिंह नामक क्षत्रिय था
 जिसके समान धरती पर अन्य कोई उत्पन्न नहीं हुआ था । रानी ने जब
 उसे देखा तो घर बुलवाकर उसके साथ कामक्रीड़ा की ॥ २ ॥ तब
 तक राजा वहाँ आ गया जहाँ वह याद उसको भोग रहा था । स्वामी
 को देखकर स्त्री ने प्रपंच सोचा और हार को तोड़कर आँगन में डाल
 दिया ॥ ३ ॥ हँसकर राजा से कहा कि तुम मेरा हार खोज दो । यदि कोई
 अन्य पुरुष उसे छुएगा भी तो वह हमारे पहनने के काम से जायगा ॥ ४ ॥
 वह मूर्ख नजरें नीची करके हार खोजने लगा और भेद न समझ पाया ।
 स्त्री ने आगे करके मित्र को निकाल दिया और इस सिर नीचा किए हुए
 मूर्ख ने उसे नहीं देखा ॥ ५ ॥ लगभग एक प्रहर के समय तक मूर्ख खोजकर
 थक गया और रानी को खोजकर दे दिया । उसे उसने अत्यन्त पतिव्रता
 माना, क्योंकि उसने अन्य पुरुष को छूने भी नहीं दिया ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ चौसठवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६४ ॥ ६६३७ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ पैंसठि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ त्रिपवर सिंह एक राजाना । मानत आनि
देस जिह नाना । स्त्री किलकंचित दे तिह रानी । जाहि
निरखि पुर नारि रिसानी ॥ १ ॥ त्रिपवरवतीनगर तिह
राजत । दुतिय प्रिथी जनु सुरग बिराजत । नगर प्रभा नहि
जात बखानी । थकित रहत राजा अरु रानी ॥ २ ॥ स्त्री
चितचौपमती तिह कन्या । जिह सम नारि न उपजी अन्या ।
ताकी जात न उपमा करी । रूप रास जोवन तन भरी ॥ ३ ॥
राजकुअर इक हुतो अपारा । इक दिन निकसा निमिति
शिकारा । म्रिग हित धयो न पहुचा कोई । आवत भयो
नगर तिह सोई ॥ ४ ॥ राज सुता तिह रूप निहारो । मन
क्रम बच अस करा बिचारो । ऐसो छैल एक दिन पैयै ।
जनम जनम पल पल बलि जैयै ॥ ५ ॥ अटिक सिंग लखि
तेज सवाया । थकित रही राजा की जाया । पठे सहचरी
लियो मँगाइ । काम भोग रुचि आनुपजाइ ॥ ६ ॥ चारि
पहर निसु किया बिलासा । तजि करि मात पिता को त्रासा ।

तीन सौ पैंसठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ नृपवरसिंह एक राजा था जिसका आधिपत्य अनेकों देश
मानते थे । किलकंचितदेवी उसकी रानी थी जिसे देखकर सारे नगर
की स्त्रियाँ ईर्ष्या करती थीं ॥ १ ॥ उनका नृपवरवती नगर शोभायमान
था जो मानों धरती पर दूसरा स्वर्ग था । नगर की शोभा का वर्णन नहीं
किया जा सकता । राजा और रानी उसकी शोभा से अवाए रहते थे ॥ २ ॥
चित्तचौपमती उनकी कन्या थी जिसके समान अन्य स्त्री पैदा नहीं हुई थी ।
उसकी शोभा कही नहीं जाती । वह रूपराशि यौवन से पूर्ण थी ॥ ३ ॥
एक राजकुमार था जो कि एक दिन शिकार के लिए निकला । उसे कोई भी
मृग न मिल सका और वह उसी नगर में आ निकला ॥ ४ ॥ राजकुमारी
ने उसका रूप देखा और मन, वचन एवं कर्म से यह विचार किया कि यदि
ऐसा छैला एक दिन मिल जाय तो जन्म-जन्मान्तरों तक न्योछावर हो
जाऊँ ॥ ५ ॥ अटिकसिंह का रूप देखकर राजा की वह पुत्री हक्की-बक्की रह
गई । एक सहेली को भेजकर उसे मँगा लिया और रुचिपूर्वक उसके साथ
कामक्रीड़ा की ॥ ६ ॥ चार प्रहर रात्रि तक उससे रमण किया और
माता-पिता का भय भी त्याग दिया । वे पोस्त, भाँग, अफीम मँगाते थे और

पोसत भांगि अफीम मँगावहि । एक सेज दोऊ बैठ
चढ़ावहि ॥ ७ ॥ कैफहि होत रसमसे जबही । क्रीड़ा करत
दोऊ मिल तबही । भाँति भाँति तन आसन लैकै । चुंबन
और अलिंगन कैकै ॥ ८ ॥ स्त्रिमित भए अरु भे मतवारे ।
सोई रहै नहि नैन उधारे । प्राति पिता ताको तह आयो ।
जाइ सहचरी तिनै (मू० प्र० १३१६) जगायो ॥ ९ ॥ वहै सखी
तिह बहुरि पठाई । यौ कहियहु राजा सो जाई । चौका
परा भोज दिज कारन । बिनु न्हाए त्रिप तह न सिधारन ॥ १० ॥
वस्त्र तारि कर इही अनावहु । बहुर सुता के धाम सिधावहु ।
भूप बचन सुनि वस्त्र उतारे । अहबच्चा सहि न्हान
सिधारे ॥ ११ ॥ जब डुबिआ कह भूपति लीना । तब ही
काढि मित्र कह दीना । वस्त्र पहिरि फिरि तहाँ सिधायो ।
भेद अभेद न कछु जड़ पायो ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ स्यानो
भूप कहात थो भाँगन भूल चबाइ । इह छल छलि अमली
गयो पनही मूँड लगाइ ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पाख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सी पैसठि चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६५ ॥ ६६५० ॥ अफजू ॥

एक ही शय्या पर बैठकर दोनों पीते थे ॥ ७ ॥ नशे में जब थोड़ा लीन
होते तो दोनों मिलकर क्रीड़ा करते थे और भाँति-भाँति के चुंबन,
आलिंगन और आसनों का प्रयोग करते थे ॥ ८ ॥ वे पसीने से युक्त और
मतवाले हो गए थे और आँखें बंद करके सो रहे । जब प्रातः उसका पिता
वहाँ आ गया तो सहेली ने जाकर उसे जगा दिया ॥ ९ ॥ उसने उसी सखी
को पुनः भेजा कि राजा से जाकर कहो कि ब्राह्मणों के भोजन के लिए चौका
लगा हुआ है अतः राजा बिना स्नान किए वहाँ न आए ॥ १० ॥
वस्त्र उतार कर यहीं स्नान करो और फिर पुत्री के घर में प्रविष्ट होओ ।
राजा ने सुनकर वस्त्र उतारे और जलताल में नहाने के लिए चल
पड़ा ॥ ११ ॥ जब राजा ने डुबकी लगाई उसी समय उसने अपने मित्र
को निकाल दिया । वह (राजा) वस्त्र पहन कर फिर वहाँ आया और
भेद-अभेद को मूर्ख कुछ भी न समझ सका ॥ १२ ॥ ॥ दोहरा ॥ वह राजा
अपने आपको चतुर कहलवाता था और भाँग भूलकर भी नहीं खाता था ।
परन्तु वह नशेड़ी उसे छल गया औ उसके सिर पर (मानों) जूता लगा
गया ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सी पैसठवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६५ ॥ ६६५० ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ छासठ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक और प्रसंगा । जस छल
कीना नारि सुरंगा । छितपति सिंघ एक भूपत बर । अबला
दे रानी जाके घर ॥ १ ॥ नाभमती दुहिता तिह सोहै ।
सुर नर नाग असुर मन मोहै । पदुमावती नगर तिह राजत ।
इंद्रावती निरखि तिह लाजत ॥ २ ॥ वीरकरन राजा इक
औरै । भद्रावती बसत थो ठौरै । ऐंठीसिंघ पुत तिह जायो ।
निरखि मदन जिह रूप बिकायो ॥ ३ ॥ त्रिप सुत खेलन
चढ़ा शिकारा । आवन ज्यो तिह नगर मझारा । न्हावत
हुती जहाँ त्रिप बारि । थकति रहा तिह रूप निहारि ॥ ४ ॥
राजसुता तिह ऊपर अटकी । बिसरि गई उत तिह सुधि घट
की । रीझ रहे दोनो मन माही । कछू रही दुहँअनि सुधि
नाही ॥ ५ ॥ तरुनि गिरा जब चतुरि निहरा । ताकी हाथ
नाभि पर धरा । अरु पद पंकज हाथ लगाई । मुख न कहा
कछु धाम सिधार्ई ॥ ६ ॥ द्वैक घरी तिन परे बिताई । रास

तीन सौ छाछठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ राजन् ! एक अन्य वार्त्ता सुनो कि किस प्रकार एक
सुन्दर स्त्री ने छल किया । छितपति सिंह एक श्रेष्ठ राजा था जिसकी
रानी अवलादेवी थी ॥ १ ॥ उसकी पुत्री नाभमती थी जो सुर, नर, नाग
आदि सबका मन मोहित करती थी । पदमावती नगर में वे शोभायमान
थे जिसे देखकर इन्द्रपुरो भी लज्जित होते थे ॥ २ ॥ वीरकरन एक अन्य
राजा था जो भद्रावती नामक स्थान पर बसता था । ऐंठीसिंह उसका पुत्र
था जिसका रूप देखकर कामदेव भी उस पर बिका हुआ था ॥ ३ ॥ राजा
का पुत्र शिकार खेलने चला और उस नगर में आ पहुँचा जहाँ राजा की
बालिका स्नान कर रही थी । वह उसका रूप देखकर स्तब्ध रह
गया ॥ ४ ॥ राजकुमारी उसी पर अटक गई और उसे अपने शरीर की सुधि
भी भूल गयी ॥ ५ ॥ दोनों मन ही मन एक-दूसरे पर मोहित हो उठे और
दोनों को सुध-बुध न रही । उस चतुर स्त्री को देखकर तरुण गिर पड़ा
और उसका हाथ उसकी नाभि पर जा पड़ा । उसने उसके चरण-कमलों
को स्पर्श किया और मुख से कुछ भी बोले बिना घर चली आई ॥ ६ ॥ दो
एक घड़ी उसने उससे दूर बितायी और इधर उस कुँवर को पुनः होश आ गया ।

कुअरि कह पुनि सुधि आई । हाहा शब्द रटत घर गयो ।
 खान पान तब तें तजि दयो ॥ ७ ॥ बिरही भए दोऊ नर
 नारी । राजकुअर अह राजकुमारी । हाव परसपर
 दुहूअन भयो । सो मैं कबितन साँझ कहियो ॥ ८ ॥
 ॥ सवैया ॥ उन कुंकम टीको दयो न उतै इत ते हूँ न सेंदुर
 माँग सवारी । त्यागि दयो सभ को डरवा सभ हूँ को इतै
 तिह लाज बिसारी । हार तजे तिन हेरब तें सजनी लखि
 कोटि हहा (सू० प्र० १३२०) करि हारी । पान तजे तुम ता हित
 प्रीतम प्रान तजे तुमरे हित प्यारी ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ उतै
 कुअरि कह कछू न भावै । हहा शब्द दिन कहत बितावै ।
 अन न खात पियत नहि पानी । मित्र हुतो तिह तिन
 पहिचानी ॥ १० ॥ कुअर बिथा जिय की तिह दई । इक
 त्रिय मोहि दरस दै गई । नाभ पाव पर हाथ लगाइ । फिरि
 न लखा कह गई सु काइ ॥ ११ ॥ ताकी बात न ताँहि
 पछानी । कहा कुअर इन मुझे बखानी । पूछि पूछि सभही
 तिह जावैं । ताको मरमु न कोई पावैं ॥ १२ ॥ ताको मित्र
 हुतो खतरेटा । इशक मुशक के साथ लपेटा । कुअर तवन

वह हा हा कहता हुआ घर गया और खान-पान सब उसने त्याग दिया ॥ ७ ॥
 दोनों नर-नारी अर्थात् वह राजकुमार और राजकुमारी बिरही हो उठे । उन
 दोनों को परस्पर प्यार हो गया और इसी सबका मैंने काव्य में वर्णन किया
 है ॥ ८ ॥ ॥ सवैया ॥ उसने उधर कुंकम का टीका नहीं लगाया और
 इधर इसने भी माँग में सिंदूर नहीं भरा । उन्होंने सब लाज और भय
 आदि त्याग दिए । वह उसे खोजती-खोजती हार गँवा बैठी और हार मान कर
 बैठ गई । तुम्हारे लिए प्रियतम प्राण त्याग रहा है और हे प्रिय ! तुम उसके
 लिए प्राण त्याग रही हो ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ उधर कुँवर को कुछ अच्छा
 नहीं लगता था और "हाय-हाय" कहते सारा दिन बिता देता था । वह
 केवल मित्र को ही पहचान रहा था और अन्न-जल कुछ भी नहीं खा रहा
 था ॥ १० ॥ कुँवर ने उस मित्र को मन की बात कही कि मुझे एक स्त्री
 दर्शन दे गई है । उसने नाभि और पाँव पर हाथ लगाया और फिर मुझे
 पता नहीं क्या कह गई है ॥ ११ ॥ उस कुँवर ने क्या कहा है वह न समझ
 सका । सभी उससे पूछ-पूछकर जा रहे थे पर उसका मर्म कोई नहीं समझ
 रहा था ॥ १२ ॥ उसका एक क्षत्रिय मित्र था जो इशक-मुशक के साथ भरा-
 पूरा था । कुँवर ने उसे अपनी व्यथा सुनाई जिसे वह सुनते ही समझ

पहि ब्रिथा सुनाई । सुनत बात सभ ही तिन पाई ॥ १३ ॥
 नाभमती तिह नाम पछाना । जिह नाभी कह हाथ छुआना ।
 पदुमावती नगर ठहरायो । ताते पद पंकज कर लायो ॥ १४ ॥
 दोऊ चले तह ते उठि सोऊ । तीसर तहाँ न पहुँचा कोऊ ।
 पदमावती नगर था जहाँ । नाभमती सुंदरि थी तहाँ ॥ १५ ॥
 पूछत चले तिसी पुर आए । पदुमावती नगर नियराए ।
 मालिनि हार गुहत थी जहाँ । प्रापति भए कुअर जुत
 तहाँ ॥ १६ ॥ एक मुहर मालनि कह दियो । हार गुहन
 हित बिप सुत लियो । लिखि पत्नी ता महि गुहि डारी ।
 जिस हाथन लै पड़ै पयारी ॥ १७ ॥ तैं जिह हाथ नाभि कह
 लायो । और दुहूँ पद हाथ छुहायो । ते जन आजु नगर महि
 आए । तुम सौ चाहत नैन मिलाए ॥ १८ ॥ राजसुता
 पतिया जब चीनी । छोरि लई कर किसू न दीनी । बहु धन
 दै मालिनी बुलाई । लिखि पत्नी फिरि तनै पठाई ॥ १९ ॥
 शिव कौ दिपत देहरो जहाँ । मैं ऐहौ आधी निसि तहाँ ।
 कुअरि तहाँ तुमहूँ चलि ऐयहु । मन भावत को भोग
 कसैयहु ॥ २० ॥ कुअर निसा आधी तह जाई । राज सुता
 आगे तह आई । काम भोग की जेतिक प्यासा । पूरनि भई

गया ॥ १३ ॥ उसका नाम उस नाभिमती ने पहचान लिया जिसकी नाभि
 को हाथ लगा था । पद पंकज छूने की वजह से उसने नगर का नाम भी
 पदमावती पहचान लिया ॥ १४ ॥ वे तीसरे किसी को साथ लिये बिना
 दोनों वहाँ पहुँचे । जहाँ सुन्दर पदमावतीनगर में नाभिमती सुन्दरी
 थी ॥ १५ ॥ पूछते हुए वहीं आ गए और पदमावती नगर के पास आ
 पहुँचे । जहाँ मालिन हार गूँथ रही थी वे (दोनों) वहाँ आ निकले ॥ १६ ॥
 मालिन को एक मुहर देकर उससे गूँथा हुआ हार ले लिया । एक पत्र
 उसमें गूँथकर डाल दिया ताकि वह प्यारी हाथों में लेकर पढ़
 ले ॥ १७ ॥ तेरी नाभि को जिसने हाथ लगाया और तुमने जिसके चरणों को
 छुआ था वे नगर में आ गए हैं और तुमसे आँखें मिलाना चाहते हैं ॥ १८ ॥
 राजकुमारी ने जब पत्र देखा तो खोल लिया और किसी को न दिया ।
 बहुत सा धन देकर उसने मालिन को बुलाया और पत्र लिखकर फिर
 भेजा ॥ १९ ॥ जहाँ शिव का मंदिर शोभायमान है मैं वहाँ आधी रात
 को आऊँगी । हे कुँवर ! तुम वहाँ आ जाना और मनचाही रमण-क्रिया
 करना ॥ २० ॥ कुँवर आधी रात को वहाँ पहुँचा जहाँ राजकुमारी भी

दुहूँ की आसा ॥ २१ ॥ मालिनि की दुहिता कहि बामा ।
 राजकुअर कह ल्याई धामा । राति दिवस दोऊ करत
 बिलासा । भूपत की तजि करि करि लासा ॥ २२ ॥
 कितक दिनन ताको पति आयो । अति कुरूप नहि जात
 बतायो । सूकर के से दाँति बिराजैं । निरखत करी रदन
 द्वै भाजैं ॥ २३ ॥ राजकुअर त्रिय भेस सु धारे । (सू० अं० १३२१)
 आवत भयो तिह निकट सवारे । राजसुता पहि निरखि
 लुभायो । भोग करन हित हाथ चलायो ॥ २४ ॥ राजकुअर
 तब छुरी सँभारी । नाक काटि त्रिय सुत की डारी । नाक
 कटे जड़ अधिक खिसायो । सदन छाडि काननहि सिधायो ॥ २५ ॥
 नाक कटाइ जबै जड़ गयो । इन पथ शिव देवल को लयो ।
 त्रिय सुत त्रिगिक हितू हनि ल्यायो । दुहूँअन बैठि तिही ठाँ
 खायो ॥ २६ ॥ तही बैठि दुहूँ करे बिलासा । त्रियहि न
 रही भोग की आसा । लै ताकै संग देस सिधायो । इक
 सहचरि कह तहाँ पठायो ॥ २७ ॥ डिवढी सात सखी तिन
 नाखी । इमि बतिआँ भूपति संग भाखी । पति त्रिय गए
 दोऊ निसि कह तह । आगे हुते सदा शिदजू जह ॥ २८ ॥

आ गई थी । कामक्रीड़ा की जितनी तृष्णा थी वह दोनों की पूरी हो
 गई ॥ २१ ॥ उसे स्त्री-वेश धारण कर मालिन की पुत्री कहकर
 राजकुमारी अपने निवास पर ले आई । अब राजा का भय भुलाकर वे
 रात-दिन भोग-विलास करने लगे ॥ २२ ॥ कई दिनों बाद उसका पति
 आ गया जिसकी कुरूपता का वर्णन नहीं किया जा सकता । सूअर के
 समान उसके दाँत थे जिन्हें देखकर हाथी के दाँत भी भाग खड़े होते
 थे ॥ २३ ॥ राजकुमार ने स्त्री-वेश धारण कर रखा था, वह उसके पास
 आने लगा । वह राजकुमारी पर लुब्ध था और उसने अपना हाथ आगे
 बढ़ाया ॥ २४ ॥ राजकुमार ने तब छुरी सँभालकर उस राजकुमार की
 नाक काट डाली । नाक कटने पर मूर्ख अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा और जंगल
 में भाग गया ॥ २५ ॥ वह मूर्ख जैसे ही नाक कटाकर भागा इसने भी
 मन्दिर का रास्ता पकड़ा । राजा का पुत्र एक मृग मारकर लाया जिसे
 दोनों ने वहाँ बैठकर खाया ॥ २६ ॥ वहीं बैठकर दोनों ने रमणक्रीड़ा की
 और स्त्री की भोग की इच्छा पूर्ण हो गई । वह उसे लेकर अपने देश को
 चला गया और इधर एक दासी को भेज दिया ॥ २७ ॥ उस सखी ने सात
 दरवाजे पार करके राजा से कहा कि राजकुमारी और उसका पति दोनों

दुहूँ जाइ तह किए प्रयोगा । तीसर कोई न जानत लोगा ।
उलटि परा शिवजू रिसि भरियो । भसमीभूत दुहूँ कह
करियो ॥ २६ ॥ वहै भसम लै तिनै दिखाई । भ्रिग भच्छन
हित तिनै जगाई । भसम लए सभ ही जिय जाना । लै
प्रीतम घर नारि सिधाना ॥ ३० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ छासठ चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६६ ॥ ६६८० ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ सतसठ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अंधावती नगर इक सोहै । सैन बिदाद
भूप तिह को है । मूरखिमति ताकी बर नारी । जिह सी
मूढ़ न कहूँ निहारी ॥ १ ॥ प्रजा लोग अति ही अकुलाए ।
देस छोडि परदेस सिधाए । और भूप पहि करी पुकारा ।
न्याइ करत तैं नही हमारा ॥ २ ॥ तांते तुम कुछ करहु
उपाइ । जाते देस बसैं फिरि आइ । चारि नारि तब कह्यो
पुकारि । हम ऐहैं जड़ त्रिपहि सँघारि ॥ ३ ॥ द्वै त्रिय भेस

रात को शिव-मंदिर में गए थे ॥ २८ ॥ दोनों ने वहाँ जाकर अभ्यास किया
जिसे तीसरा कोई नहीं जानता है । वह अभ्यास उलटा हो गया और शिव
ने क्रुद्ध हो उन दोनों को भस्म कर दिया है ॥ २९ ॥ उसने वही भस्म
उसको दिखा दी जो मारे गये मृग की उसे मिली थी । सबने समझा कि
वह भस्म हो गई है और वह प्रियतम स्त्री को लेकर घर की ओर चल
पड़ा ॥ ३० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ छाछठवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६६ ॥ ६६८० ॥ अफजूं ॥

तीन सौ सड़सठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ अंधावती नगरी का बिदादसेन एक राजा था ।
उसकी रानी का नाम मूर्खमति था जिनके समान अन्य मूर्ख कहीं नहीं देखी-
सुनी जाती थी ॥ १ ॥ प्रजा अत्यन्त ही व्याकुल थी और देश छोड़कर
परदेश चली गई थी । प्रजा राजा के पास पुकार कर रही थी कि तुम
हमारा न्याय क्यों नहीं करते ॥ २ ॥ कुछ उपाय करो जिससे देश पुनः
बस जाय । चार स्त्रियों ने तब कहा कि हम मूर्ख राजा को मार कर

पुरख के धारो । पैठि गई तिह नगर मँझारो । द्वै त्रिय भेस
 जोग्य को धारो । प्रापति भी तिह नगर मँझारो ॥ ४ ॥
 इक त्रिय चोरी करी बनाइ । पकरि लई दूसरि त्रिय जाइ ।
 द्वै त्रिय जोग भेस कौ धरिकै । गई भूप को चरित
 बिचरिकै ॥ ५ ॥ भूप कहा सूरि इह दीजै । तीनो हुकमु
 हमारे लीजै । हनन न्हात लै ताहि सिधारे । द्वै इस्त्री हवै
 अतिथ पधारे ॥ ६ ॥ जोगिनि नारि कहा अस कीजै । द्वै
 महि इक जोगी (सू० प्र० १३२२) कह दीजै । ऐहैं इहाँ अरस की
 बाता । जानत कोई न ताकी घाता ॥ ७ ॥ दुतिय नार इमि
 बचन उचारे । याहि न सूरि देहु कहारे । सूरि एक अतिथ
 को दीजै । तसकर दूर इहाँ ते कीजै ॥ ८ ॥ चली खबरि
 आवै इह कहाँ । बैठि बिदाद नराधिप जहाँ । अंध नगर के
 तीर लोग सभ । अच्छर कछु न पढ़ै तिन गरधभ ॥ ९ ॥
 और कछु जानै नहि बाता । सहाँ पशू भूरख बिख्याता । इह
 धुनि परी कान प्रभ के जब । निरखन चला अतिथहि द्वै
 तब ॥ १० ॥ दरस किया तिन को जब जाई । बचन किया
 भूपति मुसकाई । तुम सूरि कारन कहि लेहु । सो मुहि भेद
 क्रिपा करि देहु ॥ ११ ॥ हो हम जनम जनस किय पाता ।

आएंगी ॥ ३ ॥ दो स्त्रियाँ पुरुष-वेश में नगर में घुस गई और दो स्त्रियाँ
 योगी-वेश धारण कर नगर में आ गई ॥ ४ ॥ एक स्त्री ने चोरी की और
 दूसरी ने उसे पकड़ लिया । दो स्त्रियाँ योगी-वेश में कुछ प्रपंच सोचकर
 राजा के पास गई ॥ ५ ॥ राजा ने कहा कि इसे सूली पर चढ़ा दो और
 हमारा हुक्म मानो । वे मारने के लिए उसे ले चले तो दो स्त्रियाँ साधु-
 वेश में आ गई ॥ ६ ॥ योगिनी स्त्रियों ने कहा कि ऐसा करो कि दो में से
 एक योगियों को दे दो । यहाँ आकाश की बातें होंगी जिसके बारे में कोई
 कुछ नहीं जानता ॥ ७ ॥ दूसरी स्त्री ने कहा कि इसे सूली मत चढ़ाओ ।
 एक साधु को सूली पर चढ़ाओ और चोर को यहाँ से हटा दो ॥ ८ ॥
 यह खबर पहुँचते-पहुँचते बिदादसेन राजा के पास पहुँची । अंधनगर के
 सभी लोगों में से गधों के समान कोई भी एक अक्षर नहीं पढ़ा हुआ
 था ॥ ९ ॥ वे अन्य कोई बात भी नहीं जानते थे और पशुत्व तथा मूर्खता
 के लिए विख्यात थे । यह बात जब राजा के कान में पड़ी तो वह साधुओं
 को देखने के लिए चला ॥ १० ॥ जब उसने उनका दर्शन किया तो राजा
 ने मुस्करा कर कहा कि तुम सूली पर क्यों चढ़ रहे हो इसका भेद कृपापूर्वक

या पर चढ़त होहि सभ घाता । या पर बात स्वरग की ऐहै ।
आवागवन तुरत मिटि जैहै ॥ १२ ॥ जब राजे ऐसो मुनि
पाई । चित चढ़बे की ब्रिगत बनाई । अवर लोग सभ दए
हटाइ । आपु चढ़ा सूरी पर जाइ ॥ १३ ॥ भूप चढ़त
जोगी भजि गए । कहैं दुरे जनियत नहि भए । धरि इसत्रिन
के रूप अपारा । मिलगे ताही नगर मञ्जारा ॥ १४ ॥ इह
छल अन्याई छिप सारि । देस बसायो बहुरि सुधारि ।
अंधनगर कछु बात न पाई । इह छल हना हमारा
राई ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ सठसठ चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६७ ॥ ६६६५ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ अठसठ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ गढ़ कनौज कौ जहाँ कहिजै । अभै सिव
तह भूप भनिजै । लीचखुचार मती तिह नारी । जिह सम
तुल्ल न ब्रह्म सवारी ॥ १ ॥ ताको नेह एक सौ लागो ।

मुझसे कहो ॥ ११ ॥ उसने कहा कि मैंने जन्म-जन्म से पाप किए हैं
जिनका इस पर चढ़ने से नाश हो जायगा । इससे स्वर्ग मिलेगा और मेरा
आवागमन तुरन्त मिट जायगा ॥ १२ ॥ जब राजा ने यह सुना तो स्वयं
सूली पर चढ़ने का उपक्रम किया । उसने अन्य सब लोगों को हटा दिया
और स्वयं सूली पर जा चढ़ा ॥ १३ ॥ राजा के सूजी पर चढ़ते योगी
भाग गए और कहाँ छिप गए कहा नहीं जा सकता । वे स्त्रियों का रूप
धारण कर नगरवासियों में मिल गए ॥ १४ ॥ इस प्रपंच से अन्यायी
राजा को मार कर पुनः देश को बसाया । अंधनगर के लोगों को कुछ पता
नहीं चला कि हमारा राजा प्रपंच से मार डाला गया है ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सड़सठवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६७ ॥ ६६६५ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ अड़सठवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ कनौज का किला जहाँ कहा जाता है वहाँ अभयसिंह
नामक राजा रहता था । उसकी स्त्री चक्षुवारमती थी जिसके समान ब्रह्मा
ने अन्य किसी को नहीं बनाया था ॥ १ ॥ उसका स्नेह एक व्यक्ति से

जाते लाज छाड तन भागो । अघट सिंघ तिह नाम भनिज्जै ।
 को दूजा पटतर तिह दिज्जै ॥ २ ॥ नितिप्रति तिह त्रिय
 बोलि पठावत । काम भोग तिह साथ कसावत । तब लौ
 तहाँ नराधिप आयो । त्रिय चरित्र इह भाँति बनायो ॥ ३ ॥
 तुमरे केस भूप बिकरारा । सहे न सो ते जात सुधारा ।
 प्रथमहि रोम मूँडि तुम आवहु । बहुरि हमारी सेज
 सुहावहु ॥ ४ ॥ जब त्रिप गयो रोम मूँडिन हित । रानी
 अधिक प्रसन्न भई चित । (मू०ग्रं० १३२३) छिद्र ताकि निजु मीत
 लुकायो । मूरख भूप भेद नहि पायो ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ अठसठ चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६८ ॥ ६७०० ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ उनहत्तर चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक और कहानी । जिह बिधि
 किया राव संग रानी । गनपति सिंघ एक राजा बर । शत्रु
 कंपत ताके डर घर घर ॥ १ ॥ चंचल दे राजा की नारी ।

लग गया था जिससे लज्जा उसे छोड़कर भाग गई थी । उसका नाम
 अघट सिंह था जिसके समान अन्य कोई नहीं था ॥ २ ॥ रोज वह स्त्री
 उसे बुलाती थी और उसके साथ कामभोग किया करती थी । तब तक
 एक दिन राजा वहाँ आ गया तो उस स्त्री ने ऐसा प्रपंच बनाया ॥ ३ ॥
 हे राजन् ! तुम्हारे बाल बिकराल हैं जो मुझसे सहन नहीं होते । पहले
 तुम बाल काटकर आओ तब मेरी शय्या पर शोभायमान होओ ॥ ४ ॥
 जब राजा बाल काटने के लिए गया तो रानी मन में प्रसन्न हो उठी । एक
 छिद्र देखकर उसने अपने मित्र को छिपा दिया और मूर्ख राजा कुछ भेद न
 जान सका ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ अठसठवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६८ ॥ ६७०० ॥ अफजूं ॥

तीन सौ उनहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ राजन ! एक अन्य कहानी सुनो कि एक राजा के साथ
 रानी ने क्या किया । गनपति सिंह एक श्रेष्ठ राजा था जिसके डर से शत्रु
 अपने घरों में भी काँपते थे ॥ १ ॥ राजा की रानी चंचलदेवी थी जिसके

जिसु सम दुतिय न कहूँ हमारी । अवर रानियन के घर आवे । ताकौ कबही मुखन दिखावे ॥ २ ॥ रानी इन बातन ते जरो । पति वध की इच्छा जिय धरी । और नारि को धरि करि भेसा । निजु पति के ग्रहि लिया प्रवेसा ॥ ३ ॥ अपनी नारि न त्रिप तिह जाना । अधिक रूप लखि ताहि लुभाना । भई रैन तब लई बुलाइ । भोग किया तासौ लपटाइ ॥ ४ ॥ यौ बतिया तिह साथ उचारी । है छिनार त्रिप नार तिहारी । एक पुरख को धाम बुलावत । मुहि निरखत तासौ लपटावत ॥ ५ ॥ यौ त्रिप सो तिन कही बनाइ । अति निजु पति कह रिसि उपजाइ । लखिन चला भूपत तिह धाई । धाम आपनागम त्रिय आई ॥ ६ ॥ निजु तनु भेस पुरख को धारी । गई सवति के धाम सुधारी । आगे प्रीति हुती संग जाके । बैठी जाइ सेज चड़ि ताके ॥ ७ ॥ तब लगि तहाँ नराधिप आयो । पुरख भेस लखि नारि रिसायो । जो बातें मुहि यार उचारी । सो अखियन हम आजु निहारी ॥ ८ ॥ काडि क्रिपान हननि तिह धयो । रानी

समान अन्य कोई स्त्री नहीं थी । राजा अन्य रानियों के घर में आता था पर उसे कभी मुख भी नहीं दिखाता था ॥ २ ॥ रानी ने इन बातों से जल-भुनकर पति का वध करने की इच्छा बना ली । एक अन्य स्त्री का वेश धारण कर उसने अपने पति के घर में प्रवेश किया ॥ ३ ॥ राजा ने उसे अपनी स्त्री के रूप में नहीं पहचाना और उसका अत्यधिक सौंदर्य देखकर उस पर मोहित हो गया । जब रात हुई तो उसको बुलाया और उससे लिपटकर रमण किया ॥ ४ ॥ उस स्त्री ने उससे कहा कि हे राजन ! तुम्हारी स्त्री कुलटा एवं छिनाल है । वह एक पुरुष को घर में बुलाती है और मेरे देखते-देखते उससे लिपट जाती है ॥ ५ ॥ उसने इस प्रकार बनाकर राजा से कहा और अपने पति के मन में क्रोध पैदा कर दिया । राजा शीघ्रता से यह सब देखने के लिए चला और इधर वह स्त्री भी पहले ही अपने घर आ पहुँची ॥ ६ ॥ उसने अब पुरुष का वेश धारण कर लिया और सौतन के घर में घुस गई । राजा की प्रीति जिसके साथ थी उसकी शय्या पर चढ़कर बैठ गई ॥ ७ ॥ तब तक राजा वहाँ आ गया और नारी को पुरुष के रूप में देखकर क्रुद्ध हो उठा । उसने सोचा कि मेरी प्रेमिका ने जो बातें मुझसे कही हैं वे मैंने आँखों से देख ली हैं ॥ ८ ॥ वह कृपाण निकालकर उसे मारने दौड़ा पर रानी ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा कि हे मूर्ख !

हाथ नाथ गहिलयो । तब त्रिय भेस तहाँ नर धारा । तै
जड़ या कह जार बिचारा ॥ ९ ॥ जब तिह त्रिप निजु नारि
बिचार्यो । उतरा कोप हियै थो धार्यो । तिन इस्त्री इह
भाँति उचारी । सुनु मूरख त्रिप बात हमारी ॥ १० ॥
बसत एक दिजबर इह गावैं । चंद्रचूड़ ओझा तिह नावैं ।
ब्रह्म डंड तिह पूछि करावहु । तब अपनो मुख हमै
दिखावहु ॥ ११ ॥ जब राजा तिह ओर सिधायो । तब
दिज को त्रिय भेख बनायो । चंद्रचूड़ धरि अपना नाम ।
प्रापति भई त्रिपति के धाम ॥ १२ ॥ तिह त्रिप नाम पूछ
हरखाना । चंद्रचूड़ तिह कौ पहिचाना । जिह हित जात
कहो परदेसा । भली भई आयो वहु देसा ॥ १३ ॥ जब
पूछा राजै तिह जाई । त्रिय दिज ह्वै इह बात बताई ।
जो (सू० प्र० १३२४) त्रिदोख कह दोख लगावैं । जनपुर अधिक
जातना पावैं ॥ १४ ॥ तह तिह बाँधि थंभ कै संग । तपत
तेल डारत तिह अंग । छुरियन साथ मासु कटि डारैं ।
नरक कुंड के बीच पछारैं ॥ १५ ॥ गावा गोबर लेहु मगाइ ।
ताकी चिता बनावहु राइ । ता मौ बैठि जरै जे कोऊ ।
जमपुर बिखै न टँगियै सोऊ ॥ १६ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनत

तुम्हारी स्त्री ने ही पुरुष का वेश धारण किया था जिसे तुमनै यार समझ
लिया है ॥ ९ ॥ जब राजा ने उसे अपनी स्त्री माना तो उसके मन का
क्रोध उत्पन्न गया । उस स्त्री ने तब कहा कि हे मूर्ख राजा ! अब मेरी बात
सुनो ॥ १० ॥ इस नगर में एक ब्राह्मण रहता है जिसका नाम ओझा चन्द्रचूड़
है । उसके पास तुम ब्रह्मदंड देकर आओ तब मुझे अपना मुँह
दिखाओ ॥ ११ ॥ जब राजा उस ओर चला तो स्त्री ने ब्राह्मण का वेश
धारण कर लिया । अपना नाम चन्द्रचूड़ रखकर राजा के घर में आ
पहुँची ॥ १२ ॥ राजा उसका नाम सुनकर प्रसन्न हो गया और उसे चन्द्रचूड़
मानने लगा । जिसके लिए मैं अन्यत्र जानेवाला था, अच्छा हुआ वह यहीं आ
गया ॥ १३ ॥ जब राजा ने उससे पूछा तो स्त्री ने ब्राह्मण बनकर यह बात
कही । जो निर्दोष पर दोषारोपण करता है वह अत्यधिक यातना पाता
है ॥ १४ ॥ उसे खंभे के साथ बाँधा जाता है और तपते हुए तेल में
उसके अंगों को डाला जाता है । छुरियों से उसका मांस काट डाला जाता
है और उसे नर्ककुंड में पछाड़ फेंका जाता है ॥ १५ ॥ गाय का गोबर मंगाओ
और उसकी चिता बनाओ । उसमें बैठकर यदि कोई जले तो उसे यमलोक

बचन दिज नारि त्रिप गोबर लिया मँगाइ । बैठि आपु तां
महि जरा सका न त्रिय छल पाइ ॥ १७ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ उनहत्तर चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६६ ॥ ६७१७ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ सत्तर चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ व्याघ्रकेत सुनियत इक राजा । जिह सम
दुतिय न बिधना साजा । व्याघ्रवती नगर तिह सोहै । इंद्रावती
नगर को मोहै ॥ १ ॥ स्त्री अबदालमती त्रिय ताकी । नरी
नागनी तुल्लि न वाकी । तह इक हुतो शाहु सुत आछो ।
जनु अलि पनच काछ तन काछो ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ स्त्री
जसतिलक सिंध तिह नाम पछानियै । रूपवान धनवान
चतुर पहिचानियै । जो इसत्री ताको छिन रूप निहारई ।
हो लोक लाज कुलि कानि सभै तजि डारई ॥ ३ ॥
॥ चौपई ॥ एक सखी ताकौ लखि पाई । बैठि सखिन महि
बात चलाई । जस सुंदर इक इह पुर माही । तंसो चंद्र

में कोई (सूली पर) नहीं टांगेगा ॥ १६ ॥ ॥ दोहा ॥ स्त्री के वचन सुनकर
राजा ने गोबर मँगा लिया । स्वयं उसमें बैठकर जल गया और छल
को न पहचान सका ॥ १७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ उनहत्तरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६६ ॥ ६७१७ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ सत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ व्याघ्रकेतु नामक एक राजा था जिसके समान विधाता
ने अन्य किसी को नहीं बनाया था । वह व्याघ्रवतीनगर में शोभायमान
था जो कि इंद्रावतीनगरी को भी मोहित करती थी ॥ १ ॥ उसकी स्त्री
अबदालमती थी जिसके समान नर, नाग-स्त्री कोई भी नहीं थी । वहाँ
एक धनिक का पुत्र था जिसका शरीर धनुष के समान लचकीला
था ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उसका नाम जसरायतिलक सिंह था और वह
रूपवान, धनवान एवं चतुर माना जाता था । जो भी स्त्री उसके रूप-सौंदर्य
को देखती थी वह लोकलाज, कुल-मर्यादा सबका त्याग कर देती
थी ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ एक सखी ने उसे देखा और सखियों में बैठकर
उसने बात चलाई । एक व्यक्ति इस नगर में इतना सुन्दर है कि वैसे

सूर भी नाही ॥ ४ ॥ सुनि बतिया रानी जिय राखी ।
 और नारि सौ प्रगट न भाखी । जो सहचरि ताकौ लखि आई ।
 रैन भई तब बहै बुलाई ॥ ५ ॥ अधिक दरबु ताकौ दै रानी ।
 पूछी ताहि दीन ह्वै बानी । सु कहु कहाँ मुहि जु तैं निहारा ।
 किया चाहत तिह दरस अपारा ॥ ६ ॥ तब चेरी इमि बचन
 उचारो । सुनु रानी जू कहा हमारो । स्त्री जसतिलक राइ
 तिह जानो । शाह पूत ताकह पहिचानो ॥ ७ ॥ जु तुम
 कहौ तिह तुमैं मिलाऊँ । मदन ताप सभ तोर मिटाऊँ ।
 सुनत बचन रानी पग परी । पुनि तासौ बिनती इमि
 करी ॥ ८ ॥ जे ताको तैं मुझे मिलावैं । जो धन मुख माँगै
 सो पावैं । तह सखी गई बार नहि लागी । आनि दियो ताकौ
 बडभागी ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ रानी ताकौ पाइ तिहि दारिद
 दिया मिटाइ । त्रिप की आँख (मू०पं० १३२५) बचाइ उहि
 लियो गरे सौ लाइ ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ दोऊ धनी औ
 जोबनवंत । करत कामक्रीड़ा बिगसंत । इक कामी अरु
 कैफ चड़ाई । रैन सकल रति करत बिताई ॥ ११ ॥
 लपटि लपटि आसन वे लेही । आपु बीचि सुख बहु बिधि
 देही । चुंबन करत नखन के घाता । रैन बिती आयो ह्वै

चाँद और सूरज भी नहीं हैं ॥ ४ ॥ रानी ने सुनकर बात दिल में रखी ।
 जिस दासी ने उसे देखा था रात होने पर उसने उसे ही बुलाया ॥ ५ ॥
 उसे रानी ने अधिक धन देकर दीनतापूर्वक पूछा कि तुमने जिसे देखा है
 बताओ वह कहाँ है ? मैं उसका दर्शन करना चाहती हूँ ॥ ६ ॥ तब दासी
 ने कहा कि हे रानी ! मेरी बात सुनो । उसका नाम जसरायतिलक है और
 वह एक धनिक का पुत्र है ॥ ७ ॥ यदि तुम कहो तो मैं तुम्हें उससे मिला
 दूँ और तुम्हारा काम कष्ट मिटा दूँ । बात सुनकर रानी चरणों में गिर
 पड़ी और पुनः उससे प्रार्थना करने लगी ॥ ८ ॥ यदि तुम मुझे उससे मिला
 दो तो मुँह माँगा धन पाओगी । वह दासी अविलम्ब गई और उस भाग्यशाली
 को उससे मिला दिया ॥ ९ ॥ ॥ दोहा ॥ रानी ने उसे पाकर उसकी दरिद्रता
 मिटा दी । उसने उसे राजा की आँख बचाकर उसे गले से लगा
 लिया ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ दोनों ही धनी और यौवनयुक्त थे । वे कामक्रीड़ा
 करके प्रसन्न होने लगे । एक तो वे कामी थे दूसरे उन्होंने मदिरापान
 कर खिया था; उन्होंने सारी रात रतिक्रीड़ा में रत रहकर ही बिता
 दी ॥ ११ ॥ वे लिपट-लिपटक आसन लगाते थे और परस्पर विविध प्रकार

प्राता ॥ १२ ॥ रानी गई प्रात पति पास । लगी रही जाकी
जिय आस । अथवत दिनन होत अंधपारो । बहुरि भजै मुहि
आनि पयारो ॥ १३ ॥ जौ रहिहौ राजा के पास । मोहि
राखि है बिरध निरास । संग कहाँ याके स्वै लैहौ । मित
भोग भोगन ते जैहौ ॥ १४ ॥ किह छल सेज सजन को जाऊँ ।
नख घातन किह भाँति छपाऊँ । बिरध भूप तन सोत न जँयै ।
ऐसो कवन चरित्र दिखैयै ॥ १५ ॥ जाइ कही त्रिप संग अस
गाथा । बात सुनहु हमरी तुम नाथा । हियँ बिलारि मोर
नखलाए । काढि भूप कौ प्रगट दिखाए ॥ १६ ॥
॥ अडिल्ल ॥ सुनु राजा मैं आजु न तुम संग सोइहौ । निजु
पलका पर परी सकल निसु खोइहौ । इहाँ बिलारि मोहि
नख घात लगात है । हो तुहि मूरख राजा ते कछु न बसात
है ॥ १७ ॥ इह छल तजि स्वैबो त्रिप पासा । किया मित
सौ काम बिलासा । घात नखन की नाह दिखाई । बिरध
मूढ़ त्रिप बात न पाई ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ सत्तर चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३७० ॥ ६७३५ ॥ अफजू ॥

से सुख लेते थे । चुंबन और नख-आघात-प्रतिघात करते रात बीत गई और
सुबह हो गई ॥ १२ ॥ रानी फिर प्रातः पति के पास गई पर उसके मन में
उसकी आशा लगी ही रही ॥ १३ ॥ वह सोचने लगी कि यदि मैं राजा के पास
रहती हूँ तो यह बृद्ध मुझे निराश ही रखेगा । इसके साथ सोने से तो
मित्र का भोगने से भी मैं वंचित हो जाऊँगी ॥ १४ ॥ किस प्रकार मैं पति
की शय्या पर जाऊँ और नख-आघातों को कैसे छिपाऊँ । ऐसा कौन सा प्रपंच
किया जाय कि वृद्ध राजा के साथ सोना न पड़े ॥ १५ ॥ उसने राजा से
जाकर कहा कि हे नाथ ! तुम मेरी बात सुनो । मेरी छाती पर बिल्ली ने
नाखून गड़ा दिये हैं और यह कहकर राजा को प्रकट में सब दिखा
दिया ॥ १६ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ हे राजन ! सुनो, आज मैं तुम्हारे साथ नहीं सोऊँगी
और अपने पलंग पर ही सारी रात बिताऊँगी । यहाँ बिल्ली मुझे
नाखून मार जाती है और तुम मूर्ख राजा हो जो कुछ भी नहीं करते
हो ॥ १७ ॥ इस छल से उसने राजा के पास सोना त्यागा और मित्र से
भोग-विलास किया । राजा को नाखूनों का आघात दिखाया परन्तु वृद्ध मूर्ख
राजा कुछ भी न समझ सका ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सत्तरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३७० ॥ ६७३५ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ इकहत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अछलसेन इक भूप भनिज्जै । चंद्र सूर
पटतर तिह दिज्जै । कंचन दे ताके घर नारी । आपु हाथ
ले ईस सवारी ॥ १ ॥ कंचनपुर को राज कमावै । सूरबीर
बलवान कहावै । अरि अनेक जीते बहु भांता । तेज तस्त
जाके पुर साता ॥ २ ॥ तहाँ प्रभाकर सैनिक शाह । निरख
लजत जाको मुख माह । जब रानी ताकह लखि पायो । इहै
चित्त भीतर ठहरायो ॥ ३ ॥ या कह जतन कवन करि
पड़्यै । कवन सहचरी पठै मँगइये । याहि भजै बिनु धाम
न जैहौ । जिह तिह भाँति याहि बसि कैहो ॥ ४ ॥ कनक
पिंजरी परी हुती तह । मरभकेत रानी के बसि
सह । (मू० प्र० १३२६) बीर राधि तिह तहीं पठाई । सेज उठाइ
जाइ लै आई ॥ ५ ॥ काम भोग तासौ जब माना । द्वै
प्रानन ते इक जिय जाना । निजु नाइक सेती हित छोरो ।
तासै चतुरि चौगुनो जोरो ॥ ६ ॥ जाइ राव सौ बात जनाई ।
सोरे शाह पूरबलो भाई । हम को स्नाप एक रिख दिया ।

तीन सौ इकहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ अछलसेन एक राजा था जिसकी तुलना चन्द्र-सूर्य से
की जाती थी । उसकी स्त्री कंचनदेवी थी जिसे ईश्वर ने स्वयं हाथ से
बनाया था ॥ १ ॥ राजा कंचनपुर पर राज्य करता था और शूरवीर
बलवान कहलाता था । उसने अनेक प्रकार से शत्रुओं को जीता और
सातों पुरियाँ उसके तेज से तस्त थीं ॥ २ ॥ वहाँ एक प्रभाकरसेन नामक
धनी था जिसे देखकर चन्द्रमा भी लज्जित होता था । जब रानी ने उसे
देखा तो मन में यही निर्णय किया ॥ ३ ॥ कि इसे किस यत्न से प्राप्त
किया जाय और किस दासी को भेजकर इसे मँगवाया जाय । इसके साथ
रमण किए बिना तो वापस घर नहीं जाऊँगी और जैसे भी हो इसे वश में
कर लूँगी ॥ ४ ॥ मर्मकेतु रानी के वश में एक कनकपिंजरी नामक परी थी ।
उसने वीरों को वहाँ भेजा जो उसकी शय्या वहाँ से उठा लाये ॥ ५ ॥ जब
उससे रतिक्रीड़ा की तो मानों दो प्राणों से वे एक प्राण हो गए । उस रानी
ने अपने पति से प्रेम को त्याग दिया और इससे चार गुना अधिक प्यार उस
धनिक से करने लगी ॥ ६ ॥ उस रानी ने राजा से जा कहा कि धनिक

ताते जनम दुहूँ ह्याँ लिया ॥ ७ ॥ पुनि हम सौ रिखि ऐस
उचारा । हवैहै बहुरि उधार तुहारा । सात लोक बहु
बरिस वितैहौ । बहुरौ दोऊ स्वरग सहि ऐहौ ॥ ८ ॥ हम
तुमरो घर बस सुखु पायो । अब रिखि स्त्राप अवधि हवै आयो ।
ए बच भाखि त्रिपहि घर आई । शाह परी जुत लिया
बुलाई ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ गई इह गई धंनि तुम करियहु ।
भूप सुनत नभ बिखैं उचरियहु । जब तिन बात भेद की जानी ।
भला कहौगी परी बखानी ॥ १० ॥ शाह सहित भूपति पहि
जाइ । कही जात है रानी राइ । इह बिधि भाखि लोप
हवै गई । गई गई बानी नभ भई ॥ ११ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ गई
यह गई चिर लौ नभबानी भई । प्रजा सहित तिन भूप यहै
जिय में ठई । रानी सुरपुर गई भ्रात को साथ लै । हो मूरख
भेद अभेद न सका बिचारि कै ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ मिलि
सभहिन इह भाँति उचारी । गई स्वरग त्रिप नारि तुमारी ।

मेरा पूर्वजन्म का भाई है । हमें एक ऋषि ने शाप दिया था जिससे हम
दोनों ने यहाँ जन्म लिया ॥ ७ ॥ पुनः ऋषि ने हम लोगों से ऐसा कहा कि
तुम दोनों का फिर उद्धार होगा । तुम लोग बहुत से वर्ष मृत्युलोक धरती
पर बिताओगे और फिर वापस स्वर्ग आ जाओगे ॥ ८ ॥ मैंने तुम्हारे घर
में काफ़ी सुख पाया है पर अब ऋषि के शाप पूरा होने की अवधि आ गई
है । यह बात कहकर वह महल के अन्दर आ गई और परो-समेत धनिक
को बुला लिया ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ रानी ने परी से कहा कि “गई, गई” और
“धन्य, धन्य” तुम राजा को सुनाते हुए आकाश में कहना । जब उसने
भेद की बात कह दी तो परी ने कहा कि मैं ऐसा ही कहूँगी ॥ १० ॥ धानक-
समेत राजा के पास जाकर रानी ने राजा से कहा कि मैं जा रही हूँ । यह
कहकर वह लुप्त हो गई और “गई, गई” की ध्वनि आकाश में
हुई ॥ ११ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ “गई-गई” की वाणी आकाश में हुई और प्रजा-
समेत राजा ने इसे सत्य मान लिया । रानी भाई को साथ लेकर स्वर्ग चली
गई और यह मूर्ख कुछ भी भेद-अभेद न जान सका ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ सबने
मिलकर यही कहा कि हे राजन ! तुम्हारी स्त्री स्वर्ग को चली गई है ।

तुम चिन्ता चित्त मैं नहि करो । सुंदर सुधर अवर त्रिय
बरो ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ इकहत्तरि चरित्र
समाप्तम सत् सुभम सत् ॥ ३७१ ॥ ६७४८ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ बहत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक अवर प्रसंगा । जिह बिधि
किया नारि त्रिष संग । जलजसेन इक भूप भनिज्जै । सु
छबिमती तिह नारि कहिज्जै ॥ १ ॥ सु छबिवती तिह
नगर कहीजत । अमरपुरी पटतर तिह दीजत । राजा को
त्रिय हुती न प्यारी । याते रानी रहत दुखारी ॥ २ ॥ रानी
रूप बैद को ठानि । राजा के घर किया पयान । कहा
असाध भया है तोहि । बोलि चकितसा कीजै मोहि ॥ ३ ॥
धावत तुमैं पसीनो आवत । रवि देखत द्विगधुंध जनावत ।
राजा बात सत्य करि मानी । मूढ़ भेद की क्रिया न जानी ॥ ४ ॥
मूर्ख भूप भेद नहि पायो । त्रिय ते बोलि उपाइ
तुम मन से चिन्ता मत करो और अन्य किसी सुन्दर स्त्री से विवाह
कर दो ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ इकहत्तरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३७१ ॥ ६७४८ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ बहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजा ! एक अन्य प्रसंग सुनो कि एक स्त्री ने एक राजा
के साथ क्या किया । जलजसेन एक राजा कहा जाता था जिसकी रानी
सुछबिमती थी ॥ १ ॥ अमर देवपुरी के समान उनकी नगरी सुछबिवती
थी । राजा को रानी प्यारी नहीं थी इसीलिए वह उससे दुखी रहती
थी ॥ २ ॥ रानी ने वैद्य का रूप धारण कर राजा के घर प्रस्थान किया ।
राजा से कहा कि तुम्हें असाध्य रोग हो गया है, तुम मुझे बुलाकर मेरा इलाज
करो ॥ ३ ॥ बौढ़ने से तुम्हें पसीना आता है और सूर्य को देखने से धुंधला
दिखाई देता है । राजा ने बात को सत्य मान लिया और मूर्ख ने भेद की बात
नहीं समझी ॥ ४ ॥ मूर्ख राजा ने रहस्य नहीं समझा और स्त्री को बुलाकर

करायो । (सू० ग्रं० १३२७) तिन बिख डारि औखधी बीचा ।
छिन सहि करी भूप की सोचा ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ बहत्तर चरित्र
समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ ३७२ ॥ ६७५३ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ तिहत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ शहिर दौलताबाद बसत जह । बिकट
सिंघ इक भूप हुतो तह । भानमंजरी ताकी दारा । जिह
सम करी न पुनि करतारा ॥ १ ॥ भीमसेन इक तह थो
शाहा । प्रगट भयो जनु दूसर माहा । स्त्री अफताब देइ तिह
नारी । कनक अवटि साचे जनु डारी ॥ २ ॥ तिन मन मै
इह बात बखानी । किह बिधि कै हजियै भवानी । सोइ रही
सभ जगहि दिखाइ । चमकि उठी सुपने कह पाइ ॥ ३ ॥
कहा दरस मुहि दिया भवानी । सभहिन सौ भाखी इसि बानी ।
जिह वरदान देउ तिह होई । या महि परं फेरि नहि कोई ॥ ४ ॥
लोग बचन सुनि करि पग लागे । बर मांगन ताते अनुरागे ।
हवै बैठी सभहिन की साई । यह सुनि खबर नराधिप पाई ॥ ५ ॥

उससे उपाय व इलाज कराने लगा । उसने औषध में जहर डालकर
क्षण भर में राजा को मार डाला ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ बहत्तरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३७२ ॥ ६७५३ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ तिहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ दौलताबाद शहर में बिकट सिंह नामक एक राजा
था । भानुमंजरी उसकी स्त्री थी जिसके समान कर्ता ने अन्य कोई स्त्री
नहीं बनाई थी ॥ १ ॥ भीमसेन वहाँ एक धनी था जो मानों दूसरा
चन्द्रमा था । आफताब देवी उसकी स्त्री थी जो मानों सोने के सचि में
ढालकर बनाई हुई थी ॥ २ ॥ उसने मन में सोचा कि कैसे स्वयं भवानी
बन जाया जाय । जब सब जग रहे थे तो वह सो रही थी और भड़भड़ा
कर उठ बैठी मानों कोई स्वप्न देखा हो ॥ ३ ॥ वह सबसे कहने लगी
कि मुझे भवानी ने दर्शन दिया है । मैं जो वरदान दूंगी वही होगा, इसमें
कोई हेरा-फेरी नहीं होगी ॥ ४ ॥ लोग सुनकर उसके चरणों में आ पड़े
और वरदान मांगने लगे । वह सबकी माँ बन बैठी और यह खबर राजा

एक नारि इह नगर भनिज्जै । नाम हिंगुलादेइ कहिज्जै ।
 जगत सात कौ आपु कहावै । ऊच नीच कह पाइ लगावै ॥६॥
 काजी और मुलाने जेते । जोगी मुँडिया अरु दिज केते ।
 सभ की घटि पूजा ह्वै गई । परचा अधिक तवन की भई ॥७॥
 सभ भेखी याते रिसि भरे । बहु धन चढ़त निरखि तिह जरे ।
 गहि लै गए ताहि त्रिप पासा । कहत भए इह बिधि
 उपहासा ॥ ८ ॥ करामात कछु हमहि दिखाइ । कै न
 भवानी नामु कहाइ । तब अबला अस मंत्र बिचारा । सुनु
 राजा कह्यो बचन हमारा ॥ ९ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ मुसलमान
 मसजदिहि अलहि घर भाखही । बिप्र लोग पाहन कौ हरि
 करि राखही । करामात जौ तुहि ए प्रथम बताइहैं । हो तिह
 पाछे कछु हमहूँ इनै दिखाइहैं ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ बचन
 सुनत राजा मुसकाए । दिजबर मुल्लाँ पकरि मँगाए ।
 मुँडिया और संन्यासी घने । जोगी जंगम जात न गने ॥ ११ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ भूप बचन मुख ते इह भाँति उचारियो । सभा
 बिखै सभहिन तिन सुनत पचारियो । करामात अपु अपनी
 हमैं दिखाइयै । हो नातर अब ही धाम त्रितु के (सू० प्र० १३२८)

तक भी जा पहुँची ॥ ५ ॥ कि एक स्त्री इस नगर में है जिसका नाम
 हिंगलादेवी है । वह स्वयं को जगत्माता (भवानी) कहलाती है और
 ऊँच-नीच सबको चरणों से स्पर्श कर रही है ॥ ६ ॥ काजी, मौलाने,
 योगी, मुँडिया और ब्राह्मण आदि जितने हैं सबकी पूजा कम हो गई है
 और उसी की महिमा बढ़ गई है ॥ ७ ॥ सभी वेशधारी इससे क्रुद्ध थे
 और उसे अत्यधिक चढ़ावा चढ़ते देखकर जलते थे । वे उसे पकड़कर
 राजा के पास ले गए और उसका उपहास उड़ाने लगे ॥ ८ ॥ कुछ हम
 लोगों को भी करामात दिखाओ अन्यथा अपना नाम भवानी मत कहलाओ ।
 तब स्त्री ने यह कहा कि हे राजन् ! मेरी बात सुनो ॥ ९ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ मुसलमान मस्जिद को अल्लाह का घर कहते हैं । ब्राह्मण
 लोग पत्थरों को भगवान करके जानते हैं । यदि ये सब तुम्हें कुछ
 करामात करके पहले दिखाएँगे तो बाद में हम भी इन्हें कुछ दिखा
 देंगे ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ बात सुनकर राजा मुस्कुरा उठा और उसने
 ब्राह्मण, मुल्ला, मुँडिया, संन्यासी, जोगी, जंगम आदि अनेकों को पकड़
 मँगाया ॥ ११ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ राजा ने सभा में सबको सुनाते हुए
 अपने मुख से यह कहा कि सभी अपनी-अपनी करामात हमें दिखाइए

जाइये ॥ १२ ॥ सुनि राजा के बचन सभे व्याकुल भए ।
 शोक समुंद के बीच बूडि सभ ही गए । निरखि त्रिपति की
 ओर रहे सिर न्याइके । हो करामात कोई सकै न ताहि
 दिखाइके ॥ १३ ॥ करामात नहि लखी क्रोध राजा भर्यो ।
 सात सात सै चाबुक तिनके तन झर्यो । करामात अपु अपनी
 कछुक दिखाइये । हो नातर त्रिय के पाइन सीस
 झुकाइये ॥ १४ ॥ ग्रहि खुदाइ कै ते कछु हमहि दिखाइये ।
 नातर इन शेखन को मूँड मूँडाइये । करामात बिनु लखे न
 मिस्त्रन छोरिहों । हो नातर तुमरे ठाकुर नदि महि
 बोरिहों ॥ १५ ॥ करामात कछु हमहि संन्यासी दीजिये ।
 नातर अपनी दूरि जटन को कीजिये । चमतकार मुंडियो अब
 हमहि दिखाइये । हो नातर अपनी कंठी नदी बहाइये ॥ १६ ॥
 ॥ दोहरा ॥ रोदन वै करते भए किसू न आई बात । तब
 राजै तिह नारि कौ बचन कहा मुसकात ॥ १७ ॥
 ॥ चौपई ॥ करामात इन कछु न दिखाई । अब चाहत हैं
 तुमते पाई । बचन हिंगुला देइ उचारे । सुनो नराधिप बंन
 हमारे ॥ १८ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ करामाति इक अस मौ प्रथम
 पछानिये । जाकौ तेजु अरु त्रास जगत मौ मानिये । जीत हार

अन्यथा अभी सबको मृत्युलोक भेजता हूँ ॥ १२ ॥ राजा की बात
 सुनकर सभी व्याकुल हो शोक-समुद्र में डूब गए । सभी राजा की ओर
 सिर झुकाकर देखने लगे क्योंकि उनमें से कोई भी करामात नहीं दिखा
 सकता था ॥ १३ ॥ करामात न देखकर राजा क्रोध से भर गया और
 सात-सात सौ चाबुक उनके शरीर पर मारे । कुछ अपनी करामात
 दिखाओ नहीं तो इस स्त्री के पाँव पर सिर झुकाओ ॥ १४ ॥ खुदा के
 घर से हमको कुछ दिखाओ नहीं तो इन शेखों का सिर मुँडवा दो ।
 हे पंडितो ! करामात देखे बिना मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा और नहीं तो तुम्हारे
 ठाकुरों की नदी में बहा दूँगा ॥ १५ ॥ हे संन्यासियो ! हमें कुछ करामात
 दिखाओ नहीं तो अपनी जटाओं को हटा लो । मुंडिया लोग भी कुछ
 दिखाएँ नहीं तो अपनी कंठी नदी में बहा दें ॥ १६ ॥ ॥ दोहा ॥ वे
 रोने लगे और किसी के मुँह से बात तक नहीं निकली । तब राजा ने उस
 स्त्री से मुस्कुराते हुए कहा ॥ १७ ॥ ॥ चौपाई ॥ इन्होंने तो कुछ भी
 करामात नहीं दिखाई, अब मैं तुमसे चाहता हूँ । तब हिंगलादेवी ने कहा
 कि हे राजन् ! मेरी बात सुनो ॥ १८ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ सबसे पहली

अह चित्तु धार जाकी बसत । हो मेरे मन परमेश्वर ताही कौ कहत ॥ १९ ॥ दुतिय काल मौ करामाति पहिचानियत । जिनको चौदह लोक चक्र कर मानियत । काल पाइ जग होत काल मिट जावई । हो यातें मुर मन ताहि गुरु ठहरावई ॥ २० ॥ करामात राजा रसनाग्रज जानियत । भलो बुरो जातें जग होत पछानियत । करामाति चौथी धन भीतर जानियै । हो होत रंक ते राव धरों तिह मानियै ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ करामात इन सहि नहि जानहु । ए सभ धन उपाइ पहिचानहु । चमत्कार इन सहि जौ होई । दर दर भीख न माँगै कोई ॥ २२ ॥ जौ इन सभहूँ प्रथम सँवारो । तिह पाछे कछु मोहि उचारो । सत्ति बात हम तुमहि सुनाई । अब सु करौ जो तुमहि सुहाई ॥ २३ ॥ बचन सुनत राजा हरखाना । अधिक दियो तिह त्रिय को दाना । जगत मात तिन त्रिय जु कहायो । तिह प्रसादि निज (सू०ग्रं० १३२६) प्राण बचायो ॥ २४ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ तिहत्तर चरित्र समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ ३७३ ॥ ६७७७ ॥ अफजूं ॥

करामात तो तलवार है जिसका तेज और भय सारे संसार में माना जाता है । जीत, हार और मृत्यु जिसकी धार में बसते हैं, मेरा मन तो उसी को परमेश्वर मानता है ॥ १९ ॥ दूसरी करामात काल है जिसका चक्र चौदह लोकों में चलता है । काल में ही संसार पैदा होता और उसी में समाप्त हो जाता है । इसलिए मेरा मन काल को गुरु मानता है ॥ २० ॥ (तीसरी) करामात जिह्वा के अग्रभाग अर्थात् वाणी में है जिससे व्यक्ति संसार में भला-बुरा पहचाना जाता है । चौथी करामात धन में है जिससे निर्धन भी राजा हो जाता है ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ इन सब (व्यक्तियों) में करामात नहीं है; ये सब तो धन के उपाय करनेवाले जाने जाते हैं । इनमें यदि कोई चमत्कार होता तो ये दर-दर भीख नहीं माँगते डोलते ॥ २२ ॥ इन सबको पहले मार डालो फिर मुझसे कुछ कहो । मैंने तो सत्य बात तुमसे कह दी है, अब तुम्हें जो अच्छा लगे वही करो ॥ २३ ॥ राजा बात सुनकर प्रसन्न हो उठा और उसने उस स्त्री को अत्यधिक दान दिया । उस स्त्री ने अपने आपको जगत्माता कहलवाया था और उसी की कृपा से उसने अपने प्राण भी बचा लिये ॥ २४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ तिहत्तरवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३७३ ॥ ६७७७ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ चौहत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बीजापुर जह शहिर भनिज्जै । एदिल
शाह तह शाह कहिज्जै । स्त्री महताबमती तिह कन्या ।
जिह सम उपजी नारि न अंन्या ॥ १ ॥ जोवनवंत भई जब
बाला । सहाँ सुंदरी नैन बिसाला । जोवन जेब अधिक तिह
बाढी । जानुक चंद्र सूर मथि काढी ॥ २ ॥ तह इक हुतो
शाहु को पूत । सूरति सीरति बिखै सपूत । धूम्रकेत तिह
नाम भनिज्जै । इंद्र चंद्र पटतर तिह दिज्जै ॥ ३ ॥ बेगम
की तासौ रुचि लागी । जाते नौंद भूख सभ भागी । देखि
गई जब ते तिह धामा । तब ते और सुहात न बामा ॥ ४ ॥
हितू जान सहचरी बुलाई । भेद भाखि सभ तहाँ पठाई ।
हमै शाह सुत जु तै मिलैहैं । जो धन मुख मँगिहैं सो
पैहैं ॥ ५ ॥ सखी पवन के भेस सिधाई । पलक न बिती शाह
के आई । शाह पूत कह किया प्रनामा । बंठी जाइ सुघरि
तिह धामा ॥ ६ ॥ तुमरो नाम कहा पहिचनियत । कवन

तीन सौ चौहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बीजापुर शहर में एदिलशाह नामक एक धनी रहता
था । महताबमती उसकी कन्या थी जिसके समान अन्य कोई स्त्री पैदा
नहीं हुई थी ॥ १ ॥ जब वह कन्या यौवनवंत हुई तो उसके नयन विशाल
हो गए और वह महामुन्दरी बन गई । उसका यौवन अत्यधिक बढ़ गया
और वह ऐसी लगती थी मानों सूर्य-चन्द्र में से मंथन कर निकाली गई
हो ॥ २ ॥ वहाँ एक धनिक का पुत्र था जो सूरत-सीरत दोनों में सपूत
था । उसका नाम धूम्रकेतु था और उसकी उपमा इंद्र-चंद्र से दी जाती
थी ॥ ३ ॥ बेगम की रुचि उसमें लग गई जिससे उसकी नौंद-भूख
सब भाग गई । जबसे वह उसके घर देख गई थी उसे नौंद-भूख कुछ
अच्छी नहीं लगती थी ॥ ४ ॥ उसने एक दासी को हितैषिणी समझकर
बुलाया और उसे रहस्य समझा कर वहाँ भेजा । यदि तुम मुझे धनिक
का पुत्र मिला दोगी तो तुम्हें मुँह माँगा धन दूंगी ॥ ५ ॥ सखी पवन
वेग से चली और पल भर बीतते ही शाह के पास आ गई । उसने धनिक-
पुत्र को प्रणाम किया और उसके घर में जा बैठी ॥ ६ ॥ तुम्हारा क्या
नाम है और तुम किस देश के निवासी हो ? पहले अपनी सारी बात

देस के बासी जनियत । सकल ब्रिथा निज प्रथम सुनावहु ।
 बहुरि कुअरि की सेज सुहावहु ॥ ७ ॥ सुनि सखी मद्र देस
 हम रहही । धूम्रकेतु हम कौ जन कहही । सौदा हित आए
 इह देसा । देस देस को निरखि नरेसा ॥ ८ ॥ बतियन
 प्रथम ताँहि बिरमाइ । भाँति भाँति तन लोभ दिखाइ । ज्यों
 त्यों ले आई तिह तहाँ । मारग कुअरि बिलोकत जहाँ ॥ ९ ॥
 जो धन कहा सुंद्र तिह दीना । कंठ लगाइ मित्र सो लीना ।
 भाँति भाँति की कैफ मँगाई । एक खाट चढ़ि दुहँ चढ़ाई ॥ १० ॥
 भाँति भाँति तन कैफ चड़ावहि । मिलि मिलि गीत मधुर धुनि
 गावहि । बिबिध बिधिन तन करत बिलासा । नैकु न करै
 त्रिपति को लासा ॥ ११ ॥ छैलिहि छैल न छोरा जाई ।
 निसु दिन राखत कंठ लगाई । जब कबहूँ आखेट सिधावै ।
 एक अंबारी ताहि चढ़ावै ॥ १२ ॥ तही काम क्रीड़ा कह
 करै । मात पिता ते नैकु न डरै । इक दिन राजा चढ़ा
 शिकारा । संग लए मिहरियँ अपारा ॥ १३ ॥ (सू०प्र०१३३०)
 बेगम सोऊ शिकार सिधाई । एक अंबारी ताहि चढ़ाई । एक
 सखी तिह चढ़त निहारा । जाइ भूप सों भेद उचारा ॥ १४ ॥

कहो और फिर कुँवरि की शय्या पर शोभायमान होओ ॥ ७ ॥ हे सखी !
 सुनो, हम मद्र देश के निवासी हैं और लोग मुझे धूम्रकेतु कहते हैं । हम
 देश-देशान्तरों के राजाओं को देखकर इस देश में व्यापार करने आए
 हैं ॥ ८ ॥ पहले उसे बातों में भुलाकर और फिर भाँति-भाँति के लोभ
 दिखाकर जैसे-तैसे उसे वहाँ ले आई जहाँ कुँवरि उसकी राह देख रही
 थी ॥ ९ ॥ उसने मुँह माँगा धन सुंदरी को दिया और मित्र को गले से
 लगा लिया । भाँति-भाँति की शराब उसने मँगाई और एक ही पलंग
 पर चढ़कर दोनों ने पी ॥ १० ॥ भाँति-भाँति के नशे पीते हुए वे मधुर
 गीत गाने लगे । वे विविध प्रकार से भोग-विलास कर रहे थे और राजा
 का तनिक भी भय नहीं मान रहे थे ॥ ११ ॥ छैल से वह छैला छोड़ा
 नहीं जा रहा था और वह उसे रात-दिन गले से लगाए रहती थी । जब
 कभी शिकार को जाती तो छतदार हाथी का हौदा लगवाती ॥ १२ ॥
 उसी में काम-क्रीड़ा करती थी और माता-पिता से तनिक भी नहीं डरती
 थी । एक दिन राजा शिकार के लिए अनेकों दासियों को लेकर
 चला ॥ १३ ॥ वह बेगम भी शिकार के लिए छतदार हौदा लगाकर
 गई । एक सखी ने उस (प्रेमी) को भी चढ़ते हुए देख लिया और सारा

सुनि त्रिप बात चित मो राखी । और नारि सो प्रगट न
भाखी । दुहिता को जब गज निकटायो । तब ताको पितु
निकट बुलायो ॥ १५ ॥ सुनत बैन बेगम डरपानी । थरहर
कंपा मित्त तिह मानी । अबहीं मुझ भूप गहि लैहै । इसी
बन बिखैं मारि चुकैहै ॥ १६ ॥ नारि कहौ प्रिय जिन जिय
डरो । कहौ चरित्त तुमै सो करो । करी रूख के तरै
निकारा । लपटि रहा तासौ तह यारा ॥ १७ ॥ आपु पिता
प्रति किया पयाना । मारे रीछ रोज्ञ अगि नाना । ताहि
बिलोकि पिता चुप रहा । झूठ लखा तिह त्रिय मुहि कहा ॥ १८ ॥
उसी सखी को पलटि प्रहारा । झूठ बचन इन मुझ उचारा ।
खेलि अखेट भूप ग्रहि आयो । तिसी बिरछ तर करी
लखायो ॥ १९ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ पकरि भुजा गज पर प्रिय
लयो चड़ाइकै । भोग अंबारी बीच करे सुख पाइकै । लपटि
लपटि दोऊ केल करत मुसकाइ करि । हो हमरौ भूपति भेद
न सकियो पाइ करि ॥ २० ॥ ॥ दोहरा ॥ पहिले रूख

रहस्य जाकर राजा से कह दिया ॥ १४ ॥ राजा ने बात सुनकर मन में
रखी और अन्य किसी स्त्री से नहीं कही । जब पुत्री का हाथी पास
आया तो पुत्री को पिता ने पास बुलाया ॥ १५ ॥ बात सुनकर बेगम डर
गई और उसमें मित्त भी थरथर कांपने लगा । राजा मुझे अभी पकड़
लेगा और इसी वन में मार डालेगा ॥ १६ ॥ स्त्री कहने लगी कि
हे प्रिय ! तुम डरो मत और जैसा प्रपंच मैं कहती हूँ वैसा ही करो ।
उसने हाथी को पेड़ के नीचे से निकाला जिसमें यार वहीं (पेड़ से) लिपट
कर रह गया ॥ १७ ॥ स्वयं पिता के पास गई और रीछ, नीलगाय,
मृग आदि अनेकों मारे । उसे देखकर पिता चुप लगा गया और समझा
कि उस स्त्री ने मुझसे झूठ ही कहा है ॥ १८ ॥ उसी सखी को पलटकर
उसने मार डाला कि इसने मुझसे झूठा ही वचन कहा है । आखेट खेलकर
राजा वापस घर आ गया और यह उस हाथी को उसी वृक्ष के नीचे ले
आई ॥ १९ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ बांह पकड़कर प्रिय को हाथी पर चढ़ा
लिया और उसी अंबारी में सुखपूर्वक भोग किया । वे लिपट-लिपटकर और
मुस्कराकर दोनों रमण करने लगे और कहने लगे कि राजा हमारा भेद
जान ही नहीं सका ॥ २० ॥ ॥ दोहरा ॥ पहले उसे वृक्ष पर चढ़ाया

चड़ाइ तिह लै आई फिरि धाम । उलटा तिह झूठा किया
भेद दिया जिह बाम ॥ २१ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ चौहत्तरि चरित्र
समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३७४ ॥ ६७६८ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ पञ्चत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ इशकतंबोल शहिर है जहाँ । इशक
तंबोल नराधिय तहाँ । स्त्री शिंगारमती तिह दारा । जासी
घड़ी न ब्रह्म सुनारा ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ स्त्री जगजोबन
दे तिह सुता बखानियै । दुतिय रूप की रास जगत सहि
जानियै । अधिक प्रभा जल थल सहि जाकी जानियत । हो
नरी नागनी नारि न वैसी मानियत ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ तह
इक पुत सराफ को ताको रूप अपार । जोरि नैनि नारी रहै
जानि न ग्रहि बिसंभार ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ राजसुता ताकी
छवि लही । मन बच क्रम मन मै अस कही । एक बार
गहि याहि मँगाऊँ । काम भोग रुचि मान मचाऊँ ॥ ४ ॥ पठै

और फिर उसे घर ले आई । उसे उलटा झूठा बना दिया जिस स्त्री ने
भेद बताया था ॥ २१ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ चौहत्तरवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३७४ ॥ ६७६८ ॥ अफजू ॥

तीन सौ पचहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ इशकतंबोल नामक शहर में इशकतंबोल नामक राजा
रहता था । शृंगारमती उसकी स्त्री थी जिसके समान अन्य नारी
ब्रह्मा ने नहीं बनाई थी ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जगजोबन देवी उसकी
पुत्री थी जिसे जगत् में रूप की राशि माना जाता था । उसकी जल-
स्थल में अत्यधिक शोभा मानी जाती थी और नर-नाग-स्त्रियों में कोई
भी वैसी नहीं थी ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ वहाँ एक सराफ का पुत्र था
जिसका रूप अपार था । स्त्रियाँ उससे नज़र मिलाकर वापस घर नहीं
जाती थीं ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजकुमारी ने उसकी सुन्दरता देखी
और मन में कहा कि एक बार इसे घर पकड़ मँगाऊँगी और रुचिपूर्वक
इससे कामभोग करूँगी ॥ ४ ॥ उसने एक दासी को सब बात समझाकर

सहचरी दई तहाँ इक । ताँहि बात समुझाइ (सू० प्र० १३३१)
 अनिक निक । अमित दरब दै ताहि भुलाई । जिह तिह
 भाँति कुअरि कौ लिआई ॥ ५ ॥ भाँति भाँति के करत बिलासा ।
 मानत किसी न नर को लासा । तब लग आइ पिता तह गयो ।
 अधिक बिमन ताको मन भयो ॥ ६ ॥ अवर घात तब हाथ
 न आई । एक बात तब ताहि बनाई । बीच सम्याना के तिह
 सीआ । ऐँचित नाव ठाढ़ कर दीआ ॥ ७ ॥ ऊपर अवर
 सम्याना डारा । वाको जाइ न अंग निहारा । आगे जाइ
 पिता चलि लीना । जोरि प्रनाम दोऊ कर दीना ॥ ८ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ तिस सम्याना के तर पितु बैठाइयो । एक
 एक करि ताकौ पुहप दिखाइयो । भूप बिदा हवै जब आपुने
 ग्रहि अयो । हो काढि तहाँ ते मित्त सेज ऊपर लयो ॥ ९ ॥
 ॥ दोहरा ॥ इह छल सौ राजा छला सका भेद नहि पाइ ।
 दुहिता के ग्रहि जाइ सिर आयो कोर मुँडाइ ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ पञ्चतारि चरित्र ।

समापतम सत् सुभम सत् ॥ ३७५ ॥ ६८०८ ॥ अफजू ॥

वहाँ भेज दिया । उसने उसे अपरिमित द्रव्य दिया और वह जैसे-तैसे
 उस कुँवर को ले आई ॥ ५ ॥ वे किसी भी व्यक्ति का भय न मानकर
 भाँति-भाँति प्रकार से रमण करने लगे । तब तब उसका पिता आ गया
 और उसका मन अत्यधिक खिन्न हो उठा ॥ ६ ॥ और कुछ तो उसे
 सूझा नहीं, उसने एक बात उस समय बनाई कि उसे शामियाने के भीतर
 सी दिया और रस्सियाँ खींचकर उसे सीधा खड़ा कर दिया ॥ ७ ॥
 उसके ऊपर एक अन्य शामियाना डाल दिया ताकि उसका अंग भी दिखाई
 न दे । आगे पहुँचकर पिता का स्वागत किया और उसे दोनों हाथ
 जोड़कर प्रणाम किया ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उस शामियाने के नीचे
 पिता को बैठाया और एक-एक करके उसे फूल दिखाया । राजा बिदा
 होकर जब अपने घर आ गया तो उसने मित्त को वहाँ से निकालकर
 शय्या पर ले लिया ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रपंच से राजा को छला
 जो भेद नहीं जान सका । पुत्री के घर जाकर अपना सिर सूखा ही
 मुँड़वा आया अर्थात् छला गया ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ पचहत्तरवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३७५ ॥ ६८०८ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ छिहत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक और कहानी । किनहूँ लखी न किनहूँ जानी । शहिर हैदराबाद बसत जह । स्त्री हरिजच्छकेतु राजा तह ॥ १ ॥ ग्रहि मदमत्तमती तिह नारी । स्त्री प्रवीन दे धाम दुलारी । अपमान दुति जात न कही । जानुक फूल चंबेली रही ॥ २ ॥ निहचल सिंघ तहा इक छत्ती । सूरवीर बलवान तिअत्ती । तिह प्रवीन दे नैन निहारा । मदन क्रिपान घाइ जुनु मारा ॥ ३ ॥ पठै सहचरी लिया बुलाइ । भोग किया रुचि दुहूँ बढाइ । भाँति भाँति तन चुंबन करें । बिबिध प्रकार आसनन धरें ॥ ४ ॥ तब तह आइ गयो पितु वाको । भोगत हुतो जहाँ पिय ताको । चमकि चरित्र चंचला कोना । परदन बीच लपटि तिह लीना ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ परदन बीच लपेटि तिह दिया धाम पहुचाइ । मुख बाएँ राजा रहा सका चरित्र न पाइ ॥ ६ ॥ १ ॥ (मू०प्र० १३३२)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ छिहत्तरि चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३७६ ॥ ६८१४ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ छिअत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन्, एक अन्य कहानी सुनो जो किसी ने देखी-सुनी नहीं है । हैदराबाद शहर में हरियक्षकेतु नामक राजा रहता था ॥ १ ॥ उसके घर में मदमत्तमती स्त्री थी और प्रवीण देवी राजकुमारी थी । उसकी छवि अप्रमाण थी, मानों फूली हुई चमेली लगती थी ॥ २ ॥ वहाँ निहचल सिंह नामक शूरवीर, बलवान, शस्त्र-अस्त्रधारी क्षत्रिय था । उसे प्रवीणदेवी ने देखा और मानों उसे कामदेव ने कटारी से घायल कर दिया हो ॥ ३ ॥ उसे दासी भेजकर बुला लिया और रुचिपूर्वक रमण किया । विभिन्न प्रकार के चुंबन और आसन आदि उन्होंने प्रयुक्त किए ॥ ४ ॥ तब तक वहाँ उसका पिता आ गया जहाँ वह प्रिय उससे कामक्रीड़ा कर रहा था । उस स्त्री ने फौरन एक प्रपंच किया और उसे (मित्र को) पदों में छिपा दिया ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥ उसे पदों में लपेटकर उसके घर पहुँचा दिया । राजा मुँह फँलाए खड़ा ही रह गया और उसका भेद न जान सका ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ छिअतरवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३७६ ॥ ६८१४ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ सतत्तर चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ नवतन सुनहु नराधिप कथा । किया चरित्र अंचला जथा । त्रिबक महारुद्र है जहाँ । त्रिबक दत्त नराधप तहाँ ॥ १ ॥ त्रिबकपुर ताको बहु सौहै । इंद्र चंद्र लोक कह भोहै । स्त्री रसरीतिमती तिह नारी । कंचन अवटि साँचे जनु ढारी ॥ २ ॥ स्त्री सुहास दे ताकी कन्या । जिह सम उपजी नारि न अन्या । एक चतुरि अरु सुंदरि घनी । जिह समान कोई नहि बनी ॥ ३ ॥ इक दिन कुअरि बाग के चली । बीस पचास लएं संग अली । जात हुती मारग के माही । सुंदरि निरखा एक तहाही ॥ ४ ॥ शेर सिंघ तिह नाम बिराजत । जाँहि निरखि रति को मन लाजत । कह लागि तिह छवि भाखि सुनाऊँ । प्रभा केर सभ ग्रंथ बनाऊँ ॥ ५ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ राजसुता जब ते तिह गई

तीन सौ सतहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजा ! नयी कहानी सुनो कि एक स्त्री ने कैसा प्रपंच किया था । त्र्यंबक महारुद्र में त्र्यंबक नामक राजा था ॥ १ ॥ उसका त्र्यंबकपुर बहुत शोभायुक्त था जो इंद्र-चन्द्रलोक को भी मोहित करता था । उसकी स्त्री रसरीतिमती थी जो मानों सोने के साँचे में ढालकर बनाई गई थी ॥ २ ॥ सुहासदेवी उसकी कन्या थी जिसके समान कोई अन्य स्त्री नहीं बनी थी । एक तो वह चतुर थी, ऊपर से वह अत्यन्त सुन्दर थी । उसके समान अन्य कोई नहीं थी ॥ ३ ॥ एक दिन बीस-पचास सखियों को साथ ले कुँवरि उद्यान के लिए चली । जब वह रास्ते में जा रही थी तो सुन्दरी ने रास्ते में एक (व्यक्ति) देखा ॥ ४ ॥ उसका नाम शेर सिंह था और उसे देखकर रति भी लज्जित होती थी । कहाँ तक उसकी छवि का वर्णन करूँ । उसकी प्रभा वर्णन के लिए तो एक (अन्य) ग्रंथ बना सकता हूँ ॥ ५ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ राजकुमारी

निहारि करि । रही मत्त हृदय मन इह बात विचारि करि ।
कोटि जतन करि करि करि याहि बुलाइये । हो काम केल
करि या सौ हरख कसाइये ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ सखी एक
तह दई पठाइ । जिह तिह बिधि तिह लयो बुलाइ । पढ़ि
पढ़ि दोहा छंद बिहारहि । सकल मदन को ताप निवारहि ॥ ७ ॥
आवत नैन निरखि करि राजा । इह बिधि चरित चंचला
साजा । रोम नास तिह बदन लगायो । नारि भेस ताकह
पहिरायो ॥ ८ ॥ झारू एक हाथ तिह लियो । दूजे हाथ
टोकरा दियो । मुहरन और रुपयन भरो । ताहि चंडारी
भाखनि करो ॥ ९ ॥ त्रिप आगे करि ताहि निकार्यो ।
मूढ़ भूप नहि भेद बिचार्यो । काढि खड़ग तिह हनत न भयो ।
जानि चंडार ताहि त्रिप गयो ॥ १० ॥ जिन इह मोर अंग
छुहि जाइ । मुझे करै अपवित्र बनाइ । ताहि पछानि पकरि
नहि लयो । लै मुहरें सुंदर घर गयो ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित् पद्याने त्रिया चरित्ते मंत्री भूप संवादे तीन सौ सतत्तर चरित्
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३७७ ॥ ६८२५ ॥ अफजूं ॥

जबसे उसे देखकर गई तो वह मन में यह विचार कर मतवाली हो रही
थी कि करोड़ों यत्न करके ही इसे बुलाऊंगी और इसके साथ सुख-
पूर्वक कामक्रीड़ा करूंगी ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने एक सखी को वहाँ
भेज दिया और जैसे-तैसे उसको बुला लिया । वे दोहा, छंद पढ़-पढ़कर
विचरण करने लगे और काम की अग्नि शान्त करने लगे ॥ ७ ॥ राजा
को आते देख उस स्त्री ने यह प्रपंच किया कि उस (शेरसिंह) को बाल-
नाशक औषधि लगा दी और उसे नारी-वेश पहना दिया ॥ ८ ॥ उसने
एक हाथ में झाड़ू लिया और दूसरे में टोकरा थामा जिसे रुपये और
मोहरों से भर दिया । उसे कोई चांडालिन बता दिया ॥ ९ ॥ उसे
राजा के सामने से निकाल दिया और मूर्ख राजा यह रहस्य ही नहीं
समझ सका । उसे उसने खड़ग निकालकर मारा नहीं और चांडाल
समझकर छोड़कर चला गया ॥ १० ॥ कहीं ऐसा न हो कि इससे मेरा
अंग छू जाय और यह मुझे अपवित्र कर दे । उसे पहचानकर पकड़ा नहीं
और इस प्रकार वह सुन्दर मुहरें लेकर अपने घर चला गया ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित् के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सतहत्तरवें
चरित् की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३७७ ॥ ६८२५ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ अठहत्तरि चरित्र कथनं ॥

॥ चौपाई ॥ भूप त्रिहाटकसेन भनिज्जै । नगर त्रिहाड़ो जाहि कहिज्जै । जाहि त्रिहाटकपुरी बखानै । दानव देव जच्छ सभ जानै ॥ १ ॥ स्त्री महबूबमती तिह नारी । जिह सम सुंदरि कहै न कुमारी । (सू० प्र० १३३३) दुतिय नारि त्रिदु हासमती तिह । नहि ससि सम कहियत आनन जिह ॥ २ ॥ स्त्री महबूबमती तन त्रिप रति । दुतिय नारि पर नहि आनन मति । अधिक भोग तिह साथ कमायो । एक पुत्र ताते उपजायो ॥ ३ ॥ दुतिय नारि के साथ न प्रीता । ताहि न बीच लयावत चीता । सुतवंती इक पुनि पति प्रीत । अवर त्रियहि ल्यावत नहि चीत ॥ ४ ॥ दुतिय नारि तब अधिक रिसाई । एक घात की बात बनाई । सिस की गुदा गोखरू दिया । ताते अधिक दुखित तिह किया ॥ ५ ॥ बालक अधिक दुखातुर भयो । रोवत धाम मात के गयो । निरखि तात माता दुख पायो । भली भली धायान मँगायो ॥ ६ ॥

तीन सौ अठहत्तरवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ त्रिहाटकसेन एक राजा था जिसका नगर त्रिहाड़ कहा जाता था । इसे ही त्रिहाटकपुरी कहते थे और देव-दानव-यक्ष आदि सभी जानते हैं ॥ १ ॥ उसकी स्त्री महबूबमती थी जिसके समान अन्य कोई स्त्री सुन्दर नहीं थी । उसकी दूसरी स्त्री मृदहासमती थी जिसकी तुलना चन्द्रमा से भी नहीं की जा सकती ॥ २ ॥ राजा की आसक्ति महबूबमती पर थी और दूसरी स्त्री पर उसका मन नहीं आता था । उसने उस (महबूबमती) के साथ अत्यधिक भोग-विलास किया और उससे एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ (राजा की) दूसरी स्त्री के साथ प्रीति नहीं थी और वह उसे कभी मन में नहीं लाता था । (महबूबमती) एक तो पुत्रवान थी और दूसरे उसके साथ पति की भी प्रीति थी, वह अन्य किसी स्त्री की परवाह ही नहीं करती थी ॥ ४ ॥ दूसरी स्त्री ने तब क्रुद्ध हो एक अवसर खोजा और शिशु की गुदा में गोखरू (कांटे-युक्त फूल) दे दिया और उसे बहुत दुखी किया ॥ ५ ॥ बालक अत्यन्त दुखी होकर रोता हुआ माता के घर गया । माता-पिता देखकर दुखी हुए और उन्होंने अच्छी-अच्छी धायों को बुलाया ॥ ६ ॥ इस प्रपंच से उस स्त्री

इह चरित मालहि दुख दियो । आपन भेस धाइ को कियो ।
 किया सवति के धाम पयाना । भेद नारि किनहूँ न पछाना ॥७॥
 औखध एक हाथ मै लई । सिसु की प्रथम मात कौ बई ।
 बरी खात रानी मरि गई । स्वच्छ सुघरि रानी फिरि अई ॥८॥
 निजु ग्रहि आइ भेस त्रिप लिय धरि । जाइ भई अपनी सवितन
 घर । सिसु को काढि गोखरू डारो । ताँहि सुघरि तिह सुत
 करि पारो ॥ ९ ॥ इह छल सो सवतनि कह मारा । सिसहु
 जानि सुत लियो उबारा । त्रिपह संग पुनि करि लिय प्यारा ।
 भेद अभेद न किनूँ बिचारा ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित पद्याने त्रिया चरित मंत्री भूप संवादे तीन सौ अठहत्तर चरित
 समापतम सतु सुभम सतु ॥३७८॥ ६८३५ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ उनासी चरित कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनु राजा इक और प्रसंगा । जिह बिधि
 भयो नरेसुर संग । मृदुला दे तिह नारि भनिज्जै । इंद्र
 चंद्र पटतर तिह दिज्जै ॥ १ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ स्त्री सुप्रभा दे

ने बच्चे की माँ को दुख दिया । अब उसने स्वयं धाय का वेश धारण
 किया । उसने सौतन के घर की ओर प्रस्थान किया और उसके भेद को
 कोई न पहचान सका ॥ ७ ॥ उसने एक ओषधि हाथ में लेकर पहले
 शिशु की माता को दी । वह गोली खाते ही रानी मर गई और यह
 रानी पुनः स्वच्छ सुघड़ रूप में आ गई ॥ ८ ॥ अपने घर आकर फिर
 इसने राज-स्त्री का वेश धारण किया और सौतन के घर आ पहुँची ।
 बच्चे का गोखरू निकाल दिया और उसे अपना पुत्र बनाकर पाला ॥ ९ ॥
 इस प्रपंच से उसने सौतन को मारा और शिशु को पुत्र जानकर बचा
 लिया । राजा के साथ पुनः उसका प्यार हो गया और इस भेद-अभेद
 को कोई न जान सका ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ अठहत्तरवें
 चरित की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३७८ ॥ ६८३५ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ उनासीवाँ चरित-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! एक राजा के साथ जैसा हुआ वह प्रसंग
 भी सुनो । मृदुलादेवी उस राजा की स्त्री थी जिसकी तुलना इंद्र-चन्द्र

ताकी सुता बखानिये । महाँ सुंदरी लोक चतुरदस जानिये ।
जो सहचरि ताकौ भरि नैन निहारहीं । हो परी पदुमनी
प्रकृत सु वाहि बिचारहीं ॥ २ ॥ ॥ चौपई ॥ हाटकपुर तिन
को दिसि दच्छिन । राज करत ते तहाँ बिचच्छन । तिह पुर
एक शाह कौ पुत्र । जनु करि बिधना ठटा चरित ॥ ३ ॥
व्याघ्रकेत तिह नाम कहिज्जै । छल जाति रघुवंस भनिज्जै ।
प्रगट जानु अवतार अनंगा । (मू० प्र० १३३४) ऐसो शाह पुत्र को
अंगा ॥ ४ ॥ लागी लगन तवन पर बाला । सखी पठी इक
तहाँ रिसाला । सो चलि गई कुअर के धामा । जिमि तिमि
ताहि प्रबोध्यो बामा ॥ ५ ॥ जात भई ताकह लै तहाँ ।
मारग कुअरि बिलोकत जहाँ । निरखत नैन गरे लपटाई ।
सेजासन पर लियो चढ़ाई ॥ ६ ॥ बहु बिधि करी तवन सौ
क्रीड़ा । कामनि काम निवारी पीड़ा । निमु दिन धाम बाम
तिह राखा । मात पिता तन भेद न भाखा ॥ ७ ॥ तब लौ
व्याहि दयो तिह तातें । भूलि गई वाकौ वै बातें । निजु
प्यारे बिनु रह्यो न गयो । घालि संदूकहि साथ चलयो ॥ ८ ॥

से दी जा सकती है ॥ १ ॥ ॥ अङ्गिल ॥ सुप्रभादेवी उसकी पुत्री कही
जाती थी और उसे चौदह लोकों में महासुन्दरी जाना जाता था । जो
सखी भी उसे आँख से देखती उसे परी और पद्मिनी प्रकृति की स्त्री मानती
थी ॥ २ ॥ ॥ चौपाई ॥ उनका नगर हाटकपुर दक्षिण दिशा में था
जहाँ वे सुन्दर राज किया करते थे । उसी नगर में एक धनी का पुत्र
था जो मानों विद्याता ने छलावा बनाया था ॥ ३ ॥ उसका नाम
व्याघ्रकेतु था और वह रघुवंशी क्षत्रिय था । उस धनिक-पुत्र के अंग
ऐसे थे, मानों वह कामदेव का अवतार हो ॥ ४ ॥ उस कन्या की लगन
उसके साथ लग गई और उसने उसके पास एक सुन्दर सखी भेजी । वह
कुँवर के घर तक चली आई और जैसे-तैसे उसने उसे संबोधित किया ॥ ५ ॥
वह उसे वहाँ ले आई जहाँ कुँवरि उसका रास्ता देख रही थी । उसने
उसे देखते ही गले से लिपटा लिया और अपनी शय्या पर चढ़ा लिया ॥ ६ ॥
उसने अनेकों प्रकार से क्रीड़ा की और उस कामिनी ने अपनी काम-पीड़ा
का निवारण किया । उस स्त्री ने रात-दिन उसे वहीं रखा और माता-
पिता को कुछ भी भेद नहीं बताया ॥ ७ ॥ तब तक पिता ने उसका
विवाह कर दिया और उसे सब बातें भूल गई । वह अपने प्रिय के बिना
रह नहीं सकती थी, इसलिए उसे संदूक में डालकर साथ ले चली ॥ ८ ॥

निसु दिन तासौ भोग कमावै । सोभत रहै न भूपति पावै ।
 एक दिवस जबही त्रिप जागा । रनियहि छोरि जार उठि
 भागा ॥ ६ ॥ त्रिय सौ बचन कोप करि भाख्यो । तैं लै
 हार धाम किमि राख्यो । कै अबहीं मुहि बात बतावौ । कै
 प्रानन की आस चुकावौ ॥ १० ॥ बात सत्य जानी जिय रानी ।
 मुझे न त्रिप छाडत अभिमानी । भाँग घोटना हाथ सँभारा ।
 फोरि नराधिप के सिर डारा ॥ ११ ॥ बहुरि सभन इह भाँति
 सुनाई । प्रजा लोग जब लए बुलाई । मद करि भूप भयो
 मतवारा । पहिल पुत्र को नाम उचारा ॥ १२ ॥ अतक
 पुत्र को नामहि लयो । ताते अधिक दुखातुर भयो । शोक
 ताप को अधिक बिचारा । मूँड फोरि भीतन सौ डारा ॥ १३ ॥
 ॥ दोहरा ॥ इह छल निजु नायक हना लीना मित्र बचाइ ।
 बहुरि भोग तासौ करो को न सका छल पाइ ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ उनासी चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३७६ ॥ ६६४६ ॥ अफजूं ॥

रात-दिन उससे क्रीड़ारत रहती थी और राजा को कुछ भी पता नहीं
 चलता था । एक दिन राजा जब जग गया तो रानी को छोड़कर यार
 भाग खड़ा हुआ ॥ ९ ॥ वह क्रुद्ध हो रानी से बोला कि यह तूने किसे
 घर में रखा है ? या तो मुझे अभी सत्य बताओ नहीं तो अपने प्राणों
 का मोह छोड़ दो ॥ १० ॥ रानी ने सच मान लिया कि यह अभिमानी
 राजा मुझे नहीं छोड़ेगा । उसने भाँग रगड़नेवाला डंडा हाथ में पकड़ा
 और राजा के सिर में दे मारा ॥ ११ ॥ फिर प्रजाजनों को बुलाकर यह
 बात सुनाकर कह दी कि शराब पीकर राजा मतवाला हो गया और पहले
 पुत्र का नाम बोलने लगा ॥ १२ ॥ मृतक पुत्र का नाम लेकर यह
 अत्यधिक दुखी हो गया और इसी शोक-संताप में इसने दीवारों से सिर
 मार-मारकर फोड़ लिया ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रपंच से अपना पति
 मारा और मित्र को बचा लिया । पुनः उससे रमण किया और कोई
 भी इस भेद को न जान सका ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ उन्नासीवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३७६ ॥ ६६४६ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ अस्सी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ एक चरित्रसेन राजा वर । नारि चरित्र
मती ताको घर । वती चरित्रा ताकी नगरी । तिहूँ भवन
के बीच उजगरी ॥ १ ॥ गोपी राइ शाह सुत इक तह ।
जिह सम सुंदरि दुतिय न जग सह । तिह चरित्र दे नैन
निहार्यो । अंग अंग तिह मदन प्रजार्यो ॥ २ ॥ जिह तिह
बिधि तिह लयो बुलाइ । उठत लयो छतिया सौ लाइ ।
काम केल कीनो रुचि ठानी । केल करत सभ रैन
बिहानी ॥ ३ ॥ (म०ग्र० १३३५) पोसत भांग अफीम मँगाई ।
एक सेज चढ़ि दुहूँ चढ़ाई । भाँति अनिक तन कियो बिलासा ।
मात पिता को मन न लासा ॥ ४ ॥ तब लगि आइ गयो
ताकौ पति । डारि दयो सेजा तर उपपति । दुपटा डारि
दयो तिह मुख पर । जान्यो जाइ न ताँते त्रिय नर ॥ ५ ॥
सोवत कवन सेज पर तोरी । भाखी नाथ मात है मोरी ।
हम पहि तो नहि जात जगाई । तुमैं कहत हौ बाँधि ढिठाई ॥ ६ ॥

तीन सौ अस्सीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ चरित्रसेन एक श्रेष्ठ राजा था जिसकी स्त्री का नाम
चरित्रमती था । चरित्रवती उनका नगर था जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध
था ॥ १ ॥ गोपीराम एक धनिक का पुत्र था जिसके समान अन्य कोई
सुन्दर नहीं था । चरित्रदेवी ने उसे आँखों से देखा और उसका अंग-अंग
कामदग्ध हो उठा ॥ २ ॥ उसे जैसे-तैसे उसने बुला लिया और उठते
ही उसे छाती से लगा लिया । रुचिपूर्वक कामकेल करने की बात ठान
ली और क्रीड़ा करते ही सारी रात बिता दी ॥ ३ ॥ पोस्त, भांग और
अफीम मँगाकर एक ही शय्या पर चढ़कर दोनों ने चढ़ा ली । माता-पिता
का मन में भय न मानते हुए उसने अनेक प्रकार से भोग-विलास
किया ॥ ४ ॥ तब तक उसका पति आ गया और उसने भित्त को पलंग
पर डाल दिया । उसके मुँह पर दुपट्टा डाल दिया जिससे पता नहीं
लगता था कि वह पुरुष है या स्त्री ॥ ५ ॥ “तुम्हारी शय्या पर कौन
सो रहा है ?” जब राजा ने पूछा तो उसने उत्तर दे दिया कि यह मेरी माँ
है । तुमसे धृष्टतापूर्वक कह रही हूँ कि मुझसे तो इसे जगाया नहीं
जायगा ॥ ६ ॥ तुम दो-एक घड़ी के लिए अन्यत्र चले जाओ और जब

द्वैक घरी तुम अनत सिधाबहु । इह उठि गए बहुरि हयाँ आवहु । जब जागै ते अधिक रिसैहैं । हम तुम लखि इकल चुप हवैहैं ॥ ७ ॥ तिनि इह बात सत्य करि मानी । जात भयो उठि क्रिया न जानी । जब उठि मात गई लखि लैयहु । तब हमकौ तुम बहुरि बुलैयहु ॥ ८ ॥ इमि कहि बात जात जह भयो । ताँहि चड़ाइ खाट पर लयो । भाँति अनिक तन कर बिलासा । आवत भयो तिह पिता निवासा ॥ ९ ॥ तिसी भाँति तन ताहि सुवायो । तात भए इह भाँति जतायो । सुनहु पिता इह नारि तिहारी । तुम ते छपी लाज की मारी ॥ १० ॥ सुनत बचन त्रिप धाम सिधाना । भेद अभेद कछू न पछाना । ताकौ काढि सेज पर लीना । ताकी सात गवन तह कीना ॥ ११ ॥ वैसहि ताकह दिया सुवाइ । कही सात मै बात बनाइ । सुनहु मात जामात तिहारो । मोको अधिक प्रान ते प्यारो ॥ १२ ॥ याको नैन नीद दुख दियो । ताते सैन समित हवै कियो । मै याको नहि सकत जगाई । अब ही सोइ गयो सुखदाई ॥ १३ ॥ सुनि बच मात जात भी उठ घर । लयो सेज पर त्रिय पिय भुज भर । भाँति भाँति तन

यह जग जाय तो तुम यहाँ आ जाओ । जब यह जगेगी तो अत्यधिक रुष्ट होगी, अतः हम दोनों को चुप ही लगा जानी चाहिए ॥ ७ ॥ उसने इस बात को सत्य मान लिया और बात को समझे बिना चला गया । जब माँ उठ जाय तो देख लेना और मुझे तुम फिर बुला लेना ॥ ८ ॥ यह कहकर वह मूर्ख चला गया और उसने उसे फिर पलंग पर चढ़ा लिया । उससे अनेकों प्रकार से भोग-विलास किया और इतने में उसका पिता भी वहाँ आ गया ॥ ९ ॥ उसने उसे (प्रेमी को) फिर सुला दिया और पिता से कहा कि हे पिताजी ! यह आपकी स्त्री है जो आपसे लज्जा-वश यहाँ छिपी है ॥ १० ॥ राजा यह सुनकर अपने घर चला गया और भेद-अभेद कुछ न पहचान सका । उसने उसे फिर निकालकर शय्या पर ले लिया और तब फिर उसकी माँ ने वहाँ पदार्पण किया ॥ ११ ॥ उसने फिर उसे वैसे ही सुला दिया और माँ से बात बनाकर कहा, हे माँ, सुनो यह तुम्हारा दामाद है जो मुझे प्राणों से भी प्रिय है ॥ १२ ॥ इसकी आँखें नींद से दुख रही थीं जिससे यह थककर सो गया है । मैं इसे जगा नहीं सकती क्योंकि यह अभी सुखपूर्वक सोया है ॥ १३ ॥ माँ भी सुनकर अपने निवास में चली गई और इस स्त्री ने पुनः प्रेमी को भुजाओं में भर

भोग कमाए । बहुरि धाम कौ ताहि पठाए ॥ १४ ॥
॥ दोहरा ॥ इह चरित्त तिह चंचला पियहि दयो पहुचाइ ।
भेद अभेद त्रियान के सक्यो न कोई पाइ ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्त पख्याने त्रिया चरित्ते मंत्री भूप संवादे तीन सौ अस्सी चरित्त
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३८० ॥ ६८६४ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ इकिआसी चरित्त कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनहु राम इक कथा स्रवन धरि । जिह
बिध किया चरित्त त्रिया बर । पीर एक मुलतान भनिज्जै ।
रूपवंत तिह अधिक कहिज्जै ॥ १ ॥ रोशन कदर तवन को
नामा । थकित रहित जिह निरखत (मू० प्र० १३३६) बामा ।
जो निरखति तिय पतिहि निहारै । ताकौ ऐंचि जूतयन
मारै ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक नार तिह पति को रूप
निहारि बर । रही मुबतला हवै इमि चरित बिचारि करि ।
इह निरखे बिनु चैन न ओकौ पल परै । हो जौ निरखत हौ
ताहि तु रारिह लिय करै ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ तिसी त्रिया

शय्या पर ले लिया । उससे भाँति-भाँति से रमण कर उसे वापस घर
भेज दिया ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ इस प्रपंच से उस स्त्री ने प्रिय को
पहुँचा दिया । इन स्त्रियों के रहस्य को तो कोई भी नहीं जान
सकता ॥ १५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्तोपाख्यान के त्रिया-चरित्त के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ अस्सीवें
चरित्त की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३८० ॥ ६८६४ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ इवयासीवाँ चरित्त-कथन

॥ चौपाई ॥ कान लगाकर एक रमणीक कथा सुनो कि कैसे एक
सुन्दर स्त्री ने प्रपंच किया । मुलतान में एक पीर था जिसे अत्यधिक
रूपवान कहा जाता था ॥ १ ॥ उसका नाम रोशन कादिर था और
स्त्रियाँ उसे ही देख-देख थक जाती थीं । उसकी स्त्री जिस भी स्त्री को
अपने पति को देखते देखती उसे जूतों से मारती ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ एक
स्त्री उसके पति का रूप देखकर उसमें फँसकर कोई प्रपंच करने के बारे में
सोचने लगी कि इसको देखे बिना मुझे पल भर भी चैन नहीं मिलता और
यदि देखती हूँ तो इसकी स्त्री से झगड़ा होता है ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह

के धाम सिधाई । बहुतक भेद अशरफी ल्याई । जेवर दोने जरे जराइन । जिन को सकत अंत कोई पाइन ॥ ४ ॥ सु सभ दई तिह साथि कहा इमि । साथ खादिमाबानो के तिमि । एकहि आस ह्याँ मैं आई । सु मैं कहत हौ तुमैं सुनाई ॥ ५ ॥ ग्रहि अपने ही मदरो च्वाइ । खाना अनिक भाँति के ल्याइ । निजु हाथन लै दुहँ पयाऊँ । भेट चढ़ाइ घरहि उठि जाऊँ ॥ ६ ॥ सोई मद लै तहा सिधाई । सात बार बहु भाँत चुआई । निजु हाथन लै दुहँ पियायो । अधिक मत्त करि सेज सुआयो ॥ ७ ॥ सोई लखी पीर त्रिय जबही । नैन सैन दै तिह प्रति तबही । ताके धरि छतिया पर चूवन । काम भोग कीना तिह पति तन ॥ ८ ॥ सोवत रही चड़े मद नारी । भेद अभेद की गति न बिचारी । चीठी एक लिखी निज अंगा । बाँधि गई ताके सिर संगी ॥ ९ ॥ जो त्रिय ख्याल त्रियन के परिहै । ताकी बिधि ऐसी गति करिहै । ताते तुम त्रिय ऐस न कीजै । बुरो सुभाइ सकल तजि दीजै ॥ १० ॥

उसी स्त्री के घर गई और बहुत-सी अशक्तियों की भेंट साथ ले गई । उसे जड़ाउ जेवर दिये जिनका अन्त पाना कठिन है ॥ ४ ॥ वह सब देकर उसने खादिमाबानो नामक उस स्त्री से यह कहा कि मैं एक आशा लेकर यहाँ आई हूँ जिसे मैं तुमसे कह सुनाती हूँ ॥ ५ ॥ मैं अपने घर ही मदिरा और खाना बनाकर ले आऊँगी और आप दोनों को अपने हाथ से पिलाकर वापस घर चली जाऊँगी ॥ ६ ॥ वह वही शराब वहाँ लेकर पहुँची जो सात बार निकाली (आसवित की) गई थी । उन्हें अपने हाथों से पिलाई और मदमस्त कर उन्हें शय्या पर सुला दिया ॥ ७ ॥ पीर ने जब स्त्री को सोया जान लिया तो उसने उस आगन्तुक स्त्री को आँख से इशारा किया । उसकी छाती पर बैठकर उसने उसके पति के साथ कामक्रीड़ा की ॥ ८ ॥ मद में मस्त वह स्त्री सोती रही और भेद-अभेद की बात पहचान ही न सकी । उसने एक चिट्ठी लिखी और उस सोती हुई के सिर के साथ ही उसे बाँध दिया ॥ ९ ॥ जो औरतें औरतों पर ही ज्यादा ध्यान देती हैं, विधाता उनकी यही गति करता है । इसलिए ऐह स्त्री ! तुम ऐसा मत किया करो और अपना बुरा स्वभाव त्याग दो ॥ १० ॥

॥ दोहरा ॥ केस पाँस ते छोरिकै बाँचत पतिया अंग । ता
दिन ते त्रिय तजि दिया बाद त्रियन के संग ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ इक्कीसी चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३८१ ॥ ६८७५ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ बिआसी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बिशनधुजा इक भूप सुलच्छन । बिशन
पुरी जाकी दिसि दच्छिन । श्री मनिनीलमती तिह रानी ।
सुंदरि सकल भवन मौ जानी ॥ १ ॥ अछलीराइ एक तह
छत्री । सूरवीर बलवान निछत्री । बदन प्रभा तिह जात न
भाखी । जनु मुख चीर चाँद की राखी ॥ २ ॥ त्रिय की
प्रीति तवन सौ लागी । जाते नीद भूखि सभ भागी । जिय
ते त्रिप रोगी ठहरायो । ऊच नीच सभहीन सुनायो ॥ ३ ॥
खींध एक राजा पर धरी । उर पर राखि लोन की डरी ।
अगनि साथ तिह अधिक उपाई । जो कर साथ (मू०ग्रं० १३३७)
छुई नहि जाई ॥ ४ ॥ चारो ओर दाबि अस लिया । मुख

॥ दोहा ॥ केशपाश को ढीला कर उसने पत्र पढ़ा और उस दिन से उसने
अन्य स्त्रियों से विवाद छोड़ दिया ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ इक्कीसीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३८१ ॥ ६८७५ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ बयासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ विष्णुध्वज नामक एक अच्छा राजा था जिसका
विष्णुपुरी नगर दक्षिण दिशा में था । मणिनीलमती उसकी रानी थी जो
सारे भुवनों में सुन्दर मानी जाती थी ॥ १ ॥ अछलीराय नामक एक
क्षत्रिय वहाँ था जो सूरवीर और बलवान था । उसके मुख की प्रभा
अवर्णनीय थी और ऐसी लगती थी मानों चन्द्र को चीरकर उसके मुख पर
लगा दिया गया हो ॥ २ ॥ उस स्त्री (रानी) की प्रीति उससे लग
गई और इससे उसकी नींद-भूख सब भाग गई । उसने राजा को रोगी
करार दे दिया और ऊँच-नीच सबको कह सुनाया ॥ ३ ॥ एक रजाई
राजा पर रख दी और छाती पर नमक की एक डली रख दी । फिर
उसे आग से तपाया जिससे कि वह हाथ छुआ न जा सके ॥ ४ ॥ उसे

ते ताँहि न बोलन दिया । तबही तजा गए जब प्राणा । भेद
पुरख दूसरे न जाना ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ बिआसी चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३८२ ॥ ६८८० ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ तिरासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुनहु चरित इक अवर नरेसा । त्रिप इक
झारखंड के देसा । कोकिलसेन तवन को नामा । मती
कोकिला वाकी बामा ॥ १ ॥ बदलीराम शाह सुत इक तह ।
जिह सम सुंदरि कहूँ न जग मह । द्रिग भरि ताहि बिलोका
जबहीं । रानी भई काम बसि तबहीं ॥ २ ॥ काम भोग
तिह साथ कमावै । मूड़ नारि नहि ह्लिदै लजावै । जब राजै
इह बात पछानी । चित महि धरी न प्रगट बखानी ॥ ३ ॥
आधी रैन होत भी जबही । राजा दुरा खाट तर तबही ।
रानी भेद न वाको पायो । बोलि जार कौ निकट बुलायो ॥ ४ ॥
रुचि भरि भोग तवन सौ करा । खाट तरे राजा लहि परा ।

चारों ओर से दबा लिया और मुँह से बोलने भी नहीं दिया । तब राजा
ने प्राण त्याग दिए और किसी अन्य को पता भी न चल सका ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ बयासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३८२ ॥ ६८८० ॥ अफजू ॥

तीन सौ तिरासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ हे राजन् ! एक अन्य चरित्र सुनो । झाराखंड प्रदेश
का एक राजा कोकिलसेन था जिसकी स्त्री कोकिलमती थी ॥ १ ॥ वहाँ
एक धनी का पुत्र बदलीराम था जिसके समान संसार में अन्य कोई सुन्दर नहीं
था । रानी ने जैसे ही उसे आँखों से देखा तो वह कामासक्त हो उठी ॥ २ ॥
वह उसके साथ कामक्रीड़ा करने लगी और तनिक भी लज्जित नहीं होती
थी । राजा को जब इस रहस्य का पता चला तो उसने बात मन में रखी
और किसी से नहीं कही ॥ ३ ॥ जब आधी रात हो गई तो राजा पलंग
के नीचे छिप गया । रानी को रहस्य का पता न लगा और उसने गार को
अपने पास बुला लिया ॥ ४ ॥ उससे रुचिपूर्वक भोग किया परन्तु साथ
ही साथ पलंग के नीचे राजा भी दिखाई पड़ गया । वह स्त्री अब अत्यधिक

अधिक नारि मन महि डरपाई । करौ दैव अब कवन
उपाई ॥ ५ ॥ सुनु मूरख तैं बात न पावैं । त्रिप नारी कह
हाथ लगावैं । सुंदरि सुघरि जैसे मुर राजा । तैंसो दुतिय न
बिधना साजा ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जो पर नर कह पिय
बिनु नारि निहारई । महाँ नरक महि ताहि बिधाता डारई ।
निजु पति सुंदर छाडि न तुमहि निहारिहौ । हे निजु कुल की
तजि कानि न धर महि टारिहौ ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ जैंसो
अति सुंदर मेरो बर । तुहि वारौ वाके इक पग पर । तिह
तजि तुहि कैसेहूँ न भजिहों । लोक लाज कुल कानि न
तजिहों ॥ ८ ॥ सुनत बचन मूरख हरखान्यो । पतीव्रता
नारी कह जान्यो । सिर पर धरि पलका पर नचा । इह
बिधि जारि नारि जुत बचा ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ तिरासी चरित्र
समापतम सतु शुभम सतु ॥ ३८३ ॥ ६८८६ ॥ अफजूं ॥

डर गई और सोचने लगी कि अब मैं कौन सा उपाय करूँ ? ॥ ५ ॥ वह कहने
लगी कि मूर्ख ! तुम समझते नहीं हो और राजा की स्त्री को हाथ लगाते हो ।
मेरा राजा जैसा सुन्दर है वैसा तो विधाता ने अन्य कोई बनाया ही नहीं
है ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ यदि कोई स्त्री पर पुरुष को देखती भी है तो विधाता
उसे नर्क में डालता है । मैं अपने सुन्दर पति को छोड़कर तुम्हें नहीं देखूंगी
और अपना धर्म और कुल-मर्यादा नहीं छोड़ूंगी ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ जितना
सुन्दर मेरा पति है, तुम्हें तो उसके एक पैर पर कुर्बान किया जा सकता है ।
उसे छोड़कर मैं तुमसे कदापि रमण नहीं करूंगी और लोक-लाज-कुल-मर्यादा
नहीं छोड़ूंगी ॥ ८ ॥ मूर्ख यह वचन सुनकर खुश हो उठा और अपनी स्त्री को
पतिव्रता स्त्री मानने लगा । वह उसे सिर आँखों पर उठा नाचने लगा और
इस प्रकार वह याद स्त्री-समेत बच गया ॥ ९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ तिरासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३८३ ॥ ६८८६ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ चउरासी चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ सदा सिंघ इक भूप महाँ मुनि । सदा पुरी जाँकी पच्छिम भनि । स्त्री सुलंक दे ताकी नारी । जनुक चंद्र से चीरि निकारी ॥ १ ॥ तह इक होत शाह धनवाना । निरधन करि डार्यो भगवाना । (सू० प्र० १३३८) अधिक चतुरि ताकी इक नारी । तिन तासौ इह भाँति उचारी ॥ २ ॥ करिहौ बहुरि तुमै धनवंता । क्रिपा करै जो स्त्री भगवंता । आपन भेस पुरख को धारो । राज बाट पर हाट उसारो ॥ ३ ॥ एकन दरब उधारो दियो । एकन के राखन हित लियो । अधिक आपनी पतिहि चलायो । जह तह सकल धनिन सुनि पायो ॥ ४ ॥ सोफी सूम शाह इक तहाँ । जाके घर सुनियत धन महाँ । सुत त्रिय को नहि करत बिस्वासा । राखत दरब आपने पासा ॥ ५ ॥ शाह सुई तिह नारि तकायो । अधिक प्रीत करि ताहि बुलायो । त्रिय सुत माल कहा तव खँहैं । एक दाम फिरि तुमैं न देहैं ॥ ६ ॥ शाह माल कहूँ अनत रखाइ । सरखत ताते लेहु लिखाइ । मात पूत कोई

तीन सौ चौरासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सदासिंह एक महाम राजा था जिसका नगर सदापुरी पश्चिम में था । सुलंकदेवी उसकी स्त्री मानों चन्द्रमा में से चीरकर निकाली गई थी ॥ १ ॥ वहाँ एक धनी था जिसे भगवान ने निर्धन कर दिया था । उसकी एक स्त्री अत्यधिक चतुर थी । उसने उससे कहा ॥ २ ॥ यदि भगवान कृपा करेंगे तो एक दिन फिर तुम्हें धनवान बना देंगे । उसने अपना वेश पुरुष का बनाया और राजमार्ग पर एक दुकान बना ली ॥ ३ ॥ किसी को उसने द्रव्य उधार लिया और किसी से रखने के लिए ले लिया । उसने अत्यधिक अपनी प्रशंसा करवायी जिसे यत्र-तत्र-सर्वत्र सभी धनवानों ने सुना ॥ ४ ॥ वहाँ एक कंजूस धनी था जिसके घर अपार धन था । वह पुत्र, स्त्री किसी का भी विश्वास नहीं करता था और सारा द्रव्य अपने पास ही रखता था ॥ ५ ॥ उस स्त्री ने उसी धनी को देखा और अत्यधिक प्रेमपूर्वक उसे बुलाया । उससे कहा कि तुम्हारा माल तो स्त्री-पुत्र ही खा जायेंगे और तुम्हें दमड़ी भी नहीं देंगे ॥ ६ ॥ हे धनिक ! तुम अपना माल अन्यत्र किसी के पास रखो और उससे रसीद ले लो । माता और

भेद न पावै । तुमहीं चाहहु तबै धन आवै ॥ ७ ॥ बचन
बहुरि तिन शाह बखानो । तुम ते और भलो नहि जानो । मेरो
सकल दरबु तैं लेहि । सरखत गुप्त मुझे लिखि देहि ॥ ८ ॥
बीस लाख ताँते धन लिया । सरखत एक ताँहि लिखि दिया ।
बाजूबंद बीच इह रखियहु । अवर पुरख सौ भेव न
भखियहु ॥ ९ ॥ दै धन शाह जबै घर गयो । भेख मजूरन
को तिन लयो । धाम तिसी के किया पयाना । भेद अभेद
तिन मूढ़ न जाना ॥ १० ॥ कही कि एक टूक मुहि देहु ।
पान भराइस गरदनि लेहु । खरच जानि थोरो तिन करो ।
भेद अभेद नहि नैकु बिचरो ॥ ११ ॥ जबहीं घात नारि तिन
पाई । बाजू बंद लयो सरकाई । अपनी कबज काढि करि
लई । सत की डारि तवन मै गई ॥ १२ ॥ कितक दिनन
कहि देह रुपइया । पठै दयो इक ताँहि मनइया । एक हजार
तहाँ तो ल्यावहु । आनि बनिज को काज चलावहु ॥ १३ ॥
तिन क हजार न ताकौ दिया । जिय मै कोप शाह तब किया ।
बाँधि लै गयो ताकह तहाँ । काजी कोटवार थो जहाँ ॥ १४ ॥

उसके पुत्र को कोई पता न चले और जब तुम चाहो तभी धन आए ॥ ७ ॥
तब उस धनी ने कहा कि तुमसे भला मैंने अन्य कोई नहीं देखा है । तुम मेरा
सम्पूर्ण द्रव्य ले लो और गुप्त रूप से मुझे दस्तखत कर दो ॥ ८ ॥ उसने उससे
बीस लाख रुपया लिया और उसे एक रसीद दे दी । उससे कहा कि तुम इसे
बाजूबंद में बाँधकर रखना और अन्य किसी को रहस्य न कहना ॥ ९ ॥
धनिक जब धन देकर घर गया तो इसने मजदूर का वेश धारण कर लिया ।
उसने उसी के घर प्रस्थान किया और इस मूर्ख ने यह रहस्य न समझा ॥ १० ॥
उस स्त्री ने कहा कि तुम मुझे एक समय खाना दो और मुझसे सिर पर पानी
भरवाओ । तुम मुझे नौकर रखकर अपना खर्चा कम करो और इसमें
तनिक भी भेद-अभेद मत समझो ॥ ११ ॥ उस स्त्री ने जब अवसर देखा
तो उस बाजूबंद को खिसका लिया । उसने अपनी रसीद उसमें से निकाल
ली और उसमें सौ रुपये की रसीद डाल दी ॥ १२ ॥ काफ़ी दिनों बाद
उसने कहा कि रुपया दो और इस कार्य के लिए एक व्यक्ति को उसके पास भेज
दिया कि तुम एक हजार रुपया वहाँ से ले आओ और आकर व्यापार का
काम चलाओ ॥ १३ ॥ उसने उसे एक हजार नहीं दिया जिससे वह धनिक
मन में कुपित हो उठा । वह उसे बाँधकर वहाँ ले गया जहाँ काजी
कोतवाल थे ॥ १४ ॥ इसने मुझसे बीस लाख लिया है और मुझे एक हजार

मो ते बीस लाख इन लिया । अब इन मुझै हजार न दिया ।
 कही सभो सरखत तिह हेरो । इन को अबही न्याइ
 निबेरो ॥ १५ ॥ छोरि सरखतहि सभन निहारो । रुपया
 सौ इक तहाँ बिचारो । साचा ते झूठा तिह किया । सभ धनु
 हरो काढि तिह दिया ॥ १६ ॥ बहुरि बचन तिन नारि
 उचारे (सू० अं० १३३६) मैं न रहत हौ गाँव तिहारे । यौ कहि
 जात तहाँ ते भई । सोफीयहि कूटि भंगेरी गई ॥ १७ ॥
 ॥ दोहरा ॥ निरधन ते धनवंत भी करि तिह धन की हानि ।
 सोफी कह अमलिन छरा देखत सकल जहान ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ चउरासी चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३८४ ॥ ६६०७ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ पचासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ चित्रकेत राजा इक पूरब । जिह बचित्र
 रथ पुत्र अपूरब । चित्रपुरी नगर तिह सोहै । जिह ढिग
 देव दंत पुर को है ॥ १ ॥ स्त्री कटिउत्तिम दे तिह नारी ।
 सूरजवत तिह धाम दुलारी । जिह सम सुंदरि नारि न कोई ।

भी नहीं दिया है । सबने कहा कि रसीद देखो और इनका अभी न्याय
 करो ॥ १५ ॥ सबने रसीद देखी और उसमें एक सौ रुपया पाया । उसे
 सच्चे से झूठा कर दिया और उसका सब धन ले लिया ॥ १६ ॥ फिर उस स्त्री
 ने उस धनी से कहा कि मैं अब तुम्हारे गाँव में नहीं रहूँगी । यह कहकर वह
 वहाँ से चली गई और इस तरह यह भँगेड़ी उस सोफी को लूट गयी ॥ १७ ॥
 ॥ दोहरा ॥ उसका धन लूटकर वह निर्धन से धनवान हो गई और सारे संसार
 के देखते-देखते उस न पीनेवाले को नशेड़ी छल गई ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ चौरासीवें चरित्र
 की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३८४ ॥ ६६०७ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ पचासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पूर्व में चित्रकेतु नामक राजा था जिसका सुन्दर पुत्र
 विचित्ररथ था । चित्रपुरी एक नगरी थी जिसके समान देव-दैत्य-पुरियाँ
 भी कुछ नहीं थीं ॥ १ ॥ श्री कटिउत्तमदेवो उसकी स्त्री थी जिसके घर में
 सूर्य के समान (सुन्दर) एक राजकुमारी थी । उसके समान सुन्दर स्त्री

आगे भई न पाछे होई ॥ २ ॥ बानी राइ तहाँ इक शाहा ।
जिह मुखु सम सुंदरि नहि माहा । स्त्री गुलजार राइ सुत
ताके । देव दैत कोई तुलि न वाके ॥ ३ ॥ राजसुता ताको
लखि रूपा । मोहि रही मन माहि अनूपा । एक सहचरी
तहाँ पठाई । जिह तिह भाँति तहाँ लै आई ॥ ४ ॥ मिलत
कुअरि ता सौ पुखु पायो । भाँति भाँति मिलि भोग कमायो ।
चुंबन भाँति भाँति के लीए । भाँति अनिक के आसन कीए ॥ ५ ॥
तब लगि मात पिता तह आयो । निरखि सुता चित मै दुख
पायो । इह छल सौ इह दुहूँ सँघारो । छत्र जार के सिर पर
ढारो ॥ ६ ॥ दुहूँअन के फाँसी गरु डारी । पिता सहित
माता हनि डारी । फाँस कंठ ते लई निकारी । बोलि लोग
सभ ऐस उचारी ॥ ७ ॥ इन दुहूँ जोग साधना साधी । त्रिप
रानी जुत पवन अराधी । बारह बरिस बीत हैं जबही ।
जगिहैं छाडि तारियहि तबहीं ॥ ८ ॥ तब लगि तात दिया
मुहि राजा । राज साज का सकल समाजा । तब लगि
ताको राज कमैहो । जब जग हैं ताको तब दैहो ॥ ९ ॥
इह छल तात मात कह घाई । लोगन सौ इह भाँति जनाई ।

आगे-पीछे कभी भी नहीं हुई थी ॥ २ ॥ बानीराय वहाँ एक धनी था जिसके
समान चन्द्रमा भी सुन्दर नहीं था । उसका पुत्र गुलजारराय था जिसके समान
कोई देव या दैत्य भी नहीं था ॥ ३ ॥ राजकुमारी उसका रूप देखकर
मन में उस पर मोहित हो गई । उसने एक सेविका को वहाँ भेजा जो उसे
जैसे-तैसे वहाँ ले आई ॥ ४ ॥ कुँवरि उससे मिलकर अत्यंत सुखी हुई
और उसने भाँति-भाँति-प्रकार से उससे भोग-विलास किया । विभिन्न प्रकार
से चुंबन लिये और अनेकों प्रकार से आसन किए ॥ ५ ॥ तब तक उसके
माता-पिता वहाँ आ गए जिन्हें देखकर पुत्री दुखित हो उठी । उसने छत्र
से दोनों को मार डाला और अपने यार के सिर पर छत्र झुला दिया ॥ ६ ॥
दोनों के गले में फाँसी लगाकर माता-पिता दोनों को मार डाला । फिर
फाँसी उनके गले से निकाल ली और सब लोगों से कहने लगी ॥ ७ ॥ इन
दोनों ने योगसाधना की है और पवन की आराधना की है । जब बारह वर्ष
बीतेंगे तो ये समाधि से जगेंगे ॥ ८ ॥ तब तक के लिए पिता ने मुझे राज
दिया है और राजकाज करने को कहा है । मैं तब तक राज करूँगी और जब
जग जाएँगे तो राज इन्हें दे दूँगी ॥ ९ ॥ इस छल से माता-पिता को मारकर
लोगों से यह कह दिया । जब स्वयं राज्य में पक्की हो गई तो छत्र अपने मित्र

जब अपनो द्विढ़ राज पकायो । छत्र मित्र के सीस
फिरायो ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ तात मात इह भाँति हनि
दियो मित्र कौ राज । सकत न कोई पछानि करि चंचलान
के काज ॥ ११ ॥ १ ॥ (सू०ग्रं० १३४०)

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ पचासी चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३८५ ॥ ६९१८ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ छियासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बीरकेतु इक भूप भनिज्जै । बीरपुरी तिह
नगर कहिज्जै । स्त्री दिनदीपक दे तिह रानी । सुंदरि भवन
चतुरदस जानी ॥ १ ॥ राइ गुमानी तह इक छत्री । सूरबीर
बलवान धरत्री । इक सुंदर अर चतुरा सहाँ । जिह सम
उपजा कोई न कहाँ ॥ २ ॥ राज तरुनि जब ताहि निहार्यो ।
इहै चंचला चित्त बिचार्यो । कहो चरित्र कवन सो कीजै ।
जिह बिधि पिय सौ भोग करीजै ॥ ३ ॥ बीरमती इक सखी
सयानी । कानि लागि भाखयो तिह रानी । राइ गुमानी कौ

के सिर पर झुला दिया ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार माता-पिता को मारकर
मित्र को राजपाट दे दिया । स्त्रियों के कामों की कोई भी सही पहचान
नहीं कर सकता है ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ पचासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३८५ ॥ ६९१८ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ छियासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बीरकेतु नामक एक राजा था जिसकी नगरी बीरपुर
कही जाती थी । दिनदीपक देवी उसकी रानी थी जो चौदह भुवनों में
सुन्दर मानी जाती थी ॥ १ ॥ रायगुमान नामक वहाँ एक क्षत्रिय था जो
शूरवीर और बलवान तथा धैर्यवान था । वह अत्यंत सुन्दर और चतुर
था जिसके समान अन्य कोई पैदा नहीं हुआ था ॥ २ ॥ राजस्त्री ने जब
उसे देखा तो मन में यही विचार किया कि कौन-सा प्रपंच किया जाय
जिससे प्रिय से भोग-क्रीड़ा हो सके ॥ ३ ॥ बीरमती एक सयानी सखी
थी जिसे उस रानी ने कान में कहा कि तुम रायगुमानी को ले आओ और

लै आइ । जिह तिह बिधि मुहि देहु मिलाइ ॥ ४ ॥ सखी
 त्रिया सभ भाखि सुनाई । ज्यों रानी कहि ताहि सुनाई ।
 जिह तिह बिधि ताकह उरझाई । आनि कुअर कौ दयो
 मिलाई ॥ ५ ॥ भाँति भाँति तिह साथ बिहारी । भोग
 करत बीती निसु सारी । तब लगि आइ गयो तह राजा ।
 इह बिधि चरित चंचला साजा ॥ ६ ॥ तीछन खड़ग हाथ महि
 लयो । लै सित्तहि के सिर महि दयो । टूक टूक करि ताके
 अंगा । बचन कहा राजा के संग ॥ ७ ॥ चलो भूप इक
 चरित दिखाऊँ । गौस मरातिब तुमैं लखाऊँ । राइ चरित
 कछहूँ न बिचार्यो । अतक परा तिह मित्र निहार्यो ॥ ८ ॥
 ताकौ गौस कुतुब करि माना । भेद अभेद न मूढ़ पछाना ।
 तसत हाथ ताकौ न लगायो । पीर पछानि जार फिर
 आयो ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ प्रथम भोग तासौ किया बहुरो
 दिया सँघारि । मूढ़ भूप इह छल छला सका न भेद
 बिचार ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ छियासी चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३८६ ॥ ६९२८ ॥ अफजूं ॥

जैसे-तैसे मुझे उससे मिला दो ॥ ४ ॥ उस सखी ने सारी व्यथा वैसे
 कह सुनाई जैसी रानी ने सुनाई थी । वह उससे उलझी और उसने
 आकर उसे कुँवर से मिला दिया ॥ ५ ॥ उसने भाँति-भाँति प्रकार से
 उसके साथ विहार किया और इस प्रकार भोग करते सारी रात बीत गई ।
 तब तक वहाँ राजा आ गया और उस चंचल स्त्री ने यह प्रपंच
 किया ॥ ६ ॥ उसने एक तीक्ष्ण खड़ग हाथ में लिया और मित्र के सिर
 में दे मारा । उसके अंगों के टुकड़े-टुकड़े करके उसने राजा से कहा ॥ ७ ॥
 हे राजन् ! चलो एक चरित्र दिखाऊँ और गौस मरातब पीर दिखलाऊँ ।
 राजा ने प्रपंच को नहीं समझा और वहाँ मृत पड़े मित्र को देखा ॥ ८ ॥
 उसने उसे ही गौस मरातब समझा और भेद-अभेद कुछ नहीं समझा ।
 डरकर उसे हाथ नहीं लगाया और यार को पीर ही समझ लिया ॥ ९ ॥
 ॥ दोहरा ॥ पहले उससे भोग किया, फिर उसे मार दिया । उस मूर्ख को
 इस प्रकार छला और वह भेद न पहचान सका ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ छियासीवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३८६ ॥ ६९२८ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ सत्तासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ मारवार इक भूप भनिज्जै । चंद्रसेन तिह नाम कहिज्जै । स्त्री जगमोहन दे तिह नारि । घड़ी आपु जनु ब्रह्म सुनार ॥ १ ॥ चंद्रवती इह पुरी बिराजै । नाग लोक जाकौ लखि लाजै । होड परी इक दिन तिन सांह । बचन कहा त्रिय सौ नर नांह ॥ २ ॥ ऐसी कवन जगत मै नारी । कान न सुनी न नैन निहारी । पतिहि ढोल की ढमक सुनावै । बहुरि जार सौ भोग कभावै ॥ ३ ॥ केतक दिन बीतत (सू० प्र० १३४१) जब भए । त्रिय कौ बच सिमरन हवै गए । अस चरित्र करि पतिहि दिखाऊँ । भजौ जार अर ढोल बजाऊँ ॥ ४ ॥ तब ते इहै टेव तिन डारी । औरन त्रिय सौ प्रगट उचारी । मै धरि सीस पानि को साजा । भरि ल्यैहौ जल त्रिय के काजा ॥ ५ ॥ बचन सुनत राजा हरखानो । ताकौ अति पतिव्रता जानो । निजु सिर कै रानी घट ल्यावै । आनि पानि पुनि मुझे पिलावै ॥ ६ ॥ इक दिन त्रिय प्रिय सोत जगाई । लै घट कौ कर चली बनाई । जब

तीन सौ सत्तासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ मारवाड़ में एक राजा था जिसका नाम चन्द्रसेन था । जगमोहन देवी उसकी स्त्री थी जिसे मानों ब्रह्मा रूपी सुनार ने स्वयं गढ़ा था ॥ १ ॥ यह पुरी चन्द्रवती थी जिसे देखकर नागलोक भी लज्जित होता था । एक दिन उनमें आपस में बाजी लग गई और राजा ने रानी से कहा ॥ २ ॥ संसार में ऐसी कौन सी स्त्री है जिसे न तो देखा हो और न सुना हो । जो पति को ढोल की ढमक सुनाकर प्रसन्न करती हो और पुनः अपने प्रेमी के साथ भी रमण करती हो ॥ ३ ॥ कितने ही दिन जब बीत गये तब भी स्त्री को वे बातें याद नहीं । उसने सोचा कि पति को ऐसा प्रपंच दिखाऊँ कि ढोल भी बजाऊँ और यार के साथ रमण भी करूँ ॥ ४ ॥ तबसे उसने एक आदत बना ली और अन्य स्त्रियों से भी प्रकट में कहा कि मैं सिर पर पानी का बर्तन रखकर राजा के लिए जल भरकर ले आऊँगी ॥ ५ ॥ वचन सुनकर राजा हर्षित हो उठा और स्त्री को अत्यन्त पतिव्रता मानने लगा । रानी अपने सिर पर घड़ा लाती है और फिर आकर मुझे पानी पिलाती है ॥ ६ ॥ एक दिन स्त्री ने प्रिय को

तुम ढोल ढमक सुनि लीजो । तब इमि काज राज तुम
कीजो ॥ ७ ॥ प्रथम सुन्यो सभ ढोल बजायो । जनियहु
रानी ढोल धसायो । दुतिय ढमाक सुनो जब गाढा । जनियहु
तरुनि कूप ते काढा ॥ ८ ॥ लहिक लहौरीराइ भनिज्जे ।
जा संग त्रिय को हेतु कहिज्जै । लयो तिसी को तुरतु मँगाइ ।
भोग किया अति रुचि उपजाइ ॥ ९ ॥ प्रथम जार जब धका
लगायो । तब रानी ले ढोल बजायो । जब तिह लिंग सु भग
ते काढा । त्रिय दिय ढोलढमाका गाढा ॥ १० ॥ तब राजै
इह भाँति बिचारी । डोरि कूप ते नारि निकारी । तिन त्रिय
भोग जार सौ कीना । राजा सुनत दमामो दीना ॥ ११ ॥
प्रथम जार सौ भोग कसायो । बहुरो ढोल ढमाक सुनायो ।
भूप क्रिया कबहुँ न बिचारी । कहा चरित्र किया इम
नारी ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मन्त्री भूप संवादे तीन सौ सत्तासी चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३८७ ॥ ६९४० ॥ अफजू ॥

सोते से जगाया और घड़ा हाथ में लेकर चल पड़ी । हे राजन् ! जब तुम
ढोल की ढमक सुन लेना तो इस प्रकार करना ॥ ७ ॥ तुम जब पहले ढोल
की आवाज सुनो तो समझना कि रानी ने बर्तन जल में डाल दिया है ।
जब ढोल की दूसरी आवाज सुनना तो समझना कि तरुणी ने घड़ा कुएँ से
निकाल दिया है ॥ ८ ॥ वहाँ एक लाहौरीराय था जिसके साथ उस स्त्री
का प्रेम था । उसने उसे बुलाया और रुचिपूर्वक भोग किया ॥ ९ ॥ यार
ने जब प्रथम प्रहार किया तो रानी ने लेकर ढोल बजाया और जब उसने
लिंग को योनि में से निकाला तो स्त्री ने जोर से ढोल बजाया ॥ १० ॥
तब राजा ने सोचा कि रानी ने कुएँ में से रस्सी अब निकाल ली है । उस
स्त्री ने अपने यार के साथ भोग किया और राजा को सुनने के लिए नगाड़ा
भी बजा दिया ॥ ११ ॥ पहले तो यार के साथ रमण किया, फिर ढोल-
ढमकका भी सुना दिया । राजा ने इस क्रिया को तनिक भी नहीं समझा
कि इस स्त्री ने क्या प्रपंच किया है ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में तीन सौ सत्तासीवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३८७ ॥ ६९४० ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ अठासी चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सिंघ नरिंद्र भूप इक त्रिपवर । त्रिपवरवती
नगर जाको घर । स्त्री मद मोकल दे तिह नारी । बिधि सुनार
सांचे जनु ढारी ॥ १ ॥ देह कुरूप भूप कौ भारा । निजु
त्रिय साथ न राखत प्यारा । रैन दिवस जोगियन बुलावै ।
जोग साधना चहै कि आवै ॥ २ ॥ याते नारि अधिक रिसि
ठानी । सुनत जोगियन की असि बानी । ऐसा कछू उपाइ
बनाऊँ । भूपति सहित आजु इन घाऊँ ॥ ३ ॥ देऊँ आपनो
मित्रहि राजा । जोगी हनौ भूप जुत आजा । सकल प्रजहि इन
मारि दिखाऊँ । मित्र सीस पर छत्र फिराऊँ ॥ ४ ॥ जब राजा
निस कौ ग्रहि आयो । (मू०पं० १३४२) बहुरि जोगियन बोलि
पठायो । तिमि तिमि नारि फाँस गर डारि । भूप सहित सभ
दए सँघार ॥ ५ ॥ भूपति मारि खाट तर पायो । दुहूँ
अतीतन तरे डसायो । सिंघासन पर मित्रहि राखा । बोलि
प्रजा सभ सो इमि भाखा ॥ ६ ॥ जब राजा निसु कौ ग्रहि

तीन सौ अट्ठासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ नरेन्द्र सिंह एक श्रेष्ठ राजा था जिसका निवास
नृपवरवती नगर में था । मदमोकल देवी उसकी स्त्री थी जिसे विधाता
ने मानों साँचे में ढाला था ॥ १ ॥ राजा की भारी देह कुरूप थी और
वह अपनी स्त्री के साथ प्रेम नहीं रखता था । रात-दिन वह योगियों को
बुलाता और चाहता था कि उसे योग-साधना था जाय ॥ २ ॥ योगियों
की चर्चा सुनकर उस स्त्री ने अत्यधिक क्रोध किया और सोचा कि ऐसा
कुछ उपाय बनाया जाय जिससे राजा समेत इन सबको मार डाला
जाय ॥ ३ ॥ अपने मित्र को राज दे दूंगी और राजा समेत योगियों को
मार डालूंगी । इन्हें मारकर सारी प्रजा को दिखाऊंगी और मित्र के सिर
पर छत्र झुला दूंगी ॥ ४ ॥ राजा जब रात को घर आया तो उसने
योगियों को बुलवा भेजा । जैसे-जैसे वे आते गए वैसे-वैसे उस स्त्री ने
गले में फाँसी डालकर राजा समेत सबको मार डाला ॥ ५ ॥ राजा को
मारकर पलंग के नीचे डाल दिया और दोनों योगियों को भी नीचे काट
डाला । सिंहासन पर मित्र को बैठा दिया और सारी प्रजा से इस प्रकार
कहा ॥ ६ ॥ राजा जब रात में घर आया तो उसने दोनों योगियों को

आयो । दुहूँ जोगियन निकट बुलायो । अतभुत नाग तहाँ इक
निकसा । रावल हेरि तवन कौ बिगसा ॥ ७ ॥ साँपहि
मारि तबै तिन लियो । फरुआ बीच डारि करि दियो ।
घोटि भाँग जिमि दुहूँअन पीयो । अति असथूल देह कह
कीयो ॥ ८ ॥ ताते अधिक फूलि जब गए । कुंजर सो धारत
बपु भए । द्वै घटिका बीती तब फूटे । आवन जान जगत ते
छूटे ॥ ९ ॥ बरख बारहन के हवै गए । त्यागत देह पुरातन
भए । स्वरग लोग कह किया पयान । त्यागि आपुनी देह
पुरानि ॥ १० ॥ भूप निरखि चक्रित चित रहा । मुहि
सेती ऐसी बिधि कहा । हम तुम आव साँप दोऊ खाँहि ।
देह धरे सुरपुर को जाँहि ॥ ११ ॥ यौ कहिकै त्रिप साँप
चबायो । मैं डरते नहि ताहि हटायो । थोरा भख्यो उडा
नहि गयो । ताँते तन सुंदर इह भयो ॥ १२ ॥ देह पुरातन
त्यागन करी । औखध बल नौतन तन धरो । देह भूप की ठौर
जरावहु । याके सिर पर छत्र फिरावहु ॥ १३ ॥ इह छल साथ
जोगियन घायो । भूपति को सुरलोक पठायो । सकल प्रजा
को लोथि दिखाई । देस मित्र की फेरि दुहाई ॥ १४ ॥

पास बुलाया । वहाँ एक अद्भुत नाग निकल आया और साधु उसे देखकर
प्रसन्न हो उठे ॥ ७ ॥ उन्होंने साँप को मार डाला और एक बर्तन में
डाल लिया । उसे भाँग की तरह घोटकर पी गए और उनका शरीर
एकदम मोटा हो गया ॥ ८ ॥ उससे वे अत्यधिक फूल गए और हाथी
के समान शरीरवाले हो गए । दो घड़ी के बाद वे फट गए और आवागमन
के चक्र से छूट गए ॥ ९ ॥ अब वे बारह वर्ष के हो गए और उन्होंने
अपना पुराना शरीर त्याग दिया । अपने पुराने शरीर को त्यागकर वे
स्वर्गलोक में चले गए ॥ १० ॥ राजा देखकर हैरान रह गया और मुझसे
इस प्रकार कहने लगा । आओ हम-तुम दोनों साँप को खाएँ और सदेह
स्वर्ग चले जाएँ ॥ ११ ॥ यह कह राजा ने सर्प को चबाया और मैंने भय-
वश उसे मना नहीं किया । उसने थोड़ा खाया था इसलिए उससे उड़ा नहीं
गया परन्तु उसका तन सुन्दर हो गया ॥ १२ ॥ पुराना शरीर उसने
त्याग दिया और ओषधियों के बल पर नया शरीर धारण कर लिया ।
अब राजा के पुराने शरीर को जलाओ और इसके (नये शरीर के) सिर पर
छत्र झुलाओ ॥ १३ ॥ इस छल से योगियों को मार डाला और राजा
को भी स्वर्ग भेज दिया । अपने मित्र का देश भर में प्रचार कर सारी

भेव प्रजा किन्हूँ न पछाना । किह बिधि हना हमारा राना ।
 किह छल सो जुगियन को घायो । मित्र सीस पर छत्र
 फिरायो ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ गरबीराइ सु मित्र को दिया
 आपना राज । जोगन जुत राजा हना किया आपना
 काज ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ अठासी चरित्र
 समाप्तम् सत् सुभम् सत् ॥ ३८८ ॥ ६६५६ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ तिनानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ भूप सुबाहु सेन इक सुना । रूपवान
 सुंदरि बहु गुना । स्त्री सुबाहुपुर ताको सोहै । जिह सप्त और
 नगर नहि को है ॥ १ ॥ स्त्री मकरधुज दे तिह रानी ।
 सुंदरि देस देस मौ जानी । तिह समान (सू० प्र० १३४३) नारी
 नहि कोऊ । पाछे भई न आगे होऊ ॥ २ ॥ तिन देखा
 दिल्ली को ऐसा । इह बिधि ते लिखि पढ्यो सँदेसा । तुम
 इह ठौर आपु चढ़ि आवहु । भूपति जीति मुझ लै जावहु ॥ ३ ॥

प्रजा को राजा की लाश दिखाई ॥ १४ ॥ प्रजा ने कुछ भी रहस्य न
 समझा कि हमारा राजा कैसे मार डाला गया है, कैसे योगियों को मार
 डाला गया है और कैसे मित्र के सिर पर छत्र धारण करवाया गया
 है ॥ १५ ॥ ॥ दोहरा ॥ उस गरबीराय नामक मित्र को अपना राज
 दे दिया और योगियों समेत राजा को मारकर अपना काम कर
 लिया ॥ १६ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ अठ्ठासीवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३८८ ॥ ६६५६ ॥ अफजू ॥

तीन सौ नवासीवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सुबाहुसेन एक गुणज्ञ और सुन्दर राजा सुना जाता
 था । उसका नगर सुबाहुपुर था जिसके समान अन्य कोई नगर नहीं
 था ॥ १ ॥ उसकी रानी मकरध्वजदेवी देश-देशान्तरों में सुन्दर मानी जाती
 थी । उसके समान स्त्री न तो पहले कभी हुई थी और न आगे कभी होगी ॥ २ ॥
 उसने दिल्ली के राजा को देखा और उसे लिखकर संदेश भिजवा दिया
 कि तुम इस स्थान पर स्वयं चढ़ाई करो और मुझे जीतकर ले जाओ ॥ ३ ॥

अकबर सुनत बैन उठि धयो । पवन हुते आगे बढि गयो ।
 शाह सुना आयो त्रिपु जब ही । पति सौ बचन बखाना तब
 ही ॥ ४ ॥ तुम ह्याँ ते त्रिप भाजि न जैयहु । रन सामुहि
 हवै जुद्ध सचैयहु । मै न तजौगी तुमरा साथ । मरे जराँगो
 तुम सौ नाथा ॥ ५ ॥ इत भूपति कह धीर बँधायो । उतै
 लिखा लिखि तहा पठायो । आई सैन शाह की जब ही । रहा
 उपाइ कछू नहि तब ही ॥ ६ ॥ राजा जूझि सरत भयो जबै ।
 भाज चलत भी परजा तबै । रानी बाँधि तबै तिन लई । इह
 छल धाम मिल के गई ॥ ७ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ निनानवों चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३८६ ॥ ६६६३ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ नवे चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बाहुलीक सुनियत राजा जह । जिह
 समान कोई भयो दुतिय नह । धाम गौहरा राइ दुलारी ।
 जिह समान नहि देव कुमारी ॥ १ ॥ तह इक हुता शाह का
 बेटा । जिह समान को भयो न भेटा । एक सुवर अरु सुंदर

अकबर यह सुनकर उठा और पवनवेग से आगे बढ़ चला । जब उस धनी
 राजा पर राजा को चढ़ आते सुना तो स्त्री ने पति से कहा ॥ ४ ॥ हे राजन् !
 तुम यहाँ से भाग कर मत जाना और सामने हो युद्ध करना । मैं तुम्हारा साथ
 नहीं छोड़ूँगी और हे नाथ ! तुम्हारे साथ ही जल मरूँगी ॥ ५ ॥ इधर
 राजा को धैर्य बँधाय़ा और उधर उसे लिखकर संदेशा भिजवा दिया ।
 जब बादशाह की सेना आ गई तो कोई उपाय बाकी न बचा ॥ ६ ॥ राजा
 जब जूझकर मर गया तो प्रजा तत्काल भाग खड़ी हुई । उसने रानी को
 बाँध लिया और इस प्रकार वह अपने मित्र के घर जा पहुँची ॥ ७ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ नवासीवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३८६ ॥ ६६६३ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ नब्बेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बाहुलीक नामक राजा के समान अन्य कोई सुनाई
 नहीं पड़ता था । उसके घर में गौहरराय राजदुलारी थी जिसके समान
 अन्य देवकुमारी भी कोई नहीं थी ॥ १ ॥ वहाँ एक धनी का पुत्र था जिसके

घनो । जनु अवतार मदन को बनो ॥ २ ॥ भूप सुता तिह
 निरखि लुभाई । गिरी भूमि जनु नाग चबाई । सखी एक तिह
 तीर पठाई । गाजि राइ कह लिया बुलाई ॥ ३ ॥ जब
 तिह लखा सजन घर आयो । कंठ गौहराँ राइ लगायो । बहु
 बिधि करे तवन सौँ भोगा । दूरि करा जिय का सभ
 सोगा ॥ ४ ॥ भोग करत भायो अति प्यारो । छिन न करत
 आपन ते न्यारो । भाँति भाँति की कैफ पिलावै । सुभ्र सेज
 चढ़ि भोग कमावै ॥ ५ ॥ तब तह तात तवन का आयो ।
 तसत देग सहि ताँहि छपायो । रौजन मूँदि हौज सहि धरा ।
 एक बूँद जल बीच न परा ॥ ६ ॥ पितहि ताल ततकाल
 दिखायो । बीच बेरीयन डारि फिरायो । दीए जराइ बीच
 तिह डारे । जनु करि चढ़े रैन के तारे ॥ ७ ॥ पितहि
 अचंभव ऐस दिखायो । समाधान करि धाम पठायो ।
 मितहि काढ सेज पर लीना । काम भोग (सू० प्र० १३४४)
 बहु बिधि तन कीना ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित पद्याने त्रिया चरित मंत्री भूप संवादे तीन सौ नवे चरित
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३६० ॥ ६६७१ ॥ अफजू ॥

समान कोई अन्य कभी नहीं मिला था । वह सुन्दर और चतुर मानों
 कामदेव का अवतार था ॥ २ ॥ राजकुमारी उसे देखकर मोहित हो धरती
 पर ऐसे गिर पड़ी मानों उसे साँप ने काट खाया हो । उसने एक सखी को
 पास बुलाया और गाजीराय को पास बुला लिया ॥ ३ ॥ जब उसने देखा कि
 सजन घर आ गया है तो गौहरराय ने उसे गले से लगा लिया । विविध
 प्रकार से उससे भोग करके उसने मन का सभी शोक दूर कर दिया ॥ ४ ॥
 रमण करते वह प्रिय उसे भा गया और अब वह क्षण भर के लिए भी उसे
 दूर नहीं करती थी । उसे भाँति-भाँति की शराब पिलाती थी और श्वेत
 शय्या पर चढ़कर उससे भोग करती थी ॥ ५ ॥ तब वहाँ उसका पिता
 आ गया तो उसने भयभीत हो उस (प्रेमी को) देग में छिपा दिया । उसका
 मुँह बंद कर उसे हौज में रख दिया और उसमें एक भी बूँद पानी न
 जाने दिया ॥ ६ ॥ फिर पिता को वह ताल (हौज) दिखा दिया और उस
 देग को उसी में घुमाती रही । उसके बीच (ऊपर) दीपक जला दिए मानों
 रात में तारे निकल आए हों ॥ ७ ॥ पिता को यह अद्भुत दृश्य दिखाकर

उसका समाधान कर उसे घर भेज दिया । फिर मित्र को निकालकर शय्या पर ले लिया और उससे विभिन्न प्रकार से कामोपभोग किया ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ नब्बेवें चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६० ॥ ६६७१ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ इक्यानवे चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ बरबरीन को देस बसत जह । बरबर पुर इक नगर हुतो तह । अफकन शेर तहाँ का राजा । जिह समान बिधि दुतिय न साजा ॥ १ ॥ पीर मुहंमद तह इक काजी । देह कुरूप नाथ जिह साजी । धाम खातिमाबानो नारी । जिह समान नहि राजदुलारी ॥ २ ॥ ॥ सोरठा ॥ सुंदर ताकी नारि अति कुरूप काजी रहै । तब तिन किया बिचारि किह बिधि बध याकौ करो ॥ ३ ॥

॥ चौपई ॥ शाह पुत्र तिह पुर इक आयो । बाँके राइ सरूप सवायो । काजी की इस्त्री तिह लहा । बरौ इमी कह चित यौ कहा ॥ ४ ॥ मुसलमान बहु धाम बुलावत । भाँति भाँति तन दरब लुटावत । यौ कहि सभहूँ सीस झुकावै । यह काजी सुंदर हवै जावै ॥ ५ ॥ एक दिवस उपपतिहि बुलाई । कान लागि सभ बात सिखाई । बीच छपाइ सदन के राखा ।

तीन सौ इक्यानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ बर्बश देश में बर्बरपुर एक नगर था । अफकन शेर वहाँ का राजा था, जिसके समान विधाता ने अन्य कोई राजा नहीं बनाया था ॥ १ ॥ वहाँ पीर मुहम्मद एक क्राजी था जिसकी देह विधाता ने बहुत कुरूप बनाई थी । घर में खातिमाबानो स्त्री थी जिसके समान कोई राजकुमारी भी नहीं थी ॥ २ ॥ ॥ सोरठा ॥ क्राजी कुरूप था और उसकी स्त्री सुन्दर थी । उस स्त्री ने सोचा कि कैसे इसका वध किया जाय ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ वहाँ एक धनिक-पुत्र आया जो रूपवान था । क्राजी की स्त्री ने मन में सोचा कि इसी का वरण किया जाय ॥ ४ ॥ वह अनेकों मुसलमानों को घर बुलाती थी और विभिन्न प्रकार से उन पर द्रव्य लुटाती थी । वह सबके सामने सिर झुकाती थी कि किसी प्रकार क्राजी सुन्दर हो जाय ॥ ५ ॥ एक दिन उसने अपने प्रेमी को बुलाया और

और नारि सौ भेव न भाखा ॥ ६ ॥ सभ मलेछ उठि फजिर
 बुलाए । भाँति भाँति के साथ जिवाए । कह्यो सभ मिलि
 देहु दुआइ । मम पति सुंदरि करै खुदाइ ॥ ७ ॥ सभह हाथ
 तसबियै लीनी । बहु बिधि दुआइ तवन कह दीनी । भाँति
 भाँति तन करी सुनाइ । तव पति सुंदर करै खुदाइ ॥ ८ ॥
 लै दुआइ लिय धाम सिधाई । सारि काजियहि दियो दबाई ।
 करि काजी लैगी तिह तहाँ । पढ़त किताब मुलाने जहाँ ॥ ९ ॥
 प्रजा निरखि ताकह हरखानी । साचु किताब आपनी जानी ।
 हम जो याकह दई दुआइ । याते सुंदर करा खुदाइ ॥ १० ॥
 इह बिधि प्रथम काजियहि घाई । बरत भई अपना सुखदाई ।
 भेद अभेद न किनूँ बिचारा । इह छल बरा अपना
 प्यारा ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ तुम सभ ही अति क्रिपा करि
 दीनी हमें दुआइ । ताते पति सुंदर भयो कीनी मया
 खुदाइ ॥ १२ ॥ १ ॥ (सु० प्र० १३४५)

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ इक्यानवे चरित्र
 समापतम सत् सुभम सत् ॥ ३६१ ॥ ६६८३ ॥ अफजूं ॥

कान में उसे सब बातें सिखा दीं । उसे घर में छिपा लिया तथा अन्य किसी
 स्त्री से रहस्य नहीं बताया ॥ ६ ॥ सब मलेच्छों को उसने प्रातः बुलाया
 और विभिन्न प्रकार से उनको भोजन कराया । सबसे कहा कि सब मिलकर
 खुदा से दुआ करो कि मेरा पति सुन्दर हो जाय ॥ ७ ॥ सबने हाथ में माला
 पकड़ी और विभिन्न प्रकार से उसको दुआएँ दीं । भाँति-भाँति प्रकार से
 कहा कि खुदा तुम्हारे पति को सुन्दर कर दे ॥ ८ ॥ दुआ लेकर औरत
 घर में गई और क्राजी को मारकर उसने दबा दिया । अपने प्रेमी को क्राजी
 बनाकर वहाँ ले गई जहाँ मौलाना लोग किताबें पढ़ रहे थे ॥ ९ ॥ प्रजा
 यह सब देख प्रसन्न हो उठी और उन्होंने अपनी पुस्तक को सच्चा मान
 लिया । हम लोगों ने जो इसे दुआ दी है उससे खुदा ने इसे सुन्दर बना
 दिया है ॥ १० ॥ इस प्रकार पहले क्राजी को मारकर उसने सुखपूर्वक
 (प्रेमी का) वरण कर लिया । भेद-अभेद का किसी ने विचार नहीं किया
 और इस प्रकार छल से अपना प्रिय प्राप्त कर लिया ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ तुम
 सबने कृपा कर मुझे दुआ दी जिससे खुदा ने मेहरबानी करके मेरे पति को
 सुन्दर बना दिया है ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ इक्यानबेवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६१ ॥ ६६८३ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ बानवें चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ भूप सु धरमसैन इक सुनियत । जिह समान जग दुतिय न गुनियत । चंदन दे तिह नारि भनिज्जै । जिह मुख छवि निसकर कह दिज्जै ॥ १ ॥ संदल दे दुहिता तिह सोहै । खग म्रिग जच्छ भुजंगन मोहै । अधिक प्रभा तन मो तिन धरी । मदन सुनार भरत जनु भरी ॥ २ ॥ त्रिप सुत एक सुघर तिन हेर्यो । मदन आनि ताका तन घेर्यो । सखी एक तह दई पठाई । अनिक जतन करिके तिह ल्याई ॥ ३ ॥ आनि सजन तिन दयो मिलाई । रमी कुअरि तासौ लपटाई । अटक गयो जिय तजा न जाई । इह बिधि तिन कीनी चतुराई ॥ ४ ॥ तोप बडी इक लई मँगाइ । जिह महि बैठि मनुच्छ ते जाइ । मंत्र सकति करि तासों बरी । मित्र भए इह भाँति उचरी ॥ ५ ॥ मित्र बिदा करि सखी बुलाई । इह बिधि ताहि कहा समुझाई । तोप बिखै मुहि डारि चलैयहु । इह त्रिप सुत के ग्रहि पहुचैयहु ॥ ६ ॥ जब

तीन सौ बानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सुधर्मसेन नामक एक राजा था जिसके समान संसार में अन्य कोई नहीं था । चंदनदेवी उसकी स्त्री थी जिसकी छवि देखकर उसे चन्द्रमा ही कह दिया जाता था ॥ १ ॥ संदलदेवी उसकी पुत्री थी जो पक्षी, मृग, यक्ष, भुजंग आदि सबका मन मोहित करती थी । उसकी अत्यन्त प्रभा ऐसी लगती थी जैसे मानों कामदेव रूपी सुनार ने उसे बनाया हो ॥ २ ॥ उसने राजा के एक सुन्दर पुत्र को देखा और उसे कामदेव ने आकर घेर लिया । उसने एक सखी को भेजा जो उसे यत्नपूर्वक वहाँ ले आई ॥ ३ ॥ उसे सजन लाकर मिला दिया और वह कुँवरि उससे लिपटकर रमण करने लगी । उसका मन उसी में लीन हो गया और अब वह उससे छोड़ा नहीं जाता था । उसने एक चतुरता की ॥ ४ ॥ उसने एक बड़ी तोप मँगाई जिसमें मनुष्य बैठ सकता था । वह यंत्र शक्ति से उसमें घुस गई और अपने मित्रों से यह कहा ॥ ५ ॥ मित्र को बिदा कर सखी को बुलाया और उसे इस प्रकार समझाकर कहा कि तोप में मुझे डालकर चलाओ और राज-पुत्र के घर पर पहुँचा दो ॥ ६ ॥ जब सखी ने यह सुना

सहचरि ऐसे सुनि लई । दारू डारि आगि तिह दई । गोरा
जिमि लै कुअरि चलायो । मंत्र सकति जम निकट न
आयो ॥ ७ ॥ जाइ परी निजु प्रीतम के घर । पाहन जैस
हना गोफन करि । निरखि मीत तिह लिया उठाई । पोछि
अंगि उर साथ लगाई ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ मीत अधिक
उपमा करी धन्य कुअरि का नेह । गोला हवै तोपहि उडी
चिंता करी न देहि ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ इतै कुअरि मितवा
के गई । उतै सखिन भूपहि सुधि दई । दारू डारि अनल
हम दई । तोप बिखै तरुनी उडि गई ॥ १० ॥ रानी भूपत
सहित पुकारी । कवन दैव गति करी हमारी । खेलत आगि
कुअरि इन दई । तोप बिखै ताते उडि गई ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पद्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ बानवें चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६२ ॥ ६६८४ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ तिरानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अछलापुर इक भूप भनिज्जै । अछलसेन
तिह नाम कहिज्जै । तहिक सुधरमी राइ शाह भनि । जानुक

तो उसमें बारूद डालकर उसे आग लगा दी । गोला के समान उसे चला
दिया और मंत्रशक्ति के कारण मौत उसके पास न आ सकी ॥ ७ ॥ वह
अपने प्रियतम के घर ऐसे जा पड़ी जैसे गुलेल से पत्थर मारा गया हो ।
मित्र ने उसे देखकर उठा लिया और उसके शरीर को पोंछकर छाती से
लगा लिया ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ मित्र ने अत्यधिक प्रशंसा की और कुँवरि के
स्नेह को धन्य कहा । वह गोला बनकर उड़ गई पर उसने अपने शरीर
की तनिक चिंता न की ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ इधर कुँवरि मित्र के पास गई
और उधर सखी ने राजा को जाकर खबर कर दी । बारूद डालकर आग
में लगाई और तरुणी तोप में उड़ गई ॥ १० ॥ रानी ने राजा से कहा
कि ईश्वर ने यह हमारी क्या गति कर दी है । खेल-खेल में इसने तोप को
आग लगा दी और इसीलिए यह तोप में उड़ गई ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ बानवें
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६२ ॥ ६६८४ ॥ अफजू ॥

तीन सौ तिरानवेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ अछलापुर में एक राजा था जिसका नाम अछलसेन

सभ शाहन की थो मनि ॥ १ ॥ चंपा दे तिह शाह भनिज्जै ।
 रूपवान गुनवान कहिज्जै । तिन राजा को पुत्र निहार्यो ।
 सुछबिराइ जिह नाम बिचार्यो ॥ २ ॥ (सू०पं० १३४६)
 ॥ अड़िल्ल ॥ हितू जानि इक सहचरि लई बुलाइकै । सुछबि
 राइ के दीनो ताहि पठाइकै । कहा क्रोरि करि जतन तिसै
 ह्यां ल्याइयो । हो जितक चहौगी दरबु तितक ले
 जाइयो ॥ ३ ॥ सुनत सहचरी बचन सजन के ग्रहि गई ।
 जिमि तिसि ताहि प्रबोध तहाँ ल्यावत भई । मिलत छैलनी
 छैल अधिक सुख पाइयो । हो भाँति भाँति को कैफन निकट
 मँगाइयो ॥ ४ ॥ किया कैफ कौ पान सु दुहँ प्रजंक पर ।
 भाँति भाँति तन रमे बिहसि करि नारि नर । कोकशास्त्र ते
 मत कौ बिहसि उचारिकै । हो आपु बीच कंधन पर हाथन
 डारिकै ॥ ५ ॥ अधिक जोर तन दोऊ तहाँ क्रीड़ा करें । मन
 मै भए अनंद न काहूँ ते डरें । लपटि लपटि कर जाँहि सु
 छिनिक न छोरही । हो सकल द्रप कंद्रप को तहाँ
 मरोरही ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ भोग करत तरुनी सुख पायो ।
 करत केल रजनियहि बितायो । पहिली राति बीत जब गई ।

था । वहाँ सुधमीराय नामक एक धनिक था जो सब धनिकों में मणि
 के समान था ॥ १ ॥ चंपादेवी उस धनी की (स्त्री) कही जाती थी
 जो रूपवान और गुणवान थी । उसने राजा का पुत्र देखा जिसका नाम
 सुछविराय था ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उसने एक हितैषिणी दासी को बुलाया
 और सुछविराय के पास भेज दिया । उससे कहा कि अनेकों यत्न करके
 भी उसे यहाँ ले आओ, तुम्हें जितने भी द्रव्य की इच्छा हो ले जाना ॥ ३ ॥
 बात सुनकर वह दासी सजन के घर गई और जैसे-तैसे उसे मनाकर वहाँ
 ले आई । सुन्दर और सुन्दरी ने मिलकर अपार सुख प्राप्त किया और
 उन्होंने विभिन्न प्रकार की मदिराएँ मँगा ली ॥ ४ ॥ दोनों ने पलंग
 पर मदिरा-पान किया और वे दोनों स्त्री-पुरुष विभिन्न प्रकार से प्रसन्न हो
 रमण करने लगे । एक-दूसरे के कंधों पर हाथ डालकर वे कोकशास्त्र के
 मतों का उच्चारण करने लगे ॥ ५ ॥ दोनों के शरीर में अत्यधिक बल
 था और निर्भय होकर आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करने लगे । वे लिपट रहे थे
 और क्षण भर के लिए भी एक-दूसरे को नहीं छोड़ रहे थे तथा कामदेव का
 मद चूर कर रहे थे ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ रमण-क्रीड़ा करते हुए स्त्री ने
 अपार सुख प्राप्त किया और इस प्रकार केलि-क्रीड़ा में सारी रात बिता

पाछिल रेंति रहत सुधि लई ॥ ७ ॥ कहा कुअरि उठि राज
 कुअरि संग । कबहूँ छाड हमारा तैं जंग । जो कोई पुरख हमें
 लहि जैहै । जाइ राव तन भेद बतहै ॥ ८ ॥ शाहु सुता
 इह भाँति उचारा । बँन सुनो सभ राजकुमारा । सभन
 लखत तुहि कैफ पिलाऊँ । तब शाह की सुता कहाऊँ ॥ ९ ॥
 तह हौं रसो तिहारे संग । अपने जोरि अंग सौ अंगा । हमें
 तुमै सभ लोग निहारें । भलो बुरो नहि भेद बिचारें ॥ १० ॥
 यौ कहि कुअरि बिदा करि दीना । प्रात भेस नर को धरि
 लीना । किअस कुअर के धाम पयाना । भेद अभेद न
 किनी पछाना ॥ ११ ॥ चाकर राखि कुअरि तिह लियो ।
 बीच मुसाहिब को तिह कियो । खान पान सभ सोई पिलावै ।
 नर नारी कोई जानि न जावै ॥ १२ ॥ इक दिन पिय लै गई
 शिकारा । बीच सुराही के मद डारा । जल के साथ भिगाइ
 डछारा । चोवत जात जवन ते बारा ॥ १३ ॥ सभ कोई
 लखै तवन कह पानी । कोई न समुझि सकै मद ग्यानी ।
 जब कानन के गए मँझारा । राजकुअर सौ बाल उचारा ॥ १४ ॥

दी । जब रात्रि का पहला भाग बीत गया और आखिरी भाग आया तो
 उनको होश आया ॥ ७ ॥ कुँवर ने उठकर राजकुँवरि से कहा कि अब
 तुम हमारा साथ छोड़ो । यदि कोई व्यक्ति हमें देख लेगा तो जाकर
 राजा से भेद बता देगा ॥ ८ ॥ धनिक की पुत्री ने कहा कि हे राजकुमार!
 तुम मेरी बात सुनो । मैं सबके देखते-देखते तुम्हें मदिरा पिलाऊँगी तभी
 धनिक की पुत्री कहलाने की हकदार बनूँगी ॥ ९ ॥ तब ही मैं तुम्हारे
 अंगों से अंग जोड़कर तुम्हारे साथ रमण करूँगी । हमें-तुम्हें सब देखेंगे पर
 भले-बुरे का विचार नहीं करेंगे ॥ १० ॥ यह कहकर उसने कुँवर को विदा
 कर दिया और स्वयं पुरुष का वेश धारण कर लिया । उसने कुँवर के
 घर प्रस्थान किया और भेद-अभेद को कोई न पहचान सका ॥ ११ ॥
 उसे कुँवर ने नौकर रखकर अपने मुसाहबों में स्थान दे दिया । वही अब
 खाना-पीना देने लगा और अन्य स्त्री-पुरुष कोई भी वहाँ नहीं जा पाता
 था ॥ १२ ॥ एक दिन सुराही में शराब भरकर वह प्रिय को शिकार
 के लिए ले गई । जल के साथ उसने मदिरा को उछाला और पानी उस
 सुराही से गिरता हुआ जान पड़ा ॥ १३ ॥ सब कोई उसे पानी मान
 रहा था और कोई भी चतुर यह न समझ सका कि वह मदिरा है । जब
 वे जंगल के बीच में गए तो बालिका ने राजकुमार से कहा ॥ १४ ॥

तुम को लगी त्रिखा अभिमानी । सीतल लेहु पियहु इह पानी ।
 भरि प्याला लै ताहि पयारा । सभहिन करि जल ताहि
 बिचारा ॥ १५ ॥ (सू० ग्रं० १३४७) पुनि त्रिय लिया कबाब हाथि
 करि । कह्यो कि खाहु राजसुत बनफर । तुमरे निमिति
 तोरि इन आना । भच्छन करहु स्वाद अब नाना ॥ १६ ॥
 जब मध्यान समो भयो जान्यो । सभ लोगन इह भाँति
 बखान्यो । तुम सभ चलो भूप के साथ । हम सेवा करिहै
 जगनाथा ॥ १७ ॥ सभ जन पठै भूप के साथ । दोई रहे नारि
 अरु नाथा । परदा ऐँचि दसौ दिसि लिया । काम भोग हसि
 हसि रसि किया ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह चरित दोई बिहसि
 रमत भए नर नारि । प्रजा सहित राजा छला सका न भूप
 बिचारि ॥ १९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित पख्याने त्रिया चरित मंत्री भूप संवादे तीन सौ तिरानवो चरित
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३९३ ॥ ७०१३ ॥ अफजू ॥

तुमको मानिनी प्यास लगी है अतः यह शीतल जल पियो । उस प्रिय को
 प्याला भरकर दिया जिसे सबने जल ही समझा ॥ १५ ॥ फिर उस स्त्री
 ने कबाब हाथ में लिया और कहा कि हे राजकुमार ! यह वनफल
 खाओ । यह तुम्हारे लिए ही तोड़कर लाया गया है और अब तुम इसका
 स्वादपूर्वक भक्षण करो ॥ १६ ॥ जब मदिरापान का समय हो गया तो
 उसने सब लोगों से इस प्रकार कहा कि तुम सब राजा के साथ चलो हम
 तो परमात्मा की पूजा करेंगे ॥ १७ ॥ सब लोगों को राजा के साथ भेज
 दिया और अब ये दोनों नर-नारी ही बचे । अब उन्होंने दसों दिशाओं
 से पर्दा खींच लिया और हँस-हँसकर काम-क्रीड़ा की ॥ १८ ॥
 ॥ दोहा ॥ इस प्रपंच द्वारा प्रसन्न हो दोनों नर-नारी रमण करते रहे और
 प्रजा-समेत राजा को उन्होंने छल लिया ॥ १९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरितोपाख्यान के त्रिया-चरित के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ तिरानवें
 चरित की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३९३ ॥ ७०१३ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ चुरानवे चरित्र कथन ॥

॥ चौपई ॥ देखछत इक भूप बखनियत । स्त्री सुर राजवती पुर जनियत । तिहु संग चढ़त अमिति चतुरंगा । उमडि चलत जिह बिधि करि गंगा ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ स्त्री अलकेसमती तिह सुता बखानियै । परी पदुमनी प्रात कि प्रकित प्रमानियै । कै निसुपति सुर जाइ कि दिनकर जूझई । हो जिह सम हवै नारि न पाछै है भई ॥ २ ॥ तह इक राइ सजुलफ सु छती जानियै । रूपवान गुनवान सुघर पहिचानियै । जिह बिलोकि कंदर्प द्रव्य कह खोइ है । हो जिह सम सुंदर भयो न आगो होइ है ॥ ३ ॥ राजसुता इक दिन तिह रूप निहारिकै । रही सगन हवै मन महि क्रिया बिचारिकै । अब कस करौ उपाइ जु याही कह बरौ । हो बिनु साजन के मिले अगनि भीतर जरौ ॥ ४ ॥ हितू सहचरी समझिक लई बुलाइकै । कहि तिह भेद कुअर तन दई पठाइकै । जु मैं तुमैं कछु कहियो सु मीतहि आखियो । हो चित महि रखियहु भेद न काहू भाखियो ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ सखी कुअर पहि दई पठाई । जिह तिह भाँति

तीन सौ चौरानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ देवछत्र नामक एक राजा था जो सुरराजवती नगर में रहता था । उसके साथ अपरिमित चतुरंगिणी सेना गंगा के समान उमड़कर चलती थी ॥ १ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ उसकी पुत्री अलिकेशमती थी उसे परी, पद्मिनी अथवा साक्षात् प्रकृति कहा जा सकता था । वह चन्द्र, सूर्य अथवा कोई देवकन्या थी । उसके समान न कोई स्त्री हुई है न होगी ॥ २ ॥ वहाँ एक राजा सजुलफ नामक क्षत्रिय था जो रूपवान, गुणवान और सुघड़ था । उसे देखकर कामदेव का भी अभिमान चूर होता था । उसके समान भी न कोई सुन्दर हुआ और न ही होगा ॥ ३ ॥ राजकुमारी एक दिन उसका रूप देखकर मन में मोहित हो मग्न हो गई । अब मैं ऐसा उपाय करूँगी कि इसी का वरण करूँगी और सजन से न मिल सकने पर आग में जल मरूँगी ॥ ४ ॥ एक हितैषिणी सखी को उसने बुलाया और उसे रहस्य समझाकर कुँवर के पास भेज दिया । जो मैंने तुमसे कहा है वही मित्र से कहना । अपने चित्त में कोई भी भेद छिपा न रखना ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ सखी को कुँवर के पास भेज दिया और

प्रबोधि लयाई । राज सुतहि तिन आन मिलायो । साजन
मिलत सजनि सुख पायो ॥ ६ ॥ भाँति भाँति सेती किय
भोगा । मिट गयो सकल दुहन को सोगा । भाँति भाँति तन
करै बिलासा । निज पति को तजि करि कै लासा ॥ ७ ॥
चतुर चतुरिया दोई कलोलहि । मिलि मिलि बँन मधुर धुन
बोलहि । भाँति अनिक की (सू० ग्रं० १३४८) कैफ मँगावै ।
एक पलंग पर बैठि चड़ावै ॥ ८ ॥ आसन भाँति भाँति के
लेहीं । आलिगन चुंबन दोइ देही । रसि रसि कसि नर केल
कमाइ । लपटि लपटि तरुनी तर जाइ ॥ ९ ॥ दोइ तरुन
बिजिया दुहँ खाई । चारि टाँक अहिफेन चड़ाई । रसि
रसि करि कसि कसि रति कियो । चोरि चंचला को चित
लियो ॥ १० ॥ रसिगे दोऊ न छोरा जाइ । कही बात इह
घात बनाइ । एक मंत्र हय ते पिय लीजै । जल के बिछै
पियाना कीजै ॥ ११ ॥ जब लगु मंत्रुचार तैं कर हैं । तब
लगि तैं जल बीच न मरहैं । तुमरे जल ऐहै न नेरे । चारि
ओर रहिहै तुहि घेरे ॥ १२ ॥ मंत्र मित्र ताते तब लियो ।

वह जैसे-तैसे उसे समझाकर ले आई । राजकुमार को उससे मिला दिया
और साजन से मिलकर सजनी को सुख प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ विभिन्न
प्रकार से भोग किया और दोनों के समस्त दुःख मिट गए । वह अपने
पति का भय भी न मानकर भाँति-भाँति से क्रीड़ा करने लगी ॥ ७ ॥ वे
चतुर स्त्री-पुरुष दोनों किल्लोल करने लगे और मिलकर मधुर ध्वनियों का
उच्चारण करने लगे । विभिन्न प्रकार मदिराएँ मँगाने लगे और एक ही
पलंग पर बैठकर पीने लगे ॥ ८ ॥ विभिन्न प्रकार के आसन लेने लगे
और दोनों आलिगन-चुंबन लेने-देने लगे । वह पुरुष रसिकतापूर्वक केलि-
क्रीड़ा करने लगा और लिपट-लिपटकर तरुणी के पास जाने लगा ॥ ९ ॥
दोनों तरुणों ने भाँग खाई और चार टाँक (एक प्रकार की तौल-इकाई)
सर्प-फेन चढ़ा गए । इस प्रकार रसपूर्वक कस-कसकर रति-क्रीड़ा की
और उस स्त्री का चित्त चुरा लिया ॥ १० ॥ दोनों इतने अनुरक्त हो
गए कि अब एक-दूसरे को छोड़े नहीं बनता था । तब स्त्री ने अवसर
देखकर एक बात कही । हे प्रिय ! मुझसे एक मंत्र लो और जल में
प्रस्थान कर जाओ ॥ ११ ॥ जब तक तुम मंत्रोच्चारण करोगे, तब तक
जल के मध्य तुम नहीं मरोगे । और जल तुम्हारे पास नहीं आयेगा बल्कि
तुम्हें चारों ओर से घेरे रहेगा ॥ १२ ॥ तब मित्र ने मंत्र लिया और

गंगा बीच पयाना कियो । जल चहूँ ओर तवन के रहा ।
 आनि पान ताके नहि गहा ॥ १३ ॥ इह छल जल सहि मीत
 पठायो । मात पिता तन बचन सुनायो । हो पित प्रात
 सुयंबर करिहौ । परम पवित्र पुरख कोई बरिहौ ॥ १४ ॥
 कहे चलो तुम तात हमारे । मथहु जानवी होत सवारे । तह
 ते जु नर निकसि है कोई । भरता होइ हमारो सोई ॥ १५ ॥
 बचन सुनत राजा हरखानो । साचु झूठु जड़ कछु न पछानो ।
 जोरि प्रजा दै ढोल नगारे । चले सुरसुरी मथन सकारे ॥ १६ ॥
 बडे द्रुमन की मथनि सु धारि । मथत भए सुरसरि मो डारि ।
 तनिक बारि कह जब डुलायो । निकसि पुरख तह ते इक
 आयो ॥ १७ ॥ निरखि सजन को रूप अपारा । बरत भई
 तिह राजकुमारा । भेद अभेद पसु कछु न बिचरियो । इह
 छल नारि जार कह बरियो ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ जिह
 बिधि ते मथि नीरधहि लछमी बरी मुरारि । तैसहि मथि गंगा
 बरा याकह राजकुमारि ॥ १९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित् पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ चुरानवे चरित्
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३९४ ॥ ७०३३ ॥ अफजूं ॥

गंगा में प्रस्थान कर गया । जल उनके चारों ओर रहा परन्तु पानी ने
 उन्हें स्पर्श नहीं किया ॥ १३ ॥ इस छल से मित्र को पानी में भेज दिया
 और माता-पिता से कहा कि हे पिताजी ! मैं प्रातः स्वयंवर करूँगी और
 किसी परम पवित्र पुरुष का वरण करूँगी ॥ १४ ॥ हे पिता ! मेरा
 कहना मानों और प्रातः गंगा का मंथन करो । उसमें से जो व्यक्ति
 निकलेगा वही मेरा पति होगा ॥ १५ ॥ राजा बात सुनकर प्रसन्न हो
 उठा और मूर्ख कुछ भी झूठ-सच न समझ सका । वह प्रजा को एकत्र कर
 भोर में ही गंगा का मंथन करनेके लिए चल दिया ॥ १६ ॥ बड़े पेड़ों की
 मथानी बनाकर गंगा को मथने लगे । जब पानी को थोड़ा सा मथा तो
 उसमें से एक पुरुष निकल आया ॥ १७ ॥ सजन के स्वरूप को देखकर
 वह राजकुमारी उसका वरण करने लगी । मूर्ख राजा भेद-अभेद कुछ न
 जाना और इस प्रपंच से स्त्री ने अपने यार का वरण कर लिया ॥ १८ ॥
 ॥ दोहरा ॥ जिस प्रकार मुरारि विष्णु ने समुद्र-मंथन कर लक्ष्मी का वरण
 किया उसी प्रकार इस राजकुमारी ने गंगा का मंथन कर उसका वरण
 कर लिया ॥ १९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित् के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ चौरानवेवें
 चरित् की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३९४ ॥ ७०३३ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ पंचानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सरबसिंघ राजा इक सोहै । सरबसिंधु
पुर गढ़ जिह कोहै । स्त्री दलथंभु सुजान पुत्र तिह । सुंदर
अवर न भयो तुल्लि जिह ॥ १ ॥ दुशद सिंघ ताको भ्राता
भनि । दुतिय चंद्र जाना सभ लोगन । रूपवान गुनवान
भनिज्जै । कवन सुघर सम ताहि कहिज्जै ॥ २ ॥ (पृ० पं० १३४६)
स्त्री सु जुलफ दे शाह दुलारी । जिह समान नहि देव
कुमारी । राज कुअरि निरखा तिह जबहीं । लगगी लगन
निगौडी तबहीं ॥ ३ ॥ हित् जानि सहचरी बुलाई । भेद
भाखि तिह ठौर पठाई । राजकुअर तिह हाथ न आयो ।
इह बिधि उहि इह आनि सुनायो ॥ ४ ॥ शाहु सुता बहु जतन
थकी करि । गयो न मीत कैसेहूँ तिह घर । बीर हाँकि इक
तहाँ पठायो । सोत सेज ते गहि पटकायो ॥ ५ ॥ टंगरी भूत
कबै गहि लेई । कबहूँ डारि सेज पर देई । अधिक त्रास दे
ताहि पछारा । उहि डरि जिय ते मारि न डारा ॥ ६ ॥

तीन सौ पंचानवेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सिंधुपुर किले में सरबसिंह नामक राजा शोभायमान
था । दलथंभ नामक उसका सुजान पुत्र था जिसके समान सुन्दर अन्य
कोई नहीं हुआ था ॥ १ ॥ दुष्ट सिंह उसका भाई था जिसे लोग दूसरा
चन्द्रमा मानते थे । वह रूपवान और गुणवान था । उसके समान सुन्दर
भला अन्य कौन था ॥ २ ॥ जुलफदेवी एक धनी की पुत्री थी जिसके
समान कोई देवकन्या भी नहीं थी । उसने राजकुमार को जैसे ही देखा
तब से ही उसकी निगोड़ी लगन उसके साथ लग गई ॥ ३ ॥ उसने एक
हितैषिणी सखी को बुलाया और उसे भेद समझाकर उस स्थान पर भेज
दिया । राजकुमार उसके हाथ नहीं आया और उसने आकर इस प्रकार
कहा ॥ ४ ॥ धनिक-पुत्री बहुत प्रयत्न करके थक गई परन्तु वह मित्र
कैसे भी उसके घर नहीं गया । तब उसने (मंत्रशक्ति से) एक "बीर"
(भूत) को वहाँ भेजा जिसने उसे शय्या पर सोते हुए को पकड़कर पटक
दिया ॥ ५ ॥ भूत कभी टाँग पकड़ लेता था और कभी उसे शय्या पर
पटक देता था । उसे बहुत भयभीत कर उसने पछाड़ा परन्तु (मालिकिन
के) डर से उसे मार नहीं डाला ॥ ६ ॥ सारी रात उसे सोने नहीं दिया

रैनि सिगर तिह सैन न दियो । त्रिप सुत कह त्रासित बहु
 कियो । चली खबरि राजा प्रति आई । भूत नास कर
 लए बुलाई ॥ ७ ॥ भूत हता इक मंत्र उचारै । बीस मंत्र पड़ि
 बीर पुकारै । किसहू पकरि चीरि करि देई । काहूँ पकरि
 रान तर लेई ॥ ८ ॥ जब सभ सकल मंत्र करि हारे । तब
 इह बिधि तन बीर पुकारे । जे गुर मोर इहाँ चलि आवै ।
 राजकुअर तब ही सुख पावै ॥ ९ ॥ सुनत बचन राजा पग
 परे । बहु उसतति करि बचन उचरे । कहाँ तोर गुर मोहि
 बतैयै । जिह तिह भाँति ताँहि ह्याँ ल्यैयै ॥ १० ॥ जवन
 पुरख का नाम बतायो । नारि तिसी का भेस बनायो ।
 त्रिपहि ठौर भाखत भयो जहाँ । बैठी जाइ चंचला
 तहाँ ॥ ११ ॥ बचन सुनत तह भूप सिधार्यो । तिही रूख
 तर पुरख निहार्यो । जिह तिह बिध ताँकौ बिरमायो ।
 अपुने धाम ताहि लै आयो ॥ १२ ॥ राजकुअर ताकह दरसायो ।
 बचन ताहि इह भाँति सुनायो । यौ इह त्रिय पतिव्रता
 बरै । तऊ बचै यह यौन उबरै ॥ १३ ॥ करत करत बहु
 बचन बतायो । शाहु सुता को नामु जतायो । सो पतिव्रता

और इस प्रकार राजकुमार को बहुत भयभीत किया । खबर राजा तक
 जा पहुँची और उसने भूतों को भगानेवाले बुला लिये ॥ ७ ॥ इधर से
 ओझा एक मंत्र पढ़ते थे तो वीर बीस मंत्र पढ़ देता था । वह किसी को
 पकड़कर चीर देता था और किसी को जाँघ के नीचे दबा लेता था ॥ ८ ॥
 जब ये लोग सभी मंत्र आजमा कर हार गए तब वीर ने इस प्रकार पुकारा
 कि यदि मेरा गुरु यहाँ आ जाए तो राजकुमार को आराम मिल सकता
 है ॥ ९ ॥ बात सुनकर राजा चरणों में आ गिरा और उसकी स्तुति कर
 कहने लगा कि तुम्हारा गुरु कहाँ है, उसे हम जैसे-तैसे यहाँ ले आएँगे ॥ १० ॥
 जिस पुरुष का उन्होंने नाम बताया उस स्त्री ने उसी का वेश धारण किया ।
 राजा को जो जगह बताई गई थी वह स्त्री वहीं जा बैठी ॥ ११ ॥ बात
 सुनकर राजा चल पड़ा और उसी वृक्ष के नीचे उसने पुरुष को देखा ।
 उसे जैसे-तैसे फुसलाया और उसे अपने घर ले आया ॥ १२ ॥ उसे
 राजकुमार दिखा दिया गया जिसे देखकर उस (स्त्री) ने यह कहा कि यदि
 यह पतिव्रता स्त्री का बरण करे तभी यह बच सकता है अन्यथा नहीं ॥ १३ ॥
 करते-करते उसने बातों-बातों में धनिक की पुत्री का नाम सुझाया । यदि

ताहि बिवावहु । जौ त्रिप सुतहि जियायो चाहहु ॥ १४ ॥
 जौ यह ताहि ब्याहि लयावै । रैन दिवस तासो लपटावै ।
 अवर नारि के निकट न जाइ । तब यह जिये कुअरि सुभ
 काइ ॥ १५ ॥ यहै काज राजा तुम कीजै । अब ही हमहि
 बिदा करि दीजै । लै आग्या तिह आश्रम गई । धारत भेस
 नारि का भई ॥ १६ ॥ राज साज ब्याह कौ बनायो । शाह
 सुता (मू०पं० १३५०) हित पूत पठायो । जब ही ब्याह तवन सौ
 भयो । तब ही ताहि भूत तजि गयो ॥ १७ ॥ राजकुअर इह
 छल सौ पायो । भेद अभेद न किसी बतायो । चंचलान के
 चरित अपारा । चक्रित रहा करि करि करतारा ॥ १८ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ पचानवों
 चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६५ ॥ ७०५१ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ छिआनवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ प्रिथी सिंघ इक भूप बखनियत । पिरथी
 पुर तिह नगर प्रमनियत । लालमती रानी तिह सोहै । सुर

राजकुमार को बचाना चाहते हो तो उस पतिव्रता से इसका विवाह
 करो ॥ १४ ॥ यदि यह उसे विवाह कर ले आए, रात-दिन उससे लिपटा
 रहे, अन्य स्त्री के पास भी न जाए तब यह कुँवर जीवित रह सकता
 है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! तुम यही काम करो और अब मुझे विदा करो ।
 आज्ञा लेकर वह अपने घर वापस चली गई और उसने स्त्री का वेश धारण
 कर लिया ॥ १६ ॥ राजा ने विवाह का उपक्रम किया और धनिक की पुत्री
 से विवाह के लिए पुत्र को भेज दिया । जैसे ही उसका विवाह हुआ वैसे
 ही भूत उसे छोड़ गया ॥ १७ ॥ उसने इस प्रकार प्रपंच से राजकुमार
 को प्राप्त किया और भेद-अभेद किसी को नहीं बताया । स्त्रियों के छल-
 पूर्ण चरित्र अपार हैं, जिससे परमात्मा भी चकित रहता है ॥ १८ ॥ १॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ पंचानवों
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६५ ॥ ७०५१ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ छिआनवेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पृथ्वीसिंह एक राजा कहा जाता था जिसका नगर
 पृथ्वीपुर था । उसकी शोभायुक्त रानी लालमती सुर-नर-नाग-स्त्रियों का

नर नारि भुजंगन मोहै ॥ १ ॥ सिंघ मेदनी सुत का नामा ।
 थकित रहत जाकौ लखि बामा । अधिक रूप ताको बिधि
 करियो । जनु करि कामदेव अवतरियो ॥ २ ॥ चपला दे
 तह शाह दुलारी । कनक अवटि साँचे जनु ढारी । राजपुत्र
 जब ताहि निहारा । निरखि तरुनि ह्वै गयो मतवारा ॥ ३ ॥
 एक सहचरी निकटि बुलाई । अमित दरब दै तहाँ पठाई ।
 जब तैं चपलमती कौ ल्यैहैं । मुखि मँगिहै जो कछु सो
 पैहैं ॥ ४ ॥ बचन सुनत सहचरि तह गई । बहु बिधि ताहि
 प्रबोधत भई । शाह सुता जब हाथ न आई । तब दूती इह
 बात बनाई ॥ ५ ॥ तव पिति धाम जु नए उसारे । चलहु जाइ
 तिह लखौ सवारे । यौ कहि डारि डोरियहि लियो । परदन
 डारि चहूँ दिसि दियो ॥ ६ ॥ इह छल शाह सुता डहकाई ।
 संग लए त्रिप सुत घर आई । तहीं आनि परदान उधारा ।
 नारि लखा तह राजकुमार ॥ ७ ॥ तात मात इह ठौर न
 भाई । इन दूती हौ आनि फसाई । राजकुअर जौ मुझे न
 पैहै । नाक कान कटि लीक लगैहै ॥ ८ ॥ हाइ हाइ करि

भी मन मोहित करती थी ॥ १ ॥ मेदनीसिंह नामक उसका पुत्र था
 जिसे देखकर स्त्रियाँ परेशान रहती थीं । विधाता ने उसे अत्यधिक रूप
 दिया था और ऐसा लगता था मानों वह कामदेव का अवतार हो ॥ २ ॥
 वहाँ एक धनिक की पुत्री चपलादेवी थी जिसे मानों सोने के साँचे में गढ़ा
 गया था । राजकुमार ने जब उसे देखा तो उस तरुणी को निहारकर वह
 मतवाला हो गया ॥ ३ ॥ उसने एक दासी को पास बुलाया और उसे
 अपरिमित द्रव्य देकर वहाँ भेजा और कहा कि जब तुम चपलमती को ले
 आओगे तो मुँहमाँगा जो कुछ चाहोगे वह तुम्हें दिया जायगा ॥ ४ ॥
 बात सुनकर दासी वहाँ गई और विभिन्न प्रकार से उसे फुसलाने लगी ।
 परन्तु धनिक-पुत्री जब हाथ न लगी तो उसने एक अन्य घात लगाई ॥ ५ ॥
 तुम्हारे पिता ने जो नये महल बनवाए हैं, आओ और उसे भलीभाँति देखो ।
 यह कहकर उसे पालकी में डाल लिया और चारों ओर पर्दे डाल
 दिए ॥ ६ ॥ इस प्रबंध से उसने धनिक-पुत्री को छल लिया और उसे
 साथ लेकर राजपुत्र के घर चली आई । वहीं आकर उसने पर्दा उठाया
 जहाँ उस स्त्री ने राजकुमार को देखा ॥ ७ ॥ उसने सोचा कि यहाँ तो
 मेरे माता-पिता आदि कोई नहीं हैं, मुझे तो इस दूती ने फँसा दिया है ।
 अब यदि राजकुमार मुझे नहीं पा सकेगा तो नाक-कान काटकर मुझे कुरूप

गिरी धरनि पर । कटी कहा कर याहि बिछू बर । ध्रिग
बिधि को मोसौ कस कीया । राज कुअर नहि भेटन
दीया ॥ ६ ॥ अब मैं निजु घर कौ फिरि जै हौ । द्वे दिन
कौ तुमरे फिरि ऐहौ । राजपुत्र लखि क्रिया न लई । इह छल
मूँड मूँड तिह गई ॥ १० ॥ १ ॥ (मू० प्र० १३५१)

॥ इति स्त्री चरित पख्याने त्रिया चरिते मंत्री भूप संवादे तीन सौ छियानवों चरित
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६६ ॥ ७०६१ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ सत्तानवों चरित कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सगर देस सुनियत है जहाँ । सगरसेन
राजा इक तहाँ । सगरदेइ तिह सुता भनिज्जै । चंद
सूर लखि ताहि जु लज्जै ॥ १ ॥ गजनीराइ तवन जह
लहियो । मन क्रम बचन कुअरि अस कहियो । ऐसो छैल एक
दिन पैयै । जनम जनम पल पल बलि जैयै ॥ २ ॥ सखी एक
तिह तीर पठाइ । जिह तिह बिधि करि लिया बुलाइ । अपन
सेज पर तिह बैठारा । कास भोग का रचा अखारा ॥ ३ ॥

बना देगा ॥ ८ ॥ हाय हाय करके वह धरती पर ऐसे गिर पड़ी मानों
उसे बिच्छू ने काट लिया हो । विधाता पर धिक्कार है कि उसने अभी
तक मुझसे राजकुमार को मिलने नहीं दिया ॥ ९ ॥ आज मैं अभी अपने
घर को वापस जाऊँगी और दो दिन बाद फिर तुम्हारे पास आऊँगी ।
राजकुमार इस कर्म को न जान सका और इस प्रपंच से वह उसे छलकर
चली गई ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरितोपाख्यान के त्रिया-चरित के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ छियानवों
चरित की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६६ ॥ ७०६१ ॥ अफजूं ॥

तीन सौ सत्तानवेवाँ चरित-कथन

॥ चौपाई ॥ जहाँ सगर देश सुना जाता है वहाँ सगरसेन नामक
एक राजा था । उसकी पुत्री सगरदेवी थी जिसे देखकर चन्द्र-सूर्य भी
लज्जित होते थे ॥ १ ॥ गजनीराय को जब उसने देखा तो मन-वचन
एवं कर्म से उसने कहा कि यदि ऐसा छैल-छबीला एक दिन मिल जाए तो
जन्म-जन्मांतरोँ तक पल-पल न्योछावर हुआ जाए ॥ २ ॥ एक सहेली को
उसके पास भेजकर जैसे-तैसे उसे बुला लिया । उसे अपनी शय्या पर

बैठ सेज पर दोड़ कलोलहि । मधुर मधुर धुनि मुख ते बोलहि ।
 भाँति भाँति तम करत बिलासा । तात मात को तजि कर
 लासा ॥ ४ ॥ पोसत भाँग अफीम मँगावहि । एक खाट पर
 बैठ चढ़ावहि । तरुन तरुनि उर सौ उरझाई । रसि रसि
 कसि कसि भोग कसाई ॥ ५ ॥ रानी सहित पिता ताकौ बर ।
 आवत भयो दुहिता हूँ के घर । अवर घात तिह हाथ न आई ।
 तात मात हनि दए दबाई ॥ ६ ॥ निजु आलै कह आगि
 लगाइ । रोइ उठी निजु पियहि दुराइ । अनल लगत दारु कह
 भई । रानी राव सहित उड गई ॥ ७ ॥ अवर पुरख कछु
 भेद न पायो । कहा चंचला काज कमायो । आपन राज
 देस का करा । बहुरि सुयंबर सौ तिह बरा ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ सत्तानवों चरित्र
 समाप्तम सतु शुभम सतु ॥ ३६७ ॥ ७०६६ ॥ अफजू ॥

बैठाया और मानों शय्या को कामभोग का अखाड़ा बना दिया ॥ ३ ॥
 शय्या पर बैठकर दोनों किल्लोल कर मधुर-मधुर वाणी में मुख से बातचीत
 करने लगे । वे माता-पिता का भय त्याग कर विभिन्न प्रकार से विलास
 करने लगे ॥ ४ ॥ वे पोस्त, भाँग, अफीम आदि मँगाते और एक ही पलंग
 पर बैठकर चढ़ाते थे । वह युवक और युवती एक-दूसरे के साथ संलग्न
 होकर रसिकतापूर्ण ढंग से दृढ़तापूर्वक रमण करने लगे ॥ ५ ॥ राजा रानी-
 समेत उस पुत्री के घर में आ गया । अब उसे अन्य कुछ न सूझा और
 उसने माता-पिता को मारकर वहीं दबा दिया ॥ ६ ॥ अब अपने घर
 को आग लगाकर वह अपने प्रिय को छिपाकर रो उठी । बारूद को
 आग लग गई जिससे रानी राजा-समेत उड़ गई ॥ ७ ॥ अन्य किसी
 व्यक्ति को कुछ पता न चला कि इस स्त्री ने क्या कर दिया है । स्वयं देश
 का राज करने लगी और फिर स्वयंवर में उसी (प्रेमी) का वरण
 किया ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ सत्तानवों चरित्र
 की शुभ सत् सामप्ति ॥ ३६७ ॥ ७०६६ ॥ अफजू ॥

अथ तीन सौ अठानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ पलवल देस हुता इक राजा । जिह समान बिधि अवर न साजा । तड़िता दे तिह नारि भनिज्जै । चंद्र सूर जिह सम न कहिज्जै ॥ १ ॥ अलिक्रित दे तिह सुता बखनियत । अमित रूप वाके पहिचनियत । तिह ठाँ इक सौदागर आयो । जिह सम बिधि दूजो न बनायो ॥ २ ॥ राजकुअरि ताके लखि अंगा । मन क्रम बच रीझी सरबंगा । पठै सहचरी लिअसि बुलाइ । कहत भई बतिया मुसकाइ ॥ ३ ॥ अधिक भोग तिह साथ मचायो । भाँति भाँति रस केल कसायो । चुंबन और अलिंगन लीनो । भाँति अनिक त्रिय को सुख दीनो ॥ ४ ॥ जब त्रिय चित तवनै हर लियो । तब अस चरित चंचला कियो । तात सात दोइ बोलि पठाए । इह बिधि तिन सौ बचन सुनाए ॥ ५ ॥ (सू० प्र० १३५२) मैं अब लगि सहि तीरथ अन्ह्राई । अब तीरथ करिहौ तह जाई । जौ आइसु तुम ते मैं पाऊँ । तीरथ न्हाइ सकल फिरि आऊँ ॥ ६ ॥ पति कुरूप हम कह तुम दियो । ताँते मैं

तीन सौ अठानवेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ पलवल देश में एक राजा था जिसके समान विधाता ने अन्य किसी को नहीं बनाया था । तड़ितदेवी उसकी स्त्री थी जिसके समान चन्द्र-सूर्य भी नहीं थे ॥ १ ॥ अलिकृतदेवी नामक उनकी एक पुत्री थी जिसका रूप-सौंदर्य अपार था । वहाँ एक सौदागर आया जिसके समान विधाता ने अन्य किसी को नहीं बनाया था ॥ २ ॥ राजकुमारी उसके शरीर को देखकर मन-वचन एवं कर्म से उस पर रीझ गई । उसने सहचरी को भेजकर उसे बुला लिया और मुस्कुराकर उससे बातें करने लगी ॥ ३ ॥ उसने उसके साथ भोग की अत्यधिक धूम मचा दी और भाँति-भाँति प्रकार से रस-क्रीड़ा की । चुंबन और अलिंगन लिये और अनेकों प्रकार से स्त्री को सुख दिया ॥ ४ ॥ जब स्त्री ने उसका दिल चुरा लिया तो उस स्त्री ने यह प्रपंच किया । उसने माता-पिता दोनों को बुला लिया और उनसे कह सुनाया ॥ ५ ॥ मैंने अभी तक तीर्थ-स्नान नहीं किया है, अब मैं तीर्थों पर जाकर स्नान करूँगी । यदि आपकी आज्ञा हो तो सारे तीर्थों पर नहाकर वापस आ जाऊँ ॥ ६ ॥ आपने

उपाइ इमि कियो । जौ मुर पति सभ तीरथ अन्हैहै । सुंदर अधिक काइ हवै जैहै ॥ ७ ॥ लै आग्या पति सहित सिधाई । भाँत भाँत तीरथन अन्हार्ई । घात पड़ा करि नाथ सँघारा । ताकी ठौर मित्र बँठारा ॥ ८ ॥ अपने धाम बहुरि फिरि आई । मात पितहि इह भाँति जताई । मुर मति अति तीरथन अन्हयो । ताँ ते बपु सुंदर हवै गयो ॥ ९ ॥ भाँति भाँति हम तीरथ अन्हाए । अनिक बिधव तन बिप्र जिवाए । ताते दैव आपु बर दियो । सम पति को सुंदर बपु कियो ॥ १० ॥ यह काहू नर बात न पाई । कहा करम करिकै त्रिय आई । तीरथ सहातम सभहूँ जान्यो । भेद अभेद न किनूँ पठान्यो ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्यानै त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ अठानवों चरित्र समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३६८ ॥ ७०७९ ॥ अफजूं ॥

मुझे कुरूप पति दिया है, इसी से मैंने यह उपाय किया है । यदि मेरा पति तीर्थों पर नहाएगा तो उसकी काया अधिक सुन्दर हो जाएगी ॥ ७ ॥ वह आज्ञा लेकर पति-समेत चल पड़ी और अनेक तीर्थों पर उसने स्नान किया । अवसर पाकर उसने पति को मार डाला और उसकी जगह उसने अपना मित्र बिठा दिया ॥ ८ ॥ फिर वह अपने घर आ गई और माता-पिता से उसने कहा कि मेरा पति अनेक तीर्थों पर नहाया है, इससे इसका शरीर सुन्दर हो गया है ॥ ९ ॥ अनेक प्रकार के तीर्थों पर हम नहाए हैं और अनेक विधवाओं तथा विप्रों को हमने भोजन खिलाया है । इसी से विधाता ने वरदान देकर मेरे पति का शरीर सुन्दर कर दिया है ॥ १० ॥ किसी भी व्यक्ति ने इस बात के भेद को नहीं समझा कि यह स्त्री कौन सा कर्म करके आई है । सभी ने इसे तीर्थ का प्रसाद समझा और भेद-अभेद को किसी ने भी नहीं जाना ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ अठानवों चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६८ ॥ ७०७९ ॥ अफजूं ॥

अथ तीन सौ निन्यानवों चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ घाटमपुर इक भूप भनिज्जै । नारि
अलंकृत देइ कहिज्जै । सुता सु भूखन दे घर ताके । नरी
नागनी तुल्लि न वाके ॥ १ ॥ अति कुरूप तिह नाथ पछनियत ।
अति सुंदरि जिह नारि बखनियत । सुंदर अवर हुतो तह
छत्री । रूपवान गुनवान धरत्री ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब
मुलतानी राइ कुअरि लखि पाइयो । निजु नाइक कह चित
ते कुअर भुलाइयो । पठै सहचरी निजु ग्रहि लियो बुलाइकै ।
हो बचन कहे पुनि भांगि अफीम चढ़ाइकै ॥ ३ ॥
॥ चौपई ॥ अब लपटहु मुहि आनि पयारे । हम रीझी लखि
नैन तिहारे । नाहि नाहि तिन दुबिर बखानी । आखर
कुअरि कही सो मानी ॥ ४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ भाँति भाँति की
कंफ दिवाने पी भए । भाँति भाँति अबला के आसन लेत भे ।
अमित भोग त्रिय पाइ रही उरझाइकै । हो निरखि सजन के
नैनन गई बिकाइकै ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ भाँति भाँति तासौ
रति पाइ । आसन साथ गई लपटाइ । रसि गयो मीत न छोरा

तीन सौ निन्यानबेवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ घाटमपुर में एक राजा था जिसकी स्त्री अलंकृत देवी
थी । उसकी पुत्री भूषणदेवी थी, जिसके समान मनुष्य और नाग-स्त्री कोई
भी नहीं थी ॥ १ ॥ पत्नी जितनी सुन्दर थी उसका पति उतना ही कुरूप
था । वहाँ एक अन्य सुन्दर क्षत्रिय था जो रूपवान, गुणवान और धैर्यवान
था ॥ २ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ जब उस कुँवरि ने मुलतानीराय (क्षत्रिय) को
देखा तो अपने चित्त से अपने पति को विस्मृत कर दिया । उसने सहेली
को भेजकर उसे अपने घर बुला लिया और भांग, अफीम चढ़ाकर उससे
कहा ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रिय ! अब मुझसे आ लिपटो, मैं तुम्हारे
नयन देखकर उन पर मोहित हूँ । दो बार उसने “नांह-नांह” कही पर अन्त
में कुँवरि का कहना मान लिया ॥ ४ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ विभिन्न प्रकार
की मदिरा पीकर वे दीवाने हो गए और स्त्री के विभिन्न प्रकार के आसन
लेने लगे । अपरिमित भोग पाकर स्त्री उलझकर रह गयी और साजन के
नयनों को देखकर बिककर रह गई ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ भाँति-भाँति
प्रकार से उससे रतिदान प्राप्त कर आसनों के साथ वह उससे लिपट गई ।

जाई । बात भाखि तिह घात बनाई ॥ ६ ॥ (सू० प्र० १३५३)
 साजन आजु तुझे मै बरिहौ । निजु पति को निजु कर बध
 करिहौ । आपन साथ प्रगट तुहि लिऐहौ । मात पिता तुहि
 लखत हूँहौ ॥ ७ ॥ निजु पति लै शिव भवन सिधायी ।
 काटा मूँड तहाँ तिह जाई । लोगन कहि शिव नाम सुनायो ।
 रूप हेतु पति सीस चढ़ायो ॥ ८ ॥ पुनि शिव अधिक कृपा
 कह कियो । सुंदर मोर पतिहि कर दियो । कौतुक लखा कहा
 तिन करा । शिव प्रताप हम आजु बिचरा ॥ ९ ॥ देह
 नितक पति दर्ई दबाई । ताकौ नाथ भाखि ग्रहि ल्याई । भेद
 अभेद न किनहूँ पायो । बिनु पानी ही मूँड मुँडायो ॥ १० ॥ १ ॥
 ॥ इति श्री चरित्र पद्म्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे तीन सौ नित्यानवों चरित्र
 समाप्तम सतु सुभम सतु ॥ ३६६ ॥ ७०८६ ॥ अफजू ॥

अथ चार सौ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सूरजकिरनि इक भूप भनिज्जै । चंद
 किरनपुर नगर कहिज्जै । महाँ कुअरि तिह धाम डुलारी ।

वह मित्र में रम गई और वह अब छोड़े नहीं बनता था । अब उसने अवसर
 पाकर बात की ॥ ६ ॥ हे प्रिय ! आज मैं तुम्हारा वरण करूँगी और
 अपने पति का अपने हाथों से वध करूँगी । अब प्रकट में तुम्हें अपने
 साथ रखूँगी और माता-पिता के देखते-देखते तुम्हारा उपभोग करूँगी ॥ ७ ॥
 अपने पति को साथ लेकर वह शिवमंदिर में गई और वहाँ जाकर उसका
 सिर काट दिया । लोगों को शिव का नाम सुनाया और कहा कि रूप-
 सौंदर्य की प्राप्ति के लिए पति का शीश अर्पण किया ॥ ८ ॥ शिव ने
 फिर कृपा की है और मेरे पति को सुन्दर कर दिया है । जैसा उन्होंने
 कहा था वैसा कौतुक कर दिया और मैंने तो शिव के प्रताप को आज ही
 जाना है ॥ ९ ॥ पति के मृत शरीर को दबा दिया और प्रेमी को पति
 कहकर साथ ले आई । कोई भी भेद-अभेद न जान पाया और सभी बिना
 पानी के ही सिर मुँडवा गए ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में तीन सौ नित्यानवों
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ३६६ ॥ ७०८६ ॥ अफजू ॥

चार सौवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ सूरजकिरन नामक एक राजा था जिसका नगर

जिह समान बिधि कहूँ न सवारी ॥ १ ॥ तहिक शाह को पूत
 सुजाना । चंद्रसेन नामा बलवाना । महाँ कुअरि वाकी छबि
 लही । मन क्रम बचन थकित हबै रही ॥ २ ॥ पठै सहचरी
 लियो बुलाइ । पोसत भाँग अफीम मँगाइ । भाँति भाँति तन
 ताँहि पिवायो । अधिक सत्त करि गरै लगायो ॥ ३ ॥ मत्त
 किया मद साथ पयारो । कबहूँ करत न उर सौ न्यारो ।
 भाँति भाँति उर सौ लपटावै । चूँबि कपोल दोऊ बलि
 जावै ॥ ४ ॥ रसि गयो मीत न छोरा जाइ । भाँति भाँति
 भोगत लपटाइ । चुंबन और अलिंगन लेई । अनिक भाँति
 तन आसन देई ॥ ५ ॥ रसि गई ताकौ तजा न जाइ । भाँति
 अनिक लपटत सुख पाइ । या संग कहा कवन बिधि जाऊँ ।
 अब अस कवन उपाइ बनाऊँ ॥ ६ ॥ जानि बूझि इक दिज
 कह मारि । भूप भए इमि कहा सुधारि । अब मैं जाइ
 करवतहि लँहौ । पलटि देह सुरपुरहि सिधैहौ ॥ ७ ॥ होरि
 रहा पितु एक न मानी । रानीहूँ पाइन लपटानी । मंत्र

चन्द्रकिरणपुर था । उसकी दुलारी पुत्री महाकुँवरि थी, जिसके समान
 विधाता ने अन्य किसी को नहीं बनाया था ॥ १ ॥ वहाँ एक धनी का
 सुजान पुत्र था । उस बलवान का नाम चन्द्रसेन था । महाकुँवरि उसकी
 छवि देखकर मन-वचन-कर्म से व्याकुल हो उठी ॥ २ ॥ एक दासी भेजकर
 उसे बुलवाया और पोस्त, भाँग, अफीम मँगाए और उसे विभिन्न प्रकार से
 मिलाकर अत्यधिक मदमस्त करके गले से लगा लिया ॥ ३ ॥ प्रिय को
 मदिरा से मस्त कर दिया और अब उसे कभी वह छाती से अलग न करती
 थी । भाँति-भाँति से वे सीने से लिपटते थे और दोनों कपोलों का चुंबन
 कर दोनों एक-दूसरे पर बलिहारी जाते थे ॥ ४ ॥ वह मित्र भी लीन था
 और उसे छोड़े नहीं बनता था और अनेकों प्रकार से लिपटकर सुख प्राप्त
 करते थे । दोनों परस्पर चुंबन तथा आलिंगन करते थे और भाँति-भाँति
 के आसन लेते थे ॥ ५ ॥ वह उसमें इतना लीन हो गयी कि छोड़ा
 नहीं जाता था । उससे वह अनेक प्रकार से लिपटकर सुख प्राप्त करती
 थी । उसने (महाकुँवरि ने) यह सोचा कि इसके साथ कैसे जाऊँ
 और इसके लिए कौन-सा उपाय करूँ ? ॥ ६ ॥ उसने जान-बूझकर एक
 ब्राह्मण को मारकर राजा से विनयपूर्वक कहा कि अब मैं करवत ले लूँगी
 अर्थात् काशी में आरे से कटकर शरीर बदलकर स्वर्गलोक चली
 जाऊँगी ॥ ७ ॥ पिता मना करता था परन्तु उसने एक नहीं मानी और

शक्ति करवति सिर धरा । एक रोम तिह ताहि न हरा ॥८॥
 सभन लहा करवत इह लियो । द्रिशटि बंद ऐसा तिन कियो ।
 आपन गई मित्र के धामा । भेद न लखा किसू किह
 बामा ॥ ६ ॥ (सू०प्र० १३५४) ॥ दोहरा ॥ इह बिधि छलि पितु
 मात कह गई मित्र के संग । कबि स्याम पूरन भयो तब ही
 कथा प्रसंग ॥ १० ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे चार सौ चरित्र
 समापतम सतु सुभम सतु ॥ ४०० ॥ ७०६६ ॥ अफजूं ॥

अथ चार सौ इक चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ पातिशाह कारूँ इक सुनियत । अमित
 तेज जाको जग गुनियत । जिह धन भरे चिहल भंडारा ।
 आवत जिन का पार न वारा ॥ १ ॥ तिह पुर शाह सुता इक
 सुनियत । जानुक चित्र पुत्रका गुनियत । निरख भूप का
 रूप लुभाई । एक सहचरी तहाँ पठाई ॥ २ ॥ कुअरि बसंत
 तवनि का नामा । जिह समान भी और न बामा । सो कारूँ

रानी भी चरणों से लिपट गई । मंत्रशक्ति से ही उसने करवत (आरा)
 सिर पर धरा, परन्तु उसने उसका एक बाल भी बाँका नहीं किया ॥ ८ ॥
 उसने ऐसा दृष्टिबंध लगाया कि सबने देखा कि इसने करवत धारण किया
 है । स्वयं वह मित्र के घर चली गई और उस स्त्री का भेद किसी ने
 भी न देखा ॥ ९ ॥ ॥ दोहा ॥ इस विधि से माता को छलकर वह मित्र
 के साथ चली गई और कवि श्याम के कथनानुसार यह प्रसंग भी पूर्ण
 हुआ ॥ १० ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में चार सौवें
 चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ४०० ॥ ७०६६ ॥ अफजूं ॥

चार सौ एकवाँ चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ कारूँ नामक एक बादशाह सुना जाता है, जिसका
 संसार में अपार तेज था । उसने धन के चालीस भंडार भरे थे जिनका
 कोई अन्त न था ॥ १ ॥ उस नगर में एक धनिक की पुत्री रहती थी जो
 मानों चित्र के समान सुन्दर थी । वह राजा का रूप देखकर मोहित हो गयी
 और उसने एक सहेली को वहाँ भेजा ॥ २ ॥ उस कुँवरि का नाम बसंत

की छबि लखि अटिकी । बिसरि गई सभही सुधि घटकी ॥३॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ सखी सभूखन दे तह दई पठाइकै । मोरी कही
 सजन सौ कहियहु जाइकै । प्रणति हमारी मीत कहा सुनि
 लीजियै । हो जसि तव त्रिय ग्रहि एक दुतिय मुहि
 कीजियै ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ कुअरि कुअरि की बात बखानी ।
 राजकुअरि करि एक न मानी । इमि सखि जाइ ताहि सुधि
 दई । कुअरि बसंत रिसाकुल भई ॥ ५ ॥ ततछिन सुरंग धाम
 निजु दई । त्रिप के सदन निकारत भई । चालिस गंज दरब
 के जेते । निजु आलै राखे लै तेते ॥ ६ ॥ मूढ़ भूप कछु बात
 न पाई । किह बिधि धन त्रिय लिया चुराई । छोरि भंडार
 बिलोकै कहा । पैसा एक न धन ग्रहि रहा ॥ ७ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ अधिक दुखित हवै लोगन लिया बुलाइकै ।
 भाँति भाँति तिन प्रति कह दूख बुलाइकै । ऐसा कवन
 कुकरम कहो हम तें भयो । हो जिह कारन ते ग्रहि चालिस
 का धन गयो ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ सभ लोगन इह भाँति
 बिचारी । प्रगट राव के साथ उचारो । दान पुंन्य तें
 कछू न दयो । तिह तें ग्रहि को सभ धन गयो ॥ ९ ॥ सुनि

या जिसके समान अन्य कोई स्त्री न थी । वह कारूँकी सुन्दरता देखकर
 उसी में अटक गई और उसे अपने आपकी सारी होश भूल गई ॥ ३ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ सखी को गहने आदि देकर वहाँ भेजा और कहा कि सजन
 से मेरी व्यथा कह देना । हे मित्र ! हमारी विनती सुन लो और तुम्हारे
 घर में जैसे एक स्त्री है मुझे दूसरी को भी रख लो ॥ ४ ॥
 ॥ चौपाई ॥ कुँवर से कुँवरि की बात कही परन्तु राजकुमार ने एक भी
 नहीं मानी । इस प्रकार सखी ने आकर बात बताई तो बसंत क्रोधित हो
 उठी ॥ ५ ॥ उसने उसी क्षण अपने घर से सुरंग बनाई और उसे राजा
 के घर में जा निकाला । द्रव्य के चालीस भंडार उसने चुराकर अपने घर
 में रख लिये ॥ ६ ॥ मूर्ख राजा कुछ न समझ सका कि स्त्री कैसे धन
 चुराकर ले गई । उसने भंडार खोलकर देखा तो घर में एक भी पैसा न
 बचा ॥ ७ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ अधिक दुखी हो उसने लोगों को बुलाया और
 विभिन्न प्रकार से उनसे कहा कि मुझसे ऐसा कौन-सा कुकर्म हो गया है
 जिससे चालीस खजानों का मेरा धन चला गया है ॥ ८ ॥
 ॥ चौपाई ॥ सब लोगों ने सोचा और राजा से कहा कि हे राजन् ! तुमने
 दान-पुण्य कुछ नहीं किया, इसीलिए यह सारा धन तुम्हारे घर से चला

जुहाँकु पायो इह बिधि जब । धावत भलो अमित लै दल तब ।
छीनि लई ताकी सभ शाही । कुअरि बसंत नारि कर
ब्याही ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ इह चरित्र तिन चंचला सकल
दरब हरि लीन । इह बिधि कै कारुँ हना नाथ जुहाँकहि
कीन ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ लोग आबु लागि (मृ० प्र० १३५५)
बात न जानत । गढ़ागंज अजै लोग बखानत । ऐसे चरित
चंचला करा । कारुँ मार जुहाकहि बरा ॥ १२ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित्र पढ्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे चार सौ इक चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ४०१ ॥ ७१११ ॥ अफजूं ॥

अथ चार सौ दोइ चरित्र कथनं ॥

॥ चौपई ॥ चिजी शहिर बसत है जहाँ । चिंगससैन
नराधिप तहाँ । गैहरमती नारि तिह कहियत । जिह सम
सुरपुर नारि न लहियत ॥ १ ॥ शहिर सुरेस्वावती बिराजै ।
जाकी निरखि इंद्र पुर लाजै । बलवंड सिंघ शाह इक सुनियत ।

गया ॥ ९ ॥ यह सुनकर जुहाक बादशाह कुपति हो उठा और अपार
सेना लेकर चल पड़ा । उसने उसका सब छीन लिया और कुँवरि बसंत
को पत्नी बना लिया ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ इस छल से उस स्त्री ने
ने सारा द्रव्य चुरा लिया । इस विधि से उसने कारुँ को मार डाला और
जुहाक बादशाह को अपनी स्वामी बना लिया ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ आज
तक लोग बात नहीं समझ पाए और लोग उस स्थान पर खजाना अभी तक
गढ़ा हुआ कहते हैं । उस स्त्री ने ऐसा प्रपंच किया कि कारुँ को मारकर
जुहाक बादशाह (बादशाह अजदहाक एक बड़ा जालिम बादशाह था जो
फ़ारस के बादशाह जमशीद को मारकर उसके सिंहासन पर बैठा था) का
वरण कर लिया ॥ १२ ॥ १ ॥

श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में चार सौ एकवें चरित्र
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ४०१ ॥ ७१११ ॥ अफजूं ॥

चार सौ दूसरा चरित्र-कथन

॥ चौपाई ॥ चिजी शहर नामक स्थान पर चिंगससेन नामक एक
राजा था । गैहरमती उसकी रानी थी जिसके समान देवपुरी में भी कोई
स्त्री नहीं थी ॥ १ ॥ सुरेशावती एक शहर था जिसको देखकर इन्द्रपुरी

जिह समान जग और न गुनियत ॥ २ ॥ सदाकुअरि तिह
मुता भनिज्जै । चंद्र सूर लखि जाहि अरुज्जै । अप्रमान दुति
जात न कही । जानुक फूलि चंबेली रही ॥ ३ ॥ सदा
कुअरि निरखा जब राजा । तब ही सील तवन का भाजा ।
सखी एक त्रिप तीर पठाई । यौ राजा तन कहु तैं जाई ॥ ४ ॥
मैं तव रूप निरखि उरझानी । मदन ताप ते भई दिवानी ।
एक बार तुम मुझे बुलावो । काम तपत करि केल
मिटावो ॥ ५ ॥ जौ आपन ग्रहि मुहि न बुलावहु । एक बार
मोरे ग्रहि आवहु । सो संग करिये सैन बिलासा । हम कह
तोरि मिलन की आशा ॥ ६ ॥ भूप कुअरि वहु ग्रहि न बुलाई ।
आपु जाइ तिह सेज सुहाई । दीप दान तरुनी तिन कीना ।
अरघ धूप राजा कह दीना ॥ ७ ॥ सुभर सेज ऊपर बैठायो ।
भांग अफ्रीम शराब मँगायो । प्रथम कहा त्रिप सौ इन पीजै ।
बहुरि मुझे मदनकुस दीजै ॥ ८ ॥ सुनत बचन इह भूय न माना ।
जम के डंड त्रास तरसाना । कह्यो न मै तौसौ रति करिहो ।
घोर नरक सो भूलि न परिहौ ॥ ९ ॥ तिमि तिमि त्रिय अंचर

भी लज्जित होती थी । बलवंत सिंह एक धनी था जिसके समान जगत्
में अन्य कोई नहीं था ॥ २ ॥ सदाकुंवरी उसकी एक पुत्री थी जिसे
चन्द्र-सूर्य भी देखकर उलझन में पड़ जाते थे । उसकी छवि अप्रमाण थी
मानों चमेली फूल उठी हो ॥ ३ ॥ सदाकुंवरी ने जब राजा को देखा
तो उसका शील भाग खड़ा हुआ । उसने एक सखी राजा के पास भेजी
कि तुम राजा के पास जाकर कहो ॥ ४ ॥ मैं तुम्हारा रूप देखकर उलझ
गई हूँ और काम-अग्नि से पीड़ित हूँ । एक बार तुम मुझे बुलाओ और
मेरी काम-अग्नि शान्त करो ॥ ५ ॥ यदि अपने घर मुझे नहीं बुलाते हो
तो आप ही मेरे घर आ जाओ । मेरे साथ काम-क्रीड़ा करो । मुझे तुमसे
मिलने की आशा बनी हुई है ॥ ६ ॥ राजा ने उस कुंवरी को घर न
बुलाया तो वह स्वयं उसकी शय्या पर चली गई । तरुणी ने उसे दीपदान
किया और राजा की अर्घ्य-धूपबत्ती से पूजा आदि की ॥ ७ ॥ उसे सुन्दर
शय्या पर बैठाया और भांग-अफ्रीम-शराब मँगाई । राजा से कहा कि
पहले पियो और मुझे काम-अंकुश से प्रहारित करो ॥ ८ ॥ राजा यह
सुनकर नहीं माना और यमदंड से भयभीत हो उठा । कहने लगा कि
मैं तुम्हारे साथ रति-क्रीड़ा नहीं करूँगा और भूलकर भी घोर नरक में
नहीं जाऊँगा ॥ ९ ॥ (जैसे-जैसे राजा कहता था) वैसे-वैसे वह स्त्री गले

गरि डारै । जोरि जोरि द्विग त्रिपहि निहारै । हाइ हाइ मुहि
 भूपति भजियै । काम क्रिया मोरे संग सजियै ॥ १० ॥ नहि
 नहि पुनि जिमि जिमि त्रिप करै । तिमि तिमि चरन
 चंचला परै । हहा त्रिपति मुहि करहु बिलासा । कामभोग
 की पुरवहु आसा ॥ ११ ॥ कहा करौ कहु कहाँ पधारौ ।
 आप सरै कै मुझे सँधारौ । हाइ हाइ मुहि भोग न करई ।
 ताँते जीअ हमारा जरई ॥ १२ ॥ (मू० प्र० १३५६) ॥ सवैया ॥ आसन
 और अलिंगन चुंबन आजु भले तुमरे कसि लैहौ । रीझिहैं
 जौन उपाइ गुमानी तैं ताहि उपाइ सो तोहि रिझैहौ । पोसत
 भाँग अफीम शराब खवाइ तुमै तब आपु चढ़ैहौ । कोट उपाव
 करौ क्यों न सीत पै केल करे बिनु जान न दैहौ ॥ १३ ॥
 केतियै बात बनाइ कहौ किन केल करे बिनु मैं न टरौगी ।
 आजु मिले तुमरे बिनु मैं तब रूप चितारि चितारि जरौगी ।
 हार शिगार लभै घर बार सु एकहि बार बिसारि धरौगी ।
 कै करि प्यार मिलो इक बार कि यार बिना उर फारि
 मरौगी ॥ १४ ॥ सुंदर केल करो हमरे संग मैं तुमरौ लखि

में अंचल डालती थी और आँखें गड़ाकर राजा को देखती थी । हाय
 राजन् ! मेरे साथ रमण और कामक्रीड़ा करो ॥ १० ॥ राजा जैसे-जैसे
 "नहीं-नहीं" करता था वैसे-वैसे वह स्त्री उसके चरणों में गिर पड़ रही थी ।
 हाय राजन् ! मेरे साथ विलास करो और मेरी कामोपभोग की आशा को
 पूर्ण करो ॥ ११ ॥ क्या करूँ और कहाँ चली जाऊँ, या तो मैं मर जाऊँ
 या तुम मुझे मार डालो । हाय-हाय तुम मुझसे रमण नहीं कर रहे इससे
 मेरा जीव जल रहा है ॥ १२ ॥ ॥ सवैया ॥ आज कसकर तुम्हारा
 अलिंगन और चुंबन लूँगी और तुम जिस उपाय से भी प्रसन्न होगे मैं
 वही उपाय करूँगी । पोस्त, भाँग, अफीम, शराब आदि का सेवन तुम्हें
 करवाकर फिर स्वयं चढ़ाऊँगी । हे मित्र ! तुम करोड़ों उपाय क्यों न
 कर लो मैं तुम्हें आज केलिक्रीड़ा किए बिना जाने नहीं दूँगी ॥ १३ ॥
 तुम कितनी ही बातें बनाकर बताओ पर केलिक्रीड़ा किए बिना मैं नहीं
 टलूँगी । आज तुम्हें मिले बिना मैं तुम्हारे रूप-सौंदर्य को याद कर-करके
 जलती रहूँगी । सभी हार-शृंगार, घर-बाहर सबकी सुधि भुला दूँगी ।
 या तो प्यार से एक बार मिलो नहीं तो मैं यार के बिना छाती फाड़कर मर
 जाऊँगी ॥ १४ ॥ तुम मेरे साथ केलिक्रीड़ा करो, मैं तो तुम्हारा रूप देख

रूप बिकानी । ठाँव नहीं जहाँ जाऊँ क्लिपानिधि आजु भई
 दुति देख दिवानी । हौ अटकी तब हेरि प्रभा तुन बाँधि रहै
 कसि सौन गुमानी । जानत घात न मानत बात सु जात
 बिहात दुहँन की ज्वानी ॥ १५ ॥ जेतिक प्रीति की रीति
 की बात सु शाह सुता त्रिप तीर बखानी । चौक रहा चहूँ ओर
 चितै करि बाँधि रहा मुख सौन गुमानी । हाइ रही कहि पाइ
 रही गहि गाइ थकी गुन एक न जानी । बाँधि रहा जड़ सोनि
 महा ओहि कोटि कही इह एक न मानी ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब
 भूपति इक बात न मानी । शाह सुता तब अधिक रिसानी ।
 सखियन नैन सैन करि दई । राजा की बहिया गहि लई ॥ १७ ॥
 पकरि राव की पांग उतारी । पनही मूँड सात सै झारी ।
 दुतिय पुरख कोई तिह न निहारौ । आनि राव कौ करै
 सवारौ ॥ १८ ॥ भूप लजत नहि हाइ बखानै । जिनि कोई
 नर मुझै पछानै । शाह सुता इत त्रिपति न छोरै । पनही
 वाहि मूँड पर तोरै ॥ १९ ॥ राव लखा त्रिय मुझै सँघारौ ।
 कोई न पहुँचा सिवक हमारौ । अब यह मुझै न जानै दैहै ।

कर बिक चुकी हूँ । मुझे अन्य कोई स्थान नहीं है, हे कृपासागर ! मैं जहाँ
 जाऊँ । मैं तुम्हारी छवि देखकर दीवानी हो गई हूँ । मैं तो तुम्हारे सौंदर्य
 में अटकी हुई हूँ और तुम क्यों मौन साधे हुए हो । तुम न तो अवसर को
 पहचान रहे हो और न ही बात को मान रहे हो; दोनों की ज्वानी निष्फल
 जा रही है ॥ १५ ॥ प्रीति की गीति की जितनी बातें थीं वे धनिक की पुत्री
 ने राजा के पास कीं । वह चौंककर चकित था और हाथ बाँधकर अभिमानी
 मुख से मौन था । वह हाय-हाय करती रही, उसके पाँव पकड़ती रही, गुण
 गा-गाकर थक गई पर उसने एक भी न जानी । वह मूर्ख तो मौन ही
 धारण किए रहा । उसने अनेकों बातें कहीं पर उस (राजा) ने एक भी न
 मानी ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा ने जब एक भी बातें न मानी तो धनिक-
 पुत्री अत्यधिक क्रुद्ध हो उठी । सखियों को उसने इशारा कर दिया और
 राजा को भुजाएँ पकड़ ली ॥ १७ ॥ पकड़कर राजा की पगड़ी उतार दी
 और सात जूते उसके सिर पर मारे । अन्य पुरुष कोई वहाँ दिखाई नहीं
 दे रहा था जो आकर राजा को सहारा देता ॥ १८ ॥ राजा लज्जावश
 हाय भी नहीं कह रहा था कि कहीं कोई व्यक्ति मुझे पहचान न ले ।
 धनिक-पुत्री राजा को छोड़ नहीं रही थी और उसी के सिर पर जूता तोड़
 रही थी ॥ १९ ॥ राजा ने देखा कि स्त्री मुझे मार डालेगी और मेरा

पनी हनत म्रित लोक पठै है ॥ २० ॥ पनहीं जब सोरह सै परी । तब राजा की आँख उधरी । इह अबला गहि मोहि सँघरि है । कवन आनि ह्याँ मुझ उबरि है ॥ २१ ॥ पुनि राजा इह भाँति बखानो । मैं लिय तोर चरित न जानो । अब जूतिन सौ मुझ न मारो । जौ चाहौ तौ आनि बिहारो ॥ २२ ॥ शाह सुता जब यौ सुनि पाई । (मू० प्र० १३५७) नैन सैन दै सखी हटाई । आपु गई राजा पहि धाइ । काम भोग कीना लपटाइ ॥ २३ ॥ पोसत भाँग अफीम मिलाइ । आसन ता तर दियो बनाइ । चुंबन राइ अलिगन लए । लिंग देत तिह भग सो भए ॥ २४ ॥ भग सो लिंग दियो राजा जब । रुचि उपजी तरनी के जिय तब । लपटि लपटि आसन तर गई । चुंबन करत भूपन के भई ॥ २५ ॥ गहि गहि तिह को गरे लगावा । आसन सौ आसनहि छुहावा । अधरन सौ दोऊ अधर लगाई । दुहँ कुचन सौ कुचन मिलाई ॥ २६ ॥ इह बिधि भोग किया राजा तन । जिह बिधि रुचा चंचला के मन । बहुरौ राव बिदा करि दियो ।

सेवक अभी तक कोई भी नहीं पहुँचा है । अब यह मुझे जाने नहीं देगी और मारे जूतों के मुझे मृत्युलोक पहुँचा देगी ॥ २० ॥ जब सोलह सौ जूते बरस चुके तो राजा की आँखें खुलीं । यह स्त्री यदि मुझे यहाँ मार ही डालेगी तो कौन आकर यहाँ मुझे बचाएगा ॥ २१ ॥ तब राजा ने कहा कि हे स्त्री ! मैंने तुम्हारा प्रपंच नहीं समझा है । तुम अब जूतों से मुझे मत मारो और जैसा चाहो मेरे साथ आकर रमण करो ॥ २२ ॥ धनिक-पुत्री ने जब यह सुना तो आँख के इशारे से उसने सखियों को हटा दिया । आप दौड़कर राजा के पास गई और लिपटकर काम-भोग करने लगी ॥ २३ ॥ पोस्त, भाँग, अफीम वगैरः मिलाकर उसने नीचे से विभिन्न आसन बनाए । चुंबन-आलिगनों का आदान-प्रदान किया और लिंग को योनि में प्रविष्ट किया ॥ २४ ॥ जब राजा ने लिंग को योनि में प्रविष्ट कराया तो तरुणी को अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ । वह नीचे से ही लिपट-लिपटकर जाने लगी और राजा के चुंबन लेने लगी ॥ २५ ॥ पकड़-पकड़कर उसे गले से लगाया और अंग से अंग छुआ दिए । अधरों से अधर और कुचों से कुच मिला दिए ॥ २६ ॥ इस प्रकार जैसा स्त्री को अच्छा लगा राजा ने रति-क्रीड़ा की । फिर राजा को विदा कर दिया और उसने अन्य देश का रास्ता पकड़ा ॥ २७ ॥ रतिक्रीड़ा की और राजा को विदा कर

अनत देस को मारग लियो ॥ २७ ॥ रति करि राव बिदा
करि दिया । ऐसा चरित चंचला किया । अवर पुरख सौ
राव न भाखा । जो त्रिय किय सो जिय सो राखा ॥ २८ ॥
॥ दोहरा ॥ कितक दिनन त्रिप चंचला पुनि बहु लई बुलाइ ।
रानी करि राखी सदन सका न को छल पाइ ॥ २९ ॥ १ ॥

॥ इति स्त्री चरित पद्याने त्रिया चरिते मंत्री भूप संवादे चार सौ दोइ चरित
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ४०२ ॥ ७१४० ॥ अफजू ॥

अथ चार सौ तीन चरित कथनं ॥

॥ चौपई ॥ सुन त्रिप और चरित बखानो । जिह
बिधि किया चंचला जानो । अनदावती नगर इक सोहै ।
राइ सिघ राजा तह को है ॥ १ ॥ शिवदेई तिह नारि
बिचछन । रूपवान गुनवान सुलच्छन । राजा आपु चरित
बनावत । लिखि लिखि पढ़ि इसत्रियन सुनावत ॥ २ ॥
शिवामती इह बिधि जब सुनी । अधिक बिहसि करि मूंडी
धुनी । अस करि इसै चरित दिखाऊं । याह भजो याही ते

दिया । इस प्रकार का प्रपंच उस स्त्री ने किया । राजा ने भी अन्य पुरुष
से कुछ न कहा और स्त्री ने जो किया था उसे मन में ही रखा ॥ २८ ॥
॥ दोहा ॥ कितने ही दिनों बाद राजा ने उसी स्त्री को पुनः बुला लिया ।
उसे रानी बनाकर रखा और कोई भी इस छल को जान न
सका ॥ २९ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित के मंत्री-भूप-संवाद में चार सौ दोवें चरित
की शुभ सत् समाप्ति ॥ ४०२ ॥ ७१४० ॥ अफजू ॥

चार सौ तीसरा चरित-कथन

॥ चौपाई ॥ राजन् ! एक और प्रपंच सुनो जो किस प्रकार एक स्त्री ने
किया । अनदावती नामक एक नगर है जहाँ का राजा राय सिंह है ॥ १ ॥
शिवदेवी वहाँ विलक्षण स्त्री थी जो रूपवान, गुणवान और सुलक्षणा थी ।
राजा स्वयं कहानियाँ बनाता था और लिख-लिखकर तथा पढ़कर स्त्रियों
को सुनाता था ॥ २ ॥ शिवामती ने जब यह सुना तो उसने प्रसन्न होकर
सिर हिलाया । अब ऐसा प्रपंच कहूँगी कि इसके साथ रमण-क्रिया कहूँगी
और इसी से लिखाऊँगी ॥ ३ ॥ वह जैसे-तैसे राजा को फुसलाकर उसे

लिखाऊं ॥ ३ ॥ जिह तिह बिधि भूपहि फुसलाइ । मिलत
 भई दिन हीं कह आइ । आनि गरे ताके लपटाई । भाँति
 भाँति तन केल रचाई ॥ ४ ॥ भाँत भाँत जददप तिह भजा ।
 तऊ न त्रिय आसन तिह भजा । भाँति भाँति उर सो उरझानी ।
 निरखि भूप का रूप बिकानी ॥ ५ ॥ भोग कभाइ गई डेरें
 जब । सखियन साथ बखानो इम तब । इह राजै मुहि आजु
 बुलायो । दिन ही मो संग भोग कभायो ॥ ६ ॥ सासु ससुर
 जब ही सुन पाई । (सू० ग्रं० १३५८) और सुनत भी सगल लुगाई ।
 आजु राज यासों रति सानी । बूझि गए सभ लोग कहानी ॥ ७ ॥
 पुनि शिव दे इह भाँति उचारो । मैं देखत थी हिया तिहारो ।
 बात कहे मुहि ए क्या करिहैं । चुप करि है कि कोप करि
 लरिहैं ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ दिन को ऐसो को त्रिय करम
 कमावई । दिखत जार को धाम नारि किमि जाबई । ऐस
 काज करि कवन कहो किमि भाखिहैं । हो अपने चित की बात
 चित मो राखिहैं ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ बैन सुनत सभहिन
 सचु आयो । किनू न तह इह कथहि चलायो । जो कोई ऐस
 करम कौ करिहैं । भूलि न काहू पास उचरिहैं ॥ १० ॥

दिन में ही आ मिली । आकर उसके गले से लिपट गई और विभिन्न प्रकार
 से उसके साथ केलिक्रीड़ा की ॥ ४ ॥ विभिन्न प्रकार से उसने उसके साथ
 रमण किया, फिर भी उस स्त्री ने शय्या का त्याग नहीं किया । वह तरह-
 तरह से उसकी छाती से लिपटी रही और राजा का रूप देखकर उलझ
 गई ॥ ५ ॥ जब वह केलिक्रीड़ा करके घर गई तो उसने सखियों से कहा
 कि इस राजा ने आज मुझे बुलाया और दिन में ही मेरे साथ रतिक्रीड़ा
 की ॥ ६ ॥ सास-ससुर और अन्य स्त्रियों ने भी सुना कि आज राजा ने इसके
 साथ केलिक्रीड़ा की है । इस कहानी को सभी समझ गए ॥ ७ ॥ फिर
 शिवदेवी ने कहा कि मैं तो तुम लोगों का दिल देख रही थी कि बात करने
 पर ये लोग मुझे क्या कहते हैं । चुप रहते हैं अथवा क्रुद्ध होते हैं और मुझसे
 लड़ते हैं ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ दिन में भला कौन स्त्री ऐसा कर्म कमाएगी
 दिन दहाड़े भला यार के घर पर कैसे जाएगी । फिर ऐसा काम करके भल
 कोई कहेगा कैसे और क्या चित्त की बात चित्त में ही नहीं रखेगा ॥ ९ ॥
 ॥ चौपाई ॥ बातें सुनकर सबने सच मान लिया । तब किसी ने बात आगे
 नहीं चलाई । सबने सोचा कि जो कोई ऐसा कर्म करता है वह भूलक
 भी किसी से बात नहीं करता ॥ १० ॥ लोगों को इस प्रकार भ्रम में डालक

लोगन कह इह बिधि डहकाइ । पिय तन पत्नी लिखी बनाइ ।
मो पर यार अनुग्रह कीजे । इह भी चरित ग्रंथ लिखि
लीजे ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ इति श्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मंत्री भूप संवादे चार सौ तीन चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ४०३ ॥ ७१५१ ॥ अफजूं ॥

अथ चार सौ चार चरित्र कथनं ॥

॥ सबुधि बाच ॥ ॥ चौपई ॥ सत्तिसंधि इक भूप भनिज्जै ।
प्रथमे सतिजुग बीच कहिज्जै । जिह जस पुरी चौदह छायो ।
नारद रिखि तब राइ सँगायो ॥ १ ॥ सभ देवन को राजा
भयो । ब्रह्मा तिलक आपु तिह दयो । निहकंटक सुर कटक
किया सब । दानव मार निकार दए जब ॥ २ ॥ इह बिधि
राज बरख बहु किया । दीरघ दाढ़ दैत भव लिया । दस सहस
छूहनि दल लैके । चढ़ि आयो तिह ऊपर तैके ॥ ३ ॥ सभ
देवन ऐसे सुनि पायो । दीरघ दाढ़ दैत चढ़ि आयो । बीस
सहस छोहनि दल लियो । वा सौ जाइ समागम कियो ॥ ४ ॥

उसने प्रिय को पत्र लिखा कि हे प्रिय ! मुझ पर कृपा करो और अपने ग्रंथ में
यह चरित्र भी दर्ज कर लो ॥ ११ ॥ १ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मंत्री-भूप-संवाद में चार सौ तीसरे
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ४०३ ॥ ७१५१ ॥ अफजूं ॥

चार सौ चौथा चरित्र-कथन

॥ सुबुद्धि उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ सत्यसंधि नामक एक राजा सतयुग में
कहा जाता था । उसका यश चौदह लोकों में छाया हुआ था । उसने नारद
ऋषि को भी अपने पास बुलाया था ॥ १ ॥ वह सभी देवताओं का राजा
बन गया था और ब्रह्मा ने स्वयं उसे तिलक प्रदान किया था । उसने
देवताओं को निर्भय बना दिया और सभी दानवों को मार निकाला ॥ २ ॥
इस प्रकार उसने बहुत वर्षों तक राज्य किया । (बहुत समय बाद)
दीर्घदाढ़ नामक दैत्य पैदा हुआ जो दस सहस्र अक्षौहिणी सेना लेकर इस
पर आ चढ़ा ॥ ३ ॥ सब देवताओं ने सुना कि दीर्घदाढ़ दैत्य चढ़ आया है
तो इन्होंने भी बीस सहस्र अक्षौहिणी सेना लेकर, उससे आकर मुकाबला
किया ॥ ४ ॥ सूर्य को सेनापति बनाया और दाहिनी ओर चन्द्र को रख

सूरज कह सैनापति कीना । दहिने ओर चंद्र कह दीना । बाई
 ओर कारतिके धरा । जिह पौरख किनहूँ नहि हरा ॥ ५ ॥
 इह दिस सकल देव चढ़ि धाए । उहि दिसि तें दानव मिलि
 आए । बाजन भाँति भाँति तन बाजे । दोऊ दिसिन
 सूरमा गाजे ॥ ६ ॥ दै दै ढोल बजाइ नगारे । पी पी भए
 कंक मतवारे । तीस सहस्र छोहनि दल राखा । रन दारुनु
 राचा जगनाथा ॥ ७ ॥ भाँति भाँति मारु जब बाजो । दीरघ
 दाढ़ दैत रन गाजो । तीछन बान दोऊ दिसि बहही । जाहि
 लगत तिह माँझ (सू०ग्रं० १३५६) न रहही ॥ ८ ॥ धावत भए
 देवता जबही । दानव भरे रोस तन तबही । भाँति भाँति
 बादित्त बजाइ । खली उठे खिग खुनसाइ ॥ ९ ॥ चले बान
 दुहूँ ओर अपारा । बिछुआ बरछी वज्र हजार । गदा गरिसट
 जवन पर झरही । स्यंदन सहित चूरन तिह करही ॥ १० ॥
 जाके लगे अंग मै बाना । करा बीर तिह स्वरग पयाना ।
 मचयो बीर खेत बिकराला । नाचत भूत प्रेत बेताला ॥ ११ ॥
 झूमि झूमि कही गिरे धरित भट । जुदे जुदे कही अंग परे कटि ।
 चली स्रोत की नदी बिराजै । बैतरणी जिन को लखि

लिया । बायीं ओर कार्तिकेय को रखा जिसके पौरुष का कोई भी नाश
 नहीं कर पाया है ॥ ५ ॥ इस दिशा से सभी देवगण चढ़ आए और उध्वर से
 दानव मिलकर आ पहुँचे । विभिन्न प्रकार के बाजे बजे और दोनों दिशाओं
 से शूरवीर गरजने लगे ॥ ६ ॥ ढोल नगाड़े बजाए गए और वीर मदिरा
 पी-पीकर मतवाले हो उठे । तीस सहस्र अक्षौहिणी दल नै, हे भगवान,
 भीषण युद्ध मचा दिया ॥ ७ ॥ विभिन्न प्रकार के जब मारु वाद्य बजने
 लगे तो दीर्घदाढ़ दैत्य युद्ध में आ गरजा । तीखे बाण दोनों ओर से चलने
 लगे और वे जिसे लगते थे उसके अंदर फँसे नहीं रहते थे ॥ ८ ॥ जब देवता
 बढ़े तो दानव भी क्रोध से भर उठे । विभिन्न प्रकार के बाजे बजाकर क्षत्रिय
 खड़गों को बजाकर चल पड़े ॥ ९ ॥ दोनों ओर से बाण, बिछुआ, बरछी और
 अनेकों वज्र चलने लगे । भारी गदाएं जिस पर पड़ती थीं वे रथ-समेत चूर-चूर
 कर दिए जाते थे ॥ १० ॥ जिसके अंग में बाण लगता था वही वीर स्वर्ग
 प्रस्थान कर जाता था । वीर का भीषण युद्ध मच गया और भूत-प्रेत-वेताल
 नाचने लगे ॥ ११ ॥ कहीं झूम-झूमकर वीर धरती पर गिरे थे और कहीं अलग-
 अलग कट्टे पड़े हुए अंग गिरे थे । रक्त की बहती नदियों को देखकर बैतरणी भी

लाजै ॥ १२ ॥ इह दिसि अधिक देवता कोपे । उहि दिसि
पाव दानवन रोपे । कुपि कुपि अधिक हिन मो भिरे ।
जूझि जूझि गो बहुरि न फिरे ॥ १३ ॥ कोटिक कटक तहाँ कटि
मरे । जूझे गिरे बरंगनिन बरे । दोऊ दिसि मरे काल के
प्रेरे । गिरे भूमि रन फिरे न फेरे ॥ १४ ॥ सत्तिसंधि देविस
इत धायो । दीरघ दाढ़ उह ओर रिसायो । बज्र बाण बिछुआ
कै कै ब्रण । जूझि जूझि भट गिरत भए रण ॥ १५ ॥
जोगिनि जच्छ कहूँ हरखए । भूत प्रेत नाचत कहूँ भए ।
कह कह कह कलि शाह सुनावत । भीखन सुने शबद भै
भावत ॥ १६ ॥ फिरें दैत कहूँ दाँत निकारे । बमत खोन
केते रन मारे । कहूँ शिवा सामुहि फिकराही । भूत पिसाच
मास कहूँ खाही ॥ १७ ॥ सकटाब्यूह रचा सुरपति तब ।
क्रौंचाब्यूह कियो असुरिस जब । सचियो तुमल जुद्ध तह भारी ।
गरजत भए वीर बलधारी ॥ १८ ॥ जूझि गए जोधा कहीं
भारे । देव गिरे दानव कहीं मारे । बीच खेत ऐसा तह परा ।
दोऊ दिसि इक सुभट न उबरा ॥ १९ ॥ जौ क्रम क्रम करि
कथा सुनाऊँ । ग्रंथ बढन ते अधिक डराऊँ । तीस सहस

लज्जित होती थी ॥ १२ ॥ इधर देवता अत्यधिक कुपित हुए और उधर दानवों
ने भी पाँव जमा लिये । वे हृदय में क्रोध से भरे हुए जूझ गए और फिर वापस
नहीं पलटे ॥ १३ ॥ अमैकों वीर वहाँ कट मरे; वे जूझ गए और अप्सराओं
ने उनका वरण कर लिया । दोनों ओर काल से प्रेरित वीर मर गए थे और
भूमि पर गिर पड़े थे पर वापस नहीं घूमे ॥ १४ ॥ इधर से देवराज सत्यसंधि
चला और उधर दीर्घदाढ़ क्रुद्ध हो उठा । वज्र, बाण और बिछुआ के घावों से
पीड़ित वीर जूझ-जूझकर युद्धस्थल में गिर रहे थे ॥ १५ ॥ कहीं योगिनियाँ
और यक्ष प्रसन्न थे और कहीं भूत-प्रेत नृत्य कर रहे थे । काल के कहकहों को
सुनकर सबको भय लगता था ॥ १६ ॥ कहीं दैत्य दाँत निकाले घूम रहे थे और
कहीं मारे हुए वीर रक्त वमन कर रहे थे । कहीं चंडिका सामने ही फुंकार
रही थी और कहीं भूत-प्रेत मांस खा रहे थे ॥ १७ ॥ देवराज ने तब शकटाब्यूह
की रचना की जब दानवों ने क्रौंचाब्यूह बना लिया । भारी तुमुल युद्ध मच गया
और बलशाली वीर गरजने लगे ॥ १८ ॥ कहीं भारी-भारी योद्धा जूझ गए ।
कहीं देव और कहीं दानव मारे हुए गिर पड़े थे । युद्ध में इतने वीर पड़े
थे कि दोनों दिशाओं से एक भी योद्धा न बचा ॥ १९ ॥ यदि क्रमानुसार
सुनाऊँ तो ग्रंथ के बढ़ जाने से डरता हूँ । जहाँ तीस हजार अक्षौहिणी योद्धा

छूहनि जह जोधा । मंड्यो बीर खेत करि क्रोधा ॥ २० ॥
 पतीअन सो पतीअन भिरि मरे । स्वारन के स्वारन छै करे ।
 रथियन तह रथियन कौ घायो । हाथिन दंती स्वरग
 पठायो ॥ २१ ॥ दलपति सौ दलपति लरि मूआ । इह बिधि
 नास कटक का हूआ । बचे भूप ते कोप बडाई । माँडत भे
 हठ ठानि लराई ॥ २२ ॥ रन माँडत भे बिबिध प्रकारा ।
 दैतराट अरु देव त्रिपारा । रसना इती (मू०ग्रं० १३६०) न भाख
 सुनाऊँ । ग्रंथ बढन ते अति डरपाऊँ ॥ २३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात
 छंद ॥ कहा लौ बखानौ महा लोह भच्यो । दुहूँ ओर ते बीर
 एकै न बच्यो । तबै आनि जूटे दोऊ छत्र धारी । परा लोह
 गाढ़ो कपी भूमि सारी ॥ २४ ॥ जुटे राव दोऊ उठी धूरि ऐसी ।
 प्रलै काल की अगनि की धुन्न जैसी । न हाथै पसारा तहा
 द्रिशटि आवै । कछू भूमि आकाश हेरो न जावै ॥ २५ ॥
 ॥ अड़िल्ल ॥ तीस सहस्र छूहनि दल जब जूझत भयो । दुहूँ
 त्रिपन के कोप अधिक तबही भयो । पीसि पीसि रदनछद
 बिसिख प्रहारही । हो जो जीय भीतर कोप सु प्रगट
 दिखारही ॥ २६ ॥ ॥ चौपई ॥ बीस बरस निसु दिन रन करा ।
 दुहूँ त्रिपन ते एक न टरा । अंतकाल तिन दुहूँ खपायो ।

ये वहाँ सब वीरों ने क्रुद्ध हो युद्ध किया ॥ २० ॥ सेनापति सेनापतियों से
 भिड़ मरे और सवारों को सवारों ने मार डाला । रथियों ने रथियों का
 संहार किया और हाथियों ने हाथियों को स्वर्ग भेज दिया ॥ २१ ॥ दलपति
 से दलपति लड़ मरे और इस प्रकार सेना का नाश हुआ । अब जो राजा
 बचे थे वे क्रुद्ध हो युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ दैत्यसम्राट और देवराज अब
 विविध प्रकार से युद्ध करने लगे । मेरी जिह्वा कहने में असमर्थ है और मैं
 ग्रंथ के बढ़ जाने से भी डरता हूँ ॥ २३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ कहाँ तक
 वर्णन करूँ, भीषण युद्ध हुआ और दोनों ओर से एक भी वीर न बचा । तभी
 दोनों छत्रधारी आभिड़े और भीषण युद्ध से सारी भूमि काँप उठी ॥ २४ ॥
 दोनों राजा भिड़े और इतनी धूल उड़ी कि मानों प्रलयकाल की अग्नि का
 धुआँ हो । वहाँ पसारा हुआ हाथ भी नज़र नहीं आता था और धरती-आकाश
 का भी भान नहीं होता था ॥ २५ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ तीस सहस्र अक्षौहिणी
 दल जब जूझ गया तो दोनों राजाओं का मन क्रुद्ध हो उठा । वे दाँत पीस-
 पीसकर बाणों से प्रहार कर रहे थे और मन के क्रोध को प्रकट दिखा रहे
 थे ॥ २६ ॥ ॥ चौपाई ॥ बीस वर्ष तक रात-दिन युद्ध किया परन्तु दोनों राजाओं

उहि कौ इह इह कौ उहि घायो ॥ २७ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ जब
छूहनी तीस साहस्र भारे । दोऊ रावई राव जूझे करारे ।
मच्यो लोह गाढो उठी अगनि ज्वाला । भई तेज तौने हुते एक
बाला ॥ २८ ॥ तिसी कोप की अगनि तें बाल हवैकै । हसी
हाथ मै शस्त्र ओ अस्त्र लैकै । महा रूप आनूप ताको बिराजै ।
लखे तेज ताको ससी सूर लाजै ॥ २९ ॥ ॥ चौपाई ॥ चारहु
दिसा फिरी जब बाला । जानो नाग रूप की माला । ऐस
न कतहूँ पुरख निहारा । नाथ करै जिह आपु सुधारा ॥ ३० ॥
फिर जिय मै इह भाँति बिचारी । बरौ जगत के पतिहि
सुधारी । ताते करौ दीन हवै सेवा । होइ प्रसन्न कालिका
देवा ॥ ३१ ॥ अधिक सुचित हवै किए सुमंत्रा । भाँति भाँति
तन लिखि लिखि जंत्ता । क्रिपा करी जगमात भवानी । इह
बिध बतिया ताँहि बखानी ॥ ३२ ॥ करि जिनि शोक ह्रिदै
तै पुत्री । निरंकार बरिहै तुहि अत्नी । ताका ध्यान आजु
निसि धरियहु । कहिहै जु कछू सोई तुम करियहु ॥ ३३ ॥
जब अस बर तिह दियो भवानी । प्रफुलित भई जगत की
रानी । अति पवित्त निसि हवै छित सोई । जिह ठाँ और न

में से एक भी न टला । अन्त में काल ने दोनों को मार डाला । उसने इसको
और इसने उसको मार डाला ॥ २७ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ जब तीस सहस्र
अक्षोहिणी सेना मारी गई तो दोनों राजा आपस में बुरी तरह भिड़ गए ।
भीषण युद्ध मच गया और अग्नि की ज्वालाएँ उठने लगीं और उन्हीं ज्वालाओं
में से एक स्त्री पैदा हुई ॥ २८ ॥ उसी क्रोधाग्नि से उत्पन्न हो, स्त्री हाथ में
अस्त्र-शस्त्र ले हँसने लगी । उसका रूप-सौंदर्य अनुपम था जिसे देखकर चन्द्र
और सूर्य भी लज्जित होते थे ॥ २९ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह स्त्री जब चारों दिशाओं
में घूमने लगी तो ऐसी लग रही थी मानों नागों की माला हो । ऐसे कोई
पुरुष नहीं दिखाई दे रहा था जिसे वह अपना स्वामी बना ले ॥ ३० ॥ फिर
उसने मन में विचार किया कि मैं जगत्पति का ही वरण करूँगी । इससे
मैं दीनतापूर्वक सेवा करूँ जिससे कालदेव प्रसन्न हो जाय ॥ ३१ ॥ उसने
अधिक चैतन्य हो विचार किया और भाँति-भाँति के यन्त्र लिखे । उस पर
जगत्माता भवानी ने कृपा की और उससे कहा ॥ ३२ ॥ कि हे पुत्री ! तुम
मन में शोक मत करो निराकार प्रभु तुम्हारा वरण अवश्य करेंगे । तुम
उसका ध्यान धरो और जो वह कहे वही तुम करना ॥ ३३ ॥ जब भवानी
ने उसे ऐसा वरदान दिया तो वह जगत् की रानी प्रफुल्लित हो उठी । वह

दूसर कोई ॥ ३४ ॥ अरध रात्रि बीतत भी जबही । आग्या
 भई नाथ की तबही । स्वास बीरज दानव जब मरिहैं ।
 तिह पाछे सुंदरि मुहि बरिहैं ॥ ३५ ॥ इह बिधि तिह आग्या
 जब भई । दिनमनि चढ़यो रैन मिटि गई । साजे शस्त्र
 चंचला तब ही । रन कौ चली साथ (सू० प्र० १३६१) लै
 सबहीं ॥ ३६ ॥ ॥ दोहरा ॥ जहाँ शत्रु को पुर हुतो तित कह किया
 पयान । बिकट असुर को बेढ़ि गढ़ दह दिस दियो निशान ॥ ३७ ॥
 ॥ चौपई ॥ दुंदभि सुना सवन महि जबहीं । जागा असुर कोप
 करि तबहीं । ऐसा कवन जु हम पर आयो । रक्तबिंदु मै रनहि
 हरायो ॥ ३८ ॥ इंद्र चंद्र सूरज हम जीता । रावन जिता
 हरी जिन सीता । एक दिवस मोसौ शिव लरा । ताहि भजायो
 मैं नहि टरा ॥ ३९ ॥ शस्त्र साज दानव रन आवा । अमित
 कोप करि संख बजावा । काँपी भूप गगन घहराना । अतुल
 बीरज किह ओर रिसाना ॥ ४० ॥ इति दिसि दूलहदेइ
 कुमारी । शस्त्र साजि रथि करी सवारी । शस्त्रन करि प्रनाम
 तिह काला । छाडत भी रन बिसिख कराला ॥ ४१ ॥ लगे

अत्यंत पवित्र होकर धरती पर सो गई और उस स्थान पर अन्य कोई नहीं
 था ॥ ३४ ॥ जब आधी रात बीत गई तभी स्वामी की आज्ञा हुई ।
 श्वासवीर्य दानव जब मारा जायगा, उसके बाद हे सुन्दरी ! तुम मेरा वरण
 करोगी ॥ ३५ ॥ उसे जब इस प्रकार की आज्ञा हुई तो दिन चढ़ गया और रात
 बीत गई थी । उस स्त्री ने तभी शस्त्र सजाए और सबको साथ ले युद्ध के लिए
 चल पड़ी ॥ ३६ ॥ ॥ दोहरा ॥ जहाँ शत्रु का नगर था उसने उस ओर प्रस्थान
 किया और उस विकट असुर के किले को घेरकर चारों तरफ़ नगाड़े बजवा
 दिए ॥ ३७ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब दुंदुभियों की आवाज़ सुनी तो वह असुर
 क्रुद्ध हो जाग पड़ा । ऐसा कौन है जो मुझ पर आ चढ़ा है, मैंने तो रक्तबीज
 को भी युद्ध में हरा दिया था ॥ ३८ ॥ इंद्र, चन्द्र, सूर्य को मैंने हराया और
 रावण, जिसने सीता का हरण किया था, को भी मैंने जीत लिया था । मुझसे
 एक दिन शिव भिड़ गया था और मैंने बिना हिले उसे भी भगा दिया ॥ ३९ ॥
 वह दानव शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध में आ गया और अपरिमित रूप से
 क्रुद्ध हो उसने शंख फूँका । धरती काँप उठी और आकाश हड़बड़ा गया
 कि अतुलवीर्य किस पर क्रुद्ध हो उठा है ॥ ४० ॥ इधर दूलहदेवी कुमारी ने
 भी शस्त्र सजाकर रथ पर सवारी की । वह शस्त्रों को प्रणाम कर युद्ध में
 विकराल बाण छोड़ने लगी ॥ ४१ ॥ जब अंगों में करारे बाण लगे तब

बिसिख जब अंग करारे । दानव भरे कोप तब भारे । मुख
ते स्वास स्मित हवै काढे । तिन ते अमित असुर रन
बाढे ॥ ४२ ॥ तिनका बाल बहुरि बध करा । उन का खोन
प्रिथी पर परा । अगनित बढे तबै तह दानव । भच्छत भए
पकरि करि मानव ॥ ४३ ॥ जब अबला के सुभट चबाए ।
दूलह दे तिह बिसिख लगाए । बुंदका परत खोन भुअ भए ।
उपजि असुर सामुहि उठि धए ॥ ४४ ॥ पुनि अबला तिन
बिसिख प्रहारे । चले खोन के तहाँ पनारे । असुर अनंत तहाँ
ते जागे । जूझत भए पैग नहि भागे ॥ ४५ ॥ ॥ भुजंग
छंद ॥ जबै ओर चारौ उठे दैत बानी । कए कोप गाड़ो लए धूलि
धानी । किते मूँड मुंडे किते अरध मुंडे । किते केश धारी
सिपाही प्रचंडे ॥ ४६ ॥ जिते दैत उठे तिते बाल मारे । वुठे
आनि बानानि बाँके डरारे । जिते स्वास छोरें उठे दैत भारे ।
हठी मार ही मारि कै कै पधारे ॥ ४७ ॥ किते कोप कै बीर
बाला सँघारे । जिते दैत ढूँके महाँ बाहु भारे । तित्यों का गिरा
आनि कै खोन भूपै । उठे नेक जोधा महाँ भीम रूपै ॥ ४८ ॥

दैत्य क्रोध से भर उठे । वे थककर मुख से श्वास निकालते थे तो उससे
अनेकों असुर बढ़ जाते थे ॥ ४२ ॥ स्त्री ने उनका वध किया और उनका
रक्त पृथ्वी पर गिरा । फिर अनेकों दानव पैदा हो गए जो पकड़-पकड़कर
मानवों का भक्षण करने लगे ॥ ४३ ॥ जब इस स्त्री के वीर चबा डाले गए
तो इसने भी बाण चलाए । परन्तु रक्त की बूँदें धरती पर पड़ते ही असुर
फिर पैदा हो उठकर सामने की ओर चल देते थे ॥ ४४ ॥ स्त्री ने पुनः बाणों
से प्रहार किया और वह रक्त की धाराएँ बह निकलीं । अब पुनः अनन्त
असुर उठ खड़े हुए जो जूझ रहे थे और क्रदम भी पीछे नहीं हटा रहे
थे ॥ ४५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ जब चारों ओर से दैत्यों की आवाज़ें सुनाई दे
रही थीं तो साथ ही वे क्रुद्ध भी हो रहे थे और धूल उड़ रही थी । कई सिर
काट डाले गए और कई धड़ ही धड़ दिखाई दे रहे थे । कहीं केशधारी
प्रचंड सिपाही दिखाई दे रहे थे ॥ ४६ ॥ जितने भी दैत्य उठे वे उस स्त्री ने
मार डाले और भागकर आते हुआँ को बाणों से भयभीत किया । वे जितने
भी श्वास छोड़ते थे उतने ही भारी दैत्य उठ पड़ते थे और 'मार-मार'
पुकारते हुए हठपूर्वक टूट पड़ते थे ॥ ४७ ॥ वीर बालिका ने क्रुद्ध हो दैत्यों
को मारा । जितने भी भारी दैत्य वहाँ एकत्र हुए थे उन सबका खून धरती
पर गिर पड़ा था । उनमें से अनेकों भीमकाय योद्धा उठ खड़े हुए ॥ ४८ ॥

॥ चौपई ॥ तिनकी भूमि जु मेजा परहीं । तिन तें अमित दैत
 बपु धरहीं । स्रोन गिरै तिनको धर माही । रथी गजी बाजी
 हवै जाही ॥ ४९ ॥ प्राण तजत स्वासा अरि तजैं । तिन से
 अमित असुर हवै भजैं । कितक असुर डारत भूअ लारैं । तिन
 तें अनिक दैत तन (मू०पं० १३६२) धारैं ॥ ५० ॥ तिन तें तजत
 असुर जे स्वासा । तिन तें दानव होहि प्रकाशा । कितक मरत
 कै तरुनि सँघारे । दसौ दिसिन महि असुर निहारे ॥ ५१ ॥
 चित्त मों किया कालका ध्याना । दरशन दिया आनि भगवाना ।
 करि प्रनाम चरनन उठि परी । बिनती भाँति अनिक तन
 करो ॥ ५२ ॥ सत्ति काल मैं दास तिहारी । अपनी जानि
 करो प्रतिपारी । गुण अवगुण मुर कछु न निहारहु । बाहि
 गहे की लाज बिचारहु ॥ ५३ ॥ हम हैं शरनि तोर
 महाराजा । तुम कह बाहि गहे की लाजा । जौ तव भगत नैक
 दुख पैहै । दीन दयाल प्रभु बिरदु लजैहै ॥ ५४ ॥ औ कह
 लगि मैं करौ पुकारा । तैं घट घट की जाननिहारा । कही
 एक करि सहस पछिनयहु । आपु आपने बिरदहि

॥ चौपाई ॥ भूमि पर उनकी मेधा गिरी और उससे अनेकों दैत्यों
 ने शरीर धारण कर लिया । उनका रक्त धरती पर गिरता था और वे
 रथी, गजी, अश्वारोहियों के रूप में आ जाते थे ॥ ४९ ॥ शत्रु श्वास त्याग
 कर प्राण छोड़ते थे और उनसे अनेकों असुर पैदा होकर भागे चले आते थे ।
 कितने ही असुर लड़ते हुए भूमि पर गिरा दिए जाते थे और उनसे अनेकों दैत्य
 शरीर धारण कर लेते थे ॥ ५० ॥ पुनः जो असुर प्राण त्यागते थे उनसे
 दानव पैदा हो जाते थे । तरुणी ने कितनों का ही संहार किया पर पुनः
 दशों दिशाओं में असुर दिखाई देने लग जाते थे ॥ ५१ ॥ अब कालिका ने
 चित्त में ध्यान किया और भगवान ने उसे आकर दर्शन दिए । वह प्रणाम
 कर उनके चरणों में जा पड़ी और अनेकों प्रकार से बिनती करने लगी ॥ ५२ ॥
 हे सत्यकाल ! मैं आपकी दासी हूँ और मुझे अपना समझकर मेरी पालना
 करो । मेरा गुण-अवगुण न देखो और मुझ शरणागत की लज्जा पर ध्यान
 दो ॥ ५३ ॥ हे महाराज ! मैं आपकी शरण में हूँ और मेरी बाँह पकड़ने की
 लज्जा रखो । हे प्रभु ! यदि तुम्हारा भक्त तनिक भी दुख पाता है तो तुम्हारे
 विरद को लाज लगती है ॥ ५४ ॥ मैं अब कहाँ तक पुकार करूँ, तुम तो घट-घट
 की जाननेवाले हो । हमारे एक बार कहने को आप हजारों गुना जानते हैं

जनियहु ॥ ५५ ॥ हड़ हड़ सुनत काल बच हसा । भगत हेत
 कटि सौ असि कसा । चित न करि मैं असुर सँघरिहौ ।
 सकल शोक भगतन को हरिहौ ॥ ५६ ॥ अमित असुर उपजे
 थे जहाँ । प्रापति भयो काल चलि तहाँ । चहूँ करन करि
 शस्त्र प्रहारे । दैत अनेक मार ही डारे ॥ ५७ ॥ तिन ते परा
 खोन जे भू पर । असुर अमित धावत भे उठि करि । तिन
 ते चलत स्वास ते छूटे । अमित दैत रन कह उठि जूटे ॥ ५८ ॥
 ते सभ काल तनिक मो मारे । चलत भए भुअ रुधिर पनारे ।
 उपजि असुर ताँते बहु ठाढे । धावत भए रोस करि गाढे ॥ ५९ ॥
 मारि मारि दिसि दसौ पुकारैं । तिन ते अमित असुर तन
 धारैं । बार चलत तिन तैं जे दौरैं । तिन ते होत असुर
 प्रगटौरैं ॥ ६० ॥ लगे घाइ जे खोन बमाही । तिह तैं गज
 बाजी हवै जाही । तिह ते चलित अनित जो स्वासा । तिन
 ते असुर करत परगासा ॥ ६१ ॥ अनगन काल असुर तब
 मारे । परे भूमि पर मनहु मुनारे । मेधा ते गज बाज उठाही ।
 खोनत के दानव हवै जाही ॥ ६२ ॥ बानन की बरखा उठि

और स्वयं अपने विरदपालक रूप को ज्यादा जानते हो ॥ ५५ ॥ यह वचन
 सुनकर काल हड़बड़ाकर हँस पड़ा और भक्त के लिए कमर से कृपाण कस ली ।
 तुम चिन्ता न करो, मैं असुर का संहार करके भक्तों के समस्त शोकों को दूर
 करूँगा ॥ ५६ ॥ जहाँ अनेकों असुर पैदा हुए थे काल वहाँ जा पहुँचा ।
 चारों हाथों से शस्त्र चलाकर उसने अनेकों दैत्यों को मार ही डाला ॥ ५७ ॥
 उनसे जो रक्त धरती पर गिरा उससे अनेकों असुर उठकर दौड़ पड़े ।
 अब उनके चलते साँसों से अनेकों दैत्य उठ पड़े और युद्ध में जुट गए ॥ ५८ ॥
 काल ने उन सबको क्षण भर में मार डाला और धरती पर रुधिर के पनाँले
 बहने लगे । असुर फिर पैदा होकर खड़े हो गए और क्रुद्ध हो आगे बढ़ने
 लगे ॥ ५९ ॥ दसों दिशाओं में वे मार-मार पुकारने लगे और उन्हीं से
 अनेकों असुर शरीर धारण कर रहे थे । दौड़ने पर जो और उन लोगों
 के कारण हवा चलती थी तो और असुर प्रकट हो जा रहे थे ॥ ६० ॥
 घाव लगने से रक्त वमन होता था उनसे हाथी-घोड़े बन रहे थे । उनसे
 जो साँस चलती थी उससे और असुर बनते जाते थे ॥ ६१ ॥ काल ने
 अनेकों असुरों को मारा जो धरती पर पड़ी मीनारों के समान लग रहे थे ।
 मेधा से हाथी-घोड़े उठ खड़े हो रहे थे और रक्त से दानव बनते जा रहे
 थे ॥ ६२ ॥ बाणों की वे वर्षा कर रहे थे और क्रुद्ध हो मार-मार

करही । मारि मारि करि कोप उचरही । तिन ते असुरन किया पसारा । दसे दिसन हूँ कह भरि डारा ॥ ६३ ॥ वहै कालका असुर खपाए । मारि दुबहिया धूरि मिलाए । पुनि पुनि उठै प्रहारें बाना । तिन ते धरत असुर तन नाना ॥ ६४ ॥ टूक टूक (सू० पं० १३६३) दानव जे भए । तिन तें अनिक असुर हवै गए । ताही तें दानव बहु हवै करि । जुद्ध करें आयुध ते लै करि ॥ ६५ ॥ बहुरि काल वै दैत सँघारे । तिल तिल पाइ टूक करि डारे । जेतिक गिरै भूमि टूक हवैकै । तितही उठै आयुधन लैकै ॥ ६६ ॥ तिल तिल करि भट जितक उडाए । तेतक तहाँ असुर बन आए । तिनके टूक टूक जे कीए । तिनते बहु दानव भव लीए ॥ ६७ ॥ केतिक तहाँ सुभै दंती रन । सींचहि मुंड बारि ते सभ तन । दाँत दिखाइ तजै चिघारा । गिरि गिरि परै निरखि असवारा ॥ ६८ ॥ कहूँ भेर भीखन भभकारहि । कहूँ बीर बाजी रन डारहि । कितक सूर सैहथी फिरावत । महाकाल के सनमुख धावत ॥ ६९ ॥ केतिक बज्र बरछियन लैकै । धावत असुर कोप तन तैकै ।

उच्चारण कर रहे थे । उनसे असुरों ने और प्रसार किया और दसों दिशाओं को भर दिया ॥ ६३ ॥ कालका ने राक्षसों को नष्ट कर डाला और दोनों भुजाओंवालों को धूल में मिला दिया । वे बार-बार उठकर बाण चला रहे थे और उन्हीं से असुर अनेकों शरीर धारण कर रहे थे ॥ ६४ ॥ जो दानव टुकड़े-टुकड़े हो गए थे उनसे अनेकों असुर पैदा हो गए । उन्हीं से अनेकों दानव पैदा होकर हाथ में धनुष लेकर युद्ध कर रहे थे ॥ ६५ ॥ पुनः काल ने उन दैत्यों का संहार किया और उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर डाला । भूमि पर जितने ही टुकड़े होकर वे गिरते थे उतनी ही संख्या में वे शस्त्र लेकर उठ खड़े होते थे ॥ ६६ ॥ तिल-तिल कर जितने भी वीर काटे उतने ही वहाँ असुर बनकर आ गए । उनके जितने टुकड़े किए उतने ही दानव फिर पैदा हो गए ॥ ६७ ॥ कितने ही हाथी वहाँ युद्ध में शोभायमान हो रहे थे और सूँड के पानी से सबके तन सींच रहे थे । दाँत दिखाकर वे चिघाड़ रहे थे, जिसे सुनकर सवार गिर पड़ रहे थे ॥ ६८ ॥ कहीं भीषण भेरियाँ भभक रही थीं और कहीं घोड़े वीरों को गिरा दे रहे थे । कितने ही शूरवीर बर्छा घुमाते हुए महाकाल के सामने जाते थे ॥ ६९ ॥ कितने ही असुर वज्र-बरछियाँ लेकर तथा क्रुद्ध होकर टूट पड़ रहे थे । वे काल पर क्रुद्ध हो प्रहार करते ऐसे लग रहे थे मानों दीपक पर पतंग टूट

कोपि काल पर करत प्रहारा । जानुक सलभ दीप
 अनुहारा ॥ ७० ॥ भरे गुमान बड़े गरबोले । धावत चौपि चड़े
 चटकीले । पीसि पीसि रदनछंद दोऊ । धावत महाँ काल पर
 सोऊ ॥ ७१ ॥ बाजहि ढोल मृदंग नगारा । भीखन करत
 भेर भभकारा । जंग मुचंग उपंग बजे रन । झालरि ताल
 नफीरन के गन ॥ ७२ ॥ मुरली मुरज कही रन बाजत ।
 दानव भरे गुमानहि गाजत । ढोलन पर दै दै ढमकारे । गहि
 गहि धवत कृपान कटारे ॥ ७३ ॥ दीरघ दाँत काढि कई
 कोसा । धावत असुर हिए करि जोसा । मारन महाँकाल कह
 धावें । मनो मारत वेई मरि जावें ॥ ७४ ॥ दानव महाँ कोप
 करि ढूके । मारहि मारि दसो दिसि कूके । दै दै ढोलि
 मृदंग नगारे । काढि काढि अरि दाँति डरारे ॥ ७५ ॥
 चाहत महाँ काल कह मारो । महाँ मूरख नहि करत बिचारो ।
 जिन सभ जग का करा पसारा । ताँहि चहत ते मूढ़
 सँघारा ॥ ७६ ॥ ठोकि ठोकि भुजदंडन जोधा । धावत
 महाँ काल पर क्रोधा । बीस पदुम दानव तव भयो । नास
 करन काली को धयो ॥ ७७ ॥ छूहनि सहस असुर की सेना ।

पड़ रहे हों ॥ ७० ॥ वे बड़े गुमानी थे और चटकते हुए दौड़ रहे थे ।
 दाँत पीस-पीसकर वे महाकाल पर टूट पड़ रहे थे ॥ ७१ ॥ ढोल-मृदंग-
 नगाड़े बज रहे थे और भेरियाँ भभकार रही थीं । युद्ध में मुचंग-उपंग,
 झालर और तूतियाँ बज रही थीं ॥ ७२ ॥ युद्ध में मृदंग, मुरली बज रही
 थी और दानव गर्व से भरे हुए थे । ढोलों पर थाप दे-देकर वे कृपाण,
 कटारें पकड़कर दौड़ रहे थे ॥ ७३ ॥ लंबे दाँत कई कोसों तक निकाल
 कर असुर हृदय में जोश लेकर दौड़ रहे थे । वे महाकाल को मारने को
 चलते थे और उसे मारते-मारते स्वयं ही मर जाते थे ॥ ७४ ॥ दानव
 अत्यन्त क्रुद्ध हो एकत्र हुए और दसों दिशाओं से मार-मार की आवाज
 सुनाई पड़ रही थी । ढोल, मृदंग, नगाड़े बजा-बजाकर दाँत निकालकर
 वे शत्रुओं को डरा रहे थे ॥ ७५ ॥ वे महाकाल को मारना चाहते थे
 और मूर्खतावश कोई विचार नहीं कर रहे थे । जिसने सारे संसार का
 प्रसार किया है वे मूर्ख उसको मारना चाह रहे थे ॥ ७६ ॥ भुआओं को
 ठोक्-ठोक्कर योद्धागण महाकाल पर टूट पड़ रहे थे । तब बीस पदम
 अर्थात् अगणित दानव काल का नाश करने के लिए चले ॥ ७७ ॥ सहस्र
 अश्वोहिणी सेना आँखें लाल करके चल पड़ीं । वे अपरिमित क्रोध करके

धावत भई अरुन करि नैना । धावत कोप अमित करि भए ।
 प्रिथ्वी के खट पट उडि गए ॥ ७८ ॥ एकै पुर प्रिथ्वी रहि
 गई । खट पट हयन पगन उडि गई । जनु बिधि एकै रचा
 पयारा । गगन (सू०ग्रं० १३६४) रचे दस तीनि सुधारा ॥ ७९ ॥
 महादेव आसन तें टरा । ब्रह्मा तसत बूट महि दुरा । निरखि
 बिशन रन अधिक डराना । दुरासिंध के बीच लजाना ॥ ८० ॥
 कड़ा कड़ी साचा घमसाना । निरखत देव दैत जा न्हान्हा ।
 महाँ घोर आहव तह परा । काँपी भूमि गगन थरहरा ॥ ८१ ॥
 निरखि जुद्ध काँपा कमलेसा । ताँते धरा नारि का भेसा ।
 पारबतीस लखि डरा लराई । बसा बन बिखैं अतिथ
 कहाई ॥ ८२ ॥ कारतकेय हवै रहा बिहंडल । ब्रह्म छाडि
 ग्रहि गयो कमंडल । पब्ब पिसान पगन भे तबही । जाइ
 बसे उत्तर दिसि सबही ॥ ८३ ॥ डगी धरनि अंबरि घहराना ।
 बाजखुरन ते पत्थ पिसाना । अंध गुबार भयो बानन तन ।
 हाथ बिलोक्यो जात न आपन ॥ ८४ ॥ बिछुआ बान बज्र रन
 बरखत । रिसि रिसि सुभट धनुख कह करखत । तकि तकि
 बान प्रकोप चलावैं । भेदि तान तन परैं परावैं ॥ ८५ ॥

दोड़े और पृथ्वी के छः भाग (खंड) तो मानों उड़ ही गए ॥ ७८ ॥
 पृथ्वी एक ही खंड रह गई और उसके छः खंड घोड़ों की टापों के कारण
 ही उड़ गए । जैसे विधाता ने मानों एक की ही रचना की हो और आकाश
 भी तेरह ही रचे हों ॥ ७९ ॥ भयभीत ब्रह्मा वृक्ष (कमल-नाल) में छिप
 गया । विष्णु भी युद्ध देख अत्यन्त भयभीत होकर समुद्र के बीच छिप
 गया ॥ ८० ॥ मारधाड़ का भीषण युद्ध हुआ जिसे देव-दैत्य सभी देख रहे
 थे । उस घोर युद्ध में भूमि काँप उठी और गगन थरथरा उठा ॥ ८१ ॥
 युद्ध देखकर विष्णु काँप उठा और नारि का वेश धारण कर लिया । शिव
 भी लड़ाई देख भयभीत हो उठा और साधु बनकर वन में जा बसा ॥ ८२ ॥
 कार्तिकेय भी व्याकुल हो उठा और ब्रह्मा भी अपना स्थान छोड़कर कमंडल
 में जा घुसा । पाँवों की रगड़ से पर्वत भी धूल बन गए और सभी
 भागकर उत्तर दिशा में जा बसे ॥ ८३ ॥ धरती हिल उठी और आसमान
 घबरा उठा । घोड़ों के खुरों से रास्ते चूर हो गए । वाणों के कारण
 अंधकार-सा छा गया और अपना हाथ पसारा नजर नहीं आता था ॥ ८४ ॥
 बिछुआ, वज्र, बाण युद्ध में बरसने लगे और क्रोधित हो वीरगण धनुषों को
 खींचने लगे । वे निशाना साधकर क्रोधपूर्वक बाण चलाते थे जो कवचों को

जबही भए अमित रण जोधा । बाढ्यो महाकाल कै क्रोधा ।
महाकोप करि बिसिख प्रहारे । अधिक शत्रु छिन माँझ
सँधारे ॥ ८६ ॥ रक्त संबूह धरनि तब परा । ताते बहु
दानवन बपु धरा । एक एक सर समहि चलाए । तिन ते
असुर अनिक हवै धाए ॥ ८७ ॥ आए जितक तितक तह
मारे । बहे धरनि पर रक्त पनारे । तिन ते अमित असुरन
बपु धरा । हम ते जात बिचार न करा ॥ ८८ ॥ डगमग
लोक चतुरदस भए । असुरन साथ सकल भरि गए । ब्रह्मा
बिशन सभै डरपाने । महाकाल की सरनि सिधाने ॥ ८९ ॥
इह बिधि सभै पुकारत भए । जनु कर लूटि बनिक से लए ।
ताहि ताहि हम सरन तिहारी । सभ भै ते हम लेहु
उबारी ॥ ९० ॥ तुम हो सकल लोक सिरताजा । गरबन
गंज गरीब निवाजा । आदि अकाल अजोनि बिना भै ।
निरबिकार निरलंब जगत भै ॥ ९१ ॥ निरबिकार निरजुर
अबिनासी । परम जोग के तत्तु प्रकासी । निरंकार नव नित्य

भेदकर दूसरी ओर जा निकलते थे ॥ ८५ ॥ जब युद्ध में अनेकों योद्धा
एकत्र हो गए तो महाकाल का क्रोध बढ़ उठा । उसने भीषण क्रोध कर
बाणों से प्रहार किया और अत्यधिक शत्रुओं को क्षण भर में मार
डाला ॥ ८६ ॥ जब रक्त का अंवार धरती पर गिरा तो उससे बहुत
से दानवों ने शरीर धारण कर लिया । एक-एक बाण सबने चलाया और
उनसे और अधिक असुर बनकर दौड़ पड़े ॥ ८७ ॥ जितने भी आए उन्हें
वहीं मार डाला गया और धरती पर रक्त के पनाले बहने लग गए ।
उससे अनेकों राक्षसों ने शरीर धारण किया और उनकी गिनती का विचार
मुझसे नहीं हो सकता ॥ ८८ ॥ चौदहों लोक डगमगा उठे और असुरों
के साथ भर गए । ब्रह्मा, विष्णु सभी डर गए और महाकाल की शरण
को दौड़े ॥ ८९ ॥ वे उसी तरह पुकार लगा रहे थे जैसे कोई लुटा हुआ
बनिया चिल्ला रहा हो । 'ताहिमाम्, ताहिमाम्' हम आपकी शरण में हैं,
हमें सर्व भय से मुक्त करो ॥ ९० ॥ तुम सम्पूर्ण लोकों के सिरताज हो ।
तुम गर्व करनेवालों का नाश करनेवाले हो और गरीबनिवाज हो । आदि
(पुरुष) अकाल, अजोनि और अभय तथा निर्विकार और निरालम्ब
हो ॥ ९१ ॥ तुम निर्विकार सदैव नूतन (निरजुर) और अबिनाशी हो तथा
परम योगी और तत्त्वप्रकाशक हो । तुम निराकार नित्य तथे एवं स्वयं
अपने आपसे प्रकाशित हो । तुम्हारा माता-पिता और वन्धु-बांधव कोई नहीं

सुयंभव । तात मात जह जात न बंधव ॥ ६२ ॥ शत्रु बिहंड
 सुरिदि सुखदाइक । चंड मुंड दानव के घाइक । सति संधि
 सत्तिता निवासा । भूत भविष्य भवान निरासा ॥ ६३ ॥
 आदि (मू० प्र० १३६५) अनंत अरूप अभेसा । घट घट भीतर किया
 प्रवेशा । अंतर बसत निरंतर रहई । सनक सनंद सनातन
 कहई ॥ ६४ ॥ आदि जुगादि सदा प्रभु एकै । धरि धरि
 मूरति फिरति अनेकै । सभ जग कह इह बिधि भरमाया ।
 आपे एक अनेक दिखाया ॥ ६५ ॥ घट घट सहि सोई पुरख
 बयापक । सकल जीव जंतन के थापक । जाते जोति करत
 आकरखन । ताकह रहत अतक जग के जन ॥ ६६ ॥ तुम
 जग के कारन करतारा । घटि घटि की सति जाननहारा ।
 निरंकार निरवैर निरालभ । सभही के मन की तुहि
 मालम ॥ ६७ ॥ तुमहीं ब्रह्मा बिशन बनायो । महारुद्र तुम
 ही उपजायो । तुमहीं रिखि कश्यपहि बनावा । दित अदित
 जन बैर बढावा ॥ ६८ ॥ जग कारन करनानिधि स्वामी ।
 कमल नैन अंतर के जामी । दयासिंधु दीनन के दयाला । हूजै

है ॥ ९२ ॥ शत्रुनाशक, सृष्ट्यदय और सुखदायक हो तथा चंड-मुंड दानवों का
 नाश करनेवाले हो । तुम सत्यसंधि सत्यता में निवास करनेवाले, भूत,
 भविष्य और वर्तमान के प्रभाव से परे हो ॥ ९३ ॥ तुम आदि, अनंत, अरूप,
 अवेश हो और तुमने घट-घट में प्रवेश किया हुआ है । सनक-सनंद और
 सनातन ने भी कहा है कि तुम हर एक के अंतर में बसते हो और निरंतर
 बने रहनेवाले हो ॥ ९४ ॥ आदि-जुगादि में सदैव एक ही प्रभु-रूप में
 तुम अनेकों रूप धारण कर भ्रमण करते हो । सारे संसार को इस प्रकार
 भ्रम में डाल रखा है कि स्वयं तो एक हो पर सबको अनेकों रूपों में दिखते
 हो ॥ ९५ ॥ समस्त जीव-जन्तुओं के स्थापक प्रभु घट-घट में तुम्हीं
 व्याप्त हो । जिसमें की ज्योति जब (संसार की) ज्योति को खींचती है
 तो संसार के जीव मृत हो जाते हैं ॥ ९६ ॥ हे कर्ता ! तुम्हीं जगत् के
 कारण हो और घट-घट की बात जाननेवाले हो । हे निराकार, निर्वैर,
 निराले प्रभु ! तुम्हें सबके मन की गति मालूम है ॥ ९७ ॥ तुम्हीं ने ब्रह्मा,
 विष्णु और महारुद्र को बनाया है । तुम्हीं ने कश्यप ऋषि को बनाया और
 दिति-अदिति के वारिसों में वैर-भावना बढ़ाई ॥ ९८ ॥ हे स्वामी ! तुम
 जगत् के कारण, करनानिधि, कमलनयन और अन्तर्यामी हो । दयासिंधु,
 दीनदयालु कृपाणु हम पर कृपा करो ॥ ९९ ॥ हम विनती करते हुए

क्रिपानिधान क्रिपाला ॥६६॥ चरन परे इह बिधि बिनती करि ।
 ताहि ताहि राखहु हम धुरधर । कह कह हसा बचन सुन काला ।
 भगत जान कर भयो क्रिपाला ॥ १०० ॥ रच्छ रच्छ करि
 शब्द उचारो । सभ देवन का शोक निवारो । निजु भगतन
 कह लियो उबारा । दुशटन के संग कर्यो अखारा ॥ १०१ ॥
 करि करि कोप काल ली तबही । रथ पर चढ़ा शस्त्र लै सभही ।
 सकल शत्रुअन के छै कारन । सभ संतन के प्रान उबारन ॥ १०२ ॥
 प्रान और पानिप धनु राजा । राखन चढ़ा सेवकन काजा ।
 जाकी धुजा बिखै राजित असि । निरखि शत्रु जिह होत बिसन
 बसि ॥ १०३ ॥ असिधुज अधिक कोप करि धायो । बैरि
 ब्रिंद दल प्रगट खपायो । साधुन की रच्छा करि लीनी । शत्रु
 सैन तिल तिल खै कीली ॥ १०४ ॥ तिल तिल एक एक करि
 डारा । गजी रथी बाजियन बिदारा । तिह ले अमित असुर
 उठि धए । घेरत महाकाल कह भए ॥ १०५ ॥ मचत भयो
 जबही रन दारन । कटि कटि गए बाज अरु बारन । जबक
 गीध मासु लै गए । रन तजि सुभटन भाजत भए ॥ १०६ ॥

आपके चरणों में पड़े हैं । हे धरती के रक्षक ! हमारी रक्षा करो । यह
 सुनकर काल क्रहक्रहा लगाकर हँस पड़ा और भक्तों को देखकर कृपालु हो
 उठा ॥ १०० ॥ “रक्ष-रक्ष” की ध्वनि उसने की और सभी देवताओं के
 दुःख का उसने निवारण कर दिया । उसने अपने भक्तों का उद्धार कर लिया
 और दुष्टों के साथ युद्ध किया ॥ १०१ ॥ तब श्री काल कुपित हो,
 शस्त्र हाथ में लेकर रथ पर सभी शत्रुओं को मारने के लिए और संतों
 के प्राणों की रक्षा करने के लिए चढ़ गया ॥ १०२ ॥ प्राण और रूप-
 सौंदर्य का स्वामी सेवकों के कार्य के लिए चढ़ उठा । यह वह था जिसकी
 ध्वजा पर कृपाण का चिह्न शोभित है और जिसे देखकर शत्रु बेचैन हो
 उठते हैं ॥ १०३ ॥ असिध्वज (महाकाल) क्रुद्ध हो दौड़ पड़ा और
 उसने शत्रुओं का समूह नष्ट कर दिया । साधुओं की उसने रक्षा कर ली
 और शत्रु-सेना को खंड-खंड कर दिया ॥ १०४ ॥ एक-एक के टुकड़े-टुकड़े
 कर दिए और गजी, रथी, अश्वारोहियों आदि सबको नष्ट कर दिया ।
 उनसे अनेकों असुर उठ खड़े हुए और उन्होंने महाकाल को घेर
 लिया ॥ १०५ ॥ जब भीषण युद्ध मच गया तो हाथी और घोड़े कट-
 कटकर गिरने लगे । गीदड़ और गिद्ध मांस ले गए और वीर युद्धस्थल
 छोड़ भाग खड़े हुए ॥ १०६ ॥ तब काल शस्त्रों से सज्जित हो क्रुद्ध हो

शस्त्र साज कोपा तब काला । धारत भयो भैस बिकराला ।
 बान अनेक कोप करि छोरे । (सू० प्र० १३६६) शत्रु अनेकन के सिर
 फोरे ॥ १०७ ॥ हका हकी साँचा संग्रामा । पठै दए बहु
 अरि चित्तु धामा । बाज खुरन भू आकुल भई । खटपट
 भूमि गगन उडि गई ॥ १०८ ॥ एकै रहि गयो जब पयाला ।
 ऐसा मचा जुद्ध बिकराला । सहाँकाल कै भयो प्रसेता ।
 डारा भूमि पौछि करि तेता ॥ १०९ ॥ भट्टाचारज रूप तब
 धरा । बदन प्रसेत धरनि जो परा । ढाढिसैन ढाढी बपु लयो ।
 करखा बार उचारत भयो ॥ ११० ॥ जिह अरि काल क्रिपान
 प्रहारै । इक ते दोइ पुरख कै डारै । द्वै मनुखन पर करत
 प्रहारा । द्वै ते होत छिनिक सों चारा ॥ १११ ॥ बहुरि काल
 कीना घमसाना । सारत भयो दैत बिधि नाना । अधिक प्रसेत
 धरनि पर परियो । भूमसैन ताते बपु धरियो ॥ ११२ ॥
 काढि क्रिपान धसौ हुंकारा । तिन ते अमित गनन तन धारा ।
 ढोल पटहि इक ताल बजावैं । जंग मुचंग उपंग सुनावैं ॥ ११३ ॥
 गो मुख झाँझर तूर अपारा । ढोल छिदंग मुचंगन गारा ।

उठा और उसने विकराल वेश धारण कर लिया । उसने क्रुद्ध हो अनेकों
 बाण छोड़े और अनेकों शत्रुओं के सिर फोड़ दिए ॥ १०७ ॥ भागदौड़
 मच गयी और संग्राम होने लगा । बहुत से शत्रुओं को मृत्युलोक पहुँचा
 दिया गया । घोड़ों के खुरों से धरती व्याकुल हो गई और धरती को छः
 भाग तो मानों आसमान को उड़ गए ॥ १०८ ॥ ऐसा भीषण युद्ध हुआ कि
 एक ही लोक रह गया । महाकाल को जितना भी पसीना आया वह
 उसने पोंछकर धरती पर गिरा दिया ॥ १०९ ॥ धरती पर जो पसीना
 गिरा उसने भट्टाचार्य का रूप धारण कर लिया । उसने भाट (ढाढी) का
 रूप धारण किया और महाकाल की प्रशंसा में प्रशस्ति गाने लगा ॥ ११० ॥
 काल ने जिस शत्रु पर भी कृपाण से वार किया उसे उसने एक से दो कर
 दिया । जब वह दो पर प्रहार करता था तो क्षण भर में वे दो से चार हो
 जाते थे ॥ १११ ॥ पुनः काल ने घमासान युद्ध किया और अनेकों दैत्यों
 को मारने लगा । जब धरती पर अधिक पसीना गिरा तो उसने भूमिसेन
 का रूप धारण कर लिया ॥ ११२ ॥ वह कृपाण निकाल हुंकार भरता
 हुआ शत्रु-सेना में घँस गया और उससे अनेकों गण पैदा हो गए । सभी
 ढोल, पट्टा, एक ताल बजाने लगे और चंग, मुचंग, उपंग आदि सुनाने
 लगे ॥ ११३ ॥ गोमुख, झाँझर, तूर, ढोल, मृदंग, मुचंग आदि बजने लगा ।

बाजत भेर भभाकहि भीखन । कसि धनु तजत सुभट सर
 तीछन ॥ ११४ ॥ भरि मे कुंड तहाँ खोनत तन । प्रगटे असुर
 तवन ते अनगन । मारि मारि मिलि करत पुकारा । तिन तें
 प्रगटत असुर हजार ॥ ११५ ॥ तिनहि काल जब धरनि
 गिरावें । खोन पुलित हवैं भूमि सुहावैं । ताँते अमित असुर
 उठि भजहीं । बान क्लिपान संहथी सजहीं ॥ ११६ ॥ अधिक
 कोप करि समुहि सिधारे । सभे काल छिन इक मों मारे ।
 तिन ते खोनत परा सबूहा । साजत भए असुर तब
 ब्यूहा ॥ ११७ ॥ दारुन मचा जुद्ध तब झटपट । उडिगे बाज
 खुरन भू खटपट । हवैगे तेरह गगन अपारा । एकै रहि गयो
 तहाँ पतारा ॥ ११८ ॥ भट्टाचारज इतै जसु गावैं । ढाढि
 सेन करखाहु सुनावैं । तिभि तिभि कालहि बढै गुमाना ।
 चहि चहि हने दुबहिया नाना ॥ ११९ ॥ तिन ते मेद मास
 जो परहीं । रथी गजी बाजी तन धरहीं । केतिक भए असुर
 बिकरारा । तिन के बरनन करौ सिधारा ॥ १२० ॥ एकै
 चरन आँखि एकै जिनि । भुजा अभित सहस द्वे के तिन ।

भीषण भेरियाँ बजने लगी और वीर धनुष तान-तानकर तीक्ष्ण बाण
 छोड़ने लगे ॥ ११४ ॥ वहाँ रक्त के कुंड भर गए और उसमें से अनेकों
 असुर पैदा हो गए । सभी मिलकर मार-मार की पुकार लगाने लगे
 और उन्हीं में से हजारों असुर पैदा होने लगे ॥ ११५ ॥ काल जब उन्हें
 धरती पर गिराता था तो रक्त से पोषित हो वे पुनः धरती पर शोभायमान
 हो उठते थे । अनेकों असुर उनसे उठकर भाग चलते थे और बाण,
 कृपाण, भाले आदि से सज्जित हो जाते थे ॥ ११६ ॥ वे अधिक क्रुपित
 हो सामने आ भिड़ते थे । काल ने उन सबको एक क्षण में मार डाला ।
 उनसे जो रक्त गिरा उसमें से असुर निकलकर ब्यूह बनाने
 लगे ॥ ११७ ॥ तब तत्काल दारुण युद्ध मच गया और घोड़ों के खुरों
 से धरती उड़ने लगी । पृथ्वी के सभी खंड तेरह आकाशों में बदल गए और
 एक ही पाताल बाकी बचा ॥ ११८ ॥ भट्टाचार्य इधर यशोगन कर
 रहा था, उधर ढाढ़ीसेन प्रशस्ति सुना रहा था । साथ ही साथ काल का
 गुमान बढ़ता जाता था और उसने निशाना साध-साधकर दो भुजाओं वाले
 शत्रुओं को मारा ॥ ११९ ॥ उनके मेघा-मांस से रथी-गजी और घुड़सवार
 पैदा हो रहे थे । कितने भीषण असुर पैदा हुए, उनका वर्णन सुधार
 कर (संक्षेप में) करता हूँ ॥ १२० ॥ वे एक ही पाँव और एक ही

पाँच पाँच सँ भुज के घने । शस्त्र अस्त्र हाथन मै बने ॥ १२१ ॥ (सू०ग्रं० १३६७) एक चरन एक की नासा । एक एक भुज भ्रमत अकासा । अरध मुंड मुंडित केते सिर । केसन धरे कितक धाए फिरि ॥ १२२ ॥ एक एक मद को सर पीये । मानव खाइ जगत के जीये । दस सहस्र भाँग के भरि घट । पी पी भरित असुर रन चटपट ॥ १२३ ॥ ॥ दोहरा ॥ बज्रवान बिछुआ बिसिख बरखै शस्त्र अपार । ऊँच नीच कातर सुभट सभ कीने इक सार ॥ १२४ ॥ ॥ चौपाई ॥ इह बिधि भयो घोर संग्रामा । लै लै अमित जुद्ध का साया । महाकाल कोपत भयो जबही । असुर अनेक बिदारे तबही ॥ १२५ ॥ महाकाल जब ही रिसि भरा । घोर भयानक आहव करा । मारत भयो असुर बिकराला । सिंघनाद कीना ततकाला ॥ १२६ ॥ कहूँ मसान किलकटी मारें । भैरव कहूँ ठाढ़ भुंकारें । जोगनि दैत अधिक हरखाने । भूत शिवा बोले अभिमाने ॥ १२७ ॥ झालरि झाँझर ढोल मृदंगा । पटह नगारे मुरज मुचंगा । डवरू गुडगुडी कहूँ उपंगा । नाइ नफोरी

आँख वाले थे अथवा फिर दो की जगह अनेकों भुजाएँ थीं । पाँच-पाँच सौ भुजाओं वाले अनेकों थे जिनके हाथों में अस्त्र-शस्त्र थे ॥ १२१ ॥ एक ही पाँव, एक ही नासिका थी और एक ही एक भुजाओं वाले वे आकाश में भ्रमण कर रहे थे । कितने आधे और कितने ही पूरे मूँड़े हुए सिर थे और अनेकों केशों को धारण किए हुए घूम रहे थे ॥ १२२ ॥ उनमें से एक-एक मबिरा का तालाव पीकर संसार के मनुष्यों को खाकर जीवित रहनेवाला था । दस सहस्र भाँग के घड़े भरकर और उसमें से पी-पीकर सभी शीघ्रतापूर्वक आ भिड़ते थे ॥ १२३ ॥ ॥ दोहरा ॥ वज्रवान और बिछुआ आदि अस्त्र-शस्त्र अपार संख्या में बरस रहे थे और इन्होंने ऊँच-नीच अर्थात् सभी वीरों को समान रूप से कातर बना दिया था ॥ १२४ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार युद्ध का अपरिमित सामान लेकर घोर संग्राम हुआ । महाकाल जैसे ही कुपित हुआ उसने अनेकों असुर तत्काल मार डाले ॥ १२५ ॥ महाकाल ने क्रोध से भरकर घोर युद्ध किया । उसने विकराल असुरों को मारा और तत्क्षण सिंघनाद किया ॥ १२६ ॥ कहीं प्रेत किलकारियाँ मार रहे थे और कहीं भैरव भभक रहे थे । योगिनियाँ और दैत्य अधिक प्रसन्न थे और भूतगण तथा शिव भी अभिमानपूर्वक बोल रहे थे ॥ १२७ ॥ युद्ध में झालर, झाँझ, ढोल, मृदंग

बजत सुरंगा ॥ १२८ ॥ मुरली कहूँ बासुरी बाजत । कहूँ उपंग
 म्रिदंग बराजत । दुंदभि ढोल कहूँ शहनाई । बाजत भे लखि
 परी लराई ॥ १२९ ॥ मुरज मुचंग बजै तुरही रन । भेरन के
 भभकार करत गन । हाथी घोरन के दुंदभि रन । उसटन के
 बाजे रन मुरधन ॥ १३० ॥ केतिक सुभट सरन के भारे । गिरत
 भए रन डील डिलारे । जदिप प्राण समुह हवै दए । कर ते
 तजत क्रिपानन भए ॥ १३१ ॥ चलत भई सरिता स्नोनत तह ।
 जुद्ध भयो काली असुरन जह । सीस केस जह भए सिवारा ।
 स्नोन प्रवाह बहत हह हारा ॥ १३२ ॥ बाज ब्रिछ जह बहे
 अनेकै । बिनु ब्रिण बीर रहा नहि एकै । स्नोन भरे पट अधिक
 सुहाए । चाचरि खेलि मनौ घर आए ॥ १३३ ॥ सूरन के जह
 मूँड पखाना । सोभित रंग भूम महि नाना । बहे जात जह ब्रिछ
 तुरंगा । बडे सैल से लसत मतंगा ॥ १३४ ॥ मछरी तनकि
 अँगुरियें सोहैं । भुजा भुजंगन सी मन मोहैं । कहूँ ग्राह से
 खड़ग झमक्कहि । भक भक कर कहूँ घाइ भभक्कहि ॥ १३५ ॥

पट्टे, नगाड़े, ढोलक, मुचंग, डमरू, डुगडुगी, उपंग और नफ़ीरी आदि भलीभाँति
 बज रहे थे ॥ १२८ ॥ कहीं मुरली, बाँसुरी, उपंग और मृदंग बजते हुए
 शोभायमान हो रहे थे और कहीं युद्ध होता देखकर दुंदुभि, शहनाई और ढोल बज
 रहे थे ॥ १२९ ॥ ढोलक, मुचंग, तुरही आदि वाद्य युद्ध में बज रहे थे और कहीं
 प्रेतगण भेरियों की तरह भभक रहे थे । हाथी-घोड़ों की दुंदुभियाँ और ऊँटों
 के वाद्य मधुर स्वर में बज रहे थे ॥ १३० ॥ कितने ही वीर शरण में आ
 गिरे । वे लंबे-चौड़े डीलडौल वाले थे । यद्यपि वे सामने आकर प्राण दे
 रहे थे परन्तु हाथों से कृपाणें गिरा दे रहे थे ॥ १३१ ॥ जहाँ काली और
 दैत्यों का युद्ध हुआ वहाँ रक्त की नदियाँ बह निकलीं । सिर और केश उस
 रक्त-प्रवाह में सेवार की तरह लग रहे थे और खून की धाराएँ बह रही
 थीं ॥ १३२ ॥ घोड़े और पेड़ उसमें अनेकों बह रहे थे और कोई भी घावों से
 अछूता न बचा । रक्त से सने वस्त्र अत्यधिक शोभायमान हो रहे थे और
 ऐसे लग रहे थे जैसे वे होली खेलकर वापस घर आए हों ॥ १३३ ॥ शूरवीरों
 के सिर पत्थरों की तरह पड़े हुए उस युद्धस्थल में शोभा पा रहे थे । वृक्ष
 और घोड़े बहते जा रहे थे और मस्त हाथी बड़े पर्वतों के सामने शोभायमान
 हो रहे थे ॥ १३४ ॥ अँगुलियाँ मछलियों के समान और भुजाएँ नागिनों की
 तरह लग रही थीं । कहीं मगरमच्छों की तरह खड़ग झपक रहे थे और कहीं
 घावों से भकभक खून बह रहा था ॥ १३५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ जहाँ शत्रु वीरों

॥ भुजंग छंद ॥ जहाँ (मू० प्र० १३६८) बीर बैरी बडे घेरि मारे ।
 तहाँ भूत औ प्रेत नाचे सत्यारे । कहूँ डाकनी झाकनी हाँक
 मारें । उठै नाद भारे छुटे चीतकारैं ॥ १३६ ॥ कहूँ अंगुलै
 त्राण काटा बिराजैं । कहूँ अंगुला काटि के रतन राजैं । कहूँ
 टीक टाँके कटै कोप सोहैं । कहूँ बीर मारे गिरे भूमि
 मोहैं ॥ १३७ ॥ जिते स्रोन के बूँद भू पै परे हैं । तिते दानवी
 रूप बाके धरे हैं । हठी ओर चारों बिखै आनि ठूके । महाँकोप
 कै मार ही मारि कूके ॥ १३८ ॥ जिते दैत आए तिते काल
 मारे । बहे स्रोन के भूम हैं पै पनारे । उठे दैत बाँके बली
 शस्त्र लेकै । दुहूँ ओर ते मार ही मारि कैकै ॥ १३९ ॥ हठी
 बद्धि गोपा गुलितान बाँके । हठीले कटीले रजीले निसाँके ।
 गदा हाथ लेकै किते बीर गाजे । लरे आनि कै पैग द्वै कै न
 भाजे ॥ १४० ॥ कहूँ बीर मारे बिदारे परे है । कहूँ खेत मै
 खिग खत्री जरेहै । कहूँ मत्तदंती कहूँ उसट मारे । बिराजैं कहूँ
 नगन खंडे कटारे ॥ १४१ ॥ कहूँ खोल खाँडे गिरे भूमि सोहैं ।
 कहूँ बीर बानी परे भूमि मोहैं । कहूँ स्वार मारे फिरै बाज छूटै ।
 कितै छैल छोरे किते दुशट लूटै ॥ १४२ ॥ ॥ चौपई ॥ इह

को घेरकर मार डाला गया वहाँ भूत-प्रेत मतवाले हो नाच रहे थे । कहीं
 डाकिनियाँ हकार रही थीं और कहीं चीत्कारों का भारी नाद उठ रहा
 था ॥ १३६ ॥ कहीं पर अंगुलित्राण कटे पड़े थे और कहीं कटी अँगुलियों से
 रत्न झड़े हुए विराजमान थे । कहीं कटे हुए वीर और कहीं गिरे हुए वीर
 शोभायमान हो रहे थे ॥ १३७ ॥ जितनी रक्त की बूँदें धरती पर गिरीं उतने
 ही दानव बाँके रूप धारण कर सामने प्रकट हुए हैं । हठी वीर चारों ओर से
 आ एकत्र हुए हैं और क्रुद्ध हो "मार-मार" चिल्लाने लगे हैं ॥ १३८ ॥ जितने
 भी दैत्य आये उतने ही मार डाले गये । धरती पर रक्त के पनाले बहने लगे ।
 बाँके दैत्य वीर शस्त्र लेकर उठे और दोनों ओर "मार-मार" की आवाज़ के साथ
 टूट पड़े ॥ १३९ ॥ वीर हठी थे, बाँके थे और कवच धारण किये हुए कटीले,
 सजीले खग रहे थे । कितने ही वीर गदा लेकर गर्जना करने लगे और
 आकर लड़ने लगे तथा दो कदम भी पीछे न हटे ॥ १४० ॥ कहीं वीर मारे
 गये और कहीं कठोर क्षत्रिय युद्ध में खेत रहे । कहीं हाथी और कहीं ऊँट
 मारे गये और कहीं नंगी कृपाणें और खड़ग पड़े थे ॥ १४१ ॥ कहीं खड़गों के
 म्यान धरती पर पड़े थे और कहीं वीर धरती पर गिरे हुए मन को मोह रहे

बिधि तहाँ भयो संग्रामा । निरखत देव दानवी बामा । केतिक
 करी करन बिनु भए । प्रापत दुशट निधन कह गए ॥ १४३ ॥
 मारहि सारि महा सूर कूकहि । काढि काढि दाँतन कह दूकहि ।
 बाजहि ढोल म्रिदंग नगारे । जंग मचंग उपंग जुझारे ॥ १४४ ॥
 जिह तन काल बिसिख की मारै । ताकह तही चूर करि डारै ।
 जा कर कोपि क्रिपान प्रहारत । तिह का मूँड काटि ही
 डारत ॥ १४५ ॥ इह बिधि भयो भयानक जुद्धा । उपजा
 कछुक काल के क्रुद्धा । केसन ते गहि असुर पछारे । काढि
 क्रिपान एक हनि डारे ॥ १४६ ॥ मारे अधिक ताहि दानव
 रन । टूक टूक हवैगै तिन के तन । तऊ मार ही मारि
 पुकारत । पाछे पाँव एक नहि डारत ॥ १४७ ॥ केतिक घूमि
 गिरत हैं घाइल । परत भए भू तर हवै हाइल । तऊ जुद्ध को
 त्यागि न भजही । जब लगि दुशट प्रान नहि तजही ॥ १४८ ॥
 गुरज गोफनै कितक सँभारै । केतिक कसि कसि बान प्रहारै ।
 किते (मू०ग्रं० १३६६) तमकि रन तुरी नचावैं । चटपट सुभट
 जूझि रन जावैं ॥ १४९ ॥ कितक तमकि रन तुरी नचावत ।

थे । कहीं सवारों के मृत हो जाने से घोड़े छुट्टा घूम रहे थे और कितने ही
 छैल, छोकरे और दुष्टों के (प्राण) लूट लिये गये ॥ १४२ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस
 प्रकार का वहाँ संग्राम हुआ कि देव-दानव-स्त्रियाँ भी उसे देख रही थीं ।
 कितने ही हाथी कर्णविहीन हो गये और दुष्ट मृत्यु को प्राप्त हो गये ॥ १४३ ॥
 शूरवीर “मारो-मारो” चिल्ला रहे थे और पीसे जा रहे दाँत दिखा-
 दिखाकर टूट पड़ रहे थे । ढोल, मृदंग, नगाड़े, चंग, मुचंग और उपंग आदि
 बाद्य बज रहे थे ॥ १४४ ॥ काल जिसके शरीर में भी बाण मारता था उसे
 वहीं चूर कर डालता था । क्रुद्ध हो जिस पर कृपाण का प्रहार करता था
 उसका सिर काट ही डालता था ॥ १४५ ॥ इस प्रकार भयानक युद्ध हुआ
 और काल को भी कुछ गुस्सा आ गया । उसने केशों से पकड़कर असुरों को
 पछाड़ा और कृपाण निकालकर उन्हें मार डाला ॥ १४६ ॥ वहाँ अनेकों
 दानव मार डाले और उनका शरीर टुकड़े-टुकड़े हो गया । वे भी “मारो-
 मारो” चिल्लाए जा रहे और पाँव पीछे नहीं हटाते थे ॥ १४७ ॥ कई घायल
 हो हाय-हाय करके घूमकर धरती पर गिर रहे थे । तब भी वे जब तक उनके
 प्राण-पखेरू न छड़ जाँएँ युद्ध को त्यागकर नहीं जा रहे थे ॥ १४८ ॥ अनेकों
 ही गदा-गोफनों आदि को सँभाल रहे थे और कितने ही कस-कसकर बाणों
 से प्रहार कर रहे थे । कितने ही तमककर युद्ध में घोड़ों को नचा रहे

मारि मारि धुनि कितक उवावत । मंडहि महाकाल सौ जुद्धा ।
 हवै हवै अधिक चित्त महि क्रुद्धा ॥ १५० ॥ जेतिक सुभट
 कोपि करि आए । महाकाल तेते ई खपाए । तिन को मेद
 मास भुअ परा । बहु असुरन ताँते बपु धरा ॥ १५१ ॥
 महाकाल ते दए खपाइ । खोनत सों प्रियवी रही छाइ । तिह
 ते अमित असुर उठि ठूके । मारहि मारि दसौ दिसि
 कूके ॥ १५२ ॥ केतिक की बाहन कटि डारा । करे रुंड बिनु
 मुंड हजारा । केतिक चीर अधौ अध डारे । नाचत भूत प्रेत
 मतवारे ॥ १५३ ॥ जे तिनके सिरि बहीं क्रिपानैं । अरघ
 अरघ हवै जूझे ज्वानैं । गज बाजी लोटत कहूँ भू पर । सुंभन
 शबद सुना अवनीतर ॥ १५४ ॥ गिरि गिरि परे कहूँ घायल
 रन । भाजि चले कई होइ बिमन मन । झनकत कही अतिन
 की धारा । भभकत रुंड मुंड बिकरारा ॥ १५५ ॥ ॥ भुजंग
 छंद ॥ तहां जुद्ध माचा महाबीर खेतं । बिदारे परे बीर बिंदं
 बिचेतं । कहूँ डामरुँ डहडहा शबद बाजै । सुने दीह दनिवान

ये और शीघ्रातिशीघ्र युद्ध की तरह दौड़ रहे थे ॥ १४९ ॥ कितने ही
 तमतमाकर घोड़ों को नचा रहे थे और कितने ही "मार-मार" की
 ध्वनि में भी ऊँघ रहे थे । वे सभी महाकाल से, मन में क्रुद्ध हो युद्ध कर
 रहे थे ॥ १५० ॥ जितने भी वीर क्रुद्ध होकर आये महाकाल ने उन सबको
 नष्ट कर दिया । उनका जो मेधा और मज्जा धरती पर गिरे उससे
 अन्य दैत्यों ने शरीर धारण किया ॥ १५१ ॥ महाकाल ने उनको मार
 डाला और सारी पृथ्वी रक्त से रँगी गई । उससे फिर अपरिमित असुर
 उत्पन्न हो दौड़ पड़े और मार ही मार चिल्लाने लगे ॥ १५२ ॥ कितनों
 की बाँहें काट डाली और हजारों ही धड़ों को मुंड-विहीन कर डाला ।
 कितनों को बीचोंबीच से चीर डाला गया । भूत-प्रेत मतवाले होकर
 नाचने लगे ॥ १५३ ॥ कृपाणें जिनके सिर पर पड़ीं वे जवान दो टुकड़ों
 में आधे-आधे बँट गए । कहीं गज और घोड़े धरती पर लोट रहे थे
 और कहीं उनकी टापों की आवाज धरती पर सुनाई दे रही थी ॥ १५४ ॥
 कहीं कई युद्ध में घायल हो पड़े थे और बेमन से युद्धस्थल से भाग निकले ।
 कहीं कृपाणों की धारें झिलमिला रही थीं और कहीं विकराल रुंड-मुंडों
 से रक्त भभक रहा था ॥ १५५ ॥ ॥ भुजंग छन्द ॥ वहाँ उस मचे हुए
 भीषण युद्ध में अनेकों महावीर खेत रहे और वीरों के तो झुंडों के झुंड मारे
 पड़े हुए थे । डमरु की डमाडम ध्वनि को सुनकर कई दिल वालों का

को द्रव्य भाजै ॥ १५६ ॥ कहूँ संख भेरी बजै ताल भारे ।
 कहूँ बेन बीना पनो औ नगारे । कहूँ नाइ नाफीरिये नाद ऐसे ।
 बजै घोर बाजा प्रलैकाल जैसे ॥ १५७ ॥ कहूँ छैन तुरै नगारे
 म्रिदंगै । कहूँ बाँसुरी बीन बाजै सुरंगै । कहूँ बगल तारंग
 बाजे बजावै । कहूँ बारता रंग नोके सुहावै ॥ १५८ ॥ कहूँ
 झाँझ बाजै कहूँ ताल ऐसे । कहूँ बेनु बीना प्रलैकाल जैसे । कहूँ
 बाँसुरी नाइ नाद म्रिदंगै । कहूँ सारंगी औ मुचंगै उपंगै ॥ १५९ ॥
 कहूँ गरजि कै कै भुजा भूष ठोकै । कहूँ बीर बीरान की राह
 रोकै । किते अस्त्र औ शस्त्र लै लै चलावै । किते चरमलै चोट
 ताकी बजावै ॥ १६० ॥ कहूँ रुंड सोहै कहूँ मुंड बाँके । कहूँ
 बीर मारे बिदारे निसाँके । कहूँ बाज मारे गजाराज जूझै ।
 कहूँ उसट काटे नहीं जात बूझै ॥ १६१ ॥ कहूँ चरम बरमै गिरे
 भूमि ऐसे । बगे ब्योति डारे समै सीत जैसे । गए जूझि जोधा
 जगे जोर जंगै । मनो पान कै भंग सोए मलंगै ॥ १६२ ॥
 किते डहडहा शब्द डवरु बजावै । किते राग मारु खरे खेत
 गावै । हसै (सू० पं० १३७०) गरजि ठोकै भुजा पाट फाटै । किते

भी गर्व चूर हो जाता ॥ १५६ ॥ कहीं शंख, भेरी, वेणु, बीणा और
 नगारे आदि बज रहे थे और कहीं नाद-नफीरियाँ ऐसे बज रही थीं जैसे
 मानों प्रलयकाल में वाद्य बज रहे हों ॥ १५७ ॥ कहीं छनकार करनेवाले
 वाद्य और कहीं तुरहियाँ, नगाड़े और मृदंगें तथा कहीं बाँसुरी, बीणा आदि
 सुन्दर रूप से बज रहे थे । कहीं बगलतरंग बजाई जा रही थी और
 कहीं सुन्दर वार्ता सुनाई जा रही थी ॥ १५८ ॥ कहीं झाँझ, वेणु और
 बीणा का ताल-स्वर ऐसा सुनाई दे रहा था मानों प्रलयकाल में उनका
 स्वर हो । कहीं बाँसुरी, मृदंग बज रही थी और कहीं सारंगी और मुचंग
 बज रहे थे ॥ १५९ ॥ कहीं गरजकर राजागण भुजाएँ ठोक रहे थे
 और कहीं वीर वीरों की राह रोक रहे थे । कहीं वे अस्त्र-शस्त्र ले-लेकर
 चला रहे थे और कहीं ढालों पर चोटें पड़ रही थीं ॥ १६० ॥ कहीं
 रुंड-मुंड शोभायमान हो रहे थे और कहीं वीरों को निःशंक मारा जा रहा
 था । कहीं हाथी और कहीं घोड़े जूझ गए थे और कहीं कटे हुए ऊँट
 पहचान में नहीं आ रहे थे ॥ १६१ ॥ कहीं चर्म के कवच ऐसे पड़े थे मानों
 शीतकाल में आसमान में सफ़ेद वगुलों की पंक्तियाँ हों । युद्ध के जोर
 में योद्धा ऐसे जूझ गए मानों मलंग लोग भाँग खाकर सोये पड़े हों ॥ १६२ ॥
 कहीं डमरु की डमडम सुनाई दे रही थी और कहीं युद्ध में राग मारु

बीर बीरान के मँड काटें ॥ १६३ ॥ कहूँ चंचला चारु चीरै
 बनैकै । बरैं ज्वानि जोधा जुझ्यो ज्वान धैकै । कहूँ बीर
 बीरान के पाव पेलैं । सहाँ जंग जोधा लगे सुद्ध सेलैं ॥ १६४ ॥
 कहूँ जच्छनी किन्ननी आनि कैकै । कहूँ गंधर्वी देवनी मोद
 हवैकै । कहूँ अच्छरा पच्छरा गीत गावैं । कहूँ चंचला अंचला
 को बनावैं ॥ १६५ ॥ कहूँ देवकन्या नचैं ताल दैकै । कहूँ
 दैत पुत्री हसै मोद हवैकै । कहूँ चंचला अंचला को बनावैं ।
 कहूँ जच्छनी किन्ननी गीत गावैं ॥ १६६ ॥ लरैं आनि जोधा
 महाँ तेज तैं कै । गिरे पाक शाहीद याकीन हवैकै । कहूँ बीर
 बाँके नचावैं तुरंगैं । कहूँ जोग जोधा बिराजै उतंगैं ॥ १६७ ॥
 कहूँ बीर बानैत बीरे उठावैं । कहूँ खेत मै खिंग खत्री नचावैं ।
 कहूँ कोप कै कै हठी दाँत चावैं । किते मूँछ ऐठैं किते पाग
 दाबैं ॥ १६८ ॥ दुहूँ ओर गाजे जबे छत्रधारी । मचो लोह
 गाड़ो परी मारि भारी । महाँकोप कै बीर बाजी उचकै ।
 लगे देह मो घाइ गाड़े भभवकै ॥ १६९ ॥ कहूँ कुंडलाकार

गाया जा रहा था । हँसकर कहीं भुजाओं को ठोक उन्हें फाड़े दे रहे थे
 और कहीं वीर वीरों के सिर काट रहे थे ॥ १६३ ॥ कहीं सुन्दर स्त्रियाँ
 (अप्सरायें) सुन्दर वस्त्र धारण कर जूझे हुए जवानों का वरण कर रही
 थीं । कहीं वीर वीरों को ठोकरें मार रहे थे । सभी योद्धा उस महायुद्ध
 में लीन थे ॥ १६४ ॥ कहीं यक्षिणी, किन्नरनी, गंधर्वी और देव-स्त्रियाँ
 प्रसन्न हो घूम रही थीं और कहीं अप्सराएँ गीत गा रही थीं तथा स्त्रियों
 ने सुन्दर वस्त्र धारण कर रखे थे ॥ १६५ ॥ कहीं देवकन्याएँ ताल
 देकर नाच रही थीं और कहीं दैत्य-पुत्रियाँ प्रसन्नतापूर्वक हँस रही थीं ।
 कहीं स्त्रियों ने सुन्दर वस्त्र धारण कर रखे थे और कहीं यक्षिणियाँ और
 किन्नरनियाँ गीत गा रही थीं ॥ १६६ ॥ महातेजस्वी योद्धागण लड़
 रहे थे और निश्चयपूर्वक युद्ध में शहीद हो रहे थे । कहीं बाँके वीर घोड़े
 नचा रहे थे और कहीं योग्य योद्धा ऊँचे स्थानों पर बैठे थे ॥ १६७ ॥ कहीं
 भयानक वीर बीड़े उठा रहे थे और कहीं युद्धस्थल में क्षत्रिय खड़ग नचा
 रहे थे । कहीं कुपित हो हठी वीर दाँत चबा रहे थे । कई मूँछे ऐंठ
 रहे थे और कितने ही पाँव जमाए हुए थे ॥ १६८ ॥ जब दोनों ओर
 से छत्रधारी वीर गरज उठे तो भारी मार-काट हुई और भीषण युद्ध
 हुआ । वीर और उनके घोड़े कुपित हो उचकने लगे और उनकी देह में
 लगे घाव भभकने लगे ॥ १६९ ॥ कहीं कुंडलाकार सिर शोभायमान

मुंडें बिराजें । लखे मुंड मालाहु के मुंड लाजें । कहूँ घूम घूमै
परे पीर भारी । मनो सिध्य बैठे लगे जोग तारी ॥ १७० ॥
तहाँ त्रोन की कूल घारी बिराजें । लखे अशट नद्यान को द्रव्य
भाजें । तहाँ बिद बाजी बहे नेक जैसे । लसे मत्त दंती महाँ
सैल कैसे ॥ १७१ ॥ धुजा बिछ तामों बहे जात ऐसे । लसे
डंड पत्नी बिना पत्न जैसे । कहूँ छल तामों बहे जात काटे ।
मनो फेन से बारि सै बसल फाटे ॥ १७२ ॥ कहूँ बाह काटी
बहे जात ऐसे । मनो पंच बक्रतान के नाग जैसे । चढ़े बीर बाजी
बहे जात मारे । सनाहीन के स्वार पारें पधारे ॥ १७३ ॥
कहूँ खोल खंडे बहे जात मारे । मनो एकठे कच्छ मछ हवै
पधारे । तहाँ पाग छूटे बहे जात ऐसे । मनो तीस व्यामान
के नाग जैसे ॥ १७४ ॥ झखी झुंड जामे कटारी बिराजें ।
लखे खिग बाँके बली नाग लाजें । कहूँ चरम काटे गिरे शस्त्र
अस्त्र । कहूँ बीर बाजी बहे जात बस्त्र ॥ १७५ ॥ हला चाल कै
कै हठी दैत ठूके । चहूँ ओर गाजे महांसूल जूके । किते

हो रहे थे जिन्हें देखकर मुंडमाल के मुंड भी लज्जित हो रहे थे । कहीं
भारी पीर योद्धा घूम-घूमकर गिरे हुए थे और ऐसे लग रहे थे मानों सिद्ध-
गण योगसमाधि लगाए बैठे हों ॥ १७० ॥ वहीं रक्त की धाराएँ बह
रही थीं जिन्हें देखकर आठों नदियों का गर्व चूर हो रहा था । उनमें
अश्वसमूह बह रहा था और मस्त हाथी पर्वतों के समान शोभायमान हो
रहे थे ॥ १७१ ॥ ध्वजा और वृक्ष उसमें ऐसे बहते चले जा रहे थे जैसे
मानों पत्तों के बिना डंडे हों । कहीं उसमें कटे हुए छल बहे जा रहे थे ।
झाग ऐसी लग रही थी मानों फटे हुए वस्त्र बह रहे हों ॥ १७२ ॥ कहीं
भुजाएँ कटी ऐसे बहती जा रही थीं मानों पंचमुख शिव के नाग हों ।
कहीं वीर और अश्व मारे जा रहे थे और कवच-विहीन सवार उस
ओर पार किए जा रहे थे अर्थात् मृत्युलोक पहुँचाए जा रहे थे ॥ १७३ ॥
कहीं म्यान और खड्ग ऐसे बहते जा रहे थे मानों मत्स्य और कच्छप
इकट्ठे ही जा रहे हों । खुली पगड़ियाँ ऐसे बहती जा रही थीं
मानों तीस हाथ लंबे नाग हों ॥ १७४ ॥ कटारें उसमें मछलियों
का झुंड लगती थीं और बाँके खड्गों को देखकर बलशाली नाग भी
लज्जित होते थे । कहीं चर्म काटकर अस्त्र-शस्त्र गिरे हुए थे और
कहीं वीर घोड़ों एवं वस्त्रों-समेत बहते जा रहे थे ॥ १७५ ॥ आक्रमण
करने के लिए हठी दैत्य आ एकत्र हुए और चारों ओर शूल लेकर

कोप के शस्त्र अस्त्रें चलावें । (म०पं० १३७१) किते संख औ
 भीम भेरी बजावें ॥ १७६ ॥ महाँ फूलि फीली नगारे बजैकें ।
 चले दुंदभी ताजियें के सुनैकें । सचे कोप के सु उसटी दमामे ।
 मनो बाज टुट्टे लखे लाल तामे ॥ १७७ ॥ किते बीर बाँके धरे
 लाल बाने । किते स्याम औ सेत कीने निशाने । किते हरति
 यौ पीत बाने सुहाए । हठी चुंग बाधे चले खेत आए ॥ १७८ ॥
 किते ढाल ढापै किते चोट ओटैं । सभैं आनि जूझैं भजैं कोट
 कोटैं । किते सूल औ सैहथी खिंग खेलैं । किते पास औ परस
 लै पाव पेलैं ॥ १७९ ॥ किते पाखरै डारिकै ताजियौ पै ।
 चढ़े चारु जामे किते बाजियो पै । किते मदद दंतीनियौ पै
 बिराजैं । मनो बारणेसे चढ़े इंद्र लाजैं ॥ १८० ॥ किते
 खच्चरा रोह बैरी बिराजैं । किते गरधभै पै चढ़े सूर गाजैं ।
 किते दानवौ पै चढ़े दैत भारे । चहूँ ओर गाजे सु दै के
 नगारे ॥ १८१ ॥ किते माहिखी पै चढ़े दैत हुके । किते
 सूकरा स्वार हृदं आनि झूके । किते दानवों पै चढ़े दैत भारे ।
 चहूँ ओर ते मार मारै पुकारे ॥ १८२ ॥ किते सरप असवार

गर्जना करने लगे । कहीं कुपित हो अस्त्र-शस्त्र चला रहे थे और शंख और
 भीमाकार भेरियाँ बजाई जा रही थीं ॥ १७६ ॥ हाथीवान नगाड़े बजाते
 और अश्वारोहियों को दुंदुभियाँ सुनाते हुए चल रहे थे । ऊँटों पर लदे
 नगाड़े क्रोधपूर्वक बज रहे थे और उन पर लाल वस्त्र देखकर घोड़े टूट
 पड़ रहे थे ॥ १७७ ॥ कहीं वीरों ने लाल वस्त्र पहन रखे थे और सफ़ेद
 तथा काले को निशाना बनाया जा रहा था । कहीं हरे और पीले वस्त्र
 शोभायमान हो रहे थे और ऐसा लग रहा था कि मानों हठी मृग युद्ध में
 आ गए हों ॥ १७८ ॥ कहीं ढाल से ढका जा रहा था और कहीं चोट
 से बचा जा रहा था । सभी आकर जूझ रहे थे और अनेकों भाग खड़े
 हो रहे थे । कहीं बछी-भाले और खड़ग के साथ खेल हो रहा था और
 कहीं पाश और फरसा लेकर पाँव जमाए जा रहे थे ॥ १७९ ॥ कहीं
 घोड़ों पर जीन कसकर सुन्दर जवान चढ़ रहे थे । मदमत्त वीर हाथी पर
 बैठे थे जिन्हें देखकर ऐरावत पर बैठा इन्द्र भी लज्जित होता था ॥ १८० ॥
 कहीं खच्चरों पर बैठे और कहीं गदहों पर सवार वीर शोभायमान हो रहे
 थे । कहीं भारी दानव और दैत्य चारों ओर नगाड़े बजाकर घूम रहे
 थे ॥ १८१ ॥ कहीं भैंसे पर सवार और सूकरों पर सवार दैत्य आ एकत्र हुए ।
 कहीं दानवों पर ही भारी दैत्य सवार होकर चारों ओर मार-मार पुकार

हृवकै सिधाए । किते स्वार बध्यार हवै दुशट आए । किते
चीतियौ पै चड़े कोष कैकै । किते चीतरो पै चड़े तेज
तैकै ॥ १८३ ॥ किते चाक चुंध्रा चड़े काक बाही । अठूहान
कौ स्वार केते सिपाही । किते बीर बानी चड़े ब्रिद्ध गिद्धे ।
मनो ध्यान लागे लसै सुद्ध सिद्धे ॥ १८४ ॥ हठी बद्धि गोपा
गुलिवान बाँके । रज्जिले कटीले हठीले निसाँके । महाँ जुद्ध
माली भरे कोष भारे । चहूँ ओर तैं अभ्र ज्यों चीतकारे ॥ १८५ ॥
बड़े दाँत काढे चले कोष भारे । लहे हाथ मै पबब पत्नी
उपारे । किते सूल सैथी सूआ हाथ लीने । मंडे आनि मारु
महाँ रोस कीने ॥ १८६ ॥ हठी हाँक हाँक उठावै तुरंगै ।
महाँ बीर बाँके जगे जोर जंगै । सूआ साँग लीने अतिअत्नी
धरती । भचे आनि कै कै छके छोभ छती ॥ १८७ ॥ कहूँ
बीर बीरै लरै शस्त्रधारी । मनो काछ काछे नचैं चित्तकारी ।
कहूँ सूर साँगै पुऐ भाँति ऐसे । चढ़ै बाँस बाजीगरें ज्वान
जैसे ॥ १८८ ॥ कहूँ अंग भंगै गिरे शस्त्र अस्त्रैं । कहूँ बीर
बाजीन के बरम बस्त्रैं । कहूँ टोप टाँके गिरे टोप टूटे । कहूँ

रहे थे ॥ १८२ ॥ कहीं सर्प की सवारी और कहीं भेड़िए की सवारी कर
दुष्ट आ गए । कहीं क्रुद्ध हो चीते पर और कहीं चीतल पर सवार होकर
आ गए ॥ १८३ ॥ कहीं कठफोड़वों, कछुभों, कनखजूरों पर सवार हो
सिपाही चल पड़े । कहीं वीर गिद्धों पर सवार थे और ऐसे लग रहे थे
मानों ध्यान लगाए बैठे हों ॥ १८४ ॥ हठी वीर अँगुलियों पर भी कवच
धारण कर क्रियाशील थे और सुसज्जित दिखाई दे रहे थे । वे युद्धों के
बली वीर चारों ओर से बादलों की तरह गरज रहे थे ॥ १८५ ॥ बड़े
दाँत निकाले हुए क्रुद्ध हो दैत्य चले और उनके हाथों में पर्वतों के उखाड़े
हुए टुकड़े थे । कहीं शूल, कृपाण एवं भाले आदि हाथ में लिये वीरों ने
क्रुद्ध हो युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ १८६ ॥ हठी वीर घोड़ों को हाँक रहे थे
और महाबली युद्ध के लिए सजग हो रहे थे । भाले-बछे, अस्त्र-शस्त्र लेकर
छत्रधारी वीरों ने युद्ध मचा दिया ॥ १८७ ॥ शस्त्रधारी वीर लड़ते
ऐसे लग रहे थे मानों विभिन्न वस्त्रों में सज्जित नर्तक हों । कहीं
वीर भालों में पिरोए ऐसे लग रहे थे मानों बाजीगर ब्रह्म पर चढ़े हुए
हों ॥ १८८ ॥ कहीं भंग अंग और अस्त्र-शस्त्र तथा कहीं वीरों और
घोड़ों के कवच-वस्त्र आदि पड़े थे । कहीं शिरस्त्राण टूटे गिरे थे और कहीं
वीर बादलों की तरह फटे पड़े थे ॥ १८९ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार उस

बीर अम्भान की भाँति फूटे ॥ १८६ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि
 बीर खेत (सू०पं०१३७२) बिकराला । साचत भयो आनि तिह
 काला । महाकाल कछुह तब कोपे । पुहसी पाव गाढ़ करि
 रोपे ॥ १६० ॥ मोहनास्त्र केते सो हित करि । बरुणास्त्र
 भे प्राण कितन हरि । पावकास्त्र भे अधिक जराए । अमित
 सुभट म्रित लोक पठाए ॥ १६१ ॥ जा पर महाकाल असि
 झारा । एक सुभट ते द्वै करि डारा । जौ द्वै नर पर टुक
 असि धरा । चारि टुक तिन द्वैकै करा ॥ १६२ ॥ केतिक परे
 सुभट बिललाहीं । जंबुक गिद्ध मासु लै जाँही । भैरव आनि दुहूँ
 भभकारैं । कहूँ मसान किलकटी मारैं ॥ १६३ ॥ केतिक सुभट
 आनिही टुकैं । मारहि मारि दसो दिसि कूकैं । महाकाल पर जे
 ब्रिण करही । कुंठत होइ धरनि गिर परही ॥ १६४ ॥ बहुरि
 कोप करि असुर अपारा । महाकाल कह करत प्रहारा । ते
 वै एक रूप हवै जाँही । महाकाल के मध्य समाँही ॥ १६५ ॥
 जिमि कोई बारि बारि पर मारैं । होत लीन तिह माँझ
 सुधारैं । पुनि कोई ताँहि न सकत पछानी । आगिल आहि कि
 मोरा पानी ॥ १६६ ॥ इह बिधि भय शसत्र जब लीना ।

समय भीषण युद्ध छिड़ गया । महाकाल ने तब कुछ क्रोधित होकर पृथ्वी
 पर पाँव जमा दिए ॥ १९० ॥ कितने ही मोहन-अस्त्र और वरुणास्त्र चला
 कर प्राणों का हरण कर लिया गया । अग्नि-अस्त्र चलाकर कितने ही वीर
 मृत्युलोक भेज दिए गए ॥ १९१ ॥ महाकाल ने जिस पर कृपाण चला
 दी उसे एक से दो टुकड़े कर दिया । जिन दो टुकड़ों पर तलवार झाड़ी
 उसे दो से चार टुकड़े कर दिया ॥ १९२ ॥ कितने ही वीर
 पड़े चिल्ला रहे थे और गीदड़-गिद्ध उनका मांस ले जा रहे थे ।
 कहीं भैरव भभक रहे थे और कहीं प्रेतगण किलकारियाँ मार रहे
 थे ॥ १९३ ॥ कितने ही वीर आ एकत्र हुए और दसों दिशाओं से मार
 ही मार शब्द सुनाई पड़ने लगा । जो भी महाकाल पर घाव करता वह
 कुंठित हो स्वयं धरती पर गिर पड़ता था ॥ १९४ ॥ असुर अत्यन्त क्रुद्ध
 हो महाकाल पर प्रहार करते थे । वे सभी उससे एक रूप हो जाते थे
 और महाकाल में ही समा जा रहे थे ॥ १९५ ॥ जैसे कोई पानी में मार
 रहा हो वे इसी प्रकार महाकाल में ही समा जा रहे थे । तब कोई उसे
 पहचान न पाता था कि वह अन्य है और मिलनेवाला पानी के समान अन्य
 है ॥ १९६ ॥ शस्त्रों-सहित जब ऐसा हुआ तो असुर अत्यंत क्रुद्ध हो उठे ।

अमुरन कोप अमित तब कीना । काँपत अधिक चित मों गए ।
 शस्त्र अस्त्र लै आवत भए ॥ १९७ ॥ ज्वाल तजी करि कोप
 निसाचर । तिन ते भए पठान धनुख धर । पुनि मुख ते
 उलका जे काढे । ताते मुगल उपजि भे ठाढे ॥ १९८ ॥ पुनि
 रिसि तन तिन स्वास निकारे । सैयद शेख भए रिस वारे ।
 धाए शस्त्र अस्त्र कर लैकै । तमकि तेज रन तुरी
 नचैकै ॥ १९९ ॥ खान पठान ढुके रिसि कैकै । कोपि क्रिपान
 नगन कर लैकै । महाँकाल कौ करत प्रहारा । एक न उपरत
 रोम उपारा ॥ २०० ॥ अमित खान करि कोप सिधारे ।
 मद करि भए सकल मतवारे । उमडे अमित मलेछन के गन ।
 तिनके नाम कहत तुम सौ भनि ॥ २०१ ॥ नाहर खान
 झड़ाझड़ खाना । खान निहंग भड़ंग जुआना । और झड़ंग खान
 रन धायो । अमित शस्त्र कर लए सिधायो ॥ २०२ ॥ बैरम
 खान बहादुर खाना । बलबंड खान बडो सुर ग्याना । हसतम
 खान कोप करि चलो । लीने अमित सैन संग भलो ॥ २०३ ॥
 हसन खान हुसैन खान भन । खान मुहंमद (मू०ग्रं० १३७३) लै
 मलेछ गन । शमशखान समसरो खाना । चले पीस करि दाँत
 जुआना ॥ २०४ ॥ आवत ही किए बान प्रहारा । महाँकाल

वे चित्त में काँप उठे और अस्त्र-शस्त्र ले आए ॥ १९७ ॥ असुर ने कुपित
 हो ज्वाला फेंकी, जिससे धनुषधारी पठान पैदा हो गए । उन्होंने पुनः
 जब मुख से ज्वाला निकाली तो उससे मुगल उत्पन्न हो गए ॥ १९८ ॥
 पुनः क्रुद्ध हो उन्होंने मुँह से श्वास निकाला और शेख-सय्यद पैदा हो गए ।
 वे तेज घोड़े नचाते हुए अस्त्र-शस्त्र लेकर टूट पड़े ॥ १९९ ॥ पठान,
 खान नंगी कृपाणें लेकर और क्रुद्ध होकर टूट पड़े । वे महाकाल पर प्रहार
 करते थे पर उसका एक भी रोम न उखाड़ पाते थे ॥ २०० ॥ अनेकों
 खान कुपित हो दौड़े और सभी मदिरापान कर मतवाले थे । मलेच्छों के
 अनेकों सेवक उमड़ पड़े और अब मैं उनके नाम तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २०१ ॥
 नाहरखान, झड़ाझड़खान, निहंग और भड़ंगखान वहाँ थे । झड़ंगखान
 युद्ध के लिए चला और अनेकों शस्त्र लेकर आगे बढ़ा ॥ २०२ ॥ वहाँ
 बैरमखान, बहादुरखान और बलबंडखान जैसे चतुर शूरवीर थे । हस्तम
 खान कुपित होकर अपरिमित सेना साथ लेकर चल पड़ा ॥ २०३ ॥
 हसनखान, हुसैनखान, खान मुहम्मद और शमसखान तथा शमशेरखान
 जवान दाँत पीसकर चल पड़े ॥ २०४ ॥ आते ही इन्होंने बाणों से

कह चहत सँघारा । महाँकाल सर चलत निहारे । टूक सहंख
 प्रिथी करि डारे ॥ २०५ ॥ डारे सत सत टूक प्रिथी करि ।
 महाँकाल करि कोप अमित सर । इक इक सन तन बहुरि
 प्रहारे । गिरे पठान सु भूमि मँझारे ॥ २०६ ॥ काटि
 निहंगक राखा द्वै धर । मारे अमित झड़ाझड़ खाँ सर । खान
 भड़ंग बहुरि रन मारे । देखत चारण सिद्ध हजारे ॥ २०७ ॥
 नाहर खाँ गैरत खाँ मारा । बलवंड खाँ का सीस उतारा ।
 शेर खान कटि ते कटि डार्यो । बैरम खाँ गहि केस
 पछार्यो ॥ २०८ ॥ पुनि करि कोप बहादुर खाना । छाडे
 तबै बिसिख रिसि नाना । महाँकाल कुप वान प्रहारो ।
 गिर्यो कहाँ लौ लरै बिचारो ॥ २०९ ॥ इह बिधि हठी पठानी
 सेना । मुगलन परा मद्धि कछु भैना । छिनकिक मों बहु सुभट
 गिराए । जानु इंद्र परबत से घाए ॥ २१० ॥ बैरमबेग
 मुगल कौ मारा । यूसफ़ खाँ कटि तें कटि डारा । ताहिर बेग
 टिका संग्रामा । अंत गिर्यो भिरिकै द्वै जामा ॥ २११ ॥
 नूरमबेग बहुरि रिसि मार्यो । आदिलबेगहि बहुरि

प्रहार किया और महाकाल को मारना चाहा । महाकाल चलते हुए बाणों
 को देखता और उनके हजारों टुकड़े करके पृथ्वी पर फेंक देता था ॥ २०५ ॥
 उसने सैकड़ों को टुकड़ों में बाँटकर पृथ्वी पर फेंक दिया । महाकाल ने
 बाणों पर अपरिमित क्रोध किया । अब उसने तान कर एक-एक बाण
 चलाया और पठान धरती पर गिर पड़े ॥ २०६ ॥ उसने वीरों को दो
 टुकड़ों में काट डाला और झड़ाझड़ खान को भी बाणों से मार डाला ।
 चारण और सिद्धों के देखते-देखते भड़ंग खान को भी मार डाला ॥ २०७ ॥
 नाहर खाँ, गैरत खाँ को मार डाला और देखते-देखते बलवंड खाँ का सिर
 उतार फेंका । शेर खाँ को कमर से काट डाला और बैरम खाँ को केशों से
 पकड़कर पछाड़ फेंका ॥ २०८ ॥ तब बहादुर खाँ ने कुपित हो अनेकों बाण
 छोड़े । फिर महाकाल ने कुपित हो बाण से वार किया और वह बेचारा
 कहाँ तक लड़ता, आखिर गिर पड़ा ॥ २०९ ॥ इस प्रकार पठानी सेना हट
 गई पर मुगलों में अभी कुछ भी भय न फैला । पुनः क्षण भर में अनेकों
 वीरों को ऐसे गिरा दिया गया मानों इंद्र ने पर्वतों के पंख काट डाले
 हों ॥ २१० ॥ बैरमबेग मुगल को मार दिया और यूसुफ़ खाँ को कमर
 से काट डाला । ताहिरबेग युद्ध में टिका रहा पर अन्त में दो प्रहर
 बीतने पर वह भी गिर पड़ा ॥ २११ ॥ पुनः क्रुद्ध हो नूरमबेग को मार

प्रजार्यो । त्वासित भई मलेछी सेना । आयुध सका हाथ कोई
 ले ना ॥ २१२ ॥ भजे पठान मुगल हूँ भाजे । सैयद आनि
 दसौ दिसि गाजे । फिरे पठान बिमन जे भए । बहुरि धनुक्ख
 टँकोरत गए ॥ २१३ ॥ आवत ही हुसैन खाँ जज्ञा । हसन
 खान सनमुख हवै लूझा । बहुरि मुहंमद खाँ लरि मरियो ।
 जानक सलभ दीप सहि परियो ॥ २१४ ॥ सैद हुसैन कोप
 करि गरजो । जाफर सैद रहा नहि बरजो । लोह प्रजंत बान
 तनि मारे । भए लीन नहि बहुरि निहारे ॥ २१५ ॥ बहुरो
 अमित कोप कह करिकै । छाडे बिसिख धनुख कौ धरिकै ।
 छूटत भए सलभ की जिमि सर । लीन भए नहि लखे द्विगन
 करि ॥ २१६ ॥ इह बिधि मारि सैयदी सेना । शेख फौज
 भाजी बिनु चैना । महाकाल जब भजे निहारे । बिसिख कोप
 नहि ताहि प्रहारे ॥ २१७ ॥ बहुरौ भिरे शेख भरि लाजा ।
 लै लै शस्त्र अस्त्र सभ साजा । जिमि म्रिग बध म्रिगपति
 कौ तकहीं । (सू०पं० १३७४) झखि झखि गिरत मारि नहि
 सकहीं ॥ २१८ ॥ शेख फरीद हना ततकाला । शेख उजैन

डाला और आदिलबेग को जला डाला । म्लेच्छ सेना भयभीत हो उठी और
 कोई भी हाथ में शस्त्र न पकड़ सका ॥ २१२ ॥ पठान और मुगल
 भाग खड़े हुए और अब सैयद दसों दिशाओं से गर्जन करने लगे । अब
 बेमन हो चुके पठान भी मुड़ आए और पुनः धनुषों को खींचने
 लगे ॥ २१३ ॥ आते ही हुसैन खाँ जूझ गया और हसन खाँ भी सामने
 होकर लड़ मरा । फिर मुहम्मद खाँ ऐसे लड़ मरा जैसे पतंगा दीपक में
 गिर पड़ा हो ॥ २१४ ॥ सैयद हुसैन कुपित हो गरजने लगा और जाफर
 सैयद भी अब रुका न रह सका । उसके तन में भी लोहे के बाण मारे
 गए जो उसके शरीर में ही घुस गए और पुनः नहीं देखे गए ॥ २१५ ॥
 पुनः अपरिमित क्रोध करके धनुष पर बाण चढ़ाकर छोड़ दिए गए । वे
 पतंगों की तरह छूटे और फिर आँखों से दिखाई नहीं दिए ॥ २१६ ॥
 इस प्रकार जब सैयदी सेना मारी जा चुकी तो शेखों की फौज बेचैन होकर
 दौड़ पड़ी । महाकाल ने जब उन्हें दौड़ते हुए देखा तो क्रोधित होकर उन
 पर बाण नहीं चलाए ॥ २१७ ॥ शेख पुनः लज्जा से भरकर भिड़ने लगे
 और अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध करने लगे । जैसे मात्र हिरन मारनेवाला शेर
 को देखता ही रह जाता है और झख मारकर गिर पड़ता है पर उसे मार
 नहीं सकता, यही सब उनका हाल था ॥ २१८ ॥ फरीद शेख और शेख

हना बिकराला । शेख अमानुल्लह पुनि मार्यो । शेख वली को सैन सँघार्यो ॥ २१६ ॥ तिल तिल पाइ सुभट कहूँ करे । चरम बरम रन मों कहूँ झरे । भखि भखि उठै सुभट कहूँ क्रुद्धा । दारुण मच्यो ऐस तह जुद्धा ॥ २२० ॥ कहूँ कबंध फिरत सिर बिना । कहूँ सुभट गहि दाँतन बिना । रच्छ रच्छ कहि ताहि पुकारै । सहाँकाल जिनि हमैं सँघारै ॥ २२१ ॥ कहूँ आनि डाकिनि डहकारै । कहूँ मसान किलकटी मारै । भूत पिसाच नचे बैताला । बरत फिरत बीरन कह बाला ॥ २२२ ॥ एकै अच्छ एक ही बाहा । एक चरन अरु अरध सनाहा । इह बिधि सुभट बिकट हनि डारे । पवन बली जनु रूख उखारे ॥ २२३ ॥ जिह अरि काल क्रिपान बही सिर । तिनके रही न जीव करा फिरि । जाकह काल खड़ग छवै गया । अरधै अरध छिनिक सहि भया ॥ २२४ ॥ बही जाहि सिर सरकि सरोही । ताका रहा सीसु हवै दोही । जाकौ बान काल का लागा । ताके प्राण बान ले भागा ॥ २२५ ॥ मारु बजत दोऊ दिसि ऐसे । जानुक प्रलैकाल के जैसे । गो

उज्जैन नामक विकराल वीर को तत्काल मार डाला गया । शेख अमानुल्लाह को मार डाला और शेख वली की सेना का संहार कर दिया ॥ २१९ ॥ वीरों को टुकड़े-टुकड़े कर डाला गया और युद्ध में कवच और ढालें बिखर गईं । वहाँ ऐसा दारुण युद्ध मचा कि वीर क्रोधित हो जलने लगे ॥ २२० ॥ कहीं कबंध सिर के बिना घूम रहे थे और कहीं वीरों ने दाँतों में तिनके पकड़ रखे थे (और प्राणों की भीख माँग रहे थे) । वे “रक्षा-रक्षा” की पुकार लगाते हुए महाकाल से कह रहे थे कि हमें मत मारो ॥ २२१ ॥ कहीं आकर डाकिनियाँ डकार रही थीं और कहीं प्रेतगण किलकारियाँ भर रहे थे । भूत-पिशाच-बैताल नाच रहे थे और अप्सराएँ वीरों का वरण करती घूम रही थीं ॥ २२२ ॥ वीरों की एक ही आँख, एक ही बाँह, एक ही पाँव और आधे-आधे कवच थे । इस प्रकार वीरों को मार डाला गया जैसे वली पवन ने वृक्षों को उखाड़ फेंका हो ॥ २२३ ॥ जिसके सिर पर काल की कृपाण पड़ गई उसमें फिर जीवात्मा बाकी न बची । जिसे काल का खड़ग छू भी गया वह क्षण भर में आधे-आधे दो टुकड़ों में बँट गया ॥ २२४ ॥ जिसके सिर पर तलवार पड़ी उसका सिर दो टुकड़े हो ही गया । जिसे काल का बाण लगा उसके प्राण वही बाण ले भागा ॥ २२५ ॥ दोनों दिशाओं से मारु

मुख झाँझर तूर अपारा । ढोल म्रिदंग मुचंग हजारा ॥ २२६ ॥
घोर आयुधन इह बिधि भयो । जिह को पार न किन्हूँ
लयो । जेतिक असुर मलेछुपजाए । महाकाल छिन बीच
छपाए ॥ २२७ ॥ बहुरि असुर क्रुद्धत अति भयो । अमित
असुर उपराजि सु लयो । धूली करन बिदित केसी भन । घोर
दाढ़ अरु त्रोनत लोचन ॥ २२८ ॥ गरधबकेत महिखधुज
नामा । अरुन नेत्र उपजा संग्रामा । असिधुज निरखि असुर
उपजे रन । सारत भयो दानवन के गन ॥ २२९ ॥ असिधुज
कोप अधिक कह करा । सैन दानवन को रन हरा । भाँति
भाँति तन शस्त्र प्रहारे । तिल तिल पाइ सुभट कटि
डारे ॥ २३० ॥ इह बिधि हनी सैन असिधुज जब । काँपत
भयो असुर जिय मों तब । अमित असुर रन और प्रकाशे ।
तिन को कहत नाम बिनु सासे ॥ २३१ ॥ गोधधुजा काक
धुज राछस । उल्लूकेत बियो बड राछस । असिधुज
के (सू० ग्रं० १३७५) रन समुहि सिधाए । मारि मारि चहूँ ओर
उघाए ॥ २३२ ॥ बिसिखन बिसटि करी कोपहि करि ।
जलधर ऐस बडे भूधर पर । शस्त्र अस्त्र अरि कोप प्रहारे ।

बाद्य ऐसे बज रहे थे जैसे मानों प्रलयकाल हो । गोमुख, झाँझर, तूर,
ढोल, मृदंग, मुचंग आदि हजारों की गिनती में बज रहे थे ॥ २२६ ॥ इस
प्रकार घोर युद्ध हुआ जिसका कोई भी पार न पा सका । असुरों ने जितने
मलेच्छ पैदा किए थे, महाकाल ने उन्हें क्षण भर में नष्ट कर
दिया ॥ २२७ ॥ पुनः असुर क्रोधित हो उठे और उन्होंने अनेकों राक्षस
पैदा कर लिये । वे धूलिकरन, केशी, घोरदाढ़ और रक्तलोचन आदि
थे ॥ २२८ ॥ गर्दभकेतु, महिषध्वज, अरुणनेत्र आदि वे थे जो युद्ध में
पैदा हो गए । असिध्वज (महाकाल) को दानवों को मारता देखकर युद्धस्थल
में अनेकों असुर पैदा हो गए ॥ २२९ ॥ अब असिध्वज ने अत्यधिक
क्रुपित हो युद्ध में दानवों की सेना को समाप्त कर डाला । विभिन्न
प्रकार के शस्त्रों का प्रहार कर वीरों को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँट
डाला ॥ २३० ॥ असिध्वज ने जब इस प्रकार सेना को नष्ट कर डाला तो
वह असुर मन में काँप उठा । उसने अनेकों अन्य असुर युद्ध में पैदा कर
लिये और अब मैं साँस रोककर उनके नाम कहता हूँ ॥ २३१ ॥
गिद्धध्वज, कामध्वज, उल्लूकेतु आदि भयानक राक्षस थे । वे असिध्वज
के सामने आए और मार-मार चारों ओर से चिल्लाने लगे ॥ २३२ ॥

चटपट सुभट बिकटि करि डारे ॥ २३३ ॥ हुअं शब्द
 असिधुजहि उचारा । तिह ते आधि व्याधि नपु धारा । सीत
 ज्वरअर उसन ताप भन । छई रोग अरु संन्यपात गन ॥ २३४ ॥
 बाइ पितय कफ उपजत भए । ताते भेद अमित हवै गए ।
 नाम तिनै गन प्रगट सुनाऊँ । अयुर बेदिघन सभन
 रिझाऊँ ॥ २३५ ॥ आम पात अर स्त्रोनत पात । अरध सिरा
 अरु ह्रिदै संघात । प्रान बाइ आपान बाइ भनि । दंत रोग
 अरु दाढ़ पीड़ गन ॥ २३६ ॥ सूखा ज्वर तेइया चौथाया ।
 असट दिवसयो अरु बीसाया । डेढ मासिया पुनि तप भयो ।
 दांत काढ दैतन पर धयो ॥ २३७ ॥ फील पाव पुनि जानू
 रोगा । उपजा देन दुशट दल सोगा । खई सु बादी भई
 मवेसी । पांड रोग पीनस कटि देशी ॥ २३८ ॥ चिनगि
 प्रमेव भगिंद्र दखूला । पथरी बाइ फिरंग अधनेत्रा । गलत
 कुशट उपजा दुशटन तन । सेत कुशट केतिन के भयो
 भन ॥ २३९ ॥ केते शत्रु सूल हवै मरे । केते आंत रोग ते
 टरे । संग्रहनी संग्रह दुशट किय । जीयन को पुनि नाम न

क्रुद्ध होकर उन्होंने बाणों की वर्षा की और वे बादलों और पहाड़ों के
 समान लग रहे थे । शस्त्र-अस्त्रों के प्रहार कर शीघ्र ही भयानक वीर
 काट डाले गए ॥ २३३ ॥ असिध्वज ने “हुअं” शब्द का उच्चारण किया
 जिसे आधि और व्याधि ने शरीर धारण किया । शीत ज्वर और उष्ण
 ताप, क्षय रोग और सन्निपात ज्वर आदि रोग पैदा हुए ॥ २३४ ॥
 वायु-पित्त-कफ आदि उत्पन्न हुए और फिर आगे उनके अनेकों भेद बन
 गए । अब उनके नाम सुनाता हूँ और आयुर्वेद वालों को प्रसन्न करता
 हूँ ॥ २३५ ॥ आमपात, श्रोणितपात, अर्धशिरा और हृदयसंघात आदि
 थे । वे अन्य, प्राण, अपान वायु, दंत रोग, दाढ़ दर्द थे ॥ २३६ ॥
 सूखा रोग और तीसरे-चौथे का ज्वर था । फिर आठ दिनों वाला तथा बीस
 दिनों वाले ज्वर थे । पुनः डेढ़ मासा ज्वर दांत निकालकर असुरों पर
 टूट पड़ा ॥ २३७ ॥ फिर फीलपाव रोग दुष्टों को कष्ट देने के लिए पैदा
 हो गया । क्षय, बादी, पांडु रोग, पीनस और कटि देशी रोग पैदा
 हुए ॥ २३८ ॥ चिनगि, प्रमेह, भगन्दर, पथरी, वायुफिरंग और अधनेत्र
 आदि रोग भी उत्पन्न हुए । पुनः गलित कुष्ठ दुष्टों के शरीर में पैदा हो
 गया और कितनों को श्वेत कुष्ठ हो गया ॥ २३९ ॥ कितने ही शत्रु सूल
 से और कितने ही आंत रोग से मर गए । जिन दुष्टों को संग्रहणी हो

तिन लिय ॥ २४० ॥ केते उपज सीतला मरे । केते अग्नि बाव ते जरे । भरस चित्त केते हवै मरे । उदर रोग केते अरि टरे ॥ २४१ ॥ जब असिधुज अस रोग प्रकासे । अधिक शत्रु तापत हवै लासे । जाके तन गन दई दिखाई । तिनो जियन की आस चुकाई ॥ २४२ ॥ केतिक दुष्ट ताप तन तपें । केतिक उदर रोग हवै खपें । कितकन आनि कांपनी चढी । केतिक बाइ पित्त तन बढी ॥ २४३ ॥ उदर बिकार किते मरि गए । तापति कितक ताप तन भए । कितकन संन्यपात हवै गयो । केतिन बाइ पित्त कफ भयो ॥ २४४ ॥ केतिक मरे मूँड की पीरा । कितक बाइ तें भए अधीरा । केतिक छई रोग छै कियो । केतन नास बाइ तें थियो ॥ २४५ ॥ दाढ़ पीड़ केते मरि गए । बाइ भए बवरे कई भए । जिन कौ आनि रोग तन प्रासा । ताका प्राण देह तजि नासा ॥ २४६ ॥ (म० प्र० १३७९) ॥ चौपई ॥ कहा लगे मैं बरन सुनाऊँ । ग्रंथ बढन ते अति डरपाऊँ । इह बिधि भयो दानवन नासा । खड़गखेत असु किया तमासा ॥ २४७ ॥ इह बिधि तन दानव जब मारे ।

गई उन्होंने फिर जीवित रहने का नाम न लिया ॥ २४० ॥ कितने चेचक से और वायुअग्नि से मर गए । कई भ्रम के कारण ही मर गए और कितने ही शत्रु उदररोग से मर गए ॥ २४१ ॥ जब असिध्वज ने ऐसे रोग निकाले तो शत्रु अत्यधिक भयभीत हो उठे । जिसके तन पर काल के गणों ने मुँह दिखाया उसने तो जीने की आशा ही चुका दी ॥ २४२ ॥ कितने ही दुष्टों के शरीर ज्वर से तप्त थे और कितने ही उदर रोग से नष्ट हो गए । कितनों ही को कँपकँपी चढ़ गई और अनेकों की वायु और पित्त बढ़ गई ॥ २४३ ॥ कितने ही उदर-विकार से मर गए और कितने ही ज्वर से पीड़ित हो गए । कितनों ही को सन्निपात ज्वर हो गया और कितनों ही को वायु, पित्त और कफ हो गया ॥ २४४ ॥ कितने ही सिर-दर्द से मर गए और अनेकों ही वायुरोग से अधीर हो उठे । कितनों ही को क्षयरोग हो गया और अनेकों ही वायुरोग से नष्ट हो गए ॥ २४५ ॥ दाढ़दर्द से कितने ही मर गए और कई वायु के कारण बावले हो गए । जिन्हें अन्य रोगों ने भी ग्रस लिया, उनके शरीरों ने भी प्राण त्याग दिए ॥ २४६ ॥ ॥ चौपाई ॥ कहाँ तक मैं वर्णन करके सुनाऊँ, मैं ग्रंथ के बढ़ने से घबराता हूँ । इस प्रकार दानवों का नाश हो गया । देखो खड़गकेतु ने ऐसा तमाशा किया ॥ २४७ ॥ इस

पुनि असिधुज अस मंत्र बिचारे । जो इनको हवैहै रन आसा ।
 मुझे दिखैहै कवन तमासा ॥ २४८ ॥ तिन कह दीन ऐस बर
 दाना । तुमते होहि अवखधी नाना । जिह के तन कौ रोग
 संतावै । तांहि अवखधी बेग जियावै ॥ २४९ ॥ इह बिधि
 दयो जबै बरदाना । मिरतक हुते असुर जे नाना । तिन ते
 अधिक अवखधी निकसी । अपने सकल गुनन कह
 बिगसी ॥ २५० ॥ जाके देह पित्त्य दुख देई । सो भखि जरी
 बात की लेई । जिह दानव कौ बाइ सँतावै । सो लै जरी
 पित्त्य की खावै ॥ २५१ ॥ जाकी देहिह कफ दुख ल्यावै ।
 सो लै कफनासनी चबावै । इह बिधि असुर भए बिनु रोगा ।
 माँडत भए जुद्ध तजि सोगा ॥ २५२ ॥ अगनि अस्त्र छाडा
 तब दानव । जाते भए भसम बहु मानव । बारुणास्त्र तब
 काल चलायो । सकल अगनि को तेज सिटायो ॥ २५३ ॥
 राछस पवन अस्त्र संधाना । जाते उडत भए गन नाना ।
 भूधरास्त्र तब काल प्रहारा । सभ सिक्क नको प्राण
 उबारा ॥ २५४ ॥ मेघ अस्त्र छोरा पुनि दानव । भोजि गए
 जिह ते सभ मानव । बाइ अस्त्र लै काल चलायो । सभ

विधि से दानवों को मारकर असिध्वज ने यह विचार किया कि यदि इनको
 जीवित रहने की आशा होगी तो तभी ये मुझे कोई तमाशा दिखा
 सकेंगे ॥ २४८ ॥ तब उनको ऐसा वरदान दिया कि तुम लोगों में से ही
 अनेकों ओषधियाँ निकल आएँ । जिनके तन को रोग सताए उन्हें
 ओषधि तुरन्त प्राणदान दे ॥ २४९ ॥ जब इस प्रकार उसने वरदान
 दिया तो जितने मृत असुर थे उनमें से अनेकों ओषधियाँ निकलीं और
 अपने समस्त गुणों को लेकर प्रकाशित हुईं ॥ २५० ॥ जिसको पित्त
 दुख देता था, वह वायु की जड़ी खा लेता था । जिस दानव को
 वायु सताती थी वह पित्त की जड़ी खा लेता था ॥ २५१ ॥ जिसकी
 देह कफ से दुखी थी वह कफनाशक जड़ी चबा लेता था । इस
 प्रकार असुर निरोग हो गए और शोक को त्याग फिर युद्ध
 करने लगे ॥ २५२ ॥ तब दानवों ने अग्निबाण छोड़ा जिससे अनेकों
 मानव भस्म हो गये । तब काल वरुणास्त्र चलाया और अग्नि का प्रभाव
 समाप्त कर दिया ॥ २५३ ॥ राक्षसों ने पवनास्त्र से निशाना लगाया
 जिससे अनेकों गण उड़ गये । तब काल ने पर्वतास्त्र चलाया और सभी
 सेवकों के प्राण बचाये ॥ २५४ ॥ मेघास्त्र तब दानवों ने छोड़ा जिससे

मेघन तत्काल उडायो ॥ २५५ ॥ राक्षसास्त्र राक्षसहि चलायो । बहु असुरन ताते उपजायो । देवतास्त्र छोरा तब काला । असुर सैन कूटा दरहाला ॥ २५६ ॥ जच्छ अस्त्र तब असुर चलायो । गंधर्वास्त्र लै काल बगायो । ते दोऊ आपु बीर लरि मरे । टुक टुक हवै भू पर पुनि झरे ॥ २५७ ॥ चारणास्त्र जब असुर संधाना । चारण उपज ठाढ भे नाना । सिध असत्र असि धुज तब छोरा । ताते मुख शत्रुन को तोरा ॥ २५८ ॥ उरग अस्त्र लै असुर प्रहारा । ताते उपजे सरप अपारा । खगपति अस्त्र तजा तब काला । भच्छि गए नागन दरहाला ॥ २५९ ॥ बिच्छू अस्त्र दानवहि चलायो । बहु बिछुयन ताते उपजायो । लशिटकास्त्र असिधुज तब छोरा । सभ ही डाँक अठूहन तोरा ॥ २६० ॥ शस्त्र अस्त्र अस असुर चलाए । (सू०ग्रं० १३७७) खड्गकेत पर कछु न बसाए । अस्त्रन साथ अस्त्र बहु छए । जाँकौ लगे लीन ते भए ॥ २६१ ॥ लीन हवै गए अस्त्र निहारे । हाइ हाइ करि असुर पुकारे । महा मूढ फिरि कोप बढाई । पुनि असिधुज तन करी लराई ॥ २६२ ॥ इह बिधि भयो घोर संग्रामा । निरखत

सभी मानव भीग गये । काल ने वायु-अस्त्र चलाया और सब मेघों को तत्काल उड़ा दिया ॥ २५५ ॥ असुरों ने राक्षसास्त्र चलाया और उसी से अनेकों असुर पैदा किए । तब काल ने देवतास्त्र चलाया और तत्काल असुर-सेना को कूट डाला ॥ २५६ ॥ तब असुरों ने यक्षास्त्र चलाया और काल ने गंधर्वास्त्र चलाया । वे दोनों वीर आपस में लड़ मरे और खंड-खंड होकर पुनः धरती पर गिर पड़े ॥ २५७ ॥ तब असुरों ने चारणास्त्र चलाया जिससे अनेकों चारण उत्पन्न हो गये । तब असिध्वज ने सिद्धास्त्र छोड़ा और उससे शत्रुओं का मुख तोड़ दिया ॥ २५८ ॥ असुरों ने सर्पास्त्र छोड़ा जिससे अनेकों सर्प निकल पड़े । तब काल ने गरुडास्त्र छोड़ा जिससे गरुड़ तत्काल नागों का भक्षण कर गये ॥ २५९ ॥ तब दानवों ने बिच्छू-अस्त्र छोड़ा और उससे अनेकों बिच्छू उत्पन्न हो गए । तब असिध्वज ने लशिटकास्त्र छोड़ा और सबके ऊपर कनखजूरों को छोड़ दिया ॥ २६० ॥ असुरों ने ऐसे शस्त्र-अस्त्र छोड़े पर खड्गकेतु पर कुछ भी असर न हुआ । अस्त्रों के साथ अस्त्र भिड़े और जिसको लगे उसी में समा गये ॥ २६१ ॥ अस्त्रों को देखकर वे उन्हीं में समा गये और असुर “हाय-हाय” पुकारने लगे । महामूर्खों ने कुपित हो पुनः

देह दानवी बामा । धन्य धन्य असिधुज कौ कहैं । दानव हेरि
 मोन हवैं रहैं ॥ २६३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ महाँ रोस कैंक हठी
 फेरि गाजे । चहूँ ओर ते घोर बादिल बाजे । प्रणो संख भेरी
 बजे ढोल ऐसे । प्रलैंकाल के काल कौ राति जैंसे ॥ २६४ ॥
 बजे संख औ दानवी भेर ऐसी । कहै आसुरी ब्रित की कित
 जैसी । कहैं वीर बाजंत बाँके बजावैं । मनो चित्त को कोप
 भाखे सुनावैं ॥ २६५ ॥ किते वीर बज्रान के साथ पेले ।
 भरे वस्त्र लोह मनो फाग खेले । मूए खाइकै दुष्ट केते मरुरे ।
 सोए जान मालंग खाए धतूरे ॥ २६६ ॥ किते टूक टूकै बली
 खेत होए । मनो खाइकै भंग मालंग सोए । बिराजै कटे अंग
 वस्त्रो लपेटे । जुमे के मनो रोज मैगौं सलेटे ॥ २६७ ॥ कहैं
 डाकनी झाकनी हाँक सारैं । उठै नाद भारे छुटैं चीतकारैं ।
 कहैं घूमि भूमैं परे खेत बाजी । निवाजे झुकैहैं मनौ काबि
 काजी ॥ २६८ ॥ हठी बद्धि गोपा गुलित्वाण बाँके । चले कोप

असिध्वज (महाकाल) के साथ लड़ाई की ॥ २६२ ॥ इस प्रकार घोर
 संग्राम हुआ जिसे दानव-देव-स्त्रियाँ देख रही थीं । वे असिध्वज को धन्य-
 धन्य कह रही थीं और दानवगण यह सब देखकर चुप लगाकर रह गए
 थे ॥ २६३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ हठी वीर महारुष्ट हो गर्जने लगे और
 चारों ओर घोर वाद्य बजने लगे । शंख, भेरी और ढोल आदि
 ऐसे बजने लगे मानों प्रलयरात्रि हो ॥ २६४ ॥ शंख और दानवाकार
 भेरियाँ बजकर असुरों की युद्धप्रेरक प्रवृत्ति का परिचय दे रही थीं ।
 कहीं वीर वाद्य बजाकर मानों चित्त के कोप को भाषा देकर सुना रहे
 थे ॥ २६५ ॥ कहीं वीर वज्रों के साथ मिले पड़े थे और उनके रक्त-सने
 वस्त्र मानों उनके होली खेले होने का संकेत कर रहे थे । कितने ही दुष्ट
 मरोड़ खाकर मर रहे थे और ऐसे लग रहे थे मानों मलंग धतूरा खाकर
 लेटे हों ॥ २६६ ॥ कितने ही बली टुकड़े-टुकड़े होकर ऐसे गिरे थे मानों
 मलंग भाँग खाकर गिरे पड़े हों । कटे अंग वस्त्रों में लपेटे ऐसे पड़े थे मानों
 जुमे (शुक्र) के दिन नमाज पढ़ रहे गौंस-फक्कीर अंग बिखरे नमाज पढ़ने
 के लिए लेटे पड़े हों । (कितने ही मुसलमानों का विश्वास है कि गौंस
 सम्प्रदाय के फक्कीर ध्यानलीन होकर अपने अंगों को बिखरा देते
 हैं) ॥ २६७ ॥ कहीं डाकिनियाँ हुंकार रही थीं और भारी नाद के साथ
 युद्ध में चीत्कार हो रहा था । कहीं युद्धस्थल में घोड़े घूमकर गिरे पड़े
 थे । वीर ऐसे लग रहे थे मानों काबे में नमाज पढ़ने के लिए झुके काजी

कंक हठीले निसाँके । कहूँ चरम बरमैं गिरे भरम छेदे । कहूँ
मांस के गिद्ध लै गेल बेदे ॥ २६६ ॥ कहूँ बीर बाजी बजंती झरे
हैं । कहूँ खंड खंड हवै सिपाही मरे हैं । कहूँ सत्त दंती परे हैं
प्रहारे । गिरे भूमि पब्वै मनो वज्र मारे ॥ २७० ॥
॥सवैया॥ काढि क्रिपान जबै गरज्यो लखि देव अदेव सभ डरपाने ।
आनि प्रलै दिन सो प्रगट्यो सित साइक लै असिकेतु रिसाने ।
फूक भए मुख सूखि गई थुकि जोरि हथ्यार करोरि पराने ।
मानहु सावन के बदरा सुनि मारुति की घहरै भहराने ॥ २७१ ॥
डाकि अचैं कहूँ खोन डकाडक प्रेत पिशाच कहूँ किलकारैं ।
बाजत हैं कहूँ डौरु डमांडम भैरव भूत कहूँ भभकारैं । जंग
अदंग उपंग बजैं कहूँ भीखन सी रन भेरि भकारैं । आनि अरे
कहूँ बीर चटापट कोपि कटाकट घाइ प्रहारैं ॥ २७२ ॥
ऐसी बिलोकि कै मारि मची भट कोप भरे अरि ओर
चहैं । (सू० प्र० १३७८) बरछे अरु बान कमान क्रिपान गदा बरछी
तिरसूल गहैं । अरि पै अरराइकै घाइ करें न टरें बहु तोर
सरीर सहैं । पुरजे पुरजे तन भे रन मै दुख ते तन मै मुख ते न

हों ॥ २६८ ॥ हठी बीर गोष, गुलत्राण आदि बाँधकर कुपित हो हठपूर्वक
चल पड़ रहे थे । कहीं चमड़े की ढालें और कवच मर्मों के छिदने के बाद
पड़े थे और कहीं गिद्ध मांस ले चले जा रहे थे ॥ २६९ ॥ कहीं बीर,
घोड़े और बादक गिरे पड़े हैं और कहीं सिपाही खंड खंड हो मरे पड़े हैं ।
कहीं मदमस्त हाथी प्रहार खाकर पड़े थे और ऐसे लग रहे थे मानों वज्र
का प्रहार खाकर पर्वत पड़े हों ॥ २७० ॥ ॥सवैया॥ जब वह कृपाण
निकालकर गरजा तो देव-अदेव सभी भयभीत हो उठे । असिकेतु (महाकाल)
साथ में धनुष-बाण लेकर प्रलय के दिन के समान आ प्रकट हुआ ।
सबका मुँह पीला पड़ गया, सबका गला सूख गया और करोड़ों हथियार
जोड़कर ऐसे भागे मानों पवन के वेग के साथ सावन के बादल घहरा उठे
हों ॥ २७१ ॥ कहीं डाकिनियाँ पेठ भरकर रक्त पी रही हैं और कहीं प्रेत-
पिशाच किलकारियाँ भर रहे हैं । डमरू डमांडम वज्र रहे हैं और भैरव
भूत भभक रहे हैं । युद्ध में मृदंग, उपंग और भीषण भेरियाँ बज रही हैं ।
किधर से भी बीर आकर शीघ्रतापूर्वक अड़ जाते और कटाकर घाव प्रहार
चल रहे थे ॥ २७२ ॥ ऐसी भीषण मारकाट देखकर शत्रुओं की ओर
के वीरों ने बरछे, बाण, कमान, कृपाण, गदा, बरछी, त्रिशूल आदि पकड़
लिये । वे बिलबिलाकर शत्रु पर घाव करते थे और शरीर पर बाण

कहैं ॥ २७३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ पीस पीस करि दाँत दुबहिया
 धावहीं । बज्रबान बिछूअन के बिसिख लगावहीं । टूक टूक
 हवै सरत न पगु पाछे टरैं । हो चटपट आनि बरंगनि तिन
 पुरखन बरैं ॥ २७४ ॥ चाबि चाबि करि ओठ दुबहिया रिसि
 भरे । टूक टूक हवै गिरे न पगु पाछे परे । जूझि जूझि रन
 गिरत सुभट समुहाइकै । हो बसे स्वरग मो जाइ परम सुख
 पाइकै ॥ २७५ ॥ ॥ सवैया ॥ कोप घना करिकै असुरारदन
 काढि क्रिपानन कौ रन धाए । हाँकि हथपारन लै उमडे रन
 कौ तजिकै पगु द्वै न पराए । मार ही मारि पुकारि हठी घन
 ज्यों गरजे न कछू डरपाए । मानहु सावन को रितु मै घन
 बूंदन ज्यों सर त्यों बरखाए ॥ २७६ ॥ धूल जटायु तें आदिक
 सूर सभै उमडे कर आयुध लैकै । कोप क्रिपान लए कर बान
 महाँ हठ ठानि बडी रिसिकैकै । चौपि चढ़े चहूँ ओरन ते
 बरियार बडे दोऊ नैन तचैकै । आनि अरे खड़गाधुज सौ न चले
 पगु द्वै बिमुखाहव हवैकै ॥ २७७ ॥ भारी प्रताप भरे मन मै

सहते हुए भी नहीं टलते थे । उनके शरीर खंड-खंड हो गये थे पर युद्ध
 में वे मुख से तनिक भी नहीं कह रहे थे ॥ २७३ ॥ ॥ अड़िल्ल ॥ दो
 भुजाओंवाले (दानव) दाँत पीस-पीसकर दौड़ते थे और वज्र, बाण,
 बिछुआ आदि से वार करते थे । वे खंड-खंड होकर मर जाते थे, पर पैर
 पीछे नहीं हटाते थे और इन वीरों को तुरन्त आकर अप्सराएँ वरण कर
 ले रही थीं ॥ २७४ ॥ दाँत किटकटाकर दानव फिर क्रुद्ध हो बढ़ते
 और टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ते पर पाँव पीछे न हटाते । सम्मुख हो
 लड़नेवाले वीर जूझ-जूझकर गिर पड़ रहे थे और परम सुख को प्राप्त कर
 स्वर्ग में जा बस रहे थे ॥ २७५ ॥ ॥ सवैया ॥ राक्षसगण अत्यधिक
 क्रुद्ध हो तलवारें निकालकर युद्ध के लिए दौड़ पड़े । वे शस्त्र ले उमड़
 पड़े और युद्ध छोड़कर दो कदम भी पीछे नहीं हटे । वे हठी मार-मार
 पुकार कर, निर्भय होकर बादल की तरह गरज रहे थे । बाण वे ऐसे बरसा
 रहे थे मानों सावन में बादल गरजकर जल की बूंदें बरसा रहे हों ॥ २७६ ॥
 धूल, जटायु आदि शूरवीर हाथों में शस्त्र लेकर उमड़ पड़े । उन्होंने
 क्रुपित हो हाथों में कृपाण और बाण आदि ले लिये । बड़े-बड़े वीर दोनों
 आँखें फैलाकर चारों ओर से उमड़ पड़े । वे खड़गध्वज (महाकाल) के
 साथ आ भिड़े और दो कदम भी युद्ध से विमुख नहीं हुए ॥ २७७ ॥ मन
 में भारी ताप लेकर वीर विविध प्रकार के शस्त्र लेकर टूट पड़े । उन्होंने

भट धाड़ परे बिबिधायुध लीने । कौच क्रिपान कसे सभ साजन
 ओठन चाबि बडी रिसि कीने । आछे कुलान बिखै उपजे सभ
 कौनहूँ बात बिखै नहि हीने । जूझि गिरे खड्गाधुज सौ लरि
 स्त्रोतित सो सिगरे अंग भीने ॥ २७८ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि
 कोप काल जब भरा । दुशटन को छिन मै बधु करा । आपु
 हाथ दै साध उबारै । शत्रु अनेक छिनक सो टारे ॥ २७९ ॥
 असिधुज जू कोपा जब ही रन । मारत भयो शत्रुगन चुनि चुनि ।
 सभ सिक्कन कह लिओ उबारा । दुशट गनन को करा
 प्रहारा ॥ २८० ॥ इह बिधि हने दुशट जब काला । गिरि
 गिरि परे धरनि बिकराला । निज हाथन दै संत उबारै । शत्रु
 अनेक तनिक सहि मारे ॥ २८१ ॥ दानव अमित कोप करि
 दुके । मारहि मारि दसौ दिसि कूके । बहुरि काल कुपि खड्ग
 सँभारा । शत्रु सैन पल बीच प्रहारा ॥ २८२ ॥ (मू०पं० १३७६)
 बहुरि कोप करि दुशट अपारा । महाँकाल कौ चहत सँघारा ।
 जिमि गगनहि कोई बान चलावै । ताहि न लगै तिसी पर
 आवै ॥ २८३ ॥ भाँति भाँति बादिब वजाइ । दानव निकट
 पहुँचे आइ । महाँकाल तब बिरद सँभारो । संत उबारि

कवच-कृपाण सजा रखे थे और क्रोध में वे ओंठ चबा रहे थे । वे सभी
 अच्छे कुलों में पैदा हुए थे और किसी भी बात में हीन नहीं थे । वे
 खड्गध्वज से लड़कर जूझ गिरे और उनके अंग रक्त से भीगे हुए
 थे ॥ २७८ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार काल जब क्रोध से भर उठा तो
 उसने दुष्टों का वध कर दिया । स्वयं सहारा देकर उसने साधुओं को
 उबार लिया और क्षण भर में शत्रुओं को मार डाला ॥ २७९ ॥ जब
 असिध्वज रण में कुपित हो उठा तो उसने चुन-चुनकर शत्रुओं को मार
 डाला । उसने सब सेवकों को उबार लिया और दुष्टों पर प्रहार
 किया ॥ २८० ॥ इस प्रकार काल ने जब दुष्टों को मारा तो वे विकराल
 रूप से धरती पर गिर पड़े । अपने हाथों से संतों को बचा लिया और
 तनिक से समय में अनेकों शत्रुओं को मार डाला ॥ २८१ ॥ दानव
 अपरिमित क्रोध कर एकत्र हो गए और दसों दिशाओं से मार-मार चिल्लाने
 लगे । पुनः काल ने कुपित हो खड्ग सँभाल लिया और शत्रु-सेना पर
 उससे वार किया ॥ २८२ ॥ पुनः अनेकों शत्रु कुपित होकर महाकाल
 को मारना चाहते थे । जैसे ही कोई आकाश में बाण चलाता था वह
 महाकाल को न लगकर उसे ही आ लगता था ॥ २८३ ॥ अनेकों

दोखियन मारो ॥ २८४ ॥ खंड खंड करि दानव सारे ।
 तिल तिल प्राइ सकल करि डारे । पावकास्त्र कलि बहुरि
 चलायो । सैन असुर को सगल गिरायो ॥ २८५ ॥ वरुणास्त्र
 दानव तब छोरा । जाँते पावकास्त्र कह मोरा । बास्वास्त्र
 तब काल चलायो । इंद्र प्रतच्छ हवै जुद्ध सचायो ॥ २८६ ॥
 दानव निरखि ठाढ़ रन बासव । पीवत भयो कूप द्वै आसव ।
 करिकै कोप अतुल अस गरजा । भूमि अकाश शब्द सुनि
 लरजा ॥ २८७ ॥ अमित बासवहि बान प्रहारे । बरम चरम
 सभ भेदि पधारे । जनुक नाग बाँबी धसि गए । भूतल भेदि
 पतार सिधए ॥ २८८ ॥ अमित रोस बासव तब किया ।
 धनुष बान कर भीतर लिया । अमित कोप करि बिसिख
 प्रहारे । फेरि दानवन पार पधारे ॥ २८९ ॥ दानव अधिक
 रोस करि धाए । देव पूज रन भाँझ भजाए । भजत देव
 निरखे कलि जबही । शस्त्र अस्त्र छोरे रन तबही ॥ २९० ॥
 बानन की बरखा कलि करी । लागत सैन दानवी जरी । शत्रु

वाद्य बजाते हुए दानव उसके पास आ पहुँचे । महाकाल ने तब अपने
 स्वभाव के अनुसार संतों की बचाया और दुष्टों को मार डाला ॥ २८४ ॥
 खंड-खंड कर दानवों को मार डाला और प्रायः सबको तिल-तिल कर
 दिया । काल ने आग्नेयास्त्र चलाकर असुरों की समस्त सेना को गिरा
 दिया ॥ २८५ ॥ तब दानवों ने वरुणास्त्र छोड़ा जिससे पावकास्त्र को
 वापस मोड़ दिया । तब काल ने बासवास्त्र चलाया जिससे इंद्र प्रत्यक्ष
 होकर युद्ध करने लगा ॥ २८६ ॥ दानव इंद्र को युद्ध में देखकर दो
 कुएँ आसव (शराब) पी गया । अब वह अपरिमित क्रोध करके गरजा
 जिसके शब्द से भूमि और आकाश काँपने लगे ॥ २८७ ॥ बासव (इंद्र)
 ने अनेकों बाणों से प्रहार किया । उसके बाण कवच, ढाल सबको छेदकर
 पार निकल गए । मानों नाग अपनी बाँबी में घँस गए हों और भूमि को
 छेदकर पाताल में चले गए हों ॥ २८८ ॥ बासव ने तब अपरिमित रूप
 से क्रुद्ध होकर धनुष-बाण हाथ में लिया । उसने अपार क्रुद्ध हो बाणों से
 बार किया जो कि दानवों को फाड़कर पार निकल गए ॥ २८९ ॥
 दानवों ने अत्यधिक क्रोध से आक्रमण किया और देवताओं को युद्ध में भगा
 दिया । काल ने जब देखा कि देवगण भाग रहे हैं तो उसने युद्ध में सारे
 अस्त्र छोड़ दिये ॥ २९० ॥ काल ने बाणों की वर्षा की जिससे दानवी-
 सेना जल उठी । अनेकों शत्रु मरे पर उनसे अनेकों फिर पैदा होकर खड़े

अनेक निधन कह गए । बहुरि उपजि बहु ठाढ़े भए ॥ २६१ ॥
 बहुरि काल कुपि बान प्रहारे । बेधि दानवन पार पधारे ।
 दानव तबै अधिक करि क्रुद्धा । मंडा महाकाल तन
 जुद्धा ॥ २६२ ॥ महाकाल तब बान प्रहारे । दानव एक एक
 करि मारे । तिन ते बहु उपजित रन भए । महाकाल के
 समुहि सिधए ॥ २६३ ॥ जेतिक धए तितक कलि मारे ।
 रथी गजी तिल तिल करि डारे । तिनते उपजि ठाढ़े घने ।
 रथी गजी बाजी सुभ बने ॥ २६४ ॥ बहुरि काल करि कोप
 प्रहारे । दैत अनिक झितु लोक पधारे । महाकाल बहुरौ
 धनु धरा । सौ सौ बान एक इक हरा ॥ २६५ ॥ सौ सौ
 एक एक सर सारा । सौ सौ गिरी खोन की धारा । सत सत
 असुर उपजि भे ठाढ़े । असी गजी कौची बल गाढ़े ॥ २६६ ॥
 रूप हजार हजार धारि कलि । गरजत भयो (सू० प्र० १३८०)
 अतुल करि कै बल । कहकह हसा काल बिकराला । काढ़े
 दाँत तजत मुख ज्वाला ॥ २६७ ॥ एक एक रन बान चलायो ।
 सहस सहस दानव कह घायो । केतिक सुभट दाढ़ गहि चाबे ।
 केतिक सुभट पाव तर दाबे ॥ २६८ ॥ केतिक पकरि भच्छ

हो गये ॥ २९१ ॥ काल ने फिर कुपित हो बाण मारे जो दानवों को
 छेदकर पार कर गये । दानवों ने तब अत्यधिक क्रुद्ध हो महाकाल से
 युद्ध छेड़ दिया ॥ २९२ ॥ महाकाल ने तब बाणों से प्रहार कर एक-
 एक दानव को मार डाला । उनसे अनेकों उत्पन्न हो फिर महाकाल के
 सामने आ गए ॥ २९३ ॥ जितने भी आए उतनों को ही काल ने मार
 डाला और रथी, गजी सबको टुकड़े-टुकड़े कर डाला । उनसे फिर पैदा
 होकर रथी, गजी, घुड़सवार बन गए ॥ २९४ ॥ पुनः काल ने कुपित हो
 प्रहार किया और अनेकों दैत्य मृत्युलोक चले गए । महाकाल ने पुनः
 धनुष पकड़ा और सौ-सौ बाण उस पर चढ़ा लिये ॥ २९५ ॥ उसने सौ-
 सौ को एक-एक बाण मारा जिससे सौ-सौ रक्त की धाराएँ बह निकलीं ।
 उससे फिर सौ-सौ असुर पैदा हो गए और वे अश्वारोही, गजी और
 कवचधारी वीर बन गए ॥ २९६ ॥ हजार-हजार रूप धारण कर काल
 अपरिमित बल धारण कर गरजने लगा । काल क्रहकहा लगाकर हँसा ।
 उसने दाँत निकाले और मुख से ज्वाला निकालने लगा ॥ २९७ ॥ उसने
 युद्ध में एक-एक बाण चलाया और हजार-हजार दानवों को मार डाला ।
 कितने ही वीरों को दाढ़ में चबा लिया और कितने ही वीरों को पाँव के

करि लयो । तिन ते एक न उपजत भयो । कितकन द्विशटा
 करखन कीयो । सभहिन को खोनित हरि लीयो ॥ २९६ ॥
 खोन रहित दानव जब भयो । दैत पराजन ते रहि गयो ।
 क्षमित अधिक हवै छाडत स्वासा । ताते करत दैत
 परगासा ॥ ३०० ॥ पवना करख करा तब काला । घटे
 बढन ते अरि बिकराला । इह बिधि जब आकरखन कीया ।
 सभ बल हरि असुरन का लीया ॥ ३०१ ॥ मारि मारि जो
 असुर पुकारत । तिह ते अमित दैत तन धारत । बाचा
 करख काल तब कयो । बोलन तें दानव रहि गयो ॥ ३०२ ॥
 दानव जब बोलहि रहि गयो । चिंता करत चित्त मो भयो ।
 ताही तें दानव बहु भए । सनमुख महाकाल के धए ॥ ३०३ ॥
 शस्त्र अस्त्र करि कोप प्रहारे । महावीर बरियार डरारे ।
 महाकाल तब गरज सँभारी । बहुतन की मेधा कहि
 डारी ॥ ३०४ ॥ तिन की भुअ मेजा जो परी । ताँते सैन
 देह बहु धरी । मारि मारि करि कोप अपारा । जागत भए
 असुर बिकरारा ॥ ३०५ ॥ तिनको फोरि मूँडि कलि डरे ।
 ताते मेधा जो भुअ परे । मारि मारि कहि असुर जगे रन ।

तले दबा डाला ॥ २९८ ॥ कितनों को ही पकड़कर खा गया और फिर
 उनमें से एक भी पैदा नहीं हुआ । अनेकों को दृष्टि से खींचकर उन
 सबका खून चूस लिया ॥ २९९ ॥ जब दानव रक्त-विहीन हो गया तो
 वह दैत्य उत्पन्न करने की स्थिति में नहीं रह गया । अब वह थककर
 श्वास छोड़ता था जिससे दैत्य पैदा होते जाते थे ॥ ३०० ॥ तब
 काल ने पवन को आकर्षित किया जिससे विकराल शत्रु बढ़ने से रुक
 गये । जब इस प्रकार आकर्षण किया गया तो असुरों का बल हरण कर
 लिया ॥ ३०१ ॥ असुर जब मार-मार पुकारते थे तो अनेकों दैत्य शरीर
 धारण करते जाते थे । जब वाणी का आकर्षण किया गया तो दानव बोलने
 से जाता रहा ॥ ३०२ ॥ जब दानव बोल नहीं पा रहा था तो वह चित्त
 में चिंतातुर हो उठा । उसी से अनेकों दानव पैदा हुए और काल के
 सामने दौड़ पड़े ॥ ३०३ ॥ वे महाबली, विकराल वीर क्रुद्ध हो अस्त्र-
 शस्त्र ले टूट पड़े । महाकाल ने तब गरजकर अनेकों की मेधा
 निकाल डाली ॥ ३०४ ॥ उनकी मेधा जब धरती पर पड़ी तो उससे
 बहुत-सी सेना पैदा हुई । क्रुद्ध हो मार-मार कहते विकराल दानव जग
 उठे ॥ ३०५ ॥ काल ने उनके सिर फोड़ डाले और उनमें से मेधा भूमि पर

सूरवीर बरियार सहाँ मन ॥ ३०६ ॥ पुनि करि काल गदा
रिसि धरी । शत्रु खोपरी तिल तिल करी । जेते टूक
खोप्रियन परे । तेतिक रूप दानवन धरे ॥ ३०७ ॥ केतिक गदा
पान गहि धाए । केतिक खड़ग हाथ लै आए । मारि मारि
कै कोपहि सरजे । मानहु सहाँकाल घन गरजे ॥ ३०८ ॥
आनि काल कह करत प्रहारा । इक इक सूर सहस हथियारा ।
महाँकाल कह लगत न भए । तामहि सभै लीन हवै
गए ॥ ३०९ ॥ शस्त्र लीन लखि असुर रिसाने । शस्त्र अस्त्र
लै कोपि सिधाने । अमित कोप करि शस्त्र प्रहारत । मारि
मारि दिसि दसौ पुकारत ॥ ३१० ॥ मारि मारि की सुनि
धुनि काना । कोपा काल शस्त्र गहि नाना । हाँकि
हाँकि (सू०ग्रं० १३८१) हथियार प्रहारे । दुशट अनिक पल बीच
सँघारे ॥ ३११ ॥ तिन ते मेद माँस जो परो । ता ते बहु असुरन
तन धरो । मारि मारि कहि समुहि सिधाए । बाँधे चुंग
चौपि तन आए ॥ ३१२ ॥ इक इक टूक सहस करि डारे ।
तिन तें भए असुर रन भारे । तिनके टूक टूक करि लच्छन ।

गिर पड़ी । वे सूरवीर विकराल दानव मार-मार करते हुए युद्ध में जीवित
हो खड़े हो गए ॥ ३०६ ॥ पुनः काल ने क्रोधित हो गदा पकड़ी और
शत्रुओं की खोपड़ी चूर-चूर कर दी । खोपड़ियों के जितने टुकड़े हुए उतने
ही रूप दानवों ने धारण कर लिये ॥ ३०७ ॥ कितने ही हाथ में गदा और
कितने ही हाथ में खड़ग लेकर आ पहुँचे । मार-मारकर वे कुपित होते
थे और ऐसे लग रहे थे मानों महाकाल बादल के समान गरज रहा
हो ॥ ३०८ ॥ एक-एक वीर हजारों शस्त्र लेकर आ-आकर काल पर
प्रहार करता था । महाकाल को कुछ नहीं लगता था और सभी शस्त्र उसी
में लीन हो जाते थे ॥ ३०९ ॥ शस्त्रों को लीन होते देखकर असुर क्रुद्ध
हो उठे और अस्त्र-शस्त्र ले गुस्से से चल पड़े । शस्त्र लेकर अनरिमित
क्रोध के साथ वे वार कर रहे थे और मार-मार दसों दिशाओं से पुकार रहे
थे ॥ ३१० ॥ मार-मार की ध्वनि सुनकर काल अनेकों शस्त्र लेकर
कुपित हो उठा । हाँक-हाँककर उसने शस्त्र चलाए और पल भर में
अनेकों दुष्टों का संहार कर दिया ॥ ३११ ॥ उनसे जो मेघा और माँस
गिरा उससे बहुत से असुरों ने शरीर धारण कर लिया । वे मार-मार
कहते हुए सामने की ओर दौड़े और चौकड़ियाँ भरने लगे ॥ ३१२ ॥
एक-एक के हजारों टुकड़े कर दिए गये जिनसे रण में अन्य भारी असुर

गीध पिसाच गए करि भच्छन ॥ ३१३ ॥ ते भी अमित रूप करि धाए । जे तिल तिल करि सुभट गिराए । तिनकी करी नास सभ सेना । महाकाल कर रंचक भैना ॥ ३१४ ॥ मारि मारि जोधा कहूँ गाजहि । जंबुक गीध मांस लै भाजहि । प्रेत पिसाच कहूँ लिलकारहि । डाकनि झाकि किलकटी मारहि ॥ ३१५ ॥ कोकिल काक जहाँ किलकारहि । स्रोत के केसर घसि डारहि । जानुक ढोल बडे डफ सोहै । देव दैत दानव मन मोहै ॥ ३१६ ॥ बान जान कुंकमा प्रहारे । मूठि गुलालन बरछा भारे । ढाल मानो डफमाला बनी । पिचुकारिये तुफंगें घनी ॥ ३१७ ॥ इह बिधि भयो घोर संग्रामा । काँपा इंद्र चंद्र को धामा । पशु पंछी अति ही अकुलाए । छोडि धाम काननहि सिधाए ॥ ३१८ ॥ बाजी कहूँ घाइल भभकावत । उठि उठि सुभट समुह कह धावत । कहकहाट कहूँ काल सुनावैं । भीखन सुने नाम भै आवैं ॥ ३१९ ॥ सूरन के लोमा भे खरे । कातर निरखि धाम रन बरे । सोफी सुम भए बहु व्याकुल । दसो दिसन भजि चले डराकुल ॥ ३२० ॥

पैदा हो गये । उनके लाखों टुकड़े गिद्ध-पिशाच खा गए ॥ ३१३ ॥ जो वीर तिल-तिल काट गिराए गए थे वे भी अनेकों रूप धारण कर आ उपस्थित हुए । महाकाल ने रंच मात्र भी भय न मानकर उनकी समस्त सेना का नाश कर दिया ॥ ३१४ ॥ योद्धागण कहीं मार-मार की गर्जना कर रहे थे और गीदड़, गिद्ध मांस लेकर भाग रहे थे । कहीं प्रेत-पिशाच ललकार रहे थे और कहीं डाकिनियाँ किलकारियाँ मार रही थीं ॥ ३१५ ॥ कोकिल और कोए जहाँ किलकारियाँ मार रहे थे वहाँ रक्त का केसर डाला जा रहा था । बड़ी-बड़ी डफलियाँ ढोलों के समान शोभायमान हो रही थीं और देव-दैत्य सबका मन मोह रही थीं ॥ ३१६ ॥ बाण मानों कुंकुम थे और बरछे मानों गुलाल की मुट्ठी थे । ढाल मानों डफली बन गई थी और तुफंग (बंदूक) मानों पिचकारी बनी हुई थी ॥ ३१७ ॥ इस प्रकार घोर संग्राम हुआ और इंद्र-चन्द्रलोक भी काँप उठा । पशु-पक्षी भी अत्यंत व्याकुल हो उठे और घरों को छोड़कर जंगल में चले गये ॥ ३१८ ॥ कहीं घायल अश्व भभक रहे थे और कहीं वीर उठ-उठकर सामने की ओर दौड़ रहे थे । कहीं काल का अट्टहास सुनाई पड़ रहा था और उसका भीषण नाम सुनने से ही भय लगता था ॥ ३१९ ॥ शूरवीरों के तो रोम (बाल— रोमांच के कारण) खड़े हो गए और डरपोक युद्ध देखकर घरों

केतिक सुभट पाव ते रोपैं । लै लै खड़ग नगन करि धोपैं ।
 महाकाल कुपि शस्त्र प्रहारे । साध उबारि दुशट सभ
 मारे ॥ ३२१ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ मचे आनि मैदान मै बीर
 भारे । दिखै कौन जीतै दिखै कौन हारे । लए सूल औ सेल
 काती कटारी । चहूँ ओर गाजे हठी बीर भारी ॥ ३२२ ॥
 बजे घोर संग्राम सों घोर बाजे । चहूँ ओर बाँके रथी बीर
 गाजे । लए सूल औ सेल काती कटारे । मचे कोप कै कै हठीले
 रज्यारे ॥ ३२३ ॥ कहूँ धूल धानी छुटैं फील नालै । कहूँ
 बाज नालै महाँ घोर ज्वालै । कहूँ संख भेरी प्रणो ढोल बाजैं ।
 कहूँ सूर ठोकैं भुजा भूप गाजैं ॥ ३२४ ॥ कहूँ घोर बादित
 बाजैं नगारे । कहूँ बीर बाजी गिरे खेत मारे । कहूँ खेत
 नाचैं पठै (सु० प्र० १३८) पक्खरारे । कहूँ सूर संग्राम सोहैं
 डरारे ॥ ३२५ ॥ कहूँ बाज भारे कहूँ झूम हाथी । कहूँ फैंट
 भाथी जुझे बाँधि साथी । कहूँ गरजि ठोकैं भुजा भूप भारे ।
 बमै स्रोन केते गिरे खेत मारे ॥ ३२६ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि

में जा घुसे । नशेड़ी और कृपण सभी व्याकुल हो उठे और कायर दसों
 दिशाओं में भाग निकले ॥ ३२० ॥ कितने ही वीर पाँव जमाकर खड़े
 हो गए और नंगी तलवारों को घुमाने लगे । महाकाल ने कुपित हो शस्त्रों
 से प्रहार किया और संतों का उद्धार कर सभी दुष्टों को मार दिया ॥ ३२१ ॥
 ॥ भुजंग छंद ॥ मैदान में बली वीर टूट पड़े । अब देखें कौन जीतता और
 कौन हारता है । सूल, काती और कटारें लेकर चारों ओर हठी वीर
 गर्जन करने लगे ॥ ३२२ ॥ उस घोर संग्राम में घोर वाद्य बजने लगे और
 चारों ओर बाँके रथी गरजने लगे । सूल, काती, कटार लिये हठीले
 राजागण कुपित हो युद्ध करने लगे ॥ ३२३ ॥ कहीं धूल उड़ाते हाथी
 छुट्टा घूम रहे थे । कहीं घोड़ों की टापों से अग्नि की घोर चिंगारी
 रूपी ज्वालाएँ उठ रही थीं । कहीं शंख, भेरी, ढोल आदि बज रहे थे और
 कहीं शूरवीर भुजाएँ ठोक रहे थे और राजागण गरज रहे थे ॥ ३२४ ॥
 कहीं घनघोर वाद्य, नगाड़े आदि बज रहे थे और कहीं युद्धस्थल में वीर
 और उनके घोड़े गिर पड़े थे । कहीं युद्ध में अश्व नाच रहे थे और कहीं
 भयानक शूरवीर संग्राम में शोभायमान हो रहे थे ॥ ३२५ ॥ कहीं घोड़े
 और झूमते हाथी मारे हुए पड़े थे और कहीं कमर में पट्टे बाँधे साथी वीर
 पड़े थे । कहीं भारी राजागण गर्जना कर भुजाएँ ठोक रहे थे और कहीं
 वीर युद्ध में पड़े हुए रक्त वमन कर रहे थे ॥ ३२६ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस

असुर जबै चुनि मारे । अमित रोस करि और सिधारे । बाँधे
 फँट बिराजै भाथी । आगै चले अमित धरि हाथी ॥ ३२७ ॥
 साथ लए अनगन पखरारे । उमड़ि चले दै ढोल नगारे । संख
 झाँझ अरु ढोल बजाइ । चमकि चले चौगुन करि चाइ ॥ ३२८ ॥
 डवरू कहूँ गुड़गुड़ी बाजै । ठोकि भुजा रन मों भट गाजै ।
 मुरज उपंग मुरलियै घनी । भेर झाँझ बाजै रन झुनी ॥ ३२९ ॥
 कही तूँबरे बजै अपारा । बेन बाँसुरी कहूँ हजारा । गुतरा
 फील नगारे घने । अमित कान्ह रे जात न गने ॥ ३३० ॥
 इह बिधि भयो जबै संग्रामा । निकसी दिन दूलह हवै बामा ।
 सिध बाहनी धुजा बिराजै । जाहि बिलोक दैत दल
 भाजै ॥ ३३१ ॥ आवत ही बहु असुर सँघारे । तिल तिल
 प्राइ रथी करि डारे । काटि दई केतिन की धुजा । जंघा पाव
 सीस अरु भुजा ॥ ३३२ ॥ भाँति भाँति तन सुभट प्रहारे ।
 टूक टूक करि प्रिथी पछारे । केसन तें गहि कितन पछारा ।
 शत्रु सैन तिल तिल करि डारा ॥ ३३३ ॥ झमकत कहौं

प्रकार चुनकर जब दैत्यों को मार डाला गया तो क्रुद्ध हो और टूट पड़े ।
 कमर में पट्टा बाँधे तरकसधारी शोभा दे रहे थे और उनके आगे हाथी
 थे ॥ ३२७ ॥ उन्होंने साथ में अगणित घुड़सवार लिये और सभी ढोल-
 नगाड़ों को बजाते उमड़कर चल पड़े । शंख, झाँझ और ढोल बजाते हुए
 वे चौगुने उत्साह के साथ चमककर चल पड़े ॥ ३२८ ॥ कहीं डमरू और
 कहीं डुगडुगी बज रही थी और कहीं वीरगण भुजाएँ ठोककर युद्ध में
 गरज रहे थे । मुरज, उपंग, मुरली, भेरी, झाँझ आदि रनझुन-रनझुन युद्ध
 में बज रही थीं ॥ ३२९ ॥ कहीं तुंबी (एकतारा) और कहीं हजारों
 बाँसुरियाँ बज रही थीं । हाथी के आकार के नगाड़े और अन्य वाद्य इतने थे
 कि कान से सुनकर उनका अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता था ॥ ३३० ॥
 इस प्रकार जब संग्राम हुआ तो स्त्रियाँ दुल्हनें बनकर (वीरों का वरण करने
 के लिए) निकल पड़ीं । सिंहबाहनी ध्वजा वहाँ शोभायमान थी जिसे
 देखकर दैत्य-दल भाग खड़ा हो रहा था ॥ ३३१ ॥ आते ही उसने बहुत से
 भसुरों का संहार कर दिया और सब रथियों को तिल-तिल काट डाला ।
 कितनों की ही ध्वजा, जंघा, पाँव, शीश और भुजाएँ काट डालीं ॥ ३३२ ॥
 विभिन्न प्रकार से वीरों के शरीरों पर प्रहार किया और उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर
 पृथ्वी पर फेंक दिया । केशों को पकड़ कर कितनों को ही पछाड़ दिया और
 शत्रु-सेना को तिल-तिल कर काट डाला ॥ ३३३ ॥ कहीं कृपाणों की

असिन की धारा । भभकत रुंड मुंड विकरारा । केतिक
गरजि शस्त्र कटि सजहीं । अस्त्र छोरि केते भट
भजहीं ॥ ३३४ ॥ मारे परे प्रिथी पर केते । महा बीर विकरार
बिचेते । झिमि झिमि गिरै खोन जिमि झरना । भयो घोर
रन जात न बरना ॥ ३३५ ॥ अचि अचि रुधर डाकनी डहकै ।
भखि भखि सास काक कहूँ कहकै । दारुन होत भयो तह जुद्धा ।
हमरे बीच न आवत बुद्धा ॥ ३३६ ॥ मारे परे दैत कहैं
भारे । गिरे काढि करि दाँत डरारे । खोनत वमत बदन ते
एका । बीर खेत बलवान अनेका ॥ ३३७ ॥ बड़े बड़े जिनके
सिर सींगा । चौँचै बड़ी भाँत जिन हींगा । खोनत से सर नैन
अपारा । निरख जिनै उपजत भ्रम भारा ॥ ३३८ ॥ महाबीर
त्रैलोक अतुल बल । अरि अनेक जीते जिन जल थल । महाबीर
बलवान डरारे । चुनि चुनि बाल (मू०पं० १३८३) बरछियन
मारे ॥ ३३९ ॥ केतिक सुभट अबिकटें मारे । केतिक करन
केहरी फारे । केतिक महाकाल अरि कूटे । बादल से सभ
ही दल फूटे ॥ ३४० ॥ केते बीर बरछियन मारे । टूक टूक

घारें चमक रही थीं और रुंड-मुंड विकराल रूप से भभक रहे थे । कितने
ही गरजकर कमर के साथ शस्त्र सजा रहे थे और कितने ही अस्त्र छोड़कर
भाग रहे थे ॥ ३३४ ॥ कितने ही महान वीर विकराल रूप से अचेत हो
पृथ्वी पर मरे पड़े थे । रक्त झरने की तरह झिम-झिम गिर रहा था
और उस घोर युद्ध का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३३५ ॥
डाकिनियाँ रक्त पी-पी कर डकार रही थीं और कौए आदि मांस खा-खाकर
काँव-काँव कर रहे थे । वहाँ इतना दारुण युद्ध हुआ कि उसका अनुमान
मेरी बुद्धि में नहीं आ रहा है ॥ ३३६ ॥ कहीं मरे हुए दैत्य दाँत निकाले
गिरे पड़े थे । अनेकों वीर खेत रहे और अनेकों मुँह से रक्त वमन कर रहे
थे ॥ ३३७ ॥ (दैत्य ऐसे थे) जिनके सिर पर बड़े-बड़े सींग थे और
उनकी चौँचें लम्बे बाँसों के समान थीं । उनके नयन रक्त के तालाब की
तरह थे जिन्हें देखकर (भयमिश्रित) भ्रम पैदा होता था ॥ ३३८ ॥ वे
महान वीर त्रिलोक में बलशाली थे और उन्होंने अनेकों शत्रुओं को जल-स्थल
पर जीता था । महान वीरों को चुन-चुनकर उस (देवी) ने बरछियों से
मार डाला ॥ ३३९ ॥ कितने वीरों को तो उसने आसानी से मार डाला
और कितनों के कान शेर ने फाड़ डाले । कितने ही शत्रु महाकाल ने
कूट डाले और सभी दल बादलों के समान फट गये ॥ ३४० ॥ कितने

केतिक करि डारे । कैते हने खड्ग की धारा । लोह कटीले
 सूर अपारा ॥ ३४१ ॥ केतिक सूल सैहथी हने । सुंदर सुघर
 सिपाही बने । इह बिधि परे सुबीर प्रहारे । भूमि चाल मनो
 गिरे मुनारे ॥ ३४२ ॥ इह बिधि गिरे बीर रन भारे । जनु
 नगइंद्र बज्र भे मारे । टूक टूक जूझे हवै घने । जानुक गौस
 कुतब से बने ॥ ३४३ ॥ खोन पुलित हवै किते पराए ।
 चाचरि खेलि मनो घर आए । भाजत भए बिमन हवै ऐसे ।
 दरब हराइ जुआरी जैसे ॥ ३४४ ॥ जो जूझे सनमुख अस
 धारा । तिनका पल मों भयो उपारा । इह जग ते बिलखत
 नहि भए । चढ़ि बिवान सुरलोक सिधए ॥ ३४५ ॥ सोफी
 जेते भजत प्रहारे । ते लै बडे नरक मों डारे । सामुहि हवै
 जिनि दीने प्राणा । तिन नर बीर बरंगनि नाना ॥ ३४६ ॥
 केतिक बिधे बज्र अरु बाना । गिरि गिरि परे धरन पर नाना ।
 महारथी बानन कौ बांधे । गिरि गिरि परे रहे पुनि
 सांधे ॥ ३४७ ॥ सूर बडे रन मचे बिकट अति । धाइ धाइ
 कर परे बिकट मति । मारि मारि करि सकल पुकारा ।

ही वीरों को बरछियों से मार डाला और कितनों को ही टुकड़े-टुकड़े कर
 डाला । कितने ही कटीले शूरवीरों को खड्ग से काट डाला ॥ ३४१ ॥
 कितनों सुन्दर सिपाहियों को शूल, कृपाण आदि से मार डाला । इस
 प्रकार युद्ध में भारी वीर ऐसे पड़े थे मानों भूचाल में बड़ी मीनारें गिरी पड़ी
 हों ॥ ३४२ ॥ वीर ऐसे गिरे पड़े थे मानों पर्वत वज्र की मार से पड़े हों ।
 टुकड़े-टुकड़े ऐसे जूझे पड़े थे मानों गौस कुतुब फकीर पड़े हों ॥ ३४३ ॥
 रक्त से सने ऐसे भाग रहे थे मानों होली खेलकर वापस घर आए हों ।
 बेमन हो कई ऐसे भाग रहे थे मानों जुआरी द्रव्य हारकर भगा हो ॥ ३४४ ॥
 जो तलवार की धार के सामने जूझता था उसका तो पल भर में उद्धार
 हो जाता था । वे अब इस जगत् में व्याकुल नहीं होते थे अपितु विमान
 पर चढ़कर सुरलोक चले जाते थे ॥ ३४५ ॥ इन प्रहारों के कारण जितने
 परहेजगार भाग खड़े हुए वे सब बड़े नरक में डाल दिए गए । जिसने सामने
 होकर प्राण त्यागे उन्होंने अनेक अप्सराओं का वरण किया ॥ ३४६ ॥
 कितने ही वज्र और बाण से बिधे धरती पर अनेकों प्रकार से पड़े थे ।
 महारथी बाणों को बांधे हुए धरती पर गिरे पड़े थे परन्तु फिर भी निशाना
 लगाए हुए थे ॥ ३४७ ॥ बड़े शूरवीरों ने बिकट युद्ध मचा रखा था
 और बिकट रूप से चतुर वीर टूट पड़े रहे थे । बड़े-बड़े ढोल, नगाड़े

दुंदभि ढोल दमामो भारा ॥ ३४८ ॥ हाँकि हाँकि हथियार
 प्रहारे । बीनि बीनि बानन तन मारे । झुकि झुकि हने सैहथी
 घाइन । जूझै अधिक दुबहिया चाइन ॥ ३४९ ॥ कहीं परे
 हाथिन के मुंडा । बाजी रथी गजन के मुंडा । झुंड परे कहीं
 जूझि जुझारे । तीर तुफंग तुपन के मारे ॥ ३५० ॥ बहु जूझे
 इह भाँति सिपाही । भाँति भाँति धुजनी रिपु गाही । उत
 कीय सिंघ बाहनी कोपै । इत असिधुज लै धायो धोपै ॥ ३५१ ॥
 कहूँ लसै रन खड़ग कटारी । जानुक मच्छ बँधे मधि जारी ।
 सिंघ बाहनी शत्रु बिहंडे । तिल तिल प्राइ असुर करि
 खंडे ॥ ३५२ ॥ कहूँ पाखरै कटी बिराजै । बखतर कहूँ गिरे
 नर राजै । कहूँ चलत खोनत की धारा । छूटत बाग मो
 जनुक फुहारा ॥ ३५३ ॥ कहूँ डाकनी खोनत पीयै । झाँकनि
 कहूँ मांस भखि (सू० प्र० १३८४) जीयै । काकनि कहूँ फिरै
 कहकाती । प्रेत पिसाचन डोलत माती ॥ ३५४ ॥ हसत
 फिरत प्रेतन की दारा । डाकनि कहूँ बजावत तारा । जोगनि

बज रहे थे और सभी मार-मार पुकार रहे थे ॥ ३४८ ॥ हाँक-हाँक
 कर शस्त्र चला रहे थे और चुन-चुनकर शरीर पर बाण मार रहे थे ।
 झुक-झुककर कृपाणों के घावों से मार डाले । युद्ध में दोनों भुजाओं वाले
 वीर अत्यधिक उत्साह के साथ जूझ रहे थे ॥ ३४९ ॥ कहीं हाथियों के
 सँड और घोड़ों पर सवारी करनेवालों, रथियों और हाथी पर सवारी
 करनेवालों के सिर पड़े हुए थे । कहीं जूझे हुए वीरों के झुंड तीरों-बंदूकों
 और तोपों के मारे हुए पड़े थे ॥ ३५० ॥ इस प्रकार अनेकों सिपाही
 इस तरह जूझ गये और वीरों ने शत्रु-सेना का मंथन किया । उधर सिंह-
 वाहिनी कुपित हो उठी और इधर असिध्वज सीधी तलवार हाथ में लेकर
 टूट पड़ा ॥ ३५१ ॥ युद्ध में कहीं खड़ग-कटारें ऐसे शोभायमान हो रही
 थीं मानों किसी बाँध में मछलियों को बाँध लिया गया हो । सिंहवाहिनी ने
 शत्रुओं का नाश कर दिया और शत्रुओं को टुकड़े-टुकड़े कर डाला ॥ ३५२ ॥
 कहीं लौहत्राण और कटे हुए बखतरों-समेत राजागण विराजमान थे ।
 कहीं रक्तधारा ऐसे चल रही थी मानों बाग में फुहारा छूटा हुआ
 हो ॥ ३५३ ॥ कहीं डाकिनियाँ रक्त पीती थीं और कहीं गिद्ध मांस का
 भक्षण कर जी रहे थे । कहीं कहकहे लगाती काकिनियाँ फिर रही थीं
 और कहीं प्रेत-पिसाच मदमस्त घूम रहे थे ॥ ३५४ ॥ प्रेत-स्त्रियाँ
 हँसती-खेलती घूम रही थीं और कहीं डाकिनियाँ ताली बजा रही

फिरें कहूँ मुसकाली । भूतन की इस्ती मदमाती ॥ ३५५ ॥
 फिरत डकार कहूँ रन डाकनि । मास अहार करत कहूँ झाकनि ।
 प्रेत पिशाच हसे किलकारैं । कहूँ मसान किलकटी
 मारैं ॥ ३५६ ॥ कढै दैत रन दाँत बिहारत । भूत प्रेत ताली
 कह मारत । उलका पात होत आकासा । असुर सैन इह बिधि
 भयो नासा ॥ ३५७ ॥ बहत अमित रन पवन प्रचंडा ।
 दिखियत परे सुभट खंड खंडा । काकनि कुहकि मानवति
 ताती । फागुन जानु कोकिला माती ॥ ३५८ ॥ इह बिधि
 खोन कुंडि भरि गयो । दूसर मान सरोवर भयो । हेत छत्र
 तह हंस बिराजैं । अनत साज जल जिय से राजैं ॥ ३५९ ॥
 टूक टूक दंती कहूँ भए । तिल तिल प्राइ सुभट हवै गए ।
 खोनत धारि बही इक बारा । भई धूरि रन की सभ
 गारा ॥ ३६० ॥ नेज बाज बहु बीर सँघारे । प्रोए बरा सीख
 भटियारे । टूक टूक भट रन हवै रहे । जिनके घाव सरोहिन
 बहे ॥ ३६१ ॥ इह बिधि अमित कोप करि काला । काढत
 भयो दाँत बिकराला । छिप्र हने छिन माँझ छत्राले । सूरबीर

थीं । योगिनियाँ कहीं मुस्कुराती हुई घूम रही थीं और भूतों की स्त्रियाँ
 भी मदमाती घूम रही थीं ॥ ३५५ ॥ युद्ध में कहीं डाकिनियाँ डकारती
 घूम रही थीं और कहीं गिद्ध मांस का आहार कर रहे थे । प्रेत, पिशाच
 हँसकर किलकारियाँ मार रहे थे और कहीं भूतगण अट्टहास कर रहे
 थे ॥ ३५६ ॥ दैत्य युद्ध में दाँत निकाले घूम रहे थे और कहीं भूत-प्रेत
 ताली मार रहे थे । आकाश से उल्कापात होने लगा और इस प्रकार
 असुर-सेना का नाश हो गया ॥ ३५७ ॥ युद्ध में प्रचंड वायु चल रही
 थी और वीर खंड-खंड होते दिखाई दे रहे थे । काकिनियाँ ऐसे कुहक
 रही थीं मानों फागुन के महीने में मदमस्त कोकिला हो ॥ ३५८ ॥
 रक्त का कुंड इस प्रकार भर गया और दूसरा मानसरोवर लगता था ।
 वहाँ श्वेत छत्र हंसों के समान एवं अन्य साज-सामान कमलों के समान
 लगते थे ॥ ३५९ ॥ हाथी टुकड़े-टुकड़े और वीर तो तिलों के समान
 हो गए । रक्त की धारा बहने से युद्धस्थल की धूल कीचड़-रूप में
 परिणित हो गई ॥ ३६० ॥ भाला चलानेवालों ने बहुत से वीर मार
 डाले और श्रेष्ठ वीरों को शलाकाओं में पिरो दिया । वीर युद्ध में
 टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे और उनके घावों से रक्त बह रहा था ॥ ३६१ ॥
 इस प्रकार अपरिमित रूप से क्रुद्ध हो काल दाँत निकालने लगा । उसने

बलवान मुछाले ॥ ३६२ ॥ दुहँ अधिक रन कियो अपारा ।
 दानव सरत भयो नहि भारा । तब असिधुज अस मंत्र बिचारो ।
 जिह बिधि तें दानवहि सँघारो ॥ ३६३ ॥ सरबा करखन किय
 असिधुज जब । उपजत तें रहि गए असुर तब । आग्या बहुरि
 कालि कह दई । शत्रु सैन भच्छन करि गई ॥ ३६४ ॥ एक
 असुर तब रहि गयो । लासित अधिक चित्त सहि भयो । हाइ
 हाइ कस करौ उपावा । अब कोई चलत न मेरा दावा ॥ ३६५ ॥
 ॥ दोहरा ॥ महाकाल की शरणि जे परे सु लए बचाइ । और
 न उपजा दूसर जग भच्छ्यो सभै बनाइ ॥ ३६६ ॥ जे पूजा
 असिकेतु की नितप्रति करें बनाइ । तिन पर अपनो हाथ दै
 असिधुज लेत बचाइ ॥ ३६७ ॥ ॥ चौपई ॥ दुष्ट दैत कछु
 बात न जानी । महाकाल तन पुनि रिसि ठानी । बल अप
 बल अपनो न बिचारा । गरब ठानि जिय बहुरि (म०पं० १३८५)
 हुंकारा ॥ ३६८ ॥ रे रे काल फूलि जिनि जाहू । बहुरि
 आनि संग्राम मचाहू । एक निदान करो रन माही । कै असि-
 धुजि कै दानव नाही ॥ ३६९ ॥ एक पाव तजि जुद्ध न भाजा ।

क्षण भर में फुर्ती से छत्रधारियों को मार डाला जो कि महान शूरवीर,
 बलवान और बड़ी-बड़ी मूँछों वाले थे ॥ ३६२ ॥ दोनों ने भीषण युद्ध
 किया पर दानव मर ही नहीं रहा था । तब असिध्वज ने एक ऐसा मंत्र
 सोचा जिससे दानव को मारा जा सके ॥ ३६३ ॥ जब असिध्वज ने
 सबको अपनी ओर खींच लिया तो दानव उत्पन्न होने से रह गए । तब
 उसने काल को आज्ञा दी जिसने शत्रु-सेना का भक्षण कर लिया ॥ ३६४ ॥
 अब वह अकेला ही दानव रह गया, जिससे वह मन में भयभीत हो उठा ।
 वह सोचने लगा कि हाय ! अब मैं क्या उपाय करूँ ? मेरा तो कोई भी
 दाँव नहीं चल रहा है ॥ ३६५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जो महाकाल की शरण में
 पड़ता है उसे वह बचा लेता है । जगत् में अन्य कोई पैदा नहीं हुआ है,
 जिसने सारे संसार का भक्षण कर लिया हो ॥ ३६६ ॥ जो असिध्वज
 की नित्य पूजा करते हैं उन्हें असिध्वज अपना हाथ देकर बचा लेता
 है ॥ ३६७ ॥ ॥ चौपाई ॥ दुष्ट दैत्य ने कुछ न समझा और महाकाल
 से बैर ठान लिया । अपनी शक्ति का विचार नहीं किया और मन में
 गर्वित हो पुनः हुंकार उठा ॥ ३६८ ॥ हे काल ! तुम (सेना को मारकर)
 फूले मत समाओ और पुनः मुझसे युद्ध करो । अब युद्ध में ही निर्णय
 होगा कि या तो दानव नहीं बचेगा अथवा असिध्वज नहीं रहेगा ॥ ३६९ ॥

महाराज दैतन का राजा । आँतौ गोध गगन लै गए । बाहत
 बिसिख तऊ हठि भए ॥३७०॥ असुर अमित रन बान चलाए ।
 निरखि खड़गधुज काटि गिराए । बीस सहस्र असुर पर बाना ।
 स्त्री असिधुज छाडे बिधि नाना ॥ ३७१ ॥ सहाँकाल पुनि जिय
 मै कोपा । धनुख टँकोरि बहुरि रन रोपा । एक बान तँ धुजहि
 गिरायो । दुतिय शत्रु को सीस उडायो ॥३७२॥ दुहँ बिसिख
 करि द्वै रथ चक्र । काटि दए छिन इक मै बक्क । चारहि
 बान चार हँ बाजा । मार दए सभ जग के राजा ॥ ३७३ ॥
 बहुरि असुर का काटसि माथा । स्त्री असिकेति जगत के नाथा ।
 दुतिय बान सौ दोऊ अरि कर । काटि दयो असिधुज नर
 नाहर ॥ ३७४ ॥ पुनि राछस का काटा सीसा । स्त्री असिकेत
 जगत के ईसा । पुहपन बिसटि गगन तँ भई । सभहिन आनि
 बधाई दई ॥ ३७५ ॥ धन्य धन्य लोगन के राजा । दुशटन
 दाह गरीबनिवाजा । अखल भवन के सिरजनहारे । दास
 जानि मुहि लेहु उबारे ॥ ३७६ ॥ ॥ कब्यो बाच बेनती ॥
 ॥ चौपई ॥ हमरी करो हाथ दै रच्छा । पूरन होइ चित्त की

वह दैत्यराज एक पाँव भी पीछे हटाकर युद्ध से न भागा । उसकी
 अंतड़ियाँ चाहे गिद्ध आकाश में ले गए परन्तु वह फिर भी बाण चलाता
 रहा ॥३७०॥ असुर ने अनेकों बाण चलाए परन्तु खड़गध्वज (परमात्मा)
 ने उन सबको देखते ही काट गिराया । तब श्री असिध्वज ने बीस
 हजार बाण उस असुर पर छोड़े ॥ ३७१ ॥ महाकाल ने पुनः क्रुद्ध हो
 धनुष की टंकार देकर युद्ध जमा दिया । एक बाण से उसने ध्वज गिरा
 दिया और दूसरे से शत्रु का सिर उड़ा दिया ॥ ३७२ ॥ दो बाणों से
 उसने रथ के पहिये क्षण भर में काट दिए । चार बाणों से उस जगत्-
 राजन् (असिध्वज) ने चारों घोड़ों को मार डाला ॥ ३७३ ॥ फिर
 असुर का उस जगन्नाथ ने माथा काट डाला । दूसरे बाण से उस
 असिकेतु नर नाहर ने उस शत्रु के दोनों हाथ काट डाले ॥ ३७४ ॥
 जगत के स्वामी असिकेतु (जिसके झंडे पर कृपाण का निशान है) ने
 अन्ततः राक्षस का सिर काट लिया । उसी समय गगन से पुष्पवर्षा हुई
 और सबने आकर बधाई दी ॥ ३७५ ॥ हे लोकों के राजन् ! तुम धन्य
 हो । तुम दुष्टों के दाहक और गरीबों की रक्षा करनेवाले हो । तुम
 समस्त भुवनों के सर्जक हो, मुझे दास जानकर मेरी रक्षा करो ॥ ३७६ ॥
 ॥ कवि उवाच विनती ॥ ॥ चौपाई ॥ मेरी अपने हस्त के द्वारा रक्षा करो

इच्छा । तब चरनन मन रहै हमारा । अपना जान करो
 प्रतिपारा ॥ ३७७ ॥ हमरे दुष्ट सभै तुम घावहु । आपु हाथ
 दै मोहि बचावहु । सुखी बसै मोरो परिवारा । सेवक सिख्य
 सभै करतारा ॥ ३७८ ॥ सो रच्छा निजु कर दै करियं । सभ
 बैरिन कौ आज सँघरियै । पूरन होइ हमारी आसा । तोरि
 भजन की रहै पियासा ॥ ३७९ ॥ तुमहि छाडि कोई अवर न
 ध्याऊँ । जो बर चाहौ सु तुमते पाऊँ । सेवक सिख्य हमारे
 तारियहि । चुन चुन शत्रु हमारे मारियहि ॥ ३८० ॥ आपु
 हाथ दै मुझै उबरियै । मरन काल का त्रास निवरियै । हूजो
 सदा हमारे पच्छा । स्त्री असिधुज जू करियहु रच्छा ॥ ३८१ ॥
 राखि लेहु मुहि राखनहारे । साहिब संत सहाइ पियारे ।
 दीनबंधु दुष्टन के हंता । तुमहो पुरी चतुरदस कंता ॥ ३८२ ॥
 काल पाइ ब्रह्मा (म०ग्रं० १३८६) बपु धरा । काल पाइ शिवजू
 अवतरा । काल पाइ करि बिशन प्रकाशा । सकल काल का
 किया तमाशा ॥ ३८३ ॥ जवन काल जोगी शिव कीयो ।

ताकि मेरे चित्त की इच्छा पूर्ण हो सके । मेरा मन आपके चरणों में
 लीन रहे; मुझे अपना समझकर मेरा उद्धार करो ॥ ३७७ ॥ मेरे सभी
 शत्रुओं का संहार करो और अपना हाथ देकर मुझे बचाओ । मेरा
 परिवार—सेवक, शिष्य सभी सुखी रहें ॥ ३७८ ॥ अपना हाथ देकर
 मेरी रक्षा करो और सभी शत्रुओं का संहार कर दो । मेरी यह आशा
 पूर्ण हो कि मुझे सदैव तुम्हारी भक्ति की प्यास बनी रहे ॥ ३७९ ॥
 मैं तुम्हें छोड़ अन्य किसी का स्मरण न करूँ और जो इच्छा करूँ तुम्हीं से
 उसका वरदान प्राप्त करूँ । मेरे सेवकों और सिक्खों को तार लो और
 चुन-चुनकर हमारे शत्रुओं को मार डालो ॥ ३८० ॥ अपने कृपाहस्त से
 मेरा उद्धार करो और मृत्यु के भय का निवारण करो । आप सदैव हमारे
 पक्ष में रहो और हे श्री असिध्वज जी ! आप हमारी रक्षा करो ॥ ३८१ ॥
 हे रक्षक ! मेरी रक्षा करो । तुम संतों के सहायक और प्रिय हो । तुम
 दीनों के बंधु और दुष्टों के नाशक हो । तुम चौदह पुरियों के स्वामी
 हो ॥ ३८२ ॥ काल की परिधि में ही ब्रह्मा शरीर धारण करता है
 और काल के वशीभूत शिव अवतरित होता है । काल में ही विष्णु
 प्रकाशित होता है । परन्तु (हे महाकाल !) तुमने सारे कालों का तमाशा
 बना दिया है अर्थात् तुम्हारे सामने काल भी कुछ नहीं है ॥ ३८३ ॥
 तुमने जिस काल में शिव को योगी बनाया और ब्रह्मा को वेद-सम्राट्

बेद राज ब्रह्मा जू थीयो । जवन काल सभ लोक सवारा ।
 नमशकार है ताहि हमारा ॥ ३८४ ॥ जवन काल सभ जगत
 बनायो । देव दैत जच्छन उपजायो । आदि अंति एकै
 अवतारा । सोई गुरु समझियहु हमारा ॥ ३८५ ॥ नमशकार
 तिस ही को हमारी । सकल प्रजा जिन आप सवारी ।
 सिवकन को सवगुन सुख दीयो । शत्रुन को पल मो बध
 कीयो ॥ ३८६ ॥ घट घट के अंतर की जानत । भले बुरे
 की पीर पछानत । चीटी ते कुंचर असथूला । सभ पर क्रिपा
 त्रिशटि करि फूला ॥ ३८७ ॥ संतन दुख पाए ते दुखी । सुख
 पाए साधन के सुखी । एक एक की पीर पछानै । घट घट के
 पट पट की जानै ॥ ३८८ ॥ जब उदकरख करा करतारा ।
 प्रजा धरत तब देह अपारा । जब आकरख करत हो कबहूँ ।
 तुम मै मिलत देह धर सभहूँ ॥ ३८९ ॥ जेते बदन त्रिशटि
 सभ धारै । आपु आपुनी बूझि उचारै । तुम सभ ही ते रहत
 निरालम । जानत बेद भेद अरु आलम ॥ ३९० ॥ निरंकार

बनाया तथा सारे लोकों का निर्माण किया उस समय को मेरा प्रणाम
 है ॥ ३८४ ॥ तुमने जिस काल में विश्व की रचना की और देवों-दैत्यों
 को बनाया (उसे भी मेरा प्रणाम है) । जो आदि-अन्त में प्रकाशित है
 वही मेरा गुरु है ॥ ३८५ ॥ मेरा उसी को प्रणाम है जिसने सारी प्रजा
 को बनाया है । सेवकों को तुमने सौ गुना अधिक सुख दिया है और
 शत्रुओं का पल भर में बध कर दिया है ॥ ३८६ ॥ तुम प्रत्येक के हृदय
 की बात जानते हो और भले-बुरे सबका दुख पहचानते हो । चींटी से
 लेकर विशालकाय हाथी तक पर तुम प्रसन्नतापूर्वक कृपादृष्टि करते
 हो ॥ ३८७ ॥ संत दुखी होते हैं तो तुम दुखी होते हो और साधु जब
 सुख पाते हैं तो तुम भी सुखी होते हो । तुम प्रत्येक की पीड़ा को
 पहचानते हो और घट-घट की आंतरिक बात भी जानते हो ॥ ३८८ ॥
 जब हे कर्ता ! तुम उत्कर्षण करते हो अर्थात् फैलते हो तो यह सारी प्रजा
 आकार ग्रहण करती है । जब तुम आकर्षण-क्रिया अर्थात् विलीनीकरण
 की क्रिया करते हो तो सभी आकर तुझमें लीन हो जाते हैं ॥ ३८९ ॥
 सृष्टि ने जितने भी मुख धारण किए हैं सब अपनी समझ के अनुसार
 (तुम्हारे गुणों का) उच्चारण करते हैं । तुम सबसे निर्लिप्त और
 निराले रहते हो, परन्तु फिर भी सारे विश्व का ज्ञान और रहस्य तुम
 जानते हो ॥ ३९० ॥ तुम निराकार, निर्विकार और निरालम्ब हो ।

त्रिविकार त्रिलंभ । आदि अनील अनादि असंभ । ताका
मूढ़ उचारत भेदा । जाको भेद न पावत बेदा ॥ ३९१ ॥
ताको करि पाहन अनुमानत । महाँ मूढ़ कछु भेद न जानत ।
महाँदेव कौ कहत सदाशिव । निरंकार का चीनत नहि
भिव ॥ ३९२ ॥ आपु आपुनी बुधि है जेती । बरनत भिन
भिन तुहि तेती । तुमरा लखा न जाइ पसारा । किह बिधि
सजा प्रथम संसारा ॥ ३९३ ॥ एकै रूप अनूप सरूपा । रंक
भयो राव कहीं भूपा । अंडज जेरज सेतज कीनी । उतभुज
खानि बहुरि रचि दीनी ॥ ३९४ ॥ कहूँ फुलि राजा हवै बंठा ।
कहूँ सिमटि भयो शंकर इकैठा । सगरी त्रिशटि दिखाइ
अचंभव । आदि जुगादि सरूप सुयंभव ॥ ३९५ ॥ अब रच्छा
मेरी तुम करो । सिख्य उबारि असिख्य सँघरो । दुशट जिते
उठवत उतपाता । सकल मलेछ करो रण घाता ॥ ३९६ ॥
जे असिधुज तव शरनी परे । तिन के दुशट दुखित हवै
मरे । (सू०ग्रं० १३८७) पुरख जवन पगु परे तिहारे । तिन के

तुम आदि, अनादि, अनश्वर और किसी के द्वारा प्रकाशित नहीं हो ।
जिसका रहस्य वेद भी नहीं जान सके हैं मूर्ख लोग उसके रहस्य को
जानकर उसके उच्चारण करने का दावा करते हैं ॥ ३९१ ॥ मूर्ख कुछ
नहीं समझते और उसे पत्थर मानते हैं । उस महादेव को शिव कहते
हैं (और उसको सीमित करते हैं) और उस निराकार प्रभु का रहस्य
नहीं पहचानते ॥ ३९२ ॥ जिसकी जितनी अपनी बुद्धि होती है वह
उसी प्रकार से उसका वर्णन करता है । तुम्हारे प्रसार को देखा नहीं जा
सकता और यह भी नहीं जाना जा सकता कि तुमने सर्वप्रथम संसार
कैसे बनाया ॥ ३९३ ॥ सुन्दर स्वरूपों में तुम एक ही अनुपम हो ।
तुम ही कहीं राजा हो और कहीं निर्धन हो । तुम ने ही अंडज, जेरज,
स्वेदज और उदभिद् नामक चार जीवन-स्रोतों (खानों) की रचना कर
दी है ॥ ३९४ ॥ कहीं तुम फूल-फल के रूप में सृष्टि के सम्राट् बने
बैठे हो और कहीं सिमटकर शंकर (पत्थर) के रूप में सिमट गए हो ।
तुम्हारी समस्त सृष्टि एक अचम्भा है, जिसमें तुम आदि-जुगादि से प्रकाशित
हो ॥ ३९५ ॥ अब तुम मेरी रक्षा करो और शिष्यों को उबार कर
स्वेच्छाचारियों का संहार करो । जितने भी दुष्ट उठकर उत्पात मचाएँ
उन सब मलेच्छों का युद्ध में संहार कर दो ॥ ३९६ ॥ हे असिध्वज !
जो तुम्हारी शरण में आए हैं, उनके शत्रु दुखी होकर मर जाते हैं । जो

तुम संकट सभ टारे ॥ ३९७ ॥ जो कलि कौ इक बार धिऐहै ।
 ता के काल निकटि नहि ऐहै । रच्छा होइ ताहि सभ
 काला । दुशट अरिष्ट टरे ततकाला ॥ ३९८ ॥ क्रिपा
 द्विशटि तन जाहि निहरिहो । ताके ताप तनक भहि हरिहो ।
 रिद्धि रिद्धि घर मों सभ होई । दुष्ट छाह हवै सकै न
 कोई ॥ ३९९ ॥ एक बार जिन तुमैं सँभारा । काल फास
 ते ताहि उबारा । जिन नर नाम तिहारो कहा । दारिद
 दुशट दोख ते रहा ॥ ४०० ॥ खड़गकेत मैं शरनि तिहारी ।
 आपु हाथ दै लेहु उबारी । सरब ठौर मो होहु सहाई । दुशट
 दोख ते लेहु बचाई ॥ ४०१ ॥ क्रिपा करी हम पर जगमाता ।
 ग्रंथ करा पूरन सुभ राता । किलबिख सकल देह को हरता ।
 दुशट दोखियन को छै करता ॥ ४०२ ॥ स्त्री असिधुज जब भए
 दयाला । पूरन करा ग्रंथ ततकाला । मन बांछत फल
 पावै सोई । दूख न तिसै बिआपत कोई ॥ ४०३ ॥
 ॥ अडिल्ल ॥ सुनै गुंग जो याहि सु रसना पावई । सुनै मूढ़

भी पुरुष तुम्हारे चरणों में आ पड़ा उसके तुमने समस्त संकट दूर कर
 दिए हैं ॥ ३९७ ॥ जो कलि (रूपी महाकाल) का एक बार भी स्मरण
 करेंगे काल उनके पास भी नहीं आ सकेगा अर्थात् वे सभ्रय की मार से
 बचे रहेंगे और सदैव अमर रहेंगे । उसकी सभी कालों में रक्षा होगी
 और उसके भयानक दुश्मन भी तत्काल टल जाएँगे ॥ ३९८ ॥ तुमने
 कृपादृष्टि से जिसे भी देख लिया उसके समस्त ताप क्षण भर में हर लिये
 जाएँगे । उसके घर में सभी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ होंगी और दुष्टों की छाया
 भी उसे छू नहीं सकेगी ॥ ३९९ ॥ एक बार भी जिसने तुम्हारा स्मरण
 कर लिया उसका तो कालपाश से उद्धार हो गया । जिस व्यक्ति ने
 तुम्हारा नाम स्मरण किया वह दरिद्रता, दुष्टों और रोगों से बच
 गया ॥ ४०० ॥ हे खड़गकेतु ! मैं तुम्हारी शरण में हूँ, तुम स्वयं अपने
 हाथों से मेरा उद्धार करो । सभी स्थानों पर मेरी रक्षा करो और दुष्ट
 दोषों से मुझे बचा लो ॥ ४०१ ॥ जगत को माँ के समान पालनेवाले
 प्रभु ने मुझ पर कृपा की और मैंने इस शुभ रात्रि में यह ग्रंथ पूर्ण किया
 है । वह प्रभु समस्त व्याधियों का हरण करनेवाला है और दुष्टों तथा
 ईर्ष्यालुओं का संहारक है ॥ ४०२ ॥ जब श्री असिध्वज दयालु हुए तभी
 यह ग्रंथ पूर्ण हो सका । उसे चाहनेवाला मनोवांछित फल प्राप्त करता
 है और उसे कोई भी दुख नहीं होता ॥ ४०३ ॥ ॥ अडिल्ल ॥ इसे

चित लाइ चतुरता आवई । दूख दरद भौ निकट न तिन नर
के रहै । हो जो याकी एक बार चौपई को कहै ॥ ४०४ ॥
॥ चौपई ॥ संबत सत्रह सहस भणिज्जै । अरध सहस फुनि
तीनि कहिज्जै । भाद्रव सुदी अष्टमी रवि वारा । तीर
सतुद्रव ग्रंथ सुधारा ॥ ४०५ ॥ (सू०ग्रं० १३८८)

॥ इति स्त्री चरित्र पख्याने त्रिया चरित्रे मन्त्री भूप संवादे चार सौ चार चरित्र
समापतम सतु सुभम सतु ॥ ४०४ ॥ ७५५५ ॥ अफजूं ॥

गूंगा भी सुनेगा तो उसे जुवान मिल जाएगी, मूर्ख भी सुनेगा तो चतुर हो
जाएगा । जो एक बार चौपाई को कहेगा, दुख-दर्द उसके पास नहीं
आएँगे और वह तातार देश के निवासियों (याकियों) के समान बलिष्ठ
हो जाएगा ॥ ४०४ ॥ ॥ चौपाई ॥ संवत् सत्रह सौ कहकर पुनः आधा
सौ अर्थात् पचास तथा पुनः तीन का उच्चारण करो । संवत् सत्रह सौ
तिरपन, भादों सुदी अष्टमी, रविवार को सतलज के किनारे सुधार कर
इस ग्रंथ की रचना की ॥ ४०५ ॥

॥ श्री चरित्रोपाख्यान के त्रिया-चरित्र के मन्त्री-भूप-संवाद में चार सौ चौथे
चरित्र की शुभ सत् समाप्ति ॥ ४०४ ॥ ७५५५ ॥ अफजूं ॥

१ ओं हुकम सत्ति

स्त्री वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

ज़फ़रनामह श्री मुखवाक पातिशाही १० ॥

कमाले करामात क़ाइम क़रीम । रज़ा बख़श राज़िक
रिहाकुन रहीम ॥ १ ॥ अमां बख़श बख़शिद ओ दसतगीर ।
ख़ता बख़श रोज़ी दिहो दिल पज़ीर ॥ २ ॥ शहिनशाहि
ख़ूबी दिहो रहनमूँ । कि बेग़ून बेचूँ चूँ बेनमूँ ॥ ३ ॥ न
साज़ो न बाज़ो न फ़ौजो न फ़रश । खुदावंद बख़शिदए ऐश
अरश ॥ ४ ॥ ज़हाँ पाक ज़बरअसत ज़ाहिर ज़हूर । उज़ामी
दिहो हम चु हाज़िर हज़ूर ॥ ५ ॥ अता बख़शओ पाक
परवरदिगार । रहीम असतु रोज़ी दिहो हर दियार ॥ ६ ॥
कि साहिब दियार असतु आज़म अज़ीम । कि हुसनुल ज़माल

पातशाही दसवीं (गुरू गोबिंद सिंह) द्वारा उच्चरित
ज़फ़रनामा (विजयपत्र)

वह दयालु प्रभु करामातों में पूर्ण, सदैव अचल, कृपालु, आज्ञा में
चलनेवाले पर मेहरबान, आजीविका प्रदान करनेवाला मुक्तिदाता है ॥ १ ॥
वह सुखदायक, क्षमाशील और हाथ थामनेवाला है । वह गुनाह माफ़ करने
वाला, रोज़ी देनेवाला और सबको मनचाहे पदार्थ देनेवाला है ॥ २ ॥ वह
सम्राटों का सम्राट् और सबका पथ-प्रदर्शक है और रंग-रूप एवं विहारों से
परे है ॥ ३ ॥ साज-समान, बाज़ सेना, धरती से विहीन लोगों को भी
(कृपा करके) भगवान् ऐश्वर्य और स्वर्ग प्रदान करनेवाला है ॥ ४ ॥ वह
जगत्-प्रपञ्चों से पवित्र, साक्षात् प्रकट रूप में सबको दान देनेवाला (खुदा)
है ॥ ५ ॥ वह सबकी परवरिश करनेवाला पवित्र है । वह दयावान् और
प्रत्येक को आजीविका प्रदान करनेवाला है ॥ ६ ॥ वह महानों का महान्
खुदा देश-देशान्तरों का स्वामी है । सुन्दरता का सौंदर्य वही है और वही
दयालु और रोज़ी देनेवाला है ॥ ७ ॥ वह मालिक स्वयं चातुर्य से युक्त

असतु राजक रहीम ॥ ७ ॥ कि साहिब शऊर असतु आजिज
निवाज । गरीबुल प्रसतो गनीमुल गुदाज ॥ ८ ॥ शरीअत
प्रसतो फ़ज़ीलत मआब । हक़ीकत शनासो नबीउल
किताब ॥ ९ ॥ कि दानिश पियूहसतु साहिब शऊर ।
हक़ीकत शनाशसतु ज़ाहर ज़हूर ॥ १० ॥ शनासिदहए इलमि
आलम खुदाइ । कुशाइंदहए कारि आलम कुशाइ ॥ ११ ॥
गुज़ारिंदहए कारि आलम क़बोर । शनासिदहए इलमि आलम
अमीर ॥ १२ ॥

दासतान ॥ हिकायत पहिली ॥

मरा इअतबारे बरी क़सम नेसत । कि एज़द गवाहसतु
यज़दाँ यक़ेसत ॥ १३ ॥ न क़तरह मरा इअतबारे बरोसत ।
कि बख़शी व दीवाँ हमाँकिजब गोशत ॥ १४ ॥ कसे क़उलि
कुरआँ कुनद इअतबार । हमा रोज़ि आख़िर शवद मरद
ख़वार ॥ १५ ॥ हुमा रा कसे सायह आयद बज़ेर । बरो

है, अनाथों का बड़प्पन प्रदान करनेवाला गरीबपरवर और दुष्टों को गला देनेवाला है ॥ ८ ॥ वह न्याय-प्रिय, बड़प्पन से परिपूर्ण, सत्यतत्त्व को पहचान लेनेवाला तथा सभी धर्मग्रंथों द्वारा महान् माना जानेवाला परमात्मा है ॥ ९ ॥ वह दानाई का क़द्रदान, विवेक का स्वामी, सच्चाई की पहचान करनेवाला और सर्वत्र प्रकाश-रूप में प्रकट है ॥ १० ॥ वह ख़ूदा सर्वविद्याओं का जानकार, संसार के कार्यों के भेदों को खोलनेवाला, सभी कार्यों को तरतीब देकर उन्हें क्रम से करनेवाला है ॥ ११ ॥ वह स्वामी संसार के बड़े कामों को चलानेवाला महान् है । समस्त विद्याओं का ज्ञाता, विद्वान् और संसार का नायक है ॥ १२ ॥

दास्तान (वार्त्ता) पहली

तुम्हारे यह कहने पर कि भगवान एक है और हमारी-तुम्हारी बातचीत में गवाह है, मुझे ज़रा भी विश्वास नहीं है ॥ १३ ॥ मुझे तुम्हारी क़सम पर रत्ती भर भी यक़ीन नहीं है । तेरे कारिंदे, दीवान आदि (जो तुम्हारा पग़ाम मेरे पास लाए थे) सब झूठ बोलनेवाले थे ॥ १४ ॥ क़ुरान की तुम्हारी ख़ाया क़सम पर भरोसा करनेवाला भी आख़िरी दिन अर्थात् मौत के दिन लज्जित और ख़वार ही होगा ॥ १५ ॥ हुमा पक्षी अर्थात् परमात्मा की परछाई (क़ृपा) के नीचे आ जानेवाले का दिलेर से दिलेर कौआ कुछ नहीं

दसत दारद न जागो दलेर ॥ १६ ॥ कसे पुशत उफतद पसे
 शेरी नर । नगीरद बुजो मेशो आह गुजर ॥ १७ ॥
 कसम मुसहफे खुफ़ीयह गरई खुरम । न फ़उजे अज़ीं ज़ेर सुम
 अफ़कुनम ॥ १८ ॥ गुरसनह चिकारे कुनद चिहल नर । कि
 दह लख बरायद बरो बेख़बर ॥ १९ ॥ (सू०पं० १३८६) कि पैमा
 शिकन बेदरंग आमदंद । मियाँ तेग तीरो तुफ़ंग आमदंद ॥ २० ॥
 ब लाचारगी दर मियाँ आमदम । ब तदबीरि तीरो तुफ़ंग
 आमदम ॥ २१ ॥ चु कार अज़ हमह हीलते दर गुज़शत ।
 हलाल असतु बुरदन ब शमशेर दसत ॥ २२ ॥ चि क़समे कुराँ
 मन कुनम इअतबार । वगर नह तु गोई मनई रह चि
 कार ॥ २३ ॥ न दानम कि ई मरद रोबाह पेच । गर
 हरगिज़ीं रह न यारद बहेच ॥ २४ ॥ हर आँकस कि क़उले
 कुराँ आयदश । नज़ो बसतनो कुशतनी बायदश ॥ २५ ॥
 बरंगे मगस स्याहपोश आमदंद । ब यक बारगी दर ख़रोश

कर सकता अर्थात् तेरे सैनिक उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते जो परमात्मा
 की छत्रछाया में है ॥ १६ ॥ यदि कोई शेर के पीछे खड़ा हो बकरी और
 हिरण का उस व्यक्ति को पकड़ना तो दूर, कोई उस ओर से गुज़रना भी पसंद
 नहीं करता ॥ १७ ॥ यदि तुम्हारी कुरान की क़सम जैसा धोखा मैं भी मन में
 रखता तो मैं अपनी प्यारी फ़ौज को लँगड़ा न करवा लेता अर्थात् व्यर्थ ही न
 मरवा देता ॥ १८ ॥ पेट से भूखे चालीस व्यक्ति उस समय क्या कर सकते हैं,
 जो उन पर दस लाख (सैनिक) अचानक ही टूट पड़ें ॥ १९ ॥ कटार को
 तोड़नेवाले अविलम्ब आ पहुँचे । वे तलवारों, तीरों और बंदूकों-समेत
 आ पहुँचे ॥ २० ॥ तब मजबूरी में मैं युद्ध में आया । तीरों-बंदूकों से
 सुसज्जित होकर आ पहुँचा ॥ २१ ॥ जब कार्य के लिए सभी उपाय समाप्त
 हो जाएँ तो तलवार-सहित हाथ उठाना धर्मसम्मत है ॥ २२ ॥ मैं कुरान
 की क़सम का विश्वास कैसे करूँ अन्यथा तुम ही बताओ, भला मुझे इस
 (युद्ध के) रास्ते पर क्यों चलना था ? ॥ २३ ॥ मैं नहीं जानता था कि यह
 पुरुष (औरंगज़ेब) लोमड़ी की तरह मक्कार है अन्यथा मैं किसी भी तरह
 इसकी क़सम को मानने के रास्ते पर न आता ॥ २४ ॥ उस हर व्यक्ति
 को, जो कुरान की क़सम पर है, उसे घायल करना अथवा मार डालना उचित
 नहीं है ॥ २५ ॥ काले कपड़े पहने वे मक्खियों के समान (अगणित संख्या में)
 आ पहुँचे और एक ही बार में उत्तेजित हो छूट पड़े ॥ २६ ॥ जो भी व्यक्ति

आमदंद ॥ २६ ॥ हर आँकस जि दीवार आमद बिहूँ ।
 बखुरदन यके तीर शुद गरकि खूँ ॥ २७ ॥ कि बेहूँ नयामद
 कसे जाँ दिवार । न खुरदंद तीरो न गशतंद खुआर ॥ २८ ॥
 चु दीदम कि नाहर बियाबद ब जंग । चशीदह यके तीरि मन
 बेदरंग ॥ २९ ॥ हमा खर गुरेजद बजाए मसाफ़ । बसे
 खानह खुरदंद बेहूँ गजाफ़ ॥ ३० ॥ कि अफ़गन दीगर बयामद
 बजंग । चु सैले रवाँ हम चु तीरो तुफ़ंग ॥ ३१ ॥ बसे हमलह
 करदंद ब मरदानगी । हम अज होशगी हम जि
 देवानगी ॥ ३२ ॥ बसे हमलाह करदो बसे जखम खुरद । दु
 कस रा सखाँ कुशत हम जाँ सपुरद ॥ ३३ ॥ कि आँ खाजह
 मरदूद सायह दिवार । नयामद ब मैदाँ ब मरदान वार ॥ ३४ ॥
 दरेगा अगर रुइ ओ दीदमे । ब यक तीर लाचार
 बखशीदमे ॥ ३५ ॥ हमाखर बसे जखमि तीरो तुफ़ंग । दो सूए
 बसे कुशतह शुद बेदरंग ॥ ३६ ॥ बसे बार बारीद तीरो तुफ़ंग ।
 जिमी गशत हम चूँ गुले लालह रंग ॥ ३७ ॥ सरोपाइ अंबोह

दीवार की ओट से बाहर आया, वह हमारा एक ही तीर खाकर रक्त में डूब गया ॥ २७ ॥ जो भी दीवार की ओट से बाहर नहीं आया, उसने न तो तीर खाया और न ही उसे लज्जित होना पड़ा ॥ २८ ॥ जब मैंने देखा कि नाहर खाँ जंग में आया है तो तुरन्त एक तीर उसने अपने शरीर पर खाया ॥ २९ ॥ पीछेवाले सैनिक भाग गए जो पठान (युद्धस्थल से) बाहर अत्यधिक शेखी वधारते हैं ॥ ३० ॥ एक अन्य पठान युद्ध के लिए आया था जो नदी की बाढ़ की तरह आया था अथवा तीर या बंदूक की गोली की तरह आया था ॥ ३१ ॥ बहुत से आक्रमण बहादुरी के साथ किए । कुछ बुद्धिमानों से भी किए और कुछ पागलपन से भी किए ॥ ३२ ॥ बहुत से हमले हुए, बहुतों ने घाव खाए । (हमारे पक्ष के) दो आदमियों (गुरुजी के पुत्र अजीत सिंह और जुझार सिंह) को मार दिया और (आक्रमणकारी) स्वयं भी जान दे गये ॥ ३३ ॥ परन्तु वह ज़लोल और मरदूद खाजा दीवार की ओट से निकलकर बहादुरों की तरह युद्धस्थल में आया ही नहीं ॥ ३४ ॥ काश ! यदि मैं उसका चेहरा देख पाता तो उसको भी एक तीर बरूश कर (मौत के घाट उतार) देता ॥ ३५ ॥ अंततः तीरों और बंदूकों के बहुत से घाव खाकर दोनों पक्षों के बहुत से आदमी तुरन्त ही मर गए ॥ ३६ ॥ तीरों और गोलियों की भीषण वर्षा हुई जिससे धरती "गुले लाला" के समान लाल रंग की ही हो

चंदाँ शुदह । कि मैदाँ पुर अज गूओ चौगाँ शुदह ॥ ३८ ॥
 तरंकारि तीरो तरंगि कमाँ । बराँमद यके हाओ हू अज
 जहाँ ॥ ३९ ॥ दिगर शोरशि कँबरि कीनह कोश । जि
 मरदानि मरदाँ बिहूँ रफत होश ॥ ४० ॥ हम आखिर चि
 मरदी कुनद कारजार । कि बर चिहल तन आयदश बे
 शुमार ॥ ४१ ॥ चिरागि जहाँचूँ शुदह बुरकह पोश । शहे सब
 बराँमद हमह जलवह जोश ॥ ४२ ॥ हर आँकस (मू०ग्रं० १३६०)
 बक्रउले करा आयदश । कि यजदाँ बरो रहिनुमा
 आयदश ॥ ४३ ॥ न पेचीदह सूए न रंजीदह तन । कि बेहूँ
 खुदावुरद दुशमन शिकन ॥ ४४ ॥ न दानम कि ई मरदि पैमाँ
 शिकन । कि दउलत परसत सतु ईमा फिकन ॥ ४५ ॥ न
 ईमाँ परसती न अउजाइ दीं । न साहिब शनासी न महमद
 यकीं ॥ ४६ ॥ हरआँकस कि ईमाँ परसती कुनद । न पैमा
 खुदश पेशो पसती कुनद ॥ ४७ ॥ कि ई मरद रा जर्रह

गई ॥ ३७ ॥ सिरों और पैरों का इतना जमाव हो गया कि लड़ाई का
 मैदान मानों कन्दुक-क्रीड़ा के लिए गेंदों और छड़ियों से भर गया हो ॥ ३८ ॥
 तीरों की सनसनाहट और कमानों की कड़कड़ाहट के फलस्वरूप सारे संसार
 में एक "हाय-हाय" की आवाज ही प्राप्त होती थी ॥ ३९ ॥ फिर मारक
 तीरों के शोर-शरावे में बहादुर से बहादुर वीरों की भी बुद्धि चकरा
 गई ॥ ४० ॥ परन्तु अन्ततः लड़ाई में वीरता भी क्या कर सकती है, जहाँ
 चालीस पर अगणित (सैनिक) टूट पड़ें ॥ ४१ ॥ जब जगत का दीपक
 (सूर्य) पर्दे में छिप गया और रात का स्वामी (चन्द्र) अपने पूरे जलवे में
 उदित हो गया ॥ ४२ ॥ जिस किसी को भी कुरान की कसम पर भरोसा
 होता है, खुदा स्वयं उसका पथ-प्रदर्शक बन जाता है ॥ ४३ ॥ न (मेरा)
 बाल बाँका हुआ और न ही मेरे शरीर को कोई कष्ट हुआ । शत्रुओं को
 मारनेवाले मुझको खुदा सशरीर बाहर ले आया ॥ ४४ ॥ मुझे नहीं पता था
 कि यह व्यक्ति करारनामे को तोड़नेवाला, दौलत का पुजारी और ईमान
 को परे धकेल देनेवाला है ॥ ४५ ॥ यह न तो धर्म की पूजा करता है,
 न ही इसकी कोई धर्म मानने की आचरण-संहिता है, और न ही इसे
 खुदा की पहचान और मुहम्मद पर यकीन है ॥ ४६ ॥ जो कोई व्यक्ति
 अपने धर्म में विश्वास रखता है तो वह अपने दिए वचन से पीछे
 नहीं हटता ॥ ४७ ॥ इस पुरुष का कुरान की कसम खाना अथवा भगवान

इअतबार नेसत । कि कसमे कुरानसतु यजदाँ यकेसत ॥ ४८ ॥
 चु कसमे कुराँ सद कुनद इखतियार । सरा कतरह नायद अजो
 इअतबार ॥ ४९ ॥ अगरचि तुरा इअतबार आमदे । कमर
 बसत पेशवा आमदे ॥ ५० ॥ कि फ़रज़सतु बर सर तुरा ई
 सुखन । कि कउले खुदा असतु कसमसतु मन ॥ ५१ ॥ अगर
 हज़रते खुद सितादह शवद । ब जानो दिले कार वाज़िह
 शवद ॥ ५२ ॥ शुमा रा फ़रज़सतु कारे कुनीं । बमूजब नविशतह
 शुमारे कुनीं ॥ ५३ ॥ नविशतह रसीदो बगुफ़तह जुबाँ ।
 बिबायद कि ई कार राहत रसाँ ॥ ५४ ॥ हमूँ मरद बायद
 शवद सुखनवर । न शिकमे दिगर दर दहानि दिगर ॥ ५५ ॥
 काज़ी सरा गुफ़त बेरूँ नयम । अगर रासती खुद बियारी
 कदम ॥ ५६ ॥ तुरा गर बबायद ब कउले कुराँ । बनिज़दे
 शुमा रा रसानम हुमा ॥ ५७ ॥ कि तशरीफ़ दर कसबह
 कांगड़ कुनद । वज़ाँ पस मुलाकात बाहम शवद ॥ ५८ ॥ न
 ज़ररह दरौं राह ख़तरह तुरासत । हमह कौमि बैराड़ हुकमि

एक है कहनै पर भी मुझे इसका विश्वास नहीं ॥ ४८ ॥ यदि यह अब
 कुरान की सौ कसम भी खा ले तो मुझे उस पर एक कतरे जितना
 भी विश्वास नहीं ॥ ४९ ॥ यदि तुम्हें अपनी ही बातों पर यकीन होता तो
 कमर बाँधकर तुम स्वयं मेरे सामने आ जाते ॥ ५० ॥ इस बात को पूरा
 करने का कर्तव्य तेरे सिरे पर बाक़ी है, क्योंकि तूने मुझसे खुदा के वचन
 (कुरान) की कसम खाई थी ॥ ५१ ॥ बादशाह, यदि तुम खुद यहाँ मौजूद
 होओ तो दिलोजान से मेरे किए कामों का तुम्हें पता लग जाए ॥ ५२ ॥
 अब तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम अपने काम को पूरा करो । लिखे हुए के
 अनुसार करो ॥ ५३ ॥ तेरा लिखा हुआ (पत्र) मिल गया और (संदेशवाहक
 द्वारा) भेजा जुबानी संदेश भी प्राप्त हो गया है । अच्छा हो यदि यह काम
 सबके लिए सुखदायक हो ॥ ५४ ॥ सभी मर्दों का बात का धनी होना
 चाहिए । मन में कुछ और और मुँह में कुछ और नहीं (होना
 चाहिए) ॥ ५५ ॥ जो क़ाज़ी कहता है, मुझे उसी के अनुसार जानो (उससे)
 भिन्न मत मानो । अब अगर तुममें सच्चाई है तो खुद चलकर यहाँ
 आ ॥ ५६ ॥ यदि वचन लिखा हुआ कुरान (शरीफ़) तुम्हें चाहिए (जो तुमने
 कसम खाते समय मेरे पास भेजा था) तो मैं वह भी तुम्हारे पास भेज सकता
 हूँ ॥ ५७ ॥ यदि बादशाह कांगड़ नामक गाँव में आना चाहे तो हम लोगों
 की आपस में मुलाकात हो जाएगी ॥ ५८ ॥ इस रास्ते पर तुझे तनिक भी

मरासत ॥ ५९ ॥ बिया ता बमन खुद जुबानी कुनेम । बरूए
 शुमा मिहरबानी कुनेम ॥ ६० ॥ यके असप शाइसतए यक
 हजार । बिया ता बगीरी ब मन ई दियार ॥ ६१ ॥
 शहिनशाहि रा बंदहे चाकरेम । अगर हुकम आयद ब जाँ
 हाजरेम ॥ ६२ ॥ अगरचे बिआयद ब फुरमान मन । हज़ूर
 त बियायम हमह जान तन ॥ ६३ ॥ अगर तो बयजदाँ परसती
 कुनी । ब कारे मरा ई न सुसती कुनी ॥ ६४ ॥ (सू० प्र० १३६१)
 बिबायद की यजदाँ शनासी कुनी । न गुफतह कसे कस खराशी
 कुनी ॥ ६५ ॥ तु मसनद नशीं सरवरे काइनात । कि अजब
 असतु इनसाफ़ ई हम सफ़ात ॥ ६६ ॥ कि अजब असतु
 इनसाफ़ो दीं परवरी । कि हैफ़असतु सद हैफ़ई सरवरी ॥ ६७ ॥
 कि अजबसतु अजबसतु तकवा शुमाँ । बजुज रासती मुखन
 गुफतन जयाँ ॥ ६८ ॥ मजन तेग़ बर खून कस बेदरेग़ ।
 तुरा नीज खूँ असत बा चरख तेग़ ॥ ६९ ॥ तु गाफल म सौ
 मरद यजदाँ हिरास । कि ओ बेनिआज असतु ओ बे

भय नहीं है, क्यों सारी बैराड़ जाति मेरी आज्ञा में है ॥ ५९ ॥ तुम आओ
 ताकि मैं खुद तुमसे बात करूँ और तुम्हारे ऊपर मेहरबानी करूँ ॥ ६० ॥
 (तुम्हारा यह कहना कि) एक हजार रुपए की कीमत का एक सुन्दर घोड़ा
 ले आओ और मेरे पास से यह इलाका (जागीर-रूप से) हासिल कर
 लो (तुम इस बात को ध्यान में रखो) ॥ ६१ ॥ सम्राटों के सम्राट
 (परमात्मा) का मैं बंदा हूँ और गुलाम हूँ । यदि उसकी आज्ञा हो जाएगी
 तो जान समेत मैं हाज़िर हो जाऊँगा ॥ ६२ ॥ यदि उसकी आज्ञा हो गई
 तो मैं जानोमाल-समेत आ जाऊँगा ॥ ६३ ॥ अगर तुम खुदा की पूजा करते
 हो तो मेरे इस काम में देरी मत करना ॥ ६४ ॥ तुम्हें चाहिए कि तुम
 परमात्मा को पहचानो और किसी के पिछलग्गू बनकर किसी को दुःखी मत
 करो ॥ ६५ ॥ तुम बादशाह की गद्दी पर बैठे हो, आम जनता के सरदार
 हो (पर) जो न्याय तुम करते हो वह भी आश्चर्य है और तुम्हारी विशेषताएं
 भी अजीब हैं ॥ ६६ ॥ तेरा न्याय अजीब है, गरीबपरवरी भी अजीब है ।
 मुझे इस पर अफ़सोस है और तुम्हारी सरदारी पर तो तुझे सौ बार अफ़सोस
 है ॥ ६७ ॥ तेरी धर्म की व्यवस्था (फ़तवा) अजीब है । सच्चाई के बिना
 कुछ कहना ही अपराध है ॥ ६८ ॥ किसी का खून करने के लिए निस्संकोच
 होकर तलवार मत चला । आकाशीय तलवार से तेरा रक्त भी (फैलना)
 है ॥ ६९ ॥ हे मनुष्य ! तू लापरवाह मत हो और खुदा से डरो । वह

सुपास ॥ ७० ॥ कि ऊ बे मुहाबसतु शाहानि शाह । ज़िमीनो
जमां सच्चए पातिशाह ॥ ७१ ॥ खुदावंदि ईजद जमीनो जमां ।
कुनिदसत हर कस मकीनो मकां ॥ ७२ ॥ हमअज पीर मोरह
हमअज फील तन । कि आजज निवाज असतो गाफल
शिकन ॥ ७३ ॥ कि ऊ राचु इसम असतु आजज निवाज ।
कि ऊ बे सुपास असत ऊ बे नियाज ॥ ७४ ॥ कि ऊ बे नगू
असतु ऊ बे चगू । कि ऊ रहिनुमा असतु ऊ रहिनमू ॥ ७५ ॥
कि बर सर तुरा फरज कसमि कुरां । ब गुफतह शुमह कार
खूबी रसां ॥ ७६ ॥ बिबायद तु दानश परसतो कुनी ।
बकारे शुमा चेरह दसती कुनी ॥ ७७ ॥ चिहा शुद कि चू
बच्चगां कुशतह चार । कि बाकी बमांदसतु पेचीदह
मार ॥ ७८ ॥ चि सरदी कि अखगर खमोशां कुनी । कि
आतिश दमां रा फरोजा कुनी ॥ ७९ ॥ चि खुश गुफत फिरदौसीए
खुश जुबां । शिताबी बवद कारि आहरमना ॥ ८० ॥
कि मा बारगहि हजरत आयद शुमां । अजां रोज बाशेव शाहिद
शुमां ॥ ८१ ॥ वगर ना तु ई रा फरामुश कुनद । तुरा हम

बेपरवाह है, खुशामदों से परे है ॥ ७० ॥ वह जो डर से रहित है, बादशाहों
का भी बादशाह है । वही धरती और आकाश का सच्चा बादशाह
है ॥ ७१ ॥ जो कीड़ा से लेकर हाथों का भी (भला) करनेवाला है,
बच्चे से लेकर बुढ़े का भी काम करनेवाला है ॥ ७२ ॥ वह बेसहारों को
बड़प्पन प्रदान करनेवाला और लापरवाहों का नाश करनेवाला है ॥ ७३ ॥
उसका नाम गरीबनिवाज है और सब आवश्यकताओं से परे और बेपरवाह
है ॥ ७४ ॥ वह रूप-रंग से रहित और चक्र-चिह्नों से परे है । वह जो मार्ग
बतानेवाला है, वही उस मार्ग पर ले चलनेवाला भी है ॥ ७५ ॥ तुम्हारे ऊपर
कुरान की कसम का बोझ है, इसलिए तुम अपने दिए वचन के अनुसार काम
को भलीभाँति करो ॥ ७६ ॥ (इस समय) तुझे बुद्धिमत्ता से कार्य करना
चाहिए और हाथ के कामों को पक्के तौर पर करना चाहिए ॥ ७७ ॥
क्या हुआ यदि चार पुरुषों को मार दिया है । अभी कुंडलाकार सर्प तो
(जीवित) मौजूद है ॥ ७८ ॥ यह कैसी बहादुरी है जो चिगारियों को तो
बुझाती है और जो आग धू-धू करके जल रही है उसे तू और भी तेज कर रहा
है ॥ ७९ ॥ सुंदर जुवान वाले फिरदौसी ने कैसी सुन्दर बात (शहनामा में)
कही है कि जल्दबाजी शैतानों का काम है ॥ ८० ॥ खुदा की कचहरी में
मैं आऊंगा और उस दिन (वजीद खाँ के कुकर्मों के लिए) तुम्हें गवाही देनी

फरामोश यजदाँ कुनद ॥ ८२ ॥ अगर कारि ई बर तू बसती
 कमर । खुदावंद बाशद तुरा बहर वर ॥ ८३ ॥ कि ई कार
 नेकअसतु दी परदरी । चु यजदाँ शनासी बजाँ बरतरी ॥ ८४ ॥
 तुरा मन न दानम कि यजदाँ शनास । बरामद जि तू
 कारहा दिल खरास ॥ ८५ ॥ शनासद हमीं तू न यजदाँ
 करीम । न ख्वाहद हमी तू बदौलत अजीम ॥ ८६ ॥
 अगर सद कुराँ रा बखुरदी कसम । मरा इअतबारे न ई जरह
 दम ॥ ८७ ॥ (सू० प्र० १३६२) हजुरी न आयम न ई रह शवम ।
 अगर शह बख्वाहद मन आँ जा रबम ॥ ८८ ॥ खुशश शाहि
 शाहान औरंगजेब । कि चालाक दसतु असतु चाबुक
 रकेब ॥ ८९ ॥ चि हुसनुल जमालसतु रौशन जमीर ।
 खुदावंद मुलकअसतु साहिब अमीर ॥ ९० ॥ बरतीब दानश ब
 तदबीर तेग । खुदावंदि देशो खुदावंदि तेग ॥ ९१ ॥ कि
 रौशन जमीर असतु हुसनुल जमाल । खुदावंद बख्शिंदहे मुलक
 माल ॥ ९२ ॥ कि बख्शिश कबीर असतु दर जंग कोह ।

होगी (और उसके द्वारा की गई निर्दोष हत्याओं का लेखा-जोखा देना होगा) ॥ ८१ ॥ अगर तुम इन बातों को भुलाने की कोशिश करोगे तो खुदा तुझे भी भुलादेगा ॥ ८२ ॥ अगर तूने इस काम को पूरा करने के लिए कमर बाँध ली तो खुदावंद तुझे खुशनसीब बना देगा ॥ ८३ ॥ यह कार्य अच्छा है, धर्म के नाम का है, ईश्वर को जानने का है और प्राणों के लिए भलाईकारक है ॥ ८४ ॥ मैं तुम्हें खुदा की पहचान करनेवाला नहीं मानता, क्योंकि तुम बहुत से दिल दुखी करनेवाले काम कर चुके हो ॥ ८५ ॥ वह दयालु प्रभु भी तुम्हें नहीं पहचानता और तुम्हारी बड़ी दौलत को नहीं जानता ॥ ८६ ॥ (अब) यदि तुम कुरान की सौ कसमें (भी) खा लो तो मुझे रत्ती भर विश्वास नहीं ॥ ८७ ॥ मैं तेरे दरबार में भी नहीं आऊँगा और न ही इस रास्ते पर चलूँगा । अगर बादशाह कोई स्थान तय करे तो मैं भी नहीं जाऊँगा ॥ ८८ ॥ औरंगजेब तू (अपने आपको) शहंशाह (मानकर) खुश है । तू चालाक और दृढ़ शासक (अपने आपको मानता) है ॥ ८९ ॥ तू सुन्दर-स्वरूप, बुद्धि का मालिक (मानता) है । देश का स्वामी और अमीरों का मालिक (मानता) है ॥ ९० ॥ तुम युक्ति और तलवार से देश को काबू कर रहे हो । इसीलिए देश और तेग के मालिक (मानते) हो ॥ ९१ ॥ तुम प्रबुद्ध हो, प्रभावशाली और सुन्दर स्वरूप वाले, (प्रजा के)

मलायक सिफत चूँ सुरग्या शकोह ॥ ६३ ॥ शहिनशाहि
 औरंगजेब आलमी । कि दाराइ दौर असतु दूर असत
 दीं ॥ ६४ ॥ मनम कुशतहअम कोहियाँ बुत परसत । कि
 आँ बुत परसतंदु मन बुत शिकसत ॥ ६५ ॥ बबीं गरदशे
 बेवफ़ाए जमा । पसे पुशत उफ़तद रसानद जियाँ ॥ ६६ ॥
 बबीं कुदरते नेक यजदानि पाक । कि अज यक बदह लख
 रसानद हलाक ॥ ६७ ॥ कि दुशमन कुनद मिहरबाँ असतु
 दोसत । कि बख़्शिदगी कार बख़्शिदह ओसत ॥ ६८ ॥
 रिहाई दिहो रहितुमाई दिहद । जुबाँ रा बसिफ़त आशनाई
 दिहद ॥ ६९ ॥ खसम रा चु कोरऊ कुनद दक़ति कार ।
 यतीमाँ बिहूँमे बुरद बेअज़ार ॥ १०० ॥ हराँकस कि ओ
 रासतबाज़ी कुनद । रहीमे बरो रहमसाज़ी कुनद ॥ १०१ ॥
 कसे ख़िदमत आयद बसे कलबो जाँ । खुदावंद बख़्शिद बर वै
 अमाँ ॥ १०२ ॥ चि दुशमन बहाँ हीलहसाज़ी कुनद ! कि बर

स्वामी और देश को दौलत देनेवाले हो ॥ ६२ ॥ तुम बड़े मेहरबान हो, युद्ध
 में पर्वत के समान अडिग हो, फ़रिश्तों के समान कलापूर्ण हो और तुम्हारा
 प्रताप आकाश की ऊँचाई तक फैला हुआ (माना जाता) है ॥ ६३ ॥ तुम
 सम्राट् हो, जगत् के सिंहासन की शोभा से युक्त हो । धरती के चक्र को
 सँभालनेवाले हो, पर धर्म से विहीन और दूर हो ॥ ६४ ॥ मैं धूर्त पहाड़ी
 राजाओं का नाशक हूँ, क्योंकि वे मूर्तिपूजक हैं। वे मूर्तिपूजक हैं और मैं
 मूर्ति-भंजक हूँ ॥ ६५ ॥ देखो, जमाने की बेवफ़ाई का हाल, यह जिसके
 पीछे पड़ जाता है उसे नुक़सान पहुँचाना है ॥ ६६ ॥ परन्तु दूसरी तरफ़
 उस नेक खुदा की कुदरत को भी देख जो दूसरी ओर दस लाख (असंख्य)
 को भी मौत देता है ॥ ६७ ॥ शत्रु क्या कर सकता है, अगर दोस्त मेहरबान
 हो । उस दाता (खुदा) का काम ही कृपा करना है ॥ ६८ ॥ वह मुक्तिदाता
 पथ-प्रदर्शक है और जीभ को उसकी स्तुति की पहचान देता है ॥ ६९ ॥
 शत्रु को बुरा कर्म करते समय अंधा कर देता है और अनाथों को काँटे जितना
 घाव लगे बिना ही वह (शत्रु के) घेरे से बाहर निकाल लेता है ॥ १०० ॥
 उस प्रत्येक व्यक्ति से जो (संसार में) सत्य की कमाई करता है, दयालु परमात्मा
 रहम का बर्ताव करता है ॥ १०१ ॥ अगर कोई दिलोजान से उसकी सेवो
 में आता है तो वह खुदावंद प्रभु उस पर सुख-शांति की कृपा करता
 है ॥ १०२ ॥ शत्रु उसके साथ चालाकी क्या कर सकता है जिस पर

वै खुदा रहमसाजी शबद ॥ १०३ ॥ अगर एक बरायद दहो
 दह हजार । निगहबान ऊ रा शबद किरदगार ॥ १०४ ॥
 तुरा गर नजर हसत लशकर व जर । कि मारा निगह असतु
 यजदाँ शुकुर ॥ १०५ ॥ कि ऊ रा गरूर असत बर मुलकु
 माल । व मारा पनाह असतु यजदाँ अकाल ॥ १०६ ॥ तु
 गाफल मशौ जी सिपंजी सराइ । कि आलम बगुजरद सरे जा
 बजाइ ॥ १०७ ॥ बबीं गरदशि बेवफ़ाए जमाँ । कि बर
 हर बुगुरजद मकीनो मकाँ ॥ १०८ ॥ तु गर जबर आजज
 खराशी मकुन । क़सम रा ब तेशह तराशी मकुन ॥ १०९ ॥
 चुहक यार (म०पं० १३६३) बाशद चि दुश्मन कुनद । अगर
 दुश्मनीरा ब सद तन कुनद ॥ ११० ॥ खसम दुश्मनी गर
 हज़ार आवुरद । न एक मूड ऊ रा अज़ार आवुरद ॥ १११ ॥
 अगंजो अभंजो अरूपो अरेख । अगाधो अबाधो अभरमो
 अलेख ॥ ११२ ॥ अरागो अरूपो अरेखो अरंग । अजनमो
 अबरनो अभूतो अभंग ॥ ११३ ॥ अछेदो अभेदो अकरमो

मार्गदर्शक खुदा खुश हो ॥ १०३ ॥ यदि एक अकेले पर दस हजार दुश्मन
 चढ़ाई कर दे तो भी कर्त्ता-पुरुष उसका रक्षक होता है ॥ १०४ ॥ तुम्हारी
 नज़र अगर (अपनी) फ़ौज की तरफ़ है (तो) मेरी नज़र भी परमात्मा का
 धन्यवाद करने की ओर है ॥ १०५ ॥ जो अहंकार उसे अपनी सत्तनत और
 दौलत पर है वैसे ही मुझे अकालपुरुष के आश्रय पर फ़ख़ूर है ॥ १०६ ॥ तू इस
 नाशवान दुनिया में बेख़बर मत हो, क्योंकि जगत निरन्तर परिवर्तनशील
 एवं चलायमान है ॥ १०७ ॥ इस परिवर्तनशील ज़माने को देख जो हर
 मकान और मकान में रहनेवाले पर अधिकार जमाए जा रहा है ॥ १०८ ॥
 तुम अगर बलवान हो तो गरीबों को दुःखी मत करो और क़समों के औज़ारों
 से लोगों को मत छीनो ॥ १०९ ॥ अगर खुदा दोस्त है, तो दुश्मन क्या
 कर लेगा; चाहे शत्रु सैकड़ों लोगों को एकत्र कर ले ॥ ११० ॥ शत्रु अगर
 शत्रुता निभाने के लिए हजार व्यक्ति भी चढ़ा लाए तो भी एक बाल टूटने
 जितना दुःख भी नहीं ला सकता ॥ १११ ॥ परमात्मा गणनाओं से परे, नष्ट
 न होनेवाला, रूप-रेखा से परे, अगाध, भ्रमों से परे, और सभी हिसाबों से दूर
 है ॥ ११२ ॥ वह राग, रूप, रेखा और रंग से विहीन है । वह अजन्मा है,
 वर्णों से परे है, भूतातीत है तथा विनष्ट होनेवाला नहीं है ॥ ११३ ॥ वह अछेद,
 अभेद, अकर्म और कामनाओं से विहीन है । वह शोक से दूर, अभेदनशील,

अकाम । अखेदो अभेदो अभरमो अभाम ॥ ११४ ॥ अरेखो
अभेखो अलेखो अभंग । खुदावंद बख्शिदहे रंग
रंग ॥ ११५ ॥ १ ॥

॥ हिकायत पहिली समाप्त ॥

हिकायत दूसरी ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

हिकायत शुनीदेम राजहि दिलीप । निशसतह बुदह
निज्जद मानो महीप ॥ १ ॥ कि ओरा हमी बूद पिसरे चहार ।
कि दर रज्जम दर बज्जम आमुखतह कार ॥ २ ॥ ब रज्जम
अंदराँ हम चु अज्ज शेर मसत । कि चाबक रिकाबसनु गुसताख
दसत ॥ ३ ॥ चहारो शहे पेश पिसराँ बुखाँद । जुदा बर जुदा
कुरसीए ज़र निशाँद ॥ ४ ॥ बि पुरशीद दानाइ दउलत
परसत । अज़ी अंदरूँ बादशाही कस असत ॥ ५ ॥ शुनीद आँ
रु दानाइ दानश निहाद । ब तमकीन पासख अलम बर
कुशाद ॥ ६ ॥ ब गुफ़तंद खुश दीन दानाइ नग़ज । कि यज़दाँ

भ्रमातीत और (भावातीत) है ॥ ११४ ॥ वह आकार, वेश, लेख से दूर
अभंजनशील, कृपालु, रंगों का रंग, खुदावन्द है ॥ ११५ ॥ १ ॥

॥ दास्तान पहली समाप्त ॥

दास्तान दूसरी

मैंने राजा दिलीप की कहानी सुनी है, जो राजा मांधाता के पास बैठा
हुआ था ॥ १ ॥ उसके चार पुत्र थे जो युद्धविद्या और सभा का शिष्टाचार
सीखे हुए थे ॥ २ ॥ वे लड़ाई में मगरमच्छ और मस्त शेर की तरह शत्रु-
दल पर टूट पड़नेवाले थे और पक्के घुड़सवार, तलवारबाज़ और मजबूत
बाज़ुओं वाले थे ॥ ३ ॥ चारों पुत्रों को राजा ने पास बुलाया और उन्हें
सोने के आसनों पर बैठा दिया ॥ ४ ॥ राजगद्दी के बारे में चतुर वज़ीरों से
पूछा कि इन चारों में से राज्यसत्ता के योग्य कौन है ॥ ५ ॥ जब बुद्धिमान
वज़ीर ने यह सुना तो उत्तर देने के लिए उसने झंडा उठाया अर्थात् कहना
शुरू किया ॥ ६ ॥ वह कहने लगा कि हे राजन् ! तुम अच्छे धर्म वाले,
बुद्धिमान और चतुर हो । परमात्मा की पहचान वाले और स्वतन्त्र बुद्धि

शनासअसतु आज्ञाद मगज ॥ ७ ॥ भरा कुदरते नेसत ई गुफ्त
 नीसत । सुखन गुफ्तनो बिकर जाँ सुफ्त नीसत ॥ ८ ॥
 अगर शहि बिगोयद बिगोयम जवाब । नुमायम ब तो हाल ई
 बा सवाब ॥ ९ ॥ हराँ कस कि यजदान यारी दिहद ।
 ब कारे जहाँ कामगारी दिहद ॥ १० ॥ कि ई रा ब अकल
 आजमाई कुनेम । वजाँ पस ब कार आजमाई कुनेम ॥ ११ ॥
 यके रा दिहद फ़ील दहि हजार मसत । हमह मसतीओ मसत
 जंजीर बसत ॥ १२ ॥ दिगर रा दिहद असप पाँ सद हजार ।
 जि जर साखतह जीन चूँ नउ बहार ॥ १३ ॥ सियम रा
 दिहद शुतर सि सद हजार । हमह नुकरह बारो हमह जर
 निगार ॥ १४ ॥ चुअम रा दिहद मुंग यक (सू० प्र० १३६४)
 नुखद नीम । अजाँ भरद आज्ञाद आकल अजीम ॥ १५ ॥
 बियाबुरद पुर अकल खानह कजाँ । दिगर नीम नुखदश ब बसतन
 अजाँ ॥ १६ ॥ हमी खाशत को तुखम रेजी कुनद । खिरद
 आज्ञामायश बरेजी कुनद ॥ १७ ॥ दफ़न करद हरदो जिमी
 अंदराँ । नजर करद बर शुकर साहिब गिराँ ॥ १८ ॥ चु

वाले हो ॥ ७ ॥ यह कहने की मुझमें शक्ति नहीं, क्योंकि यह कहना मानों
 कुंवारी कन्या को मुसीबत में डालना है ॥ ८ ॥ राजन् ! यदि आज्ञा हो
 तो मैं उत्तर दूँ और मैं भली प्रकार से इस बात का विस्तार कर
 दिखाऊँ ॥ ९ ॥ वह व्यक्ति जिसकी परमात्मा सहायता करता है, संसार के
 सभी कामों में सफलता प्राप्त कर लेता है ॥ १० ॥ यदि पहले इनकी बुद्धि-
 परीक्षा कर ली जाय तो बाद में इनके काम की भी जाँच की जा सकती
 है ॥ ११ ॥ एक पुत्र को दस हजार मस्त हाथी दे दो जो सभी ही मस्ती में
 मस्त और जंजीरों के साथ बँधे हुए हों ॥ १२ ॥ दूसरे को राजा पाँच लाख
 घोड़े दे दे, जिनकी जीन आदि सामान सोने का, नई ऋतु के समान बनाया
 हुआ हो ॥ १३ ॥ तीसरे को राजा तीन लाख ऊँट दे दे जो सभी चाँदी के
 भार से लदे हुए और सोने से सजाए हुए हों ॥ १४ ॥ राजा चौथे पुत्र को
 एक दाना मूँगी और आधा दाना चने का दे दे, क्योंकि वह स्वतन्त्र विचारों
 वाला और परम बुद्धिमान है ॥ १५ ॥ वह जो अकल का भंडार (राजकुमार)
 था वह यह घर ले आया और फिर उसने आधे चने के बराबर एक अन्य
 साबूत दाना ले लिया ॥ १६ ॥ वह बीज को बोना चाहता था और इससे
 भाग्य अथवा अपनी बुद्धि की परीक्षा ले लेना चाहता था ॥ १७ ॥ वे दोनों
 बीज उसने धरती में दबा दिये और बड़े परमात्मा का धन्यवाद करते हुए

शश माहि गुशतंद दरां दफनवार । पदीद आमदह सबजहे नउ
बहार ॥ १९ ॥ बरेजीद दहि साल तुखमे कजाँ । ब परवरदह
ओरा बुरीदन अजाँ ॥ २० ॥ बरेजी दहे बीसत बारश अजो ।
बसे गशतह खरवार दानह अजो ॥ २१ ॥ चुना जियादह शुद
दउलते दिल करार । कजो दानह शुद दानहाए अंवार ॥ २२ ॥
खरीदह अजाँ नकद दहि हज्जार फील । चु कोहे रवाँ
हम चु दरीआइ नील ॥ २३ ॥ बगीरद अजो असप पांसद
हज्जार । हमह जर व जीनो हमह नुकरहवार ॥ २४ ॥
खरीदंदसे सद हज्जारो शुतर । हमह जरह बारो हमह नुकरह
पुर ॥ २५ ॥ वजाँ दाल नउ शहिर आजम बुबसत । कि
नामे अजाँ शहिर दिहली शुदसत ॥ २६ ॥ दिगर दानह रा
बसत मूंगीपटन । चु दोसताँ पसंदसतु दुशमन फिकन ॥ २७ ॥
बगुजरीद दह दो बर ई नमत साल । बसे गशत जो दउलते बे
जवाल ॥ २८ ॥ चु बिनशसत बर तखत मानो महीप ।
बपुरशस दराँमद सहे हफत दीप ॥ २९ ॥ बिगोयद

उसने उस पर आशा टिका दी ॥ १८ ॥ जब धरती में बोये उसे छः महीने
बीत गये, तो नये मौसम में उसे हरा रंग नज़र आया अर्थात् उन बीजों से
नये पौधे उगे दिखने लगे ॥ १९ ॥ दस साल तक उसने बोया और जो बीज
उससे हुआ उसको पाला और उससे पैदा हुई खेती को काटा ॥ २० ॥ जब
दस-बीस बार उसको बोया तो उससे अनाज के बहुत से ढेर पैदा हो
गये ॥ २१ ॥ उसकी इतनी अधिक दौलत हो गई कि उसके दिल की संतुष्टि
हो । उन दानों से अनाज के ढेर लग गये ॥ २२ ॥ उसने उस धन से दस
हज़ार हाथी मोल लिये जो पर्वतों के समान बड़े शरीर वाले और नील नदी
के समान धीमे-धीमे मरती से चलनेवाले थे ॥ २३ ॥ उसने उस धन से पाँच
लाख घोड़े मोल लिये जो सारे ही सोने की ज़ीनों वाले और चाँदी की लड़ियों
वाले थे ॥ २४ ॥ उसने तीन लाख ऊँट मोल लिये जो सारे ही सोने से लदे
हुए और चाँदी से सुसज्जित थे ॥ २५ ॥ उस दाल के दाने (की आमदनी)
से एक बहुत बड़ा नया शहर भी बना जिसका नाम दिल्ली कहा जाने
लगा ॥ २६ ॥ दूसरे मूँग के दाने से मूंगीपट्टन नामक नगर बना जो मित्रों
को अच्छा लगनेवाला और दुश्मनों के दिल को तोड़नेवाला है ॥ २७ ॥
इसी प्रकार बारह वर्ष बीत गये और उसके पास अक्षय भंडार धन
का जमा हो गया ॥ २८ ॥ जब मांघाता सिंहासन पर बैठा और वज़ीर

बपेशीन कागज बियार । चि बखशीदअम मन ब पिसरां
 चहार ॥ ३० ॥ दबीरे कलम बर कलम जन गिरिफत । जवाबे
 सुखन रा अलमबर गरिफत ॥ ३१ ॥ बगुफता चि बखशीद
 ऐशां हज्जार । ब कागज बुबीं तां जुबानस बियार ॥ ३२ ॥
 ब कागज बुबीं ता बिगोयद जुबां । चि बखशीद शुद बखश
 हरकस अजां ॥ ३३ ॥ चु बिशनीद सुखन अज महीपान
 मान । फरिशतह सिफत चू मलायक सकान ॥ ३४ ॥ बयारी
 मरा पेश बखशीदह मन । चरागे जहाँ आफताबे यमन ॥ ३५ ॥
 बिगोयद कि मुरदंद बाजे मुहिम । कि मा हम बसा फील
 बखशीदह अस ॥ ३६ ॥ दिगर रा बपुरशीद (सू० ग्रं० १३६५)
 असप सच करद । कि बाजे बबखशीदु बाजे बिमुरद ॥ ३७ ॥
 सिअम रा बपुरशीद शुतरां नुमां । कुजा तो बबखशीद ए जान
 मां ॥ ३८ ॥ बगुफता कि बाजे बकार आमदंद । बबखश
 अंदरू बेशुमार आमदंद ॥ ३९ ॥ चुअम रा बपुरशीद कि ए
 नेक बखत । सजावार देहीम सायान तखत ॥ ४० ॥ कुजा
 गशत बखशश तुमारा फहीम । यके दानह मुंगो दिगर नुखद

उसके पास आया तो उसने सातों द्वीपों के राजाओं के बारे में
 पूछा ॥ २९ ॥ (राजा ने वजीर से कहा) कि पहला कागज लाओ और देखो
 कि मैंने पुत्रों को क्या दिया था । गिनती करके बताओ ॥ ३० ॥
 कलम चलानेवाले मुंशी ने कलम हाथ में पकड़ ली और फिर उत्तर देने के
 लिए उसने झंडा खड़ा किया ॥ ३१ ॥ राजा ने कहा कि कागज पर से पढ़कर
 फिर मुझे बताओ कि मैंने उन्हें कितने हजार दिया है ? ॥ ३२ ॥ कागज
 पर देखो और जुबान से बताओ कि एक-एक को क्या मिला है ? ॥ ३३ ॥
 महाराज मांघाता की बात, जो कि देवताओं की पदवी और गुणों वाला था,
 सबने सुनी ॥ ३४ ॥ जगत के दीपको और यमन देश के सूर्यो, मैंने जो
 कुछ तुम्हें दिया था उसे मेरे सामने लाओ ॥ ३५ ॥ (बड़े लड़के ने) कहा
 कि हाथी लड़ाई में मारे गए हैं । जो बचे वे मैंने लोगों और सेवकों को दान
 कर दिए हैं । (अब मेरे पास कुछ नहीं है ।) ॥ ३६ ॥ दूसरे पुत्र से
 राजा ने पूछा कि उसने घोड़ों का क्या किया ? उसने भी कहा कि कई तो
 मैंने दान कर दिए और कई मर गए हैं ॥ ३७ ॥ तीसरे पुत्र से पूछा कि
 ऊँट कहाँ हैं ? मुझे दिखाओ । हे मेरे प्राण, उन्हें कहाँ दिया है ? ॥ ३८ ॥
 उसने कहा कि कई एक तो लड़ाई में मारे गए, अनेकों दान में काम आ
 गए और इस समय मेरे पास एक भी ऊँट बाक़ी नहीं है जो आपको दिखाया

नीम ॥ ४१ ॥ शवद गर हुकम ता बियारेम पेश । हमह
 फ़ीलु असपो अजो शुतर बेश ॥ ४२ ॥ नज़र करद फ़ीले दो दहि
 हज़ार मसत । पुर अज़ज़र बारो हमह नुकरह बसत ॥ ४३ ॥
 हुमाँ असप पाँसद हज़ार आवरीद । हुमाँ ज़रज़ीन
 बेशुमार आवरीद ॥ ४४ ॥ हमह ख़ोद ख़ुफ़तान बरग़शतवाँ ।
 बसे तीरु शमशेर कीमत गिराँ ॥ ४५ ॥ बसे शुतर बग़दाद ज़र
 बफ़त बार । ज़रो ज़ामह नीम आसतीं बेशुमार ॥ ४६ ॥ कि
 दहि नीलु दहि पदम दीनार ज़रद । कज़ो दीदह शुद दीदहे
 दोसत सरद ॥ ४७ ॥ कि यक मुंग यक शहिर जो काम शुद ।
 कि मुंगीपटन शहिर ओ नाम शुद ॥ ४८ ॥ कि नीमि नुख़दरा
 दिग़र शहिर बसत । कि नामे अजो शहिर दिहली शुद
 असत ॥ ४९ ॥ खुश आभद ब तदबीर मानो महीप । ख़िताबश
 ब दो दाद राजह दलीप ॥ ५० ॥ कि पैदा अजो मरद शाहन
 शही । सज़ावार तख़त असतु ताजो मही ॥ ५१ ॥ बज़ेबद

जा सके ॥ ३९ ॥ चौथे पुत्र से पूछा कि हे भाग्यशाली, हे छत्र के योग्य
 और राजगद्दी के लायक ॥ ४० ॥ मेरा दिया हुआ कहाँ गया ? तुम मुझे
 समझाओ कि एक दाना मूंग और आधा दाना (जो मैंने तुम्हें दिया था)
 कहाँ है ? ॥ ४१ ॥ उसने कहा कि यदि आज्ञा हो तो मैं सामने ले आऊँ,
 उनसे जो हाथी, घोड़े और ऊँट बन गए हैं ॥ ४२ ॥ उसने बारह हज़ार
 हाथी लाकर राजा को भेंट किए जो सभी सोने से लदे और चाँदी में जड़े
 हुए थे ॥ ४३ ॥ वह दस लाख घोड़े भी ले आया और साथ ही असंख्य
 सोने की ज़ीन भी ले आया ॥ ४४ ॥ वह लौह-टोप, सुनहरी ज़िरहबख़तर,
 सुनहरी झालरें, बहुत से तीर और तलवारें ले आया ॥ ४५ ॥ बहुत से
 बग़दाद के ऊँट (उसने दिए) जो रेशम से लदे हुए और सोने-कपड़े
 आदि से लदे थे ॥ ४६ ॥ दस नील, दस पदम पीले रंग की मुहरें थीं जिन्हें
 देखकर दोस्तों की आँखें ठंडी होती हैं ॥ ४७ ॥ एक मूंगी के दाने से
 एक बड़ा शहर तैयार हुआ है जिसका नाम मूंगीपटन प्रसिद्ध है ॥ ४८ ॥
 जो आधा चने का दाना था उससे दूसरा शहर बसाया है जिसका नाम
 दिल्ली है ॥ ४९ ॥ मांघाता राजा को चौथे पुत्र की युक्ति अच्छी लगी,
 उसने उसे राजा दिलीप की पदवी से विभूषित कर दिया अर्थात् उस दिन
 से उसका नाम दिलीप रख दिया ॥ ५० ॥ उससे जो राजसी प्रताप प्रकट
 हुआ उससे वह धरती पर सिंहासन और ताज के योग्य हो गया ॥ ५१ ॥
 ऐसे मर्द को छत्र, चँवर और मुहर शोभा देती है और उसकी बुद्धि और

अजो मरद ताजौ नगीं । बर अकलु तदबीर हजार
 आफरीं ॥ ५२ ॥ सि ओ असत बेअकल आलूदह मगज । न
 रफतार खुशतर न गुफतार नगज ॥ ५३ ॥ हमी खासत कि ओरा
 बशाही दिहम । जि दउलत खुदशरा अगाही दिहम ॥ ५४ ॥
 बजे बद कजो रंग शाहनशही । कि साहिब शऊर असत व
 मालक मही ॥ ५५ ॥ खिताबश कजो गशत राजह दलीप ।
 खिलाफत बबखशीद मानो महीप ॥ ५६ ॥ सि पिसराँ दिगर
 शाहि आजाद करद । न दानश परसतो न आजाद मरद ॥ ५७ ॥
 कि ओरा बरो जर सिंघासन निशाद । कलीदे कुहन
 गंजरा बर कुशाद ॥ ५८ ॥ बढो दाद शाही खुद आजाद
 गशत । बपोशीद दलकश रवाँ शुद बदसत ॥ ५९ ॥ बिदिह
 साकीया सागरे (सू०प्र० १३९६) सबज रंग । की मारा बकार
 असत दर वकत जंग ॥ ६० ॥ ब मन दिह कि बखत आजमाई
 कुनम । जि तेगे खुदश कारवाई कुनम ॥ ६१ ॥ २ ॥

॥ हिकायत दूसरी समाप्त ॥

युक्ति पर हजारों शत्रु कुर्बान होते हैं ॥ ५२ ॥ (बाक्री के) तीनों (पुत्र)
 ही मूर्ख और बददिमाग हैं । उनकी न तो बोली और न ही गति प्यारी है
 अर्थात् न तो उन्हें बात करने की तमीज है और उन्हें न ही किसी कार्य को
 पूरा करना आता है ॥ ५३ ॥ इस (राजा) ने सोचा कि मैं इसे गद्दी
 दे दूँ और अपनी दौलत के बारे में भी इसे बता दूँ ॥ ५४ ॥ (अब) राजा
 (दिलीप) राजगद्दी पर शोभा देता है जो (स्वयं) बुद्धिमानों और धरती
 का मालिक है ॥ ५५ ॥ राजा दिलीप उसकी पदवी हो गई है और राजा
 मांधाता ने उसे बादशाही बखश दी है ॥ ५६ ॥ बाक्री के तीनों पुत्रों को
 राजा ने देश से निकाल दिया, क्योंकि न तो वे बुद्धिमान थे और न ही
 विकारों से मुक्त थे ॥ ५७ ॥ उसे सोने के सिंहासन पर बैठा, कुंजी से
 पुगना खजाना खोलकर दे दिया ॥ ५८ ॥ राजा मांधाता ने उसे राज्य
 दे दिया और स्वयं गृहस्थ के बंधनों से आजाद हो गया । फकीरों वाली
 गुदड़ी धारण कर ली और जंगल की ओर चलता बना ॥ ५९ ॥
 हे साकी ! मुझे (प्रभु के नाम का) हरे रंग वाला प्याला दे, जिसकी मुझे
 युद्ध में भी जरूरत है ॥ ६० ॥ मुझे दो, ताकि मैं अपने भाग्य की परीक्षा
 कर सकूँ और अपनी तलवार का काम शुरू कर सकूँ ॥ ६१ ॥ २ ॥

॥ दास्तान दूसरी समाप्त ॥

हिकायत तीसरी ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

खुदावंद दानश दिहो दादगर । रज़ा बख़्श रोज़ी दिहो
हर हुनर ॥ १ ॥ अमाँ बख़्श बख़्शिंद ओ दसतगीर ।
कुशायश कुनो रहिनुमायश पज़ीर ॥ २ ॥ हिकायत शुनीदम
यके नेक मरद । कि अज़ दउर दुश्मन बराबुरदौगरद ॥ ३ ॥
खसम अफ़कनो शाहि चीं दिलफ़राज़ । ग़रीबुल निवाज़ो
ग़नीमुल गुदाज़ ॥ ४ ॥ जि रज़मो ब बज़मो हमह बंदुबसत ।
कि बिसयार तेग़ असत हुशयार दसत ॥ ५ ॥ निवालह पियालह
जि रज़मो ब बज़म । तु गुफ़ती कि दीगर यले शुद ब बज़म ॥ ६ ॥
जि तीरो तुफ़ंग हम चु आमुखतह शुद । तु गोई कि
दर शिकम अंदोख़तह शुद ॥ ७ ॥ चु मालश गिरानश सतायश
अज़ीम । कि मुलकश बसे असत बख़्शश करीम ॥ ८ ॥ अज़ो
बादशाही ब आख़र शुदसत । निशसतंद वज़ीरान ओ पेश

दास्तान तीसरी

खुदा बुद्धिदाता, न्याय देनेवाला है । आनंददायक एवं अन्न तथा
समस्त विद्याओं का दाता है ॥ १ ॥ वह सुखदायक, उदार एवं सहायक
है । वह बंधनों को दूर करनेवाला, पथ-प्रदर्शक एवं मनभावन
है ॥ २ ॥ एक भले पुरुष की हमने कहानी सुनी है, जिसने शत्रु के प्रभाव
की धूल उड़ा दी अर्थात् जिसने शत्रु को मारकर मिट्टी में मिला
दिया ॥ ३ ॥ चीन का बादशाह शत्रुओं का नाशक और दिल का दानी
था । वह ग़रीबों की बड़ाई करनेवाला और शत्रु को ग़ला डालनेवाला
था ॥ ४ ॥ वह युद्ध और सभा में सब प्रबंध करनेवाला था और तलवार
चलाने में फुर्तीले हाथों वाला था ॥ ५ ॥ खाने-पीने में, युद्ध और सभा
(दोनों स्थानों) में किसी से कम नहीं था । तुम तो यही कहोगे कि सभा
में वह दूसरा (ही) पहलवान था ॥ ६ ॥ तीर और बंदूक में ऐसा निपुण
था कि तुम (यही) कहोगे कि यह तो माँ के पेट में से ही सीखकर आया
है ॥ ७ ॥ धन, माल एवं पदार्थ उसके पास बहुत थे । उसके पास देश
भी बहुत थे और दान देने में वह दयालु था ॥ ८ ॥ जब उसके राज का
अंतिम समय आ गया तो मंत्री उसके आगे-पीछे आकर बैठ गए ॥ ९ ॥

पसत ॥ ९ ॥ जि तो पस किरा बादशाही दिहम । किरा
ताज इकबाल बर सर निहम ॥ १० ॥ किरा मरद अज खानह
बेरुँ कुनद । किरा बखत इकबाल बर सर निहद ॥ ११ ॥ ब
होश अंदर आमद कुशादो दु चशम । बगुफता सुखन शाहि
पेशीन रसम ॥ १२ ॥ न पाओ न दसतो न चशमो जुबाँ ।
न होशो न हिंमत न हैबत कसाँ ॥ १३ ॥ न हउलो न हिंमत
न हीलह न होश । न बीनी न बीनायगी हर दु गोश ॥ १४ ॥
हराँ कस कि हसत आजमायश बवद । वजाँ दउर दी
बादशाहश बवद ॥ १५ ॥ अजबमाँद दानाइ दउर ई जवाब ।
सुखनबाज दीगर कुनद बा सवाब ॥ १६ ॥ बकिंगश दर
आमद दिरंगश गिरिफत । जवाबे सुखन रा बरंगश
गिरिफत ॥ १७ ॥ चपोरासतश करद चरखे जुबाँ । बरा वुरद
सुखने चु कैबर कमाँ ॥ १८ ॥ कि ए शाहि हुशियार आज्ञाद
मराज । चिरामे तु गोई दरीं कार नगज ॥ १९ ॥ (सू० प्र० १३६७)
कसे रा शवद कार ई दर जमाँ । वजाँ हसत ऐब असत जाहर

(और पूछने लगे— हे सम्राट् !) तुम्हारे बाद यह राज्य किसे दिया
जाय ? किसके सिर पर यह प्रतापी छत्र-चँवर झूले ? ॥ १० ॥ किस मद
को हम घर (के सुखों) से वंचित करें (और यह उत्तरदायित्व दें) ? किसके
सिर पर यह भाग्यशाली छत्र रखें ? ॥ ११ ॥ (मंत्रियों की बातें सुनकर
बादशाह) होश में आया (और उसने) आँखें खोलीं और फिर राजा ने
मर्यादा की बात कही ॥ १२ ॥ जिसके पैर, हाथ, आँखें और जिह्वा
नहीं; जिसे होश-हिंमत और लोगों का दबाव नहीं ॥ १३ ॥ जिसे भय
नहीं, हिंमत, यत्न, सुरति नहीं; जिसे नाक नहीं, नज़र और दो कान भी नहीं
है ॥ १४ ॥ जो इस तरह की परीक्षा में पूरा हो उसी की आज्ञा में चलने
से धर्म का राज्य होगा ॥ १५ ॥ समय के विद्वान इस उत्तर को सुनकर
हैरान रह गए । फिर दूसरी बार वे भली प्रकार से बात करना चाहने
लगे ॥ १६ ॥ (मंत्री) सलाह करने के लिए सभा में आया और उसने
कुछ देर लगाई और फिर बात के उत्तर को बड़ी अच्छी तरह कहने
लगा ॥ १७ ॥ वह बाएँ-दाएँ करता हुआ जीभ को कमान के तीर की
तरह निशाने पर ले आया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! तुम बहुत चतुर और
अलौकिक बुद्धि वाले हो । (परन्तु) तुमने क्या कहा है, इस बात पर मैं
हैरान हूँ ॥ १९ ॥ जिस किसी का संसार में यह हाल हो उसके हाथ सारे
जगत् को सौंप देना वास्तव में बुरा है ॥ २० ॥ हे धरती और समुद्र के

जहाँ ॥ २० ॥ कि ई हसत ऐबो तु गोई हुनर । कि ए शाह
 शाहान हमह बहर बर ॥ २१ ॥ न दर जंग पुशतो न दुशनाम
 दाद । न अंगुशतबर हरफ दुशमन निहाद ॥ २२ ॥ न
 आराम दुशमन न आजार दोसत । जवाबे गदारा अदूरा
 बपोसत ॥ २३ ॥ न बी शिदह रा जा न हरफो निहद । सुखन
 रा बहक जाइ शरफो दिहद ॥ २४ ॥ न उसताद रा दाद
 जाए सुखन । फरामोशगी चूँ बकारे कुहन ॥ २५ ॥ बबद
 मसलिहत कस न दादन दिगर । बिहस नाम ओ चूँ तु गोयद
 हुनर ॥ २६ ॥ न बीनद दिगर जन ब चशमो खुदश । न
 बद कार कस करद नजरे बदश ॥ २७ ॥ नजर करद कस
 बर न हरफे हराम । निगह दाशत बरशुकर यजदाँ
 मुदाम ॥ २८ ॥ नजर रा बबदकार दीगर बबसत । शनासी
 तु तहकीक ओ कोर हसत ॥ २९ ॥ कदन रा न दारद
 बबदकार कार । न दर जंग पसपाउ पुशते बरार ॥ ३० ॥
 न दरकार दुजदी न दिल बिशकनी । न खानह खुरमबाज

स्वामी ! जो तुम कह रहे हो, दुनिया इसे अवगुण कहेगी, परन्तु तुम इन्हें
 गुण बना रहे हो ॥ २१ ॥ (तुमने) आज तक युद्ध में न पीठ दिखाई है, न
 किसी को गाली दी है और न ही शत्रु के लिखे (सुलहनामा) पर कभी अंगुली
 रखी है अर्थात् हस्ताक्षर किए हैं ॥ २२ ॥ शत्रु को तुमने सुखी नहीं बैठने
 दिया, मित्र को दुखी नहीं होने दिया । याचक को जवाब नहीं और
 दुश्मन को खाल खींचे बिना जाने नहीं दिया ॥ २३ ॥ लेखक को बुरा
 लिखने का मौका नहीं दिया और सत्य बात कहनेवाले को बड़प्पन के स्थान
 पर रखा ॥ २४ ॥ आज तक गुरु को बात कहने का मौका नहीं दिया,
 पर अब पुराने कार्य को क्यों भूल गए हो ? ॥ २५ ॥ बुरी सलाह तो किसी
 पराए को भी नहीं देनी चाहिए । तुम्हारे जैसा (सयाना राजा) उस
 बुराई का नाम गुण (कैसे) कह सकता है ॥ २६ ॥ (जो) अपनी आँखों से
 किसी औरत की तरफ बुरे भाव से नहीं देखता है और न ही किसी अन्य के काम
 पर बुरी नजर रखता है ॥ २७ ॥ जो किसी के दुर्वचनों पर ध्यान नहीं
 देता, सदैव परमात्मा का धन्यवाद करने को तत्पर रहता है ॥ २८ ॥ जिसने
 अपनी दृष्टि को दूसरे के बुरे कामों की ओर से बाँध रखा है, वास्तव में अंधा
 (अर्थात् दूसरे को बुराई न चाहनेवाला) वही है ॥ २९ ॥ जो क्रदमों को
 बुरे कामों में रखता नहीं और न ही हजारों के पीछे लगकर युद्ध में से पाँव पीछे
 हटाता है ॥ ३० ॥ जो चौर्य-कर्म में नहीं जाता, न ही किसी का दिल दुखाता है,

नह रहजनी ॥ ३१ ॥ बनाकस दुआए न गोयद सुखन । ब
 खाहश खराशी न जोई सुखन ॥ ३२ ॥ ब बदकार कस दर न
 दादंद पाइ । कि ओ पाइ लंग असतु गोई बजाइ ॥ ३३ ॥
 ब दुज्जदी मतारा न आलूदह दसत । ब खुरहो हरामो कुशायद न
 दसत ॥ ३४ ॥ बखुद दसत खाहंद न गोरंद माल । न रइयत
 खराशी न आजज जवाल ॥ ३५ ॥ दिगर जन न खुद दसत
 अंदाखतन । रइयत खुलासह न बर ताखतन ॥ ३६ ॥ बखुद
 दसत रिशवत न आलूदह करद । कि अज शाहि दुशमन बरावुरद
 गरद ॥ ३७ ॥ न जाए अदूरा दिहद वक्त जंग । बुवारश
 दिहद तेग तरकश खतंग ॥ ३८ ॥ न रामश दिहद असप रा
 वक्त कार । न जायश अदूरा दिहद दर दियार ॥ ३९ ॥
 कि बे दसत ओ हसत गो पुर हुनर । ब आलूदगी दर न बसतन
 कमर ॥ ४० ॥ न गोयद कसे बद सुखन जी जुवान । कि
 ओ बे जुवानसत जाहर जहान ॥ ४१ ॥ शुनोदन न बद सुखन
 कसरा बगोश । (मू०पं० १३६८) कि ओ हसत बेगोश गोई

न शराबी के घर जाता है और न ही डाका मारता है ॥ ३१ ॥ जो बददुआ
 नहीं देता और जो दूसरों को दुखानेवाली बात ढूँढ़ने का भी इच्छुक नहीं
 है ॥ ३२ ॥ जो किसी का बुरा करने के लिए क्रदम नहीं उठाता, वह पांव
 से लूला है और यह मैंने सही कहा है ॥ ३३ ॥ जिसने किसी की पूंजी चुराने
 में हाथ गंदा नहीं किया है और हराम का खाना खाने के लिए हाथ नहीं
 पसाया है ॥ ३४ ॥ जो अपने हाथ से पराया सामान पकड़ना नहीं चाहता ।
 प्रजा को दुखी नहीं करता और न ही गरीबों-मुहताजों का नुकसान करता
 है ॥ ३५ ॥ जिसने पराई औरत पर हाथ नहीं डाला और प्रजा की
 स्वतन्त्रता पर भी धावा नहीं बोला है ॥ ३६ ॥ जिसने अपना हाथ रिश्वत से
 गंदा नहीं किया अपितु हाथ से राजा के शत्रु (रिश्वत देनेवाले) को खाक में
 मिला दिया है ॥ ३७ ॥ जो युद्ध में शत्रु को वार करने का मौका नहीं देता,
 जो तलवारें चलाता है और तरकस में से तीरों की बरसात कर देता
 है ॥ ३८ ॥ जो काम के वक्त घड़े को (भी) आशाम नहीं करने देता और
 शत्रु को रहने का ठिकाना नहीं देता ॥ ३९ ॥ गुणवान पुरुष उसे हस्त-विहीन
 अर्थात् लुंज कहते हैं । वह हाथ से बुरा काम करने की कमर नहीं
 बांधता ॥ ४० ॥ जो व्यक्ति इस जुवान से बुरा वचन नहीं कहता वह
 प्रत्यक्ष ही जगत में गूंगा है ॥ ४१ ॥ जो कानों से किसी की बुरी बातें नहीं

बहोश ॥ ४२ ॥ कि पस परदह चुगली शुनीदन न कस ।
 वज्राँ खुद शनासी कि गोई शहस ॥ ४३ ॥ कसे कार बदरा
 न गीरंद बोइ । कि ओ हसत बे बीनिओ नेक खोइ ॥ ४४ ॥
 न हउलो दिगर हसत जुजबा खुदाइ । कि हिंमत वरां दा
 दरारद जि पाइ ॥ ४५ ॥ ब होश अंदर आमद हमह वक्रत
 जंग । कि कोशश कुनद पाइ ब तीरो तुफंग ॥ ४६ ॥ कि
 दरकार इनसाफ ओ हिंमत असत । कि दर पेश गुरबाइओ
 आजज असत ॥ ४७ ॥ न हीलह कुनद वक्रत दर कारजार ।
 न हैबत कुनद दुशमना बेशुमार ॥ ४८ ॥ हरां कस कि जीं
 हसत गाजी बवद । ब कारे जहाँ रजम साजी कुनद ॥ ४९ ॥
 कसे रा कि ई कार आयद पसंद । वज्राँ शाहि बाशद जहाँ
 अरजमंद ॥ ५० ॥ शुनीद ई सुखन दउर दाना वजीर । कि
 आकल शनास असत पोजश पजीर ॥ ५१ ॥ कसे रा शनासद
 ब अकले बिही । सरो रा बिदिह ताजु तखतो मही ॥ ५२ ॥
 ब बखशीद ओरा मही तखत ताज । गर ओरा शनासी रईयत
 निवाज ॥ ५३ ॥ ब हैरत दरआमद बपिसराँ चहार । कसे

सुनता, वह पुरुष सच में ही बहरा है। यह बात विज्ञ पुरुषों ने कही
 है ॥ ४२ ॥ जो पीठ पीछे किसी की चुगली नहीं सुनता उसे ही अपना राजा
 पहचानो और कहो ॥ ४३ ॥ जो किसी के बुरे काम की गंध भी नहीं लेता
 वह नाक के बिना है और अच्छे स्वभाव वाला है ॥ ४४ ॥ जिसे खुदा के
 सिवा किसी अन्य का डर नहीं है; जो हिम्मत वालों को आटे की तरह कर देता
 है अर्थात् बलवानों को पीस देता है ॥ ४५ ॥ जो युद्ध में सदा चैतन्य होकर
 आता है और तीरों-बंदूकों के साथ युद्ध करता है ॥ ४६ ॥ जो न्याय के कामों
 में जुटा रहता है; जो गरीबों के सामने भी अपने आपको मुहताज ही समझता
 है ॥ ४७ ॥ जो युद्ध के समय कोई बहाना नहीं ढूँढ़ता और असंख्य शत्रु-
 सेना को देखकर भयभीत नहीं होता ॥ ४८ ॥ जो कोई इस तरह का गाजी
 (वीर) हुआ है और जो जगत्-कार्यों में भी युद्ध की तैयारी करता है ॥ ४९ ॥
 जिस किसी व्यक्ति को यह सब पसन्द होगा उसी व्यक्ति के राजा बनने से
 जगत सम्मान प्राप्त करेगा ॥ ५० ॥ समय के चतुर वजीर ने इस बात को
 सुना और समझा कि राजा चतुर, विज्ञ और प्रार्थना को माननेवाला है ॥ ५१ ॥
 जिस किसी को तुम अच्छी अकलवाला समझते हो, ठीक उसे ही राजगद्दी और
 छत्र-चँवर दे दो ॥ ५२ ॥ तुम धरती, गद्दी और ताज दे दो। यदि तुम
 उसे प्रजा का पोषण करनेवाला जान लो ॥ ५३ ॥ यह सुनकर राजा के चारों

गोइ गीरद हमह वक्रत कार ॥ ५४ ॥ हराँ कस कि रा अकल
यारी दिहद । ब कारे जहाँ कामगारी कुनद ॥ ५५ ॥ बिदिह
साकीया सागरे सबज रंग । कि मारा बकार असत दर वक्रत
जंग ॥ ५६ ॥ बिदिह साकीया सागरे नैन पान । कुनद पोर
सद सालह रा नउ जवान ॥ ५७ ॥ ३ ॥

॥ हिकायत तीसरी समाप्त ॥

हिकायत चौथी ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

कि रोज़ी दिहंद असतु राजक रहोम । रहाई दिहो
रहिनुमाए करीम ॥ १ ॥ दिल अफ़जाइ दानश दिहो दादगर ।
रजा बख़श रोज़ी दिहो हर हुनर ॥ २ ॥ हिकायत शुनीदम
यके नेक जन । चु शमशाद कद्दे ब ज़ोए चमन ॥ ३ ॥ कि
ओ रा पदर राजहे उतर देश । ब शीरी जुबाँ हम च इख़लास
केश ॥ ४ ॥ कि आमद बराए हमह गुसल गंग । चु कैबर

पुत्र हैरानी में आ गए । कौन भला चाहता था राज्य रूपी गंद न
पकड़ूँ ॥ ५४ ॥ जिस किसी व्यक्ति को बुद्धि सहायता प्रदान करती है वह
संसार के कामों में उसकी इच्छा पूरी करती है ॥ ५५ ॥ हे साकी, मुझे हरे
रंग का प्याला द्या दो जो मुझे युद्ध में भी काल देनेवाला है ॥ ५६ ॥
हे साकी, आँखों को रंगीम करनेवाला, प्याला मुझे दो जो सौ वर्षों के बूढ़ों को
जवान कर देता है ॥ ५७ ॥ ३ ॥

॥ दास्तान तीसरी समाप्त ॥

दास्तान चौथी

जो रोज़ी देनेवाला, हुक़म चलानेवाला और दयालु है । वह छुटकारा
देनेवाला और पथ-प्रदर्शक कृपालु है ॥ १ ॥ जो दिल को उत्साहित करनेवाला,
अकल देनेवाला, न्याय करनेवाला, खुशी देनेवाला, अन्नदाता और सभी
गुणों से युक्त है ॥ २ ॥ हमने एक नेक औरत की कहानी सुनी है जो देवदार
के पेड़ की तरह ऐसी लम्बी थी मानों नदी के किनारे पर बगीचे में लम्बा
देवदार खड़ा नज़र आता हो ॥ ३ ॥ उसका पिता पहाड़ी देश का राजा था जो
चीनी की तरह मीठी जुबान वाला और धर्म तथा प्यार वाला था ॥ ४ ॥

कमाँ हम चु तीरे तुफंग ॥ ५ ॥ (मू० पं० १३६६) हमी खासत कि
 ओरा स्वयंवर कुनन । कसे ई पसंद आयद ओरा दिहम ॥ ६ ॥
 बिगोयद सुखन दुखतरे नेक तन । कसे तो पसंद
 आयद ओरा बकुन ॥ ७ ॥ निशादंद बरकाख ओ हफत
 खन । चु माहे मही आफतावे यमन ॥ ८ ॥ दहाने दुहदरा
 दहन बर कुशाद । जवाबे सुखन रा उजर बर निहाद ॥ ९ ॥
 कि ई राजहे राजहा बेशुमार । कि वकते तरदद विआमुख-
 तहकार ॥ १० ॥ कसे तो पसंद आयदत ई जमाँ । वजाँ
 पस ब दामादी आयद हुमाँ ॥ ११ ॥ नुमादंद ब ओ राजहाँ
 बेशुमार । पसंदश नियामद कसे कार बार ॥ १२ ॥ हम
 आखर यके राजहे सुभट सिंघ । पसंद आमदश हम चु गुररा
 निहंग ॥ १३ ॥ हमह उमदहे राजहा पेश खाँद । जुदा बर
 जुदा दउर मजलस निशाँद ॥ १४ ॥ ब पुरशीद कि ए दुखतरे
 नेक खोइ । तुरा कस पसंद आयद अजीहाँ बजोइ ॥ १५ ॥
 रवाँ करदु जनार दारान पेश । बिगोयद कि ई राजहे उत्तर
 देश ॥ १६ ॥ कि ओ नाम बसतश बछतरामती । चु माहे

वह सारे परिवार को साथ लेकर गंगा-स्नान करने के लिए इस तरह आया
 जैसे कमान से तीर और बंदूक से गोली निकली हो ॥ ५ ॥ राजा
 की यह इच्छा भी है कि लड़की का स्वयंवर कहें । यदि कोई लड़का
 पसन्द आ जाए तो उसे मैं लड़की दे दूँ ॥ ६ ॥ राजा ने कहा कि हे पवित्रात्मा
 पुत्री ! जो पुरुष तुम्हें पसंद आ जाए उसे पति बना लो ॥ ७ ॥ उस
 लड़की को सात छतरों वाली अट्टालिका पर बैठा दिया । वह पूर्णिमा के चन्द्र
 और सूर्य के समान प्रकाशमान थी ॥ ८ ॥ पहले राजा ने ढोल बजवाया,
 फिर (विनम्रता से) लड़की से कहा ॥ ९ ॥ हे नेक पुत्री ! देखो ये असंख्य
 राजागण यहाँ एकत्र हुए हैं जो युद्धकला में पूर्णतः प्रवीण हैं ॥ १० ॥ जो
 भी व्यक्ति इस समय तुझे पसन्द आएगा वही फिर मेरा दामाद बनकर
 आएगा ॥ ११ ॥ उसे अनैकों राजा दिखाए गए पर व्यवहार से उसे कोई भी
 राजा पसन्द नहीं आया ॥ १२ ॥ अन्त में सुभटसिंह नामक एक राजा उसे पसन्द
 आया जो षड़ियाल की तरह गर्जना करनेवाला था ॥ १३ ॥ सभी अच्छे राजागण
 आगे बुला लिये गये और सभा में चारों ओर उन्हें अलग-अलग सिंहासनों पर
 बिठा दिया गया ॥ १४ ॥ (राजा ने पूछा—) हे नेक स्वभाव वाली पुत्री !
 इन सबमें से तुम्हें कौन सा व्यक्ति पसन्द आया है ? ॥ १५ ॥ राजा ने ब्राह्मणों

फलक आफ़ताबे मही ॥ १७ ॥ अज़ी राजहाँ कस नियामद
नज़र । वज़ाँ पस अज़ी हाँ बुबीं पुर गुहर ॥ १८ ॥ नज़र
करद बर राजहा नाज़नीं । पसंदश नियामद कसे दिल
मगीं ॥ १९ ॥ स्वयंवर वज़ाँ रोज़ मउकूफ़ गशत । कि
नाज़म बु बरखासत दरवाज़ह बसत ॥ २० ॥ कि रोज़े दिगर
शाहि ज़ररीं सिपहर । बर अउरंग बरामद चु रउशन
गुहर ॥ २१ ॥ दिगर रोज़ हे राजहा खासतंद । दिगर गूनह
बाज़ार आरासतंद ॥ २२ ॥ नज़र कुन बरोए तु ए
दिलरुबाइ । किरा तो नज़र दर बियायद बजाइ ॥ २३ ॥ ब
पहिन अंदर आमद गुले अंजमन । कि ज़र आब रंग असनु
सीमाब तन ॥ २४ ॥ रवाँ गशत दर राजहा बेशुमार । गुले
सुरख चूँ गुंबज़े नउ बहार ॥ २५ ॥ ब दुज़दीद दिल राजहा
बेशुमार । बिअफ़तद ज़िमी चूँ यले कारज़ार ॥ २६ ॥ बिज़द
बाँग बर वै कि खातून खेश । कि ई उमदहे राजहा उत्तर

को आगे भेजा । उन्होंने कहा कि यह उत्तर देश का राजा है ॥ १६ ॥
उसकी पुत्री का नाम बछत्रामती है जिसकी सुन्दरता चन्द्र-सूर्य की तरह
है ॥ १७ ॥ इन राजाओं में से कोई भी नज़र में चढ़ा नहीं है । तत्पश्चात्
उससे कहा कि हे गुणों में पूर्ण ! इनमें से भी देख लो ॥ १८ ॥ उस कोमल
शरीर वाली ने (इन) राजाओं पर भी नज़र फेंकी पर उसे कोई आदमी भी
पसन्द न आया जो उसके दिल का मोती होता ॥ १९ ॥ उस दिन स्वयंवर
स्थगित कर दिया । प्रबंधक उठ खड़े हुए और दरवाज़ा बंद हो गया ॥ २० ॥
दूसरे दिन सुनहरी ढाल वाला राजा अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा और मोती
की तरह प्रकाशमान हुआ ॥ २१ ॥ दूसरे दिन भी राजाओं को बुला लिया
गया और दूसरे ढंग से सभा को सँवारा गया ॥ २२ ॥ (राजा ने फिर कहा)
हे मन को मोहित करनेवाली प्यारी पुत्री ! तुम इन सबके चेहरों पर निगाह
डालो । तुम्हारी नज़र में कौन ठीक है ? ॥ २३ ॥ वह सभा के फूल के
समान सामने आ गई । उसके शरीर की आभा पारे जैसी और रंग सुनहरा
है ॥ २४ ॥ पिता की आज्ञा पाकर बछत्रामती अनेकों राजाओं के बीच से धूम
गई । ऐसी लगती थी मानों वसंत ऋतु में वह गुलाब के फूलों की मीनार
हो ॥ २५ ॥ अनेकों राजाओं का दिल उसने चुरा लिया । वे सब विमोहित
होकर धरती पर ऐसे गिर गए जैसे शूरवीर रणभूमि में गिरे पड़े हों ॥ २६ ॥
ब्राह्मण ने उन राजाओं से कहा, यह जो अत्यन्त सुन्दर है, यह उत्तर देश के

देश ॥ २७ ॥ वजाँ दुखतर हसत ई बछतरामती । चु माहे
(मू० प्र० १४००) फ़लक हम चु हूरो परी ॥ २८ ॥ स्वयंवर दरामद
चु माहे फ़लक । फ़रिशतह सिफ़त ओ चु जातश मलक ॥ २९ ॥
किरा दउलत इकबाल यारी दिहद । कि ई माहरो कामगारी
दिहद ॥ ३० ॥ पसंद आमद ओ राजह सुभटसिंघ नाम ।
कि रउशन तबीयत सलीखत मुदाम ॥ ३१ ॥ रवाँ करद बर
वै वकीलस गिराँ । कि ए शाह शाहान रउसन ज़माँ ॥ ३२ ॥
कि ई तरज लालाइ बरगे समन । कि लाइक सुमान असत ई
रा बकुन ॥ ३३ ॥ बिगोयद यके खानह बानू मरासत । कि
चशमे अज़ो हरदू आहू तरासत ॥ ३४ ॥ कि हरगिज़ मन
ई रा न करदम कबूल । कि कउले कुराँ असत कसमे
रसूल ॥ ३५ ॥ ब गोश अंदर आमद अज़ी न सुखन ।
बजुं बश दरामद ज़ने नेक तन ॥ ३६ ॥ कसे फ़तह मारा
कुनद वकत कार । वजाँ शाहि मारा शवद ई
दियार ॥ ३७ ॥ ब कोशीद मैदान जोशीद जंग । बख़ोशीद

राजा की पुत्री है ॥ २७ ॥ बछत्रामती नामक उसकी पुत्री है । यह आकाश
के चन्द्रमा की तरह प्रकाश-पुंज और परी की तरह नाजुक शरीर वाली
है ॥ २८ ॥ आकाश के चन्द्रमा की तरह यह स्वयंवर के पंडाल में आई है ।
यह फ़िरिश्ते के गुणों वाली और देवताओं जैसे शरीरवाली है ॥ २९ ॥ (अब
देखो) प्रतापी भाग्य किसकी मदद करता है । जो भाग्यशाली है उसे ही यह
प्राप्त होकर उसकी इच्छा पूरी करेगी ॥ ३० ॥ सुभटसिंह नामक राजा उसे
पसंद आया । जो प्रकाशित बुद्धि वाला और सदैव मुस्कुरानेवाला
था ॥ ३१ ॥ उसने उसके पास बड़े-बड़े वकील भेज दिए जो (सुभटसिंह से)
कहने लगे, हे राजाओं के राजन् और समय के प्रकाश अर्थात् समय को
समझनेवाले ! ॥ ३२ ॥ यह इस तरह की खूबसूरत है, मानों लाले का फूल
और चमेली का पत्र हो । यह हर प्रकार से आपके लायक है ॥ ३३ ॥
(सुभटसिंह ने) कहा कि मेरे घर में एक स्त्री है जिसकी दोनों आँखें मानों हिरण
के बच्चों के समान हैं ॥ ३४ ॥ मैं इसे कभी भी क़बूल नहीं कर सकता,
क्योंकि कुरान का हुक्म है और रसूल की क़सम है ॥ ३५ ॥ जब इस तरह
की बात उसके कानों में पड़ी तो उस पवित्र शरीर वाली स्त्री (कन्या) के
मन में जोश आ गया ॥ ३६ ॥ (उसने कहा—) जो कोई मुझे युद्ध में जीतेगा
वह ही मेरा और इस मुल्क का मालिक बनेगा ॥ ३७ ॥ युद्ध के लिए उसने

खुफ़तान पोलाद रंग ॥ ३८ ॥ निशसतह बर आँ रथ चु माहे
 मुनीर । बुवसतंद शमशेर जुसतंद तीर ॥ ३९ ॥ ब मैदाँ
 दरआमद जु गुररीद शेर । चु शेर असत शेर अफकनो दिल
 दलेर ॥ ४० ॥ ब पोशीद खुफ़तान जोशीद जंग । ब कोशीद
 मैदान तीरो तुफ़ंग ॥ ४१ ॥ चुना तीर बारा कुनद कारज़ार ।
 कि लशकर बकार आमदश बे शुमार ॥ ४२ ॥ चुना बान
 बारीद तीरो तुफ़ंग । बसो मरदमाँ मुरदह शुद जाइ
 जंग ॥ ४३ ॥ सहे नाम गजसिंघ दरामद बजंग । चु कैबर
 कमा हम चु तीरो तुफ़ंग ॥ ४४ ॥ बजुंबश दरामद चु अफ़रीत
 मसत । यके गुरज़ अज़ फ़ील पैकर ब दसत ॥ ४५ ॥ यके
 तीर ज़द बानूए पाक मरद । कि गजसिंघ अज़ असप आमद
 ब गरद ॥ ४६ ॥ दिग़र राजह रनसिंघ दरामद ब रोश ।
 कि परवानहे चूँ दरामद बजोश ॥ ४७ ॥ चुना तेग़ ज़द
 बानुए शेर तन । बिअफ़ताद रनसिंघ चु सरवे चमन ॥ ४८ ॥

बहुत शीघ्रता की और बड़े जोर-शोर से युद्ध किया । उसने शरीर पर
 फ़ौलाद का बख़्तर पहन लिया ॥ ३८ ॥ पूर्णिमा के चाँद की तरह
 (बछत्रामती) रथ में बैठ गई । कमर के साथ उसने तलवार बाँध
 ली और कमान हाथ में पकड़ लिया ॥ ३९ ॥ दहाड़ते हुए शेर की तरह
 वह युद्धभूमि में आ गई । वह शेर जैसी है, पर शेर को भी पटक फेंकनेवाली
 है । वह दिल से दिलेर है ॥ ४० ॥ लौहकवच को गले में पहन उसने भारी
 जोश के साथ जंग शुरू कर दी और वीरों को बंदूकों के साथ मैदान जीतने की
 कोशिश की ॥ ४१ ॥ लड़ाई में उसने तीरों की ऐसी बारिश की कि (सुभट
 सिंह की) बहुत सी फ़ौज मारी गई ॥ ४२ ॥ तीरों और गोलियों की इस तरह
 की बारिश की कि लड़ाई में बहुत से लोग मुर्दा हो गए ॥ ४३ ॥
 गजसिंह नामक राजा युद्धभूमि में ऐसे आया जैसे कमान में से तीर और
 बंदूक में से गोली आती है ॥ ४४ ॥ वह मतवाले दैत्य के समान क्रोधित
 होकर युद्ध में आया । उसने एक हाथ में हाथी के शरीर जैसी (बहुत
 बड़ी) गदा पकड़ रखी थी ॥ ४५ ॥ उस नेक औरत ने उस मर्द को एक
 ही तीर में मार डाला, जिससे गजसिंह घोड़े पर से मिट्टी में आ
 गिरा ॥ ४६ ॥ दूसरा राजा रनसिंह भी क्रोधित हो युद्ध में आया था
 जो युद्ध रूपी दीपक पर पतंगे की तरह जोश में भरकर आया था ॥ ४७ ॥
 शेर जैसे बलवान शरीर वाली स्त्री ने जब तलवार मारी तो बाग़ के देवदार

यके शहिर अंबेर दिगर जोधपुर । खरामीदह बानो
 चु रत्नसिंदह दुर ॥ ४६ ॥ बिजद तेग वा जोर बानो
 सिपर । ब बरखेज शोलह बसे चूँ गुहर ॥ ५० ॥ सियम
 राजह बूंदी दर (मु०प्र०१४०१) आमद दलेर । चु बर बचचह
 आहू चु गुररीद शेर ॥ ५१ ॥ चुना तीर जद हर दो अबरू
 सिकंज । बिअफताद अमरसिंघ चु शाखे तुरंज ॥ ५२ ॥ चुअम
 राजह जैसिंघ दरआमद मुसाफ । बजोश अंदरीं शुद चु अज
 कोहकाफ़ ॥ ५३ ॥ हुमाँ खुरद शरबत कि यारे चुअम । जि
 जैसिंघ पसे यक निआमद कदम ॥ ५४ ॥ यको शहि फिरंगो
 पिलंदे दिगर । ब मैदा दरामद चु शेरे जबर ॥ ५५ ॥ सियम
 शाहि अंगरेज चूँ आफ़ताब । चुअम शाहि हबशी चु मगरे दर
 आब ॥ ५६ ॥ यके रा बिजद नेफह मुशते दिगर । सियम
 रा ब पाओ चुअम रा सिपर ॥ ५७ ॥ चुना मे बिअफ़तद
 न बरखासत बाज । सूए आसमाँ जान परवाज
 साज ॥ ५८ ॥ दिगर कस नियामद तमंनाइ जंग । कि पेशे

वृक्ष की तरह रत्नसिंह (कटकर) धरती पर गिर पड़ा ॥ ४८ ॥ एक
 आमेर और दूसरा जोधपुर का राजा दोनों एक साथ ही मैदान में आए ।
 वह चमकीले शरीरवाली स्त्री फुर्ती के साथ इनके सामने आ गई ॥ ४९ ॥
 जब उन्होंने तलवार का जोरदार वार किया तो इस (स्त्री) ने उसे ढाल
 पर रोका । ढाल में से चिंगारिया निकलीं जो मोतियों जैसी चमकनेवाली
 थीं ॥ ५० ॥ तीसरा बूंदी शहर का राजा हिम्मत के साथ आया मानों
 शेर दहाड़ता हुआ हिरन के बच्चों पर टूट पड़ता हो ॥ ५१ ॥ दोनों
 भूकुटियों में ऐसा तीर मारा जिससे वह राजा अमरसिंह डाली से टूटे
 नीबू की तरह धरती पर आ गिरा ॥ ५२ ॥ चौथा राजा जयसिंह
 रणभूमि में आया जो अंदरूनी जोश में कोहकाफ़ पहाड़ की तरह ऊँचा हो
 गया था ॥ ५३ ॥ चौथे ने भी मित्रों वाला वही (मौत का) शरबत पिया ।
 जयसिंह के बाद फिर कोई पुरुष एक कदम आगे आया ॥ ५४ ॥ तीसरा सूर्य
 के समान तेजवान अंग्रेज आया । एक फिरंग (देश) और दूसरा पलदर
 (देश) का (राजा) बबर शेर की तरह रणभूमि में आ पहुँचे ॥ ५५ ॥
 चौथा हब्शी क्रौम का राजा ऐसे टूट पड़ा जैसे पानी में मगरमच्छ टूट पड़ता
 है ॥ ५६ ॥ एक को बरछा और दूसरे को मुक्का मारा, तीसरे को पैरों
 से कूट दिया और चौथे का मुँह ढाल से कुचल दिया ॥ ५७ ॥ वे चारों
 ऐसे गिर गए कि फिर उठ न सके । उनके प्राण आकाश की ओर उड़

नियामद दिलावर निहंग ॥ ५६ ॥ शबेशहि शबिसता
 चूँ दर आमद बफ़उज । सिपह खानह आमद हमह मउज
 मउज ॥ ६० ॥ ब रोजे दिगर रउशनीअत पनाह । बअउरंग
 दर आमद चु अउरंग शाह ॥ ६१ ॥ दु सूए यलाँ हमह बसतंद
 कमर । ब मैदान जुसतंद सिपर बर सिपर ॥ ६२ ॥ बगुररीद
 आमद दु अबरे मुसाफ़ । यके गशतह घायल यके गशत
 जाफ़ ॥ ६३ ॥ चकाचाक बरखासत तीरो तुफ़ंग । खताखत
 दरामद हमह रंग रंग ॥ ६४ ॥ जि तीरो जि तोपो जि तेगो
 तबर । जि नेजह व नाचख व नावक सिपर ॥ ६५ ॥ यके देव
 आमद कि जागो निशां । चु गुररीद शेर हम चु पीले
 दमाँ ॥ ६६ ॥ कुनद तीरो बाराँ चु बाराँन मेश । बरखश
 अंदराँ अबर चूँ बरक तेग ॥ ६७ ॥ ब जोश अंदर आमद
 दहाने दुहल । चु पुर गशत बाज़ार दाए अज़ल ॥ ६८ ॥
 हराँ कस कि पररा शवद तीर शसत । बसद पहिलूए पील

गए ॥ ५८ ॥ फिर अन्य किसी व्यक्ति को युद्ध करने की इच्छा नहीं हुई ।
 हिम्मतवाला संसार का कोई भी व्यक्ति सामने नहीं आया ॥ ५९ ॥ रात का
 राजा चन्द्रमा रात में जब अपनी (किरणों की) फ़ौज समेत आ गया तो सबकी
 सेना अपने ठाढ़ अर्थात् दरिया की लहरों की तरह टकराकर अपने घर
 वापस आ गयी ॥ ६० ॥ दूसरे दिन प्रकाश का आश्रय सूर्य अपनी गर्दी
 पर आ गया, जैसे राजा अपने तख्त पर बैठता है ॥ ६१ ॥ दोनों ओर के
 शूरवीर कमर कस करके एकत्र हो गए और ढालों पर ढालें पकड़कर मैदान
 जंग की तरफ़ चले गए ॥ ६२ ॥ लड़ाई के दो बादल (दोनों ओर से आये)
 ओर गरजने लग गए । उनमें से एक जखमी हो गया और एक दूर हो गया
 अर्थात् मर गया ॥ ६३ ॥ तीरों की सनसनाहट उठी और बंदूकों की
 कड़कड़ाहट की आवाज़ आने लगी । इस प्रकार सब ओर से रंगारंग
 आवाज़ें आ रही थीं ॥ ६४ ॥ तीरों, तोपों, तलवारों, कुल्हाड़ों, बरछों के
 साथ और तीरों-ढालों के साथ युद्ध हुआ ॥ ६५ ॥ एक दैत्य आया जो कौवे
 के समान काला था । वह शेर की तरह गुरगुरने लगा । वह हाथी के
 समान मतवाला था ॥ ६६ ॥ वह वर्षा के समान तीर बरसाता है,
 और अपनी तलवार बादलों की बिजली के समान चमकाता है ॥ ६७ ॥
 ढोल के मुँह को भी जोश आ गया और युद्ध-स्थल में मौत का जमाव
 हो गया ॥ ६८ ॥ (राजकुमारी के धनुष में से) जो भी तीर चला
 वह बड़े डोल-डोल वाले शूरवीरों की सौ पसलियों में से पार हो

मरदाँ गुजशत ॥ ६९ ॥ हुमाँकस बसे तीर जद बर कजाँ ।
 द्विअफ़ताद देवे चु करखे गिराँ ॥ ७० ॥ दिगर देव बरगशत
 बियामद बजंग । चु शेरे अजीमो हम चु बराँ
 पिलंग ॥ ७१ ॥ चुना जखम गोपाल अंदाखत सखत ।
 द्विअफ़ताद दानो चु बेख अज दरखत ॥ ७२ ॥ दिगर कस
 नियामद अजो आरजो । कि आयद बजंगे चुनी
 माहरो ॥ ७३ ॥ सहे चीन सर ताज (म०प०१४०२) रंगी
 निहाद । बलाए गुबारश दहन बर कुशाद ॥ ७४ ॥ शब
 आमद यके फ़उज रा साज करद । जि दीगर वदह बाजी
 आगाज करद ॥ ७५ ॥ कि अफ़सोस अफ़सोस हैहात हात । अजी
 उमर वजीं जिदगी जी हयात ॥ ७६ ॥ ब रोज़े दिगर रउशनीयत
 फ़िकर । बर अउरंग दरामद चु शाहे दिगर ॥ ७७ ॥ सियहि
 सूदु बरखासत अज जोश जंग । रवाँ शुद ब हर गोशह तीरो
 तुफंग ॥ ७८ ॥ रवाँरव शुदह कैबरे कीनह कोश । कि बाजूए
 मरदाँ बरावुरद जोश ॥ ७९ ॥ चु लशकर तमामी दरामद
 ब काम । यके माँद ओ रासत सुभटसिघ नाम ॥ ८० ॥

गया ॥ ६९ ॥ उसने भी उस पर बहुत से तीर मारे जिससे वह
 दैत्य ऊँचे महल की तरह गिर पड़ा (और मर गया) ॥ ७० ॥
 एक अन्य दैत्य गिद्ध के समान था वह भी युद्ध के लिए आया ।
 वह शेर के समान बड़ा था और पलंग के समान उड़नेवाला था ॥ ७१ ॥
 राजकुमारी ने खींचकर गुल्लक उसे मारा जिससे वह दैत्य इस तरह
 गिर पड़ा जैसे जड़ से उखड़ा वृक्ष गिर पड़ता है ॥ ७२ ॥ फिर किसी
 ने भी उसके सामने आने की इच्छा जाहिर नहीं की जो चन्द्रमुखी जंग
 करने के लिए आई हुई थी ॥ ७३ ॥ चीन के राजा ने सिर से रंगीन
 ताज उतारकर रख दिया । काली चुड़ैल (रात) ने अपना मुँह खोल
 दिया है ॥ ७४ ॥ एक फ़ौज की तरह रात आ गयी । उसने दूसरी क्रिस्म
 का खेल शुरू कर दिया ॥ ७५ ॥ (बछत्रामती ने कहा—) हाय ! हाय !
 अफ़सोस है; इस उम्र और इस जिंदगी पर ॥ ७६ ॥ दूसरे दिन रोशनी
 का प्रबंध करनेवाला (सूर्य) अपने आकाश रूपी सिंहासन पर राजा की
 तरह आ गया ॥ ७७ ॥ तब दोनों ओर की फ़ौजों दिल के उत्साह के
 साथ युद्ध के लिए उठ खड़ी हुई । सभी कोनों में तीर और गोलियाँ
 चलना शुरू हो गई ॥ ७८ ॥ बुरा करनेवाले तीर खूब चलने लगे और
 मर्दों की भुजाओं में जोश आ गया ॥ ७९ ॥ जब सारी फ़ौज मर गई

बिगोयद कि ए शाह रुसतम जमाँ । तु सारा बिकुन या बिगोरी
 कमाँ ॥ ८१ ॥ बगजब अंदर आमद चु शेरे जिआँ । न पुशते
 दिहम बानूए हम चुना ॥ ८२ ॥ बपोशीद खुफतान जोशीद
 जंग । बकोशीद चूँ शेरे सरदाँ निहंग ॥ ८३ ॥ ब जायश
 दरामद चु शेरे अजीम । ब कैबर कमाँ करद बारश
 करीम ॥ ८४ ॥ चपो रासत ओ करद खम करद रासत ।
 गरेवे कमाँ चरख चीनी बिखासत ॥ ८५ ॥ हराँकस कि नेजह
 बिअफताद मुशत । दुता गशत मुशते हमी चार
 गशत ॥ ८६ ॥ बियावेखत बा दीगरे बाज पर । चु सुरख
 अजदहा बर हमी शेरे नर ॥ ८७ ॥ चुना बान अफताद तीरो
 तुफंग । जमी कुशत गानश शुदह लालह रंग ॥ ८८ ॥ कुनद
 तीर बारान रोजे तमास । कसेरा न गशतीद मकसूद
 काम ॥ ८९ ॥ अजो जंग जो साँदगी साँदह गशत । बिअफताद
 हरदो दर आ पहिन दसत ॥ ९० ॥ शहिनशाहि रूमी सिपर

तो पीछे एक ही बचा, जिसका नाम सुभटसिंह था ॥ ८० ॥ (बछत्रामती ने) कहा कि हे समय के रुस्तम राजा ! तुम मेरा वरण करते हो या हाथ में धनुष पकड़ते हो ? ॥ ८१ ॥ (यह सुनते ही सुभटसिंह) क्रोधित हो शेर के समान भयानक होकर कहने लगा कि हे स्त्री ! मैं इस तरह लड़ाई में पीठ नहीं दिखाऊँगा ॥ ८२ ॥ फिर उसने लौह-कवच पहन लिया और युद्ध मचा दिया । उस शेर मर्द ने मगरमच्छ की तरह का उपक्रम किया ॥ ८३ ॥ वह शेर की तरह चलता हुआ युद्ध में आ गया । धनुष से तीरों की बड़ी भीषण वर्षा कर दी ॥ ८४ ॥ उसने दाएँ-बाएँ बार किया फिर टेढ़ा सीधा मुकाबला किया । चीन देश के धनुष की आवाज आकाश तक गूँजी (अर्थात् सुभटसिंह के हाथ में चीन की कमान थी, जिसकी आवाज आकाश तक गूँजी) ॥ ८५ ॥ (बछत्रामती के) हाथ का बरछा जिस पर भी गिरा वह दो हो गया अथवा चार हिस्सों में भी बँट गया ॥ ८६ ॥ फिर पीछे की ओर से होकर दूसरे पर इस तरह झपट पड़ी, जैसे अजगर शेर पर टूट पड़ता है ॥ ८७ ॥ तीरों और गोलियों की ऐसी चोटें पड़ीं और मुर्दा लोगों के खून से धरती लाल रंग की हो गई ॥ ८८ ॥ दोनों तरफ से सारा दिन तीरों की बारिश हुई, परन्तु किसी की भी कामना पूरी न हो सकी ॥ ८९ ॥ लड़ाकू योद्धा उस युद्ध की थकान से दुखी हो गए और दोनों पक्षों के लोग उस उजाड़ मैदान में गिर पड़े ॥ ९० ॥ रूम के शहिनशाह ने अपने चेहरे पर ढाल रख ली

दाद रोइ । दिगर शाहि पैदा शुदह नेक खोइ ॥ ६१ ॥ न
 दर जंग आसूदह शुद यक जमाँ । बिअफताद हरदो चुनी
 कुशतगाँ ॥ ६२ ॥ दिगर रोज बरखासत हरदो बजंग ।
 बिआवेखत बा यक दिगर चूँ निहंग ॥ ६३ ॥ वजाँ
 हरदु तन कूजहगाने शुदह । कजाँ सीनह गाहीन अरवा
 शुदह ॥ ६४ ॥ ब रखश अंदर आमद चु मुशकी
 निहंग । बसे बंगसी बोज बंगो पिलंग ॥ ६५ ॥ कि
 अबलक सियाह अबलको बोज बोर । ब रखश अंदर
 आमद चु ताऊस मोर ॥ ६६ ॥ जिरह पारह (म० प्र० १४०३)
 शुद खोद व खुफता बजंग । जि बकतर जि बरगशतवाँ बा
 खुदंग ॥ ६७ ॥ कुना तीर बाराँ शवद कारजार । जि बकतर
 जि जिरहा बरारद शरार ॥ ६८ ॥ ब रखश अंदर आमद चु
 शेरे निहंग । जिमी गशतशुद हमचु पुशते पिलंग ॥ ६९ ॥
 चुना जयादह शुद आतशे तीर बार । कि अकल अज मगज
 रफत होश अज दिमार ॥ १०० ॥ चुना आवेखत हरदो हुना
 जाइ जंग । कि तेग अज मियाँ गशत तरकश खतंग ॥ १०१ ॥

और उसके स्थान पर अच्छे स्वभाव वाला दूसरा राजा हो गया अर्थात्
 सूर्य छिप गया और चाँद निकल आया ॥ ९१ ॥ लड़ाई में कोई भी
 खुश न हो सका और दोनों मुद्दों की तरह गिर पड़े ॥ ९२ ॥ दूसरे दिन
 दोनों ही युद्ध के लिए उठ खड़े हुए और मगरमच्छ की तरह एक-दूसरे
 से चिपक गए ॥ ९३ ॥ उन दोनों के शरीर झुक गए और सीने लाल
 हो गए अर्थात् लहलुहान हो गए ॥ ९४ ॥ जैसे तेंदुए और मगरमच्छ
 पानी में नाचते हैं, उसी तरह रणभूमि में घोड़े नाचने लगे ॥ ९५ ॥
 जो चित्तीदार घोड़ा है वह मोर की तरह नाच रहा है ॥ ९६ ॥ युद्ध
 में तीरों की मार से अनेकों प्रकार के जिरहबखतर (लौहव्राण) छोटे-छोटे
 टुकड़े बन गए ॥ ९७ ॥ युद्ध में तीरों की ऐसी बारिश हुई जिससे लौह-
 कवचों में से चिंगारियाँ निकल पड़ीं ॥ ९८ ॥ योद्धागण शेरों की तरह
 नाचने-कूदने लग गए । घोड़ों की टापों से धरती चीते की पीठ जैसी हो
 गई ॥ ९९ ॥ तीरों की बारिश के साथ ऐसी आग निकली जिससे होश
 और दिमाग ठीक न रह सके ॥ १०० ॥ वे दोनों ही युद्धभूमि में (एक-
 दूसरे से) उलझ गए । स्थान से तलवारें और तरकसों से निकलकर तीर
 चलने लगे और तरकस खाली हो गए ॥ १०१ ॥ सुबह से लेकर शाम

चुना जंग करदंद सुबह ताब शाम । बि अफताद मुरछत न
 खुरदंद तआम ॥ १०२ ॥ जि ख़ुद माँदह शुद हरदु दर जाइ
 जंग । चुशेरो घीआनो चु बाजा पिलंग ॥ १०३ ॥ चु हबशी
 बरुद दुजद दीनार जरद । जहाँ गशत चूँ गुंबजे
 दूदगरद ॥ १०४ ॥ सियम रोज चौगाँ बिबुरद आफताब ।
 जहाँ गशतचूँ रउशनश माहिताब ॥ १०५ ॥ बु बरखासत हरदो
 अजीं जाइ जंग । रवाँ करद हर सूइ तीरो तुफंग ॥ १०६ ॥
 चुना गरम शुद आतशे कारजार । कि फ़ीले दु दह हजार
 आमद ब कार ॥ १०७ ॥ ब कार आमदह असप हफ़त सद
 हजार । हमह ज्वान शाइसतहे नामदार ॥ १०८ ॥ जि सिंधी
 व अरबी व ऐराक राइ । बकार आमदह असप चूँ बादु
 पाइ ॥ १०९ ॥ बसे कुशतह सरहंग शाइसतह शेर । बे
 वकते तरदद बकारे दलेर ॥ ११० ॥ ब गुररीदन आमद
 दुअबरे सियाह । नमे खून माही लको तेगसाह ॥ १११ ॥
 बजंग अंदरूँ गउगहे गाजीयाँ । जिमीं तंग शुद अज सुमे
 ताजीयाँ ॥ ११२ ॥ सुमे बाद पायान फ़ौलाद नाल । जिमी

तक भीषण युद्ध किया । रोटी भी न खायी और बेहोश होकर गिर
 पड़े ॥ १०२ ॥ वे दोनों स्वयं ही थक गए, क्योंकि उन्होंने युद्धभूमि में दो
 डरावने शेरों, बाजों और दो चीताओं की तरह लड़ाई की ॥ १०३ ॥
 जब सोने की मुहर अर्थात् दिन के सूर्य को हबशी अर्थात् अँधेरा चुराकर
 ले गया तो संसार धुएँ और गर्द के ढेर की तरह हो गया ॥ १०४ ॥
 जब तीसरे दिन सूर्य बाजी मार ले गया अर्थात् निकला तो चन्द्रमा की
 तरह सारा जहान रोशन हो गया ॥ १०५ ॥ उस समय दोनों ओर
 के शूरवीर युद्ध में उठ खड़े हुए । सभी तरफ़ तीर और गोलियाँ
 चलना शुरू हो गयीं ॥ १०६ ॥ लड़ाई जब आग की तरह गर्म हो
 गई अर्थात् जोर पकड़ गई तो हजारों हाथी मारे गए ॥ १०७ ॥ सात
 सौ हजार घोड़े मारे गए और सभी सुन्दर जवान और नामी योद्धागण भी
 मारे गए ॥ १०८ ॥ सिंधु देश, अरब देश, इराक देश के और हवा से
 तेज़ चलनेवाले अर्थात् सादे घोड़े मारे गए ॥ १०९ ॥ बहुत से सुन्दर,
 शेरों जैसे सिपाही मारे गए जो वक्रत पड़ने पर युद्ध के काम में बड़े होसले
 वाले थे ॥ ११० ॥ दो गरजते हुए काले बादल आ गए । खून की
 बूँदें मछलियों तक और तलवारों की चमक चाँद तक पहुँच गई ॥ १११ ॥
 जंग में योद्धाओं का शोर-शराबा हो रहा है और घोड़ों की टापों से धरती

गशत पुशते पिलंगी मिसाल ॥ ११३ ॥ चरागो जहाने खुमह
बादह खुरद । सरे ताज दीगर बिरादर सपुरद ॥ ११४ ॥
बरोजे चहारम तपीद आफ़ताब । ब जिलवह दर आवेखत
जररीं तनाब ॥ ११५ ॥ दिगर रवश मरदाँन बसतंद कमर ।
यमानी कमर दासत बररो सिपर ॥ ११६ ॥ चु होश अंदर
आमद ब जोशीद जंग । ब रोस अंदर आमद चु कोशश
पिलंग ॥ ११७ ॥ चुअम रोज़ कुशतंद दहि हज़ार फ़ील ।
दु दहि हज़ार असपो चु दरयाइ नील ॥ ११८ ॥ बकार
आमदह पियादह सी सद हज़ार । जमाँ मरद शेरान (सू०ग्रं० १४०४)
अज़मूदह कार ॥ ११९ ॥ कुनद जर्रहे रथ चहारो हज़ार ।
बशेर अफ़क़नो जंग आमुख़तह कार ॥ १२० ॥ कि अज़ चार
तीर असप कुशतश चहार । दिगर तीर कुशतश सरे
बहिलदार ॥ १२१ ॥ सियम तीर ज़द हरदो अबरू शिकंज ।
कि मारे ब पेचीद जि सउदाइ गंज ॥ १२२ ॥ चहारम
बिज़द तीर ख़बरश नियाफ़त । कि भरमश ब बरखासत धरमश

दुखी हो रही है ॥ ११२ ॥ पवन-वेग से चलनेवाले घोड़ों की टापों पर
जो लोहे की नालें लगी हैं, उनकी मार से धरती चीते की पीठ जैसी
चितकबरी हो गई है ॥ ११३ ॥ जहान के चिराग़ (सूर्य ने) शराब का
घड़ा लिया (और बेहोश होकर सो गया) । उसने अपने सिर का ताज
अपने दूसरे भाई (चाँद) को सौंप दिया ॥ ११४ ॥ चौथे दिन सूर्य
तपना शुरू हुआ और सज-धजकर उसने अपनी लगामें खींच लीं अर्थात्
किरणें फैला दीं ॥ ११५ ॥ फिर शूरवीरों की तरह कमर कस
ली । उसने यमन देश की बनी कमान हाथ में पकड़ ली और
चेहरे पर ढाल की ओट कर ली ॥ ११६ ॥ जब होश आया तो
क्रोधित होकर चीते की तरह कोशिश कर युद्ध करने लगे ॥ ११७ ॥
चौथे दिन दस हज़ार हाथी मारे गए, बारह हज़ार घोड़े मारे गए
जो दरिया नील की तरह तेज़ चलनेवाले थे ॥ ११८ ॥ तीन सौ
हज़ार पैदल फ़ौज मारी गई जिसमें शेरों की तरह जवान और
आजमाए हुए थे ॥ ११९ ॥ चार हज़ार रथों को छोटे-छोटे टुकड़े कर
फेंके । वे वीर जो लड़ाई में शेरों को मार फेंकनेवाले थे वे योद्धा रथों
में ही मार डाले गए ॥ १२० ॥ चार तीरों के साथ चार घोड़े मार गिराए
और दूसरा वीर सारथी के सिर में मारा ॥ १२१ ॥ तीसरा तीर दोनों
भृकुटियों के बीच मारा जिसके कारण वह ऐसे तड़फड़ाया जैसे खजाने

न ताफत ॥ १२३ ॥ बिजद चूँ चुअम कैबरे नाजनी ।
 बखुरदंद शहिरग बिअफतद जिमी ॥ १२४ ॥ बिदानिसत कि
 ई मरद पय मुरदह गशत । बिअफताद बूम हम चुनी शेर
 मसत ॥ १२५ ॥ कि अज रथ बियामद बरामद जिमी ।
 खरामीदह शुद पै करे नाजनी ॥ १२६ ॥ बयक दसत बरदाशत
 यक प्यालह आव । बनिजदे शहि आमद चु पररा उकाब ॥ १२७ ॥
 बिगोयद कि ए शाहि आज्ञाद मरद । चिरा खुफतह हसती
 तु दर खून गरद ॥ १२८ ॥ हुमा जानजानी तुअम नौजवां ।
 बदीदन तुराँ आमदम ईजमाँ ॥ १२९ ॥ बिगोयद कि ए बानूए
 नेक बखत । चिरा तो बियामद दरौं जाइ सखत ॥ १३० ॥
 अगर मुरदह बाशी दियारेम लास । व गर जिंदह हसती
 व यजदाँ सुपास ॥ १३१ ॥ अजाँ गुफतनीहाँ खुश आमद
 सुखन । बिगोयद कि ए नाजनी सीस तन ॥ १३२ ॥
 हरांकस कि खाही बिगो मन दिहम । कि ए शेर दिल मन
 गुलामे तुअम ॥ १३३ ॥ खुदावंद बासी तु ए कार सखत ।

की चिंता में साँप तड़पता है ॥ १२२ ॥ (बछत्रामती ने) चौथा तीर
 मारा तो उसे (सुभटसिंह को) होश ही न आई । उसका भ्रम दूर हो
 गया और अपना धर्म याद ही न रहा ॥ १२३ ॥ कोमल शरीरवाली
 बछत्रामती ने जब चौथा तीर मारा तो वह (सुभटसिंह की) शाह रंग में
 लगा जिससे वह धरती पर गिर पड़ा ॥ १२४ ॥ वह समझ गई कि
 यह पुष्ट अघमरा हो गया है और मतवाले शेर की तरह धरती पर गिर
 पड़ा है ॥ १२५ ॥ वह रथ से बाहर निकली और धरती पर आई ।
 वह कोमल शरीरवाली पुतली चल पड़ी ॥ १२६ ॥ उसने पानी का
 प्याला एक हाथ में उठाया और उकाब पक्षी की तरह उड़कर (बहुत
 फुर्ती से) सुभटसिंह के पास आ गई ॥ १२७ ॥ (आकर उसने कहा—)
 हे शूरवीर राजन् ! तुम खून और मिट्टी में क्यों सोए पड़े हो ॥ १२८ ॥
 हे नौजवान प्रिय, मैं वही तुम्हारी दासी हूँ । तुम्हारा दर्शन करने के
 लिए इस समय यहाँ आई हूँ ॥ १२९ ॥ हे भाग्यशाली स्त्री, तुम इस
 भयानक स्थान पर क्यों आई हो ? ॥ १३० ॥ (बछत्रामती ने कहा—)
 अगर मर गए हो तो लाश ले आऊँ और अगर जिंदा हो तो खुदा का
 शुक्रिया अदा करूँ ॥ १३१ ॥ उसके मुँह से कही बातें (सुभटसिंह को)
 अच्छी लगी । उसने कहा कि चाँदी के बदन वाली कोमलांगी ! ॥ १३२ ॥
 जो तुम चाहती हो, मुझे बताओ, मैं तुम्हें दूँ । हे शेर-दिल राजकुमारी !

कि भारा बयक बार कुन नेक बखत ॥ १३४ ॥ बिजद पुशत
पाओ कुशादश ब चशम । हमह रवश शाहान पेशीन
रशम ॥ १३५ ॥ बिअफताद बर रथ बिआवुरद जाँ ।
बिजद नओबतश शाहि शाहे जमाँ ॥ १३६ ॥ बहोश अंदर
आमद दु चशमश कुशाद । बिगोयद किरा जाइ मारा
निहाद ॥ १३७ ॥ बिगोयद तुरा जफ़र जंग याफ़तम । ब
कारे शुमा कत खुदा याफ़तम ॥ १३८ ॥ पशेमा शवद सुखन
गुफ़तन फ़ज़ूल । हराँकस तु गोई कि बर मन कबूल ॥ १३९ ॥
बिदिह साकीया जाम फ़ेरोजह फ़ाम । कि मारा बकार
असत रोज़े तमाम ॥ १४० ॥ तु मारा बिदिह ता
शवम ताजह दिल । कि गौहर बिआरेम आलूदह
गिल ॥ १४१ ॥ ४ ॥ (सू० प्र० १४०५)

॥ हिकायत चौथी समाप्त ॥

मैं तुम्हारा गुलाम हो गया हूँ ॥ १३३ ॥ (बछत्रामती ने कहा—) हे कठोर
कार्य करनेवाले शूरवीर ! तुम मेरे स्वामी बन जाओ और मुझे भी एक बार
भाग्यशालिनी अर्थात् सुहागिन हो जाने दो ॥ १३४ ॥ उसने दोनों आँखें
खोलੀं और पश्चात्ताप से धरती पर पाँव मारा (कि मैंने इसे इच्छा पूरी
करने का वचन ही क्यों दिया), परन्तु फिर उसने वही तरीका अपनाया
जो पहले राजा-महाराजागण अपनाया करते थे ॥ १३५ ॥ (वह) रथ
पर लेट गया और वह उसे घर ले आई । जगत के सम्राटों के सम्राट्
(बछत्रामती के पिता) ने उसी समय खुशी का नगाड़ा बजवाया ॥ १३६ ॥
(जिस समय सुभटसिंह) होश में आया तो उसने दोनों आँखें खोलੀं और
कहा कि मुझे किसके घर में ले आए हो ? ॥ १३७ ॥ (बछत्रामती ने
कहा—) तुम्हें मैंने लड़ाई में जीता है और तुम्हें पति के तौर पर प्राप्त
किया है ॥ १३८ ॥ अपने व्यर्थ कहे वचन को याद कर राजा ने मन में
शर्मिदा होते हुए कहा कि अब जो तुम कहो मुझे मंजूर है ॥ १३९ ॥
हे साकी ! मुझे हरी रंगत वाला प्याला दो जिसकी मुझे सब दिनों
जरूरत है ॥ १४० ॥ तुम मुझे दो, ताकि मेरा मन खुश हो । फिर
मैं कीचड़ में सना मोती ले आऊँगा अर्थात् अच्छे गुणों को अपना
लूँगा ॥ १४१ ॥ ४ ॥

॥ दास्तान चौथी समाप्त ॥

हिकायत पंजवीं ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

तुई रहिनुमाओ तुई दिल कुशाइ । तुई दसतगीर अंदर
 हर दो सराइ ॥ १ ॥ तुई राज रोजी दिहो दसतगीर ।
 करीमे ख़ता बख़्श दानश पज़ीर ॥ २ ॥ हिकायत शुनीदम
 यके काज़ीअश । कि बरतर न दीदम कज़ो दीगरश ॥ ३ ॥
 यके ख़ानह ओ बानूए नउजवाँ । कि कुरबाँ शवद हरकसे
 नाज़दाँ ॥ ४ ॥ कि शोसन सरे रा फ़रो मेज़दह । गुले
 लालह रा दाग बर दिल शुदह ॥ ५ ॥ कज़ाँ सूरते माहि रा
 बीम शुद । रशक शोख़तह अज़ मियाँ नीम शुद ॥ ६ ॥
 बकार अज़ सूए ख़ानह बेख़ूँ रवद । ब दोशे जुलफ़ शोर सुंबल
 शवद ॥ ७ ॥ गर आबे ब दरीया बशोयद रुख़श । हमह
 ख़ार माही शवद गुल रुख़श ॥ ८ ॥ बख़म ओ फ़ितादह हुमा

दास्तान पाँचवीं

तुम ही मार्गदर्शक, चित्त को प्रसन्न करनेवाले और दोनों लोकों
 में हाथ पकड़नेवाले हो अर्थात् सम्पूर्ण संसार का आश्रय हो ॥ १ ॥
 तुम ही धन और रोज़ी देनेवाले और सहारा देनेवाले हो । तुम ही
 कृपालु, भूलों को क्षमा करनेवाले, अंतर्दामी हो ॥ २ ॥ मैंने एक कहानी
 सुनी है कि एक क़ाज़ी था । उससे अच्छा अन्य कोई नहीं था ॥ ३ ॥
 उसके घर में एक नवयौवना स्त्री थी । नखरे की पहचान वाला हर
 व्यक्ति उस पर कुर्बान हो जाता था अर्थात् उसके हाव-भाव पर सभी मोहित
 थे ॥ ४ ॥ (उसके रूप को देखकर) सूसन (एक फूल का नाम) भी
 सिर फेर लेता था और लाले के फूल के दिल में भी दाग पड़ जाता
 है ॥ ५ ॥ चन्द्रमा भी उसकी शकल को देखकर डरता था और ईर्ष्या
 की आग में जलकर आधा हो गया था ॥ ६ ॥ जब वह स्त्री काम के
 लिए घर से बाहर निकलती थी, तब दोनों कंधों पर लटकती जुल्फ़ों
 को देखकर इशक़ भी चीत्कार कर उठता था ॥ ७ ॥ यदि वह दरिया
 के पानी में मुँह धोती थी तो सारी मछलियों के काँटे भी फूल बन जाते
 थे ॥ ८ ॥ उसके मुँह की परछाई घड़े के पानी पर पड़ गई जिससे घड़े
 का पानी नशे वाला हो गया और उसका नाम नरगिस शराब प्रसिद्ध

सायह आब । जि मसती शुदह नाम नरगश शराब ॥ ६ ॥
 बदीदश यके राजहे नउजवाँ ! कि हुसनल जमाल असतु जाहर
 जहाँ ॥ १० ॥ बगुफता कि ए राजहे नेक बखत । तु मारा
 बिदिह जाइ नजदीक तखत ॥ ११ ॥ नखुशती सरे काजी
 आवर तुरासत । वजाँ पस कि ई खानह मा अज
 तुरासतु ॥ १२ ॥ शुनीद ई सुखन रा दिल अंदर निहाद ।
 न राजे दिगर पेश अउरत कुशाद ॥ १३ ॥ ब बकते शौहर
 रा चु खुश खुफतह दीद । बिजद तेग खुद दसत सर ओ
 बुरीद ॥ १४ ॥ बुरीदह सर ओरा रवाँ जाइ गशत । दराँ
 जा सबलसिघ कि बिनशसतह असत ॥ १५ ॥ तु गुफती मरा
 हम चुनी करदहअम । बपेशे तु ई सर मन आवुरदहअम ॥ १६ ॥
 अगर सर तु खाही सर तुमे दिहम । ब जानो दिले बर तु
 आशक शुदम ॥ १७ ॥ कि इम शब कुन आँ अहिद तो बसतई ।
 ब गमजहि चशम जान मन कुशतई ॥ १८ ॥ चु दीदश सरे
 राजहे नउजवाँ । ब तरसीद गुफता कि ए बद निशाँ ॥ १९ ॥
 चुना बद तु करदी खुदावंद खेश । कि भारा चियारी अजी

हो गया ॥ ९ ॥ उस लड़की ने एक नौजवान राजा को देखा, जो
 बहुत ही सुन्दर स्वरूपवान और जगत्प्रसिद्ध था ॥ १० ॥ (उसने)
 कहा— “हे भाग्यशाली राजा ! तुम मुझे तख्त पर पास बैठने के लिए स्थान
 दो अर्थात् मुझे रानी बना लो” ॥ ११ ॥ (राजा ने कहा—) “पहले तुम
 अपने पति काजी का सिर काटकर ले आओ, फिर मेरा यह घर तुम्हारा
 है” ॥ १२ ॥ यह बात सुनकर स्त्री ने मन बना लिया और किसी अन्य
 के सामने यह रहस्य प्रकट न किया ॥ १३ ॥ जब उसने पति को वक्त
 पर सुख की नींद सोया हुआ देखा तो अपने हाथों से तलवार चलाई और
 उसका सिर काट लिया ॥ १४ ॥ सिर काटकर चल पड़ी और ठिकाने
 पर आ पहुँची । जहाँ उसका प्रियतम सबलसिंह बैठा हुआ था ॥ १५ ॥
 (जाकर कहने लगी) “प्रिय ! जैसा तुमने मुझसे कहा था, मैंने वैसा ही
 किया है । यह सिर तुम्हारे सामने है ॥ १६ ॥ अगर तुम मेरा सिर भी
 चाहो तो मैं काटकर दे दूँ, क्योंकि मन से मैं तुम पर आशिक हो गई
 हूँ ॥ १७ ॥ (पुनः कहने लगी—) जो वादा तुमने किया है, इस रात
 को उसे पूरा करो । तुमने आँखों के कटाक्ष से मेरे प्राणों को बेध दिया
 है” ॥ १८ ॥ जब उस नौजवान राजा ने काजी के सिर की तरफ देखा
 तो डर गया और कहने लगा कि हे कुलक्षिणी ! ॥ १९ ॥ जब तुमने

कार बेश ॥ २० ॥ जि तो दोसती मन ब बाज आमदम ।
 जि करदह (म०प्र०१४०६) तु मन दर नियाज आमदम ॥ २१ ॥
 चुनी बद तु करदी खुदावंद कार । मरा करदह बाशी चुनी
 रोजगार ॥ २२ ॥ बिअंदाखत सररा दराँ जा जि दसत ।
 बरे सीनह ओ सर बिजद हर दु दसत ॥ २३ ॥ मरा पुशत
 दादी तुरा हक दिहद । वजाँ रोज मउलाइ काजी
 शबद ॥ २४ ॥ बिअंदाखत सर खानह आमद बुबाज ।
 बआँ लाश काजी बखुशपीद दराज ॥ २५ ॥ बिअंदाखत बर
 सर जि खुद दसत खाक । बिगुफता कि खेजेद यारान
 पाक ॥ २६ ॥ कि बदकार करद ई कसे शोर बखत । कि
 काजी ब जाँ कुशत यक जखम सखत ॥ २७ ॥ ब हर जा कि
 याबेद खूनश निशाँ । हुमा राह गीरंद हमह सरदुमाँ ॥ २८ ॥
 ब आँ जा जहाँ खलक इसतादह करद । बजाए कि सर काजी
 अफतादह करद ॥ २९ ॥ बिदानिशत हमह अउरतो सरदुमाँ ।
 कि ई रा ब कुशत असत राजह हुमाँ ॥ ३० ॥ गिरफतंद ओरा

अपने पति का सिर काटने में देरी नहीं लगाई तो यार के लिए तुमसे
 कौन-सी भली आशा की जा सकती है ॥ २० ॥ तुम्हारी दोस्ती से मैं बाज
 आया । तेरे इस कारनामे को देखकर मैं चाहता हूँ कि तू मुझे पर कृपा
 कर (और अपना यह प्यार किसी अन्य को जता) ॥ २१ ॥ जैसा
 सलूक तुम अपने खाविद के साथ अभी करके आई हो और अभी मुझे भी
 अपना पति बनाना चाहती हो, किसी दिन मेरे साथ भी यही बर्ताव
 होगा ॥ २२ ॥ उसने हाथ में सिर वहीं गिरा दिया और अपनी
 छाती और सिर को हाथों से पीटना शुरू कर दिया ॥ २३ ॥ (फिर कहने
 लगी—) तूने मुझे पीठ दी है, खुदा तुम्हें उस दिन पीठ देगा जिस दिन न्याय
 (क्रियामत का दिन) होगा ॥ २४ ॥ सिर को उसने वहीं फेंक दिया
 और खुद वापस घर आ गई । वहाँ आकर वह काजी की लाश के पास
 लेट गई ॥ २५ ॥ अपने हाथ से उसने सिर में मिट्टी डाल दी और
 (चिल्लाती हुई) कहा, हे पवित्र सज्जनो ! उठो ॥ २६ ॥ किसी
 बुरे व्यक्ति ने यह क्या बुरा काम किया है कि एक ही चोट से काजी को
 जान से मार डाला है ॥ २७ ॥ जिस तरफ खून के निशान पड़े थे, सभी
 आदमियों ने उसी रास्ते को पकड़ लिया ॥ २८ ॥ सारे लोगों को ले
 जाकर (उसने) वहाँ खड़ा कर दिया जहाँ उसने काजी का सिर फेंका
 था ॥ २९ ॥ सब औरतों, आदमियों ने जान लिया कि राजा ने ही उसे

बुबसतंद सखत । कि जाए जहाँगीर बिनशसतह तखत ॥३१॥
 बि गुफ्तंद कि ई रा हवालह कुनद । ब दिल हरचि दारद
 सजायश दिहद ॥ ३२ ॥ बि फरमूद जल्लादरा शोर बखत ।
 कि ई सर जुदा कुन ब यक जखम सखत ॥ ३३ ॥ चु शमशेर
 रा दीद आँ नउजवाँ । ब लरजह दरामद चु सरवे गिराँ ॥३४॥
 बगुफ़ता कि मन कार बद करदहअम । ब कारे शुमाँ तउर
 खुद करदहअम ॥ ३५ ॥ नमूसूदह इशारत बि चशमे बिआँ ।
 कि ए बानूए सरवरे बानूआँ ॥ ३६ ॥ बहुकमे शुमा मन
 खता करदहअम । कि कार ई बबे मसलहत करदहअम ॥३७॥
 खलासम बिदिह अहद करदम कबूल । कि अहिदे खुदा असत
 कसमे कसूल ॥ ३८ ॥ गुनहबखश तो मन खता करदहअम ।
 कि ए जिगर जाँ मन गुलामे तुअम ॥ ३९ ॥ ब गुफ़ता गर ई
 राजह पाँ सद कुशम । न काजी मरा जिदह दसत
 आमदम ॥ ४० ॥ कि ओ कुशतह गशतह चरा ई कुशम ।
 कि खूने अजी बर सरे खुद कुनम ॥ ४१ ॥ चि खुशतर कि

क़त्ल किया है ॥ ३० ॥ लोगों ने उसे पकड़ लिया और कसकर बांध
 लिया । जहाँ जहाँगीर तख्त पर बैठा था उसे वहाँ ले गए ॥ ३१ ॥
 (जहाँगीर ने) कहा कि इसको मैं काजी की औरत के हवाले करता हूँ ।
 वही दिल में जो चाहती होगी इसे सजा देगी ॥ ३२ ॥ (उस औरत ने)
 जल्लाद को आदेश दिया कि इस बदकिस्मत का सिर तलवार के एक ही
 वार से धड़ से अलग कर दो ॥ ३३ ॥ जब उस नौजवान ने तलवार
 को देखा तो हवा में पेड़ की तरह काँप उठा ॥ ३४ ॥ उसने कहा
 कि मैंने बहुत बुरा किया है जो तुम्हारे साथ किए वादे को खुद नहीं
 निभाया है ॥ ३५ ॥ (फिर) एक आँख से उसे इशारा किया (और
 कहा) कि हे स्त्रियों की सिरताज ! ॥ ३६ ॥ तेरे हुक्म से जो मैंने
 इन्कार किया है, वह गुनाह किया है । यह काम मैंने सोचे-विचारे
 बिना किया है ॥ ३७ ॥ मुझे छोड़ दो, मैं तुम्हारी बात स्वीकार करता
 हूँ । जो मैंने कहा है, इसमें खुदा और रसूल गवाह है ॥ ३८ ॥ तू
 मेरा गुनाह माफ़ कर, मैंने भूल की है । हे मेरी प्राण-प्रिय ! मैं तेरा
 गुलाम हूँ ॥ ३९ ॥ वह कहने लगी कि यदि इस तरह के पाँच सौ राजा
 भी मैं मार दूँ, तब भी जीवित काजी मेरे हाथ नहीं लग सकता ॥ ४० ॥
 जब वह मर ही गया है तो मैं भला इसे क्यों मारूँ ? क्या इसे मारने का
 (भी) पाप अपने सिर पर स्वयं ले लूँ ॥ ४१ ॥ कितना अच्छा हो कि

ई रा खलासी दिहम । व मन हजरते काबह अल्लह
 रबम ॥ ४२ ॥ बगुफ्त ई सुखन राव करदश
 खलास । (सू० प्र० १४०७) व खानह खुद आमद चमै करद
 खास ॥ ४३ ॥ बुबसतंद बारो तयारी कुनद । कि एजद
 मरा कामगारी दिहद ॥ ४४ ॥ दरेग अज कबायल जुदा मे
 शवम । अगर जिदह बाशम बबाज आमदम ॥ ४५ ॥
 मताए नक्रद जिनस रा बार बसत । रवानह सूप काबह
 तअल्लह शुद असत ॥ ४६ ॥ चु बेरूँ बरामद दु से मंजलश ।
 बयाद आमदह खानह जा दोस्ततश ॥ ४७ ॥ बुबाज
 आसदह नीम शब खानअ हाँ । चि निआमत अजीमो चि
 दउलत गिराँ ॥ ४८ ॥ बिदानिसत आलम कुजाँ जाइ गशत ।
 चि दानद कि कस हाल बर सर गुजशत ॥ ४९ ॥ बिदिह
 साकीया प्यालह फ़ेरोज फ़ाम । कि सारा बकार असत दर
 वक्रत तुआम ॥ ५० ॥ बमन दिह कि खुशतर दिमागे कुनम ।
 कि रउशन तबै चूँ चरागे कुनम ॥ ५१ ॥ ५ ॥

॥ हिकायत पंजवीं समाप्तम ॥

इसे छुटकारा दे दूँ और मैं खुद अल्लाह के घर हजरत काबा चली
 जाऊँ ॥ ४२ ॥ यह कहा और उसे छोड़ दिया । फिर अपने घर आ
 गई और खास-खास आदमियों और सामान को इकट्ठा किया ॥ ४३ ॥
 सामान बांध लिया और चलने की तैयारी कर ली । वह कहने लगी,
 खुदा मेरी कामना पूरी करे ॥ ४४ ॥ (फिर कहने लगी, मुझे इस बात
 का) अफ़सोस है कि मैं अपने भाईचारे से अलग हो रही हूँ । लेकिन
 अगर मैं ज़िंदा रही तो (जल्दी ही) वापस आ जाऊँगी (और अगर मर
 गई तो खुदा हाफ़िज़) ॥ ४५ ॥ ज़ेवर, रुपए, मुहरें, सोना, चाँदी तथा
 अन्य अच्छे पदार्थों की गठरियाँ बांध लीं और खुदा के घर मक्का की
 तरफ़ चल पड़ी ॥ ४६ ॥ जब वह शहर से बाहर दो-तीन पड़ाव तक
 आ गई तो उसे उस यार के घर की याद आ गई ॥ ४७ ॥ आधी रात के
 वक़्त वह उस दोस्त के घर वापस आ गई । बड़ी भेंटें, धन, माल और
 पदार्थ साथ ले आई ॥ ४८ ॥ संसार तो जानता था कि वह किस
 जगह गई है । कोई क्या जानता था कि वक़्त कैसा बीत रहा है ॥ ४९ ॥
 हे साक़ी ! मुझे हरे रंग का प्याला दे जो मुझे खाने के वक़्त चाहिए ॥ ५० ॥
 मुझे दो ताकि मैं अच्छा विचार कर सकूँ, जो चित्त को दीपक की तरह
 प्रकाशित कर दे ॥ ५१ ॥ ५ ॥

॥ दास्तान पाँचवीं समाप्त ॥

हिकायत छेवीं ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

ख़ुदावंद बख़्शिदह दिल कुशाइ । रज़ा बख़्श रोज़ी दिहो
रहिनुमाइ ॥ १ ॥ न फ़उजो न फ़रशो न फ़ररो न फ़ूर ।
ख़ुदावंद बख़्शिदह जाहर ज़हर ॥ २ ॥ हिकायत सुनीदेम
दुखतर वज़ीर । कि हुसनल ज़माल असत रउशन ज़मीर ॥ ३ ॥
वज़ाँ कैसरो शाहि रूमी कुलाह । दरख़्शिदह शमशो चु
रख़्शिदह माह ॥ ४ ॥ यके रोज़ रउशन बरामद शिकार ।
हमह यूज़अज़ बाज़ व बहरी हज़ार ॥ ५ ॥ ब पहिन अंदर
आमद बनख़ज़ीर गाह । बिज़द गोर आहू बसे
शेरशाह ॥ ६ ॥ दिगर शाह मगरब दरआमद दलेर । चु
रख़्शिदह माहो चु गुररिदह शेर ॥ ७ ॥ दु शाहे दरामद यके
जाइ सख़त । किरा तेग़ यारी दिहद नेक बख़त ॥ ८ ॥
किरा रोज़ इकबाल यारी दिहद । कि यज़दाँ किरा

दास्तान छठी

ख़ुदा चित्त को प्रसन्न करने की कृपा करता है । रज़ा में चलाता
है, रोज़ी देता है और सभी का पथ-प्रदर्शक है ॥ १ ॥ न उसकी फ़ोज
है, न फ़र्श है, न पदार्थों को इकट्ठा करके रखनेवाले भंडार हैं और न ही
उसके नौकर-चाकर हैं, फिर भी वह कृपालु प्रभु सर्वव्यापक है ॥ २ ॥
हमने एक वज़ीर की लड़की की कहानी सुनी है, जो बहुत ही खूबसूरत
और बुद्धिमती थी ॥ ३ ॥ रूमी टोपी वाला उसका राजा चक्रवर्ती था;
जो सूरज के समान चमकते हुए चेहरे वाला और चन्द्रमा की तरह शान्त
स्वभाव वाला है ॥ ४ ॥ एक दिन रोशनी होते ही वह शिकार के लिए
आया । बाज़, बहरी आदि सभी शिकारी जानवर उसके साथ थे ॥ ५ ॥
वह उजाड़ शिकारगाह में आ गया । राजा ने नीलगाय, हिरन और
बहुत से शेर भी मार लिये ॥ ६ ॥ पश्चिम का एक अन्य राजा भी
उस शिकारगाह में आ गया जो चन्द्रमा की तरह प्रकाश देनेवाला और
शेर की तरह गरजनेवाला था ॥ ७ ॥ इस कठिन स्थान पर दोनों राजा
आ गए, जो अच्छे भाग्यवाला होगा तलवार उसी का साथ देगी ॥ ८ ॥
तेज प्रताप से युक्त दिन किसे देगा और देखो परमात्मा लड़ाई में जीत

कामगारी दिहद ॥ ९ ॥ बजुंबश दरामद दु शाहे दलेर ।
 कि बर आहूए एक बरामद दु शेर ॥ १० ॥ बगुररीदन आमद
 दु अवरे सियाह । सनाने बियंदाखत नेजह चु काह ॥ ११ ॥
 चुना तीर बारान पररा शुदह । जिमी आसमा पर आँ
 जिकरश शुदह ॥ १२ ॥ (मू० प्र० १४०८) चका चाक बरखासत
 नेके सिनाँ । यके रुसत खेज अज बरामद जहाँ ॥ १३ ॥ चु सूर
 सराफ़ील दम मेजदह । कि रोजे कियामत बहम मेजदह ॥ १४ ॥
 गुरेजश करामद ब अरबी सिपाह । ब गालब दरामद हुमाँ
 गरब शाह ॥ १५ ॥ कि तनहा बिमाँद असत शाहे अरब ।
 ब वक्रते चु पेशीन शमश चूँ गरब ॥ १६ ॥ चु ताबश नुमानद
 शवद दसतगीर । चु दुजबे शवद वकत शब रा असीर ॥ १७ ॥
 बु बसतंद बुरदंद शहि निजद शाह । चु भाह अफ़कनो हम
 चु बुरदंद भाह ॥ १८ ॥ ब खानह खबर आँमदह शाहि
 बसत । हमह कार दुजदी व मरदी गुजशत ॥ १९ ॥
 निशसतंद ब मजलस जि दानाइ दिल । सुखन राँद पिनहाँ

किसे देगा ॥ ९ ॥ दोनों ही बलवान राजा गुस्से में आ गए हैं । ऐसा
 लग रहा था मानों दो शेर एक ही हिरन पर टूट पड़े हों ॥ १० ॥
 अथवा दो काले बादल गरजते हुए आ गए हों । उन्होंने घास की तरह
 बरछों के वार एक-दूसरे पर फेंके ॥ ११ ॥ उड़नेवाले तीरों की ऐसी
 बारिश हुई कि धरती और आकाश गिद्धों से भर गया ॥ १२ ॥ बरछों
 की नोकें भिड़ने से खचाखच की आवाज़ उठ रही है और ऐसा लग रहा
 है मानों संसार में प्रलय हो रही हो ॥ १३ ॥ इश्राफ़ील फ़िरिश्ता,
 जो कियामत के दिन तुरही बजाता है, तुरही के माध्यम से ललकार रहा
 है ॥ १४ ॥ अरब फौज़ में भगदड़ मच गई । उसका राजा हार गया
 और पश्चिम का जीत गया है ॥ १५ ॥ अरब का राजा अकेला रह
 गया । अब संध्या का समय हुआ और सूर्य अस्त हो गया ॥ १६ ॥
 जब उसमें ताब न रही तो वह क़ैदी हो गया । रात को भाग निकलने
 का भी मौक़ा जब न मिला तो वह क़ैदी हो गया ॥ १७ ॥ अरब के
 राजा को पश्चिमी सेना ने बाँध लिया और अपने राजा के पास उसे
 पकड़कर ऐसे ले गए जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है ॥ १८ ॥ घर में यह
 खबर आ पहुँची कि राजा शत्रु के हाथों पकड़ा गया है । (उसे छुड़ाने
 के लिए) चोरी और बहादुरी के सभी काम किए जा चुके हैं ॥ १९ ॥
 पढ़े-लिखे विद्वान् सभा के रूप में एकत्र हो गए । सभी लज्जित व्यक्तियों

बजाँ शहि खिजल ॥ २० ॥ चु बिसनीद ई खबर दुखतर
 बजीर । ब बसतंद शमशेर जुसतंद तीर ॥ २१ ॥ ब पोशीद
 जर बफत रूमी कबाइ । बजों बर निशसतो बिआमद
 बजाइ ॥ २२ ॥ रवाँ शुद सूए शाहि मगरब चु बाद ।
 कमाने कियानी ब तरकश निहाद ॥ २३ ॥ बपेशे शहे मगरब
 आमद दलेर । चु गुररीदह बबरो चु दररिदह शेर ॥ २४ ॥
 हुआ करद कि ए शाहि आज्ञाद बखत । सजावार देहीमु
 सायान तखत ॥ २५ ॥ मरा काहीया आमद अज बहरकाह ।
 दो से सद सवारो यक अज शकल शाहि ॥ २६ ॥ कि बिहतर
 हुमानसत आँ रा बिदिह । वगर नह खुदश मउत बर सर
 बिनिह ॥ २७ ॥ शुनीदे जि मन शाहि गर ई सुखन ।
 हुमाना तुरा बेख बरकंद बुन ॥ २८ ॥ शुनीद ई सुखन शाहि
 फौलाद तन । ब लरजीद बर खुद चु बरगे समन ॥ २९ ॥
 चुना जंग करदंद ई काहीयाँ । न दानम मगर शाहि बाशद

ने राजा की बात छोड़ी ॥ २० ॥ जब यह बात बजीर की लड़की ने
 सुनी तो उसने तलवार बाँधा और ढूँढ़कर तीर तरकस में भर लिये ॥ २१ ॥
 फिर उसने रूम देश जैसी जरी वाली पोशाक पहन ली और घोड़े की
 काठी पर बैठकर युद्ध वाले स्थान पर आ गई ॥ २२ ॥ वह पश्चिम
 देश के राजा की ओर हवा की तरह चल पड़ी । उसने कंधे पर कियानी
 खानदान वाली कमान, तीरों से भरा तरकस रखा हुआ था ॥ २३ ॥
 वह पश्चिम देश के राजा के सामने वैसे ही शूरवीरतापूर्वक आ गई जैसे
 गरजनेवाला बादल और काट खानेवाला शेर हो ॥ २४ ॥ पहले उसने
 सलामी की और फिर कहा, हे उत्तम भाग्यशाली राजा ! तुम छत्र-चंवर
 की शोभा वाले हो और सिंहासन पर बैठने के लायक हो ॥ २५ ॥ हे
 राजन् ! मेरे घसियारे घास लेने के लिए जंगल में आये थे । वे सभी
 दो-तीन सौ घोड़ों पर सवार हैं और उनमें से एक की शकल राजा के
 समान है ॥ २६ ॥ अच्छा हो अगर आप मेरे घास काटनेवालों को
 (जिन्हें आपने कैद किया है) वापस कर दें अन्यथा अपनी मौत को सिर
 पर खड़ी देख लो ॥ २७ ॥ अगर यह बात राजा को पता लग गई तो
 वह हकीकत में तुम्हारी जड़ उखाड़ फेंकेगा ॥ २८ ॥ फौलादी शरीर
 वाले राजा ने जब यह बात सुनी तो अपनी जगह पर ही चमेली की पत्ती
 की तरह कांपने लग गया ॥ २९ ॥ (राजा) मन में सोचने लगा जब
 इन घसियारों ने ऐसी लड़ाई की है तो मैं समझ नहीं सकता कि इनका

जवाँ ॥ ३० ॥ न दानम कसे शाहि हसतश जवाँ । कि
 मारा बिगीरद जि मायंदराँ ॥ ३१ ॥ जि पेशीनहे शद वजीराँ
 बुखाँद । सुखन हाइ पोशीदह बा ओ बिराँद ॥ ३२ ॥ तु
 दीदी चुना काहीया जंग करद । कि अज मुलक यजदाँ
 बरावुरद गरद ॥ ३३ ॥ मुबादा कुनद ताखत बर मुलक
 अखत । दिहम काहीया रा अजाँ नेक बखत ॥ ३४ ॥ हुमाँ
 शाहि महिबूशीया पेश खाँद । हवालह नमूदश कि ओरा
 निशाँद ॥ ३५ ॥ तु आज्ञाद गशती अजी सहिल चीज ।
 बिगीरए (मू० प्र० १४०६) बिरादर तु अज जाँ अजीज ॥ ३६ ॥
 जने पेच दसतार रा ताब दाद । दिगर दसत बर मुशत तेगश
 निहाद ॥ ३७ ॥ बिजद ताजीयानह ब हर चार चार ।
 बगुफता कि ए बे खबर बे मुहार ॥ ३८ ॥ कि आमद दरिं
 जा वजा काह नेसत । कि एजद गवाह असत यजदाँ
 यकेसत ॥ ३९ ॥ दरोगे मरा बर गफूरे गुआहसत । बिगोयद

राजा कितना बलवान होगा ॥ ३० ॥ अगर इनका राजा इतना बलवान
 योद्धा है तो हो सकता है वह मुझे मेरे देश (मायंदर) से भी पकड़
 लाये ॥ ३१ ॥ राजा ने उसी वज्रत अपने वजीरों को सामने बुला लिया
 और भेद-भरी बातें उन्हें बताते हुए बात चला दी ॥ ३२ ॥ आप सबने
 देखा है कि इन घसियारों ने कैसी लड़ाई की है और इस संसार को खाक
 में मिला दिया है ॥ ३३ ॥ खुदा न करे अगर राजा चढ़ाई कर दे तो
 मुल्क पर मुसीबत आ जाएगी । (बेहतर है) मैं उस भाग्यशाली को
 उसके घसियारे वापस कर दूँ ॥ ३४ ॥ राजा ने बाँधे हुए कंदियों को
 पास बुला लिया और फिर उन्हें उनके हवाले कर दिया और उसे पास
 बैठकर कहा ॥ ३५ ॥ तुमने आसानी से काम निपटा लिया है । लो
 उन्हें सँभालो । हे भाई ! तुम मुझे जान से भी प्यारे हो ॥ ३६ ॥
 उस स्त्री (वजीर की पुत्री) ने एक हाथ पगड़ी के पेंच को कसकर बाँध
 लिया और दूसरा हाथ उसने तलवार की मूठ पर रख लिया ॥ ३७ ॥
 फिर उसने हर एक को चार-चार कोड़े मारे और कहा कि हे ठीक रास्ते
 पर न चलनेवालो ! तुम लोगों को किसी बात की खबर ही नहीं है ॥ ३८ ॥
 (तुम) जो इस जगह पर आए हो (क्या) उस स्थान पर घास नहीं है ?
 वह एकमेव अद्वितीय प्रभु इस बात का साक्षी है ॥ ३९ ॥ उसने कहा
 कि मेरे झूठ को क्षमाशील (खुदा) जानता है । वही गवाह है, क्योंकि

कि मारा पनाहे खुदासत ॥ ४० ॥ रिहाई दिहंदह खुदावंद
तखत । विदा गशत जो मंजलो जाइ सखत ॥ ४१ ॥ बिदिह
साक्रीया सागरे सबज पान । कि साहिब शऊर असत जाहर
जहान ॥ ४२ ॥ बिदिह साक्रीया जाम फीरोजह रंग । कि
दर वक्रत शब चूँ खुशे रोज जंग ॥ ४३ ॥ ६ ॥

॥ हिकायत छेवीं समाप्तम ॥

हिकायत सतवीं ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

खुदावंद बख़्शिदए बेशुमार । कि जाहर जहूर असत
साहिब दियार ॥ १ ॥ तबीअत बहालसत हुसनल जमाल ।
चु हुसनल जमालो फ़ज़ीलत कमाल ॥ २ ॥ कि इसफ़ंदयार
अज्र जहाँ रखत बुरद । नसब नामहे खुद ब बहिमन
सपुरद ॥ ३ ॥ अज्राँ दुखतरे हस चु पररे हुमाइ । चु हुसनल
जमाल असत दउलत फ़िज़ाइ ॥ ४ ॥ चु बहमन शह अज्र ई

वही मेरा आसरा और पनाह है ॥ ४० ॥ अपने सिंहासन के मालिक
अर्थात् राजा को उसने इस तरह छुटकारा दिलाया और फिर उस कठोर
स्थान से विदा हुई ॥ ४१ ॥ “हे साक्री ! (मुझे) हरे रंग का प्याला
प्रदान कर, (ताकि यह स्पष्ट हो सके कि) वह स्वामी समझनेवाला और
जगत में प्रकट है” ॥ ४२ ॥ हे साक्री ! (खुदा) मुझे केवल प्यार का
जाम दो जिससे ज्ञान मिलता है और रात-दिन खुशी मिलती है ॥ ४३ ॥ ६ ॥

॥ दास्तान छठी समाप्त ॥

दास्तान सातवीं

खुदा अनंत रूप से देनेवाला दाता है । वह प्रकट है, प्रकाश-रूप और
(सभी) देशों का मालिक है ॥ १ ॥ वह चित्तवृत्ति का ठिकाना और सुन्दर
स्वरूप वाला है । जैसा उसका महान सुन्दर स्वरूप है, उसी तरह उसकी
बुद्धि भी परम प्रवीण है ॥ २ ॥ जब असफ़ंद (यार) जहान से साजो-सामान
ले गया अर्थात् मर गया तो वह राजगद्दी अपने बेठे बहमन को सौंप
गया ॥ ३ ॥ उसकी एक लड़की हुमाय (अनघ पक्षी) के समान सुन्दर

जहाँ बुरद रखत । ब दुखतर सपुरदंद आँ ताज तखत ॥ ५ ॥
 नशसतंद बर तखत रूमी हुसाइ । कि बुसताँ बहार असतु
 सूरत फ़िजाइ ॥ ६ ॥ चु बुगजशत बर वै जि दह साल चार ।
 कि पैदा शुदह सबजहे नउ बहार ॥ ७ ॥ बहारे जवानी ब
 नउबत रसीद । चु बुसताँ गुले सुरख बेरूँ कशीद ॥ ८ ॥
 ब हुसन आमदश तूतीए नउ बहार । चु माहे कि बरखुद
 कुनद नउ बहार ॥ ९ ॥ मिजाजश जि तिफ़ली बरूँ दर रसीद ।
 जवानी जि आगाज बरवै कशीद ॥ १० ॥ विदा शुद अजो
 हाल तिफ़ली मिजाज । बहारे जवानी दरामद बुबाज ॥ ११ ॥
 कि बिनशसत बर तखत शाहन शही । बकलम अंदर आवेखत
 कागज मही ॥ १२ ॥ नज़र करद बर बचह गौहर निगार ।
 कि बुरद अंदरूँ शब वकते गुबार ॥ १३ ॥ बिआवेखत बा
 ओ दु से चार माह । कि शिकम श फ़रोमाँद अज तुखमि
 शाह ॥ १४ ॥ चु नह माह गशतह ब आँ बिसतनी ।

स्वरूप वाली और उत्तम भाग्य की दौलत की मालिक थी ॥ ४ ॥ जब
 बहमन भी इस संसार से चला गया तो वज़ीरों ने ताज और तख्त उसकी
 पुत्री को सौंप दिया ॥ ५ ॥ 'हुमाय' पक्षी जैसी सुन्दरी रूम की गद्दी पर
 बैठी, वह मानों वसंत ऋतु की फुलवाड़ी के रूप-सौंदर्य को बढ़ानेवाली
 थी ॥ ६ ॥ जब वह चौदह वर्ष की हुई तब उसके शरीर में नई ऋतु की
 हरियाली पैदा हो गई अर्थात् जवानी के आसार नज़र आने लगे ॥ ७ ॥
 जब जवानी का उल्लास देनेवाली अवस्था पहुँच गई तब उसकी सुन्दरता ऐसी
 हो गई जैसे बाग में गुलाब का फूल खिला हो ॥ ८ ॥ उसके हुस्न रूपी
 तोते के लिए वसंत ऋतु आ गई । उसका स्वरूप ऐसा हो गया मानो चन्द्रमा
 अपने पर नयी बहार लाता है ॥ ९ ॥ बचपना उसके स्वभाव से बाहर हो
 गया और उस पर जवानी की आमद के निशान उभरने लगे ॥ १० ॥
 बालापन का ढंग और स्वभाव उससे विदाई ले गया और उस पर जवानी का
 मौसम आ गया ॥ ११ ॥ जब राजकीय सिंहासन पर बैठी तो दरबार में
 सरदारी के कागजातों पर दस्तखत करने लगी ॥ १२ ॥ उस वक़्त उसकी
 निगाह जौहरी के एक लड़के पर पड़ी जिस पर वह मोहित हो गयी । वह
 अंधेरे में उसे अपने महल के अन्दर ले गई ॥ १३ ॥ दो, तीन, चार महीनों
 तक उसके प्यार में लवलीन रही और उसे उस साहूकार से गर्भ रह
 गया ॥ १४ ॥ जब गर्भ को नौ महीने हो गए तो उस सुन्दरी की प्रसूता

बकोशश दरामद रगे खुशतनी ॥ १५ ॥ (सू० प्र० १४१०) तवल्लद
 शुदश कोदके शीर खार । कि खुद शहि व शाह अफ़कुनो
 नामदार ॥ १६ ॥ कि जाहर न करदंद सिररे जहाँ । ब
 संदूक ओरा निगह दाशत आँ ॥ १७ ॥ जि मुशको फ़ितर
 अंबर आवेखतंद । बरो ऊद अज जाफ़राँ रेखतंद ॥ १८ ॥
 बदसत अंदरूँ दाशत ओरा अक्रीक । रवाँ करद संदूक दरया
 अमीक ॥ १९ ॥ रवाँ करद ओरा कुनद जामह चाक ।
 नज़र दाशत बरु शुक़र यज़दान पाक ॥ २० ॥ नशसतंद बर
 रोद लबे गाज़राँ । नज़र करद संदूक दरीया रवाँ ॥ २१ ॥
 हमी खासत कि ओरा बदसत आवरंद । कि संदूक बसतह
 शिकसत आवरंद ॥ २२ ॥ चु बाजू बकोशश दरामद अज़ाँ ।
 ब दसतं बरामद मताए गिराँ ॥ २३ ॥ शिकसतंद मुहरश
 बराए मता । पदीद आमदह ज़ाँ चु रखाँशदह माह ॥ २४ ॥
 वज़ाँ गाज़राँ खानह कोदक चु नेसत । खुदा मन पिसर दादई
 हसब सेसत ॥ २५ ॥ बियावुरद ओरा गिरिफ़त आँ अकीक ।

नाड़ी फड़कने लगी ॥ १५ ॥ दूध पीनेवाला एक लड़का पैदा हुआ जो खुद
 राजाओं और उनके शत्रुओं में मशहूर हो गया ॥ १६ ॥ लेकिन संसार में
 उसने वह भेद प्रकट नहीं किया । उस लड़के को संदूक में डालकर अपनी
 निगाह में रखा ॥ १७ ॥ कस्तूरी, अंबर और इत्र आदि का उस पर लेप
 किया । केसर और ऊद नामक सुगंधित लकड़ी को घिसकर उस पर
 छिड़का ॥ १८ ॥ उसके हाथ में एक लाल रत्न दिया और संदूक को नदी के
 गहरे पानी में छोड़ दिया ॥ १९ ॥ उसे नदी में बहा दिया और दुखी होकर
 अपने कपड़े फाड़ डाले । फिर उसने परमात्मा का ध्यान किया और उसी
 के ध्यान में मग्न हो गई ॥ २० ॥ नदी के किनारे पर धोबी बैठे थे, उन्होंने
 दरिया में बहकर आते (संदूक) को देखा ॥ २१ ॥ उन्होंने उसे पकड़ना
 चाहा और उस बंद संदूक को तोड़ना चाहा ॥ २२ ॥ जब बाजूओं के साथ
 कोशिश की तब उसमें से उनको कीमती सामान हाथ लगा ॥ २३ ॥ धोबियों
 ने जब धन-पदार्थ आदि के लिए उसकी सील तोड़ी तो उसमें से चन्द्रमा के
 समान चमकनेवाला (बालक) प्रकट हुआ ॥ २४ ॥ उन धोबियों के घर में
 कोई पुत्र नहीं था । (लड़के को देखकर धोबी ने कहा—) खुदा ने मुझे पुत्र
 दिया है । अब यही हमारे लिए काफ़ी है ॥ २५ ॥ उसे वह गहरे पानी में
 से पकड़कर लाये थे और बच्चे के साथ लाल भी उनके हाथ लगा था,

शुकर करद यज्ञदान आज्ञम अमीक ॥ २६ ॥ कुनद परवरिशरा
 चु पिसरे अजीम । बयादे खुदा क़िबलह काबह करीम ॥ २७ ॥
 चु बुगज़शत बर वै दु से साल माह । कज़ो दुखतरे खानह
 आवुरद शाह ॥ २८ ॥ नज़र करद बर वै हुमाए अजीम ।
 बयाद आमदश पिसर गाज़र करीम ॥ २९ ॥ बपुरशीद ओरा
 कि ए नेक ज़न । कुजा याफ़ती पिसर खुश खोइ तन ॥ ३० ॥
 बिदानेम खानेम शनासेम मन । यके मन शनाशम न दीगर
 सुखन ॥ ३१ ॥ दबीदंद सरदम बुखादंम कज़ो । कि अज़
 खानहे गाज़रानश अज़ो ॥ ३२ ॥ बुखादंद ओरा बुबसतंद
 सखत । बपुरशीद ओरा कि ए नेक बख़त ॥ ३३ ॥
 बिगोयम तुरा हम चु ई याफ़तम । नुमायम ब तो हाल चूं
 साखतम ॥ ३४ ॥ कि साले फ़लां माह दर वक़त शाम ।
 कि ई काररा करदअम मन तमान ॥ ३५ ॥ ग़िरिफ़तेम
 संदूक दरीया अमीक । यके दसत ज़ो याफ़तम ई
 अकीक ॥ ३६ ॥ बदीदंद ग़उहरि ग़िरफ़तंद अज़ां । शनासद कि ई

इसलिए उन्होंने खुदा का शुक्रिया अदा किया ॥ २६ ॥ पुत्र की तरह प्यार
 से उसे पाला और कावा, मक्का और दयालु खुदा का भी ध्यान किया ॥ २७ ॥
 जब उस बात को दो-तीन बरस बीत गये तो धोबी की लड़की एक दिन उस
 लड़के को बादशाह के घर ले गई ॥ २८ ॥ 'हुमाए अजीम' नामक राजपुत्री
 ने उसकी तरफ़ देखा जो करीम नाम वाला धोबी का लड़का था । तब उस
 राजकुमारी को अपने लड़के की याद आ गई (जिसे उसने दरिया में बहा दिया
 था) ॥ २९ ॥ फिर उसने उस धोबी की लड़की से पूछा— हे भली औरत !
 यह खूबसूरत लड़का कहाँ से लिया है ? ॥ ३० ॥ (मन में ही कहने लगी—)
 इस लड़के को मैं जानती हूँ और पहचानती हूँ । दूसरा कोई भी इस बात
 को नहीं जानता ॥ ३१ ॥ लोग उन धोबियों के घर की तरफ़ दौड़े । वे
 चाहते थे कि लड़का ले लें ॥ ३२ ॥ उस धोबी को बुला लिया गया और
 पक्की तरह से बाँधकर पूछा गया कि ऐ खुशकिस्मत ! यह लड़का तुमने कहाँ
 से पाया है ? ॥ ३३ ॥ उसने कहा— बताता हूँ कि इसे हमने कैसे पाया है ।
 तुम्हें वह बात सुनाता हूँ कि जैसी फ़ोशिश से हमने इसे पाया है ॥ ३४ ॥
 फ़लां साब, फ़लां महीने, शाम के वक़्त यह काम हुआ था ॥ ३५ ॥ दरिया
 के गहरे पानी में से एक संदूक मैंने पकड़ा था और इसके एक हाथ में से यह
 अकीक (लाल) मुझे मिला है ॥ ३६ ॥ उसने मोती पकड़ा, देखा और

पिसर हसत आँ हुमाँ ॥३७॥ बरो ताजह शुद शीर (म०ग्रं० १४११)
 पिसताँ अजो । बिजद सीनह खुद हरदो दसताँ अजो ॥ ३८ ॥
 शनासद अजो हर दु लब बर कुशाद । कि जाहर न करदश
 दिल अंदर निहाद ॥ ३९ ॥ दिगर रोज रफतंद जउजह
 फलाँ । मरा खाद दादह बजुरो हुमाँ ॥ ४० ॥ तुरा मन
 कि फ़रजंद बख़शीदहअम । चराधे कयारा दरख़शीदह-
 अम ॥ ४१ ॥ जि गंजो ज़र श गउहरो तख़त दाद । वजाँ
 पिसर रा ख़ानहे खुद निहाद ॥ ४२ ॥ ब गुफ़तश कि ई रा
 जि दरीयाफ़तम । कि दाराब नामश अजो साख़तम ॥ ४३ ॥
 कि शाही जहाँ रा बदो मे दिहंम । वजाँ ताज इकबाल बर
 सर निहंम ॥ ४४ ॥ मरा खुश तर आमद अजाँ सूरतश ।
 कि हुसनल जमाल असत खुश सूरतश ॥ ४५ ॥ कि अज
 शाहि ओ चूँ ख़बर याफ़तश । कि दाराब नामे मुकररा
 शुदश ॥ ४६ ॥ अजाँ शेर शुद शाहि दाराइ दीं । हकीकत
 शनासअसतु ऐनुल यकी ॥ ४७ ॥ बिदिह साकीया सागरे
 सुरख़ फ़ाम । कि मारा बकार असत वकते मुदाम ॥ ४८ ॥

पहचान लिया और जान लिया कि यह मेरा ही लड़का है ॥ ३७ ॥ उसी
 वक़्त उसके स्तनों में दूध उतर आया पर उसने अपनी छाती पर दोनों हाथों
 को रख लिया ॥ ३८ ॥ (लड़के को) पहचानते ही उसके दोनों ओंठ खुल
 गए अर्थात् वह मुस्कुरा उठी पर उसने यह रहस्य किसी पर प्रकट नहीं किया,
 दिल में ही रखा ॥ ३९ ॥ दूसरे दिन धोबी की पत्नी गई और कहने लगी
 कि मुझे स्वप्न में बुजुर्ग ने दर्शन दिया है ॥ ४० ॥ और कहा है कि मैंने जो
 पुत्र तुम्हें बख़शा, मैंने “कैआँ” ख़ानदान का दीपक जलाया है ॥ ४१ ॥ उसे
 खज़ाना, मोती, सोना और राजगद्दी दे दी गई और उस लड़के को अपने घर
 में रख लिया गया ॥ ४२ ॥ उसने कहा, मैंने इसे दरिया में से पाया है
 इसलिए इसका नाम दाराब रख दिया है ॥ ४३ ॥ दुनिया का राज्य उसे
 मैं देती हूँ । प्रतापी छत्र और चँवर मैं इसके सिर पर रखती हूँ ॥ ४४ ॥ मुझे
 इसकी सूरत प्यारी लगी है, क्योंकि उसका स्वरूप तेजस्वी और प्रतापी
 है ॥ ४५ ॥ जब उसे पता लगा कि वह राजा बना है और उसका नाम
 दाशब रखा गया है तो वह बहुत खुश हुआ ॥ ४६ ॥ उसी शूरवीर राजा
 से धर्मराज हुआ । वह धर्म का रक्षक, हक़ को पहचान करनेवाला और
 दृढ़ निश्चय वाला है ॥ ४७ ॥ हे साकी ! मुझे लाल रंग का जाम दे जिसकी

बिदिह पियालह फ़ेरोज़ रंगीन रंग । कि मारा खुश आमद
बसे वक़्त जंग ॥ ४६ ॥ ७ ॥

॥ हिकायत सतबीं समाप्तम ॥

हिकायत अट्ठवीं ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

ख़ुदावंद बख़्शिदहे दिल करार । रज़ा बख़्श रोज़ी
दिहो नउ बहार ॥ १ ॥ कि मीर असत पीर असत हर दो
जहाँ । ख़ुदावंद बख़्शिदह हर यक़ अमाँ ॥ २ ॥ हिकायत
शुनीदेम शाहे अज़ीम । कि हुसनल जमाल असतु साहिब
करीम ॥ ३ ॥ कि सूरत जमाल असतु हुसनल तमाम । हमह
रोज़ आशायशे रोद जाम ॥ ४ ॥ कि सरहंग दानश जि
फ़रज़ानगी । कि अज़ मसलिहत मउज मरदानगी ॥ ५ ॥
वज़ाँ बानूए हम चु माहे जवाँ । कि कुरबाँ शवद हर कसे
नाजदाँ ॥ ६ ॥ कि खुश रंग खुश ख़ोइ ओ खुश जमाल । खुश
मुझे हमेशा ज़रूरत है ॥ ४८ ॥ हे साक़ी ! मुझे फ़ीरोज़ी रंग वाला प्याला
दे जो मुझे लड़ाई के वक़्त के लिए बहुत अच्छा लगता है ॥ ४९ ॥ ७ ॥

॥ दास्तान सातबीं समाप्त ॥

दास्तान आठवीं

ख़ुदा ही चित्त को स्थिरता देनेवाला है, अन्नदाता और आनंददाता
है ॥ १ ॥ परमात्मा ही सम्राट्, पीर, लोक-परलोक में हर एक को सुख
देनेवाला है ॥ २ ॥ (फ़ारस देश के) अज़ीम शाह की कहानी हमने सुनी है,
जो बहुत ही सुन्दर स्वरूपवान और दानी मालिक था ॥ ३ ॥ उसकी शक़ल
तेजस्वी और पूर्ण रूप से सुन्दर थी । उसका सारा दिन संगीत सुनने और
जाम पीने में ही बीतता था ॥ ४ ॥ वह शूरवीर और बुद्धिमान था जो
शूरवीरता के ठाट में पूरी तरह शोभायमान था ॥ ५ ॥ उसकी एक पुत्री
पूर्णमा के चाँद की तरह थी । सौंदर्य के पारखी उस पर कुर्बान जाते
थे ॥ ६ ॥ वह अच्छे रंग-रूप वाली, अच्छे स्वभाव वाली, अच्छी गंध वाली,
अच्छी आवाज़ वाली और अच्छे पदार्थों को भोगनेवाली तथा अच्छे विचारों

आवाज खुश ख़वारगी खुश ख़ियाल ॥ ७ ॥ ब दीनन कि
 खुश खोइ ख़ूबी जहाँ । जि हरफ़ात करदन खुशो खुश
 जुबाँ ॥ ८ ॥ (सू०ग्रं० १४१२) दु पिसरश अज़ाँ बूँद चूँ शमश माह ।
 कि रउशन तबीयत हकीकत गवाह ॥ ९ ॥ कि गुसताख़ दसत
 असत चालाक जंग । बवकते तरदद चु शेरो निहंग ॥ १० ॥
 दु पील अफ़कनो हम चु शेर अफ़कन असत । ब वकते वगा
 शेर रोई तन असत ॥ ११ ॥ यके ख़ूब रोइ ओ दिगर तन
 चु शीम । दु सूरत सज़ावार आजम अज़ीम ॥ १२ ॥ वज़ाँ
 मादरे बरकस आसुफ़तह गशत । चु मरदसत गुल हम चुनो
 गुल परसत ॥ १३ ॥ शबं गाह दर खाबगाह आमदंद ।
 कि ज़ोरावराँ दर निगाह आमदंद ॥ १४ ॥ बुखादंद पस पेश
 ख़ुरदो कलाँ । मयो रोद रामश गिराँ रा हुमाँ ॥ १५ ॥
 बिदानिसत कि अज मसतीयश मसत गशत । बिजद तेग़ ख़ुद
 दसत हर दो शिकसत ॥ १६ ॥ बिजद हर दो दसतश सरे
 खेश ज़ोर । ब जुंबश दरामद ब करदंद शोर ॥ १७ ॥
 बिगोयद कि ए मुसलमानान पाक । चिरा चूँ कि कुशती

वाली थी ॥७॥ दिखने में वह अच्छी और मीठी वाणी बोलनेवाली थी ॥८॥
 उसके दो पुत्र सूर्य और चन्द्र-जैसे हुए जो प्रसन्नचित्त और सत्य की परख
 करनेवाले थे ॥ ९ ॥ वे फ़ुर्तिले हाथों वाले और लड़ाई में तीखी बुद्धि वाले
 थे । युद्ध के समय में शेर और मगरमच्छ जैसे थे ॥ १० ॥ दोनों ही हाथी
 और शेर को पटक देनेवाले थे । युद्ध के समय तो वे लोहे के शरीर वाले
 शेर थे ॥ ११ ॥ एक तो चेहरा सुन्दर और दूसरे शरीर चाँदी के समान
 चमकता था । दोनों सूरतें महान शोभा वाली थीं ॥ १२ ॥ उनकी माँ
 किसी पर मोहित हो गई । वह मर्द भी फूल के समान है और उसकी औरत
 भी फूल की पूजा करनेवाली है ॥ १३ ॥ रात के समय वे दोनों सोने वाली
 जगह पर आ गए । (माँ की नज़र में) दोनों बलवान पुत्र खटकने लगे ॥ १४ ॥
 माँ ने छोटे-बड़े पुत्रों को आगे-पीछे बुलाया, फिर गायकों से संगीत सुना और
 उनको शराब पिलाकर बेहोश कर दिया ॥ १५ ॥ जब उसने देखा कि शराब
 के साथ मतवाले हो गए हैं तो उसने तलवार से बार किया और अपने हाथ
 से दोनों को काट डाला ॥ १६ ॥ फिर उसने दोनों हाथों से सिर पीटा और
 काँपते हुए चीखने-चिल्लाने लगी ॥ १७ ॥ कहने लगी कि हे मुसलमानो,
 कपड़ों को टुकड़े करने की तरह किसी ने क्यों मेरे पुत्रों को मार डाला

अजी जामह चाक ॥ १८ ॥ बिखुरदंद मय हरदु आँ मसत
 गशत । गिरफतंद शमशेर पौलाद दसत ॥ १९ ॥ कि ई
 रा बिजद आँ बई आँ जदंद । ब दीदह मरा हरदुई कुशतह
 अंद ॥ २० ॥ दरेगा मरा जा जिनी हम न दाद । न
 दहलीज दोजख मरा रह कुशाद ॥ २१ ॥ दु चशमे मरा ई
 चि गरदीद ई । कि ई दीदहे खून ई दीद ई ॥ २२ ॥
 बिहज मन तने तरक दुनीया कुनम । फकीरे शवम मुलक चीं
 मे रवम ॥ २३ ॥ बि गुफत ई सुखन रा कुनद जामह चाक ।
 रवाँ शुद सूए दसतखत चाक चाक ॥ २४ ॥ कि ओ जा
 बदीदंद खुश खाबगाह । निशसतह असतु बर गाउ बा जन चु
 माह ॥ २५ ॥ ब पुरशीद ओरा कि ए नेक जन । हुमायू
 दरखते चु सरवे चमन ॥ २६ ॥ कि हूरो परी तो चु नूरे जहाँ । कि
 माहे फलक आफताबे यमाँ ॥ २७ ॥ न हूरो परीअम न नूरे जहाँ ।
 मनम दुखतरे शाहिजाँ बिलसिताँ ॥ २८ ॥ ब पुरशश दरामद
 परसतश न मूद । बनिजदश जुबा राँ ब फुरसत कसूद ॥ २९ ॥

है ॥ १८ ॥ दोनों ने शराब पी और मस्त हो गए थे । फौलादी तलवारें
 हाथों में पकड़ ली थीं ॥ १९ ॥ इसने उसे और उसने इसे मार डाला है ।
 मेरे देखते-देखते दोनों क़त्ल हो गए हैं ॥ २० ॥ हाय, मुझे धरती ने जगह न
 दी (नहीं तो मैं धरती में ही गर्क हो जाती), न ही दोजख के राह का दरवाजा
 खुला जो मैं छलांग लगाकर उसमें जा गिरती ॥ २१ ॥ मेरी दोनों आँखों
 के देखते-देखते यह क्या हो गया ? इन आँखों ने कैसे इनका खून होते
 देखा ॥ २२ ॥ बच्चो ! तुमने मुझे छोड़ दिया है अब मैं भी यह दुनिया छोड़
 जाऊँगी और फ़कीर बनकर चीन देश की तरफ़ चली जाऊँगी ॥ २३ ॥ यह
 कहकर उसने कपड़ों को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया और 'चकमाकचाक'
 निर्जन प्रदेश की ओर चल पड़ी ॥ २४ ॥ उस जगह पर जाकर उसने
 सोने की अच्छी जगह को देखा पर वहीं उसने बैल पर बैठे व्यक्ति को देखा,
 जिसके साथ चाँद के समान सुन्दर स्त्री थी ॥ २५ ॥ उन्होंने उसे पूछा कि
 ऐ नेक औरत ! बगीचे में लंबे पेड़ की तरह खूबसूरत तुम कौन हो ? ॥ २६ ॥
 तुम हूँ हो, परी हो, संसार को रोशन करनेवाली हो, आकाश का चाँद हो
 या संसार का सूरज हो ? ॥ २७ ॥ उसने कहा कि न मैं हूँ हूँ, न परी हूँ, न
 ही संसार का प्रकाश हूँ; मैं तो ज़ाबलिस्तान के राजा की पुत्री हूँ ॥ २८ ॥
 (जब उस व्यक्ति ने) पूछा तो पहले उसने नमस्कार की और फिर धैर्यपूर्वक
 अपनी जुबान खोली ॥ २९ ॥ (उस व्यक्ति ने कहा—) तुझे देखते ही मैं

ब दीदन तुरा मन बस आजुरदह अम । बिगोई तु हर
 चीज बखशीदह अम ॥ ३० ॥ ब हंगाम पीरी जवा मे
 शवम । (मू०ग्रं० १४१३) ब मुलके हुमाँ यार मन मेरवम ॥ ३१ ॥
 बदानश तु दानी वगर ई वफ़ा । बयाद आमदश बदतर ई
 बेवफ़ा ॥ ३२ ॥ वजाँ जा बिआमद बगिरदे चुचाह । कजा
 जा अजो बूद नखज़ीर गाह ॥ ३३ ॥ बसैरे दिगर रोज़ आमद
 शिकार । चु भिन काल अज बाशहे नउ बहार ॥ ३४ ॥
 कि बरखाशत पेशश गवजने अजीम । रवाँ करद असपश चु
 बादे नसीम ॥ ३५ ॥ बसे दूर गशतश न माँदह दिगर ।
 न आबो न तोसह न अज खुद खबर ॥ ३६ ॥ वजाँ ओ शवद
 बा तने नउजवाँ । न हूरो परी आफ़ताबे जहाँ ॥ ३७ ॥
 ब दीदन वजाँ शाहि आशुफ़तह गशत । कि अज खुद खबर
 रफ़त व अज होश दसत ॥ ३८ ॥ कि क़शमे खुदा मन तुरा
 मे कुनम । कि अज जान जानी तु बरतर कुनम ॥ ३९ ॥
 उज़र करदउ चूँ दुसे चार बार । हम आख़र बगुफ़तम
 वजाँ करद कार ॥ ४० ॥ बुबीँ गरदशे बेवफ़ाई जमाँ । कि

बहुत दुखी हुआ हूँ । अगर तुम कहो तो मैं सारी वस्तुएँ तुम्हें प्रदान कर
 दूँ ॥ ३० ॥ (उसने जवाब दिया—) वृद्धावस्था से मैं जवान हो जाऊँ और
 उसी यार के देश में चली जाऊँ ॥ ३१ ॥ उस व्यक्ति ने कहा कि अगर
 तुम्हारी बुद्धि ने इसे ही अच्छा समझा है, तो ऐसा ही हो जाए, परन्तु यह
 बहुत ही बुरा खयाल तुम्हारे दिमाग में आया है ॥ ३२ ॥ वहाँ से वह उस
 कुएँ के पास गई जो उसके मित्र की शिकारगाह में था ॥ ३३ ॥ दूसरे दिन
 शेर के शिकार के लिए उसका यार आया जो वसंत ऋतु में शिकारी पक्षी
 “बाशा” की चोंच के समान लाल था ॥ ३४ ॥ उसके आगे एक बड़ी
 नीलगाय भाग निकली । उसने भी सुबह की हवा की तरह घोड़ा उसके
 पीछे लगा दिया ॥ ३५ ॥ वह बहुत दूर निकल गया और उसके साथ दूसरा
 कोई न रहा । न पानी, न खाद्य और न ही उसे अपने आप की खबर
 रही ॥ ३६ ॥ वह उस नौजवान शरीर के साथ चल पड़ी जिसके जैसा न
 सूरज और न कोई हूर अथवा परी है ॥ ३७ ॥ उसे देखते ही राजा मोहित
 हो गया और उसका अपना होश भी अपने हाथ से जाता रहा ॥ ३८ ॥ मैं
 खुदा की क़सम खाकर कहता हूँ कि मैं अपनी जान से भी ज्यादा प्यार तुम्हें
 करता हूँ ॥ ३९ ॥ पहले उस औरत ने तीन-चार बार नहीं की, पर अन्त में

खूने सितादश न माँदश निशाँ ॥ ४१ ॥ कुजा शाहि के
 खुसरवो ज़ाम ज़म । कुजा शाहि आदम मुहंमद खतंम ॥ ४२ ॥
 फ़रेदूँ कुजा शाहन इसफ़ंदयार । न दाराबदारा दरामद
 शुमार ॥ ४३ ॥ कुजा शाहि असकंदरो शेरशाह । कि यक
 हम न माँद असत ज़िदह ब जाह ॥ ४४ ॥ कुजा शाह तैमूर
 बाबर कुजासत । हुमायूँ कुजा शाहि अकबर कुजासत ॥ ४५ ॥
 बिदिह साक़ीया सुरख रंगे फ़िरंग । खुश आमद मरा वक़त
 ज़द तेग़ जंग ॥ ४६ ॥ ब मन दिह कि खुद रा पयोरस
 कुनम । बतेग़ आजमाईश कोहस कुनम ॥ ४७ ॥ ८ ॥

॥ हिंकायत अट्ठवीं समाप्त ॥

उसके कहने के मुताबिक़ ही काम किया ॥ ४० ॥ ज़माने की बेवफ़ाई के
 चक्र को देखो । “सिआवश” मारा गया और उसका निशान भी बाक़ी न
 बचा (‘सिआवश’ एक राजपूत शूरवीर का नाम है जो अपने पिता “कैकाउस”
 के साथ नाराज़ हो घर छोड़कर “अफ़रा सिआव” के पास चला गया । उसने
 पहले तो इसका आदर किया और अपनी पुत्री का विवाह इससे कर दिया,
 पर अन्त में इसे बिना किसी दोष के ही मरवा डाला) ॥ ४१ ॥ कहाँ है
 ‘कै’ (राजा), खुसरो, ज़मशेद, और उसका प्याला कहाँ है ? आदम
 कहाँ है और मुहम्मद कहाँ है ? ॥ ४२ ॥ फ़िरेदूँ बहमन और असफ़ंद यार
 कहाँ है ? न दाराब है, न दारा है । इतने राजा थे उनकी गणना नहीं की
 जा सकती ॥ ४३ ॥ सिकंदर बादशाह और शेरशाह कहाँ है ? जो भी हुए
 उनमें से एक भी जीवित नहीं बचा है ॥ ४४ ॥ तैमूर बादशाह, बाबर,
 हुमायूँ और अकबर बादशाह जैसे कहाँ हैं ? ॥ ४५ ॥ हे साक़ी ! फ़िरंग देश
 का लाल रंग का प्याला मुझे दे जो लड़ाई में तलवार मारते समय अच्छा
 लगता है ॥ ४६ ॥ मुझे दे जो मैं अपने निजस्वरूप का विचार कर सकूँ ।
 तलवार चलाता हुआ मैं (कामादिक अवगुणों को) दबाऊँ ॥ ४७ ॥ ८ ॥

॥ दास्तान आठवीं समाप्त ॥

हिकायत नौवीं ॥

१ ओं बाहिगुरु जी की फ़तह ॥

कमालश करामात आजम करीम । रज़ा बख़्श राजक
 रहाको रहीम ॥ १ ॥ ब जाकर दिहंद ई ज़मीनो ज़मान ।
 मलूको मलायक हमह आँ ज़हान ॥ २ ॥ हिकायत सुनीदेम
 शाहे फ़िरंग । चु बा ज़नि निशसतंद पुशते पलंग ॥ ३ ॥
 नज़र करद बर बचह ग़उहर निगार । ब दीदन हुमायूँ जवाँ
 उसतवार ॥ ४ ॥ ब बकते शब ओरा बुखादंद पेश । (मू०ग्रं० १४१४)
 ब दीदन हुमायूँ बबालाइ बेश ॥ ५ ॥ बिआ वेखत बा ओ
 हमह यक दिगर । कि ज़ाहर शवद होश हैबत हुनर ॥ ६ ॥
 यके सूइ चीँ रा बुखादंद पेश । कि अज़ सूइ चीनी बरावुरद
 रेश ॥ ७ ॥ बरो हरकि बीनद न दानद सुखन । कि अज़
 रोइ सरदे शुदह शकल ज़न ॥ ८ ॥ बिदानंद हरकस कि ई
 हम ज़न असत । कि दर पैकरे चूँ परी रोशन असत ॥ ९ ॥
 ब दीदंद ओरा यके रोज़ शाह । कि मकबूल सूरत चु

दास्तान नौवीं

वह करामातों में पूरा, बड़ा कृपालु, हुक्म देनेवाला, रोज़ी देनेवाला,
 मुक्तिदाता और दयालु है ॥ १ ॥ जो उसका ध्यान करता है उसे वह इस
 धरती के राजाओं और आकाश के देवताओं का भी सिरताज बना देता
 है ॥ २ ॥ मैंने फ़िरंग देश के राजा की कहानी सुनी है । वह स्त्री-समेत
 पलंग पर बैठा था ॥ ३ ॥ रानी की नज़र मोतियों के पारखी जौहरी के पुत्र
 पर पड़ी और वह उसे सुन्दर और बलशाली लगा ॥ ४ ॥ रात के समय
 उसने उसे अपने सामने बुला लिया । वह उसे सुन्दर ऊँचा जवान
 लगा ॥ ५ ॥ सभी आप में एक-दूसरे के साथ घुल-मिल गए । उनका हुनर-
 चातुर्य सब कुछ एक-दूसरे पर प्रकट हो गया ॥ ६ ॥ एक नाई को पास
 बुलाया गया ताकि वह उस्तरे से बाल साफ़ कर दे ॥ ७ ॥ अब जो कोई
 भी उसको देखता, पहचानता नहीं था, क्योंकि अब उसका चेहरा औरतों
 वाला हो गया था ॥ ८ ॥ सबने यही जाना कि यह भी स्त्री है और शरीर
 में परी की तरह चमकीली है ॥ ९ ॥ एक दिन राजा ने उसे देखा कि वह

रत्नशिदह माह ॥ १० ॥ बि पुरशीद ओरा कि ए नेक बख्त ।
 सजावार शाह असतु शायान तख्त ॥ ११ ॥ कि जन तो कदामी
 किरा दुखतरी । कि मुलके किरा रो किरा ख्वाहरी ॥ १२ ॥
 ब नजर अंदरूँ बहरमंद आमदश । ब दीदन शहे दिल पसंद
 आमदश ॥ १३ ॥ कनीजक यके रा बुखादंद पेश । शबं
 गाहि बुरदश दरूँ खानह खेश ॥ १४ ॥ बिगुफता कि ए सरब
 क्रद सीम तन । चरागे फलक आफताबे यमन ॥ १५ ॥
 वजाँ बहर मारा ब तपशीद दिल । कि माही बिअफताद अज
 आब गिल ॥ १६ ॥ बुरोए शबा पैक गुलजार माँ । कि दर
 पेश यारे वफादार माँ ॥ १७ ॥ तु गर पेश ओरा बियारी
 मरा । कि बखशेम सरबसतह गंजे तुरा ॥ १८ ॥ रवाँ
 शुद कनीजक शुनीद ई सुखन । बिगोयद सुखन रा जि सर
 ताब बुन ॥ १९ ॥ जुबानी कनीजक शुनीदीं सुखन । ब
 पेचीद बर खुद जि पोशाक जन ॥ २० ॥ कि जाहर कुनानीद
 असबाब खेश । कि दीदन जहाँ रा ब किरदार खेश ॥ २१ ॥
 बखाहद मरा शाहि ए यार मा । मरा मसलिहत दिह वफादार

पूनम के चाँद की तरह प्यारी सूरत वाली है ॥ १० ॥ राजा ने उससे कहा
 कि ऐ भाग्यशालिनी ! तुम बादशाह और तख्त के लायक हो ॥ ११ ॥ तुम
 किसकी स्त्री और पुत्री हो ? तुम्हारा देश कौन-सा है अथवा तुम किसकी
 बहिन हो ? ॥ १२ ॥ वह देखने में भाग्यशालिनी दिखती थी । राजा ने उसे
 देखा और वह उसे पसंद आ गई ॥ १३ ॥ रात में राजा उसे अपने घर ले
 आया और एक दासी को अपने पास बुलाया ॥ १४ ॥ राजा ने कहा कि देवदारु
 के समान लंबे क्रद वाली आकाश के दीपक चाँद के समान, यमन के सूरज के
 समान प्रकाशित करनेवाली ॥ १५ ॥ उस स्त्री के लिए मेरा वैसे ही दिल
 तड़प रहा है जैसे मछली पानी में से मिट्टी में गिर पड़े तो तड़पती है ॥ १६ ॥
 ऐ मेरे दिल की फुलवाड़ी ! तुम फुर्ती से जाओ और अपनी वफादारी दिखाओ
 अर्थात् उसे ले आओ ॥ १७ ॥ अगर तुम उसे मेरे पास ले आओ तो मैं
 लबालब भरा खजाना तुम्हें दे दूँगा ॥ १८ ॥ दासी यह बात सुनते ही चल
 पड़ी और उसे जाकर शुरू से आखीर तक कह सुनाया ॥ १९ ॥ जब दासी के
 मुँह से उसने यह बात सुनी तो अपने औरत के पहरावे पर उसे गुस्सा
 आया ॥ २० ॥ अब उसने समझा कि मेरा भेद खुल गया है । अब देखें
 क्या होता है ॥ २१ ॥ राजा मुझे चाहता है, हे मेरे यार ! अब मुझे वफादारी

मा ॥ २२ ॥ तु गोई मनई जा गुरेजा शवम । कि इस रोज
अज जाइ खेजा शवम ॥ २३ ॥ न तर सी इलाजे तुरा मन
कुनम । ब दीदन वजा चार माहे निहम ॥ २४ ॥ चु
खुशपीद यक जाइ चूँ बे खबर । खबर गशत शुद शाह ओ
शेर नर ॥ २५ ॥ दहाने कनीजक शुनीद ई सुखन । बजुं बश
बलरजीद सर ताब बुन ॥ २६ ॥ बियामद कजो जाइ ओ
खुफतह दीद । जि सरता कदम हम चु मिहरश तपीद ॥ २७ ॥
बिदानदकि ई रा खबरदार शुद । ब रोजे (मू० ग्रं० १४१५)
अजा ई खबरदार शुद ॥ २८ ॥ बिखुशपीद यक जा यके
खाब गाह । मरा दाव अफतद न यजदाँ गवाह ॥ २९ ॥
जुदागर बुबीनम अज ई खाब गाह । यके जुफत बाशम चु
खुरशौद भादु ॥ ३० ॥ वजाँ रोज गशतह बियामद दिगर ।
हुमाँ खुफतह दीद यके जा बबर ॥ ३१ ॥ दरेगा अजीँ गर
जुदा याफतम । यके हमलह चूँ शेर नर साखतम ॥ ३२ ॥
दिगर रोज रफतश सियम आमदश । ब दीदंद यक जाइ

से सलाह दो, मैं क्या करूँ ? ॥ २२ ॥ तुम कहो तो मैं यहाँ से गायब हो
जाऊँ या इस जगह से आज ही उठकर कहीं अन्यत्र चला जाऊँ ॥ २३ ॥
(औरत ने यार से) कहा, डरो मत, तुम्हारा इलाज मैं करती हूँ । उसके
देखते-देखते ही मैं तुझे चार महीने पास रखूँगी ॥ २४ ॥ यह कहकर दोस्त
को साथ लेकर वे एक ही जगह सोए और बेहोश-से हो गए । तब शेर के
समान राजा को खबर लग गई कि जिसे मैं चाहता हूँ, उसे खबर हो चुकी
है ॥ २५ ॥ जब उसने दासी के मुँह से सारी बात सुनी, तो वह क्रोध में
फिर से पाँव तक काँपने लगा ॥ २६ ॥ उस जगह पर आया और दोनों को
इकट्ठे सोते देखा । अब वह सिर से लेकर पाँव तक सूरज की तरह तप
गया ॥ २७ ॥ उसने सोचा कि इसे मेरे आशिक होने की खबर मिल गई है,
इसी से यह खबरदार होकर अब अकेली नहीं सोती है ॥ २८ ॥ एक ही
सोनेवाले कमरे में दोनों एक साथ ही सोती हैं, इसलिए मेरा दाँव नहीं लग
पा रहा है ॥ २९ ॥ (फिर मन में कहा—) अगर इसे पलंग पर अकेली सोती
हुई पा जाऊँ तो चांद-सूरज के जोड़े की तरह मैं भी अपना जोड़ा बना
दूँ ॥ ३० ॥ वह उस दिन चला गया और दूसरे दिन आया पर फिर उसने
उन्हें आलिंगन-बद्ध सोते देखा ॥ ३१ ॥ फिर कहने लगा, अप्सोस है, अगर
इसे उससे अलग पा जाता तो शेर की तरह झपट पड़ता ॥ ३२ ॥ दूसरे दिन

बर ताफ़तश ॥ ३३ ॥ ब रोज़े चुआमद ब दीदंद जुफ़त ।
 ब हैरत फ़रो रफ़त बा दिल बिगुफ़त ॥ ३४ ॥ कि हैफ़असत
 आँ रा जुदा याफ़तम । कि तीरे कमा अंदरूँ साख़तम ॥ ३५ ॥
 न दीदेम दुशमन न दोज़न बतीर । न कुशतम अदूरा न करदम
 असीर ॥ ३६ ॥ शशम रोज़ आमद ब दीदह वज़ाँ । ब
 पेचश दरावख़त गुफ़त अज़ जुबाँ ॥ ३७ ॥ न दीदेम दुशमन
 कि रेज़ेम खूँ । दरेगा न कैबर कमाँ अंदरूँ ॥ ३८ ॥ दरेगा
 ब दुशमन न आवेख़तम । दरेगा ना बा यक दिगर
 रेख़तम ॥ ३९ ॥ हक़ीक़त शनाशद न हाले दिगर । कि
 मायल बसे ग़शत ओ ताब सर ॥ ४० ॥ बुबीं बेख़बर रा
 चकारे कुनद । कि कारे बदश इख़तयारे कुनद ॥ ४१ ॥
 बुबीं बेख़बर बद ख़राशी कुनद । कि बेआब सर ख़ुद तराशी
 कुनद ॥ ४२ ॥ बिदिह साकीया ज़ाम सबज़े मरा । कि
 सरबसतह मन गंज बख़शम तुरा ॥ ४३ ॥ बिदिह साकीया

गया और फिर उन्हें एक ही जगह पर देखकर वापस आ गया । तीसरे दिन
 भी उन्हें एक ही जगह देखकर मुड़ आया ॥ ३३ ॥ चौथे दिन आया और
 फिर उन्हें इकट्ठा सोते देखा । वह हैरान होकर चला गया और दिल में
 कहने लगा ॥ ३४ ॥ अफ़सोस है, अगर मैं उसे अकेली पा लेता तो ज़रूर
 उसकी कमान में अपना तीर टिका देता ॥ ३५ ॥ (फिर कहने लगा कि
 अफ़सोस है) न मैं दुश्मन को देख पाया, न उसे तीर मारा, न ही मैंने किसी
 बुरे आदमी को क्रोध किया या मारा (फिर मैं भला कैसा बादशाह हूँ) ॥ ३६ ॥
 छठवें दिन भी उसने उसको वैसे ही देखा पर फिर कुलबुलाने लगा और कहने
 लगा ॥ ३७ ॥ न मैंने शत्रु को देखा जो उसके टुकड़े-टुकड़े करता । अफ़सोस,
 मैं कमान में तीर न डाल सका ॥ ३८ ॥ अफ़सोस, मेरी दुश्मन के साथ भी
 मुठभेड़ नहीं हो रही । अफ़सोस है कि एक-दूसरे के साथ आलिंगनबद्ध
 होकर गिरे भी नहीं हैं ॥ ३९ ॥ मैंने सत्यस्वरूप को पहचाना नहीं है और
 इस तरह मोहित हो रहा हूँ ॥ ४० ॥ इस पागल जीव की तरफ़ देखो, क्या
 काम कर रहा है । जो काम बुरा है उसे ज़रूर जोर से कर रहा है ॥ ४१ ॥
 ऐ होश से विहीन जीव ! देख, तू किस तरह से बुरा काम कर रहा है और
 बिना पानी के ही सिर मुँड़वा रहा है ॥ ४२ ॥ हे साक्ती ! मुझे हरे रंग का

सागरे सबज फ़ाम । कि खसम अफ़कनो वकतह सतश ब
काम ॥ ४४ ॥ ६ ॥

॥ हिकायत नौवीं समाप्त ॥

हिकायत दसवीं ॥

१ ओं बाहिगुरु जी की फ़तह ॥

गाफ़ूरो गुनह बख़श गाफ़ल कुश असत । जहाँ रा तुई
बसतु ई बंदुबसत ॥ १ ॥ न पिसरो न मादर बिरादर पदर ।
न द्रामादु दुश्मन न यारे दिगर ॥ २ ॥ शुनीदम सुखन शाहि
मायंदराँ । कि रउशन दिलो नाम रौशन जमाँ ॥ ३ ॥
कि नामश वज़ीरसत साहिब शऊर । कि साहिब
दिमाग़ (म०ग्रं० १४१६) असत जाहर ज़हूर ॥ ४ ॥ कि पिसरे
अजाँ बूद रउशन ज़मीर । कि हुसनल ज़मालअसत साहिब
अमीर ॥ ५ ॥ कि रउशन दिले शाहि ओ नाम बूद । अदुरा
ज़िमरदी बर आवुरद दूद ॥ ६ ॥ वज़ीरे यके बूद ओ होशमंद ।

जाम दो, मैं तुम्हें भरा-पूरा खज़ाना दे दूंगा ॥ ४३ ॥ हे साक़ी ! मुझे सब्ज
रंग का प्याला दे जो दुश्मन को पटक फेंकने के वक़्त काम आता है ॥ ४४ ॥ ६ ॥

॥ दास्तान नौवीं समाप्त ॥

दास्तान दसवीं

दयालु खुदा गुनाह माफ़ करनेवाला, गाफ़िल (खुदा के ध्यान से चूके
हुए) को मारनेवाला है । हे खुदा ! संसार का बंदोबस्त तूने ही बाँधा हुआ
है ॥ १ ॥ न तू किसी का पुत्र है, न तेरी माँ है, न पिता है, न दामाद है न
दुश्मन है, न दोस्त है । न ही तेरे जैसा अन्य कोई है ॥ २ ॥ हमने मारिजदर
देश के राजा की एक वार्त्ता सुनी है जो रौशन-दिमाग़ था और दुनिया उसका
नाम लेती थी ॥ ३ ॥ उसके बुद्धिमान वज़ीर का नाम 'साहिब' था, जो
अच्छे दिमाग़ का मालिक और प्रकट रूप से प्रतापी था ॥ ४ ॥ रौशनज़मीर
नामक उसका पुत्र पैदा हुआ जो बहुत ही सुन्दर स्वरूपवान और अमीरों का
मालिक था ॥ ५ ॥ उस राजा का नाम रौशनदिल था । उसने अपनी
बहादुरी से दुश्मनों का मानों धुआँ निकाल दिया था अर्थात् उन्हें तहस-नहस
कर दिया था ॥ ६ ॥ उसका एक वज़ीर बहुत अक्ल वाला था जो प्रजा-

रईयत निवाजअसतु दुश्मन गजंद ॥ ७ ॥ वजाँ दुखतरे
 हसत रउशन चराग । कि नामे अजाँ बूद रउशन दिमाग ॥ ८ ॥
 ब मकतब सपुरदंद हर दो तिफल । कि तिफलश बसे रोज
 गशतंद खिजल ॥ ९ ॥ निशसतंद दानाइ मउलाइ रुम ।
 कि दिरमश बबखशीद आँ सरज बूम ॥ १० ॥ निशसतंद
 दर आँ जाइ तिफले बसे । बुखाँदे सुखन अज किताब हर
 कसे ॥ ११ ॥ ब बगल अंदर आरंद हर एक किताब ।
 जि तउरेत अंजील वजहे अदाब ॥ १२ ॥ दु मकतब कुनानीद
 हफत अज जुबाँ । यके सरद बुखाँदंद दीगर जनाँ ॥ १३ ॥
 कि तिफला बुखाँदंद मुलाँ खुशश । जनारा बुखाँदंद जने
 फाजलश ॥ १४ ॥ वजाँ दरमियाँ बूद दीवार जी । यके
 आँ तरफ बूद यके तरफ ई ॥ १५ ॥ सबक बुरद हरदो जि
 हर एक हुनर । इलम कशमकश करद बा एक दिगर ॥ १६ ॥
 सुखन हर यके रांद हर एक किताब । जुबाँ फरश अरबी
 बिगोयद जवाब ॥ १७ ॥ इलम रा सुखन रांद बा एक

पालक और शत्रुओं को दुखी करनेवाला था ॥ ७ ॥ उसकी एक लड़की
 दीपक की लौ के समान थी उसका नाम रौशनदिमागी था ॥ ८ ॥ दोनों
 बच्चों को स्कूल में डाल दिया गया, क्योंकि पहले वे बच्चे आवारा ही
 घूमते रहे थे ॥ ९ ॥ वे रुम देश के सयाने मौलाना विद्वान के पास पढ़ने के लिए
 बैठे । राजा ने उसे नक़द दौलत और ज़मीन की जागीर बरूश दी ॥ १० ॥
 वहाँ दूसरे भी बहुत से लड़के पढ़ने के लिए बैठे थे । सब कोई किताब में
 से अपना सबक पढ़ते थे ॥ ११ ॥ हर एक लड़का किताब को बगल में
 दबाकर ले आता था । तौरेत और इंजील आदि भी लाये जाते
 थे ॥ १२ ॥ सात बोलियों के लिए दो स्कूल बनाए गए जिनमें एक में
 आदमी और एक में औरतें पढ़ती थीं ॥ १३ ॥ उन बच्चों को बहुत अच्छा
 एक मुल्ला पढ़ाता था और उन लड़कियों को एक विद्वान स्त्री पढ़ाती
 थी ॥ १४ ॥ उनके बीच एक दीवार बनी हुई थी, इसलिए एक तरफ़
 एक और दूसरी तरफ़ दूसरे पढ़ते थे ॥ १५ ॥ हर एक गुण सीखने में
 दोनों ही बढ़े-चढ़े थे, क्योंकि विद्या पढ़ने में वे एक-दूसरे से होड़ लगाते
 रहते थे ॥ १६ ॥ हर कोई हर एक किताब की वात्ता को पढ़ता था
 और फ़ारसी-अरबी ज़ुबान में एक-दूसरे से बातचीत करते थे ॥ १७ ॥
 एक ने दूसरे के साथ विद्या की बात छेड़ दी अर्थात् मूर्ख और विद्वान में

दिगर । जि कामल जि जायल जि नारद सियर ॥ १८ ॥
 कि शमशेर इलमो अलमबर कशीद । बहारे जवानी ब हरदो
 रशीद ॥ १९ ॥ बहारश दर आमद गुले बोसतां । बजुं बश
 दरां मद सहे चीसतां ॥ २० ॥ बरखश अंदर आमद शहिनशाहि
 चीं । बखूबी दरां मद तने नाजनीं ॥ २१ ॥ ब खूबी दर आमद
 गुले बोसतां । ब ऐश अंदर आमद दिले दोसतां ॥ २२ ॥ जि
 देवार जो अंदरूँ सूस हसत । जि देवार ओ हम चूँ सूरख
 गशत ॥ २३ ॥ ब दीदन अजाँ अंदरूँ हर दुतन । चरागे
 जहाँ आफतावे यमन ॥ २४ ॥ चुना इशक आवेखत हर दो
 निहाँ । कि इलमश रवद दसत होश अज जहाँ ॥ २५ ॥
 चुना हर दु आवेखत बाहम रगेब । कि दसत अज इना रफत
 पाँ अज रकेब ॥ २६ ॥ ब पुरशीद हरदो कि ए नेक खोइ ।
 कि ए (सू० ग्रं० १४१७) आफतावे जहाँ माह रोइ ॥ २७ ॥ कि
 ई हाल गुजरद ब आँ हर दो तन । बि पुरशीद अखवंद व
 अखवंद जन ॥ २८ ॥ चरागे फलक आफतावे जहाँ । चरा

बातचीत शुरू हुई ॥ १८ ॥ उन्होंने तलवार की विद्या में झंडा ऊँचा उठा
 लिया अर्थात् विद्या प्राप्त कर ली । दोनों अर्थात् राजा का लड़का और
 वजीर की लड़की जवानी के मौसम पर आ पहुँचे ॥ १९ ॥ उसकी
 फुलवाड़ी पर फूलों की वसंत ऋतु आ गई और इधर चीन देश के राजा
 अर्थात् कामदेव ने भी हलचल शुरू कर दी ॥ २० ॥ चीन का
 शहिनशाह (काम) अपनी चमक-दमक में आ गया । नाजनीन के शरीर
 में भी सुन्दरता आ गई ॥ २१ ॥ लड़का और लड़की सुन्दरता में
 आकर दोस्तों के साथ मिलकर रंगरेलियाँ मनाने लगे ॥ २२ ॥ उस
 दीवार में एक चूहा रहता था जिसके कारण दीवार में एक छेद जैसा हो
 गया था ॥ २३ ॥ संसार का दीपक (लड़की) और यमन का सूरज
 (लड़का) उस छेद में से एक-दूसरे को देखा करते थे ॥ २४ ॥ इस
 तरह चोरी-चोरी दोनों को इशक हो गया जिससे उनकी विद्या और संसार
 की होश जाती रही ॥ २५ ॥ दोनों आपसी प्यार की तीव्र लालसा में
 ऐसे फँस गए कि दोनों के हाथ से लगाम और पाँवों से रकाब निकल
 गई ॥ २६ ॥ दोनों ने (एक-दूसरे से) पूछा कि हे अच्छे स्वभाव वाले
 सूरज और चन्द्रमुखी ! तुम्हारा क्या हाल है ? ॥ २७ ॥ उन दोनों का यह
 हाल है, इस बात का अध्यापकों को पता लग गया । तब दोनों से उन्होंने
 पूछा ॥ २८ ॥ हे आकाश के दीपक और संसार के सूर्य ! तुम लोग

लागरी गशत वजहे नुमाँ ॥ २९ ॥ चि आजार गशतह बुगो
 जानमा । कि लागर चरा गशती ए जान मा ॥ ३० ॥
 अजारश बुगो ता इलाजे कुनम । कि सरजे शुमारा खिराजे
 कुनम ॥ ३१ ॥ शुनीद ई सुखन रा न दादश जवाब । फ़रो
 बुरद हर दो तने इशक ताब ॥ ३२ ॥ चु गुजरीद बरवै दु
 से चार रोज़ । बराभद दु तन हर दो गेती फ़रोज ॥ ३३ ॥
 बरो दूर गशतंद तिफ़ली गुबार । कि मुहरश बर आवुरद चूँ
 नउ बहार ॥ ३४ ॥ वजाँ फ़ाजलश बूद दुखतर यके । कि
 सूरत जमाल असत दानश बशे ॥ ३५ ॥ शनासीद ओरा जि
 हालत वजाँ । बगुफ़तश दखूँ खिलवतश खुश जुबाँ ॥ ३६ ॥ कि
 ए सरव कद माह रो सीम तन । चरागे फ़लक आफ़तावे
 यमन ॥ ३७ ॥ जुदाई मरा अज तुरा कतरह नेसत । ब दीदन
 दु क़ालब ब गुफ़तम यकेसत ॥ ३८ ॥ ब सून हाल गो ता चि
 गुज़रद तुरा । कि सोजद हमह जान जिगरे मरा ॥ ३९ ॥ कि
 पिनहाँ सुखन करद धाराँ खतासत । अगर रास गोई तु बर
 मन रवासत ॥ ४० ॥ कि दीगर बगोयस मरा रासत गो ।

दुर्बल क्यों होते जा रहे हो, क्या कारण है ? ॥ २९ ॥ मेरी जान ! बताओ
 तुम्हें क्या दुख है ? तुम दुर्बल क्यों हो रहे हो ? ॥ ३० ॥ दुख बताओ
 तो मैं उसका इलाज करूँ और आपके दर्द की दवा करूँ ॥ ३१ ॥
 उन्होंने इस बात को सुना पर कोई जवाब न दिया और दोनों ने इशक की
 ताब में गर्दन झुका लीं ॥ ३२ ॥ जब दो-चार दिन उन पर ऐसे ही
 बीत गए तो वे दोनों संसार के सामने प्रकट हो गए ॥ ३३ ॥ बचपन का
 अंधेरा दूर हो गया और जवानी का नया मौसम उन पर छा गया ॥ ३४ ॥
 विद्वान् की एक लड़की थी जो बहुत ही सुन्दर स्वरूप वाली और चतुर
 थी ॥ ३५ ॥ उसने उन्हें उनके हालात से पहचान लिया और एकान्त
 में ले जाकर उन्हें मीठी जुवान से कहा ॥ ३६ ॥ हे देवदारु
 जैसे कद, चन्द्रमा जैसे मुँह और चाँदी जैसे शरीरवाले, आसमान
 के दीपक और यमन देश के सूरज ! ॥ ३७ ॥ मुझे तुमसे बिछड़ना एक
 पल भर के लिए भी अच्छा नहीं लगता । देखने में तेरा-मेरा अलग-
 अलग शरीर है, पर कहना इसे एक ही चाहिए ॥ ३८ ॥ तुम मुझे अपना
 हाल बताओ कि तुम्हारे साथ क्या बीत रही है ? (तुम्हें इस तरह
 देखकर) मेरी जान और दिल हमेशा जलता रहता है ॥ ३९ ॥ दोस्तों
 से बात छिपानेवाला भूल करता है । अगर तू मुझे सच कह दे तो यह तेरे

कि अज खून जिगरे मरा तो बिशो ॥ ४१ ॥ सुखन दुजदगी
करद याराँ खतासत । अमीरान दुजदी वजीराँ खतासत ॥ ४२ ॥
सुखन गुफतने रासत गुफतन खुश असत । कि हक गुफतनो
हम चु साफ़ी दिल असत ॥ ४३ ॥ बसे बार गुफतश जवाबो
न दाद । जवाबे जुबाँ सुखन शीरी कुशाद ॥ ४४ ॥ यके
मजलस आरासत बा रोद जाम । कि हम मसत शुद मजलसे
ओ तमाम ॥ ४५ ॥ ब कैफ़श हमह हम चु आवेखतंद ।
कि जखमे जिगर बाजुबाँ रेखतंद ॥ ४६ ॥ सुखन बा जुबाँ
हम चु गोयद मुदाम । न गोयद बजुज सुखन महबूब
नाम ॥ ४७ ॥ दिगर मजलस आरासत बा रोद चंग ।
जवानान साइशतहे खूब रंग ॥ ४८ ॥ हमह मसत खो शुद
हमह खूब मसत । इनाने फ़ज़ीलत बरूँ शुद जि दसत ॥ ४९ ॥
हराँ कस कि अज (म० प्र० १४१८) इलम सुखनश बिराँद । कि
अज बेखुदी नाम हरदो बुखाँद ॥ ५० ॥ चु इलमो फ़ज़ीलत
फरासोश गशत । बुखाँद बा यक दिगर नाम मसत ॥ ५१ ॥

और मेरे लिए ठीक है ॥ ४० ॥ मैं अन्य किसी को नहीं बताऊँगी, तू
मुझे सच बता दे । तू मेरे जिगर पर से खून को धो दे (और मुझे
सब बता दे) ॥ ४१ ॥ मित्रों से चोरी रखना भारी भूल है और
राजाओं का वजीरों से चोरी रखना भी भूल है ॥ ४२ ॥ मित्रों को
सच बताना अच्छा होता है । सच कहना दिल को साफ़ करने की
तरह है ॥ ४३ ॥ उसने बहुत बार कहा पर उसने जवाब नहीं दिया ।
जवाब लेने के लिए ही वह मीठी-मीठी बातें कर रही थी ॥ ४४ ॥
फिर उसने एक सभा बुलाई जिसमें संगीत का कार्यक्रम हुआ । प्याला
बाँटा गया और सभा में आए सभी लोग मस्त हो गए ॥ ४५ ॥ शराब
के नशे में वे सभी ऐसे हो गए कि जिगर के जखमों को जुबान के रास्ते
से बाहर निकालने लगे ॥ ४६ ॥ बाकी सब तो हमेशा जैसी ही बातें
कर रहे थे पर ये दोनों अपने-अपने प्रिय के अलावा कुछ नहीं बोल रहे
थे ॥ ४७ ॥ (मौलाना की लड़की ने) दूसरी सभा बाजों और सारंगियों
से की । यह सुन्दर नौजवानों के लिए थी ॥ ४८ ॥ सभी मस्त
स्वभाव वाले मस्त हो गए और विद्या की लगाम से बाहर हो गए ॥ ४९ ॥
जिस किसी ने भी उनके साथ विद्या की बात छेड़ी उसे कोई जवाब
न देकर दोनों के नाम ही मस्ती में बोले जा रहे थे ॥ ५० ॥ जब विद्या
और बुद्धि की चतुराई भूल गई, तब मस्ती में वे एक-दूसरे का नाम ही

हरा कस कि देरीनह रा हसत दोसत । जुबाँ खुद कुशायिदह
 अज नाम ओसत ॥ ५२ ॥ शनाशिद कि ई गुल सुखन आशक
 असत । ब गुफ्तन हुमायूँ सुबक तन खुश असत ॥ ५३ ॥
 कि अज इशक अज मुशक अज खमर खूँ । कि पिनहाँ न माँद
 असत आमद बरूँ ॥ ५४ ॥ ब शहिर अंदरूँ गशत शुहरत
 पजीर । कि आजादहे शाहु व दुखतर वजीर ॥ ५५ ॥
 शुनीद ई सुखन शहि दु किशती बुखाँद । जुदा बर जुदा हरदु
 किशती निशाँद ॥ ५६ ॥ रवाँ करद ओरा ब दरीया अजोम ।
 दु किशती यके शुद हमह मउज बीम ॥ ५७ ॥ दु किशती
 यके गशत ब हुकमे अलाह । ब यक जा दराँमद हुसा शमश
 माह ॥ ५८ ॥ बुबीं कुदरते किरदगारे अलाह । दु तन रा
 यके करद अज हुकम शाहि ॥ ५९ ॥ दु किशती दराँमद ब
 यक जा दु तन । चरागे जहाँ आफतावे यमन ॥ ६० ॥ बि
 रफ्तंद किशती ब दरीयाइ गार । ब मउज अंदर आमद चु
 बरगे बहार ॥ ६१ ॥ यके अजदहा बूद आ जाँ निशसत ।

पढ़ते जाते थे ॥ ५१ ॥ जो जिसका कोई पुराना मित्र था वह उसी का
 नाम लिये जा रहा था ॥ ५२ ॥ इस तरह की बातों से पता चल
 गया कि यह लड़का आशिक हो गया है । वह बोलने में शुभ
 लगनेवाला, कोमल तन वाला और अच्छा है ॥ ५३ ॥ लोग कहा करते
 हैं कि इश्क-मुश्क (खाँसी-खुजली, खैर) तथा खून, शराब और पान
 छिपाने से भी छिपते नहीं ॥ ५४ ॥ सारे शहर में यह बात प्रकट हो
 गई कि राजा का लड़का और वजीर की लड़की एक-दूसरे से प्यार
 करते हैं ॥ ५५ ॥ इस बात को सुनते ही राजा ने दो कश्तियाँ मँगवाई ।
 उन दोनों को अलग-अलग कश्ती पर बैठा दिया ॥ ५६ ॥ फिर उन
 दोनों कश्तियों को दरिया के गहरे और तेज धार पानी में चला दिया ।
 आखिर में लहरों की वजह से दोनों कश्तियाँ एक हो गई ॥ ५७ ॥
 अल्लाह के हुक्म से दोनों कश्तियाँ जुड़कर एक हो गई । वह सूरज और
 चाँद एक जगह पर इकट्ठे हो गए ॥ ५८ ॥ उस कर्ता परमात्मा की
 कुदरत देखो, राजा के हुक्म ने दोनों शरीरों को इकट्ठा कर दिया ॥ ५९ ॥
 दोनों कश्तियों में आते हुए दोनों शरीर अर्थात् अरब का दीपक
 और यमन का सूरज एक जगह पर इकट्ठे हो गए ॥ ६० ॥ कश्ती
 चल पड़ी और नदी के गहरे पानी में आ गई । वसन्त ऋतु के पत्तों
 की तरह नाव लहरों में आ गई ॥ ६१ ॥ उस जगह पर एक बड़ा

ब खुरदन दराँमद वजाँ करद जसत ॥ ६२ ॥ दिगर पेश तर
 बूद कहरे बला । दु दसतश सतूँ करद बे सर नुमा ॥ ६३ ॥
 मियाँ रफत शुद किशतीए हर दु दसत । बनेसे दमानद अजो
 मार मसत ॥ ६४ ॥ गरिफतंद ओरा बदसत अंदलूँ । ब
 बखशीद ओरा न खुरदंद खूँ ॥ ६५ ॥ चुना जंग शुद अजदहा
 बा बला । कि बेलूँ निआमद ब हुकमे खुदा ॥ ६६ ॥ चुना
 मउज खेजद जि दरीया अजोम । कि दीगर न दानिसत जुज
 यक करीम ॥ ६७ ॥ रवाँ गशत किशती ब मउजे बला ।
 बराहे खलासी जि रहमत खुदा ॥ ६८ ॥ ब आखर हम अज
 हुकम परवरदिगार । कि किशती बरआमद जि दरीया
 किनार ॥ ६९ ॥ कि बेलूँ बराँमद अजाँ हर दु तन । निशसतह
 लबे आब दरीया यमन ॥ ७० ॥ बरामद यके शेर दीदन
 शिताब । ब खुरदन अजाँ हर दु तन रा (म०प०१४१६)
 कबाब ॥ ७१ ॥ जि दरीया बर आमद जि मगरे अजोम ।
 खुरम हर दुतन रा ब हुकमे करीम ॥ ७२ ॥ बजाइश दरामद
 जि शेरे शिताब । गजंदश हमी बुरद बर रोद आब ॥ ७३ ॥

अजगर बैठा हुआ था । वह इन्हें खाने के लिए झपटा ॥ ६२ ॥ दूसरी
 तरफ से उनकी एक डरावनी चूड़ेल नजर आई । उसने अपने दोनों
 हाथ खम्भे की तरह ऊपर किये । वह (दोनों हाथ) सिर के बिना
 आदमी दिखाई दे रहे थे ॥ ६३ ॥ उनकी नाव उन दोनों हाथों के
 बीच से चली गयी । वे मदमस्त सर्प के इसने से बच गए ॥ ६४ ॥ उस
 बला ने उन्हें अपने हाथों में पकड़ लिया । पर खुदा ने मेहरबानी की
 और उसने उनका खून न पिया ॥ ६५ ॥ अजगर और डायन की आपस
 में ऐसी लड़ाई हुई कि खुदा के हुक्म से कोई भी दरिया से बाहर न
 आया ॥ ६६ ॥ बड़े-बड़े दरियाओं से ऐसी लहरें उठती हैं जिन्हें उस
 कृपालु के अलावा कोई नहीं जान सकता ॥ ६७ ॥ बड़ी-बड़ी लहरों में
 नाव चल पड़ी । उससे छुटकारा पाने के लिए वे खुदा से दया की
 भीख माँगते थे ॥ ६८ ॥ पोषण करनेवाले प्रभु की आज्ञा से आखिर
 में नाव दरिया के किनारे आ लगी ॥ ६९ ॥ उस नाव से उतरकर दोनों
 यमन दरिया के किनारे पर बैठ गए ॥ ७० ॥ एक शेर उन्हें देखकर
 तुरन्त उनके शरीरों का कबाब खाने के लिए तुरन्त आ गया ॥ ७१ ॥
 उस दरिया में से एक बड़ा मगरमच्छ उन्हें खाने के लिए आ गया ॥ ७२ ॥
 उसी जगह पर शेर आ गया । उसने नदी पर छलाँग लगा दी ॥ ७३ ॥

ब पेचीद सर ओ खता गशत शेर । ब दहने दिगर दुश्मन
 अफतद दलेर ॥ ७४ ॥ ब गीरद मगर दशत शेरो शिताब ।
 ब बुरदंद ओरा कशीदह दर आब ॥ ७५ ॥ बुबीं कुदरते
 किरदगारे जहाँ । कि ई रा ब बखशीद कुसतश अजाँ ॥ ७६ ॥
 बि रफतंद हरदो ब हुकमे अमीर । यके शाहजादह ब दुखतर
 वजीर ॥ ७७ ॥ बि अफताद हरदो ब दसते अजीम । न
 शायद दिगर दीद जुज यक करीम ॥ ७८ ॥ ब मुलके हबश
 आमद आ नेक खोइ । यके शाहजादह दिगर खूब रोइ ॥ ७९ ॥
 दर आँ जा बिआमद कि बिनशसतह शाह । नशसतंद शब रंग
 जररीं कुलाह ॥ ८० ॥ ब दीदंद ओरा बुखादंद पेश । ब
 गुफतंद कि ए शेर आज्ञाद केश ॥ ८१ ॥ जि मुलके कदामी
 तु ब मन बगो । चि नामे किरा तो ब ई तरफ जो ॥ ८२ ॥
 वगर नह मरा तो न गोई चु रासत । कि मुरदन शिताब
 असत एजद गवाहसत ॥ ८३ ॥ शहिनशाहि पिसरे ममायंदरां ।
 कि दुखतर वजीर असत ई नउजवाँ ॥ ८४ ॥ हकीकत ब

उन लोगों के द्वारा सिर फिरा लिये जाने के कारण शेर का हमला निष्फल
 हो गया । बल्कि वह दिलेर खुद ही दूसरे दुश्मन के मुँह में गिर
 पड़ा ॥ ७४ ॥ मगरमच्छ ने शेर का हाथ पकड़ लिया और उसे खींचकर
 पानी में ले गया ॥ ७५ ॥ खुदा की कुदरत देखो कि उसने ज़िदगी बख्श दी
 और उसने उसे मार दिया ॥ ७६ ॥ खुदा के हुक्म में दोनों चल पड़े ।
 एक राजा का पुत्र और दूसरी वजीर की लड़की थी ॥ ७७ ॥ दोनों ही
 एक उजाड़ रास्ते पर चल पड़े जहाँ सिर्फ एक परमात्मा के सिवा अन्य
 कोई दिखाई न पड़ता था ॥ ७८ ॥ वे अच्छे स्वभाव वाले हब्शी मुल्क में
 आ गए । वह एक तो राजपुत्र है और दूसरी सुन्दर चेहरेवाली वजीर की
 लड़की है ॥ ७९ ॥ वे वहाँ आ गए जहाँ हब्शी राजा बैठा हुआ था ।
 वह ऐसा था मानों रात का काला रंग बैठा हुआ हो । परन्तु उसके
 सिर पर सुनहरा ताज था ॥ ८० ॥ उसने इन्हें देखा और पास
 बुला लिया । फिर कहा कि हे आज्ञाद शूरवीर ! ॥ ८१ ॥ तुम्हारा
 देश कौन सा है ? मुझे बताओ, तुम्हारा नाम क्या है और इस तरफ किसे
 ढूँढ़ते फिर रहे हो ? ॥ ८२ ॥ और अगर तूने मुझे सच न बताया तो खुदा
 गवाह है, तुम्हारी मौत नज़दीक है ॥ ८३ ॥ उसने कहा कि मायंदरा
 शहनशाह का मैं बेटा हूँ और यह नवयुवती उसके वजीर की पुत्री
 है ॥ ८४ ॥ उसने पहली बात और बाद में गुज़री मुसीबतों की कहानी

गफ़तश जि पेशीनह हाल । कि बरवै चु बुगज़शत चंदीं
जवाल ॥ ८५ ॥ ब मिहरस दरामद बगुफ़त अज जुबाँ ।
मरा खानह जाए जि खुद खानह दाँ ॥ ८६ ॥ वज़ारत खुदश
रा तुरामे दिहम । कुलाहे मुमालक तु बर सर निहम ॥ ८७ ॥
ब गुफ़तंद ई रा व करदंद वज़ीर । कि नामे वज़ाँ बूद रौशन
जमीर ॥ ८८ ॥ ब हर जा कि दुशमन शनासद अज़ीम ।
दबीदंद बरवै ब हुकमे करीम ॥ ८९ ॥ कि खूनश बरेज़ीद
करदंद ज़ेर । दिगर जा शुनीदे दबीदे दलेर ॥ ९० ॥ ब
हर जा कि तरकश बरेज़ंद तीर । ब कुशते अदूरा ब करदे
असीर ॥ ९१ ॥ ब मुदत यके साल ता चार माह ।
दरिख़िशिदह आमद चु रखिशिदह माह ॥ ९२ ॥ बदोज़ंद
दुशमन बसोज़ंद तन । बयाद आमदश रोज़गारे कुहन ॥ ९३ ॥
ब गुफ़तश यके रोज़ दुख़तर वज़ीर । (म०ग्रं० १४२०) कि ए शाह
शाहान रउशन जमीर ॥ ९४ ॥ ब एक बार मुलकत
फ़रासोश ग़शत । कि अज मसत मसती हमह होश ग़शत ॥ ९५ ॥
तु आँ मुलक पेशीनहरा याद कुन । कि शहरे पदर रा तु

भी उससे कह दी ॥ ८५ ॥ सुनकर उसके मन में मोह जाग पड़ा ।
तब उसने कहा कि जो भी घर-मकान है, वह सब तुम अपना ही
समझो ॥ ८६ ॥ मैं तुम्हें अपनी वज़ीरी देता हूँ और बहुत से मुल्कों
के प्रबंध का छत्र तुम्हारे सिर पर रखता हूँ ॥ ८७ ॥ यह कहा और उसे
अपना वज़ीर बना दिया जिसका नाम रौशनजमीर था ॥ ८८ ॥ फिर
उसने जहाँ कहीं भी राजा का बड़ा या छोटा दुश्मन देखा उस परमात्मा
के हुक्म में उस पर आक्रमण कर दिया ॥ ८९ ॥ उसने अपना खून
बहाया और शत्रुओं को अपने अधीन कर लिया । फिर दूसरी जगह कोई
सुना तो दिलेर होकर वहाँ भी धावा बोल दिया ॥ ९० ॥ वह अपने
तरकस में से जहाँ कहीं भी तीर फेंकता था दुश्मन को मार गिराता या
क्रंद कर लेता था ॥ ९१ ॥ एक साल चार महीने में ही वह चमकनेवाला
चाँद की तरह चमक उठा ॥ ९२ ॥ जिन दुश्मनों को तीरों में पिरोता
था उनके शरीर को आग में जला देता था । इसी तरह करते उसे पुराना
समय याद आ गया ॥ ९३ ॥ एक दिन उसे वज़ीर की लड़की ने कहा कि
हे राजा रौशनजमीर ! ॥ ९४ ॥ तुम्हें एक बार में ही अपना देश भूल गया
है । तुम मस्ती में ऐसे मस्त हुए हो कि तुम्हारा होश ही जाता रहा
है ॥ ९५ ॥ तुम पहले अपने देश को याद करो जो तुम्हारे पिता का शहर

आबाद कुन ॥ ९६ ॥ निगह दाशत अज फ़उज लशकर
तमाम । वसे गंज बखशीद बर वै मुदाम ॥ ९७ ॥ यके
लशकर आरासत चूँ नउ बहार । जि खंजर व गुरजो व बकतर
हजार ॥ ९८ ॥ जिरह खोद खुफतान बरगशतवान । जि
शमशेर हिंदी गिरां ता गिरान ॥ ९९ ॥ जि बंदूक ससहद व
चीनी कमान । जिरह रुम शमशेर हिंदीसतान ॥ १०० ॥
चि अज ताजी असपान फ़ौलाद नाल । हमह जू बदह फ़ौलान
अजिश बे मसाल ॥ १०१ ॥ हनह शेर सरदाँ व जोरावराँ ।
कि शेर अफ़कना रा बशफ़ अफ़कनाँ ॥ १०२ ॥ बरजम
अंदरूँ हमचु पील अफ़कन असत । बबजम अंदरूँ चरब चालाक
दसत ॥ १०३ ॥ निशाँ मे दिहद नेजह रा नोक खूँ । कशीदंद
अज तेग जहिर आब गूँ ॥ १०४ ॥ यके फ़उज आरासतह
हम चु कोह । जुवानान शाइसतहे यक शरोह ॥ १०५ ॥
बपोशीद दसतार दुखतर वजोर । ब बसतंद शमशेर जुसतंद
तीर ॥ १०६ ॥ ब सरदारीए करद पेशीनह फ़उज । रवाँ करद

है । उसे फिर आबाद करो ॥ ९६ ॥ वह पैदल और घुड़सवार सेना का
सदैव खयाल रखता था और उनमें बहुत से खजाने वाँटा करता
था ॥ ९७ ॥ वसत ऋतु की तरह उसने फ़ौज को हर तरह से तैयार
किया । हजारों कटारें, गदा और लौह-कवच तैयार करवाए ॥ ९८ ॥
उसने जिरहबख्तर, टोप और हिन्दुस्तानी तलवारें, जो अत्यधिक कीमती
थीं, ले लीं ॥ ९९ ॥ मशहद की बंदूकें, चीन की कमानें, रुम के तनत्राण
और हिन्दुस्तान की तलवारें इकट्ठी कर लीं ॥ १०० ॥ अरबी घोड़े,
जिनके लोहे के खुर लगे थे और मदमस्त काले रंग के हाथी उन्होंने ले
लिये ॥ १०१ ॥ सभी इस प्रकार महान बलवान योद्धा थे जो शेरों को
मारनेवाले शूरवीरों की कतार की कतार को गिरा देनेवाले थे ॥ १०२ ॥
ऐसे शूरवीर जो युद्ध में हाथी गिरा देनेवाले, सभा में मीठा बोलनेवाले और
हाथों से फुर्तिले थे ॥ १०३ ॥ बरछे की नोक का खून दुश्मन के मरने का
पता देता था । निकली हुई तलवारें जहर में डूबी हुई थीं ॥ १०४ ॥
उसने पहाड़ के समान एक सेना तैयार की जिसमें सजीले जवानों के जत्थे
थे ॥ १०५ ॥ वजोर की लड़की ने भी सिर पर पगड़ी बाँध ली ।
कमर से तलवार बाँध ली और तरकस को तीरों से भर लिया ॥ १०६ ॥
फ़ौज की सरदार इस लड़की को बना दिया और दरिया की लहरों की
तरह यह फ़ौज खाना कर दी ॥ १०७ ॥ बादल की काली घटा की

लशकर चु दरीयाइ मउज ॥१०७॥ यके गोल बसतह चु अबरे
 सियाह । ब लरजीद बूभो ब लरजीद साह ॥१०८॥ बियावुरद
 लशकर चु बर बै हदूद । सलाहे दिगर तीर तेगो नसूद ॥१०९॥
 बिआरासत लशकर ब साजे तमाम । हमह खंजरो गुरज
 गोपाल नाम ॥ ११० ॥ ब बुरदंद अकलीम ता राज तखत ।
 ब बुरदन शहे बाद पायान रखत ॥ १११ ॥ चुना जंग
 करदंद आँ भुलक रा । चु बरगे दरखताँ जि वादे सबा ॥११२॥
 ब कुशतन अदूरा कुशायद ब पेश । ब बेरूँ जि मुलकश हमह
 रूह रेश ॥ ११३ ॥ परी चिहरए हम चु शेरे नियाद । ब
 कुशतन अदूरा कि खंजर कुशाद ॥ ११४ ॥ ब हर जा दवीदे
 ब कुशते अजाँ । ब हर जा रशीदे ब बसते अजाँ ॥ ११५ ॥
 शुनीद ई अजाँ शाहि मायंदराँ । ब तुंदी दरामद बजाइश
 हुमाँ ॥ ११६ ॥ (सु०पं०१४२१) ब आरासतह फउज चूँ नउबहार ।
 जि तोपे तुपक खंजरे आबदार ॥ ११७ ॥ बपेशे शफ़ आमद
 चु दरया अमीक । जि सरता कदम हम चु आहन

तरह एक जत्या बनाकर भेज दिया । उस समय धरती काँप गई और
 चन्द्रमा हिल गया ॥ १०८ ॥ जब फ़ौज को राज्य की सीमा पर ले
 आया तो और अधिक तीरों, तलवारों, शस्त्रों की जरूरत ही न
 पड़ी ॥ १०९ ॥ फ़ौज को सारे सामान के साथ तैयार किया हुआ
 था । सबके पास कटार, गदा, गुल्लक और तलवार आदि शस्त्र
 थे ॥ ११० ॥ (वे) देश को बुरी तरह लूटकर ले गए । राजा हवा
 जैसे घोड़ों और अन्य सामान भी ले गया ॥ १११ ॥ उस देश को युद्ध
 ने ऐसा कर दिया जैसे वृक्ष के पत्तों को पतझड़ की हवा कर देती
 है ॥ ११२ ॥ शत्रु को मार डालने से आगे का रास्ता खुल गया और
 उस मुल्क से जो बाहर थे सबके चेहरे मूँड़ दिए गए ॥ ११३ ॥ परी
 जैसे चेहरे वाली (वज़ीर की लड़की) को शेर के समान जोश चढ़ा हुआ
 था । उसने शत्रु को मारने के लिए कटार को म्यान से निकाल
 लिया ॥ ११४ ॥ वह जहाँ टूट पड़ती है उसे मार गिराती है । जहाँ
 पहुँचती है उसे बाँध लेती है ॥ ११५ ॥ मायिंदर के राजा ने उनकी
 यह बहादुरी की दास्तान सुनी और गुस्से से भरकर उस जगह पर आ
 गया ॥ ११६ ॥ वसंत ऋतु के समान उसने फ़ौज को नये सिरे से
 सजाया । वीर तोप-बंदूकों और विषबुझी कटारें लिये खड़े थे ॥ ११७ ॥
 गहरी नदी की तरह शूरवीर सामने की कतार से आए । ये सिर से

गरीक ॥ ११८ ॥ ब आवाज तोपो तमाचह तुफंग । जिमी
 गशत हम चूँ गुले लालह रंग ॥ ११९ ॥ बमैदाँ दरामद कि
 दुखतर वजीर । ब यक दसत चीनी कमाँ दसत तीर ॥ १२० ॥
 ब हरजा कि परराँ शवद तीर दसत । ब सद पहिलूए पील
 मरदाँ गुजशत ॥ १२१ ॥ चुना मउज खेजद जिदरीयाब संग ।
 बरखश अंदर आमद चु तेगो निहंग ॥ १२२ ॥ ब ताबश
 दरामद यके ताब नाक । बरखश अंदर आमद यके खून
 खाक ॥ १२३ ॥ बताबश दरामद हमह हिंद तेग । बगुररीद
 लशकर चु दरीयाइ मेग ॥ १२४ ॥ बचरख अंदर आमद ब
 चीनी कमाँ । खताब आमदश तेग हिंदोसताँ ॥ १२५ ॥
 गरेवह बबावुरद चंदी करोह । ब लरजीद दरयाब दररीद
 कोह ॥ १२६ ॥ बरखश अंदर आमद जिमीनो जभाँ । ब
 ताबश दरामद चु तेगो यमाँ ॥ १२७ ॥ बतेज आमदो नेजहे
 बाँसतीँ । बजुंबश दरामद तने नाजनी ॥ १२८ ॥ बशोरश
 दरामद नफर हाइ कुहिर । जि तोपो ब नेजह बपोशीद

लेकर पाँव तक लोहे से ढके हुए थे ॥ ११८ ॥ तोपों, बंदूकों और
 पिस्तौलों की आवाज होने लगी और लड़ाई का मैदान "लाले" के फूल की
 तरह लाल हो गया ॥ ११९ ॥ वजीर की लड़की जंग के मैदान में आई ।
 उसने एक हाथ में चीन की कमान और दूसरे में तीर पकड़ा हुआ
 था ॥ १२० ॥ जहाँ कहीं से भी उसका तीर उड़ता वह सैकड़ों हाथी
 और मर्दों की पसलियों के बीच में से निकल जाता ॥ १२१ ॥ जैसे
 दरिया की लहरें पत्थर से टकराकर उछलती हैं उसी तरह सूरमाओं की
 तलवारें चमकने लगीं ॥ १२२ ॥ एक चमकीला खड़ग चमका
 तो खून और मिट्टी एक ही रंग में चमकने लगे ॥ १२३ ॥
 सभी तरफ हिन्दुस्तानी तलवारें चमकने लगीं । मूसलाधार
 वर्षा करनेवाले बादल की तरह फ़ौज गुंजने लगी ॥ १२४ ॥ चीनी
 कमान चमकने लगी और हिन्दुस्तानी तलवार भी चमकने
 लगी ॥ १२५ ॥ कई कोसों तक कोलाहल होने लगा जिससे
 दरिया काँप उठा और पहाड़ भी फट गया ॥ १२६ ॥ धरती और
 आकाश भी चमकने लग गये । यमन देश की तलवारों से चमक
 निकली ॥ १२७ ॥ बाँस की छड़ वाला बरछा तेजी में आया और
 नाजनीन (सुन्दरी) के मन में भी क्रोध आ गया ॥ १२८ ॥ सैनिकों ने
 क्रोध में आकर शोर-शराबा कर दिया । उस समय संसार तोपों और

दहिर ॥ १२९ ॥ ब जुंबस दरामद कमानो कमंद । दरखशाँ
 शुदह तेग सीमाब तुंद ॥ १३० ॥ ब जोश आमदह खंजरे
 ख्वार खूँ । जुबाँ नेजह मार स बरामद बरूँ ॥ १३१ ॥
 ब ताबश दरामद लको ताब नाक । यके सुरख गोगिरद शुद
 खून खाक ॥ १३२ ॥ दिहा दिह दराँमद जि तीरो तुफंग ।
 हया हय दरामद निहंगो निहंग ॥ १३३ ॥ चका चाक
 बरखासत तीरो कमाँ । बरामद यके रुसत खेज अज
 जहाँ ॥ १३४ ॥ न पोयिंदर रा बर जिमी बूद जा । न
 परिंदह रा दर हवा बूद राह ॥ १३५ ॥ चुना तेग बारीद
 मियाने मुसाफ़ । कि अज कुशतगाँ शुद जिमी कोहकाफ़ ॥ १३६ ॥
 कि पाओ सर अंबोह चंदाँ शुदह । कि मैदाँ पुर अज गोइ
 चउगाँ शुदह ॥ १३७ ॥ रवा रउ दरामद ब तीरो तुफंग ।
 कि पारह शुदह खोद खुफ़तान जंग ॥ १३८ ॥ चुना तेग
 ताबश त पीद आफ़ताब । (४०४०१४२२) दरखताँ शुदह खुशक
 व दरयाइ आब ॥ १३९ ॥ चुनाँ तीर बाराँ शुदह हम चु

बरछों में छिप गया ॥ १२९ ॥ कमान और फंदे हिलने लग गए और
 हिन्दुस्तान की चमकीली तलवार मारकाट करने लगी ॥ १३० ॥ खून
 पीनेवाली कटार गुस्से में आ गई और साँप की जीभ जैसा बरछा भी
 बाहर निकल आया ॥ १३१ ॥ चमकीले शस्त्रों का प्रकाश भी चमकने
 लग गया । लहू और मिट्टी एक ही होकर लाल रंग की गंधक बन
 गई ॥ १३२ ॥ तीरों और बंदूकों से धाँय-धाँय की आवाज आने लगी
 और मगरमच्छ जैसे सूरवीरों की तरफ़ से हाय-हाय की आवाज आने
 लग गई ॥ १३३ ॥ तीरों और कमानों से “खचाखच” की आवाज
 उठी । ऐसा मालूम पड़ता था जैसे संसार में प्रलय आ गया हो ॥ १३४ ॥
 पैदलों को (लाशों के कारण) धरती पर जगह नहीं मिलती थी और
 पक्षियों को (तीरों के कारण) आसमान में जगह नहीं मिलती थी ॥ १३५ ॥
 युद्ध में ऐसी निस्संकोच तलवार चली कि धरती मुर्दों का पहाड़ बन
 गई ॥ १३६ ॥ पैरों और सिरों का इतना बड़ा ढेर लग गया मानों
 गेंद और डंडों से मैदान भर गया हो ॥ १३७ ॥ तीर और बंदूक ऐसे
 चले कि युद्ध में पहने हुए शिरस्त्राण टुकड़े-टुकड़े हो गए ॥ १३८ ॥
 तलवारें सूरज की गर्मी की तरह ऐसे तप गईं कि वृक्ष और दरियाओं का
 पानी भी सूख गया ॥ १३९ ॥ तीरों की वर्षा ऐसी बिजली गिरने

बरकु । बिअफ़ताद शुद फ़ील चूँ फ़रक फ़रक ॥ १४० ॥
 ब हरब अंदर आमद वज़ीरे चु बाद । यके तेग़ सायंदरानी
 कुशाद ॥ १४१ ॥ दिगर तरफ़ आमद ब दुखतर अज़ाँ ।
 बरहिने यके तेग़ हिंदोसताँ ॥ १४२ ॥ दरख़शाँ शुदह आँ
 चुना तेग़ तेज़ । अदूरा अज़ो दिल शवद रेज़ रेज़ ॥ १४३ ॥
 यके तेग़ ज़द बर सरे ओ समंद । ज़िमीनश दरामद चु कोहे
 बिलंद ॥ १४४ ॥ दिगर तेग़ ओरा बिज़द करद नीम ।
 बिअफ़ताद बूमस चु करखे अज़ीम ॥ १४५ ॥ दिगर मरद
 आमद चु प्रराँ उकाब । बिज़द तेग़ ओरा ब करदश
 ख़राब ॥ १४६ ॥ चुकारे वज़ीरश बराहत रसीद । दिगर
 मिह्नते सियम आमद पदीद ॥ १४७ ॥ सियम देव आमद
 बग़लतीद खूँ । ज़ि दहलीज़ दोज़ख़ बरामद बरूँ ॥ १४८ ॥
 बकुशतंद ओरा दु करदंद तन । चु शेरे यिआँ हस चु गोरे
 कुहन ॥ १४९ ॥ चहारम दरामद चु शेराँ बजंग । चु बर
 बचहे गोर गरराँ पिलंग ॥ १५० ॥ चुना तेग़ बर वै बिज़द

की तरह हुई कि हाथी गिर पड़े, क्योंकि उनके सिर ही सिर दिखाई पड़ रहे थे ॥ १४० ॥ एक वज़ीर हवा की तरह लड़ाई में आया जिसने एक हाथ में मायिंदराँ की बनी हुई तलवार पकड़ी हुई थी ॥ १४१ ॥ दूसरी तरफ़ उसी की लड़की आई जिसने एक हाथ में हिन्दुस्तान की नंगी तलवार पकड़ी हुई है ॥ १४२ ॥ उनकी तेज़ तलवारें ऐसी चमकने लगीं कि उन्हें देखते ही शत्रु का दिल टुकड़े-टुकड़े हो रहा था ॥ १४३ ॥ घोड़े के सिर पर ऐसी तलवार मारी जिससे वह ऊँचे पहाड़ की तरह ज़मीन पर आ गिरा ॥ १४४ ॥ दूसरी तलवार उसे मारी गई और उसे दो टुकड़ों में बाँट दिया । वह ऊँचे महल की तरह धरती पर आ गिरा ॥ १४५ ॥ एक और मर्द उकाब की तरह युद्धभूमि में आया । उसे भी तलवार मारी और नष्ट कर दिया ॥ १४६ ॥ जब उसे वज़ीर को मारकर कुछ राहत महसूस हुई, और दूसरे को मारकर सुख मिला तो तीसरी विपत्ति आ हाज़िर हुई ॥ १४७ ॥ तीसरा दैत्य आया जो खून से सना हुआ था । वह मानों नर्क के दरवाज़े से निकलकर आया था ॥ १४८ ॥ बड़े शेर की तरह अथवा नीलगाय की तरह मारकर दो टुकड़े कर दिया ॥ १४९ ॥ चौथा भी शेर की तरह शूरवीर लड़ाई में आया । वह ऐसे आया जैसे नीलगाय के बच्चों पर चीता दहाड़ता हुआ आता है ॥ १५० ॥ वज़ीर की पुत्री ने उस पर ऐसी तलवार मारी कि

नाजनी । कि अज पुशत असपश दरामद जिमीं ॥ १५१ ॥
 कि पंचम दरामद चु देवे अजीम । यके जखम जद करद
 हुकमे करीम ॥ १५२ ॥ चुना तेग बर वै जदाँ खूब रंग ।
 जि सर ता कदम आमदह जेर तंग ॥ १५३ ॥ शसम देव
 आमद चु अफरीत मसत । जि तीरे कसाँ हम चु कबजह
 गुजशत ॥ १५४ ॥ बिजद तेग ओरा कि ओ नीम शुद । कि
 दीगर यला रा अजो बीम शुद ॥ १५५ ॥ चुनीता बमिकदार
 हफताद सरद । ब तेग अंदर आवेखत खास अज
 नबरद ॥ १५६ ॥ दिगर कस निआमद तमंनाइ जंग । कि
 बेहूँ नियामद दिलावर निहंग ॥ १५७ ॥ बहरब आमदश
 शाहि सायंदराँ । बताबश तपीदन दिले सरदमाँ ॥ १५८ ॥
 चु अबरस ब अंदाखत दउरे यलाँ । बरखश अंदर आमद
 जिहे आसमाँ ॥ १५९ ॥ बताबश दरामद जिमीनो जमन ।
 दरखशाँ शुदह तेग हिंदी यमन ॥ १६० ॥ चला (५०५०१४२३)
 चल दरामद कमानो कमंद । हया हय दरामद ब गुरजो
 गजंद ॥ १६१ ॥ चका चाक बरखासत तीरो तुफंग । जिमी

वह घोड़े की पीठ से धरती पर गिर पड़ा ॥ १५१ ॥ जब पाँचवाँ सबसे
 बड़ा दैत्य आया तो उस कृपालु प्रभु के हुक्म से उसे एक ही चोट में मार
 दिया ॥ १५२ ॥ उस सुन्दरी ने उस पर ऐसी तलवार मारी, जो सिर से
 पाँव तक (उसके साथ घोड़े को भी) चीर दिया ॥ १५३ ॥ मतवाले दैत्य
 जैसा छठा दैत्य वैसे ही आया जैसे कमान में से तीर जाता था ॥ १५४ ॥
 उसे तलवार मारी वह ठीक आधा-आधा हो गया । दूसरे शूरवीर भी
 इससे डर गए ॥ १५५ ॥ इस तरह सत्तर की गिनती तक के खास-खास
 शूरवीर मारकर तलवार में लटका लिये गये ॥ १५६ ॥ अब अन्य किसी
 की लड़ाई का विचार नहीं आता । बड़े-बड़े दिलावर शूरवीर भी मैदान
 में बाहर नहीं आते ॥ १५७ ॥ फिर मारिंदरा (ईरान के उत्तर की
 ओर का प्रदेश) का राजा खुद युद्ध में आया । उस समय शूरवीरों का
 हृदय क्रोध से तपने लगा ॥ १५८ ॥ जब उसके घोड़ों ने शूरवीरों के
 चारों ओर छलाँगें लगाईं, तब धरती और आकाश भी चक्कर में आ गए
 अर्थात् घूमने लग गए ॥ १५९ ॥ जब युद्धभूमि में हिन्दुस्तानी और यमन
 की तलवारें चमकीं, उसी समय धरती और आकाश में चमक
 हुई ॥ १६० ॥ कमानों और कबंधों की चलाने की आवाजें आने लगीं ।
 गदाओं की चोटें खानेवालों की हाय-हाय की आवाजें आने लगीं ॥ १६१ ॥

लाल शुद चूँ गुले लालह रंग ॥ १६२ ॥ हहा ह दरामद
 चुपह नंद रूँ । दिहा दिह शुदह खंजरे खार खूँ ॥ १६३ ॥
 बरखश अंदर आमद यके ताब रंग । बरखश अंदर आमद
 दु चालाक जंग ॥ १६४ ॥ बशोरश दरामद सराफील सूर ।
 बरखश अंदर आसद तने खास हूर ॥ १६५ ॥ ब शोरश
 दरामद जि तन दर खरोश । ब बाजूइ मरदाँ बरा वुरद
 जोश ॥ १६६ ॥ यके फ़रश आरासत सुरख अतलसे ।
 बुखानद चु मकतब जुबा पहिलूए ॥ १६७ ॥ ब मरदम चुना
 कुशत शुद कारज़ार । जुबाँ दर गुज़ारम नियामद
 शुमार ॥ १६८ ॥ गुरेज़ा शवद शाहि मायंदराँ । ब कुशतंद
 लशकर गिराँ ता गिराँ ॥ १६९ ॥ कि पुशतश बिअफ़ताद दुखतर
 वज़ीर । बि बसतंद ओरा कि करदंद असीर ॥ १७० ॥
 बनिज़दे बियावुरद जो शाह खेश । बिगुफ़तह कि ए शाह
 शाहान वेश ॥ १७१ ॥ बिगोयद कि ई शाह मायंदराँ ।
 बिबसतह बियावुरद निज़दे शुमाँ ॥ १७२ ॥ अगर तो बिगोई

तीरों और बंदूकों की बारिश हुई । धरती लाले के फूल की तरह लाल
 रंग की हो गई ॥ १६२ ॥ जब खून पीनेवाली कटार के चलने से “खचाखच”
 की आवाज़ हुई तो रणभूमि में से हाय-हाय की आवाज़ आई ॥ १६३ ॥
 जब फुर्तिले योद्धागण घोड़ों पर चढ़कर युद्ध में आए तो (शस्त्रों का)
 चमकीले रंग का प्रकाश हो गया ॥ १६४ ॥ जब उस अप्सरा ने घोड़े
 पर सवारी की तो इस्राफ़ील नामक फ़िरिश्ते की तुरही बजनी शुरू हो
 गई अर्थात् शत्रु के लिए क्रियामत का दिन आ गया ॥ १६५ ॥ जब
 शरीरों में क्रोध जगा और युद्धभूमि से शोरशराबा उठा तो शूरवीरों की
 भुजाओं में भी उछाल आ गया ॥ १६६ ॥ लाल रंग का रेशमी फ़शं
 (खून का) धरती पर बिछा दिया गया है और ऐसा लग रहा है कि योद्धा
 (बच्चे) स्कूल में पहलवी बोली पढ़ रहे हैं ॥ १६७ ॥ लड़ाई में इतने
 आदमी मारे गए हैं जिनकी गिनती जीभ से हो नहीं पाती ॥ १६८ ॥
 मायिंदरा का राजा युद्धभूमि से भागा क्योंकि उसकी बहुत फ़ौज लड़ाई में
 मारी गई थी ॥ १६९ ॥ वज़ीर की लड़की उसके पीछे पड़ गई, उसे
 पकड़ लिया और क़ैद कर लिया ॥ १७० ॥ उसे अपने राजा अर्थात्
 पति के पास ले गई । उसने कहा कि हे राजन् ! ॥ १७१ ॥ इस
 मायिंदरा के राजा को बांधकर तुम्हारे पास ले आई हूँ ॥ १७२ ॥ अगर
 तुम कहो तो इसे जान से मार दूँ और कहो तो ताला लगाकर क़ैद कर

ब जाँ ई बुरम । वगर तो बिगोई ब जिंदा दिहम ॥ १७३ ॥
 बजिदाँ सपुरदंद ओरा अजीम । सितानद अजो ताज शाही
 कलीम ॥ १७४ ॥ शहिनशाहगी याफ़त हुकमो रज़ाक । कसे
 दुश्मनारा कुनद चाक चाक ॥ १७५ ॥ चुना करद शुद कसद
 मिहनत कसे । कि रहमत बबख़शीद जो रहमते ॥ १७६ ॥
 कि ओह शाह बानू शुदो मुलक शाह । कि शाही हमी याफ़त
 हुकमे इलाह ॥ १७७ ॥ बिदिह साकीया सागरे सबज़ आव ।
 कि बेरूँ बिअफ़ताद परदह नकाब ॥ १७८ ॥ बिदिह साकीया
 सबज़ रंगे फ़िरंग । कि वक़ते बकार असत अज़ रोज़
 जंग ॥ १७९ ॥ १० ॥ (मू०ग्रं० १४२४)

॥ हिकायत दसवीं समाप्त ॥

हिकायत यारवीं ॥

१ ओं बाहिगुरु जी की फ़तह ॥

तुई दसतगीर असत दर माँदगाँ । तुई कारसाज़ असत
 बेचारगाँ ॥ १ ॥ शहिनशाहि बख़्शिंदए बे निआज़ ॥

लं ॥ १७३ ॥ उसे बड़ी जेल में भेज दिया । उससे देश का राज्य
 (सिंहासन), छत्र और चँवर छीन लिया ॥ १७४ ॥ उस परमात्मा के
 हुक्म से चक्रवर्ती राज्य प्राप्त कर लिया है और बहुत से दुश्मनों को टुकड़े-
 टुकड़े कर दिया है ॥ १७५ ॥ जो इस तरह के कष्टकारक आक्रमण को
 सह लेता है, उस पर दयालु परमेश्वर दया करता है ॥ १७६ ॥ वह रानी
 बन गई और वह राजा बन गया । परमात्मा के हुक्म से उन्होंने राज्य
 प्राप्त कर लिया ॥ १७७ ॥ हे साक़ी ! मुझे हरे रंग का प्याला दो
 जिससे घूँघट हट जाय और प्रियतमा का मुँह साफ़ दिखाई देने लगे ॥ १७८ ॥
 हे साक़ी, हरे रंग का प्रेम दो जो युद्ध के दिन और युद्ध के समय
 चाहिए ॥ १७९ ॥ १० ॥

॥ दास्तान दसवीं समाप्त ॥

दास्तान ग्यारहवीं

हे परमात्मा ! तुम ही थके-हारों को सहारा देनेवाले, बेचारे
 निरुपायों के काम बनानेवाले हो ॥ १ ॥ हे कृपालु प्रभु ! तुम बिना

जिमीनो जमाँ रा तुई कारसाज ॥ २ ॥ हिकायत शुनीदेम
 शाहे कलिंजर । कुना नीद यक दर चु अज कोह मंजर ॥ ३ ॥
 यके पिसर ओ बूद हुसनुल जमाल । कि लायक जहाँ बूद
 अज मुलक माल ॥ ४ ॥ यके शाहि ओ जाव दुखतर अजो ।
 कि दीगर न जन बूद समन बर कजो ॥ ५ ॥ वजाँ दुखतरे
 शाह आँ पिसर शाह । शुद आशुफतह बर वै चु बर शमश
 माह ॥ ६ ॥ बिगोयद कि ए शाह मारा बिकुन । कि
 दहिशत कसे मरद दीगर सकुन ॥ ७ ॥ शुनीदम कि दर शाहि
 हिंदोसताँ । कि नामे वजा शेर शाहे वजाँ ॥ ८ ॥ चुनाँ
 नशत दस्तूर मुलके खुदा । बयक दान बेगान रेजद जुदा ॥ ९ ॥
 बिगीरंद शाही बि अफताद तुरग । बपेशे गुरेजद चु अज
 बाज मुरग ॥ १० ॥ बिगीरद अजो हरदु असपे कलाँ । कि
 मुलको अराकश बिआसद अजाँ ॥ ११ ॥ बि बखशीद ओ रा
 बसे जर दु फील । कि बेरूँ बिआवुरद दरीयाइ नील ॥ १२ ॥
 यके नाम राहो सुराहो दिगर । चु आह कलाँ पाइ अजोमे

मांगे ही चक्रवर्ती राज्य दे देनेवाले हो और धरती तथा आकाश के
 काम करनेवाले हो ॥ २ ॥ हमने कालिंजर शहर के राजा की कहानी
 सुनी है, जिसने पहाड़-जैसा बड़ा दर्शनीय दरवाजा बनवाया था ॥ ३ ॥
 उसका एक पुत्र बहुत ही सुन्दर, स्वरूपवान था, जो देश और दौलत के
 हिसाब से हर तरह से संसार के योग्य था ॥ ४ ॥ उस स्थान पर एक
 धनिक की लड़की थी, जो चमेली के पत्र की तरह कोमल थी और उसके
 बराबर अन्य कोई स्त्री नहीं थी ॥ ५ ॥ धनिक की लड़की उस
 राजपुत्र पर ऐसे मोहित हो गई जैसे सूरज पर चाँद मोहित है ॥ ६ ॥
 उसने कहा— हे राजकुमार ! मुझसे शादी कर लो, किसी दूसरे मर्द से
 मत डरो ॥ ७ ॥ हमने सुना है कि हिन्दुस्तान में एक राजा है और उस
 बलवान राजा का नाम शेरशाह है ॥ ८ ॥ खुदा के मुल्क का यह
 तरीका है कि दूसरे का हक, चाहे वह दाने के भी बराबर हो, उसे अलग
 रखते हैं ॥ ९ ॥ राज्य लेने के लिए जिसके पीछे भी उसने घोड़ा लगाया
 वह आगे-आगे ऐसे भागा जैसे बाज से डरकर मुर्गा भागता है ॥ १० ॥
 उसके पास से उसने वह दोनों घोड़े लिये जो इराक देश से उसके पास
 आये थे ॥ ११ ॥ उसे बहुत-सा सोना और हाथी दिए जिन्हें वह दरिया
 नील के पार से लाया था ॥ १२ ॥ एक घोड़े का नाम राहु और दूसरे
 का सुराहु था । वे भागने में हिरन और अकल में आदमियों की तरह

दु नर ॥ १३ ॥ अगर असप हर दो अजा मे दिहद । वजाँ
पस तुरा खानह बानूँ कुनद ॥ १४ ॥ शुनीद ई सुखन रा
हमी शुद रवाँ । बियासद ब शहर शाह हिंदोसताँ ॥ १५ ॥
निशसतंद बर रोद जमना लबआब । बिबुरदंद बादह
कुरदंद कबाब ॥ १६ ॥ यसे दो बरामद शबे चूँ सियाह ।
रवाँ करद आवस बसे पुशतकाह ॥ १७ ॥ ब दीदंद ओरा
बसे पासबाँ । बतुंदी दरामद बताबश हुमाँ ॥ १८ ॥ बसे
बर वै बंदूक बाराँ कुनद । चु बा बरक अबरस बहाराँ
कुनद ॥ १९ ॥ हमी बजह करदंद दु सै चार बार । हम
आखर कुनद खाब खुफ्त इखतीयार ॥ २० ॥ बिदानद कि
खुफ्तह शवद पासबाँ । बपय मुरद शुद हम चु जखमे
यलाँ ॥ २१ ॥ रवाँ करद ओ जा बिआसद अजाँ । कि
बुन गाह (म०पं० १४२५) अज शाह करखे गिराँ ॥ २२ ॥ घरी
रा बिकोबद घरीया घरीयार । वजाँ मेख कोबद ब पुशते
दिवार ॥ २३ ॥ चुना ता बरामद दिगरे अजीम । दु
असपश नजर करद हुकमे करीम ॥ २४ ॥ यके रा बिजद

ये ॥ १३ ॥ (राजकुमार ने कहा—) अगर तुम वह दोनों घोड़े मुझे
ला दो तो मैं बाद में तुमसे शादी करूँगा और तुम्हें अपनी स्त्री
बनाऊँगा ॥ १४ ॥ उसने इस बात को सुना और चल पड़ी । वह
हिन्दुस्तान के एक राजा के शहर में आ गई ॥ १५ ॥ यमुना नदी के
किनारे पर बैठ गई । वहाँ उसने शराब पी और कबाब खाए ॥ १६ ॥
जब रात दो पहर बीत गई तो उसने पानी में बहुत से घास के गट्ठर
ठेल दिए ॥ १७ ॥ उन गट्ठरों को पहरेदारों ने देखा और गुस्से में
भड़क उठे ॥ १८ ॥ उन्होंने उन पर बहुत सी गोलियों की ऐसी बौछार की
जैसी बादल बिजली समेत वर्षा में बरसा करते हैं ॥ १९ ॥ इसी तरह दो-
तीन बार किया । अन्त में पहरेदारों ने नींद का समय गँवाना उचित
न समझा और सो गए ॥ २० ॥ जब उसने जान लिया कि पहरेदार
सो गए और घायल शूरवीरों की तरह थके-हारे पड़े हुए हैं ॥ २१ ॥
अब वह चली और वहाँ आ पहुँची जहाँ राजा के महल की नींव
थी ॥ २२ ॥ घड़ियाल बजानेवाला जब-जब घड़ियाल बजाता था,
तब-तब वह किले की दीवारों में कीलियाँ ठोकती जाती थी ॥ २३ ॥
इसी तरह उन कीलियों पर चढ़-चढ़कर वह ऊँची दीवार के ऊपर तक
आ गई ॥ २४ ॥ एक को उसने मारा और आघा कर दिया ।

ता अजो नीम करद । दरे पासवाने बर अज नीम करद ॥ २५ ॥
 दिगर रा बिजद ता जुदा गशत सर । सियम रा बिकुशतन
 शवद खून तर ॥ २६ ॥ चुअम रा जुदा करद पंजम बकुशत ।
 शशम रा बकुशतंद जमदार मुशत ॥ २७ ॥ शशम चौकीअस
 कुशद आभद अजाँ । कि हफ़तश गिराँ बुद चौकी गिराँ ॥ २८ ॥
 कि हफ़तम हमी कुशत जखमे अजीम । कि दसतश कुनद
 रखश हुकमे करीम ॥ २९ ॥ चुना ताजी आनह बिजद
 ताजीअश । कि बाला बियामद ब जमन अंदरश ॥ ३० ॥
 वगशतन दराबे ब बेरूँ अजाँ । कि हैरत बिमांदं शाहे
 जहां ॥ ३१ ॥ कि दंदा खुरद दसत अज शेरशाह । ब हैरत
 हमी रफ़त आलम पनाह ॥ ३२ ॥ कि सारा कुजा बुरद
 असपे अजीम । बि बख़शीद ओ हम चु कसमे करीम ॥ ३३ ॥
 दरेगा अगर रूइ ओ दीदमे । ब सद गंज सरबसत
 बख़शीदमे ॥ ३४ ॥ कि हैफ़सत गरौ दीदए याफ़तम । ब
 जाए दिगर दिल नजो ताफ़तम ॥ ३५ ॥ कि दीदार बख़शंद
 अगर ओ मरा । कि सद गंज सरबसत बख़शम वरा ॥ ३६ ॥
 चु शुहरत कुनानीद शहर अंदरूँ । कि बख़शीद भम खून अज

पहरेदारों के दो टुकड़े कर दिया ॥ २५ ॥ दूसरे को खड़ग मारा जिससे
 उसका सिर अलग हो गया । तीसरे को मारा और वह खून में लथपथ
 हो गया ॥ २६ ॥ चौथे का सिर अलग किया, पाँचवें को मारा और छठे
 को कटार भोंकी ॥ २७ ॥ छठे को मारकर वह आगे आई ताकि
 सातवें को मार सके जो बड़ी चौकी पर (खड़ा) था ॥ २८ ॥ सातवें
 को भी बड़ा घाव किया । खुदा के करम से उसने घोड़े की तरफ हाथ
 बढ़ाया ॥ २९ ॥ घोड़े पर चढ़कर उसे ऐसा चाबुक मारा कि घोड़ा
 दीवार से छलाँग लगाकर यमुना नदी में आ गया ॥ ३० ॥ पानी में
 गिरते ही घोड़ा पानी से बाहर आ गया । राजा यह देखकर हैरान
 रह गया ॥ ३१ ॥ शेरशाह ने गुस्से से अपने हाथ में दाँत काट लिया
 और हक्का-बक्का रह गया ॥ ३२ ॥ कौन सा आदमी मेरा घोड़ा कहाँ
 ले गया है ? ऐसे शूरवीर को मैं माफ़ करता हूँ ॥ ३३ ॥ अफ़सोस
 यदि मैं उस बहादुर को देख लूँ तो उसे मैं मुँह तक भरा खज़ाना दे
 दूँगा ॥ ३४ ॥ अगर मैं उसको देख लेता तो कम से कम प्यार से हटकर
 गुस्से की तरफ़ न जाता ॥ ३५ ॥ अगर वह आप ही मुझे दर्शन दे तो मैं
 उसे भरा हुआ खज़ाना बख़श दूँगा ॥ ३६ ॥ उसने शहर में ढिंढोरा पिटवा

खुआर खूँ ॥ ३७ ॥ बि बसतंद दसतार अज जाम जर ।
 ब पेशे शह आमद चु जररी सिपर ॥ ३८ ॥ बगोयद कि शेर
 अफ्रकनो शेरशाह । कि अज राह रा मन बिबुरदंद
 राह ॥ ३९ ॥ अजबमांद साहिब खिरद ई जवाब । दिगार
 बार गोयद कि बा वै सवाब ॥ ४० ॥ कि नकल सनुमाई
 मरा शेर तन । ब वजहे चरा बुरदा असपे कुहन ॥ ४१ ॥
 निशसतंद अजाँ वजहे बर रोद आव । बि बुरदंद बादह
 बखुरदन कबाब ॥ ४२ ॥ रवाँ करद अव्वल बसे पुशत काह ।
 दशा मे दिहद पासवानान शाह ॥ ४३ ॥ वजाँ पस ब कोशश
 कुनानीद लखत । ब पैरश दराँमद जि दरीयाइ सखत ॥ ४४ ॥
 वजाँ बिशकुनानीद ओ गिरद शुद । ब दीदन अजो शाह
 पय (सू० ग्रं० १४२६) मुरदह शुद ॥ ४५ ॥ गड़ी यक बिमादंद
 गरुब आफताब । वजाँ जा बियामद कुशायद तनाब ॥ ४६ ॥
 लगामश बिदादंद स्वारे शुदसत । बिजद ताजीआँनह चु
 अफरीत मसत ॥ ४७ ॥ चुना असप खोजीद बरतर जि शाह ।

दिया कि मैं उस खूंखार डकैत का दोष माफ़ करता हूँ (अगर वह मेरे सामने आ जाए) ॥ ३७ ॥ तब उस (लड़की) ने सुनहरी पगड़ी बांध ली और सुनहरी ढाल की तरह राजा के सामने आ गई ॥ ३८ ॥ और कहा कि हे शेर को मार डालनेवाले शेरशाह ! तेरे राहु नामक घोड़े को युक्ति से मैं ले गया हूँ ॥ ३९ ॥ बुद्धिमान राजा उसकी बात सुनकर हैरान रह गया और उसने दूसरी बार जल्दी से कहा ॥ ४० ॥ हे शेर की तरह शूरवीर ! मुझे उसकी नकल करके दिखाओ कि तुम कैसे घोड़े को ले गए हो ॥ ४१ ॥ वह नदी के किनारे वैसे ही बैठ गई । फिर उसने शराब पी और भुना हुआ मांस खाया ॥ ४२ ॥ फिर उसने पहले की तरह बहुत से घास के गट्ठर नदी में बहा दिए और राजा के चौकीदारों को धोखा देती रही ॥ ४३ ॥ उसके बाद फिर थोड़ी सी कोशिश की और उस कठिन दरिया से तैरकर पार हो गई ॥ ४४ ॥ उसने उसी तरीके से (पहरेदार) मारे और भाग निकली । उसे देखकर राजा हैरानी से हक्का-बक्का रह गया ॥ ४५ ॥ फिर सूरज डूबने में जब एक घड़ी का वक्त बाकी था तो वह वहाँ आ गई और उसने दूसरे घोड़े के आगे-पीछे के रस्से खोल दिए ॥ ४६ ॥ उसे लगाम दे दी और सवार हो गई । फिर दैत्य जैसे मतवाले घोड़े को चाबुक मार दी ॥ ४७ ॥ घोड़ा ऐसा कूदा कि राजा के ऊपर से ही ऊँचाई पर होता हुआ दरिया

जि बाला बियासद ब दरीयाइ गाह ॥ ४८ ॥ ब पैरश दरामद
 जि दरीया अजीम । कि पारस हमी गशत हुकमे करीम ॥ ४९ ॥
 फ़रोद आमदश असप करदस सलाम । बिगीयद सुखन शाहि
 अरबी कलाम ॥ ५० ॥ तु अकलश चरा गशत ए शाह
 शाह । कि मा राह बुरदन तु दादन सुराह ॥ ५१ ॥ कि
 गुफ़तश चुनी ता रवाँ करद रखश । ब याद आमदो एजदे
 दाद बख़श ॥ ५२ ॥ बिअफ़ताद पुशत असपहा बेशुमार ।
 कि ओरा न हम बर कुनद कस स्वार ॥ ५३ ॥ बिजद सरद
 दसतारहा पेश शाह । कि ए शाह शाहान आलम पनाह ॥ ५४ ॥
 बिगीरद कसे हरदु आहू बुराक । तु ओरा बिबख़शीद खुद
 दसत ताक ॥ ५५ ॥ चरामे कुनद कारहा बेख़ुदी । कि
 राहा अजो मन सुराहा तुई ॥ ५६ ॥ बिबुरदश अजो असप
 हरदो अजीम । वजाँ रा बि बख़शीद हुकमे रहीम ॥ ५७ ॥
 कि ओरा दरावुरद ख़ानह निकाह । कि कउले कुनद
 मुसतक्रीम हुकम शाह ॥ ५८ ॥ बिदिह साक्रीया सागरे
 कोकनार । दरे वक्रत जंगश बियासद बकार ॥ ५९ ॥

में ठिकाने पर आ पहुँचा ॥ ४८ ॥ फिर उस बड़े दरिया में से तैरता
 हुआ खुदा के हुक्म से पार निकल गया ॥ ४९ ॥ फिर वह घोड़े से
 नीचे उतरी, उसे सलाम किया और राजा के साथ अरबी में बातचीत
 की ॥ ५० ॥ हे शेरशाह ! तूने अपनी अक़ल खुद ही क्यों मार ली है ।
 मैं तो राहु घोड़ा ले गया था पर सुराहु घोड़ा तूने खुद ही मुझे दे
 दिया है ॥ ५१ ॥ उसे इस तरह कहा और घोड़ा रवाना कर दिया ।
 उस समय उसने परमात्मा का स्मरण किया ॥ ५२ ॥ अनेकों घुड़सवार
 उसके पीछे पड़ गए पर कोई भी सवार उसे पकड़ न सका ॥ ५३ ॥
 शूरवीरों ने पगड़ियाँ उतारकर राजा के सामने फेंक दी और कहा कि
 हे आलमपनाह ! ॥ ५४ ॥ भला हिरन की चालवाले उन दोनों घोड़ों
 को कौन पकड़ सकता है ? आपने अपने हाथों से उसे एक दे दिया
 है ॥ ५५ ॥ यह नासमझी क्यों की ? राहु तो उसने चुराया था, सुराहु
 उसे खुद ही दे दिया ॥ ५६ ॥ वह दोनों ही घोड़े राजा से ले गई और
 दयालु परमात्मा के हुक्म के अनुसार दोनों घोड़े उसने अपने मित्र को दे
 दिये ॥ ५७ ॥ अब वह उससे निकाह करके उसे अपने घर ले आया
 और अपना दिया हुआ वचन पूरा किया ॥ ५८ ॥ हे साक्री ! मुझे पोस्ते
 के रस (के समान नशा करनेवाला) प्याला दो क्योंकि यह युद्ध के समय

कि खूबसत दर वक्रत खसम अफ़कनी । कि यक कुरतयस
फ़ील रा पैकनी ॥ ६० ॥ ११ ॥

॥ हिकायत यारवीं समाप्तम् ॥

हिकायत बारहवीं ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

रज़ा बख़्श बख़्शिदए बेशुमार । रिहाई दिहो पाक
परवरदगार ॥ १ ॥ रहीमो करीमो मकीनो मकाँ । अज़ीमो
फ़हीमो ज़मीनो ज़माँ ॥ २ ॥ शुनीदम सुखन कोह कैबर
अज़ीम । कि अफ़गाँ यके बूद ओ जा रहीम ॥ ३ ॥ यके
बानूए बूद ओ हम चु माह । कुनद दीदन शरिशत गरदन
ज़ि शाह ॥ ४ ॥ दो अबरू चु अबरे बहाराँ कुनद ।
बलियगाँ (सू०ग्रं० १४२७) चु अज़ तीर बाराँ कुनद ॥ ५ ॥ हख़े
चूँ ख़लासी दिहद माह राँ । बहारे गुलिसताँ दिहद शाह
राँ ॥ ६ ॥ ब अबरू कमाने शुदा नाज़नीं । ब चशमश

काम आता है ॥ ५९ ॥ जो दुश्मन को गिराने के लिए अच्छा है ।
उसका एक घूँट हाथी को पछाड़ देता है ॥ ६० ॥ ११ ॥

॥ दास्तान ग्यारहवीं समाप्त ॥

दास्तान बारहवीं

आनंददाता अगणित रूप से कृपा करनेवाला है । वह पवित्र पोषक
है और मुक्ति-प्रदाता है ॥ १ ॥ वह दया करने और कृपा करनेवाला
है । वह मकानों में बड़ा मकान, धरती और आकाश के रहस्य को
जाननेवाला है ॥ २ ॥ खैबर नामक बड़े पहाड़ की हमने एक बात सुनी
है । वहाँ रहीम नामक एक पठान रहता था ॥ ३ ॥ चाँद-जैसी
उसकी एक औरत थी जिसका देखना ही राजाओं के गले का फंदा बन
जाता था ॥ ४ ॥ उसकी दोनों भाँहें बरसाती बादलों की तरह बनी हुई थीं ।
पलकों की कमान से वह नज़रों के कटाक्ष रूपी बाणों की बारिश किया
करती थी ॥ ५ ॥ उसके मुखड़े का दर्शन ही चन्द्रमा को भुला देता था
और राजाओं के मन की फुलवाड़ी को बसंत की तरह खिला देता था ॥ ६ ॥

जनद कैबरै कहरगीं ॥ ७ ॥ ब मसती दिहद हम चुनी रुइ
 मसत । गुलिसतां कुनद बूम शोरीद दसत ॥ ८ ॥ खुशे खुश
 जमालो कमालो हुसन । ब सूरतज बानसत फ़िकरे कुहन ॥ ९ ॥
 यके हसन खाँ बूद ओ जा फ़गाँ । बदानश हमी बूद अकलश
 जवाँ ॥ १० ॥ कुनद दोसती बा हमह यक दिगर । कि
 लैली व मजनूँ ख़िज़ल गशत सर ॥ ११ ॥ चु बा यक दिगर
 हम चुनी गशत मसत । चु पा अज़ रकाबो इना रफ़त
 दसत ॥ १२ ॥ तलब करद ओ ख़ानए ख़िलवते । मियाँ
 आमदश जो बदन शहवते ॥ १३ ॥ हमीं जुफ़त ख़ुरदंद बु से
 चार माह । ख़बर करद जो दुश्मने निज़द शाह ॥ १४ ॥
 ब हैरत दराँमद फ़गाने रहीम । कशीदन यके तेग़ गरराँ
 अज़ीम ॥ १५ ॥ चु ख़बरश रसीदो कि आमद शौहर ।
 हुमाँ यार खुद रा बिज़द तेग़ सर ॥ १६ ॥ हमहि गोशते देग़
 अंदर निहाद । मसालय बिअंदाख़त आतश बिदाद ॥ १७ ॥
 शौहर रा ख़ुरानीद बाकी बिमाँद । हमह नौकराँ रा जिआफ़त

उस नाज़ुक ओरत की दोनों भौहें कमान बनी हुई थीं, जिससे वह उन
 आँखों में से क्रोध से भरे हुए तीर मारती थी ॥ ७ ॥ चेहरे की मस्ती
 से शराब के भी होश भुला देनेवाली थी और (उसके न दिखाई देने से)
 फुलवाड़ी भी उजाड़ बियाबान हो जाती थी ॥ ८ ॥ बहुत अच्छे स्वरूप
 वाली, हृदय की सुन्दर और समझ में काफ़ी आगे बढ़ी हुई थी ॥ ९ ॥
 वहाँ हुसनखाँ नामक एक पठान था । वह जवाँ अक्ल का मालिक था
 अर्थात् काफ़ी होशियार था ॥ १० ॥ वे एक-दूसरे को प्यार किया
 करते थे । उनके प्यार को देखकर तो लैला-मजनू भी सिर झुका
 लेते थे ॥ ११ ॥ उन्हें एक-दूसरे से ऐसा प्यार हो गया कि
 उनके पैरों से रकाब और हाथों से लगाम निकल गई अर्थात्
 वे प्रेम में बेबस हो गए ॥ १२ ॥ उसने अकेले घर में
 बुलाया । उसके आते ही वह कामातुर हो उठी ॥ १३ ॥ इस तरह
 इकट्ठे खाते-पीते दो-तीन-चार महीने गुज़र गए । तब एक दुश्मन ने
 राजा को ख़बर फ़र दी ॥ १४ ॥ रहीम खाँ पठान हैरान हो उठा ।
 वह तलवार को म्यान से खींचकर गरजा ॥ १५ ॥ जब उसे ख़बर
 लग गई कि मेरा खाबिद आ रहा है तो उसने अपने यार के सिर में
 तलवार मार दी (और उसका सिर काट लिया) ॥ १६ ॥ उसका मांस
 देग़ में डाल दिया । मसाले डालकर नीचे आग जला दी ॥ १७ ॥

कुनाद ॥ १८ ॥ चु खुश गशत शौहर न दीदश चु नर ।
बकुशताँ कसे रा कि दादश खबर ॥ १९ ॥ बिदिह साकीया
सागरे सबज गूँ । कि मारा बकारसत जंग अंदरूँ ॥ २० ॥
लबालब बकुन दम बदम्म नोश कुन । गमे हर दु आलम
फ़रामोश कुन ॥ २१ ॥ १२ ॥ (म०ग्र० १४२८)

॥ हिकायत बारहवीं समाप्तम् ॥

पहले अपने खाबिद को खिलाया और बाक्की जो बच रहा वह सभी नौकरों
को प्रीत-भोज में खिला दिया ॥ १८ ॥ उसने जब किसी भी पुरुष
को वहाँ न देखा तो पति खुश होकर चला गया और उस आदमी को
मार डाला, जिसने आकर खबर दी थी ॥ १९ ॥ हे साक्की ! मुझे हरे
रंग का प्याला दे जिसकी मुझे लड़ाई में जरूरत है ॥ २० ॥ हे साक्की !
प्याला लबालब भर दे और हे मेरे मन ! तू उस प्याले को हर साँस के
साथ पीता रह और दोनों लोकों की चिंता भुला दे ॥ २१ ॥ १२ ॥

॥ दास्तान बारहवीं समाप्त ॥

१ ओं स्त्री भगउती जी सहाइ ॥

अथ असफोटक कवित लिख्यते ॥

॥ सवैया ॥ छबि ऊतम आकृति छाजति है लख लाजति
कंज प्रभा मुख की । म्रिग बाल ते नैन बिसाल से है सभ
जानित रास मनो सुख की । जिह हेरि सभ जल जंमुन मै
तिह हेरित प्यास कहाँ भुख की । कबहूँ हम सो नही कान्ह
हसे सखी का कहो अंतर के दुख की ॥ १ ॥ ॥ सवैया ॥ ब्रिज
नारि निहारि कै नंद कुमार बिसार सँभारह की मन मै । कहूँ
हार परे कहूँ बार गिरे कहूँ नैक न सुद्ध रही तन मै । झखकेत
के बानन पीड़ित भी मन जाइ रह्यो मन मोहन मै । मनो दीप
के भेद सुने सुरनाद म्रिगीगन जाइ बिधी बन मै ॥ २ ॥
॥ सवैया ॥ मल्ल भिरे कहूँ मत्त मतंग उतंग कहूँ मिल उशट

स्फुट कवित्तों की रचना

॥ सवैया ॥ शोभायमान आकृति की उत्तम छवि और मुख की
प्रभा को देखकर कमल भी लजाते हैं । मृगशावकों के समान सुन्दर
नयन हैं और सभी उसे सुख का भंडार मानते हैं । जिसे सभी यमुना के
जल में डूँढते हैं, उसे ही मैं भूख-प्यास की परवाह किए बिना डूँढ रही हूँ ।
हे सखी ! कृष्ण कभी भी मुझसे हँसे नहीं हैं, मैं तुम्हें अपने मन का दुःख
क्या बताऊँ ? ॥ १ ॥ ॥ सवैया ॥ नंदकुमार कृष्ण को देखकर ब्रज की
सभी स्त्रियाँ मन की सँभाल करना भूल गयीं । कहीं किसी के हार पड़े
हैं, कहीं बाल खुले पड़े हैं । किसी को तन की तनिक भी सुधि नहीं रही ।
सभी काम के बाणों से पीड़ित हो उठीं और सबका मन मनमोहन में अटक
गया है । वे सभी ऐसी बिधी पड़ी हैं मानों मृगी जंगल में संगीत का
मार्मिक स्वर-भेद सुनकर बिध गयी हो ॥ २ ॥ ॥ सवैया ॥ कहीं मदमस्त
पहलवान, कहीं हाथी और कहीं ऊँचे-ऊँचे ऊँट लड़ाए जा रहे हैं । कहीं

लरावै । सहिख कहूँ कहूँ बाँके से बोक कहूँ भ्रिग लै भ्रिग सो
 बहिसावै । साँपन निउरन अउर चकोरन हैंन कहूँ हैराज लरावै ।
 भौर भिरै फुल हाथन सों कहूँ देखनहार सभै सुख पावै ॥ ३ ॥
 ॥ सवैया ॥ नाचत है नचवार कहूँ कहूँ गावत है कहूँ बीन
 बजावै । खेलत है कहूँ चौपर चारु बदे कछु होड हीयो
 परचावै । बाजत भेर भ्रिदंग कहूँ कहूँ भात कबित्तन बार न
 पावै । पंडत पुंज पुरान पढ़ै कहूँ जीत के गीत बनाइ
 सुनावै ॥ ४ ॥ ॥ सवैया ॥ ब्रिजनाथ के साथ सखी सभ ही
 उमगी ग्रहि ते चित चउप चढ़ै । न हटै अति हाठी हठी मन
 मै कोऊ सामुहि आवै क्रिपान कढ़ै । थहरात लगे पटमारत के
 कलधौत के भूखन साथ भढ़ै । मनो लीलत लाट दवानल कान
 लसै लहरै अति तेज बढ़ै ॥ ५ ॥ ॥ सवैया ॥ जिह देखके
 देखत ही रहीये किय न्यारो न भावत नैकु कबै । मुरझाइ परी
 छित मै त्रिय इउ सु (म०ग्र०उ) लगियो मनो चेटक बाँन अबै ।
 तेऊ दौर चली लख पौरन को निज ठौर ते जे निकसी न कबै ।
 लखि स्याम को रूप अनूपम सुंदर रीझ रही रिझवार सभै ॥ ६ ॥

सुन्दर भैसे, कहीं बकरे और कहीं मृग मृग से विवाद कर रहा है । कहीं
 साँप-नेवला की लड़ाई हो रही है, कहीं चकोर हैं और कहीं घोड़े लड़ाए
 जा रहे हैं । भौर फूल रूपी हाथियों से भिड़ रहे हैं और सभी देखने
 वालों को सुख प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ ॥ सवैया ॥ कहीं नर्तक नाच
 रहे हैं, कहीं गा रहे हैं और कहीं बीन बजा रहे हैं । कहीं चौपड़ खेला
 जा रहा है और बाजियाँ लगाकर मन बहलाया जा रहा है । भेरी, मृदंग
 आदि वाद्य बज रहे हैं और कवित्त पढ़नेवालों की बारी नहीं आ रही है ।
 कहीं पंडितों के झुंड पुराण पढ़ रहे हैं और जीत के गीतों को
 गाकर सुना रहे हैं ॥ ४ ॥ ॥ सवैया ॥ मन में उत्साहित होकर सभी
 सखियाँ कृष्ण के साथ घर से निकलीं । सामने से कोई कृपाण निकालकर
 भी यदि आ जाए तो भी ये हठ वाली हटती नहीं । उनका सोने और रेशम
 से भड़ा हुआ शरीर उसके प्रेम में थरथराने लगता है । ऐसे लग रहा है
 मानों कृष्ण दवानल को पी रहे हों और लहरें तेज-तेज बढ़ रही हों ॥ ५ ॥
 ॥ सवैया ॥ जिसे देखकर देखते ही रह जाना पड़ता है उससे अलग होना
 तनिक भी अच्छा नहीं लगता । स्त्रियाँ उसे देखकर मूर्च्छित हो घरती पर
 ऐसे गिर पड़ती हैं, मानों उन्हें बाण लगा हो । उसके चरणों को देखकर
 वे भी घर से भाग निकली हैं जो कभी भी घर से नहीं निकली थीं ।

॥ सवैया ॥ ब्रिखभान कुमार को साथ लिए जमुना तट
 कान बिराजत है । सभ हैं तन चंदन चित्र किए छवि गंड
 प्रचंडन छाजत है । जिह हेरत भूख भजै मन की लखि जाहि
 घनो अघ भाजत है । हरि राधे को रूप निहार मनै रति अउ
 रतिनाथ हैं भाजत है ॥ ७ ॥ ॥ सवैया ॥ ब्रिखभान कुमार
 शिगार सजै अति ही करि कै सु हुलास हियो । कहूँ कोकिल
 कीर करी अहि केहरि भान मनोज को छीन लियो । ब्रिजराज
 के भेटन काज चली सुभ रोरी को भाल में टीको दियो । मनो
 चंद के मंडल मै कवि स्याम सुहाग के भाग प्रकाश कियो ॥ ८ ॥
 ॥ सवैया ॥ खेलत कुंज गरीन के बीच लखै हरि जाइ सुत
 पठई री । बाँकी सी बान सो हेरत है हरि एक ही हेरन होहूँ
 हरी री । लेत है मोल मनोजह को उपमा मुहि ते नहि जात
 कही री । मोहे है मीन म्रिगा गिनती कहि कान के नैन कि
 बान सखी री ॥ ९ ॥ ॥ सवैया ॥ जानत ग्वार गवार कहाँ
 जति ते सभ ग्वारन मै कह ऐहैं । चउदह लोक स्रिजे जिनके

श्याम के सुन्दर अनुपम रूप को देखकर सभी रीझ उठी हैं ॥ ६ ॥
 ॥ सवैया ॥ वृषभानु की कुमारी अर्थात् राधा को साथ लेकर कृष्ण यमुना
 तट पर विराजमान हैं । सबने तन पर चंदन लगा रखा है और सुन्दर
 छवि शोभा पा रही हैं । जिसको देखकर मन की भूख भाग जाती है
 और घने पाप भी नष्ट हो जाते हैं । राधा और कृष्ण का रूप देखकर
 तो मानों रति कामदेव भी भाग रहे हैं ॥ ७ ॥ ॥ सवैया ॥ वृषभानु-
 कुमारी (राधा) ने उल्लसित होकर शृंगार किया है और ऐसा लग
 रहा है कि उसने कोयल, तोता, हाथी, नागिन, शेर, कामदेव आदि सबको
 गवँहीन कर उनका स्वाभिमान छीन लिया हो । वह माथे में रोली का
 टीका लगाकर ब्रजराज को मिलने के लिए चल दी है । कवि श्याम के
 कथन के अनुसार ऐसा लगता है कि उसी ने चन्द्रमा को भी प्रकाशित
 किया हो ॥ ८ ॥ ॥ सवैया ॥ तुमने मुझे भेजा और मैंने कुंजगलियों में
 खेलते हुए कृष्ण को देखा । वह बाँकी चितवन से देखता है और
 उसके देखने से मानों मुझे उसने चुरा लिया हो । वह तो कामदेव को
 भी मोल ले लेने की शक्ति रखता है और उसकी उपमा कही नहीं जा
 सकती । उसने तो मछली और मृग सबको मोहित कर लिया है ।
 हे सखी ! कृष्ण की आँखें हैं या बाण हैं ॥ ९ ॥ ॥ सवैया ॥ ये गंवार
 ग्वाले नहीं जानते हैं कि वे (कृष्ण) भला गंवारों में क्यों आएँगे ? जिसने

तुमको हरि तौ न कहा सुख पैहैं । चित उठी चित यो करि
 ए ब्रिजराज की केल के खेल सभै हैं । इउ नही जानत मूढ़
 त्रिया घहरात घटा सुन कै दुख पैहैं ॥ १० ॥ ॥ दूती बाच
 नाइका प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ तेरी तरीफ सदीव करै मुख तेरी
 कथा नित गावत है । हित तेरे शिगार सजे सजनी हित तेरे
 ही बेन बजावत है । हित तेरे ही चंदन अउ घनसार दोऊ
 घसि अंग लगावत है । हरि को मन स्त्री ब्रिजभान कुमार
 हरियो कहूँ जान न पावत है ॥ ११ ॥ ॥ सवैया ॥ हउ तुहि
 ल्यावनि काज पठाई री बेग चलो ब्रिजराज चितारी । तेरो
 ही धिआन रहै धरि कै जुबती सभ अउ चितहूँ ते बिसारी ।
 अउ हठ तै तनको न तजै रजनी बितई सु भई उजिआरी ।
 मान मनावनहार तजियो तजै तूँ किउ न भान दई की
 सवारी ॥ १२ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप को बेख कबे धरिहै हरि
 कुंजगरी कबि आन बसैहै । मोरपखो अन को धरिहै कब
 गवारन के ग्रहि (मू०ग्रं०अ) गोरसि खैहै । बेन बजैहै कबै बन मै
 कब मोहि बुलावन तोहि पठैहै । भान कहियो हमरो हरि पै चल

चौदह लोकों का सृजन किया है, वह हरि तुम लोगों में रहकर क्या सुख
 प्राप्त करेगा । मन सोचता है कि ये सब तो ब्रजराज के खेल और लीलाएँ
 हैं । ये मूर्ख नहीं जानते कि बहराते हुए बादलों की बात सुनकर
 उसे कितना दुख होगा ॥ १० ॥ ॥ दूती उवाच नायिका के प्रति ॥
 ॥ सवैया ॥ हे सखी ! वह हमेशा तुम्हारी ही प्रशंसा करता है और तेरी
 ही कहानी कहता रहता है । तेरे ही लिए वह शृंगार करता है और तेरे
 ही लिए बाँसुरी बजाता है । तेरे ही लिए वह कपूर और चंदन की
 घिसकर अंगों में लगाता है । कृष्ण का मन तो राधा ने हर लिया है अतः
 वह कहीं भी नहीं जा पाता है ॥ ११ ॥ ॥ सवैया ॥ तुम्हें कृष्ण ने
 याद किया है और मुझे तुम्हें लेने के लिए भेजा है । वह तेरे ही ध्यान
 में लगा हुआ है और उसने बाकी सब युवतियों को मन से विस्मृत कर
 दिया है और तुम हो कि हठ को छोड़ नहीं रही हो; इधर सारी रात
 बीत गयी और उजाला हो गया है । हे भाग्यवान ! उस मनाने योग्य
 कृष्ण ने तो अपना मान त्याग दिया है फिर तू अपना मान क्यों नहीं
 छोड़ती ॥ १२ ॥ ॥ सवैया ॥ अब भला कब वे गोप-वेश में कुंजगली में
 आएँगे ? मोरपंख धारण कर ग्वालिनों के घर में दूध पिएँगे ? कब वेणु
 बजाएँगे और मुझे बुलाने के लिए तुझे भेजेंगे ? हे सखी ! मेरा कहना

री बहुरो हरि हाथ न ऐहै ॥ १३ ॥ ॥ सवैया ॥ कहो जसुधा
 के सु ऐहै कबै हरि कुंज गरीन कबै बसि है । कबि कान
 कहाइ है आपन को तेरो रूप की रास कबै रसि है । ब्रिज
 नारि गवारि तूँ रार करे हरि जानत इछ हमरे बसि है ।
 तजि अउहठि स्याम पै बेग चलो नही तोहि सभै चतुरा हसि
 है ॥ १४ ॥ ॥ नायका बाच दूती प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ जिह गोरस
 काज गवार गवारनि आप गरीन मैं जाइ गही है । सैंकड़े स्याम
 सखा लिए संग हनी मटकी दिओ ढार दही है । काहे कहो
 अपने मुख ते कहु कान की कित न जात कही है । नेह कहा
 करबो तिह सो सखी गवारन की जिन नार सही है ॥ १५ ॥
 ॥ सवैया ॥ बाक सी बीन सींगार अगर से ताल म्रिदंग
 क्किपान कटारे । ज्वाल सी जउन जुडाई सी जेब सखी घनसार
 कि सार किआरे । रोग से राग बिराग से बोल बारद बूँद
 कि बान बिसारे । हूल से हाव हुलास सो हेर बहारन होहि
 भुजंगम कारे ॥ १६ ॥ ॥ सवैया ॥ काटे सैं काजर क्रांत

मानो और कृष्ण के पास चली चलो, अन्यथा वे हाथ नहीं आएँगे ॥ १३ ॥
 ॥ सवैया ॥ पशोदा से पूछो कि कृष्ण कब आएँगे और कब कुंजगलियों में
 बसेंगे ? कृष्ण कब हमारा अपना कहलाएगा और कब तुम्हारी रूप-राशि
 दिखाई पड़ेगी ? हे ब्रज-स्त्री ! तू गँवार है और बेकार ही झगड़ा कर
 रही है । तू समझ रही है कि कृष्ण तुम्हारे ही बस में हैं । तुम अपना
 हठ त्यागकर जल्दी चलो अन्यथा सभी चतुर स्त्रियाँ तुम्हारे पर
 हँसेंगी ॥ १४ ॥ ॥ नायिका उवाच दूती के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ जिसे
 दूध के लिए अनेक ग्वालों और ग्वालिनों ने पकड़ा है । श्याम ने सैंकड़ों
 सखाओं को साथ लेकर मटकियाँ फोड़ी हैं और दही गिरा दिया है । अब
 अपने मुँह से क्या कहें, कृष्ण की करनी कही नहीं जा सकती है । जिसने
 (सब) ग्वालों की स्त्रियों से अपना काम ठीक कर रखा है, भला उससे
 क्या प्रेम किया जाय ॥ १५ ॥ ॥ सवैया ॥ वीणा मात्र चित्लाहट,
 शृंगार अंगारों की तरह और ताल-मृदंग कृपाण-कटारों की तरह
 लगते हैं । यौवन ज्वाला-जैसा, पायजेब बुखार की कँपकपी-जैसी और
 कपूर लोहे के समान लगता है । संगीत रोग के समान और बोल प्यार
 से विहीन लगते हैं । ये बादलों की बूँदें हैं अथवा वाण छोड़े गए हैं ।
 हाव-भाव शूल के समान और बहारें साँपों-जैसी दिखाई दे रही हैं ॥ १६ ॥
 ॥ सवैया ॥ काजल कांटे के समान, क्रांति कृपाण की तरह और ठंडी

क्रिपान सी सूख बियाधि बियार बहीरी । कालि सी कोकिल
कूक कराल म्रिनाल कि ब्याल घरी कि छुरी री । भार सों
भउन भयानक भूखन जउन की ज्वाल सों जात जरीरी । बान
सी बीन बिना ब्रिजराज बसंत को अंत कि अंत सखी री ॥१७॥
॥ सवैया ॥ बादर बीर सनाहि सजे घहरात घटा सुनिहै हिह
नारी । दाबिर चात्रिक मोरन शोर क्रिपानि की बिदुलता
चमकारी । बान सी बूंद बलाइ सी ब्यार बंदूक सी ओरन की
बरखारी । खोनत बार झखी जैसे दारद खेत रहो ब्रिजराज
बिना री ॥ १८ ॥ ॥ सवैया ॥ बान सी ब्यार बिलाप सों
बोलब बाँक सी बीन बजंत ब्रियारे । जंग से जंग मुचंज दुखंग
अनंग कि अंक से अंक किआरे । चाँदनी चंद चिता चहूँ ओर
ते कोकिल कूक की हूक सी मारे । भार सो भउन भयानक
भूखन फूलन फूल फनी फनवारे ॥ १९ ॥ ॥ सवैया ॥ राई
रमू जर जाई री माई रनाई रमानज नैक रिझैबो । दाँनि कि
काँन को साथ पयाँन सयाँन सो रूप की रास रसैबो । मउजसी

हवा सूखे रोग के समान दिखायी देती हैं । कोयल काल के समान, कमल
सर्प के समान और समय छुरी के समान लग रहा है । यह भवन एक
बोझ और ये आभूषण भयानक लगते हैं । यौवन की ज्वाला से मैं जली
जा रही हूँ । बीन मुझे बाण के समान और ब्रजराज कृष्ण के बिना
बसंत का अब मानों अंत ही अंत है ॥ १७ ॥ ॥ सवैया ॥ बादल मानों
कवचधारी वीर हैं और हे स्त्री ! सुनो, घटाएँ घहरा रही हैं । मेढक,
चातक और मोरों का शोर हो रहा है । कृपाणें हैं कि बिजली चमक
रही है । बूंदें बाणों के समान, हवा बला के समान है और बंदूकों की
चारों ओर से वर्षा हो रही है । खून पानी के समान है और हे सखी !
कृष्ण के बिना तो वैसे ही मर जाने को जी चाहता है ॥ १८ ॥
॥ सवैया ॥ बाणों-सी हवा, बोलना विलाप-जैसा, वीणा बाँक की तरह
और वाद्य व्यर्थ से लगते हैं । शंख बेकार लगता है और मुचंग अंगों को
दुखा रहा है, काम है कि मेरी छाती पर हल चला रहा है । चन्द्रमा की
चाँदनी चिता के समान और कोयल की कूक दिल में हूक-सी खींचती है ।
यह संसार बोझ लगता है, आभूषण भयानक और फूल फन वाले सर्प की
तरह लगते हैं ॥ १९ ॥ ॥ सवैया ॥ हे माँ ! मेरा वैभव जल जाए, अगर
मैं उस रमापति कृष्ण को जरा-सा भी रिझा सकूँ । काश ! मैं कृष्ण के साथ
जा सकी होती और रास रचाती । मौज भी उसके बिना मार के समान

मार हजार (मू० प्र० ७) सी हार मनो शुभ गीत शिगार सुहैबो । हेम
 पहार सों हेर बयार कहो री सो हास हुलास चितैबो ॥ २० ॥
 ॥ सवैया ॥ खंजन से मन रंजन है दुख भंजन स्याम सो
 अंजनिआरे । बानन से अंग बारन से बिदसेस ते ऐसे न जाँहि
 सवारे । खंजन से सभ कंजन की ब्रित भोचन भाँसन के कजरारे ।
 नेह रंगे कि रंगे रंग काहू के काँन के नैन सखी मतवारे ॥ २१ ॥
 ॥ सवैया ॥ सीसे सहाब की फूल गुलाब कि सति किधो मदरा
 कि से प्यारे । बाँन से मतवारन से तरवारन से कि बिखी
 बिख वारे । नारिन के कजरारन के दुख टारन स्याम
 सों नींद निंदारे । हेरे ते लाज सन छुट जात है काँन
 के नैन की बाँन बिसारे ॥ २२ ॥ ॥ सवैया ॥ वारी हउँ
 नंदकुमार के रूप पै जाँ पर कोट मनोज सवारे । नारद से
 सुक सारद से जिनके जस को कहि के फुनि हारे । सेख सहंख
 धरे मुख याँही ते बीत गए जुग पार न पारे । सुन री सखि
 काँन बसे सभ ठाँ कजरा बिन नैन भए कजरारे ॥ २३ ॥
 ॥ सवैया ॥ कबहूँ हमरी सुधहूँ लहिहूँ हरि काहूँ के हाथ संदेस

और हार-शृंगार भी शोभा नहीं देता है । सोने के पहाड़ और सुन्दर हवा
 भला (उसके बिना) हास-विलास की याद आने दे सकती है ॥ २० ॥
 ॥ सवैया ॥ खंजन के समान मन को प्रसन्न करनेवाले और दुख के नाशक
 श्याम के अंजन लगे नेत्र हैं । बाणों के समान, मृग-शावकों के समान हैं
 जो तीनों लोकों के स्वामी से भी नहीं बनाए जा सकते । खंजन के
 समान, कमल के समान और स्त्रियों के मन को चुरानेवाले हैं । वे
 श्याम के नेत्र रंग में रंगे हैं, स्नेह में रंगे हैं या प्रेम में मतवाले हो रहे
 हैं ॥ २१ ॥ ॥ सवैया ॥ शीशे के समान चमकीले, या गुलाब के फूल
 के समान या मदिरा के प्रिय मत्त हैं । बाणों से, तलवारों से या विष-
 बाणों के समान हैं । नींद में अधमूँदे श्याम के नेत्र स्त्रियों के नयनों के
 दुखों को दूर करनेवाले हैं । देखने से ही लज्जा छूट जाती है— ये कृष्ण
 के नयन हैं या बाण हैं ॥ २२ ॥ ॥ सवैया ॥ मैं नंदकुमार के रूप पर
 बलिहारी हूँ, जिस पर करोड़ों कामदेव न्योछावर हैं । उसके यश का
 गायन करते हुए नारद, शारदा, शुकदेव सभी हार गए हैं । शेषनाग ने
 उसकी प्रशंसा करने के लिए हजारों मुख धारण किए हैं । हे सखी ! सुनो,
 कृष्ण तो सभी स्थानों पर बसते हैं और मेरे नयन तो बिना काजल के ही
 कजरारे हो गए हैं ॥ २३ ॥ ॥ सवैया ॥ क्या कभी हमारी सुधि लेंगे

पठैहैं । गोकल यादि कबै करिहैं कब कातिक की रति रास
 भचैहैं । मोहन फाग कबै मंड है हमरो कब शोक बिदा करि
 दैहैं । चित्त की बात कबै सजनी कहु री कहु री ब्रजराज
 कबैहैं ॥ २४ ॥ ॥ अथ स्त्री क्रिशन जी की उसतत ॥
 ॥ कवित्त ॥ देवकी तनय्या कहो मुसली के भय्या कहो राधा
 के रमय्या कहो मुर के मरय्या हैं । संतन सहय्या कहो दैतन
 दलय्या कहो बारन बचय्या कहो संकट कटय्या हैं । कारन
 करय्या कहो रमाँ के रिझय्या कहो सागर अथय्या कहो बिस्व के
 बनय्या हैं । बेदन बनय्या कहो द्वारका बसय्या कहो कौसतभ
 तरय्या पांतजन के बजय्या हैं ॥ २५ ॥ ॥ कवित्त ॥ धन के चरय्या
 कहो बेंन के बजय्या कहो गोकल बसय्या कहो ब्रज के रहय्या हैं ।
 माखन भखय्या कहो गोरसु लुटय्या कहो चीरन चुरय्या कहो
 गुआरन हरय्या हैं । आनंद दिवय्या कहो सारंग धरय्या कहो
 पूतना मरय्या कहो ताल के कतय्या हैं । नाग के नथय्या कहो
 व्याध के बधय्या कहो भीखम तनय्या को कनय्या जू हरय्या
 हैं ॥ २६ ॥ ॥ कवित्त ॥ कंस के बधय्या कहो केसी के मरय्या

और किसी के हाथों संदेश भिजवाएंगे ? क्या कभी वे गोकुल को याद
 करेंगे और कार्तिक की ऋतु में रास रचाएंगे ? मोहन (कृष्ण) कब फाग
 खेलेंगे और हमारे मन का शोक मिटाएंगे ? हे सजनी ! चित्त की बात
 कहूँ कि ब्रजराज कब आएंगे ? ॥ २४ ॥ ॥ श्रीकृष्ण जी की
 स्तुति प्रारम्भ ॥ ॥ कवित्त ॥ वह देवकी-पुत्र, बलराम का भाई, राधा से
 रमण करनेवाला और मुर राक्षस को मारनेवाला कहा जाता है । वह
 संतों का सहायक, दैत्यों को नष्ट करनेवाला, बन्धों को बचानेवाला और
 संकट को काटनेवाला कहा जाता है । वह कारणों का भी कारण, लक्ष्मी
 को रिझानेवाला, सागर का मंथन करनेवाला और विश्व का रचयिता कहा
 जाता है । वह वेदों का बनानेवाला, द्वारिका बसानेवाला, कौस्तुभ मणि
 लानेवाला और पांचजन्य शंख बजानेवाला भी है ॥ २५ ॥ ॥ कवित्त ॥ वह
 गडओं को चरानेवाला, वाँसुरी को बजानेवाला, गोकुल को बसानेवाला
 और ब्रज का रहनेवाला है । वह माखन खानेवाला, दूध लुटानेवाला,
 वस्त्र हरण करनेवाला और ग्वालिनों को चुरा ले जानेवाला है । वह
 आनन्ददायक, सारंग नामक धनुष धारण करनेवाला, पूतना को मारनेवाला
 और ताल वृक्षों को काट गिरानेवाला है । वह नाग को नाथनेवाला,
 व्याध के हाथों बध होनेवाला, विषम तन वाला कन्हैया है ॥ २६ ॥

कहो कारी के हनय्या कहो कुंजन भ्रमय्या हैं । साहन के साह
 कहो संतन सनाह कहो (सु० प्र० स) करी करि बाह कहो राम जू के
 भय्या हैं । चौदाँ लोक नाह कहो साचो पातिसाहि कहो दुज्जन
 के दाह कहो दैतन दलय्या हैं । अरिन को आर कहो संतन
 सहार कहो दीन हूँ की धार काँन केसव कनय्या हैं ॥ २७ ॥
 ॥ कवित्त ॥ बंसी के बजय्या कहो ब्रिज के रहय्या कहो
 व्याधि के बधय्या कहो बिस्व के बनय्या हैं । बेदनो चरय्या
 कहो बारन बचय्या कहो बुद्धि के बढय्या बलरामजू के भय्या
 हैं । बीर बिचरय्या कहो बैरन हनय्या कहो बिख के बढय्या
 ब्रिज बनता लभय्या हैं । बन के भ्रमय्या कहो बछरा चरय्या
 कहो जाकी सभ लेत कवि कोविद बलय्या हैं ॥ २८ ॥ ॥ अथ
 बियोगनी ॥ ॥ सवैया ॥ बैरी सी ब्यार बियोग सों बीचन बाँक
 सों बोल बजंत बिथारे । बादर बूँद बिसारे से बान सु बारन
 मत्त बुरे बिकरारे । बाग बनियो बन सौ बिस बैठक जाँ दिन
 ते ब्रिजनाथ बिसारे । व्याधि सी बीन बिनाँ ब्रिजबालम
 बीरी न होहि बिखी बिखयारे ॥ २९ ॥ ॥ कवित्त ॥ चिता

॥ कवित्त ॥ उसे कंस का वध करनेवाला, केशी को मारनेवाला, कालिय
 नाग का हनन करनेवाला तथा कुंजों में घूमनेवाला कहते हैं । उसे
 सम्राटों का सम्राट्, संतों का कवच, हाथी को भी चला मारनेवाला तथा
 बलराम का भाई कहते हैं । उसे चौदह लोकों का स्वामी, सच्चा
 पातशाह, दुर्जनों का दहन करनेवाला और दैत्यों का दलन करनेवाला कहते
 हैं । शत्रुओं को चीरनेवाला, संतों का आश्रय, दीनों का आधार उसे
 कान्ह, केशव और कन्हैया कहते हैं ॥ २७ ॥ ॥ कवित्त ॥ वह वंशी बजाने
 वाला, ब्रज का रहनेवाला, व्याधियों का नाशक और विश्व को बनानेवाला
 है । वह गायों को चरानेवाला, बच्चों को बचानेवाला, बुद्धिवर्द्धक और
 बलराम का भाई है । बीरों में विचरण करनेवाला, शत्रुओं को मारने
 वाला, उनके लिए विष-वृक्ष है, और ब्रज की स्त्रियों को ढूँढ़ लेनेवाला है ।
 वह वन में भ्रमण करनेवाला, गाय-बछड़ों को चरानेवाला है और सभी
 कवि, विद्वान उस पर न्योछावर जाते हैं ॥ २८ ॥ ॥ अथ वियोगिनी ॥
 ॥ सवैया ॥ वियोग में पवन भी शत्रु लगती है और बोली भी टेढ़े शस्त्र
 की तरह लगती है तथा घाघ भी व्यर्थ लगते हैं । बादलों की बूँदें बाणों
 की तरह विकराल लग रही हैं । बाग अब जंगल की तरह और बैठक भी
 उस दिन से विषमय लगती है जिस दिन से ब्रजनाथ ने हमें भुला दिया है ।

जैसो चंदन चराग लागे चिंता सम चेटक सो चित्र चायु चाबुक
कुसैल सी । चिता जैसो चीर चपला सी चितवन लागे चीरबे
सी चौपखा सुहात न रुचैलसी । चंगल सी चौप सर चाँप जैसो
चामी करि चोट सी चिनौती लागे सीरी लागे सैलसी । चटक
चपेट सी लगत चिंता नाथ बिन चाबक सौ चेर लागे चाँदनी
चुरैल सी ॥ ३० ॥ ॥ सवैया ॥ हउ इत धूमत प्रेम छकी
अति घोरत है उहि घाघनकारो । कउन ही घात मिलो घन
स्याम को घोर करै हम पे घर वारो । मो घट ते घिरि जात
सखी मनो बीतत एक घरी जुग सारो । घाइल कै घनस्याम
गए घर ऐहै कब सखी मोहन प्यारो ॥ ३१ ॥ ॥ सवैया ॥ बैठी
इतै हौं शिगार सजै भई सैन समै घनस्याम न आए । खोजत
बाट न पाई किधो घन घोख सुनियो घर ते नसि घाए । घोर
किधो ब्रिज लोगन को सुनिकै मन मै सु घने डरपाए ।
स्याम न आए सखी कहूँ काहे ते काहूँ सु बैरनिहूँ बिरमाए ॥ ३२ ॥
॥ कवित ॥ बैठी हुती सज्ज हौं शिगार सभ सखिन मो एही

ब्रजप्रिय (श्रीकृष्ण) के बिना बीन भी रोग-जैसी लगती है और बीड़ा
(पान का) भी विष के समान लगता है ॥ २९ ॥ ॥ कवित ॥ चंदन
चिता के समान, दीपक चिता के समान, सुन्दर चित्र मात्र लकड़ी के डंडे
लगते हैं । वस्त्र चिता के समान और चितवन बिजली के समान तथा
सुन्दर पंखा तनिक भी नहीं सुहाता है । सारा प्यार अब एक फंदा-सा
और चँवर धनुष-बाण जैसा घातक तथा दूध भी पत्थर की तरह लगता
है । उसका स्मरण भी उस स्वामी के बिना चोट के समान लगता है और
चुड़ैल के समान चाँदनी प्रतीत होती है ॥ ३० ॥ ॥ सवैया ॥ इधर मैं
प्रेम में सराबोर घूम रही हूँ उधर काले बादल घहरा रहे हैं । अगर
किसी भी तरीके से घनश्याम से मिल लिया जाय तो मैं उस पर सारा
घरबार न्योछावर कर दूँ । मेरा मन चक्कर काट रहा है और हे
सखी ! एक घड़ी एक युग के समान व्यतीत हो रही है । वह घनश्याम
घायल करके चला गया है, पता नहीं वह मोहन प्यारा अब कब
आएगा ! ॥ ३१ ॥ ॥ सवैया ॥ मैं इधर शृंगार करके बैठी हूँ; सन्ध्या
हो गई पर श्याम नहीं आए हैं । खोजने पर भी उसका रास्ता नहीं
मिला और बादलों का घोष सुनकर सभी भागे आए हैं । ब्रज के लोग
बादलों के गर्जन को सुनकर मन में बहुत डर गए हैं । हे सखी ! श्याम
आये नहीं हैं, कहीं किसी बैरन ने तो उनको नहीं भुला दिया है ॥ ३२ ॥

बीच कान जू दिखाई मुहि दै गयो । तबही ते सभन की सुद्धि
 मै बिसार दई चेटक चलाई मानो चेरी मोहि कै गयो । कहाँ
 करो का पै जाऊँ जरो किधो बिख खाऊँ (सू० ग्रं० ह) जानत हों बीस
 बिस्वे बिछू सो डसै गयो । चखन चितौन सो चुराइ चित मेरो
 लीनो लटपटी पाग सों लपेट मनु लै गयो ॥ ३३ ॥
 ॥ सबैया ॥ व्याकुल है ब्रिजभाँन सुता ब्रिज बालम को
 बिललावत है । जब बाँके बिहारी हवै जाइ तबै कहि कै
 ब्रिज नारि बुलावत है । इह भाँत बियोग बडे बसि हवै मन ते न
 कबे बिसरावत है । ब्रिज बीथन ते बन ते ब्रिजबीथन दोस निसा
 बिरमावत है ॥ ३४ ॥ ॥ सबैया ॥ बहु व्याकुल हवै बन
 बीथन मै कबहूँ नही बेन बजावत है । बहिक्यो सु फिरै बिन
 चैन बलाई ल्यो बोलत हूँ बिललावत है । नही बेग सो काहूँ की
 बात सुनै बधवा बर बिसरावत है । ब्रिज नारि चलो बनि
 कै ब्रिज ते बन मै ब्रिजनाथ बुलावत है ॥ ३५ ॥ ॥ अथ नेत्र
 सोभा स्त्री क्रिशन जी के कथित ॥ ॥ सबैया ॥ सोहत सुद्ध सुधारे
 से सुंदर जोबन जोत सो भाइ भरे हैं । सारस सोम सुरा अरु

॥ कवित्त ॥ मै सखियों के बीच शृंगार करके बैठी थी कि मुझे कृष्ण
 दिखायी दे गए । तब से मैंने सबकी सुधि-बुधि भुला दी है । वह मानों
 जादू करके मुझे दासी बना गया है । क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, क्या जहर
 खा लूँ ? ऐसा लगता है मानों मुझे बिच्छू डँस गया हो ! अपनी आँखों
 की चितवन से उसने मेरा चित्त चुरा लिया है और अपनी पगड़ी में मानों
 मेरा मन लपेटकर ले गया है ॥ ३३ ॥ ॥ सबैया ॥ वृषभानुसुता (राधा)
 व्याकुल हो श्रीकृष्ण के लिए विलाप कर रही है । वह कृष्णरूपा ही
 हो गई है और ब्रज की स्त्रियाँ उसे इसी नाम से पुकारती हैं । इस प्रकार
 बड़ी वियोगिनी होकर वह उसे मन से कभी नहीं भुला रही हैं । ब्रज की
 गलियों से वन तक और वन से ब्रज की गलियों तक ही दिन-रात वह
 चक्कर लगाती रहती है ॥ ३४ ॥ ॥ सबैया ॥ अब वह व्याकुल हो
 कभी वन में और गलियों में बाँसुरी नहीं बजाता है । वह भी चैन-रहित
 हो वन में बहकता हुआ घूम रहा है । वह शीघ्रता में किसी की बात
 भी नहीं सुनता और सबको मानों भुला बैठा है । हे ब्रज की स्त्रियो !
 सज-धजकर चलो, वन में ब्रजनाथ बुला रहे हैं ॥ ३५ ॥ ॥ श्रीकृष्ण जी
 के नेत्र शोभा में कवित्त प्रारम्भ ॥ ॥ सबैया ॥ यौवन से भरे सुन्दर, ज्योति
 और प्रेम से भरे हुए हैं । इन्होंने सारस, चन्द्र, मदिरा, कमल और हिरन

स्त्री ससि कंज कुरंगन क्रांत हरे है । खंजन औ मकरध्वज मीन
 निहार सभै मुन लाज मरे है । लोचन स्त्री नंदनंदन के बिधि
 मानहु बान बनाइ धरे है ॥ ३६ ॥ ॥ सर्वैया ॥ रीझ भरे रस
 रीत भरे अति रूप भरे सुख पर्यत हरे । चार चकोर सरोरहु
 सारस मीन करै म्रिग खंजन चेरे । भाग भरे अनुराग भरे
 सु सुहाग भरे मन मोहत मेरे । मान भरे सुख खाँ जहान के
 लोचन सी नंद नंदन तेरे ॥ ३७ ॥ ॥ दोहरा ॥ अति अनुप
 आनद भरे सुंदर सुख के दैन । मोहत मन मेरो सदा मीत
 तिहारे नैन ॥ ३८ ॥ ॥ कवित्त ॥ रूप भरे राग भरे सुंदर
 सुहाग भरे म्रिग औ ममोलन की मानो यहि खान हैं । मीन
 हीन कीने छीन लीने है बिधूप रूप चंचल चपल चारु चंद्रमा
 समान हैं । लोको के उजागर हैं सुखहूँ के सागर हैं गुनन के
 नागर हैं सोभा के निधान हैं । साहिबी की सीरी भरे चेटक
 की चीरी पढ़े आली तेरे नैन सी सी इंद्र के से बान हैं ॥ ३९ ॥
 ॥ कवित्त ॥ अखिआँ दुहाँ दे विचच सुरमे कँ पाइ प्यारी छतिआँ
 दुहाँ दे विचच चंदन लगावणा । बिंदी बिंदीबेसर बणाइ बाजूबंद
 ताई सीस उते भोरा सीस फूल भी छकावणा । भंग कू चढ़ाई कै

की कांति चुरा ली है । ये खंजन और मकरध्वज के समान हैं । इन्हें
 देखकर सभी मुनिगण भी लज्जित होते हैं । श्री नंदनंदन कृष्ण के नेत्र
 मानों बाण बनाकर रखे हुए हैं ॥ ३६ ॥ ॥ सर्वैया ॥ प्यार और रस से भरे
 हुए हैं इन्हें देखकर सुख प्राप्त होता है । चकोर, कमल, सारस, मछली,
 मृग और खंजन को भी इन्होंने दास बना लिया है । ये भाग्य से भरे,
 प्रेम से भरे और शुभम् से भरे मेरे मन को मोहनेवाले हैं । हे नंदनंदन
 कृष्ण ! तुम्हारी आँखें मान से भरी हुई और सुख की खान हैं ॥ ३७ ॥
 ॥ दोहरा ॥ अति अनुपम, आनंद से भरे हुए, सुख देनेवाले और सदा
 मन को मोहित करनेवाले हे मित्र ! ये तुम्हारे नयन हैं ॥ ३८ ॥
 ॥ कवित्त ॥ रूप भरे, प्रेम भरे मानों ये मृगों और खंजनों की खान है ।
 इन्होंने मीन को भी हीन कर दिया है और ये सुन्दर चंचल शोभायुक्त
 चन्द्रमा के समान हैं । लोकों को प्रकाशित करनेवाले, सुख के सागर,
 गुणज्ञ और शोभा का समुद्र हैं । ये साहिबी का दम भरनेवाले, जादू
 करनेवाले, हे सखी ! तुम्हारे नयन मानों इंद्र के बाण हैं ॥ ३९ ॥
 ॥ कवित्त ॥ हे प्यारी ! दोनों आँखों में सुरमा डालकर दोनों छातियों के
 बीच चंदन लगाना । बिंदी, बाजूबंद लगाकर सिर पर जरा फूल भी

अफीम घणी खाइ कै खुशाल हवै कै (मू०ग्रं०क) खेल सारी रात का मचावणा । छपि नहीं जावणा रिझावणां यारां नूँ वति यारड़ी जरूर साथे आवणा ही आवणा ॥ ४० ॥ ॥ दोहरा ॥ प्रीति अधिक प्रदेश पति व्यापत अधिक अनंग । तन ईहा मो मन चल्थो पिया तिहारे संग ॥ ४१ ॥ ॥ कवित ॥ स्वेतता भिभूत अरु मेखली नमेख संदी अंजन दी सेली दा सुभाउ सुभ भावणा । भगवा सु भेस साडे नैणां दी ललाई सईयो यारड़े दा धिआन एहो कंद मूल चावणा । रोदन दा मज्जन पुत्री पत्र गीत गीता देखणे दी भिच्छ दुखु धूआ आगै राखणा । ऊधो एनां गोपीआं दे अखीआं दा जोग सारा नंद के कुमार नूँ जरूर जाइ आखणा ॥ ४२ ॥ ॥ अथ बीर रस दे कवित ॥ हल का हजार हाले हय नह बोलै हाली हाँक गिर हाल्यो हक सारें गिर हालियो । हला हलधर हाल्यो हाल्यो भुअ लोक सभ हरी हैं समेत हरिजूह आप चालियो । महाँ हाल चाल मै हिरास भैं न संगो आन ऐसे तैं हिरौलन को हाँक हाँक दालियो । हिंगुला हिमालै हाल्यो हबस हरेव हाल्यो हेम गिर हाल्यो हठी

लगाना । भाँग-अफीम खाकर खुश होकर सारी रात का खेल मचाना । हे प्रिय ! छिप नहीं जाना और यारों को रिझाना तथा हमारे साथ जरूर आना ॥ ४० ॥ ॥ दोहरा ॥ जब पति परदेस में हो तो प्रीति अधिक बढ़ती है और काम का अधिक प्रभाव होता है । तन तो मेरा यहाँ है पर हे प्रिय ! मन तुम्हारे साथ ही चला गया है ॥ ४१ ॥ ॥ कवित्त ॥ श्वेतता भिभूत के समान और निमिष मात्र पलक न झपकना मानों मेखला और अंजन मानों सेली टोपी धारण करना है । हमारे नयनों की लालिमा मानों हमारा भगवा वेश है और यार का ध्यान करना मानों कन्द-मूल खाना है । रुदन का मज्जन और विरह-गीत मानों गीता-पाठ तथा देखने की इच्छा मानों भिक्षा और धुएँ का जलाना है । हे उद्धव ! इन गोपियों के आँखों की योग-व्यथा तुम नंदकुमार कृष्ण को अवश्य जा कहना ॥ ४२ ॥ ॥ बीर रस के कवित्त प्रारम्भ ॥ हजारों प्रदेश हिल गए, घोड़े भी धीरे नहीं हिनहिना रहे हैं । पर्वत को भी हाँककर हिलाकर गिरा दिया है । आक्रमण से हलधर (बलराम) भी हिल गया, सारा भूलोक हिल गया, विष्णु-समेत शिव आदि भी हिल गए । इस यहाँ भीषण वातावरण में भी हे संगो (शाह) ! तुम नहीं डरे और तूने मानों सबको हिंडोले के समान हिला-हिलाकर मार डाला । हिंगलाज, हिमालय, हिरात, हब्शी देश,

तै न हठ हाल्यो ॥ ४३ ॥ ॥ सवैया ॥ संगो सँभार कै साँग
भली करि औ कटि पै चट बाँधि क्रिपानी । मार ही मार
पुकार पर्यो अरि सैन के सामुहि शंक न मानो । मार दए
सिरदार बडे करि कोप फिर्यो इह भाँत कँपानी । सूर डुले
सिरदार सभै न डुलियो रण ते बसुधाहँ डुलानी ॥ ४४ ॥

मय के पिए मद मत्त महामत्त पीलन पेल चहँ दिस ढूके । मारि
ही मार हजार सुवार उधार हथिआर सभै मिल कूके । छोर
बिचार कर्यो सुभ वार इही बटपार तबै घर फूके । मारे परे
अरि भारे मही परि हाथ लगै अरि हासी हनूँ के ॥ ४५ ॥

॥ सवैया ॥ मारू बजे महाँ मारि सचे पिय मय के महीप महाँ
मतवारे । बयोहूँ न भाजत गाजत है रण डोल म्रिदंग बजाइ
नगारे । मार ही मार पुकार सभै भट आन परे हथिआर
उघारे । भारे परे अरि मारै मही पर हाथ लगै हनवंत
तिहारे ॥ ४६ ॥ ॥ सवैया ॥ हाँक हजार हिमालय से हल
काहनि कै हठि वार हनूँ के । हेरन हेति महाँ हव मै भट लाल

हिमगिरि (हिमालय) सभी हिल गये, पर हे हठी वीर ! तुम नहीं
हिले ॥ ४३ ॥ ॥ सवैया ॥ संगो शाह (गुरु गोविंद सिंह जी की बुआ
का पुत्र) ने भली प्रकार बरछी सँभाली और शीघ्र ही कमर से कृपाण बाँध
ली । वह मार-मार पुकारता हुआ शत्रु-सेना में निःशंक घुस पड़ा ।
बड़े-बड़े सरदारों को कुपित हो मार डाला और सबको कँपानेवाला वह
वीर घूमने लगा । सभी सरदार, शूरवीर डोल गए, धरती हिल गई,
पर यह वीर (संगो) न हिला ॥ ४४ ॥ मद्य पीकर मदमस्त वीर हाथियों
को आगे ठेलकर चारों दिशाओं से टूट पड़े । सभी शस्त्रों को
निकालकर मार-मार पुकारते हुए चिल्लाने लगे । इसने सोच-विचार
छोड़कर वार किया और इस प्रकार इस बटमार ने सभी घरों को फूँक
दिया । जो भी हनुमान के हाथ लग गए वे भारी वीर भी धरती पर
मारे हुए पड़े थे ॥ ४५ ॥ ॥ सवैया ॥ मारू रणवाद्य बजने लगे, मार
मचने लगी और मद्य पीकर राजागण मतवाले हो उठे । कोई भी
भागता नहीं है और वीर डोल-मृदंग-नगाड़े बजाकर गर्जना कर रहे हैं ।
सभी वीर मारो-मारो की पुकार के साथ खुले हथियार लेकर आ गये ।
हे हनुमान ! जो भी तुम्हारे हाथ लगे वे मरे हुए धरती पर पड़े हैं ॥ ४६ ॥
॥ सवैया ॥ हनुमान के हठी वारों ने हजारों हिमालय हाँक लिये । वीरों

हथिआर हहा कहि टूटे । हाल उठियो गिरहे महरैव हूँ हैरत
लाग (ध्रु०प्र०ख) हरी हरि जू के । हार गिरे बिन हार रहे अरि
हाथ लगे अरि हासी हनूँ के ॥ ४७ ॥ ॥ प्रिथी बाच ॥

॥ सवैया ॥ मधुकैटभ के महिखासर के मनु के नल के चलते
न चलयो गउँ । रावन को रघु को अजु को नहीं साथ दयो
रघुनाथ बली कउँ । संग रही अब लौ कहु कौन के साच
कहो अघ ओघ दली सउँ । चेत रे चेत अजो चित मै चढ़
काहूँ के संग हली न चलीहउँ ॥ ४८ ॥ ॥ कबियो बाच ॥

॥ सवैया ॥ कागज दीप सभै करिहौं अरु सात महारण की
मसु कैहों । काट बनासपती सिगरी लिखबे हूँ के लेखन
काज बनैहों । सारस्वती बकता करकै जुग चारि गनेश के
हाथ लिखैहों । कोट कवित्तन जौ करिहों तुम कौ न तऊ
प्रभ नैक रिझैहों ॥ ४९ ॥

के शस्त्रों ने युद्ध देखा और टूट गए । धरती-पर्वत चकित हो गए और
शिव-विष्णु भी हैरानी में आ गए । हँसते हुए हनुमान के हाथ हारे हुए
गिरे शत्रु लग रहे हैं ॥ ४७ ॥ ॥ पृथ्वी उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ मैं मधु-
कैटभ, महिषासुर, मनु, नल के साथ भी नहीं चली । रावण, रघु, बज
और बली, रघुनाथ का भी साथ नहीं दिया । सच बता रही हूँ कि
भला मैं किस अघ ओघ के काटनेवाले के साथ रही हूँ । हे मूर्ख ! तू
सावधान हो जा, मैं भला आज तक किसी के साथ चली हूँ ? ॥ ४८ ॥
॥ कवि उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ सभी द्वीपों का कागज बनाऊँ और सातों
समुद्रों की स्याही बनाऊँ । सारी वनस्पति को काटकर लेखनी बनाऊँ ।
सारस्वती को बकता बनाकर चार युगों तक गणेश के हाथों लिखवाऊँ और
करोड़ों कवित्तों की भी रचना करूँ तो भी हे प्रभु ! मैं तुम्हें तनिक-सा
भी प्रसन्न नहीं कर सकता ॥ ४९ ॥

१ ओं वाहिगुरु जी की फ़तह ॥

माझ स्त्री मुखवाक पातिशाही १० ॥

लक्खी जंगल खालसा दीदार आइ लगा तब उचार होइआ ॥

लक्खी जंगल खालसा आइ दीदार कीतो ने ।

मुण कै सददु माही दा मेही पाणी घाहु मुतो ने ।

क़िसे नाल न रलीआ काई कोई शौक पयो ने ।

गइआ फिराकु मिलिआ मितु माही ताहीं शुकरकीतो ने ॥ १ ॥

१ ओं वाहिगुरु जी की फ़तह ॥

[सिखी रहित]

स्त्री मुखवाक पातिशाही १० ॥

निशाने सिखी ई हरूफ पंज काफ ।

हरगिज़ म बाशद ई पंज मुआफ ॥ १ ॥

लक्खी जंगल में जब खालसा दीदार के लिए आ पहुँचा तब
उच्चारण किया

लक्खी जंगल में खालसा ने आकर दर्शन किया । प्रियतम का बुलावा सुनकर भैंसों ने खाना-चरना छोड़ दिया । उनको कोई ऐसा शोक सवार हुआ कि कोई किसी के साथ नहीं मिल रही अर्थात् सभी विलक्षण हैं । वे माही (चरवाहे) से मिल गई हैं, उनका सभी फ़िरा ख़रम हो गया है और उन्होंने परमात्मा का शुक्र किया है ॥ १ ॥

सिक्खी नियम

सिक्ख (घमं) के चिह्न ये पाँच 'क' अक्षर हैं । इन पाँचों के पालन के संबंध में किसी भूल को क्षमा नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥ यह

कड़ा कारदो कच्छ कंधा बिदाँ ।

बिला केस हेच असत जुमलह निशाँ ॥ २ ॥

हरफ हाइ कात असत ई पंजकाफ ।

बि दानंद बावर न गोयम खिलाफ ॥ ३ ॥

हुक्का हजामत हलालो हराम ।

बाचीशे हिनां करदरू स्याह फाम ॥ ४ ॥ (सू०ग्रं०ग)

॥ श्री दसम गुरुग्रन्थ साहिब समापतम ॥

जान लो कि ये कड़ा, कृपाण, कच्छ, कंधा हैं और केशों के बिना ये सभी चिह्न व्यर्थ हैं ॥ २ ॥ पांच "क" ऊपर बताए गए हैं जो कि महत्वपूर्ण हैं । जो मैंने कहा है, वह मान्य विश्वास के प्रतिकूल नहीं है ॥ ३ ॥ हुक्का, हजामत एवं (इस्लाम के अनुसार) हलाल-हराम (सिक्ख-धर्म में) मान्य नहीं है । मेंहदी से बाल रँगना मानों अपना मुँह आप काला करना है ॥ ४ ॥

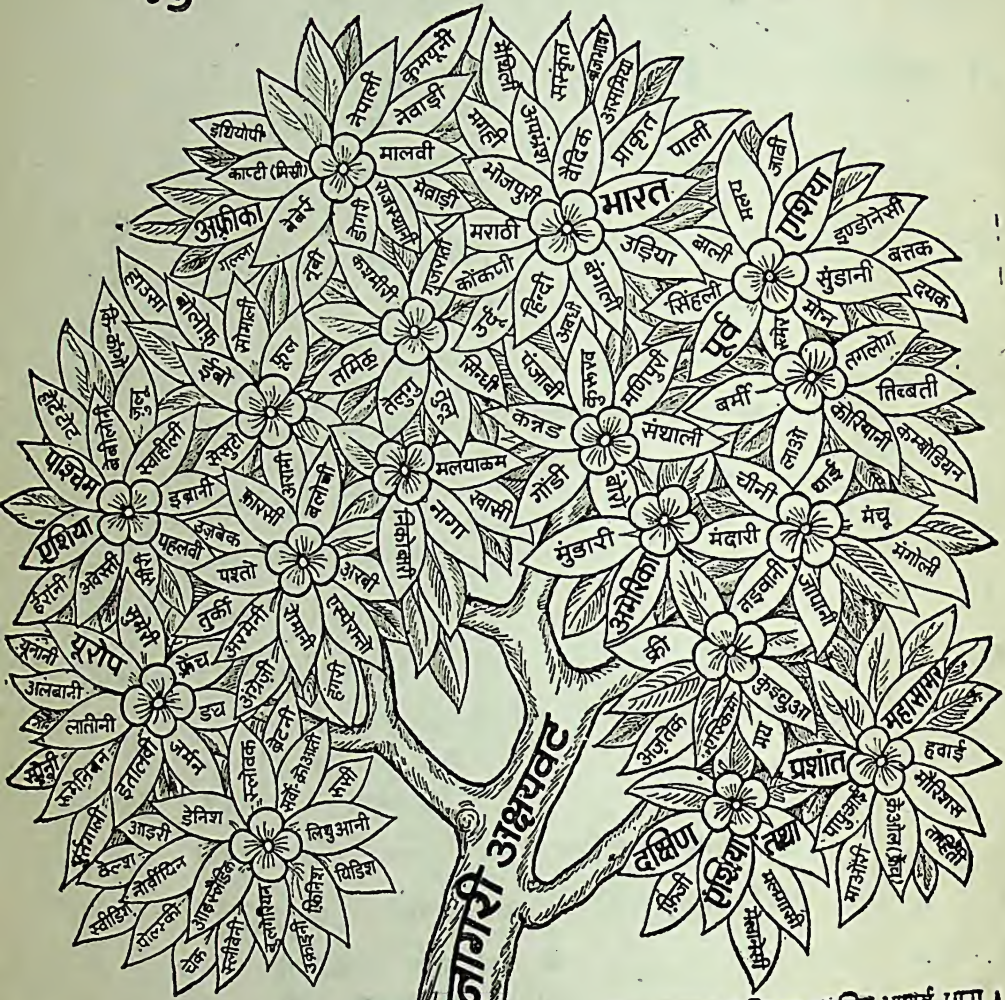
॥ श्री दसम गुरुग्रन्थ साहिब समाप्त ॥

गुरमुखी लिपि में प्रकाशित ग्रन्थ

१	गुरमुखी	श्री गुरुग्रन्थ साहिब (प्रथम सेंची) मूल		
		गुरुबाणी नागरी लिपि		
		में तथा हिन्दी प्रामाणिक		
		सर्वप्रथम अनुवाद	६६८	५०'००
२	"	" " (दूसरी सेंची)	६६२	५०'००
३	"	" " (तीसरी सेंची)	६६४	५०'००
४	"	" " (चौथी सेंची)	८००	५०'००
५	"	श्री दशम गुरु ग्रन्थ साहिब गुरुगोविन्दसिंह		
		प्रणीत (ब्रजभाषा में)		
		(प्रथम सेंची)	८२०	५०'००
६	"	" " " " (द्वितीय सेंची)	७०४	५०'००
७	"	" " " " (तृतीय सेंची)	७३६	५०'००
८	"	" " " " (चतुर्थ सेंची)	७५२	५०'००
९	"	श्रीजपुजी सुखमनी साहिब—मूलपाठ एवं		
		छवाज: दित्तमुहम्मद		
		कृत अनुवाद	१६४	१५'००
१०	"	श्री सुखमनी साहिब (मूल गुटका)	२४०	४'००
११	"	भाई गुरुदास जी के कवित्त-संवेद्ये छप रही है		
१२	"	" " के वारां ज्ञान रतनावली		
		नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी		
		अनुवाद		छप रही है

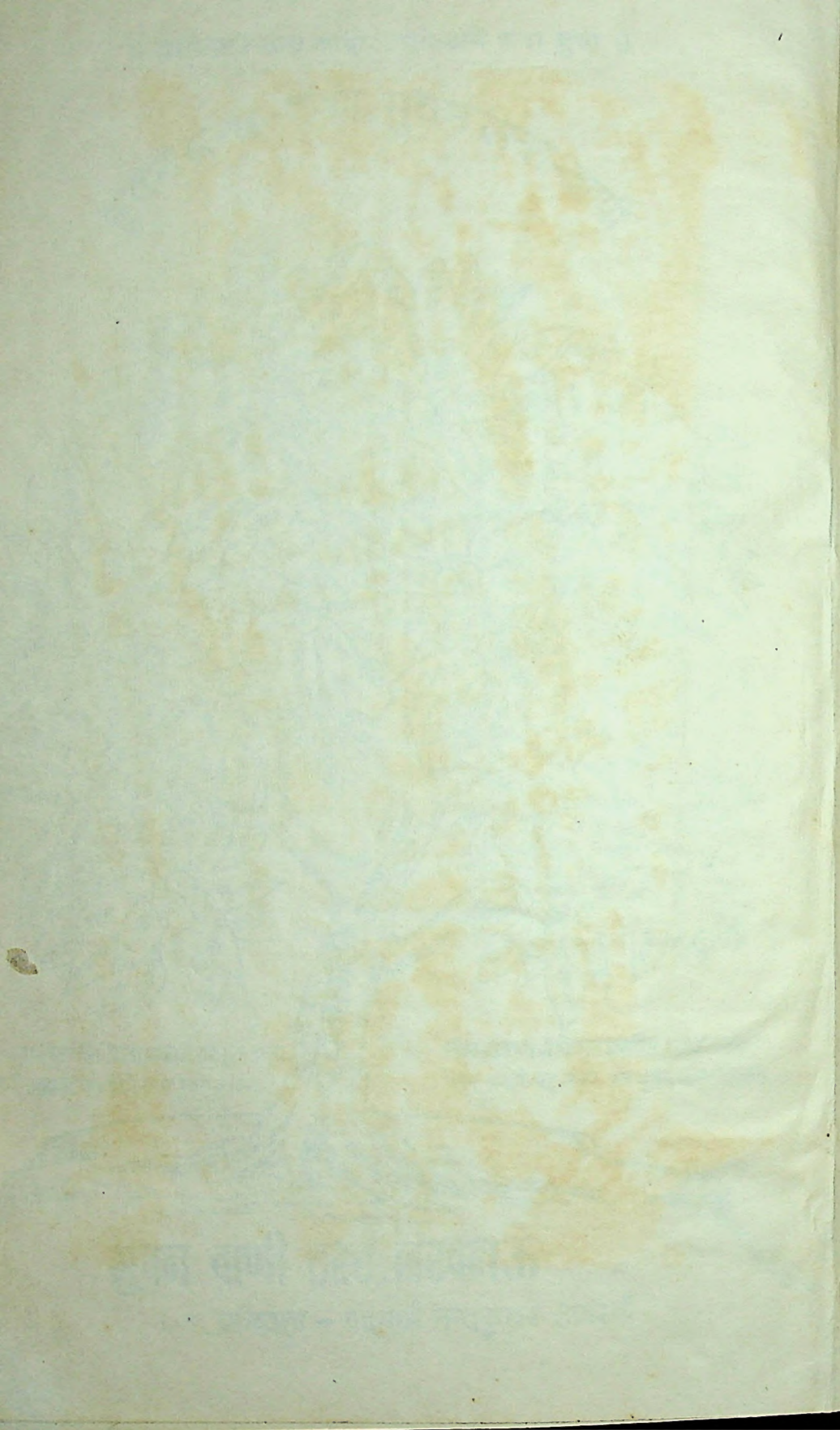
॥ ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ॥

मुवन ग्रन्थ-गाथा मुवन सन्त-वाणी



मुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ

प्रतिष्ठाता - पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी





गुरुमुखी लिपि के ग्रन्थ, नागरी लिपि में सानुवाद प्रकाशित

१	गुरमुखी	श्री गुरुग्रन्थ साहिब	गुरुवाणी मूलपाठ नागरी लिपि में तथा सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद (प्रथम सेंची)	६६८	५०'००
२	"	"	" (दूसरी सेंची)	६६२	५०'००
३	"	"	" (तीसरी सेंची)	६६४	५०'००
४	"	"	" (चौथी सेंची)	८००	५०'००
५	"	श्री दशम गुरुग्रन्थ साहिब	गुरुगोविन्दसिंह प्रणीत (ब्रजभाषा में) हिन्दी अनुवाद सहित (प्रथम सेंची)	८२०	५०'००
६	"	"	" (द्वितीय सेंची)	७०४	५०'००
७	"	"	" (तृतीय सेंची)	७३६	५०'००
८	"	"	" (चतुर्थ सेंची)	७५२	५०'००
९	"	श्रीजपुजी सुखमनी साहिब—मूलपाठ एवं उवाजः दिलमुहम्मद कृत अनुवाद (नागरी में)	१६४	१५'००	
१०	"	श्री सुखमनी साहिब	(मूल गुटका) पाठ के लिए	२४०	४'००
११	"	भाई गुरुदास जी	के वाराँ ज्ञान रतनावली नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी अनुवाद	७०४	६०'००
१२	"	"	के कवित्त-सर्वेये छप रही है		

प्राप्ति-स्थान— भुवन वाणी ट्रस्ट, मौसम बाग (सीतापुर रोड), लखनऊ-२०